हिन्दू भारतका अन्त ।

प्रशंसन ।

श्री चिंतामणि विनायक वैद्यजीकी यह इच्छा हुई कि उनके लिखे हुए "मध्यकालीन भारतके इतिहास" के हिन्दी रूपका उपस्थापन, हिन्दी भाषा बोलनेवाली जनताके सामने, मैं करूँ । श्री वैद्यजीकी उदारबुद्धि, देशभक्ति, देशसेवा, भारतोद्धारेच्छा, बृहत्पांडित्य, पौरस्त्यपाश्चात्योभयविद्यापूर्णता, सरलहृदयता, प्रसन्नचित्तता, श्रमशीलता और वयोवृद्धताके लिये मेरे मनमें जो भूयिष्ठ आदर है उसने मुझको विवश किया कि उनकी आज्ञाका पालन करूँ । तथा भारतीय मध्यकालीन इतिहासके विषयमें मेरी अल्पज्ञता विवश करती है कि प्रस्तावनाको संक्षिप्त करूँ ।

इस पुस्तकके अंग्रेजी रूपकी तीनों जिल्द मैंने अक्षरशः आद्योपांत पढ़ीं । मेरे जानमें ऐसा कोई दूसरा ग्रन्थ अबतक नहीं लिखा गया है, जिसमें ६०० से १२०० ई० (अर्थात् ६५७ से १२५७ वि०) तक छः सौ वर्षका इतिहास, भारतका, इस योग्यतासे, इस विस्तारसे, इस शृंखलाबद्ध क्रमसे, इस तथ्यान्वेषणके भावसे, इस युक्तिपूर्ण कार्यकारणसम्बन्धप्रदर्शनसे, और भारतके उद्धारके कार्यमें सहायता देनेकी ऐसी नियतसे, लिखा गया हो । प्रत्येक भारतवासीको चाहिये कि इस ग्रन्थको पढ़े और इसमें एकत्र किये हुए ज्ञानको अपने मनमें विचारपूर्वक ले आवे, किन किन कारणोंसे कब कब भारतवर्षके भिन्न प्रांतोंके जनसमुदायोंका उत्कर्ष हुआ और किन किन कारणोंसे क्या क्या आपत्ति उनपर आई और उनका अधःपात हुआ, इसको विशेष ध्यानसे अपने मनमें स्थिर

करै, और तब देशोद्धार कार्यमें यथाशक्ति स्वयं प्रयत्न करै और दूसरोंकी सहायता करै।

इतिहासकी बड़ी महिमा प्राचीन आर्ष ग्रन्थोंमें तथा पाश्चात्य आधुनिक विद्वद्ग्रन्थोंमें कही है।

इतिहास-पुराणं पंचमं वेदानां वेदं भगवोऽध्येमि। (छांदोग्य उपनिषत्)।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति॥

(मनु-महाभारतादि)

इतिहासके उदाहरणोंसे वेद वेदांत और तन्निष्ठ धर्मका मर्म ठीक ठीक समझमें आता है, अन्यथा नहीं। जो बहुश्रुत नहीं, जो विविध ज्ञान नहीं रखता, जिसको इतिहासका विषय विदित नहीं, उससे वेद डरता है कि यह मेरे अर्थका प्रवचन नहीं प्रवश्चन करैगा, प्रसारण प्रचारण नहीं प्रतारण करैगा, वह धर्मके स्थानमें अधर्मका उपदेश करैगा। ऐसे मनुष्यका अपनेको धर्म-व्यवस्थापक कहना दम्भमात्र है। वह वेदके अर्थका भी और समस्त जनताका भी प्रतारण प्रवञ्चन करैगा।

महाभारतादि आर्ष लोकहितैषी कारुणिक ग्रन्थोंमें भीष्मादि महाप्रामाणिक महापुरुष जब उपदेश करते हैं तो बीच बीच में,

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्।

कहके उदाहरण द्वारा उस उपदेशको समझा देते हैं, श्रोता के मनमें बैठा देते हैं। सर्वांगीण शिक्षा उत्तम इतिहासके ग्रन्थसे जैसी हो सकती है वैसी किसी दूसरे विशेष शास्त्रके ग्रन्थसे नहीं।

इसलिये ऐसे ग्रन्थोंका परिशीलन, जैसा वैद्यजीका यह ग्रन्थ है, सब भारतीयोंके लिये नितांत उपयोगी है।

यदि इसमें दोष है तो इतना ही कि यह तीन ही जिल्दोंमें क्यों समाप्त हो गया है, इसको तो नौ नहीं तो छः तक में विस्तीर्ण होना चाहता था। श्रेयसि केन तृप्यते। यदि इसके दूसरे संस्करणमें, तत्कालीन साहित्यका इतिहास भी समाविष्ट किया जाय तो विना आयास इसका परिमाण दूना हो जाय, तात्कालिक सामाजिक रहन-सहनपर प्रकाश पड़े और उसका भी हाल बहुत सा विदित हो, और ग्रन्थकी सरसता भी बढ़ जाय। इन छः सौ वर्षोंमें बहुतसे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, तामिल, तेलगू, तथा अन्य देश भाषाओंमें वैदिक, बौद्ध, जैन, इस्लाम आदि संप्रदायों के अनुयायी विद्वान् हो गये हैं जिन्होंने सहस्रों ग्रन्थ विविध काव्य और विविध शास्त्रके लिखे हैं। उनकी जीवनी और उनके ग्रंथोंके विशेषोंका अति संक्षिप्त वर्णन भी, उनके समयकी बड़ी बड़ी प्रभावशालिनी परिवर्त्तनकारिणी घटनाओंके सम्बन्धमें, यदि कुछ इस ग्रन्थके दूसरे संस्करणमें मिला दिया जाय तो यह ग्रंथ अधिक रोचक और शिक्षाप्रद हो जाय। पुनरपि, श्रेयसि केन तृप्यते। मैं बहुत आशा करता हूँ कि इस उत्तम ग्रन्थके निदर्शनसे प्रभावित होकर नयी पीढ़ीके भावी उत्तम विद्वान् "मध्यकाल" के पूर्वकाल और पश्चात्कालका भी इसी प्रकारसे विस्तृत इतिहास लिखकर देशकी सत्ज्ञानवृद्धिमें सहायता देंगे।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

दीपावली, १९८५ } भगवान् दास

विषय-सूची ।

छठीं पुस्तक

महमूद गजनवीके आक्रमण ।

सातवीं पुस्तक ।

तीसरे हिन्दू राज्य ।

आठवीं पुस्तक।

सामान्य परिस्थिति।

परिशिष्ट

भूमिका

कई साल पूर्व निश्चित योजनाके अनुसार, मध्ययुगीन भारतके इतिहासका यह तृतीय तथा अन्तिम खण्ड ईश्वरकी कृपासे तैयार होकर पाठकोंके सामने रखा जा रहा है, जिसका नाम "हिन्दू भारतका अन्त" (Downfall of Hindu India) है। इस सम्पूर्ण इतिहासकी कल्पना हमें गिबनके रोमन साम्राज्यका ह्रास तथा अन्त (Decline and fall of the Roman Empire) नामक इतिहाससे सूझी है। रोमन साम्राज्य तथा मध्ययुगीन हिन्दू साम्राज्यके ह्रासमें बहुत कुछ समता है। रोमन साम्राज्यकी ही तरह मध्ययुगीन हिन्दू साम्राज्य भी *तुर्कोंने उच्छिन्न किया; बॉस्फरसके किनारे बसे हुए कांस्टंटिनोपलके तुर्कों द्वारा जीते जानेके कारण जिस प्रकार रोमन साम्राज्यका अन्त हुआ, ठीक उसी प्रकार गंगातीरस्थ कन्नौजके पतनसे हिन्दू साम्राज्यका भी अन्त हुआ, और यूरोपके ग्रीक साम्राज्यका स्थान जिस प्रकार तुर्की साम्राज्यने लिया, उसी प्रकार भारतमें हिन्दू साम्राज्यके स्थानपर तुर्क अफगानोंका साम्राज्य प्रतिष्ठित हुआ। ग्रीक (प्राच्य रोमन) लोग शौर्यादि गुणोंमें बहुत पिछड़ गये थे और सामान्यतः हिन्दुओंकी भी यही हालत हुई। (केवल राजपूत ही ऐसे थे जिन्होंने अपनी शूरता तथा स्वातन्त्र्य-प्रियता आदि गुणोंका उज्वल स्वरूप कायम रखा था और अब भी वे लोग राजपूतानेकी पहाड़ी तथा रेगिस्तानमें स्वार्थ-त्यागपभोग कर रहे हैं।) अन्तिम ग्रीक सम्राटोंके समान

---

* यद्यपि शहाबुद्दीन स्वयं अफगान था, तथापि उसकी सेनामें अधिकतर तुर्क ही थे। राजपूत अपने शत्रुओंको 'तुरकड़ा' ही कहते ।

पृथ्वीराज और जयचन्द कमजोर नहीं थे; शेरके समान लड़ते लडते रणभूमिमें उन्होंने अपना जीवन बलिदान कर दिया और अमरत्वको प्राप्त हो गये। किन्तु भारतवर्षकी सामान्य जनता बहुतेरे कारणोंसे गरीब बन गयी थी; राष्ट्रीय रूपसे प्रबल विरोध किये विना ही उसने परवशता स्वीकृत कर ली।

इस प्रकार लगभग समस्त उत्तरीय भारतका पतन होने तक अर्थात् ईसाकी बारहवीं सदीतक भारतवर्षका इतिहास इस खण्डमें संग्रथित किया गया है। हिन्दू-भारतका ह्रास इस खण्डके काल विभागसे ही प्रारम्भ हुआ और ई० सन् १००० से १००८ तक महमूदने काबुल तथा पंजाबको जीत लिया। इस खण्डके शुरूमें अर्थात् छठीं पुस्तकमें हमने महमूदके भारतवर्षके आक्रमणोंका इतिहास दिया है। मुसलमानी और हिन्दू मूल ग्रंथोंके आधारपर ही हमने इस नये ग्रन्थकी रचना की है। सर्व साधारणकी यह धारणा कि लाहौरका राजा जयपाल काबुलके उसी नामके राजासे भिन्न था, उपलब्ध प्रमाणोंको विचारपूर्वक आलोचना करनेसे गलत प्रतीत हुई है और, जैसा कि आगे इसी पुस्तकमें हमने बतलाया है, पॅरोपॉमिससूसे सतलजतक फैला हुआ काबुलका विस्तृत हिन्दू शाही राज्य महमूदके सामने नष्ट हुआ। गजनीके मुसलमान तुर्कोंके सामने पंजाबके लड़ाके हिन्दू क्यों हार गये, इसका कारण दिखानेका प्रयत्न हमने इस पुस्तकमें किया है। इस प्रकार इस काल विभागके प्रारम्भमें ही पजाब हिन्दू भारतसे पृथक हो गया। सिन्ध तो पहले ही ई० सन् ७१२ से अलग हो गया था।

भारतके अन्य प्रदेशोंके हिन्दू राज्य लगभग दो सो साल तक राजपूतोंकी अधीनतामें कायम रहे और उनमें समय

समय पर मालवेके भोज, गुजरातके जयसिंह, कन्नौजके गोविन्दचन्द्र और कल्याणके विक्रम जैसे शक्तिशाली राजा उत्पन्न हुए। तथापि लगभग १२०० ई० में हिन्दू राज्योंके रक्षार्थ पृथ्वीराज और जयचन्दके समान प्रबल वीर होते हुए भी शहाबुद्दीन गोरीके द्वारा उत्तर भारतका पतन हो ही गया। इस पतनके कारण पंजाबके ह्रासके कारणोंसे विभिन्न हैं और उनका विवेचन हमने सातवीं पुस्तकमें किया है जो पाठकोंके लिये विचारवर्द्धक तथा मनोरंजक होगा।

सबसे अधिक रोचक भाग तो इस खण्डका अन्तिम अंश (आठवीं पुस्तक) है, जिसमें इस कालकी भारतीय सामान्य परिस्थितिका विवेचन किया गया है। हिन्दू लोग राष्ट्रीय दृष्टिसे बलहीन क्यों होगये, इसका उल्लेख इस सामान्य परिस्थितिके विवेचनमें किया गया है। इस कालविभागमें प्रधान जातियोंके अन्तर्गत सैकड़ों उप-जातियाँ कैसे बनीं, पृथक् पंथोंके आविर्भावसे धार्मिक एकता किस प्रकार नष्ट हो गयी, अहिंसाके तत्त्वके प्राबल्यसे शाकाहारमें किस प्रकार बहुतोंकी प्रवृत्ति हुई, और अन्तमें थोथे मूढविश्वासके बढ़नेसे किस प्रकार आगम, उपस्मृति तथा उपपुराणोंकी रचना हुई—यह सब उस विभागमें हमने प्रदर्शित किया है। इस विषयके महत्त्वको देखते हुए हमें विश्वास है कि जो मत हमने इस पुस्तकमें निर्दिष्ट किये हैं उनका मनन हमारे हिन्दू पाठक बड़े चावके साथ करेंगे।

सातवीं पुस्तकमें दिया हुआ इस काल विभागके हिन्दू राज्योंका इतिहास प्रधानतया खुदे हुए लेखोंके आधारपर लिखा गया है। यूरोप तथा भारतके विख्यात विद्वान् अन्वेषकोंने परिश्रमके साथ खोज करके ये लेख प्रकाशित किये हैं। इन लेखोंसे प्राप्त वृत्तान्तको एकत्र कर हम इस काल

विभागका एक सुसङ्गत इतिहास बना सके, इसका सारा श्रेय इन सम्पादकोंको है । बीच बीचमें कहीं कहीं पर इन विद्वानोंसे हमारा मतभेद होनेके कारण, यद्यपि उनके विरुद्ध हमने समालोचना की है, तथापि उनके प्रयत्नोंका सादर उल्लेख करते हुए हम यहाँ कह सकते हैं कि मुसलमानोंके पूर्व कालीन भारतका इतिहास बनानेमें उन्हींका परिश्रम साधनीभूत हुआ है। इस पुस्तकमें जहाँका आधार हमने लिया है उसका उल्लेख, पाठकोंकी सुविधाके विचारसे, नीचे टिप्पणीमें न कर पुस्तकमें ही कर दिया है । कुछ राज्योंका इतिहास डॉ० भाण्डारकर, फ्लीट, ल्युवर्ड, लेले आदि विद्वानोंने पहलेसे ही सुसंगत रूपमें लिखा है । हमने भी थोड़े बहुत परिवर्तनके साथ उसे ही ले लिया है । किन्तु अन्यान्य राज्योंका इतिहास—विशेषतः कन्नौजके गाहड़वालोंका इतिहास—पहले पहल हमने ही इस खण्डमें सुसम्बद्ध रूपमें दिया है तथा उसके संबधके कुछ कठिन प्रश्नोंका उत्तर भी जैसे कि गाहड़वालों और राठौड़ोंकी एकता सम्बन्धी प्रश्नका उत्तर, हमने इसी खण्डमें दिया है ।

इस खण्डसे हमारे ग्रन्थकी समाप्ति होती है, क्योंकि हिन्दू भारतका अन्त यहाँ पर होगया । इसके बादके भारतको हिन्दू तथा मुसलमान, दोनोंका सम्मिलित भारत कहना चाहिये । दक्षिण भारतमें इसके बाद भी सौ वर्षोंतक कुछ हिन्दू राज्य कायम रहे; फिर भी इस खण्डमें प्रदर्शित कारणों से वे भी अल्पाल्प आघातसे पतनोन्मुख होगये थे। इतिहासज्ञोंको विदित ही है कि अलाउद्दीन और उसके सेनापति मलिक काफ़ूरके हमलेमें ई० स० १३०० के लगभग उनका भी पतन होगया । मलिक काफ़ूरके एक ही आक्रमणमें महाराष्ट्र (देवगिरि), तैलगण (वरंगल) और कर्नाटक (द्वारसमुद्र)

उसके अधीन होगये । और वह कन्याकुमारीतक बराबर आक्रमण करता गया । विजयनगरकी अधीनतामें दक्षिण भारत (मद्रास इलाका) पुनः शक्तिसम्पन्न हुआ; पर अन्तमें ई० सन् १५६५ में महाराष्ट्रकी मुसलमानी सत्ताओंकी संगठित शक्तिके सामने तालिकोटिकी समर भूमिमें उसका भी विनाश होगया । एक दृष्टिसे यह भी कहा जा सकता है कि इसी साल हिन्दू साम्राज्यका अन्त हुआ । विजयनगरको ही यदि हम भारतका कांस्टंटिनोपल कहें तो अनुचित न होगा। (भेद केवल इतना ही है कि कांस्टंटिनोपल् आजतक विद्यमान है, पर विजयनगरका अस्तित्व नष्ट हो चुका है।) हिन्दू भारतके अवशेषका यह आधुनिक इतिहास, जो देवगिरिके उच्छेदसे विजयनगरपर आये हुए इस संकट तकका इतिहास है, एक स्वतन्त्र ग्रन्थका विषय है । जिस दृष्टिसे इस ग्रन्थकी रचना हुई है उसी दृष्टिसे वह भी रचा जाना चाहिए; परन्तु इस कामको हम दूसरोंके लिये छोड़ देना चाहते हैं।

इस कालके भारतका राजकीय मानचित्र तैयार कर इस ग्रन्थके साथ जोड़ा गया है। पाठकोंको वह तो रोचक प्रतीत होगा ही; परन्तु उससे भी अधिक रोचक तो वे तीन मानचित्र होंगे जो हमने स्वयं अपनी आँखोंसे उन स्थानोंको देख कर बनाये हैं । वे ये हैं—(१) छछकी उस रणभूमिका जहाँके युद्धसे पंजाबके स्वातन्त्र्यका अपहरण हुआ; (२) कोट कांगड़ाका; तथा (३) पृथ्वीराज की पुरानी दिल्ली का। अन्तमें दी हुई मुख्य वृत्तान्तोंकी कालक्रम-गणना तथा सूची दोनोंसे पाठकोंको सहायता मिलेगी ।

चिन्तामणि विनायक वैद्य ।

छठीं पुस्तक ।

महम्मद गजनवीके आक्रमण

पहला प्रकरण।

भारतवर्षका राजनीतिक भूगोल।

(सन् १०३० अल्बेरूनी)

इस समयका इतिहास जाननेके लिए अरब ग्रंथकार अल्बेरूनीकी 'इंडिया' (हिंदुस्तान) नामकी पुस्तकमें दिये हुए भारतके राजनीतिक भूगोलका ज्ञान अत्यंत उपयोगी और आवश्यक है। जिस प्रकार हिंदू कालके पहले विभाग (अर्थात् सन् ६००-८००) के इतिहासके लिए चीनी यात्री ह्युएनसांगका वर्णन बहुत उपयोगी है, उसी प्रकार सन् १००० १२०० तकके इतिहासके लिए अल्बेरूनीका हिंदुस्तान-वर्णन भी उपयोगी है। ये दोनों ही लेखक परदेशी थे। दोनोंने हिंदुस्तानमें रह कर संस्कृतका ज्ञान प्राप्त किया था। दोनों बुद्धिमान् थे और दोनोंने जो कुछ लिखा वह ऐतिहासिक तथा समालोचनात्मक दृष्टिसे लिखा। दोनोंमें अल्बेरूनी ही अधिक विश्वसनीय प्रमाणित होगा। मुसलमान होते हुए भी उसकी दृष्टि स्पष्ट और निष्पक्ष दिखाई देती है। (बौद्ध होनेके कारण ह्युएनसांगका मन हिंदुओंके विषयमें थोडा दूषित मालूम पडता है।) हिंदू लोगोंके विषयमें—उनके धर्म, कला, दर्शन या शास्त्र-ज्ञानके विषयमें—अल्बेरूनीने कहीं अनादर प्रकट नहीं किया। दोनोंने भारतमें रहकर पंडितोंसे ज्ञान प्राप्त किया। (ह्यूएनसांग नालंदा मठमें कई सालोंतक रहा था।) अल्बेरूनीने मुलतान और पेशावरमें रहकर वहींके पंडितोंसे

ज्ञानार्जन किया था। हिंदू और मुसलमान यात्रियोंके ज़रिये उसने हिंदुस्तानके भूगोलका ज्ञान हासिल किया और स्वयम् उसकी जाँच की। शुरूमें वह ख़्वारिज़मका रहनेवाला था। उस देशके जीतनेके बाद महमूद दूसरे कैदियोंके साथ अलबेरूनीको भी गजनी ले आया। अलबेरूनी विद्वान् था, विशेषतः गणित और ज्योतिषमें वह बड़ा प्रवीण था। अरबोंको फलित और गणित ज्योतिषका जो ज्ञान ग्रीक लोगोंसे प्राप्त हुआ उसका अलबेरूनीने पूर्ण अध्ययन किया था। भारतवर्षमें आनेपर हिंदू ज्योतिष भी उसने शौकसे सीख लिया। उस समय ज्योतिःशास्त्रमें हिन्दू लोग यूनानियोंसे कहीं बढ़े हुए थे या कमसे कम उनके बराबर तो जरूर ही थे। भारतवर्षकी सामान्य अवस्थाके विवेचनमें हमें स्थान स्थानपर अलबेरूनीके वर्णनका आश्रय लेना होगा, क्योंकि उसने हिंदुओंके शास्त्र, दर्शन, इतिहास इत्यादि अनेक विषयोंका ज्ञान प्राप्त कर उसे लेखबद्ध किया है। परन्तु पहले हम उसके द्वारा किये गये हिंदुस्तानके भूगोलका ही वर्णन यहाँपर देते हैं, क्योंकि उस समयकी राजनीतिक स्थिति जाननेके लिए भूगोलका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि अलबेरूनीने इस विषयकी जानकारी हिंदू भौगोलिक पुस्तकोंसे तथा अनुभवी हिंदू और मुसलमान यात्रियोंसे प्राप्त की। संभवतः राजशेखरका भूगोल ग्रन्थ भी उसने देखा था। हम एक टिप्पणीमें राजशेखरके ग्रन्थका सार दे रहे हैं। परंतु यह ध्यानमें रखना होगा कि अलबेरूनीके फासले 'फरसाख' (फारसी योजन) में दिये जानेके कारण संदेहजनक हैं। (एक फरसाख' लगभग चार अंग्रेजी मीलोंके बराबर माना जाता है।) अलबेरूनीका यह ग्रन्थ सन् १०३० में

समाप्त हुआ। महमूदकी मृत्यु इसके कुछ ही पहिले हो चुकी थी।

अरब ग्रंथकार भारतके दो विभाग—'सिंध' और 'हिंद'—हमेशा किया करते हैं। सिंधको उन्होंने पहले ही जीत कर अपने राज्य और धर्ममें सम्मिलित कर लिया था, अर्थात् वह प्रदेश भारतवर्षसे पृथक् हो गया था। हिंदका मुख्य भाग मध्यदेश, (महाभारतमें भी यह नाम आता है) और उसका मध्य कन्नौज नगर है। इस समय राजनीतिक दृष्टिसे भी कन्नौज भारतका केंद्र था। अल्बेरूनी कहता है "कन्नौज भारतके सर्वश्रेष्ठ राजाकी राजधानी और निवासस्थान है"। हम दूसरे भागमें बतला चुके हैं कि कन्नौजमें इन दिनों प्रतिहार सम्राट् राज्य कर रहे थे। बल्कि हर्षके समयसे ही कन्नौज भारतवर्षकी राजधानी थी, परिणामतः चार सौ वर्षोंके वैभवसे वह नगर हिंदू संस्कृति, विद्वत्ता और कलाका केन्द्र बन गया था। वहाँ चारों ओरसे धनवान्, विद्वान् तथा शूर लोग एकत्र होगये थे। अतः यह स्वाभाविक है कि अल्बेरूनीने कन्नौजको ही मुख्य स्थान मानते हुए भूगोलका वर्णन किया है। (रामायणके भूगोल-वर्णनमें कुरुक्षेत्रको मुख्य माना है।) यहाँ तक कि राजशेखरने 'काव्य-मीमांसा' में स्पष्ट लिखा है कि अन्तर और दिशा कन्नौजसे नापना चाहिये। अल्बेरूनीने कदाचित् इसी वचनके अनुसार भारतका भूगोल लिखा है। गंगा यमुनाका दुआब—'अन्तर्वेदि'—वास्तवमें भारतवर्षका मध्य है, अतः पूर्व कालीन आचार्योंने जो आदेश दिया है कि अन्तर्वेदिको मध्य विन्दु मानते हुए भूगोल लिखना चाहिये वह ठीक ही है। अन्तर्वेदिका भी मध्य विन्दु कन्नौज है, और वहाँ राजशेखर प्रतिहार सम्राटोंके राज-

कविकी हैसियतसे रहता था। ऐसी अवस्थामें कन्नौजको भूगोल-वर्णनका केंद्र मानना उसके लिए उचित ही है। "गंगा-यमुनयोर्विनशनप्रयागयोरन्तरमन्तर्वेदी। तदपेक्षया विशो विभजतेत्याचार्याः। तत्रापि महोदयमधिकृत्येति यायावरीयः। (महोदय कन्नौजका दूसरा नाम है और यायावरीयसे राजशेखरका तात्पर्य है।)

अल्बेरूनी पहले कहता है "यदि आप सिन्ध जाना चाहें तो सिजिस्तान होते हुए जाना होगा, परन्तु हिंदके लिए काबुलके मार्गसे जाना चाहिये। (पाठक यह जान गये होंगे कि अल्बेरूनी अरब लोगोंके लिए कह रहा है) "हिंदुस्तानकी सीमापर अनेक हिंदू या उनसे मिलती जुलती जातियाँ हैं जो बड़ी अशिक्षित हैं और सदा विद्रोह करती रहती हैं।" इससे स्पष्ट मालूम होता है कि सीमाप्रान्तकी अफ्रीदी इत्यादि शूर जातियाँ तबतक मुसलमान नहीं हुई थीं, और आज कलकी तरह उस समय भी उत्पात मचाती थीं। इस मार्गसे कन्नौज पहुँच कर वह लिखता है "कन्नौज गंगाके पश्चिमी किनारेपर बसा है पर इस समय उजड़ा हुआ है। (महमूदने इस नगरको लूटकर ध्वस्त किया था)। आजकल राजधानी गंगाके पूर्वमें एक मंजिल (लगभग २५ मील) 'वारी' में है।" इस वारी नगरका स्थान या वर्तमान नाम अभीतक निश्चित नहीं हुआ है। कन्नौजको केंद्र मानकर पहले दक्षिण पूर्वके नगरोंमें जाजमहु इत्यादि स्थानोंका वर्णन करते हुए अलबेरूनीने प्रयाग के गंगा यमुना-संगमके वृक्षका उल्लेख किया है। इस उल्लेखसे स्पष्ट है कि यह वटवृक्ष उस समय भी था और संगममें जलसमाधि लेकर इस जीवनसे मुक्ति चाहनेवालोंके लिए एक प्रसिद्ध आश्रय स्थान हो गया था। (आजकल इलाहाबादके

किलेमें इस वृक्षका तना यात्रियोंको दिखाया जाता है।) प्रयागसे दक्षिणकी ओर समुद्रके किनारे तकके मुख्य नगरोंका विवरण अल्बेरूनीने दिया है और लिखा है कि 'अन्तमें दारूर देशके 'जोर' राजाका राज्य है।' मतलब यह कि द्राविड़ देशके चोल राजाओंका यह साम्राज्य था। उस साम्राज्यके अधिकारमें कांजी (कांची), मलय, और कुंक (कोंकण) थे। सारांश यह कि वर्तमान मद्रास प्रान्तका अधिकांश भाग चोल साम्राज्यके अन्तर्गत था और कई छोटे राज्य उसका आधिपत्य स्वीकार करते थे।

इसके बाद बारीके पूर्व दिशाके प्रदेशका वर्णन करते हुए वह अयोध्या, बनारस, पाटलिपुत्र, और मुंगेरका उल्लेख करता है। मुंगेरका दूसरा नाम मुद्गगिरि है। यहाँ उस समय बंगालके पाल राजाओंकी राजधानी थी। इन नगरोंके पश्चात् चंपा डुगमपुरका और अन्तमें उसने गंगासागरका वर्णन किया है जहाँ गंगा और समुद्रका संगम होता है।

"फिर बारीसे उत्तर-पूर्व जानेपर भूतान और तिब्बत मिलते हैं। यहाँके लोग काले और तुर्कोंके समान चिपटी-नाक वाले हैं। भूतानसे भी पूर्व दिशामें कामरूप और विरुद्ध दिशामें नैपाल है। नैपालके उसपार भूतेश्वर नामका सबसे ऊँचा पर्वत है।"

"कन्नौजसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर जाते हुए पहले जजहुति मिलता है। इसकी राजधानी खजुराहो है। कालंजर और ग्वालियर यह दो दुर्भेद्य किले इसी राज्यमें हैं।" इसमें बुन्देलखंडके उस भागका यथार्थ वर्णन दिया है जो चंदेल राजाओंके अधिकारमें था। "इसके दक्षिण डाहालका राज्य है जिसकी राजधानी तेऊर (त्रिपुर) है। आजकल उस

देशका राजा गांगेय है।" यह भी इस समयके हहयोंके चेदि राज्यका यथार्थ वर्णन है और इस वर्णनसे सिद्ध होता है कि चेदिका प्रसिद्ध राजा गांगेय देव इस समय जीवित एवम् राज्यारूढ था। अल्बेरूनीके ग्रन्थमें इस समयके दो ही हिंदू राजाओंके नाम आये हैं, अर्थात् गांगेय और (धारका पर-मार राजा) भोज।

"फिर कन्नौजसे दक्षिण जाते हुए मार्गमें अस्नी, महन्य, जेन्द्र, राजोरी और गुजरातकी राजधानी बजान मिलती है।' इन नगरोंको अब पहचानना या ढूँढ निकालना अशक्य है, तथापि तत्कालीन शिलालेखोंसे इतना ज्ञात होता है कि जय पुरके इर्दगिर्दके प्रदेशको गुजरात कहते थे। इससे वर्तमान गुज रात न समझना चाहिये। आजकल यह प्रदेश मारवाडके अन्तर्गत है। हमारे मतानुसार बजान ही भिनमाल है। ह्युएनसांगने कुचलो अथवा गुजरातकी यही राजधानी बत लायी है। अल्बेरूनी यहाँ कहता है "बजान नगर उजड़ गया है इसलिए वहाँके नागरिक जडौरा नगरमें जा बसे हैं। मुस लमान बजानको नरैना कहते हैं।' इसका कारण यही हो सकता है कि भिनमालमें सूर्यका (नारायणका) एक प्रसिद्ध मंदिर था। (भाग १ अध्याय २) भिनमालका ही दूसरा नाम श्रीमाल है। आजकल भी श्रीमाली ब्राह्मण और वैश्य प्रसिद्ध

मथुरासे सीधे दक्षिणकी तरफ उज्जैनको जाते हुए अल्बे-रूनीने मार्गके दो चार नगरोंका उल्लेख किया है। उनका स्थान अद्यापि निश्चित नहीं हो सका है। भैलस्वामि अथवा भेलसाका नाम परिचित है, परंतु इस वर्णनसे एक नयी बात मालूम होती है कि भैलस्वामि नामक देवताके उपलक्ष्यमें इस नगरको यह नाम प्राप्त हुआ। उस समयके शिला-लेखोंमें भेलस्वामीका नाम तो अवश्य आया है, परन्तु नगरका यह नाम क्यों पड़ा, यह बात आपको अल्बेरूनीके ग्रंथमें मिलेगी। स्वामीकी उपाधिसे अनुमान होता है कि यह विष्णु-मंदिर था। पाठक जानते ही होंगे कि भेलसाके निकट एक प्रसिद्ध विष्णु मंदिर है जिसके सम्मुख गरुड़-स्तंभपर एक ग्रीक राजदूतका सन् १०० के आस पासका लेख मिला है, परन्तु ध्यानमें रखना होगा कि संस्कृत साहित्यमें भेलसाको विदिशा कहा है।

"अब यजानके दक्षिण मेवाड़का राज्य है। उसकी राजधानी जिनौर (चित्तोड़) है। मेवाड़के दक्षिणमें मालवाकी राजधानी धार है। मालवासे पूर्व सात 'फरसाख' पर उज्जयिनी और उज्जयिनीसे पूर्व १० 'फरसाख' पर भेलसा है।" मालवाका तथा उसके मुख्य नगरोंका यह यथार्थ वर्णन है।

धारके दक्षिणके भी कुछ नगर बतलाये गये हैं जिनमें गोदावरी तटका बंगर और नर्मदाके किनारेका नेमार उल्लेखनीय हैं। "नेमारके दक्षिणमें" 'मरहठ देश' मिलता है और उसके बाद कोंकण है। कोंकणकी राजधानी 'ठाना' समुद्र किनारेपर है।" इससे स्पष्ट है कि परदेशी लोग भी 'मरहठ' नामसे परिचित थे। कोंकणमें शिलाहारोंका राज्य इस समय प्रसिद्ध था और हम आगे चलकर देखेंगे कि उसकी कीर्ति काश्मीरतक फैली थी।

"बजानके दक्षिण-पश्चिम अनहिलवाड़ है और समुद्र-किनारेपर सोमनाथ है। अनहिलवाडके दक्षिण लाड देश है। उसकी राजधानी भड़ोच तथा समुद्र-किनारेपर रिहंजूर नगर है।" (उस समय इस प्रान्तका नाम गुजरात न था। उस समय संस्कृतमें भी इस प्रान्तका नाम लाट था।)

"बजानके पश्चिम मुलतान और भाटी तथा दक्षिण पश्चिम दिशामें अरोर, बाहमनवा, और मनसूर है। आगे सिन्धु नदीके मुखके निकट लहरानी है।" ये नगर सिन्ध प्रान्तमें थे जो उस समय अरबोंके अधिकारमें था।

यहाँसे अल्बेरूनी कन्नौज वापिस आता है। कन्नौजके उत्तर-पश्चिमके पर्वतोंमें शीर्पारह तथा पिंजोर हैं, और सामने मैदानमें थानेश्वर है। पर्वतके बग़लमें जालंधरकी राजधानी डहमाल, आगे बल्लावर, पश्चिम दिशामें लद्दा तथा राजगिरिका दुर्ग है। इसके पश्चात् काश्मीरकी हद्द शुरू होती है।

पश्चिम दिशामें कूती, आनार, मेरठ, पानीपत, ("दोनोंके बीचमें यमुना बहती है") कावठल और सुनाम हैं। फिर उत्तरकी ओर जाते हुए आदितहौर, जाजमीर, लुहावरकी राजधानी (रावी नदीके किनारेपर) मन्दहकुर और चन्द्रभागा (वियास) नदी मिलती है। आगे (सिन्धुके पश्चिमी किनारेपर) कन्धारकी राजधानी वहिंड, पश्शावर, डुनपुर, काबुल और अन्तमें ग़ज़नी है।

इसके पश्चात् अल्बेरूनीने काश्मीरका वर्णन किया है। वह कहता है कि "काश्मीरमें घोड़ों या हाथियोंका अभाव है। श्रीमान् लोग सवारीके लिए पालकी उपयोगमें लाते हैं। वहाँ यहूदी लोगोंके अतिरिक्त और कोई भी प्रवेश करने नहीं पाता। झेलम नदीके किनारेपर बारामूला है। इस नदीका

और गंगाका उद्गमस्थान एक ही है। वहाँ अक्षय हिम जमा रहता है। काश्मीरकी राजधानी झेलम नदीके किनारोंपर वसी हुई है। आगे चलकर नदी एक दलदलमें प्रविष्ट होती है। फिर एक घाटीसे होती हुई वह मैदानमें आती है। इस घाटीके मुखपर हमेशा पहरा रहता है।"

"सिन्धु नदीके उद्गम-स्थान कुलर्जक पर्वततक पहुँचनेके लिए गिलिटसे मार्ग है। उस स्थानमें भट्ट तुर्क रहते हैं। उनके राजाको भट्टशाह कहते हैं।" इस वर्णनसे ज्ञात होता है कि ये तुर्क लोग तबतक हिंदू थे। हिंदी-भाषाकोविद डॉ० सर ग्रियर्सनने दिखलाया है कि गिलिटमें अद्यापि वैदिक संस्कृति अवशिष्ट है, यहाँतक कि वैदिक भाषाके अवशेष भी वहाँ पाये जाते हैं। काश्मीरके दक्षिण लाहूर और राजगिरि हैं। "मेरे देखे हुए दुर्गोंमें ये दोनों सबसे अधिक अभेद्य और मजबूत हैं। यही हिन्दुस्तानकी उत्तरसीमा है। पश्चिम दिशामें अफगान जातियाँ रहती हैं।"

हिंदुस्तानकी दक्षिणी सीमा समुद्र है। सिंधुके छोटे बड़े अनेक मुहाने पार करनेपर समुद्रके किनारेसे जाते हुए पहले कच्छ मिलता है। कच्छके बाद सोमनाथ है। इन दोनों स्थानोंमें समुद्री डाकुओंकी संख्या अत्यधिक है। समुद्र किनारेके नगर इस क्रमसे हैं; तवक्षेश्वर लोहरानी, कच्छ, बरोर, सोमनाथ, कंबाया, असाविल, बहरिज, सिन्दान, सोपारा, ठाना। इनके पश्चात् लारों देश है जिसका मुख्य नगर जिमूर है, जिमूरके बाद वल्लभ, दरवाड, और अंतमें सेरेंदिव है। अन्तमें अल्बेरूनीने पश्चिम और पूर्व समुद्रके संगमपर रामेश्वर और सेतुके अवस्थित होनेकी बात कही है। द्वीपके टापुओंका वर्णन करते हुए उसने लिखा है कि "ये द्वीप बाहर आते हैं

भी हो इस मानके कारण उन घटनाओंके पक्ष या विपक्षमें कोई अनुमान नहीं किया जा सकता।

तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस भौगोलिक वर्णन से उस समयकी राजनीतिक अवस्था भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है। पहले हम देखते हैं कि प्रतिहारोंका बलिष्ठ साम्राज्य विद्यमान था, पूर्वकी ओर मुंगेरमें बगालके पाल वश का राज्य था, कामरूप, तिरहुत, भूतान और नैपालका भी उल्लेख मिलता है। दक्षिणकी ओर केवल चोलोंका ही उल्लेख उसने किया है। इससे चोलोंके साम्राज्यका अस्तित्व निश्चित रूपसे सिद्ध होता है। कालजरके चदेलों और त्रिपुरके चेदियोंका राज्य भी शक्तिशाली था। इसके साथ साथ मेवाडकी राजधानी चित्तोड और मालवाकी राजधानी धारका भी उल्लेख है। नाहरवाला (पाटण), लाट, और कोंकण, इन तीनों राज्योंका भी थोडा बहुत वर्णन मिलता है। कच्छ और सिधका भी उल्लेख मिलता है। हमारे मतानुसार बजान नगरसे साँभर अथवा मारवाडके चौहान राज्यका निर्देश होता है। कन्नौजसे उत्तर दिशामें (उत्तर पश्चिम) पानीपत, मेरठ, थानेश्वर, और कपित्थलका उल्लेख यथाविधि हुआ है। यहाँ दिल्लीका उल्लेख नहीं किया गया। इसका कारण भी स्पष्ट है। उस समय दिल्ली एक क्षुद्र स्थान था। शायद यह नगर अस्तित्वमें भी नहीं आया था। लाहौर

और पुनः जलमें डूब जाते हैं। (कुछ लोग इस आश्चर्यजनक बातपर विश्वास नहीं करते।)

अल्बेरूनी कहता है, "मुलतानमें वर्षा बिलकुल नहीं होती, परंतु पर्वतोंके निकट आषाढ़से शुरू होकर चार मासतक पानी बरसता है, और स्वयम् हिमालयमें श्रावणसे २॥ महीनेतक वर्षा होती है। हिमालयके उसपार वर्षाका अभाव है। काश्मीरमें माघमें और कभी कभी चैत्रमें भी हिम-वर्षा होती है।" अल्बेरूनीने हिंदू महीनोंके नाम दिये हैं क्योंकि उनमें ऋतुओंका समय निश्चित रहता है। मुसलमानी महीनोंमें ऋतुओंका निश्चित स्थान नहीं है। वे (ऋतुएँ) सब मासोंमें घूमती हैं। इसके अतिरिक्त अल्बेरूनीको हिंदू ज्योतिषकी भी पूर्ण जानकारी थी।

दुर्भाग्यसे उसने किसी भी राज्य अथवा राजाके नामका उल्लेख नहीं किया। उस समयकी राजनीतिक घटनाओंका भी उल्लेख उसके वर्णनमें नहीं है। समकालीन घटनाओंसे वह अवश्य परिचित रहा होगा। परन्तु उसके वर्णनमें महमूदके किसी भी आक्रमणका उल्लेख नहीं है। कन्नौजके विषयमें केवल इतना ही लिखा है कि वह उजड़ा हुआ है। इस बातका कहीं उल्लेख नहीं है कि महमूद द्वारा लूटे जानेके कारण कन्नौजकी ऐसी अवस्था हुई। उसी प्रकार कुछ ही समय पहिले हुए महमूदके द्वारा सोमनाथके विलक्षण आक्रमण अथवा मूर्तिभंजनका भी उल्लेख वह नहीं करता। प्रत्यक्ष देखी हुई महत्वपूर्ण घटनाओंको इस प्रकार छोड देना असंभवसा प्रतीत होगा। परंतु यह निश्चित है कि उसने किसी भी राजकीय घटनाका उल्लेख नहीं किया। शायद अल्बेरूनीने जान बूझ कर इस विषयमें मौन धारण किया था। कुछ

भी हो इस मानके कारण उन घटनाओंके पक्ष या विपक्षमें कोई अनुमान नहीं किया जा सकता।

तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि इस भौगोलिक वर्णनसे उस समयकी राजनीतिक अवस्था भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है। पहले हम देखते हैं कि प्रतिहारोंका बलिष्ठ साम्राज्य विद्यमान था, पूर्वकी ओर मुंगेरमें बंगालके पाल वंशका राज्य था, कामरूप, तिरहुत, भूतान और नैपालका भी उल्लेख मिलता है। दक्षिणकी ओर केवल चोलोंका ही उल्लेख उसने किया है। इससे चोलोंके साम्राज्यका अस्तित्व निश्चित रूपसे सिद्ध होता है। कालंजरके चंदेलों और त्रिपुरके चेदियोंका राज्य भी शक्तिशाली था। इसके साथ साथ मेवाड़की राजधानी चित्तौड़ और मालवाकी राजधानी धारका भी उल्लेख है। नाहरवाला (पाटण), लाट, और कोंकण, इन तीनों राज्योंका भी थोड़ा बहुत वर्णन मिलता है। कच्छ और सिंधका भी उल्लेख मिलता है। हमारे मतानुसार बजान नगरसे साँबर अथवा मारवाड़के चौहान राज्यका निर्देश होता है। कन्नौजसे उत्तर-दिशामें (उत्तर-पश्चिम) पानीपत, मेरठ, थानेश्वर, और कपित्थलका उल्लेख यथाविधि हुआ है। यहाँ दिल्लीका उल्लेख नहीं किया गया। इसका कारण भी स्पष्ट है। उस समय दिल्ली एक क्षुद्र स्थान था। शायद यह नगर अस्तित्वमें भी नहीं आया था। लाहौर उस समय एक राज्यकी या एक बड़े प्रान्तकी राजधानी थी। जालंधर और राजौरी स्वतंत्र राज्य दिखाई देते हैं। काश्मीरका राज्य बड़ा प्रभावशाली था। उसका विस्तृत वर्णन अलबेरूनीने दिया है। अन्तमें कंधारकी राजधानी वहिंद, ग़जनी, और काबुलका नाम आता है। एक विशेष बात यह है

कि महाराष्ट्र और कर्नाटकका उल्लेख स्पष्ट रूपसे नहीं आया परंतु हमारे मतानुसार "नर्मदाके दक्षिणमें मराठ देश है" इन शब्दोंमें महाराष्ट्रका उल्लेख है। वल्लभ और दरवाडसे चालुक्योंके धारवाडका निर्देश होता है।

टिप्पणी

राजशेखरका भौगोलिक वर्णन।

राजशेखर (ईसवी सन् ९१० ४०) कनौजके प्रतिहार सम्राट महीपालका गुरु और राजकवि था। उसने अपने 'काव्यमीमांसा' ग्रंथमें हिंदुस्तानका भूगोल विस्तारपूर्वक दिया है। अपना ग्रंथ लिखते समय अल्बेरूनीने इस ग्रंथको या (काव्यमीमांसामें उल्लिखित) राजशेखरके भुवन कोषको देखा होगा। बहुतोंको शायद यह बात आश्चर्यजनक प्रतीत होगी कि अलंकार शास्त्रमें भारतवर्षका भूगोल क्यों दिया गया। परन्तु यह एक साधारण और आवश्यक बात है। भूगोलकी जानकारी इसलिए आवश्यक है कि कवि भौगोलिक भूलें न करें। ऐसी असावधानीसे श्रोताओंके मनपर अनिष्ट प्रभाव पड़ता है। (उदाहरणार्थ यदि काशीके वर्णनमें गोदावरीके जलका वर्णन आ जाय तो यह बात श्रोताके मनको विलक्षण ही मालूम होगी।) रघुवंशके छठें सर्गमें रामके पूर्वज अजको इंदुमतीने स्वयंवरमें वरा था। उस समय कालिदासने इन्दुमतीकी दासीसे कृष्णका

कारण यह है कि वे समालोचनात्मक दृष्टिसे नहीं लिखते थे। वे किसी न किसी रूपमें प्राचीन परम्परागत कथाओंको मिला देते थे। राजशेखर भी इस नियमका अपवाद नहीं है। उसने भी कई बहुत पुराने नाम दिये हैं। नीचे हम काव्य-मीमांसाके १७ वें अध्यायका भूगोल-वर्णन देते हैं।

दक्षिण समुद्रसे हिमालय तकके भरतखंडके विजेताको सम्राट् कहते हैं, और जो कुमारी पुरीसे बिंदुसर तकके प्रदेशपर विजय प्राप्त करता है उसे चक्रवर्ती कहते हैं।

हिंदुस्तानमें मलयादि सात पर्वत (कुल पर्वत) हैं। पूर्व-पश्चिम समुद्रके तथा विन्ध्य-हिमालयके बीचके प्रदेशको आर्यावर्त कहते हैं। (इस लक्षणमें आर्यावर्तकी मर्यादा पूर्व दिशामें बढ़ा कर बंगालको भी सम्मिलित कर लिया है।) इस देशके लोगोंसे आचार सीखना चाहिये।

बनारसके पूर्व पूर्व देश है। उसके अन्तर्गत ये प्रदेश हैः—देश—अङ्ग, कलिङ्ग, कोसल, तोसल, उत्कल, मगध, मुद्गर, नेपाल, विदेह, पुण्ड्र, प्राग्ज्योतिष, तामलिप्तक, मलद, मल्लवर्तक, सुह्म, ब्रह्मोत्तर, इत्यादि। पर्वत—बृहद्गृह, लोहितगिरि, चकोर, दर्दुर, नेपाल, कामरूप, इत्यादि। नदियाँ—शोण, लौहित्य, गङ्गा, करतोया, कपिशा इत्यादि। विशेष उपज—लवली, ग्रन्थि पर्णक, अगरु, द्राक्षा, कस्तूरिका।

माहिष्मतीके दक्षिण दक्षिणापथ है। उसके अन्तर्गत ये प्रदेश हैंः—देश—महाराष्ट्र, माहिषक, अश्मक, विदर्भ, कुन्तल, क्रथकैशिक, सूर्पारक, काँची, केरल, कावेर, मुरल, वानवासक, सिंहल, चोड़, दण्डक, पाण्डक, पल्लव, गाङ्ग, नाशिक्य, कोङ्कण, कोल्लगिरि, वल्लर इत्यादि। पर्वत—विन्ध्यदक्षिण पाद, महेन्द्र, मलय, मेकल, पाल, मञ्जर, सह्य, श्रीपर्वत। नदियाँ—नर्मदा, तापी, पयोष्णी, गोदावरी, कावेरी, भैमरथी, वेणा, कृष्णवेणा, वंजुरा, तुङ्गभद्रा, ताम्रपर्णी, उत्पलावती, रावणगङ्गा इत्यादि। विशेष उपज—मलयागिरिका चन्दन, मोती।

देवसभाके उस ओर पश्चाद्देश है। उसमें ये प्रदेश हैंः—देश—देवसभ, सुराष्ट्र, दशेरक, त्रवण, भृगुकच्छ, कच्छीय, आनर्त, अर्बुद, ब्राह्मणवाह, यवन, इत्यादि। पर्वत—गोवर्धन, गिरिनगर, देवसभ, माल्यशिखर,

कि महाराष्ट्र और कर्नाटकका उल्लेख स्पष्ट रूपसे नहीं आया। परंतु हमारे मतानुसार "नर्मदाके दक्षिणमें मराठ देश है" इन शब्दोंमें महाराष्ट्रका उल्लेख है। वल्लर और दरवाडसे चालुक्योंके धारवाडका निर्देश होता है।

टिप्पणी

राजशेखरका भौगोलिक वर्णन।

राजशेखर (ईसवी सन् ९१०-४०) कनौजके प्रतिहार सम्राट महीपालका गुरु और राजकवि था। उसने अपने 'काव्यमीमांसा' ग्रंथमें हिंदुस्तानका भूगोल विस्तारपूर्वक दिया है। अपना ग्रंथ लिखते समय अल्बेरूनीने इस ग्रंथको या (काव्यमीमांसामें उल्लिखित) राजशेखरके भुवन कोषको देखा होगा। बहुतोंको शायद यह बात आश्चर्यजनक प्रतीत होगी कि अलंकार शास्त्रमें भारतवर्षका भूगोल क्यों दिया गया। परन्तु यह एक साधारण और आवश्यक बात है। भूगोलकी जानकारी इसलिए आवश्यक है कि कवि भौगोलिक भूलें न करें। ऐसी असावधानीसे श्रोताओंके मनपर अनिष्ट प्रभाव पड़ता है। (उदाहरणार्थ यदि काशीके वर्णनमें गोदावरीके जलका वर्णन आ जाय तो यह बात श्रोताके मनको विलक्षण ही मालूम होगी।) रघुवंशके छठें सर्गमें रामके पूर्वज अजको इंदुमतीने स्वयंवरमें वरा था। उस समय कालिदासने इन्दुमतीकी दासीसे कृष्णका उल्लेख करवाया है, यह ऐतिहासिक भूल है। परंतु सामान्य जन इतनी जानकारी नहीं रखते। पर काशीके पास गोदावरीका होना बतलाया जाय तो उन्हें अवश्य खटकेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि काव्य-मीमांसाका यह भौगोलिक अध्याय बड़ा महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार पहले विभागके लिए वराह मिहिरका और दूसरे विभागके लिये स्कंद पुराणका भारतवर्णन आवश्यक है, उसी प्रकार इस विभाग (सन् १०००-१२००) के लिए राजशेखरका भूगोल महत्वका है। तथापि इतना स्मरण रखना चाहिये कि ये स्वदेशी ग्रन्थकार अल्बेरूनीके समान विश्वसनीय नहीं हैं।

कारण यह है कि वे समालोचनात्मक दृष्टिसे नहीं लिखते थे। वे किसी न कसी रूपमें प्राचीन परम्परागत कथाओंको मिला देते थे। राजशेखर भी इस नियमका अपवाद नहीं है। उसने भी कई बहुत पुराने नाम दिये हैं। नीचे हम काव्य-मीमांसाके १७ वें अध्यायका भूगोल-वर्णन देते हे।

दक्षिण समुद्रसे हिमालय तकके भरतखडके विजेताको सम्राट् कहते हैं, और जो कुमारी पुरीसे बिंदुसर तकके प्रदेशपर विजय प्राप्त करता है उसे चक्रवर्ती कहते हैं।

हिंदुस्तानमें मलयादि सात पर्वत (कुल पर्वत) हैं। पूर्व-पश्चिम समुद्रके तथा विन्ध्य हिमालयके बीचके प्रदेशको आर्यावर्त कहते हैं। (इस लक्षणमें आर्यावर्तकी मर्यादा पूर्व दिशामें बढा कर बगालको भी सम्मिलित कर लिया है।) इस देशके लोगोंसे आचार सीखना चाहिये।

बनारसके पूर्व पूर्व देश है। उसके अन्तर्गत ये प्रदेश हैं.—देश—अङ्ग, कलिङ्ग, कोसल, तोसल, उत्कल, मगध, मुद्गर, नेपाल, विदेह, पुण्ड्र, प्राग्ज्योतिप, तामलिप्तक, मलद, मल्लवर्तक, सुम्ह, बम्होत्तर, इत्यादि। पर्वत—बृहद्गृह, लोहितगिरि, चकोर, ददुर, नेपाल, कामरूप, इत्यादि। नदियाँ—शोण, लौहित्य, गङ्गा, करतोया, कपिशा इत्यादि। विशेष उपज—लवली, ग्रन्थि पर्णक, अगरु, द्राक्षा, कस्तूरिका।

माहिष्मतीके दक्षिण दक्षिणापथ है। उसके अन्तर्गत ये प्रदेश हे —देश—महाराष्ट्र, माहिषक, अश्मक, विदर्भ, कुन्तल, क्रथकैशिक, सूर्पारक, कांची, केरल, कावेर, मुरल, वानवासक, सिंहल, चोड, दण्डक, पाण्डक, पल्लव, गङ्ग, नाशिक्य, कोङ्कण, कोल्लगिरि, वल्लर इत्यादि। पर्वत—विन्ध्यदक्षिण पाद, महेन्द्र, मलय, मेकल, पाल, मञ्जर, सह्य, श्रीपर्वत। नदियाँ—नर्मदा, तापी, पयोष्णी, गोदावरी, कावेरी, भैमरथी, वेणा, कृष्णवेणा, वञ्जुरा, तुङ्गभद्रा, ताम्रपर्णी, उत्पलावती, रावणगङ्गा इत्यादि। विशेष उपज—मलयागिरिका चन्दन, मोती।

देवसभाके उस ओर पश्चाद्देश हे। उसमें ये प्रदेश हैं—देश—देवसभ, सुराष्ट्र, दशेरक, त्रवण, भृगुकच्छ, कच्छीय, आनर्त, अर्बुद, ब्राम्हणवाह, यवन, इत्यादि। पर्वत—गोवर्धन, गिरिनगर, देवसभ, माल्यशिखर,

अर्बुद, इत्यादि। नदियाँ—सरस्वती, श्वभ्रवती, वार्तघ्नी, मही, हिडिंबा, इत्यादि। विशेष उपज—करीर, पीलु, गुग्गुल, खर्जूर, करभ, इत्यादि।

पृथूदकके उत्तर उत्तरापथ है। उसमें ये प्रदेश हैः—देश—शक, केकय, वोक्काण, हूण, वाणायुज, काम्बोज, वाल्हीक, वल्हव, लिम्पाक, कुलूत, कीर, तङ्गण, तुषार, तुरुष्क, बर्बर, हरहूरव, हूहुक, सहुड, हंसमार्ग, रमठ, करकण्ठ, इत्यादि। पर्वत—हिमालय, कालिन्द, इन्द्रकील, चन्द्राचल। नदियाँ—गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, इरावती, वितस्ता, विपाशा, कुहू, देविका, इत्यादि। विशेष उपज—सरल, देवदारु, द्राक्षा, कुंकुम, चमर, अजिन, सौवीर, स्रोतोंजन, सैन्धव, वैडूर्य, तुरङ्ग, इत्यादि।

"इन चारों देशोंके बीचमें मध्यदेश है"। राजशेखरने मध्यदेशका वर्णन न देकर केवल इतना ही लिखा है कि यहांके लोगों, नदियों, तथा उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंका हाल तो सबको विदित ही है। इससे बादके जिज्ञासुओंकी बड़ी हानि हुई है।

"गंगा-यमुनाके प्रदेशमें विनशनके पूर्व और प्रयागके पश्चिममें 'अन्तर्वेदी' है। प्राचीन ग्रंथकारोंका कथन है कि इस देशको केंद्र मानकर दिशा बतलाना चाहिये। मैं (यायावर गोत्रीय) इससे भी आगे बढ़कर कहता हूँ कि दिशा कन्नौजसे बतलाना चाहिये।

भिन्न भिन्न देशके लोगोंका वर्ण (रंग) इस प्रकार हैः—पूर्वकी ओरके लोगोंका श्याम, दक्षिणवालोंका कृष्णवर्ण, पश्चिमवालोंका पाण्डुवर्ण, उत्तरकी ओरके लोगोंका श्वेत और मध्यदेशवालोंका कृष्ण, श्याम और गौरवर्ण है। कवियोंके वर्णनमें श्याम और कृष्णमें तथा पाण्डु और श्वेतमें विशेष भेद नहीं है। (पूर्व तथा दक्षिण देशोंकी राजपूतादि उच्च स्त्रियोंका वर्ण गौर दिखलाना चाहिये।)

उपर्युक्त रूपरंगके बारेमें जो वर्णन दिया है वह महत्वपूर्ण है। इससे मालूम होता है कि पूर्वकी ओर और विशेषतः दक्षिणकी ओर द्राविड़ वंशीय अधिक रहते थे। पश्चिमकी ओर, और विशेषतः उत्तरकी ओर, आर्यवंशीय अधिक थे। दक्षिण और पूर्वके ब्राह्मण राजपूतादि उच्च जातिके

लोग भी गोर बताये थे। यह वर्णन इस समय भी चारों प्रान्तोंके लिए उपयुक्त है।

आश्चर्य है कि उत्तरके लोगोंमें काबुल और काश्मीर जैसे प्रमुख आर्य देशोंका उल्लेख नहीं है। जिन लोगोंका नाम दिया है वे भी अधिकतर तुराणी अथवा तुराणी आर्य मिश्र जातिके हैं। पश्चिमकी ओर यवनोंका उल्लेख है। वे सिंधके अरबी मुसलमान हैं। दसवीं शताब्दीके प्रारंभतक यवनोंने या तुर्कोंने काबुल नहीं जीता था। जिस समय राजशेखरने यह ग्रन्थ लिखा उस समयतक पंजाब काबुलके अधीन नहीं हुआ था। परंतु काश्मीरका तथा त्रिगर्त जालंधरका उल्लेख अवश्य आना चाहिये था। पंजाबकी सब नदियां बतलायी गयी हैं। (काबुल नदीका भी नाम आता है) पंजाबमें नमक और काश्मीरमें केशरकी उत्पत्तिका उल्लेख है।

दूसरा प्रकरण।

बुखाराके सामानी सम्राट्।

गजनीके तुर्की राज्यकी संस्कृति और शक्ति जाननेके लिए उस सामानी सल्तनतका इतिहास जानना आवश्यक है जिसकी छत्रछायामें नीचे गजनीके राज्यका पोषण तथा विकास हुआ। रा० ए० सो० (बंगाल) की जिल्द १५, भाग १ में एक लेखक महोदयने सब आधारोंसे सामग्री एकत्र कर एक लेख लिखा है। उसीके आधारपर हम निम्नलिखित संक्षिप्त इतिहास दे रहे हैं। इस साम्राज्यका संस्थापक असद एक पारसी सरदार था। असद पहले जरतुष्ट्र धर्मीय था परन्तु बादको धर्म परिवर्तन कर मुसलमान हो गया। इसका पुत्र अहमद बड़ा पराक्रमी हुआ। उसने समरकंद बुखारा

ओर इस प्रान्तपर अधिकार जमा लिया। इसका पुत्र नस्र था। नस्रका पुत्र इस्माईल सन् ९०३ ई० में सम्राट हुआ। यह सामानी वंशका पहला प्रसिद्ध राजा था। इसने शास्त्र और साहित्यको उत्तेजना दी और बुखारा नगरकी कीर्ति बढ़ायी। इस सम्राटको अमीरकी संज्ञा प्राप्त थी। बादको छोटे छोटे जागीरदार भी अमीर कहलाने लगे। यही उपाधि सबक्त गीनने धारण की थी और भारतवर्षमें इसे हम्मीरका स्वरूप प्राप्त हुआ। इतिहासकारोंने इस्माइलके बादके हरएक अमीरके साथ खास विशेषण लगाये हैं। इस्माइलको अमीर 'माज़ी' कहते थे। इसका पुत्र अहमद (धर्मयुद्धमें मारे जानेके कारण) अमीर 'शहीद'के नामसे प्रसिद्ध है। अहमदके पुत्र दूसरे नस्रको अमीर 'सईद' (गभीर) का नाम प्राप्त हुआ। इस नस्रके राज्य-कालमें याकूब-इलेस नामक साहसी तथा उपद्रवी कसेरा जातिके वीरने एक वर्वर जमावकी सहायतासे भारतपर आक्रमण किया। उसने पहले हिरात ले लिया (हिजरी ३०१, ई० सन् ९२१)। यहाँपर यह ध्यानमें रखना चाहिये कि उस समयके हिंदुस्तानमें अफगानिस्तानका भी समावेश था। भारतवर्षके इस सिन्धु पश्चिम प्रान्तके दो भाग थे। एक काबुलिस्तान और दूसरा जाबुलिस्तान। उत्तरके काबुल प्रान्तमें लल्लियका स्थापन किया हुआ शाही नामक ब्राह्मण वंश राज्य कर रहा था। दक्षिणकी ओर जाबुल प्रान्तमें (संभवतः) भाटी जातिके क्षत्रिय राजा राज्य कर रहे थे। याकूबने केवल जाबुल पर ही नहीं बल्कि काबुलपर भी अधिकार स्थापित किया। काबुलका जो दुर्ग इस समय मुसलमानोंके हाथमें गया वह पुनः हिंदुओंके हाथमें नहीं आने पाया। वह सदाके लिए मुसलमानी राज्यमें सम्मिलित होगया। शाही राजा

काबुल नगर फिर वापिस ले सके परंतु उन्होंने अपनी राजधानी हटाकर सिन्धुके पश्चिम किनारेपर वाहिंड (उदभांड) में स्थापित की। इस राजधानीके विषयमें हम आगे चलकर लिखेंगे। याकूब-इ-लेसने ग़ज़नी नामके छोटेसे ग्रामके पास किला बनाकर एक भावी वैभवसंपन्न राजधानीकी नींव डाली। उसने आसपासका सब प्रदेश जीत कर राजपूतोंको पूर्वकी ओर भगा दिया। यही भाटी राजपूत सिंधु पार करके पंजाबमें आ बसे। उस समयके इतिहासमें वर्तमान अफ़ग़ानिस्तानका यह भाग "रहभूतोंका देश" कहा जाता था। परन्तु यह भूल स्पष्ट रूपसे फ़ारसी लिपिमें राजपूतोंके स्थानपर 'रहभूत' पढ़नेसे हुई दिखाई देती है। (रेवर्टीकृत 'अफ़ग़ानिस्तान' देखिये) परंतु याकूब-इ-लेसमें रचनात्मक शक्ति नहीं थी। वह न सामानी साम्राज्यका नाश कर सका, न ग़ज़नीमें नया साम्राज्य स्थापित कर सका। धूमकेतुके समान कुछ दिनोंतक ज्योति दिखला कर वह अदृश्य हो गया।

दूसरे नसरके पुत्र नूहको अमीर हमीद भी कहते थे। ('हमीद' का अर्थ 'स्तुत्य' होता है) पहले पहल इसीके समयमें तुर्की गुलाम सेवामें रहकर प्रबल होने लगे। इन गुलामोंको सामानी राजाओंने पहले अपना शरीर-रक्षक बनाकर रक्खा था। दोनों देशोंकी सीमा सरदरिया (Jaxertes) नदी थी। इस नदीके उस पारके तुर्क लोग सेनामें भी प्रवेश करने लगे। तुर्की बच्चे गुलामकी तरह ख़रीदे जाते थे, उनमेंसे कई शूर और साहसी वीर गुलाम सेनामें अच्छे पदोंपर नियुक्त किये जाने लगे। पूर्वीय देशोंके इतिहासमें यह एक साधारण नियमसा दिखाई देता है कि विदेशियोंका सेनामें या रक्षकोंमें प्रविष्ट होना रक्षितोंके लिए या नियोक्ताओंके लिए नाश-

फारक हो जाता है । इसी नियमके अनुसार बुखाराके फारस-साम्राज्यका तुर्कोंने नाश किया, और ग़ज़नीमें अपना राज्य स्थापित किया । इस ग़ज़नीके राज्यका नाश अफ़ग़ानोंने किया । इसी प्रकार मुग़लोंने रक्षक बनकर दिल्लीके अफ़ग़ानोंका भक्षण किया । मुग़लोंको मराठोंने और मराठोंको अंग्रेजोंने हटा दिया । सारांश यह कि जो कोई राष्ट्र अथवा राजवंश परदेशियोंको, चाहे वे कितने ही अल्प क्यों न हों, अपनी सेनामें रखकर उन्हींको आधार-स्तंभ मान लेता है, वह अवश्य नष्ट होता है ।

नूहके समयकी एक घटना बड़ी मनोरंजक है । पाठक उससे देख सकेंगे कि कोई न्यायी परंतु कठोर मंत्री किस प्रकार सरदारोंके क्रोधका लक्ष्य बन जाता है । राजप्रासादके सामने दो देवदारुके वृक्ष थे । वृक्षोंको झुकाकर सरदारोंने नूहके एक अप्रिय मंत्रीके दोनों पैरोंको उनमें बाँध दिया, और फिर वृक्षोंको छोड दिया । वृक्षोंके पुनः ज्योंके त्यों सीधे हो जानेसे मंत्रीके शरीरके दो टुकड़े हो गये । इतिहासकार लिखता है "अथेन्सके समान बुखारामें भी अधिक न्यायप्रियता प्राणघातक साबित हुई ।"

नूहके पश्चात् उसका पुत्र अब्दुल मलिक सम्राट् हुआ । उसे अमीर रशीद (धर्मस्थिर) का नाम प्राप्त हुआ । मलिकके बाद मनसूर (हिजरी ३४६ ई० सन् ६५६) गद्दीपर बैठा । इसके राज्यकालमें बलिष्ट तुर्क सरदार छोटे छोटे स्वतंत्र राज्य स्थापित करने लगे । अब्दुल मलिकका हाजिब (द्वारपाल) अलप्तगीन तुर्क था । उसने भी गजनीमें एक छोटा राज्य स्थापित किया । उसका गुलाम सबक्तगीन भी कुछ दिनोंतक सामानी सम्राटोंका प्रतिहार रह चुका था ।

मनसूरके पश्चात् (दूसरे) नूहने सन् ९८६ ई० से १००१ ई० तक राज्य किया। इसके पूर्व ही अलप्तगीनकी मृत्यु हो चुकी थी, और तुर्की कर्मचारियोंने उसके अयोग्य पुत्रको हटाकर दामाद (सवक्तगीन) को गद्दीपर बिठा दिया था। सवक्तगीन बड़ा शूरवीर तथा न्यायी राजा था। नूहने भी यह व्यवस्था मान ली। जब काशगरके तुर्क राजा इलेक खाँने बुखारापर आक्रमण किया तब नूहने सवक्तगीनसे सहायता माँगी। अपने सम्राट्की सहायताके लिए एक बड़ी भारी सेना तथा भारतवर्षके राजाओंसे प्राप्त किये हुए तीन सौ हाथी लेकर सवक्तगीन स्वयम् पहुँचा। इस युद्धमें सवक्तगीन-का अल्पवयस्क पुत्र महमूद भी उपस्थित था और उसने युद्ध-कलाका पहला पाठ यहीं सीखा। युद्धमें इलेक खाँका पूर्ण पराजय हुआ। सम्राट नूहने संतुष्ट होकर सवक्तगीनको नसीरुद्दौला (दौलतका आधार) और महमूदको सैफुद्दौला (दौलतका खड्ग) की उपाधि प्रदान की।

काशगरके तुर्कोंका पराजय तो हुआ किन्तु इस विजयसे सामानी सम्राटोंका कोई लाभ नहीं हुआ। उनका अन्त निकट आ रहा था। राज्यके अन्दर तुर्की कर्मचारियोंने तथा बाहरसे आक्रमणकारी तुर्कोंने उनका नाश किया। इस नाशका क्रम ध्यान देने योग्य है। नूहकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र मनसूर सम्राट हुआ, परंतु थोड़े ही दिनोंमें अधिकारियोंने उसकी आँखें निकाल कर एक छोटे बच्चे अब्दुल मलिकको सिंहासनपर बिठाया। इलेकखाँने इस मौकेसे लाभ उठा कर पुनः बुखारापर आक्रमण किया और बुखारा नगर लेकर साम्राज्यके सब वारिसोंको कैद कर रक्खा। परंतु राजपुत्र मुंतशिर किसी प्रकार बच कर स्त्रीके वेषमें भाग निकला।

उसने बड़ी वीरताके साथ कई बार राज्य वापिस लेनेका प्रयत्न किया। परन्तु वह दाराशिकोहकी तरह अभागा था। हर स्थानमें अधिकारियोंने यहाँ तक कि महमूदके अधिकारियोंने भी उसका विरोध किया और उसे एक स्थानसे दूसरे स्थानको जान बचानेके लिए भागते फिरना पड़ा। अंतमें भागते भागते वह जंगलमें एक अरबोंके कारवाँका आश्रय लेने गया। रात्रिमें कारवाँके मुखियाने मुंतशिरपर आक्रमण किया और उसे मार डाला। महमूदके दिलमें अपने पूर्वाधिपतिके प्रति बड़ा आदर था, अतः उसने अपराधियोंको पकड़ कर बुरी तरह उनका अन्त किया। इस प्रकार सामानी राज्य तथा वंशकी समाप्ति हुई।

सामानी राज्यकी संस्कृति तथा राज्य-व्यवस्था वारिसके नातेसे स्वभावतः गजनीको प्राप्त हुई। सामानी साम्राज्य बड़ा विस्तृत था। उसके मुख्य प्रान्त खोरासान और मवरुन्नहर थे। इनके अतिरिक्त सीस्तान, कर्मान्, जुर्जान, रे, तबरिस्तान इत्यादि प्रान्तोंका भी साम्राज्यमें समावेश था। 'तारीखे-यामिनी' (अर्थात् 'महमूदका इतिहास') में उतबीने सामानी वंशका राज्यकाल इस्माईलसे १०२ वर्ष और १६ दिन बतलाया है। (उतबीने अपने ग्रन्थमें हर एक राज्यका नाम, पद, तथा निश्चित तिथि सहित राज्यकाल दिया है।) अर्थात् सन् ९०३ ई० में इस साम्राज्यका उदय हुआ और सन् १००५ ई० में अस्त हुआ। महमूदने इसके बहुतसे प्रान्त जीत कर अपने राज्यमें मिला लिये। मुख्यतः उसने ख्वारिजम और खुरासानकी ओर ही विशेष ध्यान दिया क्योंकि वे फ़ारसी संस्कृति और साम्राज्यके केन्द्र थे। यहाँके विद्वानोंने फ़ारसी-को उन्नतिके शिखरपर पहुँचा दिया था। मध्ययुगीन भारतके

अन्तर्वेद और काश्मीरके समान ये प्रान्त भी विद्वानोंके निवास-स्थान थे। गजनीके दरबारमें और बादको दिल्लीके दरबारमें भी इन प्रान्तोंके विद्वान् आते थे और वहाँ उनका यथोचित सम्मान किया जाता था। इसी कारण राज्यव्यवहारकी सामान्य भाषा फारसी थी और धार्मिक कार्योंमें, विशेष महत्वके राजकीय कार्योंमें, या परराष्ट्रीय व्यवहारमें, अरबीका उपयोग किया जाता था। इसमें आश्चर्य नहीं कि महमूदने राज्यव्यवस्था तथा पदों (ओहदों) के नाम बुखारासे लिये थे। भारतकी मध्ययुगीन स्थितिसे इस अवस्थाका बड़ा साम्य है। मध्ययुगीन हिन्दू राज्योंमें महत्वपूर्ण राजकीय लेखोंकी भाषा (अरबीके समान) संस्कृत थी। दरबारमें विद्वान् लोग (फारसीके समान) प्राकृत बोलते थे और सामान्य लोगोंमें संस्कृत-प्राकृत-मिश्रित हिन्दी, मराठी, बंगला इत्यादि भाषाएँ प्रचलित थी। गजनीमें इस समय तीन भाषाओंका व्यवहार था। धर्म-कार्यमें अरबी, श्रेष्ठ लोगोंके दरबारी व्यवहारमें फारसी और सेना तथा गुलामोंमें तुर्कीका प्रचार था। बैहकीके ग्रन्थसे प्रतीत होता है कि महमूद भी जब अपने सेवकोंसे कोई निजी बातचीत करता था तो प्रायः तुर्कीमें करता था।

ग़ज़नीके राज्यकी स्थापना।

ग़ज़नीका जो राज्य आगे चलकर महमूदके समयमें इतना शक्तिशाली हो गया कि पश्चिममें खुरासान आदि प्रान्त और पूर्वमें सारा पंजाब उसके अधिकारमें आ गया, उसकी स्थापना अलप्तगीनने की थी, यह हम पहले ही बतला चुके हैं। महमूद और शिवाजीका इतिहास यहाँतक मिलना-

झुलता है कि उनके पिता और पितामहका भी चरित्र अधिकांशमें एकसा है। जिस प्रकार मालोजीने महाराष्ट्रमें एक छोटीसी जागीर प्राप्त की थी जो बादमें भोंसलोंके राज्यका केंद्र बन गयी, उसी तरह अलप्तगीनने गजनीकी जागीर हासिल की थी, जो कुछ समयके बाद गजनी साम्राज्यकी राजधानी बनी। पहले वह मनसूरके पिता अब्दुल मलिकका हाजिब (द्वार-रक्षक) था और बादमें खुरासानका सूबेदार बन गया। अब्दुल मलिककी मृत्युके पश्चात् अलप्तगीनने मनसूरके राज्याभिषेकका विरोध किया, जिसके फल स्वरूप उसे सामानी साम्राज्य त्यागना पडा। उसने हिन्दुस्तानके प्रांतोंमें प्रवेश कर पहले गजनीमें स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। उसका गुलाम और दामाद सबक्तगीन भी पहले सामानी सम्राट्का द्वाररक्षक था। यद्यपि गजनीकी जागीर अलप्तगीनने अपने पराक्रमसे ही प्राप्त की थी, तो भी वह सामानी सम्राटों को अपना अधिपति मानता था। शहाजीने भी इसी प्रकार पूना और सूपाकी जागीर अपने बाहुबलसे ली थी, किन्तु वे भी अपनेको बीजापुरके मातहत समझते थे। सामानी दरबारमें सबक्तगीनका बडा मान तथा अधिकार था, क्योंकि उसके पास अच्छी बडी सेना तैयार थी। शहाजी भी अपनी चुनी हुई और पराक्रमी सेनाके कारण बीजापुर दरबारके एक बडे मनसबदार थे। सबक्तगीनके समान शहाजीका भी समय अपने राजाके शत्रुओंसे युद्ध करनेमें व्यतीत हुआ। सबक्तगीन एव शहाजीको कई बडी जागीरें प्राप्त हुईं। दोनों अधिकांशमें स्वतंत्र थे किन्तु कहनेके लिए बुखारा या बीजापुरके मांडलिक थे। दोनोंने स्वतंत्र राज्यकी नींव डाल कर आवश्यक सेना और भूमिका संग्रह किया परतु अपनी

स्वतंत्रताकी घोषणा करनेकी इच्छा नहीं की। इस गुरुतर कार्यका भार दोनोंने अपने पुत्रोंपर छोड़ दिया और स्वयम् स्वतंत्रताकी स्थापनाके श्रेयसे वंचित रहे।

सबक्तगीनने अमीरकी उपाधि धारण की थी और साधारणतः यह इसी नामसे प्रसिद्ध था। तुर्कोंका पराजय करनेपर सम्राट् नूहने उसे नासिरुद्दीनका पद प्रदान किया था। महमूदका समकालीन इतिहासकार अलउतबी हमेशा सबक्तगीनको नासिरुद्दीन कहता है। उसकी न्यायप्रियता और संयमके कई उदाहरण प्रसिद्ध हैं। एक तुर्की सैनिकके हाथमें मुर्गियाँ देखकर सबक्तगीनने सिपाहीसे पूछा "ये कहाँसे लाये हो?" सैनिकोंने उत्तर दिया "दूकानसे खरीदी हैं।" दूकानदारसे पूछताछ करनेपर पता चला कि तुर्की सैनिक कभी पैसे नहीं देते। इस घटनासे सबक्तगीन बड़ा क्रोधित हुआ, और सारी सेनाके सन्मुख उस तुर्की सैनिकके कानोंको छेदकर मुर्गियाँ उनमें लटका दीं। मुर्गियोंके फरफरानेसे बिचारा सैनिक अधमरोसा हो गया। इस प्रकारके कठोर दण्डसे उसने जंगली तुर्कोंको अपने काबूमें रक्खा।

यह स्वाभाविक है कि ऐसे न्यायी राजाको, विशेषतः महमूदके पिताको, उत्तम कुलोत्पन्न मानना लोगोंको अच्छा लगता था। ऐसा माना जाता है कि अलपतगीनका गुलाम होते हुए भी सबक्तगीनका जन्म एक तुर्की सरदारके कुलमें हुआ था और यह कुल अंतिम फारस सम्राट् यजद् गिर्दकी एक कन्यासे उत्पन्न हुआ था। इस कथाका भी शहाजीसे साम्य है। शहाजीको लोग सिसोदिया राजपूतोंके वंशका मानते थे। सबक्तगीनकी उच्च वंशोत्पत्तिकी कथा स्वयम् महमूदने वर्णन की थी (तबकात-इ-नासिरी)। महापुरुषोंका किसी प्रसिद्ध

कुलमें ही उत्पन्न होना आवश्यक नहीं है। परंतु साधारण लोगोंका उस समयतक समाधान नहीं होता जबतक ऐसे पुरुषोंका संबन्ध किसी प्रसिद्ध वंशसे न जोड दिया जाय।

हिंदू लोग जिस प्रकार शिवाजीको ईश्वरका अवतार मानते हैं उसी प्रकार मुसलमानोंका महमूदके जन्मके संबंधमें यह विचार है कि उसमें कुछ ईश्वरीय अंश था, क्योंकि धर्म-दृष्टिसे मुसलमान महमूदपर उतना ही प्रेम करते हैं जितना हिंदू शिवाजीपर करते हैं। एक बार सबक्तगीनको शिकार खेलते समय एक हिरनीका बच्चा मिला। उसे अपने घोड़ेपर बिठा कर वह वापिस आने लगा, परंतु उस बच्चेकी माताको पीछे पीछे आते हुए देखकर उसका हृदय दयासे उमड़ आया। उसने बच्चेको तुरन्त मुक्त कर दिया। रातमें स्वप्नमें उसे पैगंबर दिखाई दिये। उन्होंने इस दयामय कृत्यकी बड़ी प्रशंसा की और आशीर्वाद दिया कि तुझे विशाल राज्य प्राप्त होगा। एक और कथा है कि 'महमूदका जन्म जिस दिन हुआ उसी रातमें सबक्तगीनने एक भावी-वैभक-सूचक स्वप्न देखा। उसे अपनी पाकशालासे एक प्रचंड वृक्ष उत्पन्न हुआ दिखाई दिया। वह यह स्वप्न मंत्रीको बतला ही रहा था कि उसे महमूदके जन्मका समाचार मिला। जन्म उसी दिन हुआ जिस दिन पैगंबरका जन्म हुआ था, अतः सबक्तगीनने इस पुत्रका नाम महमूद रक्खा। वीर पुरुषोंके प्रसिद्ध होनेके बाद ऐसी कथाएँ सहज ही उत्पन्न हो जाया करती हैं। एक और कथा है कि महमूदके जन्म दिनसे वहिंडका मुख्य मंदिर गिर गया। पैगम्बरके जन्मके बारेमें एक ऐसी ही कथा कही जाती है कि उस समय ईरानके राजमहलका आतशघर अर्थात् अग्नि-मन्दिर भूचालसे गिर गया। महमूदकी इस

कथासे सूचित किया जाता है:कि यह सदा हिन्दुओंकी मूर्ति-पूजापर आक्रमण करेगा। इन लोक-प्रचलित कथाओंको छोड़कर यदि केवल इतिहासकी दृष्टिसे वर्णन किया जाय तो महमूदका जन्म तबकात-इ-नासिरीके अनुसार हिजरी ३६१ की १० वीं मुहर्रमको अर्थात् सन् ९७१ ई० के अक्तूबरकी दूसरी तारीखको हुआ (इलियट भाग २ पृ० २६१)। परंतु फिरिस्ताने ८ वीं मुहर्रम हिजरी ३५७ लिखा है। (आश्चर्य है कि शिवाजीकी जन्मतिथिके सम्बन्धमें भी दो मत हैं और उनमें तीन सालका अन्तर है।)

सबक्तगीनने सन् ९७७ से सन् ९९७ तक राज्य किया। उसके राज्यका विस्तार दक्षिणमें ज़ाबुलिस्तानतक हुआ था। उसने हिन्दुस्तानकी ओर भी राज्य बढ़ानेका यथाशक्ति प्रयत्न किया। हिंदुओंका और तुर्कोंका युद्ध वास्तवमें इसी समयसे प्रारंभ हुआ। उसका पड़ोसी और समकालीन हिंदू राजा जयपाल था। इस राजाका वर्णन मुसलमानी इतिहासोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे दिया है। इसको कहीं हिंदुस्तानका राजा, कहीं काबुलका राजा, और कहीं कहीं लाहौरका राजा भी लिखा है। यह कौन था? हमने टिप्पणीमें इस बातको निश्चित किया है कि यह कौन और कहाँका था, क्योंकि विन्सेंट स्मिथने भी इसको अनिश्चितसा रक्खा है और इसके विषयमें कई मत प्रचलित हैं।

टिप्पणी

१—हिन्दुस्तानका राजा जयपाल।

मुसलमानी इतिहासकारोंने जिसे "हिंदुस्तानका राजा जयपाल" कहा है वह कौन था? हमारा मत है कि यह स्पष्ट रूपेण काबुलका शाही ब्राह्मण राजा जयपाल था। हम समझते हैं कि ललियके स्थापित किये हुए शाही

राजवंशका चौथा राजा जयपाल ही मुसलमानी इतिहासोंका जयपाल है। परंतु इस स्पष्ट और सीधे अनुमानका सर विन्सेंट स्मिथने अपने प्राचीन भारतके इतिहासमें विरोध किया है। उन्होंने इस पुस्तकके १९१५ वाले तीसरे संस्करणमें लिखा है "इस समय जयपाल नामका राजा पंजाबमें राज्य करता था, और उसकी राजधानी भटिंडामें थी। यह नगर लाहौरसे दक्षिण और पटियालासे पश्चिम है—उसके राज्यमें सिन्धुके ऊपरका दुआबा तथा पंजाबका अधिकांश, पश्चिममें सिन्धके उत्तरीय *पर्वतोंसे लेकर पूर्वमें हकानदीतक था।" यद्यपि इस प्रदेशका वर्णन अधिक*तर ठीक है तो भी इस उद्धरणमें अस्पष्ट रूपसे सूचित किया गया है कि यह राजा और पूर्व वर्णित काबुलके ब्राह्मण राजा जयपाल एक नहीं हैं। इस पृष्ठ (३८) की टिप्पणीमें स्मिथने यह भी लिखा है "यह प्रचलित मतके विरुद्ध सिद्धान्त हम रैवर्टी (Raverty) के मतानुसार दे रहे हैं।" इस सिद्धान्तका अधिक स्पष्टीकरण स्मिथने इंडियन एंटिक्वैरी, जिल्द ३७ (सन् १९०८) में चंदेलोंपर लिखे हुए अपने लेखमें किया है। उसने वाहिंडपर दी हुई टिप्पणीमें 'तबकात-इ-नासिरी' के रैवर्टीको अनुवादका आधार देते हुए कहा कि मिसडफने जो 'Chronology' नामक पुस्तकमें जयपालको वाहिंडका जयपाल माना है वह गलत है। अपने प्राचीन इतिहासके ३८३ पृ० की टिप्पणीमें स्मिथने यह भी लिखा है कि "इलियट ओहिंड और भटिंडाके राजवंशोंके संबंधमें उलझनमें पड़ गया है और इसलिये उसका वर्णन दुर्बोध हो गया है।" परंतु रैवर्टी तथा दूसरे उपलब्ध आधारोंका विचार करते हुए हमारा विचार है कि स्मिथका अनुमान निर्मूल है और पुराने लेखक मिस डफ और इलियटका मत ही अधिक ग्राह्य है।

रैवर्टीकी इस नयी कल्पनाका कारण यही दिखाई देता है कि "नासिरी" में वाहिंडके स्थानपर वातंड पढ़ा गया। इस शब्दका प्रथम प्रयोग 'नासिरी' के निम्नलिखित वाक्यमें है—"जिस दिन महमूदका जन्म हुआ उसी दिन 'पर्शावर' में इडस नदी पर बसे हुए वातंड नगरका एक मंदिर गिर गया।" रैवर्टीने इस मंदिरको सिंधुके पूर्वमें मानकर स्थान

निश्चित करनेका प्रयत्न किया है। इस स्थानपर यह कहना आवश्यक है कि फ़ारसी लेखोंमें तथा कभी कभी अरबी लेखोंमें भी हिंदी नामोंका ठीक उच्चारण करनेमें, अनुस्वार छूट जानेसे, बार बार गलतियाँ होती हैं, विशेषतः ब, प, त, और न अनुस्वार छूट जानेसे एकसे दिखाई देते हैं, तथा 'व' और 'ट' पहचाननेमें भी कठिनाई होती है। ह, च, ज इन अक्षरोंमें कोई भेद नहीं रह जाता। कई अनुमान करनेके बाद रैवर्टीने निश्चित किया कि यह नगर बथिंडा है और आधारके लिए जम्मूके राजाओंका एक इतिहास उपस्थित किया। इस इतिहासका लेखक हिंदू है और उसने लिखा है कि जयपालकी राजधानी तथा निवास-स्थान "बथिंडा" था। इस इतिहास-के स्थान या कालके विषयमें कुछ पता नहीं है, हो सकता है कि इस इतिहास-को लिखते या पढ़ते समय वाहिंदके स्थानपर बामंड पढा गया हो। इसके अतिरिक्त यह जम्मूका इतिहासकार महमूदका समकालीन नहीं दिखाई देता अर्थात् उसने किसी पूर्वकालीन फ़ारसी इतिहासके आधार पर वर्णन लिखा और स्वयम् भूलसे वाहिंदके स्थानपर बथिंडा पढा। केवल जम्मूके इतिहासके कारण रैवर्टीके समान विद्वान् लेखकको भी भ्रम हुआ देखकर हमें आश्चर्य अवश्य होता है, परंतु इससे भी अधिक आश्चर्य तब होता है जब सर विन्सेंट स्मिथ भी रैवर्टीके वर्णनको आधार मानकर मिथ्या अनुमान करते हैं। अब हम उन प्रमाणों तथा आधारोंका विचार करते हैं जो इस अनुमानके विरुद्ध उपस्थित होते हैं।

पहले यह देखना चाहिये कि महमूदका समकालीन लेखक अल्बेरूनी हिन्दुस्तानके भूगोल वर्णनमें कहीं भी जयपालकी इस राजधानीका उल्लेख नहीं करता। हमने विशेष कारणसे प्रारंभमें ही अल्बेरूनीका भूगोल सम्बन्धी अध्याय दिया है। उसको पढ़कर पाठक महमूदके समयकी भारत-की राजनीतिक परिस्थिति जान सकते हैं। उसने स्पष्ट उल्लेख किया है कि कंधारकी राजधानी वाहिंद है। उसकी पुस्तकमें यह भी लिखा है कि वाहिंद सिन्धुके पश्चिम किनारे पर है और उसके बाद क्रमसे पेशावर, काबुल तथा ग़ज़नी के नाम दिये हैं। उसने लिखा है कि "रावीके पूर्व लोहावरकी राजधानी मन्दहकुर है।" इस मन्दहकुरका स्थान अनिश्चित

है, परंतु मन्दहकुर बथिंडा नहीं हो सकता। वह रावीके पूर्वी तटपर भी नहीं है। (मन्दहकुर रावीके पूर्वी तटपर होना चाहिये, कदाचित् अनुवादमें भूलसे यह निर्देश छूट गया।) वाहिंड और लाहौरके बीचमें कोई बड़ा नगर नहीं दिखाई देता। इससे हमारा अनुमान है कि पंजाबपर काबुलके राजा राज्य करते थे। मुसलमानी इतिहासोंकी सहायतासे जो जयपालके राज्यका विस्तार स्मिथने दिया है वह उपयुक्त है। यह राज्य सिन्धु नदीके पश्चिमके पर्वतोंसे घग्गर (हकारा) नदीतक फैला था। परंतु इसे काबुल-वाहिंडके राज्यसे अलग नहीं कर सकते, अर्थात् दोनों राज्य एक ही हैं।

एक और विशेष बात यह है कि अलबेरूनीसे कुछ पहिलेका अरबी इतिहास-लेखक अल इद्रिसी कहता है कि गंगा किनारेपर अत्रसा नामका एक भारी किला कन्नौजकी सीमापर है और कन्नौजकी सीमा काबुल-लोहावरतक फैली है। अलबेरूनीके लेखसे भारतवर्षके भिन्न भिन्न राजनीतिक विभागोंका पता चलता है। उसके अनुसार पंजाबका अलग राज्य नहीं दिखाई देता। अरब यात्री अलमसूदी (ई० स० ९५३) लिखता है कि सिन्धु नदी सिन्ध, कन्नौज, काश्मीर, कंधार और ताफन राज्यमें बहती है। इसमें केवल चार राज्य बतलाये हैं। कन्धार गांधार है और उसकी राजधानी परशावर प्राचीन समयमें पुरुषपुर नामसे प्रसिद्ध थी। अंतमें यह ध्यानमें रखना चाहिये कि 'तबकात-ई-नासिरी'में 'वायहंड' परशावर अर्थात् पेशावर प्रान्तमें दिया है। जिस स्थानका मंदिर गिर गया वह पेशावर प्रान्तमें था, और बथिंडा सतलजके दक्षिण है।

ऐतिहासिक प्रमाण भी इसी अनुमानका समर्थन करते हैं। पहले यह ध्यानमें रहे कि दोनों स्थानोंमें तीनों राजाओंके नाम एक ही क्रमसे एवं एकसे हैं। काबुल वंशमें जयपाल, उसका पुत्र आनन्दपाल और उसका पुत्र त्रिलोचनपाल हुआ और इस कपोल-कल्पित बथिंडा राजवंशमें भी ये राजा क्रमसे बतलाये गये हैं। स्मिथने इ० ए० जिल्द ३७ के लेखमें तीसरे राजाका नाम ब्राह्मणपाल दिया है। ऐसा दिखाई देता है कि फारसी पढ़नेमें यह भूल हुई। प्रारंभका 'त,' 'ब' पढ़ा गया और

आगे 'च' के स्थानपर 'ह' पढ़ा गया, इसलिये त्रिलोचनपालके 'बदले' ब्राह्मणपाल पाठ तैय्यार हुआ। फारसी लिपि जानने वाले समझ सकते हैं कि ऐसी भूलें स्वभावतः ही हुआ करती है। मुसलमान इतिहासोंका यही नाम कई लेखकोंने पहले तिरोजनपाल पढ़ा। हिंदू लोगोंमें ब्राह्मणपाल नाम कहीं प्रचलित नहीं दिखाई देता और कई यूरोपीय पंडितोंको पहले ही संदेह रहा कि यह नाम त्रिलोचनपाल होगा। (इसका निश्चित रूप पहले पहल राजतरंगिणीसे ज्ञात हुआ) तीनों नाम एकसे तथा एक ही क्रमसे है, अतः दोनों राज्योंको निश्चित रूपसे एक मानना पड़ेगा।

एक और विशेष बात है। मुसलमानों द्वारा लिखे हुए इतिहासों-में अधिकांश यही दिखाई देता है कि "हिंदुस्तानके राजा" ब्राह्मण थे। और अल्बेरूनीके वर्णनसे निश्चित रूपसे मालूम हो जाता है कि काबुलके शाही राजा ब्राह्मण थे। इस समय केवल काबुलमें ब्राह्मण राजा राज्य कर रहे थे, दूसरे प्रान्तोंमें राजपूतोंका राज्य था। इस दृष्टिसे भी यह सिद्ध होता है कि दोनों राज्य एक थे। कल्हणने राजतरंगिणीमें वाहिंडके (उदभांड) शाह' राजाओंके वैभव तथा बलकी बड़ी प्रशंसा की है। यदि उनका राज्य केवल काबुल-पेशावरके छोटेसे क्षेत्रमें मर्यादित माना जाय तो तरंगिणीकारका वर्णन असंबद्ध मालूम होगा। जिस राज्यके विनाशपर कल्हणने इतना हार्दिक शोक और दुःख प्रकट किया है वह अवश्य महत्वपूर्ण और विस्तृत रहा होगा। अंतमें यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि मुसलमान इतिहासकारोंके अनुसार पेशावरके निकट जयपाल युद्धमें हार गया और महमूदने तुरन्त वाहिंडपर आक्रमण करके अपना अधिकार जमा लिया। इस वर्णनसे वाहिंडका स्थान पेशावरके पास और सिन्धुके पश्चिमी किनारेपर निश्चित होता है। यह बथिंडा किसी अव-स्थामें नहीं हो सकता, क्योंकि बथिंडा पहुँचनेके लिये महमूदको पंजाब-की पाँचों नदियाँ पारकरके सतलजके दक्षिण जाना पड़ता। सारांश यह है कि हिंदुस्तानके राजा जयपालकी राजधानी वाहिंड ही निश्चित होती है।

मुसलमान ग्रंथोंमें जयपालको हिंदुस्तानका या काबुलका या कहीं कहीं लाहौरका राजा लिखा है। इस नामभेदका कारण बड़ा मनोरंजक

मालूम होगा।* १० वीं शताब्दीतक हेलमंड नदीके पूर्वका प्रदेश हिंदुस्तान माना जाता था। याकूब-इलेमके ग़ज़नी लेनेके समयतक उसकी गणना भारतवर्षमें हुआ करती थी। कन्दहार भी भारतवर्षमें था। उसे राजपूतोंका देश कहते थे। मुसलमानोंके अधिकारमें जानेपर ग़ज़नी भारतवर्षसे अलग हुआ। तथापि उसकी उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम सीमा भी भारतवर्षसे वेष्टित थी। सुबक्तगीनने धीरे धीरे नया प्रदेश जीतकर अपने राज्यमें जोड़ना शुरू किया। ग़ज़नीके पूर्व और उत्तरकी ओर जयपालका राज्य था। इस प्रदेशको हिंदुस्तान कहते थे और निवासी नबतक हिंदू ही थे। ललियका ब्राह्मण राजवंश काबुलमें राज्य कर रहा था। जब काबुलका क़िला मुसलमानोंके हाथमें गया तब शाही राजाओंने अपनी राजधानी वाहिंदमें रक्खी। काबुल नगरपर शाही राजाओंका ही अधिकार था। निकटवर्ती प्रदेश भी उनका था। इस बातका रहस्य मालूम नहीं होता कि किला मुसलमानोंके हाथमें कैसे रहने पाया। इसके संबंधमें संदेह नहीं हो सकता, कारण मुसलमान इतिहासकार स्पष्टरूपसे काबुलके क़िलेका उल्लेख करते हैं। कदाचित् यह हो सकता है कि शाही राजाओंने कुछ समयतक मुसलमानोंका आधिपत्य मान लिया था। हम पहले भागमें देख चुके हैं कि एक काबुलका शाही राज्य ग़ज़नीकी मुसलमानी सत्ताको तुर्कोंके विरुद्ध सहायता देनेके लिए तैय्यार था। जो हो, शाही राजाओंने अपनी राजधानी वाहिंदमें ही रखनेमें सुविधा समझी।

परन्तु काबुल नगरपर उनकी बड़ी श्रद्धा थी। मुसलमान इतिहासकार लिखते हैं कि काबुलके हर एक शाही राजाका राज्याभिषेक काबुलमें ही होता है। "यदि काबुलमें अभिषेक न हो तो लोग उस राजाको नहीं मानते।" (भाग पहला) इस वाक्यसे अनुमान किया जा सकता है कि यद्यपि ये ब्राह्मण राजा वाहिंदमें निवास करते थे तथापि राज्याभिषेकके

---

* अल्बरूनीका अनुवाद सेचाउने किया है। उसमें निम्नलिखित वाक्य है "हिंदू लोग खोरासानके पर्वतोंसे तिब्बततक फैले हुए हैं।"

लिए उन्हें काबुल जाना पड़ता था। इस रिवाज़का अच्छा उदाहरण अर्वाचीन कालके पेशवाओंके इतिहासमें दिखाई देगा। यद्यपि महाराष्ट्रके पेशवा पूनामें रहते थे तथापि अपने अधिकारके वस्त्र पानेके लिए उन्हें सातारा के केवल नामधारी राजाओंके पास जाना पड़ता था। काबुलके ब्राह्मण राजा भी पहले क्षत्रिय राजाओंके सेनापति थे। (उन्हें 'स्फलपति' कहते थे), अर्थात् लोगोंकी दृष्टिसे शाही राजाओंका काबुलमें राज्याभिषेक होना आवश्यक था।

ऐसा दिखाई देता है कि पंजाबमें काबुलके शाही राजाओंकी सत्ता दसवीं शताब्दीके पूर्व स्थापित नहीं हुई थी। हम पहले भागमें देख चुके हैं कि काश्मीरके राजाने नवीं शताब्दीमें ललियको हराकर कुछ दिनोंतक काबुलपर अधिकार कर लिया था। उस समय पंजाबमें काश्मीरका, कन्नौजके प्रतिहारोंका एवं किसी टांक राजाका राज्य था। संभवतः मुलतानके आसपास थोड़ेसे प्रदेशपर मुसलमानोंका राज्य था। शाही राजाओंका राज्य लाहौरमें था। कन्नौजकी सीमा भी उसके निकट थी। शायद पंजाबके उस भागकी राजधानी लाहौर थी जो उनके हाथमें थी। इस नगरकी स्थापनाका इतिहास संदिग्ध है। लोकप्रचलित कथाके अनुसार लवने इसको स्थापित किया*। इतिहासकी दृष्टिसे देखा जाय तो ह्यूएनत्संगने इस नगरका उल्लेख नहीं किया है अतः इसकी स्थापना उसके पश्चात् हुई या यह नगर बादको प्रसिद्ध हुआ। शायद इन शाही राजाओंके समयमें ही यह प्रसिद्ध हुआ। इसलिए ये 'लाहौरके राजा' भी कहे जाते थे। प्राचीन मुसलमानोंके लेखोंमें लाहौरका रूप 'लोहावुर' और 'लोहुर' मिलता है। यह स्पष्ट रूपसे लोहपुरका अपभ्रंश है।

आर्किआलॉजिकल सुपरिंटेंडेंट राय बहादुर दयाराम साहनीने ई० सन् १९१७ की रिपोर्टमें लिखा है कि शाही राजाओंके तीन शिलालेख मिले हैं। साहनी भी इन राजाओंको काबुल-गंधारके राजा कहते हैं। ये शिलालेख लाहौरके 'म्यूजियम' में रक्खे हुए हैं। पहला लेख भीमका है

* लाहौर गजेटियर।

और उसमें यह वर्णन मिलता है—"राजाधिराज गदाधारी भीमदेव कलक (म) लवर्मन्‌का पुत्र"। दूसरे दो छोटे लेख जयपालके हैं। लेखोंमें जयपालको "भीमदेव पुत्र जयपाल" बतलाया है। 'कमलवर्मन्' नामसे साहनी महोदयने अनुमान किया है कि "यह क्षत्रिय राजा था। अल्बेरूनी अथवा अल्बेरूनीके आधारपर लिखनेवाले इतिहासकारोंका कथन गलत है कि ये राजा ब्राह्मण थे।" परन्तु हमारा मत है कि अल्बेरूनीके समान बुद्धिमान् और जानकार समकालीन लेखकका कथन इस प्रकार भ्रमपूर्ण बतलाना ठीक नहीं है। यदि ये राजा क्षत्रिय थे तो क्या कारण था कि अल्बेरूनीने उन्हें ब्राह्मण बतलाया। हिंदू नामोंके वर्मा, दास, गुप्त इत्यादि पद निश्चित रूपसे जातिदर्शक नहीं माने जा सकते। क्योंकि यद्यपि इनका नाम मन्यादि स्मृतियोंके अनुसार है तथापि प्राचीन कालसे अनुलोम रीत्या प्रत्येक जातिका पुरुष उन्हें धारण करता था।* ब्राह्मण भी इसी प्रकार दूसरे वर्णोंके पद धारण करते थे। यह भी मानना होगा कि शाही राजा अधिकांश क्षत्रियोंका कर्म कर रहे थे, इसलिए कमलूका कमल वर्मन् होना स्वाभाविक है। सारांश यह है कि इन राजाओंको ब्राह्मण माननेमें इतिहासकी दृष्टिसे कोई भी बाधा नहीं है। उनका क्षत्रियोंसे विवाह संबंध उस समयकी रीतिके अनुसार होता था।

२–मोहाल ब्राह्मण

मोहाल सारस्वत ब्राह्मणोंकी एक शाखा है। इनका निवासस्थान

---

* ऋग्वेदका ऐतरेय ब्राह्मण कहनेवाला महीदास ऐतरेय ब्राह्मण था। इतरायाः पुत्र ऐतरेयः, इस व्युत्पत्तिके आधारपर एक आख्यायिका रची गयी है कि वह शूद्रापुत्र था। परन्तु शूद्रापुत्र होते हुए भी उस समयकी वर्णव्यवस्थाके अनुसार वह पूर्णरूपेण ब्राह्मण था। ऋग्वेदके सुदासको भी कुछ लोग इस प्रकार शूद्र मानते हैं। परन्तु सुदासका नाम चंद्रवंश और सूर्यवंश दोनोंमें आता है। पंचतंत्रका लेखक विष्णुगुप्त ब्राह्मण था। चन्दनदास वैश्य, नारायणदास ब्राह्मण इत्यादि अनेक उदाहरण उपस्थित हैं।

पञ्जाब, सीमाप्रान्त और अफगानिस्तान भी है। मोह्याल ब्राह्मण मानते हैं कि जयपाल और आनन्दपाल मोह्याल ब्राह्मण थे। उनका यह विचार ठीक दिखाई देता है। मुसलमानोंकी, सिक्खोंकी या अंग्रेजोंकी सेनामें इन्होंने अपनी वीरताका परिचय दिया है। ये दान लेना निषिद्ध मानते हैं। उनकी धारणा है कि मोह्याल ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति महाभारतके अश्वत्थामा कृपाचार्य इत्यादि ब्राह्मणोंसे हुई। जो हो, काबुलके ब्राह्मण राजाओंके समयसे यह जाति क्षत्रिय धर्म करने लगी और तभीसे यह प्रसिद्ध हुई।

इनके सात कुल हैं, और ये कुलके बाहर परन्तु जातिमें ही विवाह करते हैं। इन कुलोंके नाम दत्त, वैद्य, बाली, छिब्बर, मोहन, वमयाल और लव हैं। जयपाल आदि राजा दत्तकुलोत्पन्न एवं भारद्वाज गोत्रीय माने जाते हैं। प्रसिद्ध पंजाबी नेता पं० रामभजदत्त चौधरी मोह्याल ब्राह्मण थे। अफगानिस्तानके स्वर्गीय अमीरके दीवान निरजनदास मोह्याल ब्राह्मण हैं और अद्यापि काबुलमें जीवित हैं। इन उदाहरणोंसे पाठकोंको इस जातिकी योग्यता एवं प्रसिद्धिका थोड़ा ज्ञान हो जायगा। जिन मोह्याल वीरोंने मुसलमान और सिक्ख राज्योंमें कीर्ति पायी उनका नाम देना अनावश्यक है।

तीसरा प्रकरण।

सबक्तगीन और जयपाल।

हिंदू मुसलमानोंके संग्रामका, विशेषतः महमूदके भारतीय आक्रमणोंका, इतिहास उसके समकालीन अलउत्बीसे लेकर दक्षिणमें हुए १६ वीं शताब्दीके फ़िरिश्तातक सब मुसलमान इतिहासकारोंने, तथा प्रतिभाशाली गिबनसे लेकर आजकलके इलियट, एल्फिन्स्टन, लेनपूल तथा स्मिथतक अनेक पाश्चात्य ग्रंथकारोंने लिखा है। प्रसिद्ध फ्रेंच और जर्मन इतिहासकारोंने

भी इस संग्रामका वर्णन किया है। डाक्टर विन्सेंट स्मिथने भारतीय शिलालेखों और सिक्कोंकी सहायतासे इस कालपर नया प्रकाश डाला है। तथापि भारतीय दृष्टिसे तथा आजकलकी नयी उपलब्ध सामग्रीके आधारपर इस इतिहासका पुनर्विवेचन आवश्यक है। ऐतिहासिक शक्याशक्यताके ढाँचेमें डाल कर ऐतिहासिक टीकारूपी अग्निमें इस इतिहासको शुद्ध कर लेना चाहिये। कोई नयी बात मालूम होना संभव नहीं है, परन्तु पुरानी विचित्र कल्पना तथा कथायें निकाल देना शक्य है। हम अगले अध्यायमें यही करनेवाले हैं, और इस इतिहास-पर भारतके वर्तमान आविष्कारोंका प्रकाश डाल कर उसकी ओर हिंदू दृष्टिसे देखते हुए अपने विचार पाठकोंके सम्मुख रखना चाहते हैं। यह कहना अनावश्यक है कि बादके दूसरे लेखकोंको अपेक्षा समकालीन इतिहासकार उत्वी अधिक विश्वस्त है; परंतु उत्वीके कथन भी उचित परीक्षाके पश्चात् ग्रहण करने चाहिये।

ग़ज़नीके छोटेसे राज्यमें स्थिर हो जानेपर सबक्तगीन चारों ओर उसका विस्तार करनेके प्रयत्नमें लगा। ग़ज़नीका छोटासा मांडलिक राज्य हिंदू समुद्रके जलपर एक छोटे तैल-बिंदुके समान था। परंतु यह तेल चारों ओर फैल गया। उसके पुत्र महमूदके समयमें अफग़ानिस्तान, पंजाब, खुरासान इत्यादि प्रांतोंमें भी इस तेलका प्रसार हुआ। सबक्तगीनने पहले कंदहार और राजपूत राज्यकी राजधानी बस्त जीत ली। तत्पश्चात् उस अलूएख़ज् प्रान्तपर अधिकार जमाया जिसे ग्रीक 'अराचोसिया' तथा पार्थियन लोग श्वेत भारत कहते थे (मध्य युगीन भारत-भाग १); उसकी राजधानी कस-दारको जीतकर ग़ज़ाको मांडलिक बना लिया और उसकी

मुद्रापर अपना (सबक्तगीनका) नाम खुदवाया (उत्वी पृष्ठ ३३)। इस प्रकार अपना पश्चात् भाग दुर्भेद्य बनानेके बाद पूर्व और उत्तरपर विजय प्राप्त करनेकी उसकी इच्छा हुई। अर्थात् तबसे वहिंड और काबुलके राजा जयपालसे उसका झगड़ा प्रारंभ हुआ।

इस बातका पता लगाना अनावश्यक है कि प्रथम किसने युद्ध छेड़ा या प्रथम किसने भूल की। कारण पूर्वकालमें और इस बीसवीं शताब्दीमें भी राजाओं तथा राष्ट्रोंका और पशुओंका क़ानून एक ही है—जो बलिष्ठ हो वह निर्बलको लूटे या मार डाले। उत्वीने केवल यही लिखा है कि कसदार जीतनेके पश्चात् सबक्तगीनने परधर्मीय लोगोंकी ओर ध्यान दिया। वह कहता है कि "देशपर विजय प्राप्त करनेके साथ साथ सच्चे ईश्वर-भक्तोंकी धर्मश्रद्धा भी बढ़ गयी। उसने परमेश्वरको सन्तुष्ट करनेके शुद्ध हेतुसे और सच्ची हार्दिक धर्मभावनासे इस युद्धके कष्ट सहे, और उस दूरदेशके कई क़िले और दुर्ग अपने अधिकारमें कर लिये।" "इन किलों और प्रांतको जीतकर उसने राज्यकी सीमा बढ़ा दी, परन्तु हिंदुस्तानके राजा जयपालने जब ये घटनाएँ देखीं और यह अनुभव किया कि मेरी राज्यसीमा लगातार पीछे हट रही है, तथा राज्यपर प्रतिदिन नये संकट आ रहे हैं, तब वह दुःख और चिंतासे ग्रस्त हुआ।" (उत्वी पृष्ठ ८४)। इस संकटके निवारणके लिए उसने अपनी सब सेना एकत्र करना प्रारंभ किया। कई मित्रोंकी सेना साथ लेकर वह सबक्तगीनके राज्यमें घुस गया। उसके विरोधार्थ सबक्तगीन भी ग़ज़नीसे आगे बढ़ आया। कई दिनोंतक इन दोनों सेनाओंका भयंकर युद्ध होता रहा। उत्वी वर्णन करता है कि "महमूदने अपने पिताको एक नयी चाल

सुझायी कि शत्रुकी छावनीके निकट एक धारामें उत्तम पानी है। उसमें यह गुण है कि यदि उसमें कोई अशुद्ध वस्तु डाल दी जाय तो एक दम आँधी आ जाती हैं और कड़ा जाडा पड़ने लगता है।" यह सुनकर नासिरुद्दीन (सबक्तगीन) ने कई घडे शराब उस जलप्रवाहमें डलवा दिये। परिणामतः उसी समय आकाशमें धूम्र वर्णका कोहरा दिखाई देने लगा। शीतकी मात्रा अत्यधिक हो गयी। जयपालकी सेनाको बड़ा कष्ट होने लगा। यह देखकर जयपालने सन्धिकी बातचीत शुरू की और यह भय भी दिखलाया कि सन्धि न हुई तो सब राजपूत लडकर समरमें देह त्याग करेंगे। तब सबक्तगीनने इस शर्तपर सन्धि की कि कुछ धन, हाथी तथा जयपालके कुछ किले मुसलमानोंको दिये जायँ। सन्धि हो जानेपर जयपाल वापिस गया लेकिन अपने राज्यमें पहुँचते ही उसने किले देना अस्वीकार किया, और उन लोगोंको कैद कर रक्खा जो किलोंपर अधिकार करनेके लिए साथ आये थे। यह समाचार पाकर सबक्तगीन जो गज़नी जा रहा था वापिस लौट आया और जयपालका देश लूटते हुए, लोगोंको मारते हुए, तथा स्त्रियों और बच्चोंको दास बनाते हुए आगे बढ़ने लगा (उत्बी पृष्ठ ३६)। "उसने लमघानका प्रदेश उजाड़ कर अपने अधिकारमें कर लिया और वहाँके मंदिर गिरा कर उनके स्थानमें मसजिदें बनवायीं।"

'इस प्रकार जयपालने जब अपने राज्यका नाश देखा और विश्वासघात करके संधिका बंधन तोड़नेका फल भी भोग लिया, तब वह पूर्णरूपसे निराश हुआ। अंतमें उसने पत्र भेजकर हिन्दुस्तानके भिन्न भिन्न राजाओंकी सहायता माँगी। अगणित सेना जमा हुई और उसने ग़जनीपर आक्रमण किया।

यह देख कर कि अपनी सेना शत्रुकी सेनासे छोटी है, 'अमीरने 'अपने सवारोंके कई विभाग बनाये और उनसे लगातार एकके बाद एक शत्रुपर आक्रमण करवाये। इस प्रकार लगातार आक्रमणोंसे घबडा कर शत्रु पीछे हट गये। अंतमें सब विभागोंने एक साथ आक्रमण किया और बहुतसे सिपाहियोंको क़ैद किया। शेष सेना शस्त्र त्याग कर भाग गयी।" इस स्थानपर उत्बीने कुरानके वाक्य उद्धृत किये हैं। "ईश्वरका न्याय उन-लोगोंके विरुद्ध रहता है जो उसके मार्गसे च्युत होकर दूसरे पथपर जाते हैं, और उसकी यह विरुद्ध आज्ञा टालना अशक्य है।" हिन्दुओंने पुनः सबक्तगीनपर आक्रमण नहीं किया, और उनका यह प्रांत इस्लामी राज्यमें स्थायी रूपसे सम्मिलित हो गया। उस प्रांतके निवासी "उनका उत्थान चाहनेवाले और रक्षा करनेवाले छत्रके नीचे लाये गये। जिस समय आवश्यकता हो उस समयके लिए अब एक सहस्र सवार उसकी (सबक्तगीनकी) सेवामें उपस्थित रहने लगे।"

उत्बीने सबक्तगीन और जयपालके आपसके युद्धोंका उपर्युक्त वर्णन दिया है। ये युद्ध दो ही दिखाई देते हैं। सबक्तगीन और जयपालके बीच इससे अधिक उल्लेखके योग्य और कोई लड़ाइयाँ नहीं हुईं। सबक्तगीनका ध्यान पश्चिमकी ओर अपने सम्राट् सामानी राजा मनसूर (नूह) की सहायता करने तथा उसके दरबारमें अपनी प्रतिष्ठा बढानेकी ओर लगा हुआ था। वह कई प्रांत जागीरके रूपमें प्राप्त करनेका प्रयत्न भी कर रहा था। ऐसा वर्णन मिलता है कि इन दोनों युद्धोंमें और सामानी राज्यके प्रश्नोंमें महमूदने अपने पिताकी सहायता की।

उत्बीके बादके मुसलमान इतिहासकारोंने इस वर्णनको बहुत कुछ बढाया है। उनकी अतिशयोक्ति छोड़ देनेपर भी स्वयं

उत्वीके वर्णनकी जाँच-पडताल करना आवश्यक है। उत्वीने इन युद्धोंकी तिथियाँ नहीं दीं। उसकी तिथियाँ भी प्रायः ग़लत होती हैं (इलियट भाग २)। सबक्तगीनने सन् ६७७ से ६६७ ई० तक राज्य किया। इस दृष्टिसे देखते हुए इन घटनाओंका काल हम सन् ६८० से ६८१ ई० तक मान सकते हैं। यदि महमूदका जन्मकाल अक्तूबर सन् ६७१ ई० माना जाय तो कम आयुके कारण उसका इन युद्धोंमें भाग लेना सभव नहीं हो सकता। परंतु जन्मकाल चार वर्ष पहले माननेसे उसकी आयु १४ से १७ तक होती है। इस आयुका राजपुत्र, विशेषतः प्राच्य देशोंमें, युद्धके लिए योग्य माना जाता है, और प्रत्यक्ष युद्धमें भाग भी लेता है। परंतु यह मानना धृष्टता सी होगी कि उसने पिताको सलाह दी, और बादके मुसलमान लेखकोंका यह वर्णन असंभव दिखाई देता है कि महमूदने अंततक युद्ध जारी रखनेका हठ किया। इस वर्णनसे दैवी चमत्कारका भाग भी पृथक् करना होगा। यह वर्णन संभवनीय है कि जाड़ा बहुत पडा, कोहरा पड़ गया, या हिम-वर्षा होने लगी और पहले युद्धमें हिंदू घबडा गये। परंतु इसका कारण सृष्टिका नियम है, न कि धाराके पानीका अलौकिक गुण। हम यह मान सकते हैं कि धाराका पानी हिंदू छाउनीके निकट रहनेवाले मुसलमानोंने अशुद्ध किया। शत्रुका पानी बिगाडना या अशुद्ध करना युद्धकी एक चाल है, और उस समयके अरब यात्रियोंने लिख रक्खा है कि राजपूत और विशेष रूपसे राज्याभिषिक्त राजा सुरापान नहीं करते थे। * फिर जयपाल तो ब्राह्मण था, इसलिये वह तो अवश्यही मद्य न पीता होगा। युद्धमें प्रतिपक्षीका पानी बिगाडनेकी युक्ति महाभारतमें

* इलियट भाग २ पृष्ठ १८५ देखिये।

भी बतलायी गयी है। पाश्चात्योंने भी युद्धमें उसका अवलंबन किया है, ऐसा दिखाई देता है। विगत यूरोपीय महायुद्धमें इसकी पुनरावृत्ति हुई थी। हिंदू सेना युद्ध पानीके अभावसे और जाडेकी अत्यधिक मात्रासे अपना कार्य नहीं कर सकी (उत्तर भारतके मैदानसे आये हुए सिपाहियोंको ऐसा सख्त जाडा बरदाश्त करनेका अभ्यास न था)। तथापि वह पराजित नहीं हुई थी और समयानुसार राजपूत प्राणांतिक युद्धके लिए तैयार थे। इसलिए यह मानना पडेगा कि इस सन्धिकी शर्तें किसी पक्षके लिए अपमानजनक नहीं थीं। सम्भवतः कुछ धन और हाथी देकर दोनों राजा वापिस गये होंगे।

उपर्युक्त अनुमान भारतीय शिला-लेखोंके आधारसे दृढतर हो जाता है। दूसरे भागमें हम दिखला चुके है कि चंदेल राजा धङ्ग भी राजाओंके इस जमघटमें शरीक हुआ था। शिला-लेखोंमें उसका वर्णन 'हम्मीर सम' किया गया है। इससे दिखाई देता है कि यह युद्ध बराबरीका रहा और केवल असह्य शीतके कारण ही हिन्दू वापिस लौट गये। इस युद्धका साल सन् ९८० ई० मानना चाहिये। धंगने सन् ९५० ई० के लगभग राज्य करना शुरू किया था और सन् १००० ई० तक वह राज्य करता रहा। मृत्युके समय उसकी आयु १०० से अधिक थी।

फिरिश्ता और बादके दूसरे मुसलमान लेखक लिखते हैं कि दिल्ली, कन्नौज, अजमेर, कालंजर इत्यादिके राजा इस युद्धमें शामिल थे। परन्तु यह निस्संदेह अतिशयोक्ति है। हम देख चुके हैं कि सन् ९८० ई० तक दिल्ली एक क्षुद्र स्थान था। अल्बेरूनीने अपने भौगोलिक वर्णनमें दिल्लीका उल्लेख ही नहीं किया और अजमेरकी इस समय स्थापना भी नहीं हुई थी। सांभरके चौहान

तबतक इतने बलशाली नहीं हुए थे कि कुछ सहायता भेज सकें। मालवाका राजा भोज तो सन् १०१० में ही गद्दीपर बैठा। उत्वीने भारतवर्षसे सहायताके लिए आये हुए राजाओंका किसी प्रकारका वर्णन नहीं दिया। शिलालेखोंकी सहायतासे केवल धगका नाम प्राप्त होता है। कन्नौजके प्रतिहार सम्राट्का इस युद्धमें भाग लेना असंभव नहीं है। चंबा गज़ेटियरसे दिखाई देता है कि इस धार्मिक युद्धमें चंबाका राजा साहिलवर्मन् भी गया था।

उत्वीका दूसरे युद्धका वर्णन अवश्य सन्देहजनक है। पहली बात यह ध्यानमें रखनी चाहिये कि प्रथम युद्धमें हिन्दुओंका पराजय नाममात्रका हुआ था। ऐसी अवस्थामें मुसलमानोंको कई किले देनेकी शर्त सन्धिमें न रही होगी या कमसे कम वह शर्त मानी न गयी होगी। यदि वह मान्य होती तो जयपाल इतना नीतिभ्रष्ट नहीं था कि विश्वास-घातसे संधि विच्छेद करे। काबुलके ब्राह्मण राजा या हिंदुस्तानके सभी राजपूत राजा सच्चे और नीतिमान थे। स्वयम् अल्बेरूनीने काबुलके इन राजाओंके उदार स्वभावका वर्णन किया है। यद्यपि ग्रथकार मुसलमान है तब भी उसने हिन्दुओंके चरित्रका यथार्थ वर्णन किया है। काबुलके शाही राजाओंकी सत्य निष्ठाका और भलाईका उसने निम्नांकित स्तुतिमय वर्णन किया है। "व्यवहारमें इनकी सदा उत्कट इच्छा रहती है कि जो योग्य और न्याय्य हो वही करें। ये पुरुष उदार आचार और उदार विचारके है। * " अर्थात् जयपालके विश्वास घातकी कथा बनावटी मालूम पडती है। दूसरी असंभव बात, पहला प्रयत्न असफल होने पर, भिन्न भिन्न राजाओंकी

* सचाऊ "अल्बेरूनी" भाग २ पृष्ठ १०

सेनाका पुनः इतनी शीघ्रतासे एकत्र होना है। यदि संयुक्त सेना बहुत बलिष्ट थी तो उसमें सैकड़ों हाथी रहे होंगे; ऐसी अवस्थामें पाँच पाँच सौ सवारोंके जत्थे बनाकर शत्रुपर लगातार आक्रमण करनेकी सबक्तगीनकी चालका सफल होना असंभव सा प्रतीत होता है, और हिंदुओंका पूर्णरूपसे पराजित होना भी शक्य नहीं। सर विन्सेंट स्मिथ कहते हैं कि पुरुराजा (पोरस) से हुए युद्धमें अलेक्ज़ंडरने इसी मार्गका अवलंबन किया था। परन्तु अलेक्ज़ंडरकी अश्वसेना सुसंघटित एवं सुव्यवस्थित थी। अधिकतर यही संभव है कि सबक्तगीनकी अश्वसेना अलेक्ज़ंडरके समान सुसंघटित नहीं थी। इसके अतिरिक्त राजपूत अपनी अश्वसेनाके लिए प्रसिद्ध थे और अब भी हैं। इतनी भारी हिंदुओंकी संयुक्त सेनामें घुड़सवारोंका अभाव रहना असंभव है। स्वयम् अरब लेखकोंके वर्णनसे पता चलता है कि कन्नौजके प्रतिहार राजा अपने विशाल और संघटित अश्वदलके लिए प्रसिद्ध थे। जयपालकी सहायताके लिए आये हुए राजाओंमें उत्तर भारतका प्रसिद्ध सम्राट् और उसका पड़ोसी कन्नौजका राजा अवश्य रहा होगा, और मुसलमान इतिहासकारोंने स्पष्ट रूपसे लिखा भी है कि जयपालके सहायकोंमें कन्नौजका राजा था। इस दूसरे युद्धका वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण दिखाई देता है और पहले युद्धके राजाओंके एकत्र होनेकी पुनरुक्ति की गयी है। जयपाल तथा संयुक्त सेनाके वापिस लौट जानेपर सबक्तगीनने कोई बहाना ढूँढ़कर जयपालके राज्यपर पुनः आक्रमण किया होगा, या प्रारंभिक वचनके अनुसार ऐसे समय कोई निमित्त दिखलानेकी भी वास्तवमें आवश्यकता नहीं है। अर्थात् जयपालने अपने राज्यमें जहाँतक उससे हो सका होगा उतनी सेना

जमा की होगी परन्तु अन्तमें उसका पूर्ण पराजय हुआ होगा। उसके राज्यका सिंधुके पश्चिमका बहुतसा भाग शत्रुके हाथमें चला गया। तथापि पश्चिमोत्तर सरहद्दका मुख्य प्रान्त (गांधार) शायद उसीके अधिकारमें रह गया। राज्यका दक्षिणी हिस्सा (वन्नू) राज्यसे निकल गया तब भी उत्तरमें जयपालका अधिकार अबाधित रहा और इसके पश्चात् पेशावर और वहिंदमें उसीका राज्य दिखाई देता है। सबक्तगीनने विजित प्रदेशके निवासियोंको जबरदस्ती मुसलमान बना कर अपने राज्यमें मिला लिया। इलियटका मत है कि दोनों युद्ध लमघान अथवा जलालाबादकी घाटीमें हुए, (इलियट भाग २ पृष्ठ ४३३) और लमघान और काबुल नदीके उत्तर तथा दक्षिणका भाग जयपालके राज्यसे अलग हो गया। अल्बेरूनीने काबुलके कोतवाल अथवा अस्पहदादके धर्म परिवर्तनकी बड़ी मनोरञ्जक कथा दी है। उसकी घटना इसी समय हुई होगी। कुछ लोग उक्त घटनाको अलप्तगीनके समयकी मानते हैं। यह भूलसी दिखाई देती है क्योंकि बादको कुछ समयतक काबुलमें जयपालके राज्यके अस्तित्वका वर्णन मिलता है।

उत्वीका कथन है कि इसके बाद सबक्तगीनका ध्यान सामानी राज्यकी उथल पुथलकी ओर आकर्षित हुआ। यह हो सकता है क्योंकि उसके राज्यकी पूर्वीय सीमा सिंधुपारकी पर्वतावलिसे सुरक्षित हो गयी थी। इसी समय मनसूरका देहान्त हुआ और उसका पुत्र नूह सम्राट् हुआ। नूहने अपने कई प्रान्तोंमें मचे हुए विद्रोहको दबानेकी सबक्तगीनको आज्ञा दी। उसने यह सेवाकार्य सहर्ष और सफलतापूर्वक पूरा किया। इस पराक्रमके लिए वह खोरासानका अधिकारी

१ इलियट भाग २ पृष्ठ ४२०

बनाया गया। अपनी ओरसे उसने महमूदको इस पदपर नियुक्त किया और इसी प्रान्तके एक विद्रोही अबू अलीके साथ लड़ते समय महमूदकी व्यक्तिगत वीरताका लोगोंको परिचय मिला। उसकी कीर्ति सर्वत्र फैल गयी। इसी युद्धमें महमूद अपने साथ हिन्दू सिपाही और हाथी ले गया था। अन्य किसी स्थानमें हमें दिखलाना ही होगा कि विचारे हिन्दू सिपाही जो कोई वेतन दे उसकी ओरसे लड़नेके लिए तैयार रहते थे। परंतु यहाँ मुख्यतः यह बतलाना है कि महमूदने हाथियोंका उपयोग उत्तम रीतिसे किया और शत्रुकी अश्वसेनाके सब परिश्रम व्यर्थ हुए। "लड़ाके हाथियोंने घुड़सवारोंको अपनी सूँड़ोंसे पकड़ कर पैरोंतले दबा डाला और उनके भीषण पराक्रमसे अगणित सेना नष्ट हुई।" (उत्बी पृष्ठ १६२)

अन्तिम सामानी सम्राट्‌के समयमें अपनी सुसंघटित एवं विशाल सेनाके बलपर सबक्तगीनका प्रभाव इतना बढ़ गया कि बुखारामें वह वज़ीर नियुक्त करने तथा पृथक् करने लगा। शहाजीने भी निजामशाहीमें सुलतान बनाये और बिगाड़े, और जिस प्रकार बीजापुरके दरबारमें शहाजीका आतंक छाया हुआ था उसी प्रकार सबक्तगीनका नूहके दरबारमें दबदबा था। कुछ दिनोंसे सबक्तगीन ग़ज़नी छोड़कर बल्खमें रहने लगा था, और अंतमें वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसकी इच्छा ग़ज़नी वापिस लौटनेकी थी परंतु वह पूर्ण न हो सकी। अंतिम मृत्युपत्रमें उसने ग़ज़नीका राज्य अपने पुत्र इस्माइलको दे दिया। महमूद खोरासानकी राजधानी निशापूरमें रहता था। शायद सबक्तगीनका यह अनुमान हो कि महमूद प्रांताधिकारीकी अवस्थामें सन्तुष्ट रहेगा। यह घटना भी शहाजी-शिवाजीके समान हुई। शहाजीने नया सम्पादित बंगलोर-

का राज्य दूसरे पुत्रको दिया और शिवाजीको पूनाकी जागीर-से सन्तुष्ट रक्खा। महमूद और शिवाजी अधिक प्रतिभावान् और योग्य थे परंतु उनपर भाइयोंकी अपेक्षा पिताका प्रेम कम दिखाई देता है। दोनों कथाओंमें अधिक बलवान् पुत्रने अपना अधिकार जमाया और पूरा राज्य ले लिया। ग़ज़नीके राज्यपर तथा राज्यकोषपर महमूदने अपना अधिकार चाहा और विरोध हो जानेपर ग़ज़नीपर आक्रमण किया। नगरके निकट उसका इस्माइलसे युद्ध हुआ और इस्माइल हार कर कैदी हुआ, इत्यादि घटनाओंके विस्तारपूर्वक बतलाने-की आवश्यकता नहीं है। ध्यान देने योग्य एक बात यह है कि हाथियोंके विशाल दल इस बार इस्माइलकी ओरसे लड़े पर उनका विशेष उपयोग नहीं हुआ। हाथियोंका उपयोग एक विशिष्ट मर्यादातक हो सकता है। सबक्तगीन तथा दूसरे मुसलमान सेनापतियोंने युद्धमें हाथियोंका उपयोग किया है। इस समय सबक्तगीनके हाथी इस्माइलके अधिकारमें थे परंतु उसकी मूर्खतासे उनका अच्छा उपयोग न हो सका। इस युद्ध-के फलस्वरूप महमूद ग़ज़नीका राजा हुआ और इसके पश्चात् किसीने उसका विरोध नहीं किया (सन् ९९७ ई०)।

चौथा प्रकरण।

महमूद और जयपाल।

राज्याभिषेकके बाद कुछ समय तक महमूदका ध्यान अधिकतर पश्चिमकी ओर था। उसने अपने पिताके अधिकार और पदके लिए सम्राट् नूहसे प्रार्थना की और नूहने उसे।

स्वीकार कर बल्ख़, हिरात, बोस्त और सरमधकी राज्यव्यवस्था महमूदको सौंप दी। निशापूर (ख़ोरासान) की सूबेदारी और सेनापत्य बीचमें बेकतुज़ूनको दिया गया था। बेकतुज़ून राजनिष्ठ और पराक्रमी पुरुष था, और नये सम्राट् (नूहके पुत्र) मनसूरने उसीका अधिकार बना रक्खा। यह महमूदसे सहा न गया। उसने अपनी सेना लेकर बेकतुज़ूनपर आक्रमण किया। परंतु जब यह देखा कि स्वयम् मनसूर युद्धके लिए सुसज्जित होकर आ रहा है, तो राजनिष्ठ महमूदसे शस्त्र उठाया न गया। उसने पीछे घूमकर एक सुरक्षित स्थानमें अपना पड़ाव डाला। सामानी राज्यका अब पूर्ण रूपसे पतन हो रहा था। कुछ हृदयहीन अधिकारियोंने तरुण सम्राट्को कैद कर लिया और उस सुन्दर और अल्पवयस्क राजाको नेत्रहीन बना दिया। इस घटनासे महमूद बहुत क्रोधित हुआ और उसने विद्रोहियों-पर आक्रमण किया। तब वे अपने नये बनाये हुए राजाको लेकर इधर उधर भागने लगे। ऐसे फरजी राजाका आधिपत्य महमूद मानना नहीं चाहता था। उसने खोरासान और ग़ज़नीमें अपना स्वतंत्र राज्य घोषित किया।

बग़दादके ख़लीफ़ा कादिर बिल्लाने महमूदकी स्वतंत्रता मान ली और उसकी पुष्टिके लिए नये अधिकारके वस्त्र भेज दिये। यमीनुद्दौलत (दौलतका दाहिना हाथ) और अमीनुल मिल्लत (धर्मका रक्षक) की उपाधियाँ भी महमूदको प्राप्त हुईं। महमूदने ख़लीफ़ाके पत्रवाहकका सादर स्वागत किया। स्वातंत्र्य घोषित करनेके पूर्व महमूद एवं उसके पिता अमीरका पद धारण करते थे। अब महमूदने सुलतानकी उपाधि धारण करना प्रारंभ किया। इसके पूर्व किसी भी मुसलमान राजाने सुलतान पदका उपयोग नहीं किया था। इस समयसे

सुलतान शब्द प्रचलित हुआ और अमीरका साधारण अर्थ एक सरदार या मांडलिक होगया। उत्वीने लिख रक्खा है कि महमूदने खुरासानमें न्यायानुसार एवं दक्षतासे राज्य किया और प्रजाको सुखी बनाया। इसी समय काशगरके इलेकखॉने बुखारा जीतकर सामानी वंशके सब पुरुषोंको कैद कर लिया। शायद बादको वे सब मारे भी गये। इस तरह महमूदके राज्यके प्रारंभमेंही सामानी वंश निर्मूल हुआ। इस घटनामें और बीजापुर राज्यके अंतिम समयमें कितना विचित्र साम्य है! जिस प्रकार महमूदके स्वतंत्र राज्यको मानकर खलीफाने उसे सुलतानका पद प्रदान किया उसी प्रकार गागाभट्टने अभिषेक कर शिवाजीको छत्रपतिका पद दिया। इसके थोड़े ही दिन बाद भारतवर्षके इलेकखाँ औरंगजेबने शिवाजीके स्वामी बीजापुरके राजाको पराजित किया और राज्यके अंतिम वारिसको दिल्लीमें कैद कर रक्खा। बीजापुर मुग़ल साम्राज्यमें सम्मिलित किया गया। संसार भरमें मनुष्य-स्वभाव एकसा ही है और इसलिए उससे कार्य करानेवाली विधिकी लीलामें भी समता होना स्वाभाविक है।

ये प्रारंभिक घटनाएँ सन् ६६७ और १००० ई० के बीचमें हुई, और महमूदके राज्यछत्रमें सामानी राज्यका बहुत बड़ा भाग आगया। खोरासानका समावेश पहले ही हो चुका था। वह सीस्तान लेनेका प्रयत्न कर ही रहा था कि उसे समाचार मिला कि जयपाल सेना एकत्र कर रहा है। यह अधिक संभव दिखाई देता है कि उसके सेनापतिने जयपालके प्रदेशपर आक्रमण किया होगा और उसके प्रतिकारके लिए जयपाल सेना तैयार करने लगा। शिवाजीके समान महमूद भी तुरंत निश्चय करनेके लिए तथा अपनी सेनाको द्रुतिगतिसे

लिए प्रसिद्ध था। इन गुणोंका इस समय भी उसने उपयोग कर दिखाया। पश्चिमसे पूर्वकी ओर घूम कर वह १५००० सेनाके साथ शीघ्रतासे जयपालके राज्यमें घुस गया। ऐसी शीघ्रगतिके लिए घुड़सवार ही काम दे सकते हैं, और महमूद या शिवाजी ऐसे समयपर अश्वदल काममें लाते थे। "परशावर (पेशावर) उस समय भारत-भूमिके केन्द्रपर था" (उत्वी पृ० २८०)। इस वर्णनसे दिखाई देता है कि तब तक सिंधुनदीके पश्चिमका प्रदेश जयपालके अधिकारमें था। (यही वर्तमान पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त है। उसकी राजधानी वहिंड थी।) जयपाल युद्धके लिए पूर्ण रूपसे तैयार नहीं था। उसने सेनाके आगमन तक युद्धमें विलंब करना चाहा।* परंतु सुलतानने उसकी दुर्बलता जान कर एक दम आक्रमण किया। बड़ा घोर और भयंकर युद्ध हुआ। रणयज्ञमें दोपहरतक पाँच हजार हिंदुओंके सिरोंकी आहुति पड़ी। जयपाल, उसकी स्त्रियाँ, उसके पुत्र और दूसरे सरदार कैद किये गये। लूटमें अगणित संपत्ति और अलंकार प्राप्त हुए। राजकुलोत्पन्न पुरुषोंके गलेमें और मृतसैनिकोंके शरीरपर रत्नों और मोतियोंसे जड़ी हुई मालाएँ इतनी थीं कि इस्लामी सेनाको अपरिमित धन मिला। हिंदू राजाओं और सरदारोंके अलङ्कारप्रेमका अरब प्रवासियोंने भी उल्लेख किया है।† परन्तु जयपालका एवं उसके सैनिकोंका किसी विवाहोत्सवकी भाँति अलङ्कारमण्डित होकर रणक्षेत्रमें युद्धके लिए जाना विचित्र मालूम पड़ता है। सम्भव है कि शिविरमें ही असावधान अवस्थामें उनपर आक्रमण किया गया हो। उस प्रांतमें हज़ारों तरुण पुरुष, स्त्रियाँ और बालक कैद हुए और "खुरासान-

* उत्वी पृ० ८१ † इलियट भाग २, पृष्ठ १८७

की ओरके—सिंधुके पश्चिमके—सब हिंदी प्रान्तोंने सुलतानका आधिपत्य मान लिया।" "यह विजय हिजरी ३६२ (ई० सन् १००१) के मुहर्रमकी ८वीं तिथिको प्राप्त हुई, और उसका समाचार बहुत दूर दूर तक फैल गया।"

पेशावरके मैदानमें ई० सन् १००१ में यह चिरस्मरणीय युद्ध हुआ। सिंधुके पश्चिमके प्रान्तमें हिन्दू सत्ताका अन्त हुआ, और यहाँके निवासियोंका हिन्दुत्व भी नष्ट हुआ। अपने विजयको पूर्ण करनेके लिए सुलतान हिंदुओंको पीछे हटाते हुए वहिंड तक बढ़ गया और उस नगरको भी ले लिया। कुछ लेखकोंका अनुमान है कि भटिंडा ही वहिंड है, परन्तु यह कथन निराधार है। भटिंडा सतलज नदीके दक्षिण है अर्थात् पेशावरसे बहुत दूर पड़ता है। इलियटके निर्देशानुसार* महमूदके लिए इतनी अल्प सेनाके साथ सारा पंजाब पार कर भटिंडा जाना अशक्य था। सिंधुके पश्चिमी प्रांतमें या उत्बीके कथनानुसार 'खुरासानकी ओरके प्रदेशमें' मुसलमानी राज्य स्थापित हुआ। यही नहीं, लोगोंको ज़बरदस्ती इस्लामी धर्मकी दीक्षा देकर "उनका घृणित अधर्म नष्ट किया गया और वे शुद्ध हुए।" "जिन हिंदू वीरोंने सरहद्दके पर्वतोंमें और दुर्गोंमें विद्रोह खड़ा कर उपद्रव मचाया था उन्हें तलवारके बलसे दण्ड दिया गया।†" पेशावर जाते समय ख़ैबर तथा दूसरी घाटियोंके मार्गसे उसे जाना पड़ा होगा और उस प्रदेशकी जातियोंने महमूदको कष्ट दिया जिसके फलस्वरूप निर्दयतासे उनका दमन किया गया। इसी समय इन लोगोंका धर्मपरिवर्तन हुआ। महमूद नये प्रदेश जीतना जानता ही था परन्तु साथ साथ वह विजित प्रदेशके लोगोंको अपने धर्ममें मिला कर राज्यको स्थायी बनानेका

---

* इलियट भाग २, पृष्ठ ४३८ † उत्बी.

मार्ग भी जानता था। इस विषयपर हम अन्यत्र विचार करनेवाले हैं।

अब हमें जयपालके इतिहासकी ओर थोड़ा ध्यान देना चाहिये। कहा जाता है कि महमूदने जयपाल एवं उसके परिवारको खुरासानके एक किलेमें कैद रखनेकी आज्ञा दी। पता नहीं कि जयपाल इतने दूरवर्त्ती स्थानमें रक्खा गया था या नहीं, परंतु इतना निश्चित है कि करस्वरूप ५० हाथी लेकर तथा उसके पुत्रको जमानतके तौर पर रखकर महमूदने जयपालको छोड़ दिया। जयपाल अपने राज्यमें वापिस नहीं गया। वह अपनी इच्छासे जलकर भस्म हुआ। शत्रुद्वारा किया हुआ अपना अपमान उससे सहा न गया। उस समय बहुतसे लोग—राजा भी—इस रीतिसे प्राणत्याग करते थे। शायद उसने यह भी समझा हो कि वृद्धावस्थाके कारण मैं राज्य करनेके अयोग्य हूँ। उत्बीने लिखा है कि महमूदके पास रक्खे हुए उसके पुत्रको यह समाचार पत्र द्वारा मिला था। संभवतः यह पुत्र आनंदपाल था। महमूदने उसे मुक्त कर दिया और राज्य करनेमें कोई विघ्न उपस्थित नहीं किया। जयपालके दुर्दैवमय दीर्घायुष्यके एवं शोकपूर्ण अन्तके कारण उसके लिए दया आये बिना नहीं रह सकती। उसके तेजस्वी प्राण त्यागके लिए सदा आदर ही दिखलाना चाहिये।

इस घटनाके बाद सुलतान महमूदने पश्चिमकी ओर अपनी सत्ता दृढ करनेके लिए इलेकखाँसे संधि कर ली। आक्सस नदीके दक्षिणके खुरासान इत्यादि प्रान्त महमूदको मिले, और उत्तरके मवरुन्नहर और बुखारा प्रान्त इलेकखाँके पास रह गये। इस सन्धिको दृढ करनेके लिए महमूदने अपने पुत्रका इलेकखाँकी कन्यासे विवाह किया। इस प्रकार राज्यकी

पश्चिमी सीमा सुरक्षित होनेपर उसे हिंदुस्तानकी ओर ध्यान देनेके लिए समय मिला। "वहाँके धनने उसका लोभ और मूर्तियोंने उसका धर्मोत्साह प्रदीप्त किया।" तथापि यह मानना आवश्यक नहीं है कि उसका एकमात्र ध्येय भारतवर्ष था। उसके कर्तृत्व और उत्साहको दूसरी दिशाओंकी ओर भी क्षेत्र मिलनेकी आवश्यकता थी और यह क्रमेण उसे प्राप्त भी हुआ। उत्बीने दोनों ओरके आक्रमणोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है परंतु हमें केवल उसके भारतीय कार्यसे सम्बन्ध रखना उचित है। कई वर्णनोंमें तथा पुस्तकोंमें स्पष्टरूपसे सूचित किया जाता है कि महमूदने हर साल भारतवर्षपर आक्रमण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। मालूम पड़ता है कि महमूदके भारतीय चरित्र-कारोंने उसके पश्चात् यह कथा गढ़ ली थी क्योंकि उसमें सत्यका लेश मात्र भी नहीं है। ऐसी प्रतिज्ञाका उत्बीने उल्लेख नहीं किया है।

पाचवाँ प्रकरण।

भाटियापर आक्रमण।

उत्तरकालीन इतिहासकारोंने महमूदके बारह आक्रमण गिनाये हैं और यूरोपीय इतिहासकारोंको भी यह संख्या परंपरासे मान्य हो चुकी है। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि ये आक्रमण बारहसे अधिक थे। इलियटने अपने दूसरे भागमें सत्रह आक्रमणोंकी गणना की है। इन संख्याओंके विषयमें विशेष विवेचनकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह प्रश्न केवल पांडित्यका है और इसीलिए हम इन आक्रमणोंके क्रमका वाद छोड़-

कर उनका विस्तृत वर्णन दे रहे हैं। पेशावर और वहिंडके विजयके बाद महमूदने भाटियापर आक्रमण करनेकी तैयारी की। खेद है कि भाटियाका निश्चित भौगोलिक स्थान अभी तक संदिग्ध है, क्योंकि स्वयम् इतिहासकारोंमें इस सम्बन्धमें महत्वपूर्ण बातोंपर मतभेद है और किसी स्थानको बिना आधारके भाटिया कहनेका साहस नहीं होता। पहले हम इस, आक्रमणका उत्वी द्वारा किया हुआ वर्णन देते हैं।[1]

"सीस्तान प्रांतकी व्यवस्था करनेके पश्चात् सुलतानने भाटिया जीतनेका संकल्प पूर्ण करनेका निश्चय किया। उसने सिहून (सिंधु) नदी पार की, मुलतान एक ओर छोड़ दिया और भाटियाके सामने अपना पड़ाव डाला। उस नगरकी चहारदीवारी इतनी ऊँची थी कि केवल गरुड़ उसपर उड़ सकते थे और यदि वहाँके पहरेदार चाहते तो शुक्रके तारेको भी चूम सकते थे!! उसके चारों ओर समुद्रके समान विस्तृत और गहरी खाईका वेष्टन था। अपने प्रसिद्ध वीरोंके पराक्रमके घमंडमें वहाँका राजा नगरके बाहर निकल आया और उसने युद्ध छेड़ा। सुलतानने तीन दिनतक युद्ध किया। चौथे दिन जब सूर्य आकाश-सागरके मध्यमें आया सर्वत्र 'अल्ला हो अकबर' के नारे सुनाई देने लगे। मुसलमानोंने आक्रमण किया और उसमें काफिरोंका कालापन मिटाया गया। शत्रुके अधिकतर वीर किलेके अन्दर भाग गये, परंतु धर्मके रक्षकोंने किलेका मार्ग भी अपने हाथमें कर लिया। सेनाके वीर तरुणोंने खाई भर दी और रास्ता चौड़ा किया। किलेकी दीवारपर से रस्सीके सहारे नीचे उतर कर विजयराज पहाड़ोंमें भाग गया और उसने जङ्गलका आश्रय लिया।

---

१ पृ० २२२-२४

वहाँ भी उसका पीछा किया गया। अंतमें उसने अपने ही खड्गसे आत्महत्या कर ली। उसकी सेनाके अधिकतर भागका रणक्षेत्रमें पतन हुआ और एक सौ साठ हाथी जीते गये। उस देशकी मूर्तिपूजाका पाप धो डालनेके लिए सुलतानने कुछ दिनोंतक अपना पड़ाव उसी नगरमें रक्खा। उसने लोगोंको मुसलमान बनाया, मसजिदें बाँधनेकी व्यवस्था की और इमाम नियुक्त किये। वापिस जाते समय उसकी सेनापर अनेक संकट आये। मनुष्य मर गये और सामान भी बहुत सा नष्ट हुआ। कई मर गये और कई भयसे परेशान हो गये। केवल सुलतानके अमूल्य प्राण बचे। महमूदके अत्यंत विश्वास-पात्र अबुलफतह बोस्तानीने उत्तम सलाह दी और ऐसी आकांक्षाओं और साहसोंके विरुद्ध अपना मत दिया, परंतु सुलतानने उसकी सलाह न मानी।"

हमने उत्बी द्वारा लिखित यह विस्तृत वर्णन केवल इसी-लिए दिया है कि उसके वर्णनकी काव्यमय पद्धति पाठक देख सकें और उन्हें इस वर्णनसे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयोंकी कुछ कल्पना हो जाय। ये घटनाएँ उत्बीकी प्रत्यक्ष देखी हुई नहीं हैं। महमूदके मंत्रीकी हैसियतसे उसे जो कुछ समाचार प्राप्त हुए उन्हींके आधारपर यह वर्णन किया गया है। पहले यही जानना ज़रा कठिन है कि इस दूरके प्रदेशपर आक्रमण करनेका महमूदने क्यों निश्चय किया। उत्बीने इस संबंधमें कोई उल्लेख नहीं किया। बादके इतिहासकारोंने लिखा है कि विजयराज जयपालका सामंत था और उसने महमूदको खिरा-जका अपना भाग नहीं दिया था। परंतु महमूदके विजयराजपर किये हुए आक्रमणका यह कारण नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त जब महमूदने जयपालको मुक्त किया तब यह कहीं

नहीं दिखाई देता कि उसने खिराज देना स्वीकार किया था। आनंदपाल भी कर देनेकी शर्तपर मुक्त नहीं किया गया था। वास्तवमें महमूदने जयपालके राज्यका बहुत बड़ा भाग छीन लिया था और वह उसकी मुक्तिके लिए काफी हरजाना था। अतः इस आक्रमणका कोई दूसरा ही कारण रहा होगा। उत्बीके इतिहाससे इस संबंधमें कोई बात विदित नहीं होती। संभवत. भाटियाका राजा मुलतानके दक्षिण पश्चिमकी ओर एक बलिष्ट और स्वतंत्र राजा रहा होगा और उसने सिन्धुके पश्चिमी प्रदेशपर अपना अधिकार बतला कर स्थानीय लोगोंको चिढाया होगा। हम पहले देख चुके हैं कि भट्टीराजा प्रारभमें जाबुलिस्तानके अधिपति थे। साधारणत जो एक कल्पना प्रचलित है कि जयपाल आनदपाल इत्यादि राजा भट्टी थे, ब्राह्मण नहीं थे, वह हमारी दृष्टिसे निराधार है। शाही ब्राह्मण वंशका प्रचलित और मान्य पद 'देव' छोडकर 'पाल' पद धारण करनेसे राजवशमें परिवर्तन मानना आवश्यक नहीं है। क्षत्रिय राजाओंने भी कभी कभी 'देव'पद धारण किया है और शाही राजा ब्राह्मण होते हुए भी व्यवहारमें क्षत्रियोंके समान थे। उन्होंने अपनी कन्याओंका विवाह क्षत्रियोंसे किया था और स्वयम् क्षत्रिय कन्याओंसे विवाह कर लेते थे। इस सारे कथनका उद्देश्य केवल यह दिखाना है कि भाटियाका राजा जयपालका कोई सम्बन्धी नहीं था और महमूदका भाटियापर आक्रमण उसके अपराधसे हुआ नहीं दिखाई देता।

यह विकट और दुस्तर आक्रमण महमूदने चाहे किसी कारणसे किया हो, उसकी पूर्ति और सफलतामें उसने अपना स्वाभाविक उत्साह दिखाया। विजेराय (विजयराज) भी वीरतासे लडा। वह कभी कैद नहीं हुआ। जयपालकी भाँति

अपमान होनेके पूर्व उसने स्वयम् प्राणत्याग किया। भाटियाके लड़ाके नागरिकोंने अपने प्राण रणक्षेत्रमें अर्पण किये। बाकी लोग मुसलमान हुए। यहाँ लोगोंको कैद करनेका या लूटका वर्णन नहीं मिलता। अर्थात् इस आक्रमणका उद्देश्य लूट या मूर्तिभंजन नहीं दिखाई देता। भाटिया प्रान्त सिन्धु नदीके तटपर और गजनीके बहुत निकट था। महमूदको उससे हमेशा भय रहा और इसीलिए वह इस प्रान्तको पूर्ण रूपसे मुसलमान बनाकर अपने अधिकारमें लाया होगा।

परन्तु भाटिया नगर कहाँ रहा होगा? इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह एक प्रसिद्ध नगर था, क्योंकि अल्बेरूनीने अपने भूगोलमें उल्लेख किया है कि वजानके पश्चिम मुलतान और उससे भी आगे भाटिया है। मुलतान वजानसे बिलकुल पश्चिम नहीं बल्कि थोड़ा वायव्य दिशामें है, और भाटिया मुलतानके दक्षिण पश्चिम रहा होगा। अर्थात् वह भावलपुर नहीं हो सकता, और भावलपुरके आसपास पर्वत भी नहीं है। यहाँ यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि भाटिया नगरके वर्णनसे अनुमान होता है कि वह बिलकुल पर्वतोंके निकट नहीं था। कारण पहाड़ी किलोंकी दीवार गगनचुंबित हो सकती है परंतु उसके चारों ओर गहरी खाई नहीं हो सकती। उत्बीका वर्णन स्पष्टरूपसे प्रत्यक्ष देखी हुई घटनाओंका नहीं है और उसमें बहुत सा काव्यका अंश है। वर्णनमें लिखा है कि महमूदने मुलतान एक ओर छोड़ दिया, अर्थात् वह मुलतानके दक्षिण पश्चिम आया होगा। उसने केवल सिंधु नदी पार की। दूसरी किसी भी नदीका उल्लेख नहीं मिलता। अर्थात् इस नगरका स्थान मुलतानके दक्षिण पश्चिम और सिन्धु और सतलजके बीचमें रहा होगा। अल्बेरूनीके वर्णनसे भी यही

अनुमान मिलता है। जो वर्णन फिरिश्ताने दिया है कि विजेरायने सिंधु किनारेके पहाड़ी जंगलका आश्रय लिया, वह भी भाटियाको सिन्धु और सतलजके बीचमें माननेसे युक्तिसंगत होता है।

परन्तु इलियटके* मतके अनुसार 'भाटिया' विकृत पाठ है और मूल नाम भाटिया नहीं बल्कि 'भेरा' होगा। उसका मत है कि यह नगर भेलमके बायें किनारेपर मुलतानके उत्तर-पश्चिम कहीं लवणपर्वतावलिके निकट होगा। उसका विचार है कि जयपाल आनन्दपालादि वाहिंडके पाल भाटी एवं विजयरायके संबंधी थे। परन्तु हम पहले ही दिखला चुके हैं कि यह कल्पना अनावश्यक और निराधार है। इलियटका यह वर्णन वास्तविक और योग्य है कि इस आक्रमणके लिए महमूदने बन्नूके दर्रेसे कुर्रमकी घाटीमें आकर सिंधुको पार किया और मुलतानकी सीमासे होते हुए भाटियामें प्रवेश किया। महमूदकी इच्छा नहीं थी कि आनन्दपालके अथवा मुलतानके शत्रु प्रान्तमें घुसकर नाहक विरोध खड़ा करें, और इसी विचारको सामने रखकर वह दूरके मार्गसे आगे बढ़ा। परन्तु इससे भाटिया मुलतानकी वायव्य दिशामें नहीं आता, क्योंकि यदि वह वायव्य दिशामें होता तो महमूदको मुलतान की ओर आना भी न पड़ता। उन्होंने वर्णन किया है कि विजेराय पहाड़के जङ्गलोंमें छिप गया। परन्तु इसमें बहुत कुछ अतिशयोक्तिका अंश है। यदि पहाड़के स्थानपर छोटी पहाड़ियाँ मानी जायँ तो यह वर्णन स्पष्ट और सुसंबद्ध हो सकता है। जो कुछ हो, किसी वर्तमान नगरको भाटिया सिद्ध करना असंभव सा प्रतीत होता है। हम इतना ही कह सकते हैं कि

---

* पृष्ठ ४४०

अल्वेरूनीके समयमें यह नगर प्रसिद्ध था और मुलतानसे दक्षिण पश्चिमकी ओर बसा हुआ था।

टिप्पणी—भाटिया ।

१ भावल्पुर गजेटियरमें भाटियाको भटिंडा मान कर लिखा है "सन् १००४ ई० में महमूदने भटिंडा जीत लिया। वहाँके राजा विजयरायने अपने सम्राट् आनन्दपालके विरुद्ध विद्रोह किया था और महमूदके अधिकारियोंको भी तङ्ग किया था।" "दूसरे आक्रमणमें महमूद भटिंडाके मार्गसे मुल्तानपर चढ आया।" उत्बीका वर्णन देखते हुए ये दोनों कथन सम्भवनीय नहीं मालूम पडते।

२ भाटनेर (हनुमानगढ) बीकानेर रियासत। इस स्थानके विषय में इंपीरिअल गजेटिअरमें लिखा है कि सन् १००४ ई० में महमूदने इस स्थानपर आक्रमण किया ऐसा माना जाता है। परन्तु बादको यह भी लिखा है कि इसके बारेमें सन्देह है।

३ बीकानेर गजेटिअरमें भी इस प्रकारका उल्लेख है और उसमें लिखा है कि राजा दल्चन्द नामक भट्टीसे तैमूरने इस किलेको छीन लिया। किला और विशेषत इसकी चहारदीवारी बहुत सुदृढ थी। "वह किला सारे भारतमें प्रसिद्ध था" (पृ० ३९७)

४ जेसल्मीर गजेटिअरमें भट्टियोंकी निम्नलिखित प्राचीन परपरा दी है—"वे यदुक वशज थे। यादवोंके मथुरा त्यागके बाद वे सिंधुके उस पार गये और गज नामके राजाने गजनी नगर बसाया। खुरासानके एक राजासे पराजित होने पर वे पुन सिन्धुके इस पार आकर पंजाबमें बस गये। उन्होंने गजनीपर फिर एक बार आधिपत्य जमाया परन्तु बलन्द राजाके कालमें वे पुन गजनीसे भगा दिये गये। बलन्दके पुत्र भट्टीने आसपासके सब राजाओंको जीत लिया। भट्टीके पश्चात् उसका पुत्र मङ्गलराव राजा हुआ परन्तु वह अपने पिताके समान भाग्यशाली नहीं था। गजनीके राजाने उसपर आक्रमण किया तब उसने राज्य छोड दिया। वह सतलजके पार भाग गया और अन्तमें राजस्थानके रेगिस्तानमें उसको

आश्रय मिला। तबसे उसके वंशज वहीं रहते हैं।" इस लोक-प्रचलित कथासे भी हमारे भाटियाके स्थानसंबंधी मतका समर्थन होता है। हमारा मत है कि भाटिया सिंधु और सतलजके बीचमें था। इस नगरका तुर्कोंने नाश किया, और तबसे भट्टी सतलजके इस पार आकर राजस्थानमें बस गये हैं।

छठवाँ प्रकरण।

मुलतानपर आक्रमण।

यह देखकर कि महमूद बहुत दूर भारतवर्षमें फँसा हुआ है, इलेकखाँने उसके पश्चिमी प्रान्तोंपर आक्रमण किया। चीनके कादिरखाँकी सहायता लेकर वह जेहून (आक्सस)के इस पार आ गया। यह समाचार पाते ही महमूद बड़ी तेजीसे गजनी लौटा, और गजनीसे बल्खकी ओर गया। दोनोंका घोर युद्ध हुआ। इलेकखाँ पूर्णरूपेण पराजित होकर आक्ससके उस पार भाग गया। उत्बीने लिखा है कि इस युद्धमें महमूदकी सेनामें तुर्क, खिलजी, अफगान और हिंदू लोग थे। सेनाके मध्यभागमें पाँच सौ हाथी खड़े किये गये थे। वह स्वयम् एक मस्त हाथीपर सवार था। उसने इलेकखाँके चुने हुए पाँच सौ रक्षकोंपर हमला किया, और हाथियों द्वारा उनमेंसे अधिकतर लोगोंको मार डाला। इससे दिखाई देता है कि जो सामग्री अयोग्य सेनापतिके हाथमें सफलतामें बाधक हुई वही कर्तृत्ववान् नेताके यशका साधन हुई। जो हिंदू सैनिक और हाथी जयपालको यश प्राप्त नहीं करा सके उन्हींका उपयोग महमूदने बड़ी सफलतापूर्वक अपने तुर्कोंके विरुद्ध किया।

उल्लेख बहुत ही संक्षेपमें किया है। सम्भवतः अपने राजा एवं राजधानीके शोचनीय अन्तसे चिढ कर भाटिया प्रान्त-निवासियोंने महमूदकी सेनाको हर प्रकारसे तंग किया होगा या वर्तमान सीमाप्रान्तकी घाटियोंमें तथा गिरिकंदराओंमें रहनेवाली जातियोंने आक्रमण किया होगा। इस कठिनाईका वास्तविक स्वरूप मालूम नहीं पड़ता। मुलतानके आक्रमणके लिए महमूदने दूरके परन्तु सरल और निष्कंटक मार्गसे जाना निश्चित किया, और पंजाबके राजा आनंदपालसे अनुरोध किया कि वह अपने प्रान्तसे मुलतानके लिए रास्ता दें। इससे सिद्ध होता है कि आनंदपालका राज्य पंजाबमें था और वह एक स्वतंत्र राजा था। परन्तु मुलतानका अधिपति आनंद-पालका मित्र था अतः उसने मार्ग देना अस्वीकार किया। ऐसा कहा जाता है कि मुलतानके अधिपतिने सबक्तगीनके साथ हुए युद्धमें जयपालको सहायता भी दी थी। परन्तु महमूद उन पुरुषोंमेंसे नहीं था जो अनुमति न मिलनेपर चुप रहता। उसने पहले आनंदपालपर आक्रमण करनेकी तैयारी की। युद्धमें आनंदपाल हार गया और उसका काश्मीर तक पीछा किया गया। इलियटका कहना है कि युद्ध पेशावर प्रान्तमें हुआ परन्तु पेशावर उस समय महमूदके अधिकारमें था। इस

गजनी वापिस लौटनेपर महमूदने निश्चय किया कि मुलतानके धर्मभ्रष्ट राज्याधिकारी हटा दिये जायँ। मुलतान इस समय स्वतंत्र राज्य था। सिंधके मुसलमान प्रान्तमें दो राज्य थे। उत्तरकी ओर मुलतान और दक्षिणमें मनसुरा। मुलतानका राजा मुसलमान परन्तु करमाती पंथका था। इस पंथकी स्थापना अबदुल्लाबिन मैमान नामक ईरानी उपदेशकने की थी। उसका उपदेश था कि सातवाँ इमाम अली अंतिम इमाम है। मृत पुरुषका कल्पके अंतमें पुनरुत्थान होता है, वह इस कल्पनाको नहीं मानता था और अवतारोंपर विश्वास रखता था। इस पंथके अनुयायी जब ईरानसे भगा दिये गये तब वे भारतवर्षमें आ बसे और यहाँ उनकी संख्या बढने लगी। इस पंथमें सात और बारह इन संख्याओंकी पवित्रता, दीक्षाकी भिन्न भिन्न सीढ़ियाँ, गुप्त चिह्न ओर अर्थ इत्यादि भारतके सीधे सादे और धार्मिक लोगोंको मान्य होने योग्य तत्व थे। मुलतानका राजा ओर प्रजाका बहुतसा अंश करमाती पंथका अनुयायी था। महमूद कट्टर मुसलमान था। उसने इस धर्मभ्रष्टताको हिंदुस्तानसे भी हटानेका निश्चय किया। किंबहुना, ऐसा प्रतीत होता है कि मुलतानके अधिपतिके पिताको सबक्तीनने खुरासानसे निकाल दिया था।

महमूद मुलतानके मार्गकी कठिनाइयाँ और सङ्कट जानता था। पूर्वोक्त कथनके अनुसार भाटियाको वापिस लौटते समय मार्गमें उसकी सेनाको बडा कष्ट उठाना पड़ा। उसका द्रव्य तथा उसकी सामग्री नष्ट हुई और प्राण भी सङ्कटमें पड़े। दरबारी उत्बीने इसका स्पष्टीकरण नहीं किया है। इस प्रकारका वर्णन किस कामका? इस इतिहासकारने महमूदकी विजयका काव्यमय और विस्तृत वर्णन दिया है परंतु पराजयोंका

उल्लेख बहुत ही संक्षेपमें किया है। सम्भवतः अपने राजा एवं राजधानीके शोचनीय अन्तसे चिढ़ कर भाटिया प्रान्त-निवासियोंने महमूदकी सेनाको हर प्रकारसे तंग किया होगा या वर्तमान सीमाप्रान्तकी घाटियोंमें तथा गिरिकंदराओंमें रहनेवाली जातियोंने आक्रमण किया होगा। इस कठिनाईका वास्तविक स्वरूप मालूम नहीं पड़ता। मुलतानके आक्रमणके लिए महमूदने दूरके परन्तु सरल और निष्कंटक मार्गसे जाना निश्चित किया, और पंजाबके राजा आनंदपालसे अनुरोध किया कि वह अपने प्रान्तसे मुलतानके लिए रास्ता दें। इससे सिद्ध होता है कि आनंदपालका राज्य पंजाबमें था और वह एक स्वतंत्र राजा था। परन्तु मुलतानका अधिपति आनंद-पालका मित्र था अतः उसने मार्ग देना अस्वीकार किया। ऐसा कहा जाता है कि मुलतानके अधिपतिने सबक्तगीनके साथ हुए युद्धमें जयपालको सहायता भी दी थी। परन्तु महमूद उन पुरुषोंमेंसे नहीं था जो अनुमति न मिलनेपर चुप रहता। उसने पहले आनंदपालपर आक्रमण करनेकी तैयारी की। युद्धमें आनंदपाल हार गया और उसका काश्मीर तक पीछा किया गया। इलियटका कहना है कि युद्ध पेशावर प्रान्तमें हुआ परन्तु पेशावर उस समय महमूदके अधिकारमें था। इस युद्धका क्षेत्र पंजाबमें सिंधु नदीके पूर्व कहीं रहा होगा। उत्बीने रणक्षेत्रके स्थानका उल्लेख नहीं किया। उसने केवल यही लिखा है कि "सुलतानने नगर और गाँव उजाड़ कर जला देनेकी आज्ञा दी। उसने आनंदपालको दम लेने नहीं दिया। अंतमें वह काश्मीरकी ओर भाग गया।" आनंदपालकी यह अवस्था देख कर अब्दुल फतहने अपना सब धन एकत्र किया और ऊँटोंपर लादकर सेरेदिव

(लंका) भेज दिया। वह स्वयम् भी मुलतान छोड़ कर भाग गया।

जब महमूदने मुलतानमें प्रवेश करनेपर यह देखा कि उस नगरके नागरिक धर्मभ्रष्ट हुए हैं तब उसने सबपर कड़ा जुर्माना किया। "इस धर्मस्थापनाका समाचार मिस्र तक सब नगरोंमें फैल गया। और उस प्रान्तकी अश्रद्धा और पाखंडका केन्द्र नष्ट हुआ*।" करमातियोंके नास्तिकवादके समान उस समय खिलाफतके सम्बन्धमें भी एक वाद उपस्थित हुआ था। कुछ लोग बगदादके खलीफाको सच्चा खलीफा मानते थे और कुछ मिस्र (ईजिप्ट) के खलीफाको अपना सच्चा नेता मानते थे तथा खुतबेमें भी उसीका नाम पढ़ते थे। महमूद स्वभावतः बगदादका पक्षपाती था, और इस समय मिस्रके खलीफाके भेजे हुए खिलतको उसने अस्वीकार किया।

उत्बीने किसी भी स्थानपर स्पष्ट रूपसे महमूदके जाने या वापिस लौटनेका मार्ग नहीं बतलाया परंतु बादके इतिहासकार लिखते हैं कि वह भटिंडाके रास्तेसे वापिस लौटा। यह कथन उपयुक्त नहीं दिखाई देता। हमारी धारणा है कि इलियट का† अनुमान ठीक है कि महमूद भेराके अर्थात् उत्तरके, मार्गसे लौटा। इस आक्रमणका साल भी अनिश्चित है। कुछ इतिहासकारोंका मत है कि यह आक्रमण इलेकखाँके पराजयके बाद हुआ और कुछ उसके पहले मानते हैं। उत्बीको प्रमाण मानकर इलियट कहता है कि आक्रमण पहले ही हुआ। परंतु उत्बीका इतिहास योग्य काल क्रमके अनुसार नहीं लिखा गया और आक्रमणका साल भी उसने नहीं दिया। हमने इलेकखाँ-

*उत्बी ३२८-३२९ † इलियट भाग २, पृ० ४३२।

का युद्ध इसके पूर्व दिया है। कारण अल्बेरूनीने एक आनंदपालका पत्र अपनी पुस्तकमें दिया है, † उससे हम इस महत्वपूर्ण घटनाका क्रम व्यवस्थित रूपसे बैठा सकते हैं। (यह पत्र हम मध्ययुगीन भारतके पहले भागमें उद्धृत कर चुके हैं।) "मैं सुनता हूँ कि तुर्कोंने आपके विरुद्ध विद्रोह किया है। यदि आपकी इच्छा हो तो मैं स्वयम् आऊँ या अपने पुत्रको ५०० घोड़े, १०० हाथी और १००० सैनिकोंके साथ भेज दूँ। आपने मुझे हराया है। मैं चाहता हूँ कि कोई दूसरा आपको हरा न सके।"

इस प्रकारका आदरयुक्त प्रस्ताव आनंदपाल मुलतानके आक्रमणके बाद कभी न करता। इस युद्धमें उसपर अन्यायसे हमला किया गया और उसे काश्मीरमें शरण लेनी पड़ी। इसी घटनाको यदि अंताराष्ट्रिय भाषामें कहना चाहें तो अल्बेरूनीके साथ कहना पड़ेगा कि आनंदपालका वर्ताव सदा न्याय्य और योग्य रहा है। उसने अपने मित्र मुलतानके राजापर आक्रमण करनेके लिए या दूसरे किसी राष्ट्रपर हमला करनेके लिए महमूदको मार्ग नहीं दिया। यह कृत्य न्यायके अनुसार था, परन्तु बलिष्ठ राजा या राष्ट्र ऐसी रुकावटोंका विचार ही नहीं करते, फ्रान्सपर आक्रमण करनेके लिए जर्मनीने बेल्जियम देशसे जाना चाहा परन्तु वहाँकी सरकारने इस कृत्यका विरोध किया। यद्यपि इस समय बेल्जियम न्यायके पक्षमें था तो भी उसे युद्धके कड़ुए फल चखने पड़े। महमूदने भी जर्मनीके सदृश वर्ताव किया। उसने पहले आनंदपालका दमन किया। इस प्रकारके खुल्लम खुल्ला अन्यायके बाद यह संभव नहीं दिखाई देता कि आनंदपालने उपर्युक्त पत्र लिखा होगा। अल्बे-

† सचाऊ अल्बेरूनी भाग २, पृ० १०

रूनीके कथनके अनुसार वह महमूदका कट्टर शत्रु बन गया। परंतु अल्बेरूनीने इस शत्रुताका कारण दूसरा ही दिया है। "जबसे उसका पुत्र कैद हुआ तबसे राजा आनंदपालके हृदय में बिलकुल विरुद्ध भावनाएँ उत्पन्न हुईं। उसका पुत्र त्रिलोचन पाल पितासे भिन्न स्वभावका था।' अर्थात् वह मुसलमानोंसे मित्रता चाहता था और उनके लिए आदर भी दिखाता था। त्रिलोचनपालके वन्दी होनेका समय निश्चितरूपसे मालूम नहीं होता। हो सकता है कि वह मुलतानके इसी आक्रमणमें पकडा गया हो और महमूदने उसे अन्तमें सम्मानके साथ छोड दिया हो जिसके फलस्वरूप मुसलमानोंके प्रति उसके भाव बदल गये हों। अल्बेरूनीने लिखा है कि यह पत्र देते समय "दोनोंके परस्पर सम्बन्ध शिथिल हो रहे थे।" यह सत्य हो सकता है परन्तु केवल इस वाक्यके आधारपर यह कदापि अनुमान नहीं किया जा सकता कि महमूद और आनन्दपालमें युद्ध हुआ। हम समझते हैं कि इस निर्देशसे केवल पुराने सम्बन्धका ही, जो कभी मित्रवत् नहीं था, उल्लेख होता है।

ऐसा दिखाई देता है कि वापिस लौटते समय महमूदने आनन्दपालका राज्य लूट पाट कर ध्वस्त किया परन्तु उसे अपने अधिकारमें लेनेका प्रयत्न नहीं किया। महमूदके सिंधुके पार करनेपर आनन्दपाल वापिस आया होगा। अपने पराजयका दारुण अपमान उसके हृदयमें क्रोधाग्नि प्रज्वलित कर रहा था और उसने गजनीकी राज्यशक्तिका पूर्णरूपसे नाश करनेके लिए अपना तन मन धन अर्पण करनेकी प्रतिज्ञा की। उस प्रयत्नका अवलोकन अगले प्रकरणमें किया जायगा।

सातवाँ प्रकरण।

संयुक्त हिन्दुओंका अंतिम युद्ध

आनंदपालने अपनी सहायताके लिए भारतवर्षके कई राजाओंको बुला भेजा। अपने धर्म और अपनी स्वतंत्रतापर आये हुए इस संकटका निवारण करनेके लिए भारतवर्षके कई राजाओंने मिलकर एक अंतिम प्रयत्न किया। इस घटनाका बड़ा ही अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन फ़िरिश्ताने दिया है। उत्बीने इस प्रयत्नको इतना भारी और व्यापक स्वरूप नहीं दिया। प्रायः जैसा होता है वास्तविक सत्य दोनोंके बीचमें है। हम जानते ही हैं कि ज्यों ज्यों काल पीछे हटता जाता है त्यों त्यों पुरानी घटनाओंके वर्णनमें अतिशयोक्ति बढ़ती जाती है। बादमें लिखनेवाला हरएक इतिहासकार उसमें अद्भुत रसकी मात्रा किसी न किसी अंशमें मिला देता है। भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें भी यह सिद्धान्त विशद रूपसे सिद्ध होता है। रामायण या महाभारतके हर एक नये संस्करणमें पुरानी कथाके साथ नई अद्भुत बातें जोड़ दी गयीं। मुसलमान इतिहासकार इस नियमके अपवाद नहीं हैं। वे भी चमत्कृतिजनक घटनाएं मिलानेके स्वाभाविक मोहका दमन न कर सके। फ़िरिश्ता[1] कहता है:—

"महमूदने हिजरी सन् ३९९ (ई० सन् १००८) में अपनी सेना एकत्र की और भारतपर आक्रमण करके आनंदपालका नाश करनेका निश्चय किया। सुलतानके पिछले आक्रमणके समय आनंदपालने बड़ी उद्दण्डता दिखलायी थी। आनंद-

[1] इलियट भाग २ पृ. ४४६

पालने दूसरे हिंदू राजाओंसे सहायता माँगी। अब वह समझने लगा कि मुसलमानोंको भारतवर्षसे भगा देना मेरा पवित्र कर्त्तव्य है। सहायताका निमंत्रण जानेपर उज्जयिनी, ग्वालियर, कालंजर, कन्नोज, दिल्ली और अजमेरके राजाओंने एक संघ बनाया और एक ऐसी विशाल सेना तैयार की कि सबक्तगीनके विरुद्ध भी वैसी सेना कभी एकत्र नहीं हुई थी। आनंदपालने स्वयम् सेनापतिका पद ग्रहण किया और महमूद पर आक्रमण किया। दोनों सेनाओंकी भेंट पेशावरमें हुई। वे आमने सामने पड़ाव डालकर ठहर गयीं। लगभग चालीस दिन ऐसी ही शांत अवस्थामें बीते। कोई भी पक्ष युद्ध प्रारंभ करनेके लिए उत्सुक नहीं था। मूर्तिपूजकोंकी सेनामें रोज संख्यावृद्धि हो रही थी। काफिर गक्खर भी बड़े दलबलके साथ उनसे मिल गये। दूर दूरके प्रदेशोंसे हिंदू स्त्रियोंने अपने अलङ्कार बेचकर उनका मूल्य अपने पतियोंकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए भेज दिया और जो नितान्त दरिद्र थीं उन्होंने सूत कात कर या कोई दूसरा कार्य कर जो धन कमाया उसे सहायतार्थ भेज दिया।"

यदि उपर्युक्त वर्णनकी तुलना समकालीन उत्बीके वर्णनसे की जाय तो उसकी वास्तविक अतिशयोक्ति पूर्णरूपेण सिद्ध होगी। "सुलतान वामड नदीके किनारे आया परन्तु जयपाल बिन अद्धपालने बड़ी भारी सेनाके साथ उसका विरोध किया। समराग्नि प्रात कालसे सन्ध्या समयतक धधक रही थी। प्रसङ्ग बड़ा कठिन था। थोड़ी देरतक तो मालूम हो रहा था कि काफिरोंकी जीत होगी और सुलतानको हारना पड़ेगा। परन्तु इस्लामी धर्मको अनन्त विजयका मिला हुआ ईश्वरीय आशीर्वाद सच्चा निकला। सुलतानने अपने निजी शरीर-

रक्षकोंके साथ ज़ोरसे हमला किया और विद्रोही उसके विरुद्ध अधिक समयतक टिक नहीं सके ।" [1]

फिरिश्ताका यह कथन बिलकुल अतिशयोक्ति पूर्ण है कि हिंदू स्त्रियोंने अपने अलंकार बेच कर और सूत कात कर या और दूसरे प्रकारके परिश्रमसे धन संचित कर सैनिकोंकी सहायता की । हिंदू राजा कमसे कम अपनी सेनाका ख़र्च देनेके लिए अवश्य समर्थ थे । और यदि आवश्यकता ही आ पड़ती तो व्यापारियोंसे एवं मंदिरोंसे चंदा एकत्र किया जा सकता था । यद्यपि उत्वीने वर्णन नहीं किया तब भी हम इस बात-पर विश्वास कर सकते हैं कि कई हिंदू राज्योंकी सेनाएँ एकत्र हुई थीं क्योंकि यह संयुक्त सेना इतनी विशाल थी कि कुछ समयतक विजयश्रीका झुकाव हिंदुओंकी ओर रहा । इसके अतिरिक्त शिलालेखोंसे पता चलता है कि आनन्दपाल-की सहायताके लिए कई राजा आये थे । परन्तु इस सम्बन्धमें फिरिश्ताने अपने समयके भारतवर्षका ध्यान करके मनमाने नाम दिये हैं । उज्जयिनीमें मालवाधिपति भोजका राज्य था । उसकी सेना भी बलिष्ठ एवं व्यवस्थित थी । परन्तु यह कहीं दिखाई नहीं देता कि उसने इस युद्धमें भाग लिया था । एक शिलालेखमें उल्लेख है कि भोज राजाने तुर्कोंसे युद्ध किया परन्तु उसी शिलालेखमें आगे यह लिखा है कि इस युद्धमें तुर्कोंका पराजय हुआ । कालंजरके राजाने निस्सन्देह इस युद्धमें भाग लिया था । राजा धंगने हिंदुओंके पहले संयुक्त प्रयत्नमें स्वयम् लड़कर और बड़ी सेना देकर सबक्तगीनके विरुद्ध सहायता दी थी । उसका अनुकरण करके उसके पुत्र गंडने भी इस युद्धमें सहायता दी । कन्नौजाधिपति उस समय उत्तर

1. उत्वी पृ० ३४०-४१

भारतके सम्राट् कहलाते थे अतः उनकी सेनाका सम्मिलित होना स्वाभाविक था। ग्वालियर कालंजरके राजाका मांडलिक था। शिलालेखोंमें कहीं उल्लेख नहीं है परन्तु संभव है कि वहाँसे भी सहायता गयी हो। उस समय वहाँ कच्छपघात (आजकलके कछवाहा) कुलोत्पन्न समर्थ सामंत राज्य कर रहा था। दिल्ली और अजमेरके राज्य या तो तबतक स्थापित नहीं हुए होंगे या इस युद्धमें सहायता देनेमें असमर्थ रहे होंगे।

आनंदपालके मांडलिक राजाओंने उसे अवश्य यथाशक्ति मदद दी होगी। फिरिश्ताने काश्मीरका उल्लेख नहीं किया और राजतरंगिणीमें भी कहीं ऐसा उल्लेख नहीं है कि काश्मीराधिपतिने इस युद्धमें आनंदपालकी सहायता की थी। तब भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि ग़ज़नीकी बढ़ती हुई बाढ़को रोकनेके लिए आनंदपालने बड़ा प्रयत्न किया और बहुत श्रमसे एक विशाल सेना एकत्र की।

फिरिश्ताका कथन है कि भारतवर्षके भविष्यका निर्णय करनेवाला यह महायुद्ध पेशावरके मैदानमें हुआ था। परन्तु इलियटकी दृष्टिसे यह सम्भव नहीं दिखाई देता। उत्बीने युद्धका क्षेत्र नहीं दिया। अनुमान यही होता है कि सिन्धुके पश्चिमका प्रदेश पहलेसे ही महमूदके अधिकारमें था इसलिए कुशल सेनापतिके सिद्धान्तानुसार उसने शत्रुकी सेनासे उसीके प्रदेशमें युद्ध करना निश्चित किया होगा। उत्बीने वामंड नदीके किनारेका निर्देश किया है (पृ० ३४०)। परन्तु इस नदीका वर्तमान नाम या स्थान अज्ञात है। उत्बीके उल्लेखसे यह भी मालूम करना कठिन है कि नदीके उस पार अथवा इस पार युद्ध हुआ था। अटक ज़िलेके गजेटियरमें लिखा है कि इस युद्धका स्थान अटक और हजरोके बीच छछका मैदान है। रावलपिंडीके

गजेटियरमें भी इसी अनुमानकी पुनरुक्ति है। दोनोंका मत है कि महमूद और काबुलके शाही राजा आनंदपालका युद्ध हुआ। उत्बीके वर्णनमें 'वचाल बिन अन्दपाल' नाम दिया है। परन्तु यह स्पष्ट रूपेण फारसी लिपि पढ़नेका दोष है। अंतिम नाम अवश्य आनंदपाल होना चाहिये। वचाल उसके पुत्रका नाम हो सकता है।

इस महत्वपूर्ण युद्धका क्रम और प्रकार ई० सन् १७६१के पानीपतके प्रसिद्ध हिंदू-मुसलमान रणसंग्रामसे इतना मिलता जुलता है कि कोई भी इतिहासकार पहले महल यही अनुमान करेगा कि फिरिश्ताने अहमदशाह अबदाली और मराठोंके युद्धके वर्णनकी नकल की है। परन्तु फिरिश्ताका ग्रंथ पानीपतके दो सौ बरस पूर्व लिखा गया था इसलिए इस समतासे केवल उस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है जिसके अनुसार इतिहासकी बार बार पुनरावृत्ति होती है। जिस प्रकार दो पहलवान पहले लड़-भिड कर कुछ देरतक चुप रहते हैं उसी प्रकार अटकके निकट छछके मैदानमें तुल्यबल हिंदू और मुसलमान सेनाएँ खाई खोद कर चालीस दिनतक योग्य अवसरकी प्रतीक्षा करती हुई पड़ी रहीं (ई० सन् १००८)। परन्तु असभ्य और अनावृत शिर गक्खरोंने* हिन्दुओंकी ओरसे एकाएक मुसलमानोंकी छाउनीपर आक्रमण किया और थोड़े ही समयमें पाँच दस हजार मुसलमानोंको काट डाला। युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों सेनाएँ एक दूसरीसे भिड गयीं।

---

* गक्खर अब मुसल्मान है। उनका निवास स्थान विशेषत रावलपिंडी जिला है। राजा जहाँदाद खाँ नामक गक्खर अधिपतिने कहा है कि फिरिश्ताने भूलसे खोक्करोंके स्थानपर गक्खर लिखा। हमला खोकरोंने किया। खोक्कर भी अब मुसल्मान है।

उत्वीके वचनानुसार दोपहरतक हिंदुओंकी जीत थी । परन्तु फिर उनके उत्साह और बलकी बाढ़ घटने लगी । (गक्खरोंकी संख्या अतिशयोक्तिसे तीस हजारतक बढ़ायी गयी है) । उत्वीके वर्णनमें इस अकस्मात् परिवर्तनका कारण नहीं मिलता । फिरिश्ता लिखता है कि "गक्खरोंका जोश देख कर उस दिनके लिए युद्ध रोकनेकी इच्छासे सुलतान युद्धक्षेत्रके बाहर निकल आया । परन्तु विधिकी इच्छासे जिस हाथीपर आनंदपाल सवार हुआ था वह हाथी बाण तथा गोलोंकी वर्षासे घबड़ा कर पीछे भागने लगा । इस घटनाको भागनेके लिए सेनापतिकी सूचना समझ कर हिन्दू सेना भी भागने लगी । अवदल्लाताईने उनका पीछा किया और आठ हजार हिंदुओंका शिरच्छेद किया ।"

उत्वीका वर्णन इससे भिन्न है । उसने एक और घटना बतलायी है जो विशेष महत्वकी है । वह कहता है कि "सुलतानने अपने निजी शरीररक्षकोंके साथ आक्रमण किया और 'काफिर' उस जोशके विरुद्ध टिक न सके ।" यह घटना भी मराठों और अफगानोंके संग्रामके समान है । दो पहरतक मराठोंकी विजय रही । इब्राहीमखाँकी तोपें और मराठा सवारोंके आक्रमण आफत मचा रहे थे । अकस्मात् विश्वासरावको गोली लगी और अपने ही हाथीपर उसकी मृत्यु हुई । सेनापतिके पतनका समाचार फैलते ही मराठी सेना छिन्न विच्छिन्न हुई । इस मौक़ेसे लाभ उठाकर अवदालीने अपने खास (रिजर्व) अफगानोंके साथ ज़ोरसे हमला किया । पराजित मराठी सेना इधर उधर भागने लगी । कदाचित् वीर परन्तु अभागे सदाशिव भाऊके समान आनंदपाल भी हाथीपरसे उतर कर रणसंग्राममें घुस पड़ा और वहीं उसके प्राण हरण हुए । उसका या

सदाशिव भाऊका बादको कहीं पता नहीं लगा। जिस प्रकार पानीपतके युद्धके बाद कुछ समयतक हिंदुओंका बल अबाधित रहा उसी प्रकार इस युद्धके बाद पंजाबमें कुछ कालतक हिंदू सत्ता प्रबल रही। परन्तु यह मर्मस्थानपर चोट थी। इन दोनों युद्धोंसे हिंदुओंका मुसलमानोंको भारतवर्षसे निष्कासित करनेका सामर्थ्य सदाके लिए जाता रहा।

यहाँ हिंदूपराजयके कारणोंका थोड़ा विचार करना आवश्यक है। छछके मैदानमें या पानीपतमें हिंदुओंको मनुष्य संख्याकी कमी नहीं थी। किंबहुना उनकी संख्या अधिक भी हो सकती है। पानीपतके सदृश यहाँ भी हिंदू बड़ी वीरतासे लड़े। किसी भी युद्धमें मुसलमानोंके शस्त्रास्त्र हिंदुओंकी अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण नहीं थे। पानीपतमें दोनोंके पास तोपें थीं और हिंदू तोपखाना ही अधिक कुशल था। छछके युद्धमें किसीके पास तोपें नहीं थीं क्योंकि उस समय तक बारूदका आविष्कार नहीं हुआ था। तलवार और भाला ही दोनों पक्षोंके शस्त्र थे। हिंदुओंके भाले और तलवारें मुसलमानोंसे किसी प्रकार कम तीक्ष्ण नहीं थीं। कदाचित् ऐसा कह सकते हैं कि छछके मैदानमें और पानीपतमें भी दैव मुसलमानोंके अनुकूल हुआ। जो लोग यह नहीं मानते कि दैव विजयका एक कारण है, वह कह सकते हैं कि दैवरूपी कारणका संबंध इस संसारमें हर घटनाके साथ संबद्ध है। परन्तु अनुकूल या प्रतिकूल दैवसे तात्पर्य है कि कुछ ऐसी आकस्मिक बातें विजयी पक्षकी सहायता करती हैं जो मनुष्यके अधिकारमें नहीं हैं। सबक्तगीन और महमूदके युद्धमें एकाएक बर्फकी आँधी आयी और उष्ण देशमें रहनेवाली अनभ्यस्त हिंदू सेनाकी बड़ी विकट अवस्था हुई। इस युद्धमें आनंदपालका हाथी बाणों

तथा गोलोंकी वर्षासे घबड़ा कर भागने लगा। परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि लड़ाके हाथी ऐसे अस्त्रोंका आघात, शिक्षित होनेके कारण, आसानीसे सह सकते हैं। वाण या गोले नये या विचित्र नहीं थे। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनका पहले पहल इसी युद्धमें उपयोग किया गया। इस आकस्मिक घटनामें और पानीपतमें विश्वासरावकी आकस्मिक मृत्युकी घटनामें कोई भेद नहीं है। आजकलके लोग जो हाथियोंके युद्धके विषयमें कुछ भी नहीं जानते स्वभावतः आश्चर्य प्रगट करते हैं कि कैसे सेनापति या राजा हाथीपर बैठकर गोले, वाण या विशेष रूपसे बंदूककी गोलीके शिकार बन जाते थे। परन्तु हम पहले ही देख चुके हैं कि वल्खके निकट इलेकख़ाँके युद्धमें महमूद भी हाथीपर सवार हुआ था। अतः यह विचार नहीं हो सकता कि, आनंदपालने हाथीपर बैठनेमें बड़ी भूल की। हम विश्वासरावके सम्बन्धमें कह सकते हैं कि उन्होंने पानीपतके युद्धके समय हाथीपर बैठकर अपने आपको शत्रुकी गोलियोंका निशाना बना लिया। परन्तु आनंदपालके समय बंदूकें नहीं थीं। उस समयके अस्त्र वाण और गोले थे। उनसे बचनेके लिए हाथीका और स्वयम् आनंदपालका कवच पर्याप्त था।

यद्यपि यह मान लिया जाय कि दैव प्रतिकूल था तथापि इतिहासकारको कहना पड़ेगा कि अकस्मात् संकटके समय जो वीरता और धैर्य पराक्रमी और बुद्धिमान् मनुष्योंको दिखलाना चाहिये या कमसे कम जिसकी उनसे आशा की जाती है वह वीरता या धैर्य हिंदुओंने कभी नहीं दिखलाया। हिन्दुओंके इस दोषका विवेचन हम दूसरे भागमें कर चुके हैं। हम यह भी दिखला चुके हैं कि कभी कभी सेनापतिके हट जानेसे या

उसके मरनेसे विजयी अवस्थामें भी हिंदू सैनिक भागने लगते हैं। उनके इस विचित्र बर्तावका मुख्य कारण राष्ट्रीयताका अभाव है। इस अभावके कारण सैनिकोंको जय या पराजयमें अपना कोई भी हित नहीं दिखाई देता था। इसीलिए हिंदू किंबहुना हिंदू और मुसलमान दोनोंका यह दोष स्मरण रखने योग्य है कि आपत्तिके समय उनमें अदम्य उत्साहका और दुःख सहनेकी शक्तिका प्रायः अभाव रहता है। यह गुण पाश्चात्यों (यूरोपीयों) में प्रायः दिखाई देगा। महमूदमें भी यह गुण निस्सन्देह था। दैवके विरुद्ध होते हुए भी वह लगनके साथ लड़ता था। अबदालीके समान वह हमेशा अपने पास एक दृढ़ और वीर शरीर-रक्षकोंका दल (रिजर्व) रखता था। ग़ज़नीके राजा, और विशेषतः महमूद, इस दलके लिए बहुत खर्च किया करते थे और हमेशा उसे तैयार रखते थे। इसी दलके कारण छछके चिरस्मरणीय युद्धमें महमूदकी विजय हुई और पंजाबके भाग्यका निर्णय हुआ। शीघ्र ही वह प्रान्त पूर्णरूपेण मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया।

टिप्पणी—संयुक्त युद्धका स्थान।

पूर्वोक्त कथनके अनुसार फिरिश्ता कहता है कि यह युद्ध पेशावरके निकट हुआ। कुछ भारतीय ग्रन्थकार निश्चितरूपेण पेशावर और जमरूदके बीचके स्थानको युद्धस्थल बतलाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह मैदान लाख दो लाख सेनाके संग्रामके लिए योग्य है। परन्तु अटक और रावलपिंडीके 'गज़ेटिअर' में इस युद्धका स्थान हज़रोके निकटका छछका मैदान दिया है। अटक ज़िलेकी प्राथमिक पाठशालाओंके प्रचलित भूगोलमें भी स्पष्टरूपसे लिखा है कि यह युद्ध हज़रोके निकट हुआ। हमारा मत है कि गज़ेटियरका विचार ही मानने योग्य है। उत्बीका उल्लेख है कि 'सुलतानने वामंड नदी पारकी।' परन्तु पेशावर ज़िलेमें इस नामकी कोई

नदी नहीं है इसलिए हम इस कथनको थोड़ा बदल कर मान सकते हैं कि 'सुलतानने नदी (सिन्धु) वाहिडके पास पार की।' पानीपतके साम्यसे अनुमान होता है कि जिस प्रकार अबदाली स्वयम् मराठोंसे मुठभेड़के लिए यमुना-पार चला आया उसी प्रकार महमूद भी सिन्धु नदी पार करके आनन्दपालके सन्मुख उपस्थित हुआ। यहाँ दिये हुए मानचित्रसे पाठक युद्धस्थानकी स्थिति जान लेंगे। शत्रुकी भारी सेना और सुदृढ़ स्थान देखकर महमूदने चारों ओर अपनी रक्षाके लिए खाई खोद ली। यह प्रश्न हो सकता है कि आनन्दपालने महमूदके सिन्धु पार करनेमें रुकावटें क्यों नहीं डालीं। इसके कई कारण हो सकते हैं। कदाचित् आनन्दपालको समाचार ठीक समयपर मिला न होगा या सिन्धुके पूर्व किनारेपर ही लड़नेकी उसकी इच्छा रही होगी। यह भी हो सकता है कि आनन्दपालका अनुमान रहा हो कि महमूद सिन्धुके इस पार नहीं आयगा। जिस प्रकार चचने मुहम्मदबिनक़ासिमका सिन्धुके किनारे पर ही विरोध किया उस प्रकारका विरोध यहाँ दिखाई नहीं देता। शायद आनन्दपालके आगमनके पहले ही महमूद इस तटपर आ गया था। ऐसी अवस्थामें हजरोका मैदान उसीके अधिकारमें रहा होगा। हज़रोके दक्षिण छछका मैदान बहुत विस्तृत और विशाल सेनाओंके युद्धके लिए योग्य है। मैदानमें किसी प्रकार गढ़े या टीले नहीं मिलते और पानीपतके सदृश यह भूमि समतल है तथा घुड़-सवारोंकी गतिके लिए उपयुक्त है। आजकल भी ब्रिटिश सेनाका परेड यहाँ होता है।

आठवाँ प्रकरण।

नगरकोटका आक्रमण।

हिंदुओंकी संयुक्त सेना छिन्न भिन्न हो गयी। महमूदकी विजय हुई। अब निकटमें उसका कोई विरोधी न रहा। ऐसे

सुअवसरसे लाभ उठा कर उसने एकदम नगरकोटपर आक्रमण किया। नगरकोटकी अगणित संपत्ति और विख्यात मूर्ति उस समय सर्वत्र प्रसिद्ध थी। महमूदका यह पहला ही आक्रमण था जो केवल लूटके उद्देश्यसे किया गया था। हम इस वादग्रस्त विषयका विवेचन यथास्थान करनेका प्रयत्न करेंगे कि केवल लूटकी दृष्टिसे हिंदू मंदिरोंपर आक्रमण करनेके लिए महमूदको दोष दे सकते हैं या नहीं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गुप्तचरोंका एक स्वतंत्र विभाग बना कर संपन्न और लूटने योग्य स्थानोंके संबन्धमें महमूदने जानकारी अवश्य प्राप्त कर ली होगी। उसके दूत उत्तर भारतके हिंदू राज्योंमें प्रकाशरूप या गुप्तरूपसे विचरते रहे होंगे। काँगड़ा राज्यमें नगरकोट नामका एक क़िला था। यहाँ एक प्रसिद्ध मूर्ति थी। इस देवताका नाम अज्ञात है। कोई कोई ज्वालामुखी मंदिरको और इस मंदिरको एक ही मानते हैं। परन्तु ज्वालामुखी एक दूसरा ही मंदिर है। ज्वालामुखी नगरकोटसे १५ मील दूर है। यहाँ एक पहाड़ीके शिखरसे वायुका (गैसका) उत्क्षेप होता है और मंदिरके पुजारी यात्रियोंके लिए उसे जला भी देते हैं। यहाँ संभवतः दुर्गादेवीका मंदिर रहा होगा। नगरकोटकी देवीकी पूजाके लिए बहुत दूर दूरसे लोग आते थे। प्रचलित नियमके अनुसार धनी यात्री मूल्यवान् चीजें भी देवताको चढ़ाते थे। नगरकोटका क़िला बहुत सुदृढ़ होनेके कारण 'हिंदुस्तान' के राजा अपना ख़ज़ाना वहीं रखा करते थे। इस स्थानका प्राचीन नाम भीमनगर है। ऐसा कहा जाता है कि महाभारतका वीर पुरुष भीम ही इसका संस्थापक था। परन्तु संभवतः इसकी स्थापना काबुलके ब्राह्मण राजा भीमदेवने की थी। उत्बीने उसका नाम 'बहीम क़िला' दिया है।

फ़ारसीमें 'वहीम' के स्थानपर 'भीम' आसानीसे पढ़ा जा सकता है। उत्वीने इस आक्रमणका निम्नलिखित वर्णन दिया हैः—

"और फिर वह (महमूद) वहीम वगरा (भीम नगर) क़िलेके नीचे आ पहुँचा। यह क़िला पानीमें पर्वतके समान ऊँचा खड़ा है। जबसे हिंदुस्तानके राजाओंने अपनी प्रसिद्ध मूर्ति यहाँ ला रक्खी तबसे यह एक संपत्तिका केन्द्र बना हुआ था। मुक्ति पानेके लिए भक्तोंकी ओरसे मूल्यवान् चीज़ें तथा जेवरोंके अगणित बोझे यहाँ भेजे जाते थे। सुलतानने इस क़िलेको चारों ओरसे घेर लिया। अन्दर रहनेवाले लोग क़िलेकी रक्षाके लिए बड़ी वीरता और दृढ़तासे लड़े।...... ....अंतमें..............वे शरण आये। उन्होंने सुलतान-की छत्रछायामें सेवा करना स्वीकार किया। जेवर, हीरे, रत्न और अप्राप्त संगृहीत वस्तुएँ इतनी अधिक थीं कि उनकी गिनती नहीं हो सकती थी और उनका हिसाब बहीपर लिखना अशक्य था। सुवर्ण और चाँदी सुलतानने अपने ख़ज़ांची अलतूनताश और इस्तरजिनको सौंप दी। ज़ेवर, इत्यादि चीज़ें वह स्वयम् ऊँटों और मनुष्योंपर लाद कर अपने साथ ले गया। उनमें जो सामान गिना जा सका उससे पता लगा कि कमसे कम दिरहमकी १०७० थैलियाँ और ७००८०० मन सोना और चाँदी थी। रेशमी वस्त्रोंकी इतनी अधिकता थी कि सरकारी मुंशी उनकी व्यवस्थितरूपसे गणना कभी नहीं कर सके। सब लोगोंने मान लिया कि इस प्रकारकी अपूर्व कारी-गरी और ऐसा सुन्दर काम आजतक और कहीं देखनेमें नहीं आया। उन्हें एक बड़ा संपूर्ण चाँदीका घर मिल गया। वह ६० हाथ लंबा और ५० हाथ चौड़ा था। उसमें रस्सियोंकी सहा-यतासे कमरेको छोटा बड़ा करनेकी व्यवस्था थी। वह घर भी

छोटा बड़ा हो सकता था। उसके अन्दर ग्रीक पद्धतिके ज़रीका काम किये हुए रेशमी परदे थे, और दो सुवर्णकी तथा दो चाँदीकी मूर्तियाँ भी थीं। अपने खास विश्वस्त अधिकारीको क़िलेकी रक्षाके लिए नियुक्त करके सुलतान ग़ज़नी लौटा। अपने महलके दालानमें उसने लूटमें लाये हुए हीरे, मोती इत्यादि रत्नोंका प्रदर्शन किया। भिन्न भिन्न देशके मांडलिक राजा, प्रांतीय अधिकारी और तुर्की राजाके वकील उस अद्भुत संग्रहको देखकर दंग रह गये।"

उपर्युक्त वर्णन केवल इसलिए दिया गया है कि पाठक महमूदको इन आक्रमणोंमें मिलने वाली लूटकी कुछ कल्पना कर सकें और आगे चल कर बार बार इन वर्णनोंकी पुनरुक्ति न करना पड़े। यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि महमूद शिवाजीके समान इस संपत्तिका व्यवस्थित हिसाब-किताब रक्खा करता था। इस लूटका योग्य रीतिसे मूल्य आँका जाता था। सरकारका विशिष्ट भाग छोड़ कर सिपाहियोंमें बाकी धनके बाँटनेके लिए कुछ नियम अवश्य रहे होंगे। नवीन धर्म-प्रचारके प्रारंभमें अरबोंने भी इस प्रकारके नियम बनाये थे और उनका पालन पूरी तरहसे हुआ करता था।

इलियटके मतके अनुसार क़िलेके चारों ओर बाणगङ्गा और बियाही नदीका पानी था। क़िलेसे एक मीलकी दूरीपर भीम नगर है। आजकल उस स्थानपर भवानीका मन्दिर बना हुआ है [१]। नगरकोटका यह आक्रमण छुलरू युद्धके बाद ही हुआ होगा। उत्बीने भी "और फिर" शब्दोंके उपयोगसे यही सूचित किया है। परन्तु कुछ इतिहासकारोंका मत है कि यह हमला ई० सन् १००६ में हुआ।

---

१ इलियट भाग २ पृष्ठ ४४५

टिप्पणी ।

कांगडेका क़िला और मंदिर ।

कांगडा हिमालयके एक ऊँचे मैदानपर बसा हुआ है। उसके पीछे हिमाच्छादित पर्वतावलि है। उन पर्वतोंसे बारह महीने तीन चार 'खड्ड' (छोटी नदियाँ) बहते हैं। यह प्रदेश अति प्राचीन कालसे आर्य संस्कृतिका अनुयायी दिखाई पडता है। महाभारतके समयसे यहाँ चंद्रवंशी क्षत्रिय राज्य कर रहे हैं। आजकल उन्हें कटोच कहते हैं। उनका मुख्य आश्रयस्थान कांगडेका किला था। जब तोपोंका आविष्कार नहीं हुआ था उस समय यह किला अजेय था। बाणगंगा और मनूनी नामके दो गहरे 'खड्डों' (नदियाँ) के संगमपर किला बना हुआ है। संगमपर और दोनों नदियोंके बीचमें एक बहुत छोटा और कम चौडा भूखंड है। यहाँ एक गहरी खाई खोदी हुई है और किलेका मुख्य द्वार इसके बाद पडता है। नदियोंकी ओरकी किलेकी दीवारें लगभग तीन सौ फुट ऊँची हैं। किलेके मुख्य द्वारकी रक्षा थोडेसे मनुष्य भी कर सकते हैं। मुसलमान लेखकोंसे ज्ञात होता है कि किलेमें एक प्रसिद्ध मंदिर था। हम प्रत्यक्ष देखी हुई बातोंसे तथा 'आर्किआलॉजिकल सर्वे' की रिपोर्टसे इस मंदिरका स्थान निश्चित करनेका प्रयत्न करेंगे। ई० सन् १९०५ की रिपोर्टमें भूकंपके पूर्वके सब मंदिरोंका विस्तृत वर्णन है।

रिपोर्टमें किलेका इतिहास इस प्रकार दिया है —(पृष्ठ ११) "अपराजित महमूदने ई० सन् १००९ में इस किलेपर अपना अधिकार जमाया। ई० सन् १३३७ में पुनः महम्मद तुगलकने उसे ले लिया। उसके पश्चात् सुल्तान फीरोज शाहने भी ई० सन् १३५१ में इस किलेको फिर ले लिया। तब ई० सन् १६५१ में जहाँगीरने उसपर अधिकार जमाया तब यह पूर्ण रूपसे मुसल्मानोंके हाथमें आया। मुगलोंका बल घटनेपर दूसरे ससारचंदने इस किलेको फिरसे वापिस ले लिया। जम्मू और काश्मीर कौन्सिलके सदस्य कर्नल जनकचंदका—जो स्वयम् कटोच हैं—मत है कि संसारचंदके पिता घमंडचंदने किला वापिस ले लिया (ई० सन् १७८६)।

संसारचंदने ई० सन् १८०९ में उसे रणजीत सिंहको दे दिया। सिक्खोंसे यह ब्रिटिशोंको ई० सन् १८४६ में प्राप्त हुआ। ई० सन् १९०० तक ब्रिटिश सेना क़िलेमें रहा करती थी।" (अब यह क़िला भूकंपसे गिर गया है।)

किलेमें मुख्य स्थान लक्ष्मीनारायण और शीतलाके मंदिर है। ये दोनों भूचालमें नष्ट हुए। हम अनुमान करते हैं कि महमूदके आक्रमणके बादके ये मंदिर हैं। अंबिकाका मंदिर एक सादी इमारत है (अद्यापि वहाँ पूजा होती है।) भूचालसे उसको हानि नहीं पहुँची। परन्तु उसकी रचना मुसलमानी कालकी दिखाई देती है। अंबिकाके दक्षिण दो जैन मूर्तियाँ हैं। एक केवल चरण है और दूसरी आदिनाथकी मूर्ति है। मूर्तिके आसन-पर एक अंशतः उपलब्ध लेख मिलता है। कनिंगहैमके अनुसार उसपर संवत् १५२३ (१४६६ ई०) दिया हुआ है, अर्थात् वह पहले ससारचंदके समयका है। (सर्वे-पृष्ठ १५)

"तीसरा चित्र कांगड़ा नगरान्तर्गत इन्द्रेश्वर मंदिरका है। कहा जाता है कि यह शिवालय इन्द्रचन्द्रने बनवाया था। कल्हणने अनन्तदेवका (ई० सन् १०२८-१०६३) समकालीन एक इन्द्रचन्द्र बतलाया है। यदि यह वही इन्द्रचन्द्र माना जाय तो मन्दिर ११ वीं शताब्दीका होगा। इस मन्दिरके निकट भी दो जैन मूर्तियाँ हैं। एकपर 'लोककाल' ३० यह छप दिया है। पहले यह लेख बैजनाथ मन्दिरकी प्रशस्तिका समकालीन अर्थात् ई० सन् ८५४ का माना गया था परन्तु अब बैजनाथ लेख संवत् १२०४ का सिद्ध हुआ है। इसलिए यह मूर्ति ई० सन् ११५४ की होगी। मन्दिर-का सभामंडप भूचालसे नष्ट हो गया है। परन्तु शेष मन्दिर एवं जैन मूर्तियाँ ज्योंकी त्यों हैं।" (सर्वे-पृष्ठ १६)

"कांगड़ा ज़िलेका सबसे प्रसिद्ध और पूज्य स्थान निस्सन्देह बज्रेश्वरीका मन्दिर है। यह कांगड़ा नगरके भवन नामक बाहरी भागमें बना हुआ है। यह स्थान प्राचीन समयसे पवित्र माना जाता है। परन्तु जो मन्दिर भूचालमें नष्ट हुआ वह प्राचीन नहीं था। पुराने मन्दिरका द्वार अभीतक अखंड है और उसके चौखटके एक लेखसे प्रतीत होता है कि मन्दिर "श्री महम्मदके समय" बनाया गया था। कनिंगहैमके अनुसार यह मह-

म्मद ई० सन् १५२३ से १५४६ तक दिल्लीमें राज्य करता था। इस मन्दिर की स्थापनाके समय कांगडेमें संसारचंद राजा था।" अब हिन्दू समाजने इस मन्दिरका पुनरुद्धार किया है।

उपर्युक्त बातोंसे सिद्ध होता है कि जो मन्दिर महमूदने नष्ट किया वह लक्ष्मीनारायणका या शीतलादेवीका या नगरान्तर्गत इन्द्रेश्वरका मन्दिर नहीं हो सकता। कारण ये तीनों मन्दिर महमूदके पश्चात् बने थे। अब बचे केवल दो मन्दिर, एक भवनका वज्रेश्वरीका मन्दिर और दूसरा किलेके अन्दरका अंबिकाका मन्दिर। वज्रेश्वरीके मन्दिरके जीर्णोद्धारके समय हिंदू समाजकी ओरसे एक घोषणापत्र प्रकाशित हुआ था। उस पत्रमें लिखा था कि महमूदने इस मन्दिरको ई० सन् १००९ में नष्ट किया। कांगडेके एक राजाने ई० सन् १०४३ में इसको फिरसे बनवाया। ई० सन् १३३७ में महम्मद तुगलकने मन्दिर फिरसे तोड डाला और हिन्दुओंने उसको फिरसे बनवाया। परन्तु फीरोजने ई० सन् १३६० में पुन मन्दिरको गिरा दिया। ई० सन् १४४० में राजा (पहले) संसारचंदने मन्दिरका जीर्णोद्धार किया परन्तु शेरशाहके सेनापति खवास खांने इसका फिरसे ई० सन् १५४० में नाश किया। राजा धरमचन्दने अकबरके समयमें पुन मन्दिरको बनवाया। वर्तमान गुलेरके महाराजा बहुश्रुत और विद्वान् हैं। उनका कथन है कि महमूदने भवनका वज्रेश्वरीका मन्दिर नष्ट किया था। पूर्व कालमें भवनके चारों ओर कोट (दीवार) था। और भी कई मनुष्योंका यही मत है। परन्तु हमारा विचार है कि वज्रेश्वरीका मन्दिर (पहले) ससारचंदने बनवाया। इस मतके समर्थनार्थ कई प्रमाण हैं। मुसलमान लेखकोंका वर्णन है कि महमूदने कांगडेका किला लेकर अन्दर जो देवीका मन्दिर था वह नष्ट किया। वज्रेश्वरीका मन्दिर किलेमें नहीं है। वह भवनमें है। यह भाग कांगडा किलेसे दो मील दूर है। इन स्थानोंका मानचित्र स्पष्ट रूपसे पाठकोंके सन्मुख रखनेके लिए हम कोट कांगडा, नगरकोट और भवनका मानचित्र यहां दे रहे हैं। संभव है कि भवनके चारों ओर कोट रहा हो परन्तु वह किसी प्रकारसे विशाल न रहा होगा। उसपर अधिकार जमाना कांगडेकी अपेक्षा सुकर था। ऐसा दिखाई

देता है कि जो मन्दिर तुगलक़ने गिराया वह भी क़िलेहीमें था। कटोच राजाओंने क़िला वापिस ले लिया और मन्दिर पुनः बनवाया। परन्तु फ़ीरोज तुगलक़ने फिर किला ले लिया। हमारा अनुमान है कि इन बार बार आनेवाली आपत्तियोंसे तंग आकर पहले संसारचदने भवनमें मन्दिरकी स्थापना की।

यह भी एक विशेष बात है कि आजकलकी वज्रेश्वरीकी मूर्ति स्वयम्भू है। अर्थात् भूमिके ऊपर आये हुए एक पाषाणखण्डके सिरका या नेत्रोंका थोड़ा बहुत आकार है। हमने यह पहली ही देवीकी स्वयम्भू मूर्ति देखी। इस स्थानके सम्बन्धमें कथा है कि एक किसान खेत जोत रहा था, उस समय हलकी चोटसे देवीके सिरसे खून बहने लगा। स्वयम्भू देवीके आविष्कारके सम्बन्धमें हमेशा ऐसी कथाएँ कही जाती है। जिस प्रकार मुसल्मानोंने हिन्दुओंको बनारस या उज्जयिनीमें खंडित मन्दिरोंके पास फिरसे मन्दिर बनवानेकी आज्ञा दी उसी प्रकार कांगड़ेका क़िला मुसल्मानोंके अधीन होनेपर हिन्दुओंको भवनमें मन्दिर बनानेकी आज्ञा मिली। इसकी स्थापना ई० सन् १४४० में पहले संसारचंदने की। परन्तु मूर्तिभंजक शेरशाहने सौ वर्षके बाद उसका भी नाश किया। अकबरके समय धरमचन्दने इसकी पुन. स्थापना की क्योंकि धार्मिक विषयोंमें अकबर एकपक्षी नहीं था। इस मनोरंजक इतिहाससे कांगड़ेके कटोच राजाओंकी हिंदूधर्मके प्रति उत्कट श्रद्धा दिखाई देती है। धरमचन्दका मन्दिर ई० स० १९०५ के भूकंप तक विद्यमान था। अब हिन्दू समाजके प्रदीप्त धर्मोत्साहसे इस मन्दिरका पुनः जीर्णोद्धार हुआ है।

अभीतक क़िलेके अन्दर जो अम्बिकाका मन्दिर है उसमें कटोच राजपूत पूजाके लिए आते हैं। किंबहुना हमको यह मालूम हुआ कि हर एक कटोच गोदान-संस्कारके समय अपने कटे हुए केश अम्बिका देवीके सन्मुख रखता है। इस कथासे एव वज्रेश्वरीके आविष्कारकी कथासे हम समझते हैं कि जो मन्दिर महमूदने नष्ट किया वह अम्बिका देवीका था। आर्किआलाजिकल 'सर्वे' की रिपोर्टके अनुसार वर्तमान मन्दिर महमूदके बादका है। या यह भी हो सकता है कि यहं वज्रेश्वरी देवीका मूल मन्दिर

था। चंद्रिकाकी मूर्ति भी स्वयम्भू है। इस प्रकारके मन्दिरोंमें चल-मूर्तियाँ भी बहुत सी होती हैं। और उत्बीने स्पष्ट लिखा है कि यहाँ भारत-वर्षके लोगोंने अपनी अनेक मूर्तियाँ ला रक्खी हैं।

नवाँ प्रकरण ।

पंजाबकी दासता ।

पहले कहा जा चुका है कि महमूदका ध्यान पूर्व और पश्चिम इन दोनों दिशाओंकी ओर एकसा था। उसकी दूर-दृष्टि और अविश्रांत गति दोनों ओर एक ही उत्साहसे चलती थी। किरमान और कोहिस्तान इन पश्चिम और उत्तरके दो प्रान्तोंकी व्यवस्था करके उसने पंजाबके प्रश्नका स्थायी निर्णय करनेकी ओर ध्यान दिया। पंजाबका राजा पहले ही हार चुका था और उसका एक सुदृढ आश्रयस्थान कोट काँगडा महमूदने ले लिया था। अब महमूद पंजाबके राजाओंका दूसरा आश्रय-स्थान लेनेका प्रयत्न करने लगा। यह स्थान नारदीनका किला था। उत्वी वर्णन करता है कि "हिंदुस्तानके प्रान्तोंमें घुसकर महमूदने उस प्रान्तको नष्टभ्रष्ट करना प्रारंभ किया। मूर्तिपूज-कोंको दण्ड दिया और मूर्तियाँ तोड डालीं। गरीब और अमीर सबको तंग किया। उनके राजाको नरकमें भेज दिया (मार डाला)। यह प्रलय देखकर 'हिंद' के राजाने शरण आनेके विचारसे अपने संबंधी महमूदके पास अधीनता स्वीकार करनेके लिए भेज दिये"[१]

---

१ उत्वी पृ० ३६१ (तारीखे–यामिनी)

उत्वीने इस आक्रमणका वर्णन संक्षेपमें किया है।। उसने यद्यपि अध्यायके शीर्षकमें लिखा है कि नारदीन आक्रमण करके लिया गया तथापि उसने अपने ग्रन्थमें आक्रमणका वर्णन नहीं दिया है। उत्वीके पश्चात् लिखे हुए इतिहासोंसे इलियटने अनुमान किया है कि "ये आक्रमण दो थे। उत्वीके वर्णनसे दिखाई देता है कि नारदीन संभवतः गुजरातकी राजधानी नहरवाला थी। दूसरा आक्रमण नन्दनके किलेपर हुआ।"[1] फिरिश्ता तथा दूसरे इतिहासकारोंका वर्णन आगे दिया गया है। उत्वीके लेखसे भी स्पष्ट दिखाई देता है कि दो आक्रमण हुए थे। परन्तु नारदीन और नहरवालाको एक मानना कठिन है। कारण महमूदके लिए पहले बगैर पंजाब लिये दक्षिणकी ओर इतनी दूर जाना अशक्य था। हमारा मत है कि नारदीन पंजाबमें कोई स्थान रहा होगा और उसके नाशके पश्चात् पंजाबके राजाको महमूदका आधिपत्य मानना पड़ा। उत्वीने इस राजाका नाम नहीं दिया। उसने एक राजाकी मृत्युका भी उल्लेख किया है। अतः संभव है कि स्वयम् आनंदपाल इस युद्धमें मारा गया हो। हमने अल्बेरूनीका उल्लेख दे दिया है कि आनंदपाल महमूदका कट्टर शत्रु हो गया था परन्तु उसके पुत्र त्रिलोचनपालका झुकाव महमूदकी ओर था। इसके आधारपर हमारा अनुमान है कि आनंदपाल संयुक्त हिंदुओंके युद्धमें मारा नहीं गया था; उसकी मृत्यु इस युद्धमें हुई (ई० सन् १००९ या १०१०) और त्रिलोचनपालने मांडलिक बनना स्वीकार कर संधि कर ली। इस संधिकी शर्तें उत्वीके अनुसार इस प्रकार हैं—"(१) पंजाबके राजाने खिराज देना स्वीकार किया और गजनीका आधिपत्य मान लिया। (२) खिराजमें

1 इलियट भाग २

साठ हाथीकी जोड़ियाँ और एक खासी रकम—जो दोनों पक्षोंकी सम्मतिसे निश्चित होगी—देना होगा। यह खिराज पंजाबके सरदार और अन्य लोग गजनीके खजानेमें जमा किया करेंगे। (३) गजनीका सार्वभौमत्व दिखानेके लिए २००० सेना पंजाबके राजा सुलतानकी सेवामें रक्खेंगे। (४) वे प्रतिदिन अपना मांडलिकत्व घोषित करेंगे, (५) बादमें राज्य करनेवाले राजा भी इन्हीं शर्तोंके अनुसार चलेंगे। इन शर्तोंपर सुलतानने सन्धि मान ली। यह निश्चित रकम गजनीके खजानेमें एक महत्वपूर्ण आय हो गयी। इस संधिके कारण व्यापारी और यात्री खुरासान और हिंदमें निर्विरोध आने जाने लगे।"[१]

हर एक राज्यके पतनकी सीढियाँ क्रमेण बँधी हुई हैं। इस उदाहरणसे आठ सौ वर्ष बादके मराठा साम्राज्यके पतनका स्मरण हो आता है। प्रारंभमें ई० सन् १८०३ में मराठों और अंग्रेजोंका घोर युद्ध हुआ। ई० सन् १००८ के छह हजरोंके पराजयके सदृश अंग्रेजोंके कुशल सेनापति वेलस्लीने मराठोंकी संयुक्त सेनाका पराजय किया। त्रिलोचनपालके समान बाजीरावने भी अंग्रेजोंका आधिपत्य मानकर सहायक सेना रखना स्वीकार किया। उस समयकी प्रचलित प्रथाके अनुसार आनंदपालके पुत्रने मुसलमान साम्राज्यकी सेवाके लिए गजनीमें २००० सेना अपने खर्चेसे रक्खी। अंग्रेजोंका तरीका इसके बिलकुल विरुद्ध था। उन्होंने मांडलिक राजाको मजबूर किया कि वह अपनी राजधानीमें अपने खर्चेसे ब्रिटिश सेना रक्खे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि दूसरा तरीका किसी राज्यके अंतिम पतनका निश्चित कारण है। इसमें एक प्रकारका

१ उत्वी—तारीखे यामिनी—पृ० ३६२

भारी कर भी वसूल होता है। त्रिलोचनपालका अंतिम पतन शीघ्र ही अर्थात् चार वर्ष बाद हुआ। अगले प्रकरणमें उसका विवेचन किया जायगा। बाजीरावके उदाहरणमें अंतिम पतन संधिके १५ साल बाद हुआ।

महमूद कुछ दिनोंके लिए पंजाबको मांडलिक बनाना अवश्य चाहता था, क्योंकि पश्चिमकी ओर जो झगड़े उपस्थित हुए थे उनकी ओर ध्यान देना उसके लिए परमावश्यक हो गया था। उनमें मुख्य, और भारतीयोंके लिए महत्वकी, समस्या ग़ोरकी थी। ग़ोर ग़ज़नीके पश्चिम एक छोटासा पहाड़ी प्रदेश है। इस प्रान्तमें अफ़ग़ानोंकी एक बड़ी वीर जाति निवास करती थी और व्यापारी और यात्री हमेशा उससे परेशान रहते थे। यह प्रांत ग़ज़नीके निकट ही है अर्थात् स्वयम् महमूदको यह अवस्था कष्टजनक प्रतीत हो रही थी। ये लोग विधर्मी और बड़ी उद्दण्ड प्रकृतिके थे। अपने दुर्गम पर्वतोंके आश्रयसे वे व्यापारियों एवं यात्रियोंसे ज़बरदस्ती कर वसूल किया करते थे। महमूदको शीघ्र ही उनका दमन करना आवश्यक हुआ। उसने अपनी सेनाको उनकी दुर्गम और कठिन पहाड़ियोंपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी और स्वयम् शरीररक्षकोंके साथ आगे बढ़ा। कठिन दर्रेसे घाटीमें घुसकर वह ग़ोरके क़िलेके पास पहुँचा। इस स्थानके पास बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। यहाँ महमूदने युक्तिसे काम लिया। अपने सिपाहियोंको भागनेका संकेत किया। उत्वी लिखता है कि "वे (ग़ोरी) धोखेमें पड़ गये। उन हिंदुओंसे चुप न रहा गया और लूटके मोहसे प्रेरित होकर वे पहाड़ छोड़ कर मैदानमें आ गये। सुलतानने सेनाको फिर घुमा कर सबको रणक्षेत्रमें सुला दिया। उनके मुखियाका पुत्र क़ैद हुआ। कई पीढ़ियोंकी

जमा की हुई संपत्ति एवं लूट सुलतानको प्राप्त हुई। उस पुत्रने अंगूठीमें रक्खे हुए विषको खाकर प्राणत्याग किया"।[1]

हमने जान बूझकर यह वर्णन विस्तारपूर्वक दिया है। पाठकोंका ध्यान दो तीन महत्वपूर्ण बातोंकी ओर विशेषतः आकर्षित होगा। एक तो गोरकी घाटीके निवासी तबतक हिंदू थे। धर्मपरिवर्तनके बाद उन्होंने १२ वीं शताब्दीमें भारत-वर्षपर आक्रमण करके अपना राज्य स्थापित किया। इस समय महमूदने उन्हें ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया परन्तु बादको वे कट्टर मुसलमान बन गये। उन्होंने हिन्दुस्तानका ही नहीं बल्कि ग़ज़नीका भी राज्य जीत लिया। और एक बात दिखाई देती है कि शिवाजीके समान महमूद भी 'गुरीला' (Guerilla) युद्धपद्धतिका उपयोग करता था। जैसा एक उत्तम राजामें होना चाहिये उसमें व्यापारके उत्कर्षकी प्रबल इच्छा थी। वह खुरासान और हिंदके बीचमें व्यापार-मार्ग सुरक्षित करना चाहता था। वर्तमानकालके समान उस समय भी जंगली पहाड़ी लोग व्यापारियोंको लूटा करते थे। पाठक देख लेंगे कि इन डाकुओंकी व्यवस्था जिस दक्षता और साव-धानीसे ब्रिटिश सरकार करती है उसी दक्षता और सावधानी-से महमूद किया करता था।

(२) पंजाब-हरण

इसके बाद तीन चार सालतक पंजाब और भारतवर्षमें शान्ति रही। या यों कह सकते हैं कि त्रिलोचनपालने स्वीकृत खिराज हर वर्ष नियमित रूपसे दिया। इसके अतिरिक्त मह-मूद पश्चिमके झगड़ोंमें फँसा था। उत्बीने वर्णन किया है कि

[1] उत्बी—तारीखे यामिनी पृष्ठ ३६४-६५

इस बीचमें खुरासान और उसकी राजधानी निशापुरमें भयंकर अकाल पड़ा था। गर्जिस्तान (जार्जिया) सामानी साम्राज्यका एक प्रान्त था। उसका "शौर" * महमूदका आधिपत्य नहीं मानता था। महमूदने अपनी स्वाभाविक द्रुतगतिसे और कुशलतासे उसपर हमला करके उसको पूर्णरूपेण जीत लिया। इस झगड़ेसे मुक्त होनेपर उसने हिंदुस्तानपर दृष्टि डाली। मानव स्वभावके अनुसार उसकी यह इच्छा हुई कि मांडलिक पंजाबका हरण करके वह प्रान्त अपने राज्यमें सम्मिलित किया जाय। और त्रिलोचनपालको भी विद्रोह करके दासतासे मुक्त होनेकी इच्छा होना स्वाभाविक था। तात्पर्य यह है कि एक पक्षने या दूसरे पक्षने किसी न किसी बहानेसे युद्ध शुरू किया। ऊपर निर्दिष्ट किये हुए मराठोंके उदाहरणमें शायद पाठकोंने पढ़ा ही होगा कि ई० सन् १८१८ में इसी प्रकारका युद्ध प्रारंभ हुआ और बापू गोखलेके पराजयके बाद बाजीराव हमेशाके लिए राज्यहीन हुआ।

उत्बी इस युद्धका वर्णन करता है कि "ई० सन् १००६ (हिजरी ४००) में सुलतानकी इच्छा होने लगी कि हिंदुस्तान जीतकर वहाँ मसजिदें बनवानेके बाद काफिरोंका देश पूर्णरूपसे जीतें। इसी हेतुसे उसने अपनी विजयी सेना इकट्ठी की और उसका बड़ा सम्मान किया। उस समय हिंदुस्तानमें बहुत बर्फ़ पड़ी हुई थी। यह देखकर सुलतान वापिस लौट आया परन्तु बसन्तके समय पुनः आक्रमण किया। हिंदुस्तानके राजाने एक पर्वतका आश्रय लिया था और दर्रेके तंग मार्गमें उसने हाथी खड़े किये थे। उसने अपने राज्यके सब

* जिस प्रकार तुर्क राजाओंको खाँ या सुलतान या हिंदू राजाओंको 'राय' कहते थे उसी प्रकार जार्जियाके राजाओंको 'शौर' कहते थे।

घुड़सवार और पैदल इकट्ठे किये थे। काफ़िरोंकी एक भारी सेना सिंध हिंदुस्तान इत्यादि भागोंसे एकत्र होकर मक्खियोंके सदृश गुनगुनाने लगी। युद्धके प्रारंभ होनेपर रणक्षेत्रपर गेंदके समान सिर उड़ने लगे। जब जब हाथी आगे बढ़ आते थे तब तब मुस्लिम सेना उनकी सूँड़ें तलवारसे काट देती थी और भालेसे कंठ-छेदन करती थी। जब महमूदने अपने सरदार 'अबदल्ला ताई'को संकटमें फँसा हुआ देखा तब अपने चुने हुए रक्षकोंमेंसे कुछ तारे उसकी सहायताके लिए भेज दिये। इस प्रकार युद्धकी आग धधकती रही और अंतमें विजयरूपी जलसे बुझ गयी। महमूदके सौभाग्यके एक हुंकारसे शत्रुके सब प्रयत्न व्यर्थ हुए। मुसलमानोंने उनके हाथी और अन्य सामान लूट लिये। ... .इस प्रान्तको इस्लामी राज्यमें उच्च स्थान प्राप्त हुआ और महमूदके आक्रमणोंकी सूचीमें यह विजय भी दर्ज हुई।[1]

इस वर्णनसे मालूम होता है कि त्रिलोचनपालने कई हिंदू राज्योंकी सेना इकट्ठी कर पुनः तीसरी बार संयुक्त प्रयत्न किया और एक घमासान युद्ध हुआ। महमूदके सौभाग्यसे और शरीररक्षकोंकी वीरतासे उसकी पुनः विजय हुई। यह युद्ध ई० सन् १०१३ (हिजरी ४०४) में हुआ। इस तारीखके लिए इलियटने उत्बीका आधार दिया है। परन्तु कई प्रतियोंमें ४०० हिजरी दिया है और दूसरे मुसलमान इतिहासकारोंमें भी कई लेखक यही वर्ष देते हैं। इस युद्धके स्थानके विषयमें भी बहुत मतभेद है। उत्बीने अध्यायके प्रारंभमें नारदीन नाम दिया है। दूसरे लेखक नंदूना नाम देते हैं। कुछ लोगोंका मत है कि यह युद्ध झेलमके किनारे बालनाथकी पहाड़ीके निकट

१ उत्बी—तारीखे यामिनी पृ. ३८९-३९२

हुआ । परन्तु इलियटका अनुमान है कि जिस दर्रेका उत्बीने निर्देश किया है वह मर्गलाका दर्रा होगा [1]। इसी युद्धका निज़ामुद्दीन अहमदने विस्तृत वर्णन दिया है। उसके आधार-पर इलियटने निम्नलिखित बातें दी हैं—

"४०४ हिजरीमें सुलतानने बालनाथके पर्वतमें बसे हुए नंदुना क़िलेपर आक्रमण किया। क़िलेकी रक्षाके लिए चुनी हुई सेना छोड़कर पुरुजयपाल स्वयम् काश्मीरकी घाटीमें चला गया। क़िला लेनेके पश्चात् सुलतानने पुरुजयपालपर चढ़ाई की। परन्तु वह और भी दुर्गम पर्वतोंमें घुस गया। अनेक काफ़िरोंको शुद्ध करते हुए और धर्मका प्रचार करते हुए सुलतान ग़ज़नी वापिस लौट आया।" इलियटका मत है कि "नंदुना क़िलेकी रक्षा करनेवाला अधिकारी जयपालका पुत्र भीम होगा। किंबहुना उत्बीके वर्णनमें इसका नाम 'निडर भीम' आया है।" जिस अनुवादका हमने उपयोग किया है उसमें यह नाम नहीं मिलता। हो सकता है कि उत्बीकी भिन्न-भिन्न प्रतियाँ उपलब्ध हों। आश्चर्य है कि इलियटने पुरुजयपाल नामका स्पष्टीकरण नहीं किया। हम समझते हैं कि यह पाठ भी ग़लत है क्योंकि इस समय त्रिलोचनपाल राजा था और फ़ारसी या अरबीमें 'त्रिलोचनपाल' के स्थानपर पुरुजयपाल पढ़ा जाना शक्य है। जयपाल और आनंदपाल दोनों इस समय जीवित नहीं थे। इस उल्लेखसे यह संभावना दिखाई देती है कि त्रिलोचनपाल अपने 'निर्भय' पुत्र भीमको लड़नेके लिए छोड़कर स्वयम् काश्मीरकी ओर चला गया। इस युद्धमें 'निर्भय' भीमको भी हार खानी पड़ी। इसके बाद जो वाक्य उत्बीने लिखा है उससे अनुमान होता

1 इलियट पृष्ठ ४५१ (भाग २)

है कि सारा पंजाब या कमसे कम उसका एक बड़ा भाग ग़ज़नीके राज्यसे जोड़ा गया। अल्बेरूनीके लेखके अनुसार इस घटनाके पश्चात् भी त्रिलोचनपाल ई० सन् १०२१ तक जीवित था। अब इन दोनों वर्णनोंको जोड़कर कहा जा सकता है कि त्रिलोचनपाल और भीम काश्मीरकी ओर चले गये और काश्मीरकी सीमाके निकट बसे हुए कुछ पंजाबके हिस्से-पर सात सालतक राज्य करते थे।

राजतरंगिणीके प्रकाशक स्टाइनका मत है कि त्रिलोचन-पाल और महमूदका तौशी नदीके किनारे एक घोर युद्ध इसी वर्ष अर्थात् हिजरी ४०४ (ई० सन् १०१३) में हुआ। इस युद्धका विस्तृत वर्णन कल्हणने अपने ग्रंथमें दिया है। यह नदी पश्चिमकी ओरसे आकर हज़ारा ज़िलेमें झेलमसे मिलती है। ज़िला भी काश्मीरकी सीमापर है। तुंगके नेतृत्वमें काश्मीरकी एक सेना इस युद्धमें त्रिलोचनपालकी सहायताके लिए आयी थी। त्रिलोचनपालने तुंगको सावधान कर दिया था कि इन चालबाज़ तुर्कोंसे सम्हल कर लड़ना। परन्तु महमूदने एक चाल चली। उसने एक सेनाविभाग नदीके दूसरे किनारे-पर भेज दिया। तुंगने उस विभागको हरा दिया तब वे सिपाही भाग कर फिर इस किनारेपर आ गये। इस क्षणिक विजयसे एवं चालसे मोहमें पड़कर तुंग बड़े जोशसे नदी पार करके मैदानमें आकर लड़ने लगा। युद्ध बड़ा भयंकर हुआ। काश्मीरके कई सरदार मारे गये। त्रिलोचनपालने बड़ा पराक्रम किया और अपनी वीरता दिखलाई। परन्तु यह निश्चित हो चुका था कि भाग्यके फेरसे हिंदू हार जायँगे इसलिए महमूदकी पुनः विजय हुई। त्रिलोचनपाल काश्मीर भाग गया और सदाके लिए राजनीतिक क्षेत्रसे अदृश्य हो

गया। काबुलका शाही राज्य समाप्त हुआ। इस शोकमय अन्तके विषयमें कल्हणके दुःखोद्गार पहले खण्डमें दिये गये हैं। अल्बेरूनी लिखता है कि त्रिलोचनपालने ई० सन् १०२१ तक राज्य किया और उसके पश्चात् पाँच सालतक भीमका राज्य रहा। इस कथनका उत्बीके वर्णनसे दो तीन प्रकारसे मेल हो सकता है। (१) यह युद्ध ई०सन् १०२१ में ही हुआ होगा। या (२) पंजाबके पहाडी प्रदेशके किसी क्षुद्र प्रान्तमें त्रिलोचनपाल ई० सन् १०२१ तक राज्य करता रहा। या (३) कन्नौज जाकर वह ई० सन् १०२१ में महमूदसे पुनः लडकर मर गया।

झेलम गजेटियरमें बड़ा मनोरञ्जक वर्णन मिलता है कि नमकके पहाडके अन्तर्गत नन्दन नामका किला है। उसीका प्राचीन नाम निंदूना है। इस स्थानमें अद्यापि काश्मीरके राजाओंके समयके खडहर मिलते हैं। गजेटियरके बासठवें पृष्ठ में लिखा है कि यह जिला पहले काश्मीरके अधिकारमें था और फिर काबुलवालोंने इसे जीत लिया। गजेटियरमें यह भी प्रतिपादन किया है कि आनंदपाल जयपालादि जिन राजाओंको मुसलमान इतिहासकार 'लाहौरके राजा' कहते हैं, वे वास्तवमें काबुलके शाही राजा थे। परन्तु गजेटियरने फिरिश्ता के आधारपर नन्दनके आक्रमणका समय ई० सन् १००८ (हिजरी ४००) दिया है। यह संभवत भूल है और ४०० के स्थानपर ४०४ हिजरी होना चाहिये। इस गजेटियरका मत है कि लवणपर्वतावलिके राजपूतोंका धर्मपरिवर्तन शहाबुद्दीन गोरीके समयमें हुआ। गजेटियरकार लिखते हैं कि यद्यपि इस प्रदेशके राजपूत, जाट इत्यादि लोगोंको महमूदने बल-प्रयोगसे मुसलमान बनाया था तथापि ऐसा दिखाई देता है कि महमूदके वापिस जानेपर वे पुनः हिन्दू हुए। परन्तु इसका

अर्थ यह नहीं कि इस प्रदेशपर महमूदका अधिकार भी न रहा । इस प्रदेशपर महमूद और उसके वंशजोंका अवाधित अधिकार रहा। लवण पर्वतावलिके जंजुआ राजपूत पंजावके वहुत प्राचीन निवासी हैं। वे अव ज़वरदस्ती मुसलमान वनाये गये। वे ययाति-पुत्र अनुके वंशज माने जाते हैं। एक यह भी विचार है कि लाहौरका जयपाल जंजुआ था। (झेलम गजेटियर)।

उत्वी लिखता है कि उस मन्दिरमें एक पत्थर मिला। उसपर खुदे हुए लेखमें दिया था कि यह मन्दिर ४०००० वर्ष के पूर्व वनाया गया था। यह सुनकर सुलतान वोल उठा "कैसी मूर्खता है। संसारके सव सुज्ञ और विद्वज्जन इस जगत्को सात हजार वर्षोंसे अधिक प्राचीन नहीं मानते।" इस वीसवीं शताब्दीमें उस शिलालेखका कथन और महमूद की समालोचना, दोनों अज्ञानपूर्ण मानी जायँगी। संभवतः यह प्राचीन शिलालेख अशोकके समयका रहा होगा और आसपासके लोगोंने सच्ची मितीके अभावमें उसको वहुत प्राचीन कालका मान लिया होगा। अस्तु, परिस्थितिसे भी अनुमान होता है कि नन्दन वहुत प्राचीन स्थान रहा है।

टिप्पणी–१

नन्दनका क़िला।

झेलम गज़ेटियरमें इस क़िलेका निम्नलिखित वर्णन मिलता है (पृष्ठ ४६-४७):— "चोआ सैदानशासे सीधे पूर्व दिशामें चौदह मीलकी दूरीपर नमकके पहाड़के वाहरी भागमें एक भारी दर्रा है। उसके दोनों ओर वादनवाला और आरागाँव ये दो गाँव हैं। वादनवाला नीचे और आरागाँव उपर है। इस दर्रेसे जानेवाले मार्गपर पास ही एक पाषाणमय पहाड़ी

है। उस पहाड़ीपर एक मन्दिर, एक क़िला और एक बड़े गाँवके खंडहर मिलते हैं। मन्दिर जीर्णावस्थामें है। इस पर्वतावलिके दूसरे मन्दिरोंके समान यह भी काश्मीरी पद्धतिका है। जिस वेदीपर मन्दिर खड़ा है वह वेदी मन्दिरसे पुरानी, बहुत प्राचीन कालकी है। बादमें मन्दिरके निकट एक मसजिद भी बनायी गयी थी। उसकी भी अवस्था खराब है। मन्दिरके जगमोहनमें संभवतः उसी समयका एक शिलालेख है। उसके अक्षर इतने खंडित हैं कि अब वह लेख पढ़ना अशक्य है। आश्चर्य है कि अधिकतर इस बातकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि यह क़िला महमूद ग़ज़नीने लिया था।"

नन्दनसे लगभग बारह मीलपर भेरा नगर है। वहिंड-हरणके पश्चात् आनन्दपाल सम्भवतः यहीं रहता होगा। वर्तमान भेरा नगर झेलमके पूर्व किनारेपर है। परन्तु प्राचीन नगर पश्चिमी किनारेपर बसा था। उसका प्राचीन स्थान अनीतक ऊँचे टीलोंसे स्पष्ट दिखाई देता है और प्राचीन सिक्के वहाँ पाये जाते हैं। वर्तमान भेरा नगर विद्वत्ता, व्यापार और कलाओं-का केन्द्र है। पंजाबके वकील इंजिनियर इत्यादि विशेष बुद्धिमान् लोग बहुतसे भेरासे आते हैं। ये जातिके क्षत्रिय (खत्री) होते हैं। अब उन्होंने क्षात्रवृत्ति छोड़कर दूसरे पेशे स्वीकार किये हैं। भेरामें विद्वान् ब्राह्मणोंकी भी बस्ती है। रुई, लकड़ी, और लोहेकी उत्तम कारीगरी भी यहाँ देख सकते हैं। इसका स्थान लाहौर और वहिंडके बीच है। अतः संभव है कि यह शाही राजाओंकी तीसरी राजधानी रही हो। इंपीरियल गज़ेटियरमें भेराके सम्बन्धमें निम्नलिखित बातें दी हैंः—पुराना नगर नदीके पश्चिमी किनारेपर था। उसे महमूदने और बादको चंगीज़ ख़ाँके कुछ सैनिकोंने लूटा। नया नगर नदीके पूर्व एक मसजिदके आस-पास ई० सन् १५४९ में बसाया गया। आजकल यह एक बड़ा रेलवे स्टेशन है।

टिप्पणी—२

उत्तरकालीन शाही राजाओंकी शोधी हुई तिथि।

अलबेरूनीने त्रिलोचनपालका अन्त ई० सन् १०२१ में दिया है। उसके

आधारपर हमने खंड १ और २ में शाही राजाओंके हर एक पीढ़ीके राज्य कालका औसत २० वर्ष मानकर निम्नलिखित राज्यकाल दिये थे —

१–जयपाल ई० सन् ९६० ९८०
२–आनन्दपाल ई० सन् ९८०-१०००
३–त्रिलोचनपाल ई० सन् १०००-१०२१

अब उत्थी आदि मुसलमान इतिहासकारोंसे जो तिथियाँ मालूम हो जाती हैं उनके आधारपर उत्तर शाही राजाओंके राज्यकालमें परिवर्तन करना होगा। हमने अभी देखा ही है कि जयपाल ई० सन् १००१ तक राज्य करता रहा। अपमान एवं वृद्धावस्थाके कारण उसने आत्महत्या की। अर्थात् उसका राज्य बहुत दिनों तक रहा। जब मुख्य राजधानी वहिंड महमूदने जीत ली तबसे आनन्दपाल अपने राज्यके दूसरे नगर भेरामें रहता होगा। वहिंडसे हजरो लाहौरके मार्गसे होते हुए व्यापारी लोग हमेशा काबुलके फल-मेवे इत्यादि पंजाबमें लाते थे और पंजाबसे भारत-का कपडा काबुल ले जाते थे। आनन्दपाल ई० सन् १००९ में नारदीनके युद्धमें मारा गया और त्रिलोचनपालने महमूदका स्वामित्व मानकर ई० सन् १०१४ तक राज्य चलाया। उस साल महमूदने भारतवर्षपर आक्रमण किया। त्रिलोचनपालने मर्गलाके दर्रेमें उसका विरोध किया परन्तु हारकर उसे काश्मीरकी ओर भागना पड़ा। त्रिलोचनपालने काश्मीरके निकटके पहाडी भागमें ई० सन् १०२१ तक राज्य किया। या ई० सन् १०१४ हीमें महमूदने उसका पीछा करके तोसी नदीपर उसको पराजित किया और वह कन्नौजके राज्यपालके पास चला गया। परन्तु इसकी सम्भावना कम है। मुसलमान इतिहासकार भ्रमसे राज्यपालके स्थानपर त्रिलोचनपाल यह नाम देते हैं। भीम कदाचित् कन्नौज गया हो और आगे वर्णन किये हुए राहिब नदीके युद्धमें मारा गया हो। इन चारों राजाओंके शोधित राज्यकाल इस प्रकार होते हे —

जयपाल ई० सन् ९६० १००१
आनन्दपाल ई० सन् १००१-१००९
त्रिलोचनपाल ई० सन् १००९ १०२१

भीम ई० सन् १०२१-१०२६

ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि आगे चलकर इस वंशके किसी राजाने मालवाके भोजके दरबारमें आश्रय लिया था।

दसवाँ प्रकरण।

थानेश्वरका आक्रमण।

यहाँ आगे बढ़नेके पूर्व यह देखना चाहिये कि गजनीका शुरूका छोटा सा राज्य अब कहाँतक फैला था। कुछ विद्वान् लोग समझते हैं कि महमूदने केवल लूटके लिए आक्रमण किये, और उसका उद्देश्य यह कदापि नहीं रहा कि दूसरे राज्य जीतकर अपना साम्राज्य स्थापित करें। परन्तु महमूदके साम्राज्यका अवतक क्रमेण विस्तार देखनेसे इस कल्पनाके लिए कोई आधार नहीं दिखाई देता। यह विचार नितान्त भ्रमपूर्ण है। उसने खूब समझ कर अपना राज्य फैलाया और लोगोंको बलप्रयोगसे मुसलमान बनाकर राज्यकी नींव दृढ की। इस्लाम प्रचारमें उसका धार्मिक उत्साह भी अवश्य था परन्तु राष्ट्रको बलसम्पन्न और दृढ रखनेके लिए कौन कौनसी बातें आवश्यक हैं यह भी वह अवश्य जानता होगा। उसने पहले खुरासान इत्यादि निकटवर्ती प्रान्त ले लिये। खुरासानी प्रान्तपर सामानी साम्राज्यके समय भी सबक्तगीनका आधिपत्य था। इसके बाद महमूदने पूर्वकी ओर ध्यान दिया। जलालाबाद और काबुल ये प्रान्त (लमघान) पहले ही सम्मिलित हो चुके थे और वहाँके निवासी जबरदस्ती मुसलमान बनाये जा चुके थे। महमूदने पहले वर्तमान सीमाप्रान्तीय वन्नूका प्रदेश जीत

लिया। वन्नूके पास मिट्टीके बड़े बड़े टीले हैं। एक कथा है कि रामके बन्धु भरतने पहले पहल इस प्रदेशको बसाया। यह प्राचीन हिन्दू प्रान्त काबुलके राज्यमें था। कारण मिट्टीके ढेरोंमें इंडो—सथिअन समयके अज़ेज़ (Azes) और वासुदेवके तथा अंतिम शाही ब्राह्मण राजाओंके भी सिक्के पाये जाते हैं। एक विशेष बात है कि किसी भी मुसलमान राजाके सिक्के इन टीलोंमें नहीं मिलते। इससे अनुमान होता है कि वन्नूका पुराना नगर महमूदने गिराया या नष्ट किया। ग़ज़नीसे भारतवर्षमें आनेके लिए मुख्य प्राचीन मार्ग वन्नूसे एवं कुर्रमकी घाटीसे है। अब खैबरका मार्ग खुल जानेसे इस रास्तेका महत्व कम हुआ है (वन्नू गज़ेटियर)। इस प्रान्तको लेकर महमूदने लोगोंको बलात् मुसलमान बनाया और भारतवर्षका रास्ता सुलभ बना लिया। पेशावरके मैदानमें जयपालकी हार होनेके बाद वहिंड सहित पेशावर प्रान्त महमूदने अपने राज्यमें मिला लिया। वहिंड काबुल राज्यकी राजधानी थी। भारतवर्ष जानेका दूसरा मार्ग वहिंडके नीचे सिंधु और काबुल नदियोंके संगमपरसे था। क्रमु और कुभा (कुर्रम और काबुल) की घाटियाँ ऋग्वेदमें भी प्रसिद्ध हैं और वैदिक आर्योंके इस प्राचीन निवासस्थानको महमूदने जीत कर मुसलमान बनाया। इसके बाद महमूदने सामानी साम्राज्यके दूरके प्रान्त, जीत कर अपने राज्यमें सम्मिलित किये। पूर्वकी ओर मुलतानका मुस्लिम राज्य भी उसकी छत्रछायामें आगया। भाटियाका राज्य भी ग़ज़नीके राज्यमें जोड़ा गया। इसका स्थान मुलतान-के दक्षिण पश्चिम सिन्धु और सतलजके बीचमें था। अन्तमें शाही राज्यका बचा हुआ प्रान्त पंजाब उसने जीत लिया। पंजाबमें महमूदने ज़बरदस्ती धर्मपरिवर्तन करनेका सिद्धान्त

पूर्ण रूपसे सफल करनेकी चेष्टा नहीं की। इस शिथिलताके कारणोंका विचार आगे किया जायगा। तथापि संभव है कि इस प्रान्तके भी बहुतसे लोगोंको महमूदने मुसलमान बनाया। इस प्रकार निकटके प्रान्तोंको धीरे धीरे हज़म करते हुए उसने राज्यकी सीमा बढ़ायी। इसी तरीक़ेका उदाहरण ब्रिटिश राज्यका विस्तार है। पहले अंग्रेजोंने बंगाल ले लिया। फिर बिहार, उसके बाद युक्तप्रान्त, और अन्तमें सिक्खोंको जीत कर पंजाबपर अधिकार जमाया। राज्य जप्त करनेका तरीक़ा भी महमूद और अंग्रेजोंका एकसा है—पहले स्थापित राजसत्ताको जीत कर कुछ दिनोंके लिए मांडलिक बनाना और फिर उसका संपूर्ण नाश करना। अस्तु, पंजाबपर पूर्णरूपसे अपना राज्य स्थापित करनेके बाद महमूदका ध्यान पंजाबके पूर्वके प्रान्तोंको लूटने एवं जीतनेकी ओर आकर्षित हुआ। अर्थात् पहला निकटवर्ती प्रदेश थानेश्वरका राज्य था, उसीपर महमूदने आक्रमण करनेकी तैयारी की।

अधिक संभव है कि थानेश्वरमें एक स्वतंत्र राज्य रहा हो क्योंकि अलबेरूनीने अपने वर्णनमें थानेश्वरका निर्देश किया है। (अलबेरूनीमें दो थानेश्वरोंका उल्लेख आया है। एक गंगा और यमुनाके बीच और दूसरा वर्तमान थानेश्वरके स्थानपर। प्रायः पहिला नाम ठीक नहीं है।) थानेश्वरमें एक प्रसिद्ध देवताका स्थान था और अब भी है। बादके मुसलमान लेखक उसे 'जगसोम' कहते हैं। इस शब्दका ठीक संस्कृत-रूपांतर नहीं होता। भारतके अंतिम प्रसिद्ध बौद्ध सम्राट् हर्षका पिता प्रभाकरवर्धन इसी थानेश्वरमें राज्य करता था। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ कई बहुत उत्तम हाथी थे, उनको प्राप्त करनेके लिए महमूदने थानेश्वरपर आक्रमण किया।

उत्वीने इस हाथीकी जातिको 'सिलमान' कहा है। बादके इतिहासकार उसे मुसलमान कहते हैं, क्योंकि जिस प्रकार नमाज़के समय मुसलमान घुटने टेकते हैं उसी प्रकार यह हाथी भी झुकते थे। परन्तु इस आक्रमणमें भी महमूदके सब साधारण उद्देश विद्यमान थे। लूटना, प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर तोड़ना, या दूसरे राज्योंको जीतना इत्यादि उद्देश इस आक्रमणमें भी दिखाई देते हैं। उत्वीने इस आक्रमणका निम्नलिखित वर्णन दिया है:—

"इस प्रकार महमूद धार्मिक युद्धमें प्रवीण अपनी सेनाको थानेश्वरकी ओर ले चला। मार्गमें उसे एक बड़ा भयंकर रेगिस्तान मिला। आकाशमें एक पक्षी भी दिखाई नहीं दे रहा था। परन्तु ईश्वरकी कृपासे उसको सहायता मिली और वह थानेश्वर जा पहुँचा। सामने एक नदी बहती थी। पीछे एक ऊँचा पर्वत और बीचमें कंकड़ोंसे व्याप्त भूमि थी। शत्रु पहाड़में जा बैठा। दो स्थानपर नदी पार करके सुलतानने शत्रुपर आक्रमण किया और शत्रुकी सेना पहाड़ोंहीमें छिन्न भिन्न की। शत्रुका सबसे बड़ा आधार पैर पटकनेवाले हाथियोंपर था। वे वहीं छूट गये। सुलतानके हाथी उन्हें घुमाकर अपनी छावनीमें ले आये। सेनाने युद्धमें इतना खून बहाया कि नदीका पानी पीने लायक न रहा।"

यह वर्णन सरल है। एक बड़े योद्धासे महमूदका घोर युद्ध हुआ (इस राजाका नाम नहीं मिलता)। और जो हाथी आक्रमणके कारण हुए थे वे भी प्राप्त हुए। यहाँ मूर्तिभंजनका निर्देश नहीं है। परन्तु प्रारंभमें उत्वीने वर्णन किया है कि इस आक्रमणका उद्देश मूर्तिखंडन भी था। इस थानेश्वरका स्थान भी कुछ संदेहजनक प्रतीत होता है। क्योंकि उत्वीने एक रेगि-

स्तान पार करके नदीके तटपर पहुँचनेका उल्लेख किया है और यह वर्णन प्रसिद्ध थानेश्वरकी परिस्थितिसे नहीं मिलता। वहाँ पथरीली भूमि और ऊँचे पर्वत भी नहीं हैं। (इलियट भाग २, पृ० ४५२)। परन्तु यह ध्यानमें रहे कि उत्वी प्रत्यक्ष देखी हुई घटनाका वर्णन नहीं कर रहा है और उसका वर्णन हमेशा अतिशयोक्तिपूर्ण होता है। थानेश्वरके पास सरस्वती नदी है और 'कर्नाल गजेटियरमें' जिलेका वर्णन करते हुए लिखा है कि थानेश्वरके उत्तर कुछ पहाड़ी प्रदेश है। उस प्रदेशसे सरस्वती इत्यादि बरसाती नदियोंका उद्गम होता है। यह युद्ध थानेश्वरके निकट नहीं बल्कि थोड़ी दूरीपर हुआ होगा। इस युद्धकी तारीख ई० सन् १०१४ ही ठीक है और कर्नाल गजेटियरमें यही वर्ष दिया है। हमारी धारणा है कि पंजाब-हरणके बादही दूसरे वर्ष महमूदने मुलतानकी ओरसे रेगिस्तान पार कर थानेश्वरपर आक्रमण किया। सारा पंजाब उसके अधिकारमें था और वह जिस मार्गसे चाहे जा सकता था। इस आक्रमणके पूर्व ही महमूद दूसरी बार मुलतान आया और उसने करमातीं पंथके पाखंडका पुनः अवलंबन करनेके लिए वहाँके मुसलमानोंको दण्ड दिया।

हम इस आक्रमणका फिरिश्ता द्वारा किया वर्णन काल्पनिक समझते हैं। वह इस आक्रमणका साल हिजरी ४०२ (ई० सन् १०११) देता है। वह लिखता है कि महमूदका थानेश्वरपर हमला करके प्रसिद्ध जगसोम देवकी मूर्तिको भ्रष्ट करनेका विचार आनंदपालको मालूम होगया, और यद्यपि वह महमूदका मांडलिक था तब भी उसने बड़े आदरके साथ इस विचारका निषेध किया। परन्तु महमूदने उसकी परवाह नहीं की और आनंदपालको उत्तर दे दिया कि इस्लामके भक्त स्वर्गमें पुण्य-

फल प्राप्त करनेके लिए हमेशा मूर्तिपूजा नष्ट करनेका प्रयत्न करते हैं। यह उत्तर सुनकर दिल्लीके राजाने थानेश्वरकी मूर्तिकी रक्षाके लिए सारे भारतवर्षके हिंदुओंको बुलाया। परन्तु हिंदुओंके एकत्र होनेके पूर्व ही महमूदने थानेश्वरपर आक्रमण किया। थानेश्वर लेनेके बाद महमूदकी इच्छा दिल्लीपर आक्रमण करनेकी हुई। परन्तु उसके सरदारोंने निवेदन किया कि जबतक पश्चात् भाग पंजाब न ले,लिया जाय तबतक दिल्ली-पर हमला करना अपने सिरपर आफत बुलाना है। यह सब वर्णन कपोलकल्पित है। क्योंकि दिल्लीका उस समय अस्तित्व नहीं था। कमसे कम उस राज्यका इतना महत्व नहीं था कि वह भारतवर्षको निमंत्रण दे सके। वह एक छोटा मांडलिक राज्य था। दूसरी बात उत्वीके वर्णनसे यह दिखाई देती है कि पंजाब जब्त होनेके एवं आनंदपालकी मृत्युके पश्चात् यह आक्रमण हुआ। इस हमलेका कुछ पहिले होना मान कर फिरिश्ताने एक मनगढन्त स्तुतिपर वर्णन तैयार किया। 'यामिनी'-की कथासे इस आक्रमणका दिल्लीसे कोई संबंध दिखाई नहीं देता। इलियटने यथार्थ कहा है कि समकालीन लेखकोंने दिल्लीका कहीं उल्लेख नहीं किया। "दिल्लीके राजाओंका एवं उस नगरका गज़नीके संबंधमें फिरिश्ताने जो उल्लेख किया है वह निराधार है" (इलियट भाग २ पृष्ठ ४५४)। इस उलझनका मुख्य कारण यह दिखाई देता है कि चार पॉच शताब्दियोंके पश्चात् लिखनेवाले लेखकको अपने चारों ओरकी राजनीतिक परिस्थिति भूलना अशक्य था। और अपने कालके प्रसिद्ध दिल्ली नगरका कहीं न कहीं समावेश करनेकी उसकी इच्छा हुई।

ग्यारहवाँ प्रकरण ।

मथुराकी लूटे ।

पहले आक्रमणसे महमूदकी यह धारणा हो गयी कि मध्य हिन्दुस्तानपर चढ़ाई करना भी कठिन नहीं है । मध्य हिन्दुस्तानका मथुरा नगर देवालयों और अपनी अपार संपत्तिके लिए प्रसिद्ध था । मध्य देशके राजा राज्यपालसे लड़नेके लिए महमूदको कारण भी मिल गया था। राज्यपालने उसके विरुद्ध पंजाबके राजाओंको समय समयपर सहायता दी थी। इतनी दूर आकर आक्रमण करनेके लिए महमूदने युद्धकी अच्छी तैयारी की । अपने पश्चात् भागको सुरक्षित रखनेके लिए पश्चिमके प्रान्तोंका बन्दोबस्त करना उसके लिए आवश्यक था । उत्बीने अपने ग्रन्थमें वहाँकी कठिनाइयोंका विस्तारसे वर्णन किया है। महमूदको गजनीमें मंत्रियोंमें हेर-फेर करना पड़ा । ग़ज़नीकी राज्यप्रणाली व्यवस्थित थी और प्रान्तीय अधिकारियोंपर महमूद कड़ी नज़र रखता था। उस समय विद्याका केन्द्र खुरासान था और मुख्य भाषा फारसी थी । पर स्वयं कवि और विद्वान् होनेके कारण नये वजीरने आदेश कर दिया था कि सब राज्य कार्य अरबीमें हो । तुर्कोंके राजा इलेक् खाँकी इसी समय मृत्यु हुई और उसका भाई गद्दीपर बैठा। जिस समय महमूद हिन्दुस्तानके मूर्तिपूजकोंपर चढ़ाई कर उन्हें पराजित कर रहा था उसी समय चीन और मंगोलियाके मूर्तिपूजक काशगरके मुसलमान तुर्कोंपर एक लाख सेना लेकर टूट पड़े । यह २०० वर्ष बाद होने वाले चंगेज खाँ और तैमूरके भयंकर आक्रमणोंकी पूर्व सूचना थी । इस आक्रमणका सामना करनेके लिए इलेक् खाँके भाई तोगन

खाँने सब मुसलमान राजाओंसे सहायता माँगी और महमूद-ने भी थोड़ी सेना सहायतार्थ भेजी। इस अवसरपर मुगलों और तुर्कोंमें घमसान युद्ध हुआ। हिंदुस्तानके मूर्तिपूजकोंकी तरह चीनके मूर्त्तिपूजकोंकी भी हार हुई और उनमेंसे प्रायः सब जानसे मारे गये। महमूदने तोगन खाँसे मित्रता कायम रखी और अपने पुत्र मसऊदका विवाह इलेक् खाँकी पुत्रीसे कर इस मित्रताको और भी दृढ़ किया। मसऊदको उसने बल्खका शासक नियुक्त किया।

इस स्थानपर उत्वीने यह भी लिखा है कि महमूदके बारेमें यह ख्याति हो गयी थी कि उसे इस्लाम धर्मपर विशेष श्रद्धा है और लोग समझने लगे कि महमूदमें बुद्धिमत्ताके कारण धर्म-विवेचनकी भी पात्रता है। महमूदने इसपर पूरा ध्यान रक्खा कि इस्लामके सिद्धान्तोंमें नयी कल्पनाओंसे कोई बुराई न आने पावे। कौन कौन पाखण्डी हैं और वे कहाँ कहाँ अपनी सभाएँ करते हैं, इसका पता लगानेके लिए उसने गुप्तचर रक्खे। ये पाखण्डी विभिन्न प्रान्तों और नगरोंसे ढुँढ़वा कर दरबारमें लाये जाते थे और पेड़ोंमें ठुकवा कर या पत्थरोंसे कुचलवा कर मरवा डाले जाते थे। धार्मिक तथा आदरणीय सरदार अबूबकर इस काममें सुलतानका समर्थक था। टाहिरटी नामका एक आदमी ग़ज़नी आ रहा था। पूछनेपर वह बताता था कि मैं मिस्र के राजा तथा खलीफ़ाका वकील हूँ, साथमें चिट्ठियाँ और खिलअत ला रहा हूँ। वह अपनेको सैयद भी कहता था। महमूदकी आज्ञासे वह हिरातमें रोक दिया गया और खुरासानकी राजधानी निशापुरमें पहुँचाया गया। यहाँ उसके पाखण्डके सम्बंधमें जाँच हुई और बगदादके खलीफा कादिरबिल्लाकी सम्मतिसे उसे प्राणदण्ड दिया गया। इस

प्रकार महमूदने अपने विस्तृत राज्यमें पाखण्ड रोकनेका बंदोबस्त किया। इतना ही नहीं, उसने खिलाफतका झगडा भी मिटाया। इससे उसकी कीर्ति सब मुसलमानी प्रदेशोंमें फैल गयी (पृ० ४४४)। ऐसी अवस्थामें धर्मोत्साहसे प्रेरित होकर यदि योद्धागण धर्मयुद्ध (जेहाद) में सम्मिलित होनेके लिए ग़ज़नीमें जमा होने लगे तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। उन्हें आशा थी कि इन युद्धोंसे मूर्तियाँ तोड़ तथा मन्दिर लूट कर परलोक और इहलोकमें सुफल प्राप्त करनेका मौका मिलेगा।

"ख्वारिज़मका विद्रोह दमन कर उस प्रान्तको अपने राज्यमें मिला लेनेके बाद महमूदने तीसरी बार जेहाद करनेका विचार किया और बोस्तमें आकर अपने सूबोंके आयव्ययकी जाँच की। जो प्रान्त हिन्दुओंसे जीत कर मुस्लिम राज्यमें मिलाये गये थे उनमें प्रचुर धन था और काश्मीरके सिवा किसी स्थानमें मूर्तिपूजाका अंधकार न रह गया था। इस्लामी धर्मोत्साहसे प्रेरित होकर आक्सस नदीके उस पार मवरुन्नहरके मैदानसे बीस हजार योद्धा आये और महमूदने इन्हें लेकर कन्नौजपर आक्रमण करनेका निश्चय किया। विदेशी राज्य इस प्रदेशसे बिलकुल अपरिचित थे।"

उत्बीने कन्नौजके आक्रमण और मथुराकी लड़ाईका इस प्रकार वर्णन किया है—

"जिहून (सिंध), झेलम और चन्द्र नदियाँ पार कर वह सीधे तिब्बत पहुँचा। वह जहाँ कहीं पड़ाव डालता लोगोंके प्रतिनिधि आकर उसकी अधीनता स्वीकार करते और राजनिष्ठा प्रकट करते थे। उसके काश्मीर पहुँचनेपर वहाँके सेनापति शासीनका पुन हवाली महमूदके पास नौकरीके

लिए आया। पर जब उसे बताया गया कि अन्यधर्मावलम्बियोंके लिए सेनामें स्थान नहीं है तव हवाली वीनीके लुटेरोंमें शामिल होकर सेनाके आगे आगे चलने लगा। महमूदकी सेना एकके वाद एक घाटी पार करती आगे वढने लगी। प्रातः काल मुर्गा वोलते ही सेनामें सहनाई और नक्कारे वजने लगते थे। (यहाँ हमें हर्षकी युद्ध-यात्राका वर्णन स्मरण हो आता है। यह वर्णन हमारे प्रथम भागमें मिलेगा।) इस प्रकार हिजरी सन् ४०६ (ई० सन् १०१८) में रज्जव मासकी २० वीं तारीखको यमुना पार कर महमूदकी सेना राजा हरूनके वरणके किलेके समीप पहुँच गयी। हिन्दुस्तानके राजाओंमें हरून वहुत वडा राजा था पर महमूदका सेना समुद्र देख उसने दस हजार अनुयायिओंके साथ किलेसे उतर कर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। यहाँसे फौज कलजंदके किलेके पास पहुँची। कलजंदके पास वहुत अधिक संपत्ति, मजवूत अश्वदल और वहुत वडी पैदल सेना थी। अपने हाथी, अश्वारोही और पैदल सेना लेकर वह एक जगलमें महमूद की वाट जोहता था। यह जंगल ऐसा घना था कि सूर्यकी किरणें पृथ्वी तक नहीं पहुँच सकती थीं, यदि आकाशसे एक सुई भी गिरी होती तो डालियों और पत्तियोंके कारण उसका नीचे आना कठिन था। सुलतानने अपनी वीनी सेनाको ऐसे जंगलमें घुसनेकी आज्ञा दी और किलेके समीपसे एक मार्ग निकाला। महमूदके हरे सेना-समुद्रने "अल्लाहो अकवर" की घोर गर्जना की। शत्रुसेना कुछ कालतक अपने स्थानपर डटी रही। पश्चात् उसने हमले किये। पर अन्तमें यह स्पष्ट हो गया कि सव वातें दैवाधीन हुआ करती हैं; तलवार कितनी ही अच्छी क्यों न हो, उसमें कितना ही जोर क्यों न हो, उस-

की धार कैसी ही तीक्ष्ण क्यों न हो, मुसलमानके शरीरके पास पहुँचते ही वह दैवी आज्ञाके अधीन हो जाती है। अन्तमें निरुपाय होकर शत्रु प्राण बचानेके लिए नदीमें कूद पड़े पर बहुतसे तलवारके घाट लगे और बहुतसे डूब गये। इस प्रकार पाँच हज़ार सैनिकोंके मृत्युमुखमें जानेपर कलजंदने प्रथम अपनी पत्नीको खंजरसे मार डाला, पश्चात् अपना पेट फाड़ कर वह भी नरकको सिधारा। उसकी सम्पत्तिमेंसे १८५ हाथी और बहुतसी मूल्यवान् चीजें लूटमें मुसलमानोंके हाथ लगीं। शहरमें हिन्दुओंका एक उपासना-स्थल था। सुलतान जब वहाँ पहुँचा तो उसे वह आश्चर्यान्वित कल्पनासे बसाया हुआ एक नगरसा प्रतीत हुआ, वह सुलतानको स्वर्ग भवनसा जान पड़ा।"

महमूदके सिरिश्तेदार उत्बीने ग़ज़नीमें बैठ कर यह जो काव्यमय संक्षिप्त वर्णन किया है उसकी तुलना अन्य लेखकों-की तत्संबंधी रचनाओंसे करके हम वास्तविक बात निश्चित कर सकते हैं। महमूदके पास इस समय एक लाख सेना थी। इसमें आक्सस नदीके उस पारसे आये हुए बीस हजार तुर्क योद्धा भी थे। पर कुशल सेनापतिकी तरह महमूदने कूच करते समय रास्तेमें आज्ञाकारितापर विशेष ध्यान रक्खा था। तड़के उठकर वह दिन भर चलता था। अपनी द्रुत गतिसे शत्रुपर अचानक आक्रमण करनेका उसका विचार था। वह हिमालयकी तराईकी राह चला। इसमें उसका उद्देश्य कदाचित् यह रहा होगा कि पंजाबकी बड़ी नदियोंको उनके उद्गमके पास ही पार कर लिया जाय। मार्गमें जो भी किला पड़ा वह उसकी प्रचंड सेनाके सामने ठहर न सका। उसने हिन्दुओंको यह कह कर अपनी सेनामें घुसने नहीं दिया

कि तुम लोग हमारे गुलाम हो। उसने यदि ऐसा किया होता तो उसकी सेनामें विरोधी भाव वालोंका एक दल उत्पन्न हो जाता जो समयपर दगा भी दे सकता था। इसीलिये काश्मीरकी फौजको अपनी सेनाके आगे आगे चलनेकी उसने आज्ञा दी थी। (हमें इस संबंधमें सन्देह है कि काश्मीरसे कोई सेना आयी होगी। इसके बारेमें आगे चलकर और लिखा जायगा।) रज्जबकी बीसवीं तारीखको अर्थात् सन् १०१८ ईसवीके दिसम्बर मासमें यमुना नदी पार कर वह दक्षिणकी ओर अंतर्वेदीमें घुसा। कारण, कन्नौज गङ्गाके पश्चिम तटपर है और उसपर आक्रमण करते समय बीचमें गङ्गानदी रखना उसे अभीष्ट नहीं था। कई मांडलिक राजपूत राजाओंने उसका विरोध किया। पर बरणके राजाकी तरह बहुतोंने उसके आगे सिर ही झुकाया होगा। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि बरण वर्तमान बुलन्दशहर ही था। माना जाता है कि यह प्राचीन नगर महाभारतका वारणावत है। यहाँ ईसवी सन्से दो शताब्दी पूर्वके शक क्षत्रप और कुशानोंके सिक्के मिले हैं और गुप्तकालका एक ताम्रपत्र भी प्राप्त हुआ है। आक्रमणके समय यहाँ डोर राजपूत वंशीय हरदत्त नामका मांडलिक राजा रहा होगा और फारसीमें कदाचित् इसका नाम हरून पढ़ा गया होगा। डोर राजकुलका ई० सन् १०६६ का एक लेख प्राप्त हुआ है। उसमें राजकुलकी वंशावली दी है। इसी वंशका सातवाँ राजा हरदत्त महमूदकी शरण गया होगा (बुलंदशहर गज़ेटियर)। हरून दस हजार अनुयायिओंके साथ मुसलमान हुआ, ऐसा कह कर उत्बीने सम्भवतः अतिशयोक्ति की है। यहाँसे महमूद दक्षिणकी ओर गया। मथुराके पास कलजंदने बड़ी सेना लेकर इसका सामना किया। वह महमूदसे

बड़ी वीरता और दृढ़ताके साथ लड़ा। कलचंद सम्भवतः कन्नौजके प्रतिहार सम्राट् राज्यपालका सेनापति तथा मांडलिक रहा होगा।

हिन्दुओंकी, विशेषतः वैष्णवोंकी अत्यन्त पवित्र नगरी मथुरा प्रतिहार साम्राज्यके मध्यभागमें थी और बहुतसे प्रतिहार सम्राट् विष्णुभक्त हुए हैं। मथुरा नगरी श्रीरामचन्द्रके भाई शत्रुघ्नने बसायी थी। श्रीकृष्णचन्द्रका जन्मस्थान भी यही था। बौद्धोंके लिए भी मथुरा पुण्यभूमि है। हिंदु कालमें मथुराका महत्त्व और भी बढ़ गया। ऐसी अवस्थामें वहाँके अप्रतिम मन्दिर और उनकी अपार संपत्ति मूर्तिभंजक लुटेरोंको निर्विरोध सौंप देना संभव ही न था। इस लिये यद्यपि राज्यपाल स्वयं महमूदका सामना करनेके लिए तैयार नहीं था तो भी महमूदसे लड़नेके लिए उसने बड़ी सेना अवश्य भेजी होगी। ऐसा वर्णन मिलता है कि यह लड़ाई एक जंगलमें हुई। नकशेमें दिये गये महावन ग्रामके पास इस लड़ाईका स्थान निर्दिष्ट किया जाता है। उस समय इस ग्रामके पास एक बड़ा जंगल रहा होगा। इसी जंगलमें नंद रहता था और श्रीकृष्णचन्द्र बचपनमें यहीं पले थे। शायद इसीलिये लोग हाल तक इस जंगलको नहीं काटते थे। यह स्थान मथुरासे ६ मीलपर है। इस बातके प्रमाण मिले हैं कि इस जंगलमें शाहजहाँने शेरका शिकार किया था (मथुरा गज़ेटियर)। यहाँ एक छोटीसी पहाड़ी है जिसपर किला भी है। कुलचन्द इस गाँवका वंशपरंपरागत रक्षक रहा होगा। अपने हाथी, घुड़सवार और पैदल सेना लेकर वह महमूदसे जी तोड़ कर लड़ा। उत्बीने सदाकी भाँति महमूदकी विजयका कारण दैवी इच्छा बताया है। यद्यपि महमूद प्रचंड तथा अजेय सेना

लेकर आया था तो भी हिन्दुओंने अपने पवित्र नगरको लूटने और विध्वस्त होनेसे बचानेका घोर प्रयत्न किया। यह हिंदुओं-के लिए गौरवकी बात है। कुलचंदने यह देख कर कि दैव-गति टाले नहीं टलती राजपूतोंकी सनातन प्रथाके अनुसार पहले अपनी पत्नीको मार डाला और फिर स्वयं प्राण विसर्जन किये। मथुराके अलौकिक वैभव और महमूदको मिली अपार संपत्तिका उत्बीने इस प्रकार वर्णन किया है—"वहाँ मूर्तियोंके एक हजार मन्दिर थे जो किलोंकी तरह बने थे और शहरके बीचों बीच एक सबसे ऊंचा मंदिर था। उसकी सुंदरता और नक्काशीका वर्णन करना लेखककी लेखनी या चितेरेकी कूचीके लिए असंभव है। इस यात्राके सम्बन्धमें सुलतानने जो वर्णनात्मक लेख लिखा है उसमें वह कहता है कि 'यदि कोई ऐसी इमारत बनानेका आज विचार करे तो उसे एक हजार दीनारोंकी एक लाख थैलियाँ खर्च करनी पड़ेंगी और अत्यन्त कुशल कारीगरोंकी सहायतासे भी वैसी इमारत २०० वर्षोंमें तैयार न हो सकेगी।' मूर्तियोंके जो ढेर मिले उनमें शुद्ध सोनेकी पाँच हाथ ऊंची पाँच मूर्तियाँ थीं। इनमेंसे एक मूर्तिपर एक रत्न जड़ा था जो इतना अच्छा था कि उसे सुल-तानने खुशीसे ५० हजार दीनारपर खरीद लिया होता। दूसरी एक मूर्तिपर ४०० मिसकाल वजनका एक नीलम मिला। एक मूर्तिके पैरसे चार लाख चार सौ मिसकाल सोना निकला। चाँदीकी मूर्तियाँ तो इतनी थीं कि उन्हें तौलने वाले थक गये। उस नगरका ध्वंस कर महमूदने सेनाका एक बड़ा भाग वहीं रख छोड़ा और खुद कन्नौजकी ओर बढ़ा।"

कन्नौजके प्रतिहार साम्राज्यके अवनतिकालमें मथुराकी लूटका यह वर्णन हिन्दुओंके लिए हृदयद्रावक है। संपत्तिाक

दुर्बलोंके हाथसे निकल कर बलवानोंके हाथमें चला जाना सदासे ही होता रहा है। रोम-साम्राज्यके अवनतिकालमें अलारिकने रोम शहरको इसी प्रकार लूटा था। इतिहासकार गियनका उस घटनाका सरस वर्णन हमें इस अवसरपर स्मरण हो आता है। यह वर्णन इस प्रकार है—"स्थापनाके ११६० वर्ष बाद यह शाही-नगर, जिसने मनुष्य-जातिके एक बड़े भागको जीत कर सभ्य बनाया था, जर्मनी और सीथियाकी जंगली जातियोंके आक्रमणोंका भक्ष्य हुआ। गॉथ लोग कुछ ही काल पूर्व ईसाई हुए थे इसलिए उन्होंने "वेटिकन" नामके ईसाई भवन और वहाँ आश्रय लेने वाले कुछ ईसाई रोम-वासियोंको बचा लिया। पर अन्य रोम वासी निर्दयतासे मारे गये। सोने और रत्नोंकी खूब लूट हुई। रोमके अनेक राजमहलोंका कीमती सामान लूट लिया गया। कीमती धातु पानेके लिए सैकड़ों मूर्तियाँ गलायी गयीं और अनेक सुन्दर बर्तन फरसोंसे तोड़े गये। उन अभागोंकी संख्या बताना असंभव है जो उत्कर्षकी पराकाष्ठा और माननीय अवस्थासे एक दम कैदीकी दुःखमयी अवस्थाको प्राप्त हुए। रोमसे भागे हुए लोगोंसे आसपासके प्रान्त भर गये। रोमनगरकी इस भीषण दुर्घटनासे रोम-साम्राज्यके लोग चकित हो गये और उनके हृदयोंमें दुःख और भयका संचार हुआ।"

बारहवाँ प्रकरण।

कन्नौजका पतन।

उत्तर हिन्दुस्तानका सम्राट् दुःख और भयसे व्याकुल हुआ। वह मथुरा या कन्नौजमें न रह कर रोमके बादशाह

आनोरेरिअसकी तरह भागा और गंगापार वारी स्थानमें उसने आश्रय लिया। यह बात महमूदको अपने गुप्तचरोंसे मालूम हो ही गयी होगी। उसने कुरानसे शकुन देखा और थोडी सेना लेकर राज्यपालका पीछा किया। उसका खयाल था कि राज्यपालको युद्ध करनेकी इच्छा होगी। राज्यपाल हिन्दुस्तानके राजाओंमें अग्रगण्य था। उत्वीने इसके सम्बंधमें लिखा है कि सब राजा उसके आगे सर झुकाते तथा उसकी सत्ता और महत्पदको स्वीकार करते थे। उसका यह कथन ठीक ही है। इस राजाका नाम राज्यपाल था, यह हमें अब मालूम ही हो गया है। फारसीमें राज्यपालके बजाय "राजा जयपाल" या "हयपाल" पढ़ा जाना बिलकुल संभव है। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि इस समय उपलब्ध शिला-लेखोंके प्रमाणके अभावमें बहुतोंने इस राजाको लाहौरका मृत राजा जयपाल मान लिया हो। इलियटकी कदाचित् यह धारणा रही हो कि लाहोरके जयपालका राज्य मध्य हिंदुस्तानमें भी था। बादके इतिहासकारोंने कई भिन्न भिन्न नामोंसे उसका उल्लेख किया है। पर ये सब कल्पनाके खेल हैं। कुछ लोगोंने उसे जयपालका पुत्र कुँवरपाल भी कहा है। "शाबानकी ८ तारीख (जनवरी १०१८ ई० इलियट भाग २ पृ० ४५७) को महमूद कन्नौज पहुँचा। वहाँ उसने अपने सामने एक पर्वत खडा देखा। भागते हुए सम्राट्का पीछा करनेके लिए उसकी सेनाने गंगा पार की। संभवतः वह राज्यपालको पा न सका। तब महमूदने गंगातीरके कन्नौजके सातों किले जीते (उत्वी ४५७)। इस किलेमें लगभग १०,००० मन्दिर बने थे और वहाँके असत्यवादी मूर्तिपूजकोंका कहना था कि ये मन्दिर दो तीन हज़ार वर्ष पूर्वके बने हुए हैं।" कन्नौज एक

प्राचीन नगर है। ऐसा माना जाता है कि पुराणमें वर्णित विश्वामित्रका पिता कुशिक यहाँ राज्य करता था। मथुराकी भाँति यह नगर भी विशेष पवित्र माना जाता था। इस समय यह नगर समृद्धिशाली था। इसका वैभव चार सौ वर्ष पूर्व अर्थात् हर्षके समयसे आरंभ हुआ था। ह्युएनत्संगके वर्णनानुसार हर्षके समयमें ही इस नगरका विस्तार बहुत बढ़ गया था। इसका वर्णन पहली पुस्तकमें दिया गया है। शहरके आधेसे अधिक लोग पहले ही भाग गये थे। महमूदने एक ही दिनमें सब किले लेकर उन्हें लूट लिया। ऐसा नहीं प्रतीत होता कि कन्नौज वैभवमें मथुराके जोड़का रहा होगा। महमूदका सरस वर्णन कभी कभी भूलसे कन्नौजका वर्णन समझा जाता है पर उत्वीके ग्रन्थसे स्पष्ट दिखाई देता है कि वह वर्णन वास्तवमें मथुराका ही है। इस बातका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता कि महमूदने मथुराकी भाँति यहाँके मन्दिर भी नष्ट किये।

"कन्नौजसे महमूद ब्राह्मणोंके माँज नामक मज़बूत किलेकी ओर बढ़ा। ब्राह्मणोंने कुछ कालतक उसका विरोध किया पर कुछ लाभ होते न देख कर वे किलेपरसे कूद पड़े। बहुतोंने भालों या तलवारोंसे आत्महत्या कर ली।" यह अबतक निश्चित नहीं हुआ है कि माँज कौनसा स्थान है। वह गंगा नदीके दक्षिण ओर, वर्तमान इटावा जिलेमें होना चाहिये। "वहाँसे सुल्तान अस्तर क़िलेकी ओर गया। वह किला सन्तापी जंदपालके अधिकारमें था। यह क़िला जंगलमें एक छोटी पहाड़ीपर बना था और इसके चारों ओर गहरी खाई थी।" फतहपुर जिलेमें गंगा नदीके पश्चिम तटपर अस्तर नामका मजबूत किला है। इस किलेका अधिपति सम्भवतः कन्नौजका

मांडलिक रहा होगा। उससे अपने काममें बाधा होनेकी सम्भावना देखकर महमूदने उसका पराजय किया और अपना मोर्चा "चन्द्रराजकी ओर घुमाया। उसके अधिकारमें एक वहुत मजबूत किला था।" यह चन्द्रराज चदेल राजा था। कालंजरका अजेय किला इसके अधिकारमें था। वह स्वतंत्र राजा था। उत्वीने भी इसके वारेमें लिखा है कि "उसने कभी दूसरेकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। गर्व और आत्मश्लाघासे वह उन्मत्त हो गया था। (पृष्ठ ४५०)"

जदवाल सम्भवतः प्राचीन गोतम वंशका एक राजा था। इस वंशके लोग आज भी फतहपुर जिलेमें रहते हैं (फतहपुर गजेटियर)। या वह यमुनाके दक्षिण जालोन जिलेके संगारवंशका एक राजा रहा होगा। इस वंशके लोग जगमनपुरके महाराज कहलाते हैं। उत्वीने लिखा है कि इस समय सन्तापी जंदवाल और चंद्र रायमें युद्ध छिडा था। इस युद्धका कारण अज्ञात है। यह युद्ध जारी ही था कि महमूद चंद्र राजापर चढ आया। चंद्र राजाने अपनी प्रचंड सेना, "जिसके सामने शत्रु ठहर न सके", एवं किलेके वलपर सुलतानका विरोध करनेका निश्चय किया। पर "हयवालने उसे युद्ध न करनेकी सलाह दी। इसपर वह अपनी सेना और खजाना लेकर पहाडोंमें हट गया।" उत्वीका कहना है कि हयवालने विश्वासघातके इरादेसे यह सलाह दी थी। उसका विचार था कि सुलतान द्वारा चंद्ररायके पराजित होनेपर मैं खुद कालपीके किलेपर कब्जा कर लूँ। पर किला फतह करनेके झगडेमें न पडकर "महमूदने लगातार तीन दिनतक चंद्रराजाका पीछा किया और बहुतसे आदमियोंको मारकर उनके हथियार और युद्धकी सामग्री छीन ली। वह कुछ हाथी पकड कर ले गया

और बहुतसे हाथी स्वेच्छासे उसके साथ गये। उनका नाम उसने 'खुदादाद' अर्थात् 'ईश्वरदत्त' रखा।" "चन्द्ररायके खजानेमें उसे सोना, चाँदी, जवाहिरात और इंद्रनीलमणिकी तीन हजार थैलियाँ मिलीं। गुलाम तो इतने मिले कि उनकी कीमत आदमी पीछे दस दिरहमसे अधिक नहीं आयी। सुलतान गज़नी वापस आया; उसके वैभवकी कीर्ति दशों दिशाओंमें फैल गयी।"

महमूदका यह आक्रमण दक्षिणकी ओर कानपुर और काल्पी जैसे सुदूर स्थानोंतक हुआ था। वास्तवमें उसके सब आक्रमणोंमें यह अत्यन्त लाभदायक तथा अप्रतिम पराक्रमका आक्रमण था। बादके मुसलमान इतिहासकारोंने, विशेषतः फिरिश्ताने, तत्कालीन वास्तविक इतिहास और अंतर्वेदीके भूगोल विषयक अज्ञानके कारण बहुतसी बातें असंगत लिखी हैं और कुछ स्थानोंपर तो अपनी ओरसे चाहे जो लिख मारा है। केवल फिरिश्ताके आधारपर महमूदके आक्रमणोंका वर्णन करते हुए यूरोपीय इतिहासकार गड़बड़ा गये हैं। इलियटके कथनानुसार यह गड़बड़ी अधिक विश्वस्त तथा समकालीन वर्णनोंकी ओर ध्यान न देकर केवल फिरिश्ताके ही आधारका अवलंबन करनेसे हुई है (पृ० ४०८)। ऐसा वर्णन उत्वीके तारीखे यामिनीमें मिलता है और उपर्युक्त इतिहास हमने उसके वृत्तान्तसे ही दिया है। महमूदके आक्रमणका मार्ग संभवतः यही रहा होगा। अंतर्वेदीमें पहुँचनेपर वह मेरठ और बरणके मार्गसे दक्षिणकी ओर महावन तक आया और यमुना पार कर उसने मथुरा लूटी। पश्चात् पुनः यमुना पार कर वह कन्नौजकी ओर बढ़ा। राज्यपालको डरानेके लिए वह गंगा पार कुछ दूर तक गया और फिर पीछे लौट कर उसने

कन्नौज अधिकृत किया। अंतर्वेदीसे दक्षिण जाकर उसने एक प्रबल राजाका पराजय किया और कालपीमें यमुना पार कर पहाड़ोंमें चन्द्ररायका पीछा किया। पर वह कालंजरतक नहीं गया। उसने कालपीके समीप पुनः यमुना पार की और आये मार्गसे अंतर्वेदी होते हुए लौट गया। निजामुद्दीन अहमदके इतिहासमें उसके आक्रमणके मार्गका इसी प्रकार वर्णन है। इलियटने भी उसका एक अंश उद्धृत किया है (भाग २, पृ० ४६०-४६१)। उस अवतरणमें निजामुद्दीनने उत्बीके वर्णनमें बहुत ही थोडा हेरफेर किया है।

वास्तविक कठिनाई हिन्दू राजाओंके नाम और उनकी लड़ाइयोंके निश्चित करनेमें पड़ती है। शिलालेखोंके प्रमाणसे हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि इस समय कन्नौजका राजा प्रतिहार सम्राट् राज्यपाल था और चंदेल राजा गंड ही "चन्द्रराय" था। इसका प्रमाण इलियटके पास नहीं था और हमें वह अब उपलब्ध हुआ है। ये दोनों राजा महमूदके विरुद्ध युद्धमें आनंदपालकी सहायता करनेके लिए गये थे। उनको दंड दिये बिना महमूद निश्चय ही वापस न जाता। हमारे विचारमें हयबाल (राज्यपाल) ने चन्द्ररायको जो सलाह दी थी वह मित्रभावसे प्रेरित होकर दी थी। वे दोनों ही महमूदके हाथ न लगे। इसपर वह चिढ़ गया होगा और शायद इसीलिए उत्बी, निजामुद्दीन अहमद और फिरिश्ताके कथनानुसार महमूदने उनपर अगले वर्ष पुनः चढ़ाई की होगी।

उत्बीने इस आक्रमणका सन् नहीं दिया है। निजामुद्दीनने इसे ४०० हिजरी बताया है पर फिरिश्ताके कथनानुसार वह ४१२ हि० है। इलियटके विचारमें फिरिश्ताका सन् ही अधिक सम्भवनीय है। निजामुद्दीनका कहना है कि कन्नौजके राजाने

महमूदकी अधीनता स्वीकार की इसलिए राजा नंदने उसे मार डाला। यह खबर पाकर महमूदने उसके प्रांतपर पुनः चढ़ाई करनेका निश्चय किया। पर यह घटना बादमें हुई होगी और इसे महमूदके दूसरे आक्रमणका कारण बता कर निजामुद्दीनने गलती की है। कारण, उत्बी और निजामुद्दीन दोनोंका ही कथन है कि महमूदने कन्नौजपर आक्रमण कर वहाँके राजा हयपालका राहिबकी लड़ाईमें पराजय किया। अब यदि निज़ामुद्दीनका पहला कथन ठीक माना जाय तो इस लड़ाईमें हयपाल कहाँसे आया। फिर, उत्बीने यह कहीं नहीं कहा है कि जयपाल (राज्यपाल) ने सुलतानका अधीनत्व स्वीकार किया। वह बारीको भाग गया था। उससे महमूदका युद्ध ही नहीं हुआ। महमूदने उसका पूर्ण पराजय करनेके लिए ही दूसरा आक्रमण किया था।

अस्तु, मालूम होता है कि इस दूसरे आक्रमणके समय महमूदने, कुशल सेनापतिकी भाँति, अपनी सेनाको भी मालूम न होने दिया कि हम राज्यपालपर चढ़ाई करने जा रहे हैं। उत्बी कहता है कि महमूदने यह बहाना किया था कि हम पहाड़ोंके विकट स्थानोंमें व्यापारियोंको तङ्ग करनेवाले अफगान डाकुओंको दण्ड देनेके लिए जा रहे हैं। यह काम कर लेनेपर उसने यकायक हिंदुस्तानकी ओर मोरचा घुमाया। उसने जंगल तय किये, नदियाँ पार कीं और आसपासका प्रदेश उजाड़ते हुए वह आगे बढ़ा। पश्चात् वह उस राहिब नदीके किनारे पहुँचा जिसकी तेज धारामें घुड़सवार भी बह जाते हैं। (यह नदी कौनसी है यह अभी निश्चित नहीं हुआ है।) नदीके उस पार एक सुरक्षित स्थानपर राज्यपाल अपनी सेना लिये पड़ा था। वह किसीको नदी पार न करने देता था।

महमूदने चमड़ेके बड़े बड़े मशक बनानेकी आज्ञा दी । रातकी अँधियारीमें आठ आदमी नदीमें उतरे। उन्हें रोकनेके लिए राज्यपालने पाँच हाथी और एक दल भेजा पर महमूदके सिपाहियोंने उनकी चलने न दी। उन्होंने हाथियोंको बाणोंसे जर्जर किया और साथके आदमियोंको मार डाला। सुलतानने अपने प्रत्येक सिपाहीको यह कह कर उत्साहित किया कि "आजीवन विश्रान्ति प्राप्त करनेके लिए हमें एक दिनका श्रम सह लेना चाहिये ।" घोड़ोंके अयाल थाम कर लोगोंने नदी पार की। कन्नौजपर चढाई करते हुए तीसरे गोविंदने ऐसा ही पराक्रम किया था। इसका वर्णन दूसरे भागमें आया है। महमूदकी सेनाने राज्यपालके बहुतसे आदमी मारे और सत्तर हाथी छीन लिये। "काफिर अपना खजाना छोड़ कर भाग गये और सुलतानने उसे लूट लिया। सुलतानने कुरानसे शकुन देखा था और वह ठीक निकला। अब सुलतान न्यायासनके उच्चपदपर निश्चल हो गया और अपने बढ़ते हुए वैभवको देख कर उसको अपनी असीम शक्तिमें विश्वास हो गया।" इस आक्रमणके संबंधमें उत्बीका वर्णन यहाँ समाप्त होता है। इसमें उत्बीने इस बातका उल्लेख नहीं किया है कि राज्यपालने महमूदका अधीनत्व स्वीकार किया या महमूद गज़नी लौट गया। तिसपर भी मालूम होता है कि महमूद राज्यपालसे अधीनत्व स्वीकार कराये बिना वापस नहीं गया। ("राज्यके उच्च पदपर निश्चल हुआ" इस वाक्यमें यह भाव आ जाता है।) राज्यपालने सुलतानको प्रति वर्ष खिराज देना स्वीकार किया होगा। इस संबंधमें आगे चलकर उल्लेख किया जायगा। चन्द्रके आधिपत्यमें गहरवारोंने प्रतिहारोंका उच्छेद किया। तबतक प्रतिहार घरानेके राजा राज्य करते रहे, पर अधीनता

स्वीकार करने और खिराज देनेके कारण कन्नौजके वैभवशाली साम्राज्यका अंत हुआ।

दूसरे इतिहासकारोंने इस आक्रमणसे पुरुजयपालका भी सम्बन्ध जोड़ा है। निज़ामुद्दीनने कहा है कि पुरुजयपालने महमूदका यमुना पार करते समय विरोध किया था—यहाँ गलतीसे राहिबके स्थानपर यमुना लिखा गया होगा। फिरिश्ताने लिखा है कि वह पञ्जाबके राजा जयपालका पौत्र था। राहिब सम्भवतः घाघरा या अवधप्रान्तकी कोई दूसरी बड़ी नदी है। बारी भी उसी प्रान्तमें है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अवध कन्नौजके राज्यमें था। इलियटके तर्कके अनुसार यह भी सम्भव है कि काश्मीरकी सीमापर तौशीकी लड़ाईमें पराजित होनेके बाद त्रिलोचनपाल कन्नौजके राजा राज्यपालके आश्रयमें आया हो। अल्बेरूनीने लिखा है कि त्रिलोचनपालकी मृत्यु ई० सन् १०२१ (हि० ४१२) में हुई। इसलिए सम्भव है कि राहिब नदीका युद्ध उसी वर्ष हुआ हो और उसमें शूरतासे लड़ते हुए त्रिलोचनपाल ही मारा गया हो।

तेरहवाँ प्रकरण।

कालंजरका आक्रमण।

महमूदके मंत्री तथा समकालीन ग्रन्थकार उत्बीने उसकी चढ़ाइयोंका जो वृत्तान्त लिख रक्खा है वह अब आगे काम नहीं देता, इसलिए दो या तीन शताब्दी बादके इतिहासकारोंके वर्णनपर अवलंबित रहना हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है।

यह बताना कठिन है कि उत्वीने अपना वृत्तान्त यहीं क्यों समाप्त किया। वह निःसन्देह ४२० हिजरी तक, बल्कि इसके बाद भी, जीवित था क्योंकि उसने लिखा है कि ४२० हिजरीमें काजी अब्दुल्ला सैयद मक्केकी यात्रा करने गया था। इसी प्रकार काजीके लौटनेपर उसके और अबूबकरके बीच जो वाद छिडा उसका भी उत्वीके ग्रन्थमें उल्लेख है। इस उल्लेखपर टिप्पणी करते हुए उत्वीके भाषांतरकारने लिखा है कि यह वर्ष यदि ठीक हो तो उत्वीकी आयुके बारेमें लोगोंकी जो धारणा है उससे अधिक कालतक वह जीवित रहा होगा (पृष्ठ ४५४)। इसी प्रकार उत्वीने एक स्थानपर लिखा है कि " महमूद दीर्घकालतक जीवित रहा।" इसपर उसके भाषांतरकारने टिप्पणी की है कि उत्वीकी मृत्यु साधारणतः महमूदके जीवनकालमें ही मानी जाती है पर इस उल्लेखसे स्पष्ट है कि वह महमूदके बाद भी जीवित था (पृष्ठ ४८३)। ऐसी अवस्थामें यह जानना कठिन है कि उत्वीने हि० ४२० अर्थात् ई० सन् १०२९ तकका वृत्तान्त क्यों नहीं लिखा। कदाचित् महमूदके भाग्योत्कर्षकी पराकाष्ठा होनेपर उत्वीने अपना वृत्तान्त समाप्त किया (ई० सन् १०२० में)। उस समय महमूदके साम्राज्यका इतना विस्तार हुआ था कि वायव्य दिशामें कास्पियन समुद्रतक ख्वारिजम, जार्जिया आदिका प्रदेश और दक्षिणपूर्वकी ओर सरस्वती नदीतक पंजाब तथा थानेश्वरका प्रदेश उसके अंतर्गत था। इसके अलावा उसने राहिबकी लड़ाईमें उत्तर हिंदुस्तानके सम्राट्को पराजित किया था और उससे वह प्रति वर्ष खिराज लेता था। इधर आक्सस नदीके उसपार तुर्की राजाको प्रायः पराजित कर उससे महमूदने मित्रतापूर्ण सन्धि की थी। और अन्ततः मथुरा और कन्नौजकी चढ़ाइयोंमें

उसने अपार संपत्ति प्राप्त की थी। अब मानवी स्वभावके अनुसार उसे गजनीमें एक विशाल और सुन्दर मसजिद बनवानेमें वह संपत्ति खर्च करनेकी इच्छा हुई। मथुराके अत्यन्त सुन्दर देवालय देख कर उसे यह प्रेरणा हुई होगी। उसने अपने पत्रमें लिखा था कि इन मन्दिरोंको "उत्तम कारीगर भी दो सौ वर्षमें न बना सके होंगे।" ऐसी अवस्थामें यदि उसने गजनीमें एक विशाल मसजिद बनवानेका निश्चय किया और वैसी मसजिद बनवायी तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। वहाँकी पुरानी मसजिदमें थोड़े ही आदमी आ सकते थे। यह उस समय बनायी गयी थी जब ग़ज़नीका राज्य छोटासा था। उत्बीने ग़ज़नीकी इस विशाल मसजिदका वर्णन इस प्रकार किया है—"उसमें हिन्दुस्तान और ख़ुरासानके गुलाम रातदिन मेहनत करते थे और उच्च वेतनभोगी अधिकारी सूर्योदयसे सूर्यास्ततक उनपर निगरानी करते थे। लकड़ीके कामके लिए हिंदुस्तान और सिंधसे वृक्ष लाये गये थे। सङ्गमरमरकी चौकोनी और अठकोनी प्रचण्ड शिलाएँ दूर दूरसे लायी गयी थीं। कारीगरोंने गुम्बज इतने गोल बनाये थे कि 'उनकी तुलनामें आकाशकी गोलाई भी काल्पनिक सिद्ध हो'। उसके रंगीन चित्रों और स्थान स्थानपर दिये गये सोनेके पानीमें दिल खोलकर शुद्ध सोना खर्च किया गया था। सोनेकी जो मनुष्याकृति मूर्तियाँ लायी गयी थीं उन्हें पीटकर दरवाजों और दीवारोंपर पत्र जड़े गये थे। ख़ुद अपने बैठनेके लिए सुलतानने उसमें एक स्वतंत्र स्थान बनवाया था। यह इमारत चौकोन बनी थी और चारों तरफ आगेकी ओर निकली हुई दालानें थीं। उसकी फर्शबंदी सफेद सङ्गमरमरसे की गयी थी। इबादतके बड़े दीवान-

खानेकी दीवारोंपर सोनेके पानीसे चित्र खींचे गये थे और उनमें स्थान स्थानपर हीरे जड़े गये थे। इस इमारतको देखनेवाला प्रत्येक मनुष्य आश्चर्यसे दाँतोंतले उँगली दबाता और कहता कि "दमास्कसकी मसजिद देख आश्चर्यसे चकित होकर जिन लोगोंने कहा है कि ऐसी दूसरी मसजिद बन ही नहीं सकती वे आकर ग़ज़नीकी मसजिद देखें।" सामने ही उत्सव और उपासनाके लिए विस्तीर्ण सभामंडप बना था। उसमें ६ हजार मनुष्य एक साथ बैठ सकते थे। मसजिदसे सट कर ही एक पाठशाला बनवायी गयी थी जिसमें कीमती तथा दुष्प्राप्य धार्मिक ग्रंथोंका संग्रह किया गया था। इमाम, अध्यापक और विद्यार्थी विद्यार्जनके इस पवित्र स्थानमें एकत्र हुआ करते थे। इन्हें पाठशालाकी ओरसे भोजन तथा अन्य आवश्यक पदार्थ मिलते थे। मास वा वर्षके अन्तमें इन्हें कुछ वेतन भी मिलता था। सुलतानके शासनकालमें ग़ज़नीका विस्तार अन्य सब नगरोंसे बढ़ गया और वह सुन्दर तथा मजबूत इमारतोंसे भर गयी। इन इमारतोंमें एक फीलखाना भी था जिसमें हजार हाथी, उनके महावत और अन्य नौकर भी रह सकते थे। इसमें हजार कोठरियाँ थीं। ईश्वरके आशीर्वादसे ही देश इस समुन्नत अवस्थाको प्राप्त हुआ है।" (उत्बी पृष्ठ ४६८—६६)। अन्तमें सुलतानके न्यायपूर्ण शासन और उसके छोटे भाईके खुरासानके राज्यप्रबंधका वर्णन करके उत्बीने अपना इतिहास समाप्त किया है। महमूदने अपने छोटे भाईको खुरासानका शासक नियुक्त किया था पर दुर्भाग्यसे तरुणावस्थामें ही उसकी मृत्यु हो गयी। अनुमान है कि उत्बीने अपना वृत्तान्त उसी समय समाप्त कर दिया जब महमूद वैभवके शिखरपर पहुँच गया था। मालूम होता है कि ग्रन्थ यहाँ जान बूझ कर ही

समाप्त किया गया है। पर इस वीर राजाने इसके बाद जो पराक्रम किये उसके सम्बन्धमें उत्बीका लिखा विवरण आज न मिलनेसे हमारी बडी हानि हुई है। इलियटने राहिब नदीके युद्धको तेरहवीं चढाई बताया है और निजामुद्दीन तथा फिरिश्ताके आधारपर और चार चढाइयोंका उल्लेख किया है। वह यह नहीं बताता कि निजामुद्दीन या फिरिश्ताने किस आधारपर इन चढाइयोंका विवरण दिया है। बहुत काल बीत जानेके कारण और इन चढ़ाइयोंके स्थानोंके बारेमें जानकारी न होनेसे इन लेखकोंने सम्भवतः बहुतसी गलतियाँ की होंगी तिसपर भी सम्भव है कि इन वर्णनोंको कुछ विश्वसनीय सामग्रीका आधार रहा हो। उत्बीने चढाइयोंके विवरण, स्वयं महमूद द्वारा लिखे गये वर्णन या अन्य इसी प्रकारके सरकारी लेखोंका उल्लेख किया है। इसी प्रकार बैहकी जैसे तत्कालीन व्यक्तियोंके लेखोंसे भी, जो इस समय अप्राप्य हैं, कदाचित् इन्हें कुछ जानकारी हुई हो। ऐसी अवस्थामें यह सम्भव नहीं जान पडता कि बादके इन इतिहासकारोंने केवल कपोलकल्पित बातें लिखी हों। पर उनके विवरण हमें सावधानीसे अवश्य देखने चाहिये और हिन्दुस्तानके शिलालेखोंके प्रमाणोंसे उनका मिलान कर लेना चाहिए। उदाहरणार्थ, किसी तत्कालीन मुसलमान लेखकके आधारपर निजामुद्दीनका यह लिखना कि सुलतानकी शरणमें जानेके कारण कन्नौजके राजाका राजा नन्दने वध किया (ई० भा० २, पृ० ६३), चंदेल और कच्छपघात राजाओंके शिलालेखोंसे ठीक मालूम होताहै। इन शिलालेखोंसे उस कथनकी पुष्टि होती है। एक चंदेल शिलालेखमें लिखा है कि गंडके पुत्र विद्याधरने कान्यकुब्जके राजाका नाश किया (एपि. इंडि भा. १, पृ० २२२) और इस काममें भोज

और कलचूरि राजाने उसकी सहायता की। आगे चलकर चंदेलोंके इतिहासमें इस शिलालेखका विस्तारसे उल्लेख किया जायगा। यह संमिलित आक्रमण ग्वालियरके एक कच्छप-घात राजाके नेतृत्वमें हुआ था। शिलालेखमें यह भी लिखा गया है कि दुवकुंडके (ग्वालियर प्रदेशमें) "उस तुमुलयुद्धमें विद्याधर राजाके आश्रित अर्जुन नामके एक दूसरे कच्छप-घात सामंतने अपने बाणोंसे राज्यपालका शिरच्छेद किया।" राज्यपालका उस विदेशी राजाकी शरण जाना, जिसने मथुराकी मूर्तिको नष्ट किया था, तत्कालीन राजपूत राजाओंको अच्छा नहीं लगा और चंदेल, कलचूरि, परमार तथा कच्छपघात राजाओंकी संमिलित सेनाने कन्नौजमें राज्यपालपर आक्रमण कर उसका वध किया। संभवतः इन राजाओंने इसके अलावा और कुछ नहीं किया और राज्यपालका पुत्र त्रिलोचनपाल उत्तराधिकारीके नाते कन्नौजके सिंहासनपर निर्विरोध बैठा। इस घटनासे हम अच्छी तरह देख सकते हैं कि तत्कालीन राजपूत राजा कैसे धर्माभिमानी होते थे।

इस प्रकार राज्यपालका वध होनेकी बात ठीक होते हुए भी निजामुद्दीनने अपने वर्णनमें कई गलतियाँ की हैं। इस घटनाका उल्लेख राजा जयपाल (राज्यपाल) पर महमूदकी चढाई तथा पूर्ववर्णित राहिबकी लड़ाईके पहले न होना चाहिये था। निजामुद्दीनका कथन है कि आठ आदमियोंने गहरी *यमुना नदी पार की। पर यह नदी वास्तवमें राहिब थी।* उसका यह कथन भी गलत है कि यहाँपर "पुरु जयपाल" ने महमूदका विरोध किया। आगे चलकर निजामुद्दीनने ऐसा भी कहा है कि इन लोगोंने बारीपर चढाई की पर दूसरे किसी लेखकने इस बातका उल्लेख नहीं किया है (इलियट भा० २,

पृ० ४६४)। अल्बेरूनीके वृत्तान्तसे मालूम होता है कि राज्यपाल बारीमें जाकर रहा था। ऐसी अवस्थामें बारीके आक्रमण और पतनका वर्णन यथार्थ मालूम होता है। अस्तु, उपर्युक्त घटनाएँ राहिबकी लड़ाईके बादकी होनी चाहिये और इसी समय राज्यपालने महमूदकी शरणमें जाकर खिराज देना स्वीकार किया होगा। संभवतः इसीके बाद चंदेल राजाके नेतृत्वमें हिन्दू राजाओंने राज्यपालपर आक्रमण कर उसका वध किया और यह समाचार पाकर महमूदने ग्वालियरके राजा और चंदेलोंका दमन करनेका विचार किया। निजामुद्दीनके कथनानुसार अन्तमें महमूदने चंदेल राजापर दो बार आक्रमण किया। पहला आक्रमण बारी जीतनेके बाद और दूसरा ग्वालियर तथा कालंजरकी चढ़ाईके समय हुआ। निजामुद्दीनके आधारपर इलियटने इसे कालंजरकी दूसरी चढ़ाई बताया है। उत्बीके ग्रन्थमें यह वर्णन नहीं मिलता कि राहिबकी लड़ाईके बाद महमूदने चंद्ररायपर आक्रमण किया था। इसका कारण यही है कि उस समय राज्यपालकी मृत्यु नहीं हुई थी। संभव है कि चन्द्ररायपर दो चढ़ाइयाँ न होकर एक ही हुई हो।

महमूदने ई० सन् १०२२ में किरात, नूर, और लोहकोटपर चढ़ाई की। (इलियटने इसे पंद्रहवीं चढ़ाई कहा है।) पहले दो स्थान क्रमसे स्वात और बजौर हैं। वहाँ "अबतक हिंदूधर्म थोड़ा बहुत रह गया था। वहाँके लोग सिंहके उपासक थे।" इलियटका मत है कि यह सिंह शाक्यसिंह अर्थात् बुद्ध था। हमारी धारणा है कि ह्युएनत्सङ्गके समय यह प्रांत चाहे कट्टर बौद्धधर्मी रहा हो पर दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दीमें वहाँ बौद्धधर्मका नाम निशानतक न रह गया था।

इस सिंहका सम्बन्ध विष्णुके नरसिंह अवतारसे है। हमने पहले भागमें दिखाया है कि पञ्जाबमें नरसिंहकी उपासना प्रचलित थी। मुलतान प्रह्लादपुर (अर्थात् नृसिंह भक्त प्रह्लाद का नगर) के नामसे प्रसिद्ध था। महमूदने यह प्रांत जीत लिया और वहाँके लोगोंको इस्लाम धर्मकी दीक्षा दी। पश्चात् उसने लोहकोटकी ओर कूच किया। यह काश्मीरका अजेय किला था। पर उस दुर्गमदेशमें जानेके लिए मार्ग न मिलनेसे महमूद लाहौर* तक जाकर लौट आया। (लाहोर महमूदके हिन्दुस्तानी प्रान्तकी राजधानी था।) सम्भवत यहीं उसे कन्नौजका समाचार मिला और उसने अगली बरसातमें ग्वालियर और कालजरपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया।

यह अगली चढाई महमूदने हिजरी ४०४ (ई० सन् १०२३) में की। उसे पहले ग्वालियरके राजाका दमन करना था इस लिए यह सम्भव नहीं है कि उसने यमुनाको पार किया हो। ग्वालियरका राजा युद्ध न कर उसकी शरणमें आया। वह कालजरके राजाका सामन्तमात्र था इसलिए महमूदने वहाँ अधिक समय न ठहर कर गडपर आक्रमण किया। मुसलमान लेखकोंने गलतीसे उसे नद लिख दिया है। कुछ यूरोपीय ग्रन्थकारोंको इस चढ़ाईके सम्बन्धमें सदेह है और इलियट

आक्रमणकी सत्यता और आवश्यकता स्वीकार करनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं रह जाती। इतना ही नहीं, हमारी समझमें यह भी आजाता है कि महमूदने पहले ग्वालियरपर चढ़ाई कर वहाँके राजाको क्यों परास्त किया। इस चढ़ाईका विस्तारसे वर्णन कर निज़ामुद्दीन लिखता है कि महमूदने कालंजरपर दूसरी बार चढ़ाई की, पर यह केवल पुनरुक्ति जान पड़ती है। वास्तवमें कालंजरपर यह पहली ही चढ़ाई थी। (ई० सन् १०१८ में महमूदने मथुरा लेनेके बाद कालपीमें चंदेलोंपर आक्रमण किया था। यदि इस आक्रमणको स्वतंत्र माना जाय तो ई० सन् १०२३ की कालंजरकी चढ़ाई दूसरी कही जा सकती है।) इस अवसरपर गंड कालंजर तक पीछे हटा। महमूदने कालंजरपर घेरा डाला। निज़ामुद्दीन कहता है कि "मज़बूतीके ख़यालसे यह क़िला हिन्दुस्तानमें अपनी सानी नहीं रखता था। नंदने तीन सौ हाथी महमूदकी नजर किये और सुलहकी बात छेड़ी।" उसने कुछ कविताएँ भी भेजीं जिनमें सुलतानकी स्तुति की गयी थी। ये कविताएँ उस देशके विद्वानोंको दिखायी गयीं। उन्होंने कविताओंकी बड़ी प्रशंसा की। सुलतान भी ख़ुश हुआ और कुछ नजराना भेजकर उसने नंदको पन्द्रह किले दिये। कदाचित् महमूदने बुद्धिमानीसे यही निश्चय किया कि ग्वालियर और कालंजर जैसे किले जीतनेमें अपनी शक्ति व्यर्थ नष्ट न की जाय। वहाँके राजाओंने उसकी अधीनता स्वीकार की और यह क़बूल किया कि हम कन्नौजके राजाके खिराज देनेमें बाधा न डालेंगे। इससे महमूद सन्तुष्ट हुआ। यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि राज्यपालके पुत्र त्रिलोचनपालने भी महमूदको खिराज देना स्वीकार किया होगा।

इस सिंहका सम्बन्ध विष्णुके नरसिंह अवतारसे है। हमने पहले भागमें दिखाया है कि पञ्जाबमें नरसिंहकी उपासना प्रचलित थी। मुलतान प्रल्हादपुर (अर्थात् नृसिंह भक्त प्रल्हाद-का नगर) के नामसे प्रसिद्ध था। महमूदने यह प्रांत जीत लिया और वहाँके लोगोंको इस्लाम धर्मकी दीक्षा दी। पश्चात् उसने लोहकोटकी, ओर कूच किया। यह काश्मीरका अजेय किला था। पर उस दुर्गमदेशमें जानेके लिए मार्ग न मिलनेसे महमूद लाहौर* तक जाकर लौट आया। (लाहौर महमूदके हिन्दुस्तानी प्रान्तकी राजधानी था।) सम्भवतः यहीं उसे कन्नौजका समाचार मिला और उसने अगली बरसातमें ग्वा-लियर और कालंजरपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया।

यह अगली चढ़ाई महमूदने हिजरी ४०४ (ई० सन् १०२३) में की। उसे पहले ग्वालियरके राजाका दमन करना था इस-लिए यह सम्भव नहीं है कि उसने यमुनाको पार किया हो। ग्वालियरका राजा युद्ध न कर उसकी शरणमें आया। वह कालंजरके राजाका सामन्तमात्र था इसलिए महमूदने यहाँ अधिक समय न ठहर कर गंडपर आक्रमण किया। मुसलमान लेखकोंने गलतीसे उसे नंद लिख दिया है। कुछ यूरोपीय ग्रन्थकारोंको इस चढ़ाईके सम्बन्धमें संदेह है और इलियट यह समझ नहीं सका है कि इस आक्रमणमें ग्वालियरका क्यों समावेश किया गया (इलियट भा० २, पृ० ४६७)। शिलालेखोंसे हम जान गये हैं कि ग्वालियर और कालंजरके राजाओंने मिल कर राज्यपालपर आक्रमण किया था। अतः ग्वालियरके

*लाहौर गजेटियरमें लिखा है कि महमूद लाहौरमें कभी आया नहीं पर उपर्युक्त वर्णनसे उसका खंडन होता है। गजेटियरका यह कथन विश्वसनीय नहीं जान पड़ता।

आक्रमणकी सत्यता और आवश्यकता स्वीकार करनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं रह जाती। इतना ही नहीं, हमारी समझमें यह भी आजाता है कि महमूदने पहले ग्वालियरपर चढाई कर वहाँके राजाको क्यों परास्त किया। इस चढाईका विस्तारसे वर्णन कर निजामुद्दीन लिखता है कि महमूदने कालजरपर दूसरी वार चढाई की, पर यह केवल पुनरुक्ति जान पडती है। वास्तवमें कालंजरपर यह पहली ही चढाई थी। (ई० सन् १०१८ में महमूदने मथुरा लेनेके बाद काल्पीमें चदेलोंपर आक्रमण किया था। यदि इस आक्रमणको स्वतत्र माना जाय तो ई० सन् १०२३ की कालजरकी चढाई दूसरी कही जा सकती है।) इस अवसरपर गड कालजर तक पीछे हटा। महमूदने कालजरपर घेरा डाला। निजामुद्दीन कहता है कि "मजबूतीके खयालसे यह किला हिन्दुस्तानमें अपनी सानी नहीं रखता था। नदने तीन सौ हाथी महमूदकी नजर किये और सुलहकी बात छेडी।" उसने कुछ कविताएँ भी भेजीं जिनमें सुलतानकी स्तुति की गयी थी। ये कविताएँ उस देशके विद्वानोंको दिखायी गयीं। उन्होंने कविताओंकी बडी प्रशसा की। सुलतान भी खुश हुआ और कुछ नजराना लेकर उसने नदको पन्द्रह किले दिये। कदाचित् महमूदने बुद्धिमानीसे यही निश्चय किया कि ग्वालियर और कालजर जैसे किले जीतनेमें अपनी शक्ति व्यर्थ नष्ट न की जाय। वहाँके राजाओंने उसकी अधीनता स्वीकार की और यह कबूल किया कि हम कन्नौजके राजाके खिराज देनेमें बाधा न डालेंगे। इससे महमूद सन्तुष्ट हुआ। यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि राज्यपालके पुत्र त्रिलोचनपालने भी महमूदको खिराज देना स्वीकार किया होगा।

टिप्पणी—१

इस आक्रमणके संबंधमें निजामुद्दीनका वर्णन पूर्णतः ठीक मान लेनेके कारण इंडियन ऐंटिक्वेरी भाग ३७ (पृ० १४२) में चंदेलोंपर निबंध लिखते हुए सर विन्सेण्ट स्मिथने इस घटनाका बिलकुल भिन्न विवरण दिया है और हमारे विचारमें वह विवरण बहुत अंशोंमें ग़लत है। स्मिथने लिखा है कि "बारहवें आक्रमणके समय जनवरी १०१९ में राज्यपाल महमूदकी शरणमें आया और उसने दस लाख दिरहम तथा ३० हाथी खिराजमें देना स्वीकार किया। राज्यपालने महमूदकी अधीनता स्वीकार की इस-लिए गंडके पुत्रने सन् १०१९ ई० में उसका वध किया। महमूदने पुन-आक्रमण किया और उस समय गंडके मित्रने यमुना नदीपर महमूदका विरोध किया। इस मित्रका नाम फारसी लिपिकी अपूर्णताके कारण ठीक तरहसे पढ़ा नहीं जाता पर यह राज्यपालका पुत्र त्रिलोचनपाल ही होगा। परन्तु उसे यश नहीं मिला और महमूदने नदी पार कर ली। पश्चात् उसने वारी शहर लूटा। फिर वह गंडका पराजय करनेके लिए दक्षिणकी ओर गंडके राज्यमें घुसा। गंडने हिंदू प्रथाके अनुसार ६४० हाथी, ३६००० घुड़सवार और ११५००० पैदलकी एक बड़ी सेना तैयार की। यह प्रचंड सेना देखकर सुलतान चिन्तित हुआ और उसने एक ऊँची पहाड़ीपर जाकर इस सेनाका निरीक्षण किया। पर गंड रातको भाग गया। यह सोचकर कि शायद शत्रुने कोई चाल चली हो सुलतानने बड़ी सावधानीसे हमला किया। उसे लूटमें अपार सम्पत्ति मिली। शत्रुकी कायरता और भारी लूट देखकर महमूदको ग्वालियरके रास्ते इस प्रदेशपर पुनः आक्रमण करनेकी इच्छा हुई और १०२३ ईसवीमें उसने कालंजरपर पुनः घेरा डाला। गंडने उसे ३०० हाथी और अपार सम्पत्ति नजरानेमें दी और उससे कालंजर तथा अन्य १५ किले लेना स्वीकार किया। महमूदको यह विजय सहज-में ही मिल गयी थी तो भी मुसलमानोंने १८० वर्षतक चंदेलोंके राज्यपर आक्रमण नहीं किया और गंडके वंशजोंको स्वच्छन्द राज्य करने दिया"। निजामुद्दीनपर पूर्ण विश्वास करनेसे स्मिथके इस वर्णनमें बहुतसी असं-

गत बातें आगयी हैं। निजामुद्दीनने एकके स्थानपर कालंजरकी दो चढ़ाइयोंका वर्णन किया है और दोनोंको ही चन्देलों द्वारा राज्यपालका वध होनेके बादकी बताया है। इनमेंसे दूसरी चढ़ाई बिलकुल अनावश्यक मालूम होती है, कारण यह कि ग्वालियर जाते समय केवल लूटके लिए ही दूसरा कोई कारण न होते हुए, चढ़ाई करना ठीक नहीं जँचता। इसी प्रकार यह कहना भी सरासर पागलपन है कि मुसलमानोंकी अपेक्षा कहीं अधिक सेना पासमें रखते हुए भी गंड रातको भाग गया। उत्बीने ऐसे वर्णन नहीं दिये हैं। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि बादके मुसलमान लेखकोंको ऐसी चढ़ाइयोंकी कथाएँ रचनेका मोह हुआ हो जिनमें हिन्दू राजा पासमें प्रचण्ड सेना रखते हुए भी युद्ध न कर भाग गये। गंडका वर्णन करते हुए उत्बीने भी कहा है कि वह स्वतंत्र, अभिमानी और शूर राजा था। निजामुद्दीन द्वारा वर्णित यह घटना काल्पनिक है क्योंकि उसीके कथनानुसार यदि यह चढ़ाई कालञ्जर राजको (राज्यपालके वधके लिए) दण्ड देनेके उद्देश्यसे हुई होती तो यमुना पार कर कन्नौजपर चढ़ाई करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी। पिता जिसकी शरणमें गया हो उस (महमूद) का त्रिलोचनपाल विरोध करे यह भी संभव नहीं जान पड़ता। अन्ततः उत्बीने भी यह नहीं कहा है कि रांहिब नदीकी लड़ाईके बाद महमूदने नंदपर चढ़ाई की।

हमारे विचारमें घटनाक्रम इस प्रकार है—बारहवें (कन्नौजके) आक्रमणके समय (ई० सन् १०१९ में) राज्यपाल महमूदकी शरणमें नहीं गया। वह बारीको भाग गया। तेरहवें आक्रमणमें महमूदने राज्यपाल पर बारीमें चढ़ाई की और उसे परास्त कर खिराज देनेकी शर्तपर उसे छोड़ दिया (१०२१ ई०)। ग्वालियरकी सहायतासे नंदने मई मासमें राज्यपालपर चढ़ाई की और उसका वध किया। महमूदको यह समाचार मार्च सन् १०२२ ई० में लाहौरमें मिला और इसी वर्ष दिसंबर मासमें महमूदने ग्वालियर और कालञ्जरपर चढ़ाई की। इसीपर जनवरी १०२३ ई० में गंड उसकी शरणमें आया। निजामुद्दीनने गंडको कायर दिखाना चाहा है पर यदि घटनाओंका क्रम इस प्रकार माना जाय तो गंड कायर नहीं जँचेगा।

टिप्पणी—२

काबुल पञ्जाबके शाहीराजा ।

प्राय सब इतिहासकारोंने स्वीकार किया है कि इन राजाओंने काबुलसे लाहौरतक राज्य किया। अल्बेरूनीके "हिन्दुस्तान" ग्रन्थके अनुवादक सचाउने प्रस्तावनामें लिखा है कि "जिस समय अल्बेरूनीने अपना ग्रन्थ लिखा उस समय काबुलिस्तानसे पञ्जाबतक राज्य करने वाला पाल वश ऐतिहासिक क्षेत्रसे लुप्त हो गया था और उसका राज्य पूर्णरूपसे महमूदके हाथोंमें चला गया था।" यह निर्विवाद सिद्ध हुआ है कि इन शाही राजाओंने इस विस्तीर्ण प्रदेशपर राज्य किया, कारण इनके सिक्के सारे पञ्जाबमें मिलते हैं। लुधियाना जिला गजेटियरमें लिखा है कि काबुल पञ्जाबके राजा सामन्तदेवके सिक्के सुनेतके उजाड नगरके मिट्टीके ढेरोंमें मिलते हैं। वहाँ कुशान प्रभृति प्राचीन राजाओंके सिक्के भी मिलते ह पर दिल्लीके हिंदू या मुसलमान राजाओंके सिक्के बिलकुल नहीं मिलते। इससे स्पष्ट है कि गजनीके महमूदने सुनेतनगर का ध्वस किया।

शाही वशमें सामन्त नामका प्रसिद्ध राजा हो गया है। टॉमस कहता है कि वह ई० सन् ९३५ में गद्दीपर बैठा (पर यह बात निश्चित नहीं है—इलियट भा० २, पृ० ४२५)। ऐसा जान पडता है कि उसने पञ्जाब प्रान्त जीता था। उसके सिक्के वहाँ बहुतायतसे मिलते हैं। भीमके सिक्के काबुलिस्तानमें सर्वत्र मिलते हैं पर पञ्जाबमें क्वचित् ही दिखायी देते हैं। हम यह देख ही चुके हैं कि उसने कोट कागडाके समीप भीमनगर बसाया था। काश्मीरकी प्रसिद्ध क्रूर रानी दिद्दाका वह पितामह था। यह अजीब बात है कि अबतक जयपालका एक भी सिक्का नहीं मिला। पञ्जाब और अंतर्वेदीके उत्तर भागमें आनन्दपालके सिक्के कसरतसे मिलते हैं पर त्रिलोचनपाल या भीमपालका एक भी सिक्का नहीं मिलता। सभव वत पञ्जाबमें कहीं भी उनका राज्य नहीं था।

इन राजाओंके सिक्कोंसे जान पड़ता है कि ये शैव थे। उन सिक्कोंपर नदीकी आकृति है। पर पहला भीम सभक्त वैष्णव था क्योंकि तरंगिणी में ऐसा उल्लेख है कि उसने काश्मीरमें केशवका मन्दिर बनवाया। इसका वर्णन दूसरे भागमें आया है। ऐसा जान पड़ता है कि उस समय पञ्जाबमें, और उसी प्रकार काबुलिस्तानमें, वैष्णव धर्म प्रचलित था।

इलियटने लिखा है कि अन्तिम राजा भीमने (बुन्देलखण्डके) चन्द्र-राजाको पत्र लिख कर सलाह दी थी कि तुम महमूदसे युद्ध करनेके बखेड़े-में न पड़ो। इसके प्रमाणमें इलियटने उत्बीका एक अंश (यामिनी, पृ० ४२७) उद्धृत किया है (ई० भा० २, पृ० ४८)। यामिनीकी विभिन्न प्रतियोंमें कुछ स्थानोंपर, विशेष कर नामोंके सम्बन्धमें, भिन्न भिन्न पाठ है। हमने यामिनीके जिस भाषान्तरसे काम लिया है उसमें यह नाम नहीं मिलता। हमारा अनुमान है कि चन्द्ररायको लौट जानेकी सलाह कन्नौजके राज्य-पालने दी होगी और यही अधिक संभव भी है क्योंकि भीमका दक्षिणकी ओर इतनी दूर आना सम्भव नहीं है। कहा जाता है कि भीमपालके पिता त्रिलोचनपालने ऐसा ही उपदेश दिया था। पिताकी तरह यदि भीमने भी महमूदसे युद्ध न करनेका उपदेश दिया हो तो वह महमूदका मित्र और माण्डलिक रहा होगा। एक प्रतिमें ऐसा उल्लेख है कि उसका चाचा मुसल-मान बनाया गया था। यह बात सेवकपालके बारेमें हो सकती है। सेवक पाल जयपालका नाती था। उसने इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। बादमें उसने विद्रोह किया, इसपर महमूदने उसपर चढ़ाई की और सेवक-पाल मारा गया।

चौदहवाँ प्रकरण ।

सोमनाथका आक्रमण ।

महमूदके मूर्तिभंग और लूटपाट संबंधी चरित्रके अत्यंत स्मरणीय अंशतक अब हम आ पहुँचे हैं। यह अंश सोमनाथकी चढ़ाईका वृत्तान्त है। उस समय सोमनाथके विषयमें प्रसिद्ध था कि वह शिवका अत्यन्त पवित्र देवस्थान है। नवीं शताब्दीके स्कंद पुराणमें इसका विस्तृत वर्णन है। अल्बेरूनीने इसका वर्णन करते हुए इसे तीर्थक्षेत्र और समुद्री डाकुओंका वास-स्थान कहा है। यह नगर ऐसा अवश्य था कि इसपर आक्रमण कर यहाँकी अपार संपत्ति लूटनेकी महमूदको इच्छा हुई हो। दुर्भाग्यसे उत्वीने ४२० हिजरी (ई० स० १०२९) अर्थात् इस आक्रमणके चार वर्ष बादतक जीवित रहते हुए भी अपनी पुस्तकमें महमूदके इस महापराक्रमका उल्लेख नहीं किया है। इसके दो शताब्दी बाद अपना इतिहास लिखते हुए रशीदुद्दीनने या उसके २० वर्ष बादके लेखक हमीदुल्लाने भी इस आक्रमणका उल्लेख नहीं किया है (ईलियट भाग २, पृ० ४३०-४३१)। इस आक्रमणका सबसे पहला वर्णन इब्न-असीरकी पुस्तकमें मिलता है। बादके लेखकोंने इसी वर्णनको बढा कर लिखा है (इलियट भाग २ पृ० ४६८)। गुजरातके जैनी तथा हिन्दू इतिहासकारोंने सोलंकी घरानेके आदि पुरुष मूलराजके समयसे गुजरातके सोलंकी राजाओंका पूरा इतिहास दिया है पर उसमें सोलंकी राजाओंके वैभवकालमें गुजरातपर आयी हुई इस आपत्तिका नामतक नहीं आया है। मूलराज ई० स० ९६१ में अर्थात् सबुक्तगीनके १६ वर्ष पूर्व अनहिल वाडके सिंहासनपर बैठा, इसका वृत्तान्त आगे चल कर

दिया गया है। आजतक जो शिलालेख मिले हैं उनमें भी इस संकटके विषयमें एक अक्षर भी नहीं मिलता। इससे स्वाभाविकतः शंका उत्पन्न होती है कि गुजरात जैसे दूरस्थ प्रान्तपर, जहाँ पहुँचनेके लिए एक विस्तीर्ण मरुस्थल पार करना आवश्यक था, महमूदने वास्तवमें चढ़ाई की थी या नहीं। अपने अत्यन्त पवित्र देवस्थान और राजापर आयी हुई इस आपत्तिका उल्लेख करनेके लिए हिन्दू लेखक अनुत्सुक रहे होंगे और मुसलमान लेखकोंने यद्यपि इसे सैकड़ों वर्ष बाद लिखा तो भी उनके पास इस संबंधका कोई लेख अवश्य रहा होगा। इसलिए मुसलमानोंका बिलकुल काल्पनिक बात लिखना संभव नहीं है। हमने इब्न असीरकी पुस्तकके उस अंशके आधार पर यह वृत्तान्त देना निश्चित किया है जिसे इलियटने अपने ग्रन्थमें उद्धृत किया है (इ० भा० २, पृ० ४६६)।

हम आरम्भमें ही बता देना चाहते हैं कि इस अतिशयोक्ति पूर्ण वृत्तान्तको बादके लेखक अधिकाधिक विस्मयजनक बनाते चले गये हैं। मुख्यतः महमूदका धार्मिक गौरव बढ़ानेकी इच्छासे इन लेखकोंने इस वृत्तान्तमें मनगढ़न्त बातें जोड़ दीं। उदाहरणार्थ—सोमनाथकी मूर्तिमें अपार संपत्ति संचित थी, वहाँके ब्राह्मणोंने खिराजके तौरपर करोड़ों रुपये महमूदको देना स्वीकार किया, महमूदके सेनापतिने रुपया ले लेनेकी महमूदको सलाह दी, पर महमूदने उत्तर दिया कि मेरी इच्छा है कि ईश्वरके दरबारमें मैं मूर्ति-विक्रेता सिद्ध न होकर मूर्तिभंजकके नामसे प्रसिद्ध होऊँ, इत्यादि ये कथाएँ, जिन्हें गिबनने भी उद्धृत किया है, यदि फिरिश्ताकी नहीं तो किसी दूसरे लेखककी कपोलकल्पना है। सोमनाथका वर्णन बनावटी होनेके संबंधमें टीका करते हुए इलियटने विलसनके

लेखका एक अंश उद्धृत किया है । यह अवतरण इस प्रकार है—"आरंभके मुसलमान लेखकोंके लेखोंमें इस मूर्तिके अवयव छिन्न विच्छिन्न किये जाने या उसमें संपत्ति होनेका कहीं उल्लेख नहीं है। वस्तुतः उस मूर्तिके अवयव ही नहीं थे और उसके ठोस होनेके कारण उसमें संपत्तिका छिपा रहना भी असम्भव था। फिरिश्ताने मूर्तिमें छिपाकर रखे हुए हीरे जवाहिरातका जो पता लगाया है वह भी निराधार है।" यह कथा सरासर पागलपनकी है क्योंकि सोमनाथकी मूर्ति तो एक ठोस पत्थरकी ही रही होगी। इसी प्रकार कुछ और कथाएँ भी प्रचलित हैं जो बिलकुल अविश्वसनीय हैं। यथा, एक विश्वासघातक हिंदू मार्गदर्शक महमूदको मरुस्थलके एक जलरहित स्थानपर ले गया पर ईश्वरकी प्रार्थना करते ही सुलतानको पानी मिल गया; गुजरात प्रांत उर्वर होने तथा वहाँ सोनेकी खानें होनेके कारण महमूदको वहीं रह जानेकी इच्छा हुई पर उसके अधिकारियोंने यह कह कर कि खुरासान आपकी जन्मभूमि है, वहीं रहनेमें आपको सुविधा होगी, महमूदका यह विचार बदल दिया; गुजरातसे लौटते समय महमूद इस देशका राज्य भागे हुए राजाके संबंधी दाबशिलीमको, जो संसारसे विरक्त हो गया था, सौंप गया। अन्तिम कथाके संबंधमें कहा जाता है कि दाबशिलीम गुजरातके तत्कालीन राजा भीमका चचा था और वह वास्तवमें संसारसे विरक्त होकर सरस्वती नदीके तटपर जाकर रहा था। यह सब होते हुए भी यह कथा विचित्र है और इसपर विश्वास नहीं होता।

इस आक्रमणके संबंधमें इलियटने कई इतिहासकारोंके अवतरण दिये हैं पर उन्हें यहाँ देना हम व्यर्थ समझते हैं।

कारण यह है कि इब्नअसीरका मूल वृत्तान्त ही अतिशयोक्तियोंसे भरा हुआ है फिर इन इतिहासकारोंने तो उसमें भी नमक मिर्च लगाकर अपने वृत्तान्त लिखे हैं। हाँ, इब्न असीरके वृत्तान्तका सारांश हम दे रहे हैं। वह इस प्रकार है—"सोमनाथकी मूर्ति भारतमें अत्यन्त प्रसिद्ध थी। विशेष कर चन्द्रग्रहणपर वहाँ बहुत लोग जमा होते थे। लोगोंका विश्वास था कि मनुष्योंके मरनेपर उनकी आत्माएँ वहाँ जाती हैं। उस देवालयको १०००० गाँव जागीरमें मिले थे। सोमनाथकी मूर्तिके अभिषेकके लिए रोज़ गंगाजल लाया जाता था। एक हज़ार ब्राह्मण मूर्तिकी पूजा करते और यात्रियोंको दर्शन कराते थे। यात्रियोंके बाल बनानेमें तीन सौ नाई लगे रहते थे। मन्दिरके द्वारपर तीन सौ स्त्रियाँ गाती और नाचती थीं। (प्राचीन कालमें शिवमूर्तिके सामने गायिका गाया और नाचा करती थीं, जैसा कालिदासने मेघदूतमें वर्णन किया है। दक्षिणके शिव-मन्दिरोंमें यह प्रथा अब भी प्रचलित है। गोवा प्रान्तके मंगेशके मन्दिरमें यह बात मेरे देखनेमें आयी।) लोग विश्वास करने लगे थे कि महमूदका प्रतिकार न करनेके कारण सोमनाथ अन्य हिन्दू देवताओंपर क्रुद्ध हुआ है। यह बात सुन कर महमूदने विचार किया कि सोमनाथकी मूर्ति तोड़ कर यदि मैं हिन्दुओंको दिखा दूँ कि उनके देवता झूठे हैं तो वे सच्चा धर्म स्वीकार करेंगे।

ऐसा निश्चय कर महमूद साबानकी १० वीं तारीखको ३०००० अश्वारोही और कुछ सेवक लेकर ग़ज़नीसे रवाना हुआ। रमजान मासके मध्यमें वह मुलतान पहुचा। वहाँसे वह मरुस्थल होते हुए अनहिलवाड जानेके लिए रवाना हुआ। साथमें ३०००० ऊँटोंपर अन्न पानी ले लिया गया था। वहाँ

का राजा भीम सुरक्षित होनेके विचारसे एक किलेमें भाग गया। (बादके इतिहासकारोंने इस किलेका नाम कन्दन लिखा है। सम्भवतः यह कच्छका कन्थड किला होगा।) महमूद मरुस्थल होते हुए दबलवार पहुँचा। (अनहिलवाड अधिकृत करने या लूटनेका यहाँ उल्लेख नहीं है।) यह स्थान सोमनाथ-से दस मंजिलपर था। वहाँके लोग नगर छोड़ कर भागे नहीं थे क्योंकि उनका विश्वास था कि सोमनाथ महमूदका नाश करेगा। पर महमूदने नगर लेकर वहाँ कत्लेआम कर दिया। पश्चात् वह सोमनाथकी ओर बढ़ा।

जिल्काद महीनेमें गुरुवारके दिन महमूद सोमनाथ पहुँचा। उसने समुद्र तटपर एक मजबूत किला देखा। किलेकी दीवारोंपर हिन्दू खड़े थे। वे मुसलमानोंको देखकर हँसते और कहते थे कि सोमनाथ तुम लोगोंका नाश करेगा। शुक्रवारको मुसलमानोंने आक्रमण किया। हिन्दू भाग गये। मुसलमान सीढ़ियाँ लगाकर दीवारपर चढ गये और किलेमें उतरे। पश्चात् भयंकर हत्याकांड आरम्भ हुआ। बहुतसे हिन्दू मन्दिरमें घुस गये। उन्होंने मूर्तिको दंडवत किया और जय प्राप्तिके लिए ईश्वरसे प्रार्थना की। (यहाँ दूसरी चहार दीवारी रही होगी।)

दूसरे दिन सवेरे पुनः युद्ध आरम्भ हुआ। मुसलमान हिन्दुओंको मन्दिरकी ओर हटाते जाते थे। मन्दिरके द्वारपर भयंकर हत्याकाण्ड हुआ। हिन्दू मन्दिरमें जाते और रोकर तथा हाथ जोड़ कर ईश्वरसे प्रार्थना करते, पश्चात् मन्दिरके बाहर आकर मरते दम तक लड़ते थे। कुछ लोग नावोंपर बैठ कर समुद्रसे भागे। परन्तु उनपर भी आक्रमण किया गया और वे मारे या डुबाये गये।

सोमनाथका मन्दिर लकड़ीके ५६ खम्भोंपर बनाया गया था। ये खम्भे सीसेसे मढ़े थे। मूर्ति भीतरकी एक कोठरीमें थी। मूर्ति पाँच हाथ ऊँची थी और इसका घेर तीन हाथ था। वह दो हाथ तो भी जमीन में गड़ी होगी। वह गड़ी हुई नहीं जान पड़ती थी। उसका कुछ भाग महमूदने जला डाला और कुछ भाग ग़ज़नी भेज दिया। यह भाग ग़ज़नीकी जामा मसजिदके द्वारपर सीढ़ीके स्थानपर लगाया गया। मन्दिरमें अंधकार था पर रत्नजटित झाड़फानूसका वहाँ प्रकाश होता था। मूर्तिके समीप सोनेकी साँकल थी जिसमें घण्टे लगे थे। ब्राह्मणोंको पूजा करनेके लिए उठानेके लिए ये घण्टे समय समयपर बजाये जाते थे। समीपही खजाना था जिसमें सोने चाँदीकी मूर्तियाँ और कीमती रत्नोंसे जड़े हुए परदे थे। महमूदको बीस लाख दीनारोंसे अधिक मूल्यकी लूट मिली और पचास हजारसे अधिक आदमी कालकवलित हुए।" (इ० भा० २, पृ ४६६—७१)।

यह वृत्तान्त बिलकुल स्वाभाविक और विश्वसनीय है। ब्राह्मणोंने, या कहिये क्षत्रियोंने, क्रुद्ध होकर मन्दिरके समीप महमूदका प्रतीकार किया। पर यह मृत्युसे आलिंगन करना था। गुजरातका राजा भीम सोमनाथके बाहर ही महमूदका घोर विरोध कर सकता था।

उसने यदि अपने आत्मसम्मान और एक राजपूतके कर्तव्यका यदि विचार कर युद्धकी ठानी होती तो वह महमूदके विरुद्ध उससे भी बड़ी सेना, यहाँतक कि अश्वदल भी, युद्धक्षेत्रमें ला सकता था। पर यह ध्यानमें रखना होगा कि इस समय महमूदकी ख्याति सदा विजयी होनेके कारण नैपोलियनकी भाँति पराकाष्ठातक पहुँच चुकी थी। अकेला

नैपोलियन एक लाख सेनाके बराबर माना जाता था। पर वाटर्लूके युद्धक्षेत्रमें इस नैपोलियनका भी जर्मन और अंग्रेजोंने घोर विरोध किया । आपत्ति कालमें निराश हो जानेपर जानपर खेल जानेका साहस हिन्दुओंमें नहीं दिखाई देता। तात्पर्य यह कि यदि भमने कच्छके एक किलेकी शरण ली तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। कच्छमें पानीकी अड़चन थी और ज्वारके समय पानी बढनेकी सम्भावना होनेसे उधर से जाना जोखिमका काम था। पर कुछ लोग कहते हैं कि सोमनाथ लेनेके बाद महमूदने वहाँ भी जाकर भीमपर आक्रमण किया। विजेता महमूदके आनेकी खबर पाते ही भीम वहाँसे भी भागा। वहाँसे महमूद सिंधु होते हुए मरुस्थलके मार्गसे गजनी लौट गया। महमूदको यह मालूम था कि मरुभूमिमें पानी नहीं मिलता, ऐसी अवस्थामें हिंदू मार्ग दर्शक उसे धोखा दे ही नहीं सकता था। सिंध नदी के डाकुओंने महमूदको बहुत तंग किया। लोगोंका खयाल है कि ये डाकू जूड़* देशके होंगे। बादमें महमूदने इन जाटोंपर (अन्तिम) चढ़ाई कर उन्हें उचित दंड दिया।

बहुतोंका कहना है कि महमूद मुलतान, अजमेर, अनहिलवाड़ होते हुए मरुस्थलके पूर्वी मार्गसे सोमनाथ आया और कच्छ, मनसूर, मुलतान होते हुए सिन्धु नदीके मार्गसे वापस गया। मालवाका परमारदेव (भोज) महमूदसे युद्ध करनेकी तैयारी कर रहा था। मार्गमें परमारदेवसे युद्ध करना पड़े इसी विचारसे महमूद इस पश्चिमके मार्गसे गया।

* कहते हैं कि ई० सन् १०२४ में जब महमूद सोमनाथसे वापस जा रहा था, उस समय नमकके पहाड़ोंके जाटोंने उसे तंग किया पर ये जाट सिन्धु नदीके दक्षिण तटके रहे होंगे (झेलम गजेटियर, पृ० ३)।

कितने ही इतिहासकारोंने लिखा है कि महमूदको इस बातका डर लगा होगा कि यदि हिन्दुओंके साथ युद्ध करना पड़ा तो हमारी यह भारी लूट कदाचित् हाथसे निकल जाय।

टिप्पणी—१

सोमनाथ।

सोमनाथ पट्टण अथवा सोमनाथ नगर काठियावाड़के पश्चिमी किनारे पर बसा है। आजकल यह जुनागढ़के राज्यमें है और इसपर गायकवाड़का अधिकार है। एक प्रवासीने इसे ई० सन् १८४३ में देखकर ज. रा. ए. सो० भाग १, पृ० १०३ में इसका इस प्रकार वर्णन दिया है—"प्राचीन देवालय नष्ट हो गया है और इसके समीप ही अहिल्याबाईने नया देवालय बनवाया है। पुराना देवालय नष्ट हो जानेपर भी उसका विशाल वैभव अब भी दृष्टिगोचर होता है।" हमारे विचारमें जिस मन्दिरको इन्होंने प्राचीन बताया है वह सिद्धराज जयसिंह और कुमारपालका बनवाया हुआ होगा और जिस देवालयका महमूदने विध्वंस किया वह परमारोंके एक शिलालेखके वर्णनानुसार संभवतः मालवेके भोज परमारका बनवाया हुआ है। इस शिलालेखका वर्णन आगे चल कर परमारोंके इतिहासमें दिया जायगा। मुसलमान इतिहास कारोंके वर्णनानुसार भोजका बनवाया देवालय शायद लकड़ीका रहा होगा। वह मन्दिर संभवतः ई० स० १०२६ में बनाया गया। अनहिलवाडके जयसिंहने इस स्थानपर नया पत्थरका मन्दिर बनवाना आरंभ किया और कुमारपालने इसे पूरा किया। यह बात केवल गुजरातके इतिहासग्रन्थोंसे ही नहीं वरन् सोमनाथ पट्टणके मन्दिरके एक शिलालेखसे भी मालूम होती है। आगे चलकर अनहिलवाडके इतिहासमें इस शिलालेखका उल्लेख किया गया है। इस भद्रकाली देवालयकी प्रशस्तिका वर्ष ई० स० ११६९ है। यह प्रशस्ति बड़ी सुन्दर है। इसके आरंभमें एक ब्राह्मणका वर्णन है जिसके बारेमें कहा गया है कि वह बनारसका रहने

वाला था और उसने विध्वस्त मन्दिरोंका उद्धार करनेका काम हाथमें लिया था। (ये मन्दिर सम्भवत वे होंगे जिनका महमूदने ध्वस किया था।) इस पुण्यमय कार्यके लिए वह सारे भारतमें घूमा। वह उज्जैनसे सोमनाथ आया। हमारे विचारमें इस पुण्यात्मा ब्राह्मणके प्रयत्नके उल्लेखसे बादके मुसलमान इतिहासकारों द्वारा वर्णित महमूदकी सोमनाथकी चढाई और देवालयके नाशकी पुष्टि होती है। इस प्रशस्तिमें स्पष्टरूपसे कहा गया है कि अब वह मन्दिर पत्थरोंसे बनाया गया है। इस प्रस्तर निर्मित देवालयको चौदहवीं शताब्दीमें गुजरातके मुसल्मान राजाने तोडा। आधुनिक विद्वान इस आख्यायिकापर रत्ती भर भी विश्वास नहीं करते कि महमूद सोमनाथके मन्दिरके चदनके किवाड गजनी ले गया था। १८४३में अफगानिस्तान जीतनेपर अंग्रेज जो किवाड ले आये हैं वे आगरेके किलेमें पडे धूल फाँक रहे हैं। (सर देसाई)

टिप्पणी—२
सादी और सोमनाथ।

यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि सादीने अपने बोस्तांमें सोमनाथका उल्लेख किया है। उसमें उसने एक विचित्र कथा दी है जो संभवत उसीके मस्तिष्ककी उपज है। अपनी बहुत बडी यात्रामें वह सोम नाथ आया। वहाँ उसने हाथीदाँतकी बनी मूर्ति देखी। वह सागौनके सिंहासनपर सोनेकी चौकी पर बिठायी गयी थी। उसके शरीरपर मूल्य-वान हीरे खूबसूरतीसे जडे गये थे। ब्राह्मण पुजारीने एक ऐसी कारीगरी की थी कि मूर्ति अपना हाथ ऊपर उठाया करती। गर्भगृहमें मूर्तिके पीछके हिस्सेको देखनेसे यह चाल सयोगवश सादीकी समझमें आगयी। यह देख कर वह ब्राह्मण भागने लगा और इस चालबाजीसे क्रुद्ध होकर सादीने उसका पीछा किया तथा उसे मार डाला। अब सब ब्राह्मण इसका बदला लेंगे इस डरसे सादी उस देशसे भाग गया। इस कथाका कल्पित होना स्पष्ट दिखाई देता है। सादीके लिए उस मूर्तितक पहुँचना भी असभव था, फिर उसके पीछे पहुँच जानेकी बात तो दूर रही। इसके अलावा, ऐसा

भी नहीं प्रतीत होता कि पहले हाथीदाँतकी मूर्तियाँ बनानेकी प्रथा हो। यह सब होते हुए भी सोमनाथ संबंधी सादीका यह वर्णन इतिहासकारोंके लिए ध्यान देने योग्य है क्योंकि इसमें सोमनाथपर महमूदकी चढ़ाई या वहाँकी शिवमूर्तिके महमूद द्वारा तोड़े जानेके विषयमें संकेत तक नहीं किया गया है। यह कोई भी कह सकता है कि सादीके वर्णनमें इस चढ़ाई-का उल्लेख होना चाहिए था। महमूदकी सोमनाथकी चढ़ाईके संबंधमें कभी कभी जो शंका उपस्थित की जाती है उसकी इस अभावसे पुष्टि होती है। सादीका जन्म ई० सन् ११७५ में हुआ था और वह ४० वर्षकी उम्रमें अर्थात् १२१५ के करीब हिंदुस्तानमें आया होगा। उसने ८० वर्षकी उम्रमें अर्थात् ई० स० १२५५ के लगभग अपना बोस्तां ग्रन्थ लिखा। ई० स० १२१५ और १२५५ में गुजरात चाहे मुसलमानोंके अधिकारमें न रहा हो, दिल्ली अवश्य उनके अधिकारमें थी।

सोमनाथके आक्रमणका वर्णन करनेवाला पहिला लेखक इब्न असीर है। उसकी पुस्तक किसी भी अवस्थामें ई० स० १२७० के पूर्वकी नहीं हो सकती अर्थात् यह पुस्तक सादीके बाद लिखी गयी। पर कुछ भी हो, किसी घटनाके उल्लेखका अभाव तबतक पर्याप्त प्रमाण नहीं हो सकता जबतक ऐसे उल्लेखका होना अपरिहार्य या अत्यंत आवश्यक न हो। इसलिए इस आधारपर हम महमूदकी चढ़ाईको कल्पना मात्र नहीं कह सकते। संभव है कि सादीका इस चढ़ाईका उल्लेख न करना काकतालीयवत् हो।

पन्द्रहवाँ प्रकरण।

महमूदकी मृत्यु और उसका स्वभाव।

सोमनाथका युद्ध जीत कर तथा सोमनाथके मन्दिरका ध्वंस करके महमूदने अपने पराक्रमकी चरमसीमा प्राप्त की। इसके बाद कोई विशेष महत्वका आक्रमण नहीं हुआ। शायद

सिकन्दरके समान उसके लिए भी संसारमें कोई देश विजयार्थ बाकी नहीं बचा था। उसके अन्तिम पराक्रमकी कीर्ति बगदादतक फैल गयी। सब लोग सोमनाथके नाशकी आश्चर्य जनक कथा सुन कर अचभेमें पड गये और खलीफाने "केफुद्दौलत-वल इस्लाम" (इस्लामी धर्म और सपत्तिका रक्षक) की उपाधिसे महमूदको सुशोभित किया। (इलियट जिल्द २ पृष्ठ ४७४)। खलीफाने महमूदके तीनों पुत्रों (मसऊद, मुहम्मद और यूसुफ) को भी उपाधियाँ प्रदान कीं। इस प्रकार इस्लामी धर्मके अधिष्ठातासे अति श्रेष्ठ गौरव पानेके बाद अपने पराक्रमको अबाधित रखते हुए हिजरी सन् ४२० (सन् १०२६ ई०) में उसकी मृत्यु हुई। मृत्युके समय महमूदकी आयु ६१ वर्षकी थी। उसके पुत्र पराक्रमी थे और मन्त्री भी अनुभवी और योग्य थे।

गिबनसे लेकर आजतक अनेक इतिहासकारोंने महमूदके चरित्रका गौरवयुक्त वर्णन किया है। गिबनने लिखा है "रक्तरञ्जित घटनाओंसे पूर्ण दुखदायक इतिहासको थोडी देरके लिए दूर हटा कर महमूदके समान संसारके एक निस्सन्देह प्रसिद्ध राजाके गुणोंका विवेचन करना आनन्ददायक है। प्राच्य देशोंमें अभी तक उसके प्रति आदर प्रकट किया जाता है। उसकी प्रजा शांति और समृद्धिके सुखका पूर्ण उपभोग कर सकी। उसकी न्यायप्रियता और उदारताके अनेक उदाहरण इतिहासमें मिलते हैं। महमूदका सुन्दर चरित्र केवल एक ही लोभसे दूषित हुआ है। उसके हृदयमें सदा वर्धमान और कभी सतोष न पानेवाली तृष्णा वास करती थी। मृत्युके निकट आनेपर उसने अपना सारा, धन—जो इतने कष्टसे प्राप्त हुआ था और जिसकी आजतक उसने रक्षा की थी परन्तु

संसारके नियमके अनुसार जिसे सदाके लिए छोड़ना पड़ेगा— सामने फैला रक्खा और आँख भरे नेत्रोंसे उसका अंतिम बार दर्शन किया। एक लाख पैदल, पचास हजार सवार और तेरह हजार लड़ाके हाथियोंसे युक्त अपनी विशाल सेनाको भी उसने आखिरी बार देखा।"

यह सभी इतिहासवेत्ताओंने मान लिया है कि महमूद बड़ा प्रसिद्ध सेनापति था। लेनपूलने वर्णन किया है कि "महमूद बड़ा प्रसिद्ध योद्धा था। उसकी वीरता अपरिमित थी, और उसका शारीरिक तथा मानसिक उत्साह कभी मंद नहीं होता था।" लेनपूलने उसकी उत्तम राज्यव्यवस्थाकी और न्याय प्रियताकी तारीफ करते हुए सेलजुक्के प्रसिद्ध मंत्रीके इस वर्णनका पुनरुच्चारण किया है कि "महमूद न्यायप्रिय, विद्वानोंका भक्त, उदारहृदय और धर्मशील राजा था" (पृ० ३५) "उसके दरबारमें प्रख्यात ज्योतिषशास्त्रज्ञ अल् बेरूनी, दार्शनिक अलफराबी, सिरिश्तेदार अलउत्बी एवं विदूषक अलबेहकी ऐसे अरबी लेखक थे और अनसारी, फारुकी, असजूदीके समान प्रसिद्ध फारसी कवि तथा फारसी साहित्यमें होमरके समान सदा उज्वल रूपमें चमकनेवाला फिरदोसी भी था। महमूदका विद्या प्रेम इसीसे सिद्ध होता है कि इन सब विद्वानोंको उसने आश्रय दिया"। महमूदके गुणोंकी इतनी स्तुति करनेपर भी लेनपूलने अंतमें अपना मत दिया है कि "महमूदमें राजनीतिज्ञता विशेष नहीं थी। उसने राज्य व्यवस्थामें कोई नया आविष्कार नहीं किया या राजशासनमें कोई नयी रीति प्रचलित नहीं की। विजित प्रदेशोंको एक सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित शासनमें गूँथनेका उसने कभी प्रयत्न नहीं किया। इसीलिए उसकी मृत्युके बाद इस अव्य-

घस्थित साम्राज्यके भिन्न भिन्न अवयव शीघ्र ही स्वतंत्र हो गये।"

विरुद्ध मतवाले इतिहासकारोंका विचार करनेके पूर्व हमें महमूदके समान जगत् प्रसिद्ध पुरुषके बारेमें अपना मत प्रकट करना चाहिये। हमारा यह दृढ़ विचार है कि हर्ष, शिवाजी, अशोक, वाशिंग्टन, पीटर इत्यादि संसारके इतिहासमें अटल कीर्ति पानेवाले उन असाधारण महापुरुषोंमेंसे महमूद एक है जिन्होंने राष्ट्रोंके भविष्यमें महान् परिवर्तन किया और जो सृष्टिके नियमके अनुसार दीर्घकालके पश्चात् संसारमें प्रकट होते हैं। आचारमें वह कठोर सयमी था। उसके लूटपाटके तथा मूर्तिभंजकताके वर्णनोंमें कहीं स्त्रियोंके मारनेका या उनपर अत्याचार करनेका उल्लेख नहीं मिलता। न्याय और समतापर उसका इतना प्रेम था और अपराधकी इतनी चिढ़ थी कि यदि व्यभिचार करते हुए सयम् अपने पुत्रको भी पाता तो अवश्य उसे प्राणदंड देता। अपनी प्रजाके सुख संपत्तिकी वृद्धिके लिए उसने सब प्रकारसे प्रयत्न किया। डाकुओंको और चोरोंको दबा कर उसने व्यापारकी रक्षा की ओर भिन्न-भिन्न प्रांतोंके व्यवहार मार्ग निर्भय बना दिये। इस सुविधाके कारण खुरासान और लाहौरके बीच व्यापारियोंके काफिले अबाधित आया जाया करते थे (उत्वी)। उसने भिन्न-भिन्न प्रांतोंपर योग्य अधिकारी नियुक्त किये थे और उनपर पर्याप्त दबाव था जिसमें वे प्रजापर अत्याचार न कर सकें। उसका बंधु नजीर निशापूर प्रांतका (खुरासान) अधिपति था। उत्वीने उसका वर्णन किया है "नजीरकी राज्यव्यवस्था अति उत्तम थी और उसका हृदय बडा दयामय था। उसने कभी किसीपर कठोर वाक्प्रहार नहीं किया या किसीको दण्ड नहीं

पहुँचाया। वह अपनी न्यायप्रियताके लिए प्रसिद्ध था। (पृ० ४८६) उत्वीके इस वर्णनमें अतिशयोक्ति या खुशामदका अंश नहीं है, "उसका बर्ताव दरिद्र विधवा और धीमान् सरदारके साथ एकसा था। उसके समयमें उद्दण्डता और अत्याचारके द्वार बंद हो गये थे।" "महमूद ने नाप और तौलकी जाँचके लिए एक अधिकारी नियुक्त किया था। उसका कर्तव्य था कि बाज़ारोंमें व्यापारियोंके यहाँ जाकर उनके नाप या तौल नियमित परिमाणके अनुसार हैं या नहीं यह देखे। उसने व्यवस्थित और चौड़े राजमार्ग बनवाये। दूकानोंके बनवानेमें बहुतसी सुविधाएँ कीं और सड़कोंपर गदहे और ऊँटोंके लिए स्वतंत्र व्यवस्था की। पहले बाज़ारके रास्ते खुले थे अतः धूल और वर्षासे लोगोंको बड़ा कष्ट होता था। उसने दोनों ओरके घरोंको व्यवस्थितरूप देकर रास्तोंपर आच्छादन डलवाया। सड़कोंपर काफी प्रमाणमें सूर्यप्रकाश आनेकी भी व्यवस्था की गयी थी जिससे सब लोग सूर्यप्रकाशका लाभ उठा सकें" (उत्वी पृ० ४८६)। "आदर सत्कार और धार्मिक कार्योंमें वह एक लाख दीनार केवल इसलिए व्यय करता था कि लोगोंको न्याय मिले और प्रजाके सुखोंकी समृद्धि हो" (उत्वी)। इस वर्णनसे स्पष्ट दिखाई देता है कि महमूद यह जानता था कि प्रजारंजनमें दक्षता राजाका परम कर्तव्य है।

यह कहना अनावश्यक है कि महमूद सच्चा कर्तव्यदक्ष मुसलमान था। अपने धर्मके प्रति उसे पूर्ण श्रद्धा थी, युद्धके पूर्व और बाद या संकटके समय वह ईश्वरकी प्रार्थना करता था। "धर्मनिष्ठोंकी सहायताके लिए ईश्वर सदा तैयार रहता है," कुरानके इस वचनपर उसका पूर्ण विश्वास था। इस विषयमें भी शिवाजी और महमूदमें बड़ा साम्य है। अपने धर्मपर और पवित्र

कार्यपर शिवाजीका भी अटल विश्वास था, और संकट आनेपर वह अपने इष्टदेवकी सहायता तथा मार्ग दर्शन प्राप्त करनेके लिए अनुष्ठान किया करता था। यह हो सकता है कि दोनोंकी प्रार्थना अपने अनुयायियोंका उत्साह और विश्वास बढानेके लिए थी, परन्तु यह अधिक सम्भव है कि श्रद्धाके कारण वे ऐसा करते रहे हों। जिस प्रकार शिवाजी सङ्कटके समय भवानीकी प्रार्थना करके समाधिमें देवीके उत्साहवर्धक और मार्गदर्शक शब्द उच्चारण किया करता था, उसी प्रकार महमूद कुरानसे शकुन देखा करता था। हमें विश्वास है कि दोनों इस प्रकारके अनुष्ठान या प्रार्थना केवल दिखानेके लिए नहीं बल्कि अटल श्रद्धा और उत्कट धार्मिक भावनाके कारण करते थे। शिवाजीके मनकी रचनामें केवल इतना ही भेद था कि अपने धर्मपर अटल श्रद्धा होते हुए भी दूसरे धर्मोंके प्रति उसके मनमें सहिष्णुता थी। महमूदने धर्मोत्साहकी उमङ्गमें मूर्तियाँ नष्ट कीं और मूर्ति पूजकोंका क्रूरतापूर्वक नाश किया। परन्तु शिवाजीने मस्जिद और फकीर दोनोंकी रक्षा की और उनके प्रति आदर भी दिखाया। हमारे मतानुसार महमूदका सबसे बडा दोष उसकी धार्मिक असहिष्णुता और अन्धता है। दूसरी सब बातोंमें वह अकबरसे श्रेष्ठ है, परतु इस विषयमें वह अकबरकी योग्यता नहीं पा सकता। महमूद स्वभावसे क्रूर नहीं था। दो तीन शताब्दियोंके बाद चगेज या तैमूरने एशियामें, या उसके बाद दक्षिणमें मुसलमान राजाओंने, जिस प्रकार निरपराधी और असहाय मनुष्योंका निर्दयतासे वध किया उस प्रकार महमूदने कभी नहीं किया।

अब स्वभाव दोषका विचार करते हुए हमारा मत है कि महमूदके लोभके वर्णनमें अतिशयोक्तिका अश अत्यधिक है।

लोगोंका यह विचार मालूम पड़ता है कि चूँकि इतिहासमें कोई दूसरा मनुष्य इतना धन जमा नहीं कर सका, जितना कि महमूदने एकत्र किया था, इसलिए वह अवश्य लोभी रहा होगा। मरते समय अपनी अगणित संपत्ति त्यागनी पड़ेगी, इस विचारसे उसे रुलाई आयी—यह कथा भी संभवतः कपोल-कल्पित है और उसकी उत्पत्ति किसी नटखट मनुष्यकी बुद्धिसे हुई दिखाई देती है। इतने धर्मनिष्ठका अपरिहार्य मृत्युके लिए रोना संभव प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त उसके कई पुत्र भी थे और मनुष्यका मनोदौर्बल्य अपने पश्चात् अपना धन-संग्रह पुत्रोंको अर्पित करनेके लिए बड़े हर्षके साथ उद्यत रहता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अगणित संपत्तिके वारिस होनेवाले (कमानेवाले नहीं) राजाओंके समान, वह ख़र्चीला नहीं था या मुक्तहस्तसे ख़र्च नहीं करता था। परंतु सेलजुककें वज़ीरकी उक्तिके अनुसार वह उदार निस्संदेह था। बादको प्रसिद्ध हुई कथाओंकी अपेक्षा हमें समकालीन वज़ीरका वर्णन अधिक विश्वस्त मानना चाहिये। विद्वानोंको उत्साहित करनेके लिए वह हर साल बहुतसा धन व्यय करता था। उसने एक पाठशाला स्थापित की थी और उसको चलानेके लिए उसने बहुतसा धन भी दानमें दिया। उसमें वैतनिक अध्यापक नियुक्त किये गये थे और मसजिदके निकट पाठशालाके विद्यार्थियोंके लिए सरकारकी ओरसे निःशुल्क छात्रावासका भी प्रबंध था। "एक कथा कही जाती है कि महमूदने फ़िर-दोसीको काव्यकी हर हजार पंक्तियोंके लिए एक सहस्र सुवर्णके दीनार देना स्वीकार किया था परंतु फ़िरदोसीका 'शाहनामा' महाकाव्य तैय्यार हो जानेपर उसकी ६०००० पंक्तियोंके लिए सुवर्णके स्थानपर चाँदीके दीनार दिये। संभव

है कि महमूद पर लोभी होनेका जो आक्षेप किया जाता है उसकी उत्पत्ति इस कथासे न हुई हो परंतु हमारी धारणा है कि इसी कथाके कारण यह आक्षेप दृढ़तर हो गया। यह कथा बनावटी मालूम पड़ती है क्योंकि परम्परासे प्राप्त फिरदोसीके चरित्रके वर्णनका बहुतसा अंश अर्वाचीन विद्वानोंने त्याज्य माना है।" (एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका)। हमारे विचारमें तो इस प्रचलित कथासे महमूदकी अपेक्षा फिरदोसीका ही क्रोध और लोभ अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। जो कुछ हो, इसी कथासे सिद्ध होता है कि इस विद्याप्रिय राजाने साहित्यकी वृद्धिके लिए और ईरानके प्राचीन इतिहासकी रक्षाके लिए विद्वानोंको उत्साहित किया। फिरदोसी शिया और संभवतः पाखंडी था। तिसपर भी कट्टर सुन्नी मुसलमान महमूदने अग्निपूजक और काफिर ईरानके इतिहासका कार्य उसीको सौंप दिया। महमूदके साहित्यप्रेमकी निःस्वार्थता इसीसे प्रकट होती है। "स्वयम् सुन्नी और कट्टर मुसलमान होते हुए भी महमूदने अरबी संस्थाओंकी उपेक्षा करके फारसी साहित्य और विद्याको आश्रय दिया।" (एनसा० ब्रि०) अकबरसे तुलना करने पर ज्ञान और विद्वत्तापर उसका प्रेम अधिक निःस्वार्थ दिखाई देता है। इस सम्बन्धमें महमूद अकबरसे श्रेष्ठ मालूम पड़ता है। अकबरने संस्कृत विद्याको अवश्य प्रोत्साहित किया परंतु वह कट्टर मुसलमान नहीं था। सामानी राजाओं द्वारा आरंभ किया गया ईरानके पौराणिक इतिहासका कार्य महमूदने अपने राजकवियोंको सौंपा था। परंतु फारसी कवियोंके निवासस्थान खुरासान तूस नामक ग्राममें उत्पन्न फिरदोसीकी अद्भुत काव्यशक्ति और ईरान सम्बन्धी प्राचीन इतिहासके ज्ञानकी बात ज्ञात होते ही उसकी पात्रता देख कर महमूदने इतिहास

लिखनेका कार्य उसे ही सौंप दिया। अलबेरूनीको दी हुई सहायतासे सिद्ध होता है कि संस्कृत साहित्य या दर्शनके विरुद्ध भी उसका मत नहीं था। अल्बेरूनी और फिरदोसीके समान कई असाधारण बुद्धिमान् पंडितोंने उसका दरबार प्रकाशमान किया और प्राचीन विक्रमादित्य या अर्वाचीन अकबरकी श्रेणीमें महमूदको स्थान देकर अमर किया। इन सब कारणोंसे हमारा दृढ़ विचार है कि महमूदपर जो असीम लोभका दोष सामान्यतः लेखक लगाया करते हैं वह निराधार और निर्मूल है।*

हम नहीं समझते कि लेनपूलके इस कथनके लिए क्या आधार है कि महमूद राजनीतिमें प्रवीण नहीं था। उसकी मृत्युके पश्चात् ग़ज़नीके साम्राज्यका पतन इसलिए नहीं हुआ कि महमूदमें राजनीतिका अभाव था। ग़ज़नीके साम्राज्यके पतनके कारण बिलकुल भिन्न हैं। पहले तो यही निश्चित रूपसे

---

*तबकाते नासिरीमें दिया हुआ महमूदके गुणोंका वर्णन (पृष्ठ८६) —

महमूदने अपनी वीरता, शूरता, धीरता, बुद्धिमत्ता, दूरदृष्टि, विवेकयुक्त सलाह एवं उपयुक्त उपायोंके अवलम्बनसे पूर्वकी ओर एक बड़ा भारी प्रान्त जीता और मुसल्मान साम्राज्य बढ़ाया। खुरासान, ख्वारिजम, तबरिस्तान, इराक, निमरोज और फारसके प्रान्त तथा गोर और तुख्वरिस्तान् का पहाड़ी प्रदेश उसके अधीन था। तुर्किस्तानके मलिकों ने उसका माण्डलिकत्व स्वीकार कर लिया था। उसने जिहून (आक्सस) नदीपर पुल बनवाया और तूरानपर आक्रमण किया। तुर्किस्तानके खानोंने उसके पास आकर उसे अपना सम्राट मान लिया। उनकी प्रार्थनासे महमूदने सेल्जुकके पुत्रको अपने परिवार तथा आश्रितों सहित जिहून पार करके खुरासानमें जानेकी अनुमति दी। उस समयके बुद्धिमान् लोगोंका विचार था कि महमूदने यह अनुमति देकर बड़ी ग़लती की, क्योंकि उनकी धारणा थी कि इसमें महमूदके पुत्रों एवं वंशजोंको बड़ा धोखा है।

नहीं कहा जा सकता कि महमूदने राज्यव्यवस्थामें कोई नया तरीका प्रचलित नहीं किया अथवा उसके प्रान्त सुसंघटित एवं सुव्यवस्थित नहीं थे। इस अनुमानको सिद्ध करनेके लिए या उसका खण्डन करनेके लिए कोई भी लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अकबरके शासनका विस्तृत वर्णन अबुल फजलने 'आईने अकबरी' में लिखा है। परन्तु महमूदके साम्राज्यकी व्यवस्था या संघटनका वर्णन देनेवाला कोई ग्रथकार अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका राज्य सुसंघटित एवं सुव्यवस्थित था। उत्बीने उल्लेख किया है कि ग़ज़नीमें महमूदके आक्रमणोंका वर्णन लेखबद्ध रक्खा जाता था और बाबरके समान स्वयम् महमूद भी युद्धके समय अपने हाल चालके खरीते (Despatches) घर भेजा करता था। उत्बीने उसके पत्रका एक उद्धरण दिया है जिसमें उसने मथुराके एक मंदिरकी सुंदरताकी बडी तारीफ की है। वह पत्र युद्ध और लूटकी धूम धाममें लिखा गया था। उसके राज्यमें विभिन्न प्रांतोंकी तथा उनके हिसाब किताबकी मिसलें रक्खी जाती थीं। प्रान्ताधिकारियोंकी जॉचके लिए एक स्वतंत्र मंत्री नियुक्त था और उसका कार्यालय नियमित रूपसे कार्य करता था। बैहकीने कई सुनी हुई बातें दी हैं। उनसे स्पष्ट दिखाई देता है कि महमूदकी राज्यव्यवस्था सुनियंत्रित थी अर्थात् यद्यपि हम उसकी राज्य-व्यवस्थाका तरीका या सिद्धान्त नहीं जान सकते तथापि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि उसका संघटन दृढ़ और नियमित था। अब यह बतलाना कठिन है कि वह तरीका नया था या महमूदने केवल सामानी राज्यपद्धतिका ही अनुकरण किया। यदि यह माना भी जाय कि महमूदने पुरानी पद्धतिका अनुसरण किया तब भी उसमें उसकी

राजनीतिज्ञता ही दिखाई देती है। शिवाजीने स्वराज्यकी ओर 'हिन्दूपदपादशाही' की भावनाके अनुसार कुछ आवश्यक परिवर्तन किये परन्तु अधिकांशमें बीजापुर राज्यकी व्यवस्था ही कायम रक्खी। अकबरकी राज्यव्यवस्था अवश्य नयी और अपूर्व थी। परन्तु उसे भिन्न भिन्न जाति और धर्मके विस्तृत साम्राज्यपर शासन करना था और उस साम्राज्यमें हर एक प्रान्त, भूमि, जलवायु या जनताकी दृष्टिसे, एक दूसरेसे भिन्न था।

यदि सेनाकी रचनाके विषयमें देखा जाय तो अकबर और शिवाजीकी सेनाका संघटन इतिहासमें प्रसिद्ध है। परन्तु महमूदके सैनिक संघटनके सम्बन्धमें कोई वर्णन नहीं मिलता। उसकी सेना अवश्य सुसङ्घटित एवं सुदृढ रही होगी क्योंकि समकालीन वर्णनोंसे ज्ञात होता है कि कन्नौज या सोमनाथके सदृश दूरके प्रदेशोंमें नदियां, रेगिस्तान, पर्वत इत्यादि पार करके ले जाने योग्य एवं किलोंको नष्ट भ्रष्ट करनेके योग्य यंत्रादि उत्तम साधन उसके पास थे। 'गार्ड्स' या रक्षकोंके दल केवल उसीकी सेनामें दिखाई देते हैं। यह प्रसिद्ध ही है कि इन चुने हुए सर्वोत्तम पाँच हजार शरीर रक्षकों (बाडीगार्ड्स) का योग्य अवसरपर उपयोग करके महमूद विजय प्राप्त करता था।

इसलिए यह कथन निराधार या अकारण दिखाई देता है कि महमूदने अपनी राज्यव्यवस्थामें नया तरीका प्रचलित नहीं किया या प्रान्तोंको सुसंघटित और सुसंबद्ध करनेकी चेष्टा नहीं की। इतना ही नहीं बल्कि उसकी शासनपद्धतिको सुसंघटित मानना पड़ता है। हमारे मतानुसार उसकी मृत्युके पश्चात् साम्राज्यका नाश उसके उत्तराधिकारियोंकी अयोग्यता-

से हुआ। वे किसी प्रकारसे राज्यशासन करने या सेनाका नेतृत्व स्वीकार करने योग्य नहीं थे। सभी निरंकुश शासनोंका यह प्रमुख दोष है। मुगल वंशके समान लगातार मनसे और शरीरसे तेजस्वी राजा शायद ही कहीं दिखाई दें। उस वंशमें बाबरसे औरंगजेबतक लगातार छः सम्राट तेज और पराक्रमके लिए प्रसिद्ध हुए। महमूदके सदृश शिवाजी भी इस विषयमें अभागा था। १८ वीं शताब्दीमें मराठा साम्राज्यका उत्थान और विस्तार पेशवाओंकी कार्यक्षमतासे हुआ। उनकी चार पीढ़ियाँ समान रूपसे तेजस्वी निकलीं और वे सभी प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और सेनापति थे। ब्रिटिश साम्राज्यकी दृढ़ता इंग्लैंडके असाधारण शासनविधानपर अवलंबित है, न कि उसकी राज्यव्यवस्थाकी अच्छाईपर !! इंग्लैंडमें निरंकुश राज्य-पद्धति नहीं है। वहाँ राजा, सरदार और लोकप्रतिनिधियोंके हाथमें राज्य-शासन रहता है, इसलिये अत्याचारी राजाका गद्दीपर बैठना या अयोग्य और महत्वाकांक्षी गवर्नर या गवर्नर-जनरलका भारतवर्षमें आना अशक्य है। कानून अच्छा न हो तो काम चल सकता है क्योंकि राज्यकी दृढता और उन्नति नियमोंका पूर्णरूपसे पालन होनेपर निर्भर है। इग्लैंडके शासन विधानमें इस बातकी व्यवस्था की गयी है कि कानूनका पालन शिथिल न होने पावे इसलिए वहाँ योग्य शासकों और सेनानायकोंकी अप्रतिहत परम्परा चली जा रही है।

वंश भी नष्ट हो जाता है। मर्यादित और लोक-नियंत्रित राजसत्तामें राष्ट्रीय भावनाओंका संवर्धन होता है, अतः साम्राज्यकी शक्ति स्थायी और दृढ़ होती है। बीचमें यदि कोई प्रांताधिपति या सेनापति महत्वाकांक्षी उत्पन्न हो तो राष्ट्रीय भावनाके कारण प्रजा या सेना उसकी सहायता नहीं करती। अर्थात् महमूदकी मृत्युके पश्चात उसके राज्यके जो खंड हुए वे राज्यपद्धतिके दोषोंके कारण नहीं वल्कि निरंकुशताके कारण हुए। निरंकुश राज्यमें योग्य राजाओंकी तथा स्वार्थत्यागी प्रांताधिपतियोंकी परंपरा तैयार नहीं हो सकती। महमूदके साम्राज्यके विच्छेदका यह भी कारण था कि जो राष्ट्रीय भावना महत्वाकांक्षी कर्मचारियोंका स्वतंत्र होना असंभव कर देती है वह उस समय लोगोंमें जागृत नहीं हुई थी। इससे महमूद अयोग्य या राजनीतिहीन सिद्ध नहीं होता।

टिप्पणी

क्या महमूद और शिवाजी लुटेरे थे ?

महमूदकी सबसे कड़ी आलोचना विन्सेंट स्मिथने "आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया" में की है। उसने लिखा है, "हिंदुस्तानके संबंधमें महमूद केवल लुटेरा था। भेद इतना ही है कि उसके लुटेरेपनका प्रमाण प्रचंड था। पंजाब छोड़कर दूसरे प्रदेशोंको उसने स्थायी रूपसे जीतनेकी कोशिश नहीं की। अमूल्य वस्तुओं और सुंदर मंदिरोंके नष्ट होनेके अतिरिक्त उसके आक्रमणोंका और कोई परिणाम नहीं हुआ।" शिवाजीके समान महमूदके भी लूटके लिये किये गये आक्रमण इतने अधिक और सफल हुए कि स्वभावतः किसीका भी ध्यान उनकी लूटकी ओर आकर्षित होता है और शिवाजी या महमूदको प्रसिद्ध चोर या यशस्वी लुटेरा माननेकी प्रवृत्ति होती है। कई इतिहासकारोंने महमूदके विषयमें इसी दृष्टिसे लिखा है। ये इतिहासकार महमूदकी योग्यता कम मानते हैं क्योंकि उनके कथनानुसार महमूदने केवल

से हुआ। वे किसी प्रकारसे राज्यशासन करने या सेनाका नेतृत्व स्वीकार करने योग्य नहीं थे। सभी निरंकुश शासनोंका यह प्रमुख दोष है। मुगल वंशके समान लगातार मनसे और शरीरसे तेजस्वी राजा शायद ही कहीं दिखाई दें। उस वंशमें बाबरसे औरंगजेबतक लगातार छः सम्राट तेज और पराक्रमके लिए प्रसिद्ध हुए। महमूदके सदृश शिवाजी भी इस विषयमें अभागा था। १८ वीं शताब्दीमें मराठा साम्राज्यका उत्थान और विस्तार पेशवाओंकी कार्यक्षमतासे हुआ। उनकी चार पीढ़ियाँ समान रूपसे तेजस्वी निकलीं और वे सभी प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और सेनापति थे। ब्रिटिश साम्राज्यकी दृढ़ता इंग्लैंडके असाधारण शासनविधानपर अवलंबित है, न कि उसकी राज्यव्यवस्थाकी अच्छाईपर !! इंग्लैंडमें निरंकुश राज्यपद्धति नहीं है। वहाँ राजा, सरदार और लोकप्रतिनिधियोंके हाथमें राज्य शासन रहता है, इसलिये अत्याचारी राजाका गद्दीपर बैठना या अयोग्य और महत्वाकांक्षी गवर्नर या गवर्नरजनरलका भारतवर्षमें आना अशक्य है। कानून अच्छा न हो तो काम चल सकता है क्योंकि राज्यकी दृढता और उन्नति नियमोंका पूर्णरूपसे पालन होनेपर निर्भर है। इंग्लैंडके शासन विधानमें इस बातकी व्यवस्था की गयी है कि कानूनका पालन शिथिल न होने पावे इसलिए वहाँ योग्य शासकों और सेनानायकोंकी अप्रतिहत परम्परा चली जा रही है। निरंकुश राज्यशासनमें कई राजाओंको केवल जन्मके कारण वारिसके नाते राजसत्ता प्राप्त होती है और वे विषय-लोलुप हो जाते हैं। शक्तिहीन होनेके कारण वे प्रांताधिपतियोंको या सेनापतियोंको उचित बंधनमें नहीं रख सकते। फलस्वरूप भिन्न भिन्न प्रान्त राज्यसे पृथक् हो जाते हैं और अंतमें राज-

वंश भी नष्ट हो जाता है। मर्यादित और लोक-नियंत्रित राजसत्तामें राष्ट्रीय भावनाओंका संवर्धन होता है, अतः साम्राज्यकी शक्ति स्थायी और दृढ़ होती है। बीचमें यदि कोई प्रांताधिपति या सेनापति महत्वाकांक्षी उत्पन्न हो तो राष्ट्रीय भावनाके कारण प्रजा या सेना उसकी सहायता नहीं करती। अर्थात् महमूदकी मृत्युके पश्चात उसके राज्यके जो खंड हुए वे राज्यपद्धतिके दोषोंके कारण नहीं बल्कि निरंकुशताके कारण हुए। निरंकुश राज्यमें योग्य राजाओंकी तथा स्वार्थत्यागी प्रांताधिपतियोंकी परंपरा तैयार नहीं हो सकती। महमूदके साम्राज्यके विच्छेदका यह भी कारण था कि जो राष्ट्रीय भावना महत्वाकांक्षी कर्मचारियोंका स्वतंत्र होना असंभव कर देती है वह उस समय लोगोंमें जागृत नहीं हुई थी। इससे महमूद अयोग्य या राजनीतिहीन सिद्ध नहीं होता।

टिप्पणी

क्या महमूद और शिवाजी लुटेरे थे?

महमूदकी सबसे कड़ी आलोचना विन्सेंट स्मिथने "आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया" में की है। उसने लिखा है, "हिंदुस्तानके संबंधमें महमूद केवल लुटेरा था। भेद इतना ही है कि उसके लुटेरेपनका प्रमाण प्रचंड था। पंजाब छोड़कर दूसरे प्रदेशोंको उसने स्थायी रूपसे जीतनेकी कोशिश नहीं की। अमूल्य वस्तुओं और सुंदर मंदिरोंके नष्ट होनेके अतिरिक्त उसके आक्रमणोंका और कोई परिणाम नहीं हुआ।" शिवाजीके समान महमूदके भी लूटके लिये किये गये आक्रमण इतने अधिक और सफल हुए कि स्वभावतः किसीका भी ध्यान उनकी लूटकी ओर आकर्षित होता है और शिवाजी या महमूदको प्रसिद्ध चोर या यशस्वी लुटेरा माननेकी प्रवृत्ति होती है। कई इतिहासकारोंने महमूदके विषयमें इसी दृष्टिसे लिखा है। ये इतिहासकार महमूदकी योग्यता कम मानते हैं क्योंकि उनके कथनानुसार महमूदने केवल

लूटपाट की और कोई भी प्रांत स्थायी रूपसे नहीं जीता । परन्तु क्या किसी प्रान्तको जीतकर राज्यका विस्तार करना कम निंदनीय है ? हमारा मत है कि राज्य हरणसे दूसरकी अचल संपत्तिका और विशेषत ऐसी भूमिका, जो उसके लिए अत्यन्त उपयोगी और मूल्यवान् है, अपहरण होता है । यद्यपि विजित प्रदेशपर स्थायी अधिकार जमानेसे व्यवस्थित राज्यका आरंभ होता है तथापि यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि नयी राज्यपद्धति लोगोंके लिए अधिक सुखकर होगी। मुसलमानी राज्यशासन कभी हिंदू राज्यशासनसे अच्छा नहीं रहा और न हो सकता था। कोई भी परराज्य स्वराज्यसे हीन है क्योंकि उससे प्रजाकी व्यवस्थित और नियमित लूट आरंभ होती है । यदि यह माना जाय कि महमूदने हिंदुस्थानके किसी भी प्रान्तको अपने राज्यमें सम्मिलित करनेका प्रयत्न नहीं किया या स्थायी रूपसे नहीं जीता तो महमूदको बडा उच्च स्थान देना पडेगा । कारण उस अवस्थामें कहना पडेगा कि उसने दूसरे देशोंकी स्वतंत्रताका हरण करनेकी चेष्टा नहीं की परन्तु यह असाधारण उदारता और स्वातंत्र्य प्रेम हम महमूद पर बलात् लाद नहीं सकते । हम देख चुके हैं कि उसने साधारण राजाओंके समान हिंदू राज्य जीतनेका यथाशक्ति प्रयत्न किया । अंग्रेजोंने जिस प्रकार बम्बई, मद्रास या कलकत्तेको केन्द्र बनाकर धीरे धीरे राज्यका विस्तार किया, उसी प्रकार महमूदने गजनीके चारों ओर राज्य स्थापित कर धीरे धीरे एक साम्राज्यकी स्थापना की। आइये, हम थोडी देरके लिए इसके क्रमकी ओर ध्यान दें ।

आरंभमें वह जाबुलिस्तानका राजा था । उसने जाबुलिस्तान राजपूतोंसे छीन लिया था। सामानी सम्राटोंकी ओरसे वह खुरासानका सूबेदार भी था । जब आक्ससके उस पारके तुर्कोंने सामानी साम्राज्यको नष्टप्राय कर दिया तब महमूदने खुरासानको अपने राज्यमें मिला लिया और इलेकखाँ तुर्कको मवरुन्नहर लेने दिया। इसके पश्चात् महमूदने क्रमसे जाबुलिस्तानके पूर्वकी ओर और खुरासानके पश्चिम अपने राज्यकी सीमा बढायी । इस कार्यमें भी उसने किसी प्रकारकी अनुचित शीघ्रता नहीं दिखलायी । महमूदने या उसके पिताने पहले काबुलिस्तान ले लिया। तत्पश्चात् पंत-

मान सीमा प्रान्तका दक्षिणार्ध (बन्नू) और उसके निकटका प्रदेश उसके राज्यमें आया। अन्तमें उत्तरकी ओरके पेशावर और वाहिंद प्रान्त भी उसने ले लिये। हम जानते ही हैं कि इन प्रान्तोंपर शाही ब्राह्मण राजा जयपालका राज्य था। जयपाल पंजाबपर भी राज्य करता था। महमूद ने जयपालका एक एक प्रान्त धीरे धीरे लिया; उसे एकदम निराश नहीं किया। सिन्धुके पश्चिमका सब प्रदेश हरण होने पर भी पंजाब जयपालके अधिकारमें था। इस प्रान्तके लिए वह खिराज दिया करता था। अन्तमें अपरिहार्य आघात आ ही पड़ा और बाजीरावके समान आनन्दपालका राज्य नष्ट होकर विजयी शक्तिके साम्राज्यमें सम्मिलित किया गया। महमूदके साम्राज्यके पूर्वीय भाग—पंजाब—का अपवादात्मक रूपसे उल्लेख करके विन्सेंट स्मिथने भी, एक प्रकारसे, स्वीकार किया है कि महमूदने भिन्न भिन्न प्रान्त जीते और अपना राज्य बढ़ाया।

इतना ही नहीं बल्कि महमूदने विजित प्रदेशके लोगोंको बलप्रयोगसे मुसलमान बना कर साम्राज्यको दृढ़ बनानेका प्रयत्न किया। वह जान गया था कि राज्यकी एकताके लिए लोगोंकी धार्मिक भावना भी एक होनी चाहिये। उसने गोर, स्वात, बिजौर इत्यादि प्रान्तोंमें धर्म-परिवर्तनका व्यवस्थित प्रयत्न शुरू किया। परन्तु सिन्धुके पश्चिमके प्रदेशमें जितने उत्साहके साथ यह कार्य हुआ उतना उत्साह सिन्धुके पूर्वकी ओर कार्य करते समय नहीं देखा गया। पञ्जाबमें धर्मपरिवर्तनका जोश अधिक दिन नहीं टिक सका। तब भी पंजाबके पश्चिमी भागमें बहुतसे लोग जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये और आज भी इस धर्मपरिवर्तनके परिणाम स्पष्ट रूपसे दिखाई दे रहे हैं। हिन्दुओंकी दृष्टिसे यह बड़ी भारी आपत्ति थी। परन्तु मुसलमान राजाकी हैसियतसे अपने राज्यके लोगोंको मुसलमान बनानेमें महमूदकी राजनीतिज्ञता विशद रूपसे सिद्ध होती है। *

---

* सब लोगोंको मुसलमान बनाने पर वे समान अधिकार चाहेंगे और विद्रोह करेंगे, क्या इसी भयसे महमूदने आधे लोगोंको ही मुसलमान बनाया और पञ्जाबमें हिन्दू मुसलमानोंका द्वन्द्व स्थायी रक्खा?

इसपर यह आक्षेप हो सकता है कि महमूदके अन्तिम आक्रमण याने सोमनाथ, कन्नौज और मथुराके आक्रमण केवल लूटके लिए थे। इन आक्रमणोंमें विजित प्रदेशको अपने राज्यमें मिलानेकी महमूदकी इच्छा नहीं थी। परन्तु यह आक्षेप भी सर्वथा सत्य नहीं है। अन्तर्वेदि, अवध या गुजरातके समान दूरके प्रान्तोंपर एकदम अपना राज्य स्थापित करना असम्भव था। उनसे प्रारम्भमें खिराज या कुछ कर वसूल कर और पीछेसे, जब आसपासके सब प्रान्त पूर्णरूपेण अधिकारमें आ जायँ तब, उनका हरण कर अपने साम्राज्यमें सम्मिलित करना, यही क्रम महमूदके लिए आवश्यक था। इसी क्रमसे अंग्रेजोंने बंगाल, बिहार, अवध और अन्तमें पंजाब ले लिया। कन्नौजका राजपाल पहले महमूदके हाथ न आकर भाग गया, तब महमूदने अवधपर आक्रमण कर बारी नगर ले लिया और राजपालको खिराज देनेके लिए मजबूर किया। यह खिराज कन्नौजके राज्यने बहुत कालतक गजनीको दिया होगा, क्योंकि शिलालेखोंसे प्रमाण मिलता है कि कन्नौज राज्यमें भूमिके लगानके साथ साथ खिराजकी रकम भी कर रूपमें प्रजासे वसूल की जाती थी। आश्चर्य है कि विद्वानोंको इस समयके ताम्रपत्रोंके "तुरुष्कदण्ड" शब्द का आशय नहीं सूझा। इस समयके कन्नौज प्रान्तके शिलालेखोंमें ही तुरुष्कदण्डका उल्लेख है। त्रिलोचनपालके झूँसीके लेखमें (सन् १०२६ ई०) तुरुष्कदण्डका उल्लेख नहीं है। परन्तु इसके बादके शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि गाहडवाल राजा भी, गजनीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न होते हुए भी, यह कर वसूल किया करते थे। निरंकुश राजाओंका प्रचलित करोंको निष्प्रयोजन जारी रखना स्वाभाविक है। वे ऐसे कर शायद ही बन्द करते हैं। तुरुष्कदण्डसे मराठोंके चौथकी याद आती है। संभव है कि उनकी तरह तुर्कोंने भी इस दण्डको वसूल करनेके लिए कन्नौज राज्यमें अपने अधिकारी रक्खे हों। हमने आगे चलकर यह दिखलाया है कि इन्हीं तुर्कोंको भोज या कर्णने मार भगाया। शिलालेखोंकी पूरी छानबीन करके हमने निश्चय किया है कि कन्नौजके अतिरिक्त और किसी भी प्रान्तके शिलालेखोंमें 'तुरुष्कदण्ड' का निर्देश नहीं है। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि महमूदने कन्नौजपर स्थायी कर

लगाया था। यदि महमूदके पश्चात् राज्य करनेवाले महमूदकी नीतिको उत्साहसे बरतते तो कुछ काल बाद कन्नौज भी उनके राज्यमें आजाता। सोमनाथका आक्रमण भी भावी राज्य-विस्तारकी इच्छासे ही महमूदने किया था। यदि इस प्रकारके आक्रमणोंका उद्देश्य लूट भी रहा हो तथापि उनसे निकटवर्ती राज्योंकी शक्तिका ह्रास होता है और अन्तमें राज्यविस्तार-का मार्ग खुल जाता है। इन कारणोंसे इतिहासज्ञके लिए महमूदको केवल लुटेरा मानना या यह मानना कि वह राज्यविस्तार नहीं चाहता था, असम्भव है। उसने काबुलसे लाहौरतक फैले हुए शाही राज्यका हरण किया, क्या यही थोड़ा है? इस कृतिको स्पष्ट देखते हुए भी महमूदके मनमें राज्यविस्तारकी कल्पना नहीं थी, यह मानना मनुष्य-स्वभाव और प्रत्यक्ष इतिहास दोनोंके विरुद्ध है।

यदि यह भी माना जाय कि महमूदने केवल लूटके लिए भारतवर्षपर आक्रमण किये, तब भी उसको जिस प्रकार बहुतसे इतिहासकारोंने लुटेरा और डाकू कहा है, उस प्रकारके नामाभिधान देना कहाँतक योग्य है, यह प्रश्न भी विचारणीय है। इस प्रकारके गलत वर्णनोंसे भ्रमात्मक कल्पनाएँ फैलती हैं। इसीलिए इतिहासमें शब्दोंका उपयोग अधिक सोच समझ कर करना चाहिये। इतिहासमें दो प्रसिद्ध पुरुषोंके सम्बन्धमें बड़ा अन्याय किया गया है—महमूद और शिवाजीको प्रायः डाकू या लुटेरा कहा जाता है। उन्होंने जो अगणित सम्पत्ति प्राप्त की उससे लोग चौंक जाते हैं और यह वर्णन सच्चा प्रतीत होने लगता है। परन्तु हम यह भूल जाते हैं कि इन शब्दोंका इस स्थानपर उपयोग करना अयोग्य होगा। हत्या और लूट नैतिक दृष्टिसे भी घृणित है, यह भूलना नहीं चाहिये। 'अलेक्जैण्डर और डाकू' की कथा विनोदपूर्ण है परन्तु उससे ध्वनित होनेवाला सिद्धान्त भ्रामक है। डाकू अपने देशवासियोंकी संपत्ति बलप्रयोगसे छीन लेता है परन्तु अलेक्जैण्डर अपने शत्रुओंका प्रदेश लूट रहा था अतः नीतिकी दृष्टिसे वह दोषी नहीं ठहराया जा सकता। किसी व्यक्तिका, प्रजा बन कर, किसी सरकारका आधिपत्य माननेका यह अर्थ है कि वह व्यक्ति किसी भी समय अपनी शक्तिका उपयोग न कर सब फरयादोंका फैसला

सरकारकी ओरसे कानूनके अनुसार ही करवायेगा, अन्य प्रकारोंका प्रयोग नहीं करेगा। वह यह भी स्वीकार करता है कि अपने दुर्बल पड़ोसियोंकी *संपत्ति वह उनकी सम्मतिके बिना या कानूनके मार्गोंको छोड़ कर नहीं* लेगा और केवल स्वरक्षाके कानूनी प्रसगके अतिरिक्त दूसरेको किसी प्रकारका कष्ट नहीं पहुँचावेगा। इसलिए अपने देशवासियोंके प्राण या संपत्ति हरण करने पर वह व्यक्ति हत्या या डाकेका अपराध करता है और उसका अपराध नैतिक दृष्टिसे भी मान लिया गया है। स्वतंत्र देशों या राष्ट्रोंके पारस्परिक सम्बन्ध अभी इस प्रकारकी किसी प्रकाशित या अप्रकाशित स्वीकृतिपर आश्रित नहीं हैं। इतिहासमें राष्ट्रोंके व्यवहारमें सर्वत्र पाशविक शक्तिका या 'मात्स्य न्याय'का प्रयोग दिखाई देता है। इस *'मात्स्य न्यायकी'* अनिष्ट परम्परा—अर्थात् बड़े राष्ट्र द्वारा छोटे राष्ट्रका हरण या लूट—गत यूरोपीय महायुद्धमें सब राष्ट्रोंने स्पष्ट रूपसे देख ली और तबसे राष्ट्रसंघका निर्माण हुआ। शायद भविष्यमें दुर्बल राष्ट्रोंको अस्तित्वका अधिकार है यह माना जायगा, परन्तु गत कालमें परम्परागत रूढ़िसे और प्रचलित लोक विचारसे हर एक बलवान् राष्ट्रको बलहीन राष्ट्रपर आक्रमण करके उसका प्रदेश और उसकी संपत्ति छीननेका पूरा अधिकार था। पर-राज्य हरणके तत्वपर तिलांजलि देनेवाला उच्च कोटिका व्यक्ति इतिहासमें भी अपवाद स्वरूप मिल जायगा। 'नैशे बलस्येति चरेदधर्मम्' इस *महाभारतके महान् सिद्धान्तके अनुसार कोई बिरला ही होगा* जो "मेरिया थेरेसा' के समान पोलेंडपर आक्रमण न करे या अशोकके समान कलिंगविजयमें लाखों मनुष्योंकी हत्यासे देख कर पश्चात्ताप प्रतिज्ञा करे कि मैं इसके बाद युद्ध नहीं करूंगा। पर इन अपवादोंसे सामान्य नियम अधिक स्पष्ट होता है। इतिहासमें बलवान् राष्ट्र बलहीनोंको सदा लूटते हुए दिखाई देते है। गत महायुद्धमें जर्मनीने फ्रान्सको लूटा। ऐसी लूटसे प्रबल राष्ट्रोंकी शक्तिका सवर्द्धन होता है और दुर्बलोंकी शक्ति और भी घट जाती है। इंग्लैण्डने कई बार इस नीतिका अवलम्बन किया है। जब इंग्लैण्ड और स्पेनमें युद्ध जारी था तब ड्रेक और हाकिन्सने अमेरिकासे सोना लानेवाले स्पेनके जहाजोंको लूटा था। युद्धका कोई बहाना भी

न रहते हुए ड्रेकने चिली और पेरूको लूटा था। परन्तु अंग्रेज इतिहासकारोंने इन कृत्योंके कारण उन्हें 'डाकू' नहीं कहा। भारतवर्षके इतिहासमें अंग्रेजोंने पाण्डिचेरीके फ्रेंच लोगोंको लूटा और ई०स० १८५७ के विद्रोहमें झाँसी नगरपर विजय प्राप्त करनेके बाद वहाँके नागरिकोंका कत्ले-आम किया और सारा शहर लूटा। पर अंग्रेजोंके इन कृत्योंको नीतिशास्त्र या कानूनकी दृष्टिसे खून या डकैती नहीं कह सकते। यह स्मरण रहे कि महमूद या शिवाजीने अपनी प्रजाको कभी नहीं लूटा। चोर और डाकुओंको वे हमेशा दण्ड देते रहे। राजाके कर्तव्योंके सम्बन्धमें शिवाजी इतना उदार और सचेत रहता था कि जब जब उसकी प्रजाको शत्रुकी सेना या स्वयम् उसकी सेनाके कारण हानि पहुँची तब तब उसने स्वयम् अपने खजानेसे उसकी पूर्ति कर दी। तात्पर्य यह है कि शिवाजी या महमूदको यदि इतिहासमें डाकू या लुटेरा कहा जाय, तो इन शब्दोंके अर्थमें साधारणतः जो निंदनीय भाव रहता है वह नहीं लेना चाहिये। शिवाजीने स्वराज्य स्थापनाके उच्च उद्देशके लिए भी कभी खून नहीं किया या खून करनेके लिए किसीको प्रवृत्त नहीं किया।* उसने जो मुगल या बीजापुर राज्यके नगर लूटे वे इन राज्योंसे लड़ते समय या अपने आपको स्वतंत्र मानने पर लूटे हैं। इस प्रकार लूटका अधिकार, ऊपरके कथनानुसार, सभी युद्धकारी राष्ट्रोंको सदासे प्राप्त रहा है।

सारांश यह है कि शिवाजी या महमूदकी कृतियोंको देखते समय सामान्य कानून या नीतितत्वोंके अनुसार विचार नहीं करना चाहिये। उनके कृत्य दूसरे राज्योंसे युद्ध करते समय हुए हैं। प्राच्य और पाश्चात्य देशोंमें जिन सिद्धान्तोंके अनुसार अन्ताराष्ट्रिय व्यवहार होता है, उन सिद्धान्तोंमें एक तत्व यह भी मान लिया गया है कि बलवान् राष्ट्र क्षुद्र

---

* श्री यदुनाथ सरकार तथा अन्य बहुतसे विद्वानोंकी धारणा है कि शिवाजीने चन्द्रराव मोरेका खून करवाया। परन्तु यह बड़ी भूल है। अब सिद्ध हुआ है कि दत्तक लिया गया चंद्रराव उस समय नाबालिग था और वह भाग गया था। इस महत्त्वपूर्ण विषयके विस्तृत विवेचनके लिए हमारा चंद्रराव मोरे और शिवाजी पर मराठीमें निबंध देखिये।

कारणसे या विना किसी कारणके दुर्वल राष्ट्रोंपर आक्रमण कर सकते हैं और विजित राष्ट्रोंको लूटनेका अधिकार सभी लोग व्यवहारमें लाते हैं। हाँ, हजारों लोगोंको जबरदस्ती मुसल्मान बनाना यह महमूदकी कृति अवश्य निन्दनीय और निषेध करने योग्य है क्योंकि मनुष्यको अपने मनके अनुसार किसीभी तरीकेसे ईश्वर-भक्ति करनेका अधिकार है और यह जबरदस्ती इस जन्मसिद्ध अधिकारमें बाधा डालती है। मनुष्यत्वकी उच्च दृष्टिसे महमूदका हिन्दू मन्दिरोंको तोडना और मूर्तिभंग करना भी वर्बरतापूर्ण धार्मिक पागलपन है, अत अति घृणित है। परन्तु एक राजा द्वारा दूसरे राजाके विरुद्ध युद्धमें किये हुए किसी कार्यको कानून या नीतिसे दूषित नहीं ठहरा सकते। अत यद्यपि इस तूफानमें बहुत सी उत्तम वस्तुओंका नाश हुआ तब भी हमें कहना पडता है कि महमूद लुटेरा या डाकू नहींथा।

सोलहवाँ प्रकरण।

पंजाब और काबुलका हरण—ऊपरी कारण।

सिन्धका नाश अरबोंने मुहम्मद कासिमके नेतृत्वमें किया (ई० स० ७१२), पजाबका उच्छेद तुर्कोंने महमूदके नेतृत्वमें किया (ई० स० १००६) और उत्तर भारतका उच्छेद अफगानोंने मुम्हमद गोरीके नेतृत्वमें किया (ई० स० ११९३-१२००)। प्रत्येकके पतनका कारण वास्तवमें भिन्न है। पहले भागमें हमने सिंधके पतनके कारणोंका विवेचन किया और इस नतीजेपर पहुँचे कि सिन्धका उच्छेद मुख्यत चचके कुछ माण्डलिकोंके विश्वासघात और बौद्ध लोगोंकी मानसिक दुर्बलतासे हुआ। जिस प्रकार उस समय सिन्धपर एक ब्राह्मण राजा राज्य

धिष्ठित था। परन्तु दाहर और आनंदपाल, दोनोंने ही युद्धमें राजपूतोंकी सी वीरता दिखलायी। ये दोनों ब्राह्मण वंश आचारमें क्षत्रिय ही थे और यदि प्राचीन महाभारतके कालसे आरंभ कर वर्तमानकालीन पेशवाओंतक देखा जाय तो मालूम होगा कि ब्राह्मण राजा और सरदार क्षत्रियोंके ही समान वीरतासे लड़े हैं। किंबहुना उत्तरभारतके पाण्डे आदि ब्राह्मण ब्रिटिश सेनामें भी दूसरे सिपाहियोंके सदृश वीरतासे लड़े हैं। दाहरपर दैवी प्रकोपसे अकस्मात् जैसी विपत्ति आ पड़ी वैसी ही आनन्दपालपर भी आई। जिस प्रकार दाहरका हाथी रणक्षेत्र छोड़ कर भाग निकला उसी प्रकार आनन्दपालके हाथी-ने भी समरभूमिसे मुँह मोड़ा। दाहरका हाथी तो सीधे एक तालाबमें कूद पड़ा और उसके शीतल जलसे अपने शरीरका ताप दूर करते समय उसने दाहरको तालाबमें फेंक दिया। ऐसी आकस्मिक घटनाएँ प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें होती रहती हैं। ये पतनके सच्चे कारण नहीं मानी जा सकतीं। इस संसार-चक्रमें सभीपर अधिकार रखनेवाले दैवका प्रभुत्व सर्वव्यापी है। इसलिए कारणोंका ऐतिहासिक विवेचन करते समय दैवी बातोंको अलग रखना चाहिये। यद्यपि सिन्ध और पंजाब, दोनों ही जगह उपर्युक्त घटना एकसी दिखाई देती है तथापि पंजाबके पतनके वास्तविक कारण सिन्धके कारणोंसे बिलकुल भिन्न हैं। पंजाबके इतिहासमें किसी हिन्दू राजा या सरदारके विश्वासघात या धोखेबाजीका उदाहरण नहीं मिलता। मुसलमान इतिहासकार उत्बी महमूदका मन्त्री था और सब भीतरी बातें जानता था। कदाचित् उसने जान बूझ कर इन बातोंका उल्लेख नहीं किया। तथापि यह देखते हुए कि सिंधके मुसलमान इतिहासकार तो हिन्दुओंके देशद्रोहका

उल्लेख करते हैं पर पंजाबके इतिहासमें ऐसे उल्लेख नहीं मिलते, हमें मानना होगा कि पंजाबके पतनके कारणोंमें राजद्रोह या देशद्रोह एक कारण नहीं है। पंजाबमें धर्मभेद भी नहीं था अर्थात् उसके परिणामस्वरूप जो मानसिक दुर्बलता दिखाई देती है वह भी नहीं थी। इस समय भारतवर्षमें सर्वत्र एक ही धर्म (हिन्दू धर्म) प्रचलित था। वैष्णव और शैव मतोंके झगडे भी अभी उपस्थित नहीं हुए थे। सारे देशमें एक धर्म रहनेसे जो सुखमय और शान्त अवस्था राष्ट्रको प्राप्त होती है वह इस भारतमें विराजमान थी। बौद्धधर्मका नाश हो चुका था और अभी मुसलमान धर्मका प्रवेश भविष्यके गर्भमें था। दूसरे अनेक विषयोंमें दसवीं शताब्दीका भारत सुखी था और शक्ति तथा उन्नतिके उच्च शिखरपर पहुँचा हुआ था। पहाडकी चोटीपर पहुँचनेके पश्चात् फिर उतार आरंभ, होता है। भारतवर्षकी उन्नतिको भी शिखरपर पहुँचनेके बाद सृष्टि नियमसे नीचे उतरना पडा अर्थात् हिन्दुस्तानका वैभव घटता गया। इस पतनका मार्ग दिखलाना और इसे स्पष्ट करना इतिहासकारका काम है।

भिन्न भिन्न ग्रंथकारोंने भारतके पतनके भिन्न भिन्न कारण दिये हैं। लोगोंमें भी इस सम्बन्धमें विभिन्न मत प्रचलित हैं। परन्तु हमारा मत है कि ये कारण पंजाबमें अधिकतर उपस्थित नहीं थे और वास्तविक कारण ये हो भी नहीं सकते। उदाहरणार्थ लेनपूलका मत देखिये। वह कहता है कि "जहाँ भारतीयोंमें आपसमें फूट थी वहाँ तुर्कोंमें परस्पर ऐक्य था। भारत एशियाके दक्षिणमें स्थित है तो तुर्कोंका देश उत्तरकी ओर था। दोनों देशोंके जलवायुमें भी कोई साम्य न था। इन भेदोंके अतिरिक्त तुर्कोंमें अपूर्व धार्मिक उत्साह तथा

धनलोलुपता थी जिसका भारतीयोंमें अभाव था।" (मिडीव्हल इण्डिया, पृ० २२) फ्रेंच इतिहासकार सचाऊ कहता है कि "उत्तरभारतके राजा इतने अदूरदर्शी थे कि वे इस भावी सङ्कटको देख नहीं सके और आपस में किसी प्रकारसे संघटित नहीं हुए।" (सचाऊकृत अल्बेरूनीके ग्रन्थके अनुवादकी प्रस्तावना देखिये) सर देसाईका मत है कि "महमूद जान गया कि भारतवर्षमें छोटे छोटे राज्य हैं जो आपसमें लड़ते रहते हैं। उसके पास बड़ी भारी सेना थी जिसका खर्च कहींसे प्राप्त करना और उस सेनाका कहीं न कहीं उपयोग भी करना उसके लिए आवश्यक था।" परन्तु हमारे मतानुसार ये सब कथन निराधार हैं इसलिए उनकी यथार्थताका विचार यहाँ विस्तारपूर्वक करना चाहिये।

हिन्दुस्तानके हिंदू राजाओंको भावी संकटकी कल्पना नहीं थी और वे उसके विरोधार्थ एक नहीं हुए, यह कल्पना ही वास्तवमें असंगत और असंबद्ध है। ऐसा दिखाई देता है कि यह मुसलमान इतिहासकारोंके आधारपर रची गयी है। भारतवर्षकी सीमातक एक नये भयानक धर्मका प्रचार हुआ। उस धर्मने ई० सन् ७१२ में सिन्धको हड़प लिया परन्तु उसी समय राजपूत वीरोंके नेतृत्वमें हिन्दुओंने अरबोंका दृढ़तासे विरोध किया और पूर्वकी ओर उनकी बाढ़ सदाके लिए रोक दी। तीन शताब्दियोंके पश्चात् तुर्कलोग धर्मपरिवर्तनके पागलपनसे प्रोत्साहित होकर गजनीमें आ बसे और वहाँसे उन्होंने हिन्दुओंको तंग करना तथा उनकी मूर्तियोंको तोड़ना प्रारंभ किया। परन्तु इससे भी ६० वर्ष पूर्व हिन्दुओंको भावी संकटका अनुभव हो चुका था। क्योंकि जिस समय याकूब-इ-लैसने जाबुलिस्तान लिया उस समय

उसके सिपाहियोंने सखावंद नगरका एक प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर गिरा दिया। इस धर्मविरोधी कार्यसे काबुलके शाही राजा कमलुको बड़ा आश्चर्य हुआ (इलियट भा २ पृष्ठ १७२)। तात्पर्य यह है कि हिंदू राजाओंको कई घटनाओंसे भावी संकटकी कल्पना हो चुकी थी और उन्होंने तीन बार एकत्र होकर महमूदसे भी बड़ी सेना उसके विरोधार्थ खड़ी की थी। परंतु तीनों बार वे हार गये। इसलिए यह कल्पना करना कि हिंदू राजा संकटके अज्ञानमें सो रहे थे और वे एक नहीं हुए इतिहासके विरुद्ध है।

इससे भी आगे बढ़ कर कहा जा सकता है कि हिन्दू राजाओंको एकत्र होनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। यह विचार बिलकुल भ्रमपूर्ण है कि हिन्दू राज्य छोटे थे। पंजाब-काबुलका शाही राज्य सबक्तगीनके या स्वयम् महमूदके प्रारंभिक गजनीके छोटे राज्यसे अधिक विस्तृत था। यदि शाही राज्य सुसंघटित होता तो वह अकेला गजनीके राज्यका नाश कर सकता था। कन्नौजका राज्य तो काबुलसे भी अधिक संपन्न, शक्तिशाली और विस्तृत था। किंबहुना अरब यात्रियोंने लिखा है कि कन्नौजके राज्यमें हमेशा चार सेनाएँ चार दिशाओंकी ओर जानेके लिए तैयार रहती थीं और इतनी बलवान् थीं कि यदि वे चाहतीं तो मुलतान लेकर अरबोंको सिंधसे सहजमें ही भगा सकती थीं। चंदेल राजा धंगका राज्य भी छोटा नहीं था। यद्यपि प्रसिद्ध भोजसे तुलनामें कन्नौजका राजा राज्यपाल कमजोर दिखाई देगा तथापि कालंजर और ग्वालियरका अधिपति धंग इतना शक्तिशाली था कि वह अकेला महमूदका नाश कर सकता था। तात्पर्य यह है कि महमूदके सम्बंधमें

लिखते हुए या मत देते हुए लोग यह विचार नहीं करते कि पूर्वार्धमें महमूदका राज्य छोटा था और उसकी सेना भी अल्प थी। उसकी सेनामें तुर्क, कुर्द, अफगान और फारस जातिके सिपाही थे जो हमेशा आपसके झगड़ोंमें व्यस्त रहते थे। चंगीजखाँ या तैमूरके समान महमूद चार पाँच लाख मुगल घुड़सवार लेकर तूफानकी तरह कास्पियन समुद्रसे सिंधु नदीतक देश उजाड़ते हुए फिरता नहीं था। चंगीज या तैमूरने पाँच वर्षोंमें इतना नाश किया कि पाँच शताब्दियोंमें भी उसकी पूर्ति न हो सके परन्तु महमूदकी ऐसी कोई कृति नज़र नहीं आती। पहले युद्धमें जयपालकी अपेक्षा महमूदकी सेना छोटी थी। बल्कि मुसलमानी इतिहासोंसे दिखाई देता है कि दूसरे युद्धमें भी उसकी सेना आनंदपालकी सेनाकी अपेक्षा छोटी थी। उसकी सेनामें एकता हिंदुओंसे अधिक थी अतः हम लेनपूलका यह वचन नहीं मान सकते कि हिंदुओंमें अनैक्य और तुर्कोंमें ऐक्य था। इसी प्रकार उत्तर और दक्षिणका भी विरोध दिखाई नहीं देता। बल्कि काबुल ही गजनीके उत्तर है और काबुलके जयपालके सैनिक अफगान थे परन्तु हिन्दू-धर्मानुयायी थे। यह किसी प्रकारसे माना नहीं जा सकता कि ये हिन्दू अफगान, धर्मपरिवर्तित मुसलमान अफगानोंसे शूरता या वीरतामें कम थे। दोनों सेनाओंमें तुर्क और आर्यका भेद था, तब भी शक्तिमें कोई विशेष भेद नहीं दिखाई पड़ता। एक निर्मूल कल्पना साधारणतः प्रचलित है कि उत्तरकी ओरके जंगली तुर्क या अफगान पंजाब या राजपूतानेके आर्योंसे अधिक शूर और मजबूत होते हैं। पानीपतके युद्धमें मराठोंके पराजयका एक कारण यह वंश-भेद होना संभव है, परन्तु इतिहासके प्रमाणोंसे या

वर्तमान परिस्थितिसे भी पंजाब और राजपूतानेके आर्योंमें और तुर्क या अफगानोंमें कोई विशेष भेद दिखाई नहीं देता। पंजाबके जाट और राजपूत चाहे वे सिक्ख हों, हिंदू हों या मुसलमान, भारतवर्षके ही नहीं बल्कि संसारके उत्तम सैनिकोंमें गिने जाते हैं। महमूदके समयमें यह सब जाट और राजपूत हिंदू थे। इस समय भी ब्रिटिश सेनाकी भरती अधिकांशमें पंजाबसे होती है। अमृतसर गजेटिअरमें लिखा है कि "मांझा प्रदेशके सिक्ख जाटोंमें ऐसे लोग मिलते हैं जो संसारके किसी भी प्रदेशमें मनुष्य जातिके उत्तम उदाहरण माने जायेंगे" (पृ० ३३)। यदि राजपूतानेके राजपूतोंको लिया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने तुर्क, अफगान, मुगल और ईरानी जातियोंसे अनेक युद्धोंमें निर्भयतासे लड़कर अपनी अद्भुत वीरताका परिचय दिया है और संसारके योद्धाओंमें अमर नाम पाया है। औरंगजेबके शासन कालमें जसवंतसिंह राठौरने कई वर्षोंतक अफगानिस्तानपर अधिकार कायम रखा था। तात्पर्य यह है कि शारीरिक बल और वीरताकी दृष्टिसे जयपाल और आनंदपालके सैनिक किसी भी अवस्थामें महमूदके सैनिकोंसे हीन या कमज़ोर नहीं माने जा सकते।

सर विन्सेंट स्मिथने पंजाब-पतनके कारणोंका विस्तृत विवेचन नहीं किया; परन्तु निम्नलिखित वाक्यमें कुछ कारण सूचित किये हैं। "भारतवर्षकी रणभूमिपर धर्म, सामाजिक आचार, कल्पना और युद्धकला इन विषयोंमें एक बिलकुल नयी और विदेशी शक्ति अवतीर्ण हुई।" इस वाक्यका विचार करते हुए पहले हमें यह मान लेना होगा कि अस्त्र शस्त्रोंकी और सेनाकी गतिकी विशिष्टता एक राष्ट्रका दूसरे राष्ट्रपर

राज्य स्थापित करानेमें एक महत्वका साधन है। शस्त्र और संघटन इन दोनों दृष्टियोंसे अँग्रेजी सेना भारतीय सेनासे श्रेष्ठ थी अतः भारतका पराजय एक प्रकारसे निश्चित ही था। परन्तु यह साधन मुसलमानोंकी विजयका कारण नहीं हो सकता। महमूदने तोपोंका उपयोग किया, फिरिश्ताके इस कथनमें काल-विरोध (एनाक्रॉनिज़्म) है। इसी प्रकार उसने और एक कालविपरीत उल्लेख किया है कि महमूदके विरुद्ध लड़नेके लिए दिल्ली और अजमेरके राजा आये थे। न तो उस समय दिल्ली और अजमेरकी राजधानियोंका ही अस्तित्व था, और न तोपोंका ही तब तक आविष्कार हुआ था। "एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका" में 'गनपाउडर' शब्दके संबंधमें जो विवरण दिया है उससे निम्नलिखित बातें सिद्ध होती हैं:—(१) बंदूकके लिए बारूदकी खोज एक जर्मन ने ई० सन् १३४५ में की या ऐसा भी माना जाता है कि इसका आविष्कार ई० सन् १२२५ में राजर बेकनने किया (२) प्राचीन यूनानी, अरब या हिंदू लोगोंको बारूदका ज्ञान नहीं था। उन्हें एक भभकनेवाला पदार्थ तैयार करनेका तरीका मालूम था और वे युद्धमें उसको काममें लाते थे। परन्तु स्फोटक (एक्सप्लोसिव) पदार्थका उपयोग वे नहीं जानते थे। उनके पास तोपें या बंदूकें नहीं थीं। (३) भारतवर्षमें स्फोटक बारूद-के उपयोगका पहला प्रमाण पानीपतके युद्धके वर्णनमें मिलता है। उस युद्धमें बाबरने बारूदका प्रयोग किया था। पश्चिमकी ओर भी ई० सन् १०२८ से १२०० तक क्रूसेडमें तोपोंका या बारूदका प्रयोग नहीं दिखाई देता।

इससे हम निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि महमूदके पास बारूदादि अस्त्र नहीं थे और हिन्दुओंकी भाँति उसके मुख्य

शस्त्र तलवार, भाला, इत्यादि थे। मुसलमान इतिहासकार इन्हीं शस्त्रोंके काव्यमय वर्णन देते हैं (इलियट भाग २)। इसका प्रमाण उत्वी और बैहकीके लेख हैं। बल्कि शस्त्रोंकी श्रेष्ठता हिन्दुओंमें थी, न कि मुसलमानोंमें। उस समयके वर्णनोंसे स्पष्ट मालूम होता है कि हिन्दू उत्तम फौलाद बनाना जानते थे। अभी तक दिल्लीके लौहस्तंभकी बनावट वैज्ञानिकोंके लिए एक गूढ प्रश्न है। हवा या पानीसे इस स्तंभ पर किसी प्रकारका अनिष्ट परिणाम नहीं होता। लोगोंको ऐसी बनावट देखकर आश्चर्य होता है। महमूदके सिपाही भारतीय तलवारोंको पानेकी सदा इच्छा रखते थे। उत्बीने काव्यमय वर्णन देते हुए एक तुर्क सैनिककी तलवारसे कहलवाया है कि "मैं उत्तम कुलीन हिंदू हूँ" (तारीखे यामिनी पृ० २१६)। अर्थात् इस कथासे यह सूचित किया है कि भारतीय खड्गोंका फौलाद सबसे अच्छा होता था। इसके अतिरिक्त हमें यह भी दिखाई देगा कि रणक्षेत्रमें लूटते समय मुसलमानोंका ध्यान प्रधानतया हिन्दू सैनिकोंके शस्त्रोंकी ओर रहता था। (पंजाबमें काला बागमें अब भी लोहा मिलता है। इस समय भी भेरा और निजामाबाद उत्तम तलवारोंके लिए प्रसिद्ध हैं। इन खड्गोंके नमूने लाहौरके संग्रहालय (म्यूजियम) में देखनेमें आते हैं।) हम नहीं समझते कि मुसलमानोंका सैनिक संघटन विशिष्ट प्रकारका था या उनके पास आजकलकी तरह व्यवस्थित पैदल सेना थी। मुसलमानोंके घोडे अच्छे हो सकते हैं, क्योंकि राजशेखरने भी लिखा है कि अफगानिस्तान और ईरानके घोडे बहुत अच्छे होते हैं। परन्तु राजपूतानेके घोडे खराब नहीं होते और उस समय अरबस्थान और ईरानसे घोडे लाये जाते थे। कन्नौजके प्रतिहार सम्राट् मूलतः राजपूतानेके

निवासी थे और अपनी अश्वसेनाके लिए प्रसिद्ध थे। इसीलिए उन्हें 'हयपति' की संज्ञा प्राप्त थी।

इसके अतिरिक्त हिन्दू सेनाका एक अंग बड़ा शक्तिशाली था। हाथी केवल हिन्दुओंके ही पास थे। आगे चलकर तुर्कोंको भी हाथियोंका लोभ उत्पन्न हुआ और उन्होंने इस सेना-विभागको बहुत बढ़ाया क्योंकि सबक्तगीन और महमूदने तुर्कोंके विरुद्ध गजसेनाका प्रयोग बड़ी सफलता पूर्वक किया (उत्बी तारीखे-यामिनी)। वास्तवमें आश्चर्य मालूम होता है कि हिन्दुओंको तुर्कोंके विरुद्ध हाथियोंके उपयोगमें सफलता नहीं प्राप्त हुई। यह एक ही बात महमूदके उत्तम सेनापतित्वको और हिन्दू सेनापतिओंकी अकर्मण्यताको सिद्ध करती है। इस हिन्दू सेना विभागको महमूदने कैसे शक्तिहीन बनाया, यह मुसलमान इतिहासकार नहीं बतलाते। ग्रीक इतिहास-कारोंके वर्णनसे अलेक्जैंडरने पोरसकी गजसेनाको कैसे हराया, यह हमें स्पष्ट ज्ञात होता है। सबक्तगीन और महमूद-की गजसेनामें महावत हिंदू ही होते थे। इतिहाससे पता चलता है कि बादको गजनीके एक राजाने अपने हिंदू महावत को असावधानीके कारण कठोर दण्ड दिया (बैहकी)। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि आजकल यह कला हिंदुओं-में नष्ट होकर अधिकतया मुसलमानोंमें ही रह गयी है (इलियट भाग २ पृ० १४३)।

इन सब बातोंसे तुर्कोंकी युद्ध-पद्धतिकी भिन्नता सिद्ध नहीं होती। हाँ, इसमें कोई संदेह नहीं कि विजित लोगोंसे तुर्क बड़ी क्रूरताका बरताव करते थे। इतिहास स्पष्ट रूपसे कहता है कि संसारमें विजित लोगोंके प्रति सबसे अधिक दया हिंदू ही दिखलाते थे। महमूदके तुर्क लड़ाके जिस प्रकार

लोगोंका कत्ले आम किया करते थे उस प्रकारका हत्याकाण्ड हिंदुओंने कभी नहीं किया। हमने पहले लिखा है कि महमूद क्रूर नहीं था। उसका अर्थ तुलनात्मक दृष्टिसे लेना चाहिये। मुगल चंगेज खॉं, तैमूर या दूसरे मुसलमान राजाओंसे वह कम निर्दयी था। परन्तु यदि हिंदू विजेताओंसे उसकी तुलना की जाय तो महमूदका तरीक़ा कोमल चित्तवाले भारतीयोंका दिल दहलानेवाला था। अधिकतर लड़ाके लोगोंकी हत्या की जाती थी, निरपराधी लोग दास बनाकर दूर देशोंमें भेज दिये जाते थे और गाँव या नगर उजाड़े जाते थे। यह मानना पड़ेगा कि यूरोपमें भी प्राचीन और प्रचलित समयमें भी हिंदू कालीन युद्धोंकी अपेक्षा अधिक क्रूरतासे युद्ध होते हैं। ग्रीक और रोमन लोग तो विजित लोगोंके प्रति बड़ी ही क्रूरता दिखलाते थे और उनके युद्धोंमें पराजयका परिणाम सदा दासता और हत्या रहा है। इस दृष्टिसे देखते हुए महमूदकी युद्ध-पद्धति नयी थी। परन्तु पञ्जाबके उच्छेदका यह कारण नहीं हो सकता, क्योंकि हिंदू सेना क्यों हार गयी इसका विवेचन हम यहाँ कर रहे हैं। कदाचित् एक युद्धमें हारनेसे जो यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ीं उससे बादके युद्धोंमें हिन्दू सैनिकोंका मनोनिग्रह जाता रहा।

तुर्कोंके और हिंदुओंके राजनीतिक विचार एक ही तरहके थे। प्रातिनिधिक संस्थाओंकी कल्पना बहुत प्राचीन कालमें हिंदुओंमें रही होगी। परन्तु इस समय दोनों ही प्रातिनिधिक राज्यपद्धति, लोगोंके अधिकार, या राजाका उत्तरदायित्व बिलकुल नहीं जानते थे। उन्हें एक ही राज्यपद्धति मालूम थी, अनियंत्रित या निरंकुश राज्य। उन लोगोंको अर्वाचीन कालके राष्ट्र या लोकतन्त्रकी कल्पनाका आभास तक न था।

अर्थात् राष्ट्रीयता या स्वदेशभक्तिकी भावना कहीं नहीं थी। वे मानते थे कि राजवंशमें जन्म लेनेसे राज्य मिलता है या युद्धमें जयरूपमें प्रकट हुए परमेश्वरकी इच्छाका फल राजपद है। इसलिए राष्ट्रीयता और स्वदेशाभिमानकी उच्च भावनासे प्रेरित होकर जिस प्रकार गत यूरोपीय महायुद्धमें जर्मन और फ्रेंच लड़े, उस प्रकारसे महमूदके तुर्क या जयपालके हिन्दू नहीं लड़े। यह कहा नहीं जा सकता कि राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर तुर्क लोग दृढ़तासे लड़ते थे इसलिए उनकी विजय हुई। ऐसी भावना तुर्कोंमें कभी नहीं थी। वे राष्ट्राभिमानके लिए नहीं बल्कि महमूदके लिए लड़ते थे। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वदेश प्रीतिके स्थानपर इस्लामी धर्मका उत्साह था और हालमें ही धर्म परिवर्तन किये हुए तुर्क और अफगानों-का धर्मोत्साह महमूदकी विजयका एक कारण अवश्य था। परन्तु धर्मोत्साहमें कोई नवीन कल्पना नहीं है। यदि हिन्दू भी उसी प्रबल भावनासे प्रेरित होकर विरोध करते तो पञ्जाबका पतन कभी न होता।

अन्तमें यह ध्यानमें रहे कि तुर्कोंके रीति रिवाजोंमें कोई ऐसी विशेषता नहीं थी जो हिंदुओंके पराजयका कारण हो सके। तुर्क और हिन्दू दोनोंके राजनीतिक विचार एकसे थे। पञ्जाब और काबुलके हिन्दू उस समय भी मांसाहारी थे। आजकल भी भारतवर्षके दूसरे प्रान्तोंकी अपेक्षा पञ्जाबमें मांसाहार अधिक प्रचलित है। हाँ, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि पंजाब-काबुलके हिन्दू गोमांस भक्षक नहीं थे। परन्तु हम नहीं समझते कि इस निषेधसे जय या पराजयपर कुछ प्रभाव पड़ा होगा।

सत्रहवाँ प्रकरण ।

पंजाब और काबुलका हरण-संभवनीय कारण ।

प्राचीन और अर्वाचीन इतिहासकारोंके सम्मुख एक गंभीर परन्तु मनोरंजक प्रश्न सदा उपस्थित रहता है। वह यह है कि राष्ट्र या राज्यके नाशके कारण कौनसे होते हैं ? भिन्न-भिन्न समयके लिए इतिहासकार भिन्न भिन्न सिद्धान्त बनाते हैं अर्थात ये सिद्धान्त सर्वव्यापी और सदा सत्य नहीं हो सकते। ग्रीसका नाश रोमने किया, रोमका नाश गाथ लोगोंने किया और इस्तंबूल (कुस्तुन्तुनिया) का तुर्कोंने किया। अब इन तीनों समयोंकी परिस्थिति भिन्न भिन्न थी अर्थात् तीनोंके पतनके कारण पृथक् मानना होगा। इसी प्रकार भारतवर्षमें सिन्धके (ई० सन् ७१२) पंजाबके (ई० सन् १०६६) उत्तर भारतके (ई० सन् १२००) और दक्षिण भारतके (ई० सन् १३००) पतनके कारण बिलकुल भिन्न हैं। और भारतीय इतिहासकारके सम्मुख हर एक समयके भिन्न भिन्न नाशके कारण दिखलानेका कठिन कार्य उपस्थित रहता है। ऐसी अवस्थामें भी प्रसिद्ध इतिहासकार गिबनके—जिसने रोम साम्राज्यके ह्रास और पतनका इतिहास लिखा है—सामान्य विचार शाश्वत महत्वके हैं। उसने कई सिद्धान्त ऐसे प्रतिपादित किये हैं जो सर्वत्र लग सकते हैं। पश्चिमके रोम साम्राज्यके पतनके कारण यद्यपि पंजाबके उच्छेदके कारणोंसे कुछ भिन्न हैं, फिर भी उनका विवेचन करते समय हमारे लिए गिबनके विचार मार्गदर्शकका काम देंगे। अतः हम उन विचारोंको यहाँ उद्धृत करते हैं।

स्वभावतः 'रोमके सुदैवहीको ग्रीसके दुर्भाग्यका कारण' माननेकी ओर प्रवृत्ति होती है, इस प्रवृत्तिका पहले विरोध करना होगा। इस प्रवृत्तिका विरोध ग्रीक लोगोंके महान् इतिहासकार पोलिबियसने रोम राज्यव्यवस्थाके अद्वितीय गुण और रोमकी महत्ताके वास्तविक कारणोंका वर्णन करके किया है। इस राज्यव्यवस्थामें लोकसभाकी स्वतंत्रता, सिनेट (वृद्धोंकी सभा) की बुद्धिमत्ता और सम्राट्के अधिकारोंका योग्य मेल रक्खा गया है। पोलिबियसने दिखलाया है कि रोममें प्रत्येक नागरिकके लिए दस वर्ष तक देशसेवार्थ सैनिक होना अनिवार्य था, जिसके कारण सेनामें तरुण और स्वतंत्रताप्रेमी सैनिकोंकी धारा अटूट रहती थी, और सैनिक संघटनमें 'मासिडोनियन फैलाँक्ससे भी 'रोमन लीजियन', अधिक कार्यक्षम था। तात्पर्य यह है कि पोलिबियसके मतानुसार "रोमकी शासनप्रणालीने शांति और युद्ध दोनों अवस्थाओंके लिए रोमके निवासियोंको निर्भय और उद्योगी बनाया और सदा रणक्षेत्रमें उनको विजयलक्ष्मी प्राप्त करायी। रोमके निवासियोंने सारे संसारको जीतनेकी आकांक्षा की और वह सफल भी हुई। इस आकांक्षामें न्याय नष्ट हो जाता है पर उन्होंने बुद्धिमत्ता और वीरताके बलपर इस कमीकी पूर्ति की।" तिसपर भी रोम राष्ट्रका पतन हुआ। "अपरिमित वृद्धिका यह स्वाभाविक और अपरिहार्य परिणाम है। वैभव और ऐश्वर्यमें ह्रासके बीज उत्पन्न होते हैं। नयी नयी विजयोंकी वृद्धिके साथ ही साथ नाशके कारण भी द्विगुणित होते हैं। दूरदेशोंके युद्धोंमें रोमकी राष्ट्रप्रेमी विजयी सेनाओंने किरायेके सैनिकोंके दुर्गुण सीख लिये और उन सैनिकोंनेही पहले रोमके प्रजातंत्र राज्यको दफना कर बादमें साम्राज्यका भी अन्त किया। जिस

संघटनके कारण रोमकी सेनाएँ शत्रुके लिए भयंकर और डरावनी मालूम पडती थीं उसीके कारण बादको सम्राट् भी सेनाके दास बन गये । सम्राटोंको यह संघटन तोडनेके लिए चाल चलनी पडी और सैनिक राज्यव्यवस्थाके नियम शिथिल होकर रोम साम्राज्य जंगली लोगोंकी बाढ़में विलीन हो गया ।"

"रोम साम्राज्यमें ईसाई धर्मके प्रवेशका और क्रमसे कम उस समयके ईसाई धर्मके ह्रासका रोम साम्राज्यके अन्तसे कुछ संबंध अवश्य है । ईसाई धर्मोपदेशक सहिष्णुता और मनोदुर्बलताका उपदेश देने लगे । परिणामतः लोगोंको कार्य-दक्ष बनानेवाले सद्गुण कम होने लगे । वीरता आदि स्फूर्तिका जो थोडा अवशेष बचा था वह मठोंमें गाडा गया । सरकारी और व्यापारी संपत्तिका बडा भाग भक्तिके और दया-धर्मके काममें व्यय होने लगा । जो वेतन सैनिकोंको मिलना चाहिये, वह उन भिखारी स्त्री पुरुषोंके समुदायपर खर्च होने लगा, जो दानपात्रताके लिए संसारत्याग और ब्रह्मचर्यके अतिरिक्त और कोई दूसरा गुण नहीं दिखा सकते थे । इन धार्मिक विवादोंके कारण धर्मसंस्था और राज्यसंस्था शिथिल पड गई और सम्राट्का ध्यान सेनाके संघटनसे हटकर धार्मिक वाद-विवादकी ओर आकर्षित हुआ । रोम साम्राज्यमें एक नये प्रकारका अत्याचार आरंभ हुआ । धार्मिक मतके कारण लोगों-पर नाना प्रकारके जुल्म किये गये और ये पीडित लोग स्वभावत राष्ट्रके शत्रु बन गये (बरीकृत गिबनका इतिहास, भाग ४

है। इस विचार-समूहसे हमें इस समयकी समस्याको हल करनेमें सहायता तो मिल ही सकती है परन्तु इससे भी कहीं अधिक सहायता आगे चलकर पृथ्वीराजके समयके उत्तर-भारतके पतनका विवेचन करनेमें प्राप्त होगी।

पञ्जावके हिन्दुओंकी और ग़ज़नीके मुसलमानोंकी परिस्थितिका तुलनात्मक विचार करके यदि हम यह जाँच लें कि राष्ट्रशक्ति-संवर्धनमें किस बातमें मुसलमान बढ़े हुए थे और हिन्दू पिछड़े हुए थे, तो पञ्जावके उच्छेदके वास्तविक कारणोंका निर्णय हो सकेगा। हम पहले देख चुके हैं कि हिन्दुओंकी ओर आपसमें फूट और मुसलमानोंमें एकता थी, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। जितने झगड़े और भेदभाव हिन्दुओंमें प्रचलित थे उतने ही मुसलमानोंमें भी थे। आक्ससके उस पारके तुर्कोंके आपसके भेदभावका वर्णन करते हुए उत्वीने कुरानका निम्नलिखित अंश उद्धृत किया है। "यदि वे एक हो जायें तो उनकी शक्ति वास्तवमें बहुत भारी हो, परन्तु उनके हृदय विभक्त हैं। हमने उनके अन्दर द्वेष और शत्रुभाव स्थायी रूपसे भेज दिया है।" और वास्तवमें तुर्क लोग हिंदुओंके समान ही सभ्य या असभ्य थे। उनमें राजनीतिक संस्थाएँ नहीं थीं। उनमें राष्ट्रीय भावना भी नहीं थी। 'लिजियन' या फैलांक्सके सदृश संघटित दल भी उनके पास नहीं थे, और हिन्दू राज्य भी अमर्यादित विस्तारको प्राप्त नहीं हुआ था। अर्थात् हम यह नहीं कह सकते कि वह रोम साम्राज्यकी भाँति अपने ही बोझसे नष्ट हुआ। जिस प्रकार गाथ और वेंडल लोगोंके अगणित झुंड रोम साम्राज्य-पर टूट पड़े, उस प्रकार तुर्कोंके झुण्डोंने कभी भारतवर्षपर आक्रमण नहीं किया। एक बात और है कि काबुलके अफ-

ग़ानोंसे या पञ्जावके राजपूतोंसे तुर्क लोग न तो अधिक शूर थे और न अधिक बलवान् थे। उनको युद्धकलाका भी अधिक अभ्यास नहीं था। बल्कि महमूद और उसके पश्चातके सुलतानोंने युद्धके लिए पञ्जावके हिन्दुओंका उपयोग किया। ऐसा वर्णन मिलता है कि महमूदके इलेक खाँके साथ हुए युद्धमें हिन्दू महमूदकी ओरसे बड़ी वीरतासे लड़े थे। हम यह भी नहीं कह सकते कि पंजावका हिन्दूराज्य अव्यवस्थित था बुरा था या कोई हिंदू देशद्रोह करके मुसलमानोंके पक्षमें चला गया। अन्तमें यह ध्यानमें रखना चाहिये कि महमूदका ग़ज़नीका राज्य आरम्भमें जयपालके राज्यसे छोटा ही था। अर्थात् शुरूमें उसकी सेना भी जयपालकी सेनासे छोटी रही होगी। जयपालके राज्यमें धार्मिक या राजकीय भेदभाव भी कहीं दिखाई नहीं देता। अतः किसी राष्ट्र या पक्षको निर्बल बनानेवाले जो कारण साधारणतः हो सकते हैं वे इस घटनाके लिए उपयुक्त नहीं हैं। वे दूसरे कारण कौनसे थे जिनसे तुर्कोंका हिंदुओंपर आधिपत्य हो सका यह हमें देखना चाहिये।

(१) तुर्कोंकी श्रेष्ठताका प्रथम कारण उनके नेता महमूदका व्यक्तिगत सामर्थ्य है। इस व्यक्तिगत सामर्थ्यका यथार्थ मूल्य हम सदा पहचान नहीं पाते। सृष्टि समय समय पर बौद्धिक और शारीरिक बलसे युक्त पुरुषोंका निर्माण करती है और वे राष्ट्रके या मानव जातिके स्वरूपमें अद्भुत परिवर्तन कर देते हैं। अकेले एक बुद्ध या ईसामें इतनी शक्ति थी कि उनके कारण आधा संसार शान्तिमार्गकी ओर प्रवृत्त हुआ। दूसरी ओर एक महमूदके कारण संसारका दूसरा हिस्सा धार्मिक तत्वोंके प्रचारमें बलप्रयोग करनेके सिद्धान्तको मानने लगा। एक शिवाजीने मराठा

लोगोंको दो शताब्दियों तक स्वतंत्र बनाया और हजारों वर्षोंके लिए उनकी कीर्ति स्थायी बना दी। हमारी यह दृढ़ धारणा है कि महमूदके व्यक्तित्वके बिना तुर्क लोग पंजाबके हिन्दुओंपर विजय प्राप्त न कर पाते और शिवाजीके व्यक्तिगत तेजके बिना मराठा लोग भी इतने पराक्रमी नहीं होते। महमूदकी स्थिति शिवाजीके समान है। अदम्य उत्साह और अपरिमित वीरता दोनोंमें थी और दोनोंने बड़े बड़े मनसूबे बाँधे। निश्चय और बुद्धिमत्तासे दोनोंने अपना उद्देश सिद्ध किया। शहाजीके समयमें किसीको यह विचार भी न आया होगा कि बीजापुर और दिल्लीकी मुसलमान सत्तासे महाराष्ट्र छुटकारा पा सकता है। परन्तु शिवाजीने इस असंभव कल्पनाको संभव बनाया और अपने जीवनकालमें अद्वितीय संघटन शक्ति और चरित्र बलसे कार्यको सिद्ध कर दिखलाया। ठीक इसी प्रकार यह बात उस समय असम्भव प्रतीत हुई होगी कि गज़नीका छोटा सा राज्य काबुलके बलवान् राज्यको नष्ट करेगा या दूरस्थ कन्नौजके सम्राट्की सेनाओंको पराजित करेगा। परन्तु महत्वाकांक्षासे प्रेरित होकर महमूदने यह कठिन कार्य हाथमें लिया और उसे सिद्ध करके ही छोड़ा। इसमें कोई संदेह नहीं कि नैतिक दृष्टिसे शिवाजी महमूदसे श्रेष्ठ थे क्योंकि उन्होंने अपने देशवासियोंको परदेशी सत्ता और धर्मके चंगुलसे मुक्त करनेके पवित्र और उदात्त कार्यमें ही अपनी सारी शक्ति खर्च कर दी। इसके विपरीत महमूदने परदेशियोंको दास बनाने और उनपर अपना परदेशी धर्म लादनेका सफलता पूर्वक प्रयत्न किया। तथापि दोनोंके उद्देश निस्संदेह अति कठिन और असंभवसे थे परन्तु अपने अद्वितीय गुणोंसे दोनोंने उन्हें सिद्ध कर लिया। दोनोंके पास आरंभमें

एक छोटा राज्य और एक छोटी सी सेना थी। परन्तु उन्होंने अपनी संघटन-शक्ति और कुशलतासे राज्य और सेनाकी आश्चर्यजनक उन्नति की। शिवाजीको तो पिताके समयकी बहुत ही अल्पसेना मिली थी। पर उन्होंने उसी सेनाको इतना बलसंपन्न बनाया कि वह मुग़ल सेनाओंको हराकर मुग़ल साम्राज्यके संपन्न नगरोंको लूटती थी। यही तरीक़ा महमूदका भी था। उसकी सेना अन्तमें एक लाख पैदल, पचास हजार घुड़सवार और तेरह सौ हाथियोंसे युक्त थी। सर देसाई महोदय कहते हैं कि "महमूदके पास प्रारंभमें ही एक बड़ी विशाल सेना थी। महमूद उसे भोजन देकर भारतवर्षके जीतनेके काममें लानेके लिए विवश था।" परन्तु यह बात यथार्थ नहीं मालूम पड़ती। संभव है कि महमूदके पास प्रारंभमें शिवाजीसे अधिक सेना रही हो पर यदि उसमें योग्यता न होती तो वह सेनाको पढ़ाने न पाता या मौकूफ कर देता। बहुतसे तुर्क और अफ़ग़ान नौकरीके लिए तैयार थे परन्तु उनको वेतन देनेके लिए द्रव्य कहाँसे आता। प्रारंभमें महमूदके पास द्रव्य अधिक नहीं था। मंदिरों और मूर्तियोंकी लूट बादको मिलने लगी। शिवाजीके पास भी आरंभमें कौनसे साधन थे? उनके सैनिक तो प्रारंभमें शांतचित्त मावले थे, लड़ाके तुर्क नहीं थे। महापुरुषोंका महत्व इसीमें दिखाई देता है कि वे अपनी शक्तिसे मनुष्य और द्रव्य-बल तैयार करते हैं और मनुष्योंको उच्च कार्यके लिए योग्य प्रकारकी शिक्षा देते हैं। वे द्रव्यका उचित उपयोग करते हैं। उनकी यह महत्ता अटल निश्चय और प्रबल

लेनेका उद्योग कर, खड़ा हो जा, जितने धन और मनुष्योंकी तुझे आवश्यकता होगी उतना अवश्य प्राप्त होगा"। शिवाजी और महमूदकी संघटन-शक्ति और उनका नैतिक दबदबा इसीसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि उन्होंने अपने लोगोंको दृढ़ता के साथ लड़ने योग्य बनाया और अपने कार्यके लिए प्राणों की भी चिन्ता न करनेके लिए तैयार किया। इसके सिवाय उन्होंने इन प्रचंड शक्तियोंको अपने काबूमें भी रक्खा। गिबनके कथनानुसार लड़ाके सैनिक केवल शत्रुओंको ही नहीं बल्कि उनके राजाको भी भयदायक होते हैं। जहाँ राष्ट्रीय भावनाके अभावसे राजद्रोही और महत्वाकांक्षी सेनापति या कर्मचारीके निरंकुश होनेका भय रहता है वहाँ स्वामीके व्यक्तिगत प्रतापसे ही लोग दब सकते हैं। ऐसे प्रभावशाली पुरुषके नष्ट होनेसे वही प्रबल सेना अपने राजाका नाश करती है। महमूदके बादके राजा अयोग्य थे; इसलिये ग़ज़नीकी ऐसी शोचनीय अवस्था हुई। कई मांडलिक स्वतंत्र हो गये और ग़ज़नीके एक राजाको उसीके सेनापति-ने अंधा बना दिया। तात्पर्य यह है कि महमूद और शिवाजीने अपनी प्रबल सेनाओंका जिस सफलतासे उपयोग किया उससे सैनिकों और कर्मचारियोंके हृदयपर उनका नैतिक दबाव स्पष्ट दिखाई देता है।

यदि हम महमूदके विपक्षियोंकी ओर ध्यान दें तो उनमें कोई प्रतिभावान् पुरुष दिखाई नहीं देता। संकट आनेपर तो जयपालने वीरतासे सामना किया पर इस भावी संकटकी सूचना मिलते ही यदि वह अपनी सेनाका संघटन करता तो क्या हर्ज था, और शुरूसे ही सब प्रकारके संकटोंका निवारण करनेवाली उपयुक्त सेना रखनेमें उसे कौनसी रुकावट थी? प्रत्येक

राज्य या राष्ट्रका यह प्रथम कर्तव्य है कि बाहरी और भीतरी शत्रुओंसे लोगोंकी रक्षा करनेके लिए एक समर्थ सेना हमेशा तैयार रक्खे । जयपालको मनुष्यों या सामग्रीकी कमी नहीं थी। शायद हर्षके पास भी आरंभमें सेना बहुत ज्यादह नहीं थी पर उसीके बूतेपर हर्षने उत्तर भारतका दिग्विजय किया। बादको वह इतनी भारी सेना तैयार रखता था कि उसकी सेनाके केवल एक अंगमें ६०००० हाथी थे और इस विशाल सेनाका खर्च बिना किसी लूटपाटके चलता था। इतना खर्च करनेके बाद भी हर्ष प्रयागके पंचवार्षिक दानोत्सवमें लाखों रुपया ब्राह्मण और श्रमणोंको दिया करता था। महमूदके विरुद्ध लड़नेवाले काबुल और कन्नौजके हिंदू राजाओंका सबसे बड़ा दोष यह दिखाई देता है कि उन्होंने अपने प्रसिद्ध पूर्वज भीम और भोजके ज्वलन्त उदाहरणकी ओर ध्यान न देकर सेनाकी उपेक्षा की । गिबनके अमर शब्दोंमें कह सकते हैं कि सैनिकोंका वेतन मंदिरोंके भोगऔर मूर्तियोंके अलंकारोंमें खर्च हुआ। क्योंकि ऐसा कहीं लिखा नहीं मिलता कि इन दोनों स्थानोंमें सज्जित सेनाएं थीं। दसवीं शताब्दीके अरब यात्रियोंने लिख रक्खा है कि हिंदुस्तान अपनी सेनाओंके लिए प्रसिद्ध है पर ग्यारहवीं शताब्दीके हिंदुस्तानी राज्योंने यह कीर्ति खो दी । काबुल-पंजाबका राज्य एक बड़ी सेना रखनेके लिए अवश्य समर्थ था और वास्तवमें पड़ोसके राजाओंको बुलाकर एक संयुक्त सेना जमा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। यह संयुक्त सेना कुछ नहीं कर सकी क्योंकि उसे नैपोलियनका विरोध करनेवाले ड्यूक औफ वेलिंगटनके समान कोई योग्य सेनापति नहीं मिला। कुछ लोगोंका विचार है कि संयुक्त सेनाका उतना उपयोग नहीं होता है

जितना एक संघटित सेनाका हो सकता है। परन्तु यह विचार निराधार है क्योंकि पिछली तथा इस बीसवीं शताब्दीमें संयुक्त सेनाएँ फ्रांसके रणक्षेत्रोंमें सफलतापूर्वक लड़ी हैं। हाँ, इसमें कोई संदेह नहीं कि संयुक सेनाको एक नेता और नियामक अवश्य चाहिये। हिंदुस्तानमें संयुक सेनाएँ केवल आनंदपाल और जयपालके नेतृत्वमें एकत्र हुई थीं और वे युद्ध-कौशलमें महमूदकी योग्यताके नहीं थे, इसलिए हिंदुओंकी हार हुई। अस्तु, आइये अब हम पराजयके अन्य कारणोंका विचार करें।

(२) हिंदुओंकी धार्मिक भावनाकी कोमलता भी निस्संदेह पंजाबके उच्छेदका एक कारण हुई। दोनों पक्षोंकी ओर धार्मिक भावना ही प्रधान थी, जहाँ पर मुसलमानोंकी धार्मिक भावना उत्कट और प्रज्वलित थी वहाँ हिंदुओंकी भावना मृदु और मंद थी। यदि लेनपूलके शब्दोंमें कहा जाय तो कहेंगे कि यद्यपि महमूदकी ओर मुसलमानोंमें धर्मोत्साह और लूटका लोभ था तथापि इस मुसलमानी बाढ़का प्रतिकार हिंदुओंकी ओरसे यदि उतने ही प्रबल धर्मोत्साहसे तथा लूटे जानेवाले लोगोंके क्रोधसे होता तो मुसलमान कुछ नहीं कर पाते। हजारों मन्दिर लूट गये। मूर्तियाँ नष्ट भ्रष्ट की गयीं और हजारों हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये। साधारणतः यही विचार होता है कि ऐसी अवस्थामें हिन्दुओंको वीरता और क्रोधसे लड़ना चाहिये थां। दोनों सेनाओंकी संख्या

---

* स्मिथकी "आक्सफर्ड हिस्टरी आफ इंडिया" में लिखा है कि दूसरी संयुक्त सेनाका नेतृत्व अजमेरके राजा बीसलदेव ने लिया था। परन्तु इस कथनके लिए कोई आधार उद्धृत नहीं किया और यह सत्य नहीं दिखाई देता। यदि यह सत्य माना भी जाय तब भी बीसलदेव कभी प्रसिद्ध सेनापति नहीं रहा।

और संस्कृति एकसी थी। बल्कि हिंदू कुछ श्रेष्ठ थे अतः उन्हें किसी भी अवस्थामें पराजय स्वीकार नहीं करना चाहिये था। परन्तु हिन्दुओंकी धर्मभावना यद्यपि गम्भीर होती है तथापि कई कारणोंसे कोमल भी होती हैं। पहली बात यह है कि हिन्दू हमेशा सहिष्णु होता है। यह एक सामान्य अनुभवकी बात है कि कुरान या पैगम्बरकी थोडीसी भी निन्दा सुनकर मुसलमानको बहुत क्रोध होता है परन्तु हिन्दू वेदोंकी या रामकृष्णकी निन्दा शान्तिसे सुन लेता है। दूसरी बात यह है कि हिन्दू स्वभावतः लडाई झगडा करना नहीं चाहता। हिंदू धर्ममें अहिंसाका उपदेश श्रेष्ठ माना गया है इसलिए हिन्दुओं-को शान्तिमय मार्गसे चलनेका अभ्यास हो गया है। तीसरी बात यह है कि मूर्तिके सम्बन्धमें हिन्दुओंकी कल्पनाएं मिथ्या थीं और अब भी हैं। जब मूर्तियाँ अपनी शक्तिसे मुसलमानों-को हरा नहीं सकीं तब अन्धविश्वास करनेवाले हिन्दुओंकी यह धारणा हुई कि यदि देवता भी म्लेच्छोंके सम्मुख झुक जाते हैं तो मनुष्योंमे उनका विरोध होना अशक्य है। परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि मूर्ति प्रत्यक्ष ईश्वर नहीं बल्कि उसका एक प्रतीक है। और इस प्रतीकका यदि अपमान या मान खण्डन हुआ तो वह धातु या पत्थरकी मूर्तिका अपमान नहीं है, न उस देवताको जिसकी वह मूर्ति है, क्योंकि ईश्वर अपमानकी सीमासे ऊपर है, बल्कि वह अपमान है उन लोगोंका जो उस मूर्तिको मानते और पूजते हैं। बम्बईमें विक्टोरियाकी मूर्तिके मुखपर किसीने रोशनाई पोत दी, इससे उस संगमरमरके पत्थरका या उस प्रसिद्ध साम्राज्ञीका अपमान नहीं हुआ। अपमान हुआ उस ब्रिटिश राष्ट्रका जिसने उस मूर्तिकी प्रतिष्ठा की थी और उस कृत्यका हेतु भी

यही था । अन्ध विश्वासी हिन्दुओंकी ऐसी कल्पना हुई कि इस कलियुगमें सनातन धर्मकी अवनति होना निश्चित ही है, इसलिए महमूदके विरुद्ध देवताओंका भी बस नहीं चलता । ऐसी भयानक कल्पनाओंका हिन्दुओंके मनपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा । और कई आकस्मिक घटनाएँ महमूदके अनुकूल होनेसे यह धारणा दृढतर हो गयी । परिणामतः हिन्दुओंने जी तोड़कर और जोशसे युद्ध नहीं किया । जिन लोगोंके मन्दिर भ्रष्ट हुए और घर उजड़ गये उनको अति तीव्र क्रोध और दुःख मालूम होना चाहिये था ।

(३) पंजाबके उच्छेदका एक और कारण लोगोंकी राजकीय उदासीनता भी है । दुर्भाग्यसे इसके पूर्व बारह शताब्दियोंतक पंजाबमें विदेशी राज्य रहा । बल्कि यह कहा जा सकता है कि रणजीतसिंहके समय तकके पंजाबमें स्वराज्य नहीं था । उस देशमें अन्य प्रान्तीय हिन्दू या म्लेच्छ राजा राज्य करते थे । मैसिडोनियन, मौर्य, शक, बैक्ट्रियाके यवन, कुशान, हूण, काश्मीरी, सिन्धी और अन्तमें काबुलके शाहीराजा पंजाबपर राज्य करते आये थे । महमूदके बाद आठ शताब्दियोंतक गजनी और दिल्लीके राजाओंने पंजाबमें राज्य किया । अर्थात् दो हजार वर्षोंके बाद सिक्ख राजा रणजीत सिंह ही पहला स्वदेशी राजा हुआ । महमूदके पंजाब-विजयके समय स्वराज्यकी भावना पंजाबियोंके हृदयसे लुप्त हो गयी थी । पंजाबके लोग आर्य और शक्तिशाली थे परन्तु स्वराज्य-प्राप्तिकी उन्हें इच्छा नहीं थी । अतः उनके लिए गजनीके मुसलमान तुर्कोंका या काबुलके हिन्दू अफगानोंका राज्य एकसा था । इस समय राजाओंमें जो परिवर्तन हो रहा था उसके विषयमें पंजाबके लोग उदासीन थे । जिस प्रकारका

घोर विरोध स्वतंत्रताके लिए लोग करते हैं उस प्रकारका विरोध पंजाबके लोगोंने नहीं किया। पाश्चात्योंके इतिहासमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें केवल एक रणसंग्रामके कारण देश या राज्य जीता गया। इंग्लैण्डको भी 'विलियम दि कौंकरर' ने एक युद्धमें जीता। परन्तु अंग्रेजोंने नार्मन राजाओंको अपनेमें मिला लिया। इसके विपरीत गज़नीके मुसलमान राजाओंने पंजाबके लोगोंको ही अपना बना लिया। और जिस प्रकार सिन्ध ई० सन् ७१२ में मुसलमानी राज्यमें सम्मिलित हुआ था उसी प्रकार ई० सन् १००६ में पंजाब भारतवर्षसे पृथक् हो गया।

® यहाँ एक और प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या पंजाबमें इस समय या इसके पूर्वकालमें क्षत्रिय नहीं थे और यदि थे

® यहाँ यह आक्षेप हो सकता है कि धार्मिक भावनाओंकी शिथिलता और राजनीतिक उदासीनता ये दो तो पंजाबके ही नहीं, सारे हिंदू राज्योंके उच्छेदके कारण हैं। यह बात ठीक है कि भारतके ही नहीं एशियाके अधिकांश राष्ट्र इन्हीं कारणोंसे नष्ट हुए हैं और इसी भागकी सातवीं पुस्तकके अन्तमें उत्तर हिन्दुस्थानके उच्छेदके कारणोंका विचार करते हुए हमें इन दोनों कारणोंका उल्लेख करना पड़ा है। नरम धार्मिक भावना और राजनीतिक परिस्थितिके संबंधमें उदासीनता, ये सारे हिन्दुस्थानके लोगोंके स्वभावके मुख्य दोष हैं। पर हमें यहाँ विशेष रूपसे यह बात बतानी है कि ई० सन् १२०० के लगभग उत्तर हिन्दुस्थानके राजपूत राज्योंके विध्वंसके जो मुख्य कारण हुए वे पंजाबमें मौजूद नहीं थे। उदाहरणार्थ पंजाबमें कठोर जातिबंधन अथवा पारस्परिक युद्धोंका नाम तक न था। और पंजाबमें जो दो उक्त कारण उपस्थित थे उनका परिणाम हिन्दुस्थानके अन्य स्थानोंकी अपेक्षा पंजाबमें अधिक हो रहा था। इसलिए कहना पड़ता है कि पंजाबके उच्छेदके मुख्य कारण ये ही दो थे। आइये, अब इसी पर विस्तारसे विचार किया जाय।

तो उन्होंने अपना राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न क्यों नहीं किया। हम पहले कह चुके हैं कि पंजाबके अधिकतर लोग

लोगोंकी राजनीतिक या धार्मिक प्रवृत्ति उनकी ऐतिहासिक परिस्थितिसे उत्पन्न होती है और उनमें किस प्रकार परिवर्तन होता है यह बात इतिहाससे जानी जा सकती है। यह निर्विवाद है कि पंजाब आरंभसे वैदिक आर्योंका देश है। वेदोंके अधिकांश मंत्र यहीं बने और गाये गये। यहीं उत्तरकालीन वैदिक संस्कृति परिणत हुई। व्याकरणके आचार्य पाणिनि और तत्वज्ञानके गुरु अश्वपति, गांधार और मद्र देशमें हुए। उपनिषदोंमें सिंधु-नदीके पश्चिम और पूर्वस्थित इस देशके ब्राह्मण क्षत्रियोंका बहुत उल्लेख है। पर आगे चलकर "सिंधुषष्ठ पंचनदा" का यह देश बौद्धधर्मका एक केन्द्र बना। बुद्धने स्वयं (?) अफगानिस्थान और पंजाबमें सफलताके साथ धर्मोपदेश किया और आगे चलकर कनिष्कके समय इसी देशमें बौद्धधर्मके महायान पंथका निर्माण हुआ। वैदिककालके प्रसिद्ध स्थान पुरुषपुर और तक्षशिला बौद्धधर्मके विद्याकेन्द्र बने। इसलिए पंजाब वैदिक आर्योंका मूल देश होते हुए भी (और सर एच रिज़लेकी ई० सन् १९०१ की मनुष्य गणनासे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि पंजाब आज भी मुख्यतः भारतीय आर्योंका देश है) हिंदुस्थानके अन्य भागोंकी अपेक्षा पंजाबकी हिन्दू-धर्म भावना कम हो गयी थी। ईसवी सन्‌के लगभग २५० वर्ष पूर्व, महाभारतके वर्तमानरूपमें आनेके समय भी, यह परिवर्तन स्पष्ट दिखायी देता था (टिप्पणी देखिये)। ह्युएनत्संग ई० स० ६३० में हिन्दुस्तान आया। उसने भी लिखा है कि कपिश (काबुल), नगर (जलालाबाद), उद्यान (स्वात), और तक्षशिलाके प्रान्त पूर्ण बौद्ध थे और पेशावर तथा पंजाब आधा बौद्ध था (भा० १)। पंजाबमें वैदिककालमें ही जातिबंधन शिथिल थे और बौद्ध-कालमें वे अधिक शिथिल हुए। सरस्वतीके प्रदेशमें ब्राह्मण धर्म बढ़ा और उत्तर हिन्दुस्थानमें जातिधर्मने जोर पकड़ा। पर पंजाबमें जातिबंधन शिथिल ही रहे। महाभारतका वर्णन है कि "पंजाबमें मनुष्य आज ब्राह्मण, कल क्षत्रिय, परसों वैश्य, नरसों नापित और इसके बाद पुनः ब्राह्मण होता है।" हर्षके बाद कुमारिल भट्ट और शंकराचार्यके प्रयत्नसे उत्तर हिन्दुस्था-

आर्य थे। अर्थात् महमूदके समयमें तथा उसके पूर्व हजारों क्षत्रिय और वैश्य, शुद्ध आर्य रक्तके, पंजाबमें थे। परन्तु अले-

नमें बौद्धधर्मका उच्छेद और वर्तमान हिन्दू धर्मका उदय हुआ। उस समय पंजाबमें भी बौद्धधर्म नष्ट हुआ पर हिन्दू धर्मके केन्द्र दूर दक्षिणमें होनेके कारण पंजाबके वर्णाशैथिल्यपर उसका प्रभाव पड़ा और वहाँ खानपानादि व्यवहार विभिन्न ही रहा। इससे महमूदके पंजाब जीतनेके समय वहाँके लोगोंकी हिन्दू धर्म भावना अन्य स्थानोंकी अपेक्षा अधिक शिथिल थी। गंगा यमुनाके प्रदेशमें लोगोंको वर्णाश्रम धर्मपर जो दृढ़ विश्वास था वह पंजाबमें नहीं था। इसीसे पंजाबवालोंने बलात् धर्म परिवर्तनका विशेष विरोध नहीं किया और महमूद द्वारा तोड़ी गयी मूर्तियोंकी पूजा करना इतनी सुगमतासे छोड़ दिया जितनी सुगमतासे छोड़ना आर्यवंशका शारीरिक सामर्थ्य रखनेवाली हिन्दू जनताके लिए असम्भव था।

अब राजनीतिक उदासीनताके सम्बन्धमें देखा जाय तो हिन्दुस्थानके अन्य भागोंकी अपेक्षा पंजाबमें यह उदासीनता अधिक थी अर्थात् इस संबंधमें भी पंजाबकी स्थिति अधिक खराब थी। बहुत प्राचीन कालसे पंजाब ही नहीं सारे हिन्दुस्थानमें राजनीतिक भावनाएँ सोई हुई हैं। प्राय सब प्राच्य लोगोंकी राजनीतिक कल्पनाएँ अबतक असंस्कृत हैं। यह कल्पना आधुनिक कालसे ही उत्पन्न हो रही है कि राष्ट्र लोगोंका है, राजाका नहीं। अनियन्त्रित राजसत्तामें राजनीतिक कल्पना सदा यही रही कि देश राजाका है, राजा देशका नहीं अर्थात् राजा लोगोंमेंसे एक हो यह आवश्यक नहीं। वैदिक कालमें आर्योंकी कल्पना इससे अधिक संस्कृत थी और लोग ही वास्तविक राष्ट्र समझे जाते थे। उस समय राष्ट्र और राजाका नाम लोगोंके नाम पर रहता था। लोगोंका नाम एक वचनमें राजाके लिए और बहुवचनमें राष्ट्रके लिए व्यवहारमें आता था, उदाहरणार्थ मद्र, कुरु, शाल्व, पांचाल आदि शब्दोंको देखिये। अलेक्जेंडरके समयतक पंजाबमें कुछ ऐसे लोग या राष्ट्र थे जिनमें राजा ही न थे। इतिहासकार (Arian) अरायन ने लिखा है कि "मालव, यौधेय, शाल्व आदि लोगोंमें राजा नहीं थे, उनमें लोकसत्तात्मक राज्य व्यवस्था थी। महाभारतमें ऐसे लोगोंको

सिकंदर तथा उसके बादके नेताओंने हमेशा लड़ाके लोगोंका कत्ल किया इसलिए पंजाबमें राज्य करनेवाले वंश नष्ट हुए।

गया कहा है। अस्तु, वैदिक तथा भारतकालमें दूसरी स्थिति होते हुए भी इधर देशमें चारों ओर राज सत्तात्मक व्यवस्था ही थी और देश, यहाँ तक कि देशके लोग भी, राजाकी निजी संपत्ति माने जाने लगे थे। ऐसी राज्य-व्यवस्थामें राष्ट्रीय भावनाएँ उत्पन्न होना संभव ही नहीं था। पर पंजाब और दूसरे प्रान्तोंकी परिस्थितिमें अन्तर यह था कि उत्तर हिन्दुस्थानमें राजा स्वदेशी होनेसे वहाँ थोड़ी तो भी राष्ट्रीयता थी पर पंजाबमें सैकड़ों बरस विदेशियोंका राज्य होनेसे यहाँ उतनी राष्ट्रीयता भी बाकी न रही थी। इसीसे लोग इस संबंधमें पूर्ण उदासीन थे कि राजा कौन है, राज्य कौन कर रहा है। यही कारण है कि आनंदपालके युद्धमें हार जानेपर साधारण जनताने बिना कोई विरोध किये शांत भावसे महमूदकी राजसत्ता स्वीकार कर ली।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू धार्मिक भावनाओंकी शिथिलता और राजनीतिक उदासीनताके ही कारण इस आसानीसे पंजाबका उच्छेद हुआ। ब्रिटिश राज्यमें अथवा समस्त संसारकी बदली हुई वर्तमान सुधरी परिस्थितिमें पंजाबमें भी राष्ट्रीय भावना जागृत हो रही है पर पंजाबके विभिन्न धर्मोंके झगड़ोंमें हिन्दुओंको यदि अपना अस्तित्व बनाये रखना हो तो उन्हें अपनी धर्म-श्रद्धा इतनी दृढ़ करनी होगी कि उसकी शक्ति सिक्खों या मुसलमानोंकी धार्मिक भावनाकी शक्तिके बराबर हो जाय।

हिन्दू सैनिकोंमें जो यह दोष दिखाई देता है कि वे पाश्चात्य आर्योंकी तरह डटके युद्ध नहीं करते, उसकी उत्पत्ति भ्रामक राजनीतिक कल्पनासे ही हुई है। सैनिकोंकी कल्पना यह होनेके कारण कि देश राजाका है, लोगोंका नहीं, वे जय-पराजयमें अपना कोई हित नहीं देखते। इनके युद्धमें हार जानेसे एक नया राजा आता है और उसे पुराने राजाकी ही तरह माननेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती क्योंकि उनकी समझ यह रहती है कि राजा अपने देशका आदमी न भी हो तो भी काम चल सकता है। महाभारतके समय आर्योंकी समझ और ही थी और इसीके कारण वे महाभारतके युद्धमें

जिन वीर क्षत्रिय जातियोंने अलेक्ज़ैण्डरका विरोध किया, उनके अर्थात् शिवि, मालव, मद्र, यौधेय इत्यादिके वंशज, अब भी पंजाबमें हैं और महमूदके समयमें भी थे। परन्तु वे सब किसान-विशेषतः गाँवके चौधरी बन गये थे। क्षत्रियोंके लिए

डट कर अन्ततक लड़े। उस भारतीय युद्धके अन्तिम दिन जिस समय लोगों ने दुर्योधनको युद्ध-क्षेत्रमें कहीं न देखा, उस समय कुछ सैनिक और फौजी अधिकारी 'राजा कहाँ है' यह पूछने लगे पर दूसरोंने जवाब दिया कि "तुम राजाको क्यों ढूंढ रहे हो, डट कर लड़ो और विजय प्राप्त करो। राजाके संबंधमें हम पीछे विचार करेंगे।" महर्षि व्यासका यह वर्णन मनन करने योग्य है। आगे चलकर यह मनोवृत्ति जाती रही क्योंकि राष्ट्र राज्य हो गया और लोगोंकी समझ यह हो गयी कि राजाकी संपत्ति जनताकी संपत्ति नहीं होती। तात्पर्य यह कि हिन्दू सैनिकोंकी युद्धसे भागनेकी प्रवृत्तिका कारण मृत्युका भय नहीं वरन् जय-पराजयमें स्वदेश-भक्ति या स्वहितकी कल्पनाका न होना है।

बैहकीने एक बड़ी मनोरंजक कथा दी है। आक्ससके उस पारके तुर्कोंसे हुए युद्धमें गजनीके राजाकी ओरसे हिन्दू सिपाही लड़ते थे। उनकी वीरता-की बैहकीने भी प्रशंसा की है। एक बार युद्धमें हारकर ये लोग भाग गये। गजनी वापस आने पर भागनेके अपराधके लिए इनकी जाँच हुई और ये नौकरीसे अलग किये गये। यह सजा सुनते ही उन सिपाहियोंमेंसेब हुतोंने अपमानके कारण पेटमें खंजर मारकर आत्महत्या कर ली। सुलतान मसऊदने न उनके लिए कोई दुःख प्रकट किया, न उनके आत्मयज्ञकी स्तुति की। उसके इस कथनमें अवश्य सत्यांश है कि "इन लोगोंने यही खंजर शत्रुपर चलाते समय प्राण त्याग क्यों नहीं किया।" आत्महत्या करनेमें जो निर्भयता दिखाई देती है, वह शत्रुके साथ अन्ततक लड़नेमें क्यों नहीं दिखाई जाती? अस्तु, हमारा विचार है कि हिन्दू सिपाहियोंका यह स्वभाव दोष इसलिए उत्पन्न नहीं हुआ कि वे मृत्युसे डरते थे पर इसलिए कि राज्यके बारे में उनकी कल्पनाएँ भ्रामक थीं और युद्धकी सफलतामें उन्हें कोई लाभ मालूम नहीं होता था।

इस प्रकारका आपद्धर्म स्मृतियोंमें, मुख्यतः पराशर स्मृतिमें, बतलाया गया है। (दूसरा भाग देखिए)। इससे पंजाबके क्षत्रिय, वीर और बलिष्ठ होते हुए भी, अपने प्राचीन स्वभावको, जिसे गीतामें स्वभावज कर्म कहा है, भूल गये थे। क्षत्रियोंका स्वभाव है कि दूसरोंपर राज्य करनेकी उत्कट इच्छा रखना और किसी भी प्रकारसे दूसरोंका राज्य सहन न करना। जब तक अपने ग्राममें एक प्रकारका आर्थिक स्वातंत्र्य मिल रहा है, तब तक वे इस ओर ध्यान नहीं देते थे कि देशपर कौन राज्य कर रहा है। राजनीतिक शक्ति, चाहे वह ग्रीक, शक, कुशान, हूण या तुर्क इन विदेशियोंकी या सिंध अथवा काश्मीरके स्वदेशी राजाओंकी हो, ऐसे जमींदारोंको कभी तंग नहीं करती थी। इसलिए सर्व ग्रामोंमें फैले हुए ये क्षत्रिय, राजाको कष्ट नहीं देते थे। इससे राज्य करनेवाले क्षत्रिय और कृषि कर्मानुयायी क्षत्रिय ऐसे दो भेद उत्पन्न हुए। यह भेद अब भी पंजाबमें माना जाता है। राज्य करने वाले क्षत्रिय अर्थात् राजपूत—प्रत्यक्ष राज्य करनेवालोंके पुत्रपौत्र—कभी खेती नहीं करते थे, न करते हैं। चाहे एक ही गाँव क्यों न हो वे उसपर राज्य करते थे। क्षत्रियोंकी राज्य करनेकी यह लालसा महाभारतमें युधिष्ठिरद्वारा दुर्योधनके सामने रक्खी गयी अंतिम माँगसे स्पष्ट दिखाई देती है। "हमें कमसे कम पाँच ग्राम दे दो, हर एक भाईके लिए एक एक और शेष राज्यका उपभोग तुम निर्विरोध करो।" इस वाक्यमें राजपूतोंका राज्य करनेका स्वभावधर्म स्पष्ट दिखाई देता है और यही उत्कट लालसा पंजाबके बचे खुचे राजपूतोंको पंजाबकी पूर्व सीमाके निकट हिमालय-प्रदेश या राजपूतानेके रेगिस्तान या उससे भी दूर प्रदेशोंमें ले गयी। दूसरे भागमें दिखलाया गया है कि

राजपूतानेके वर्तमान राज वंश ग्रीक, शक, कुशान, हूण और तुर्क आक्रमणोंके समय पंजाबसे आ बसे हैं। मुख्यतः चौहान, परमार, भाटी बल्कि राठौर भी पंजाबसे आये हुए हैं, और पंजाबके हिन्दू तथा मुसलमान राजपूत अपने आपको उपर्युक्त राजपूत कुलोंसे उत्पन्न मानते हैं। तुर्कोंके आक्रमणसे जावुलिस्तानका प्रान्त भाटी राजपूतोंके हाथसे चला गया और वे अन्तमें जेसलमेरमें राज्य कायम कर रहने लगे। नमकके पहाड़के मुसलमान जंजुआ राजपूत अनुके वंशके आनव माने जाते हैं और पंजाबके अत्यन्त वीर क्षत्रियोंमें उनकी गणना होती है। यह और दूसरे लड़ाके क्षत्रिय उन राजपूतोंके वंशज हैं जो गाँवके चौधरी बनकर और कभी कृषिकर्म भी स्वीकार करके स्वतंत्रतासे रहे।

अब इन ग्रामस्थ क्षत्रियोंने भी प्राचीन कालमें जो नये राज्य स्थापित करनेकी ओर ध्यान नहीं दिया, उसका कारण मुख्यतः यह है कि जो विदेशी राजा राज्य करते थे वे जितोंका धर्म स्वीकार कर स्वदेशी बन गये। जिस प्रकार नार्मन लोग विजयी होते हुए भी विजित लोगोंके समान ईसाई धर्मानुयायी होनेके कारण उनके साथ मिल गये, उसी प्रकार ग्रीक, कुशान और हूण हिंदुस्तानमें आनेपर बौद्ध या वैष्णव धर्म स्वीकार करते थे (अन्तिम मिहिर कुल कट्टर शैव था)। इसलिए उनका राज्य विदेशीसा नहीं मालूम होता था। बादको जो काबुल सिंध या काश्मीरके राजा राज्य करने लगे, वे तो हिन्दू ही थे और उनके रीतिरिवाज और उनकी संस्कृति अपनी प्रजाके सदृश थी। लोगोंको उनका राज्य कभी विदेशी मालूम नहीं हुआ। परन्तु जब तुर्कोंने पंजाब जीत लिया तब निस्संदेह जित और जेताके धर्मभेदसे—विशेषतः मूर्ति और मंदिरोंके

भंजनसे—विदेशी राज्य कष्ट दायक और असह्य हुआ होगा। इसके अतिरिक्त हम यह आगे दिखलानेवाले है कि हिंदू राज्योंकी अपेक्षा मुसलमानी राज्य अधिक अत्याचारी और कष्टदायक होता था। ऐसी अवस्था होते हुए भी पंजाबके वीर जमींदार क्षत्रियोंने अपना राज्य स्थापित करनेकी कोशिश नहीं की। इसका दूसरा कारण यही दिखाई देता है कि इनमें-से अधिकांश जातियाँ बलप्रयोगसे मुसलमान बनायी गयीं। पंजाबके पश्चिमी हिस्सेकी अधिकतर जातियोंके मुसलमान होजानेके कारण पंजाब प्रांतकी जनता कई भागोंमें विभक्त हो गयी। हिंदुस्तानके सब लोगोंमें पंजाबके लोग वीर और बलिष्ट हैं तथापि इस अनैक्यसे वे स्वराज्य प्राप्त करनेके कार्यमें सब प्रान्तोंसे दुर्बल हो बैठे हैं। इन क्षत्रिय जातियोंने जबर-दस्ती होनेवाले धर्म-परिवर्तनका जोरोंसे विरोध क्यों नहीं किया, इसके दो कारण थे, एक तो मुसलमानोंके कत्लेआमसे बचनेकी उनकी इच्छा और दूसरे अपने वंशपरंपरागत चौधरी के अधिकार तथा जायदादके बचानेकी प्रबल लालसा। इसके अतिरिक्त हिंदुओंके अन्य धार्मिक विचारोंमें एक यह भी था कि जो मनुष्य गोमांस खाकर या इसी प्रकारके भयंकर पातक-से चाहे बलप्रयोगसे ही क्यों न हो—धर्मच्युत हो गया वह पुनः हिन्दू नहीं हो सकता। इस प्रकारके विचारोंसे इन मुस-लमान बन हुए क्षत्रियोंकी सहानुभूति स्वभावतः मुसलमान राजाओंकी ओर हो गयी। इसलिए १८ वीं शताब्दीके सिक्ख राज्यतक पंजाबमें विदेशी शासन रहते हुए भी स्वदेशी राज्य स्थापित करनेका कोई प्रयत्न नहीं किया गया। सिक्खधर्मने मुसलमानी अत्याचारका विरोध एक प्रकारके 'कान्सक्रिप्शन' से अर्थात् हर एक मनुष्यको युद्धकलाकी शिक्षा देकर, किया

और अन्तमें उसकी विजय हुई। गुरुगोविंद सिंहको यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि हर एक सिक्ख सिपाही बनाया जाय और पंजाबके लोगोंके स्वभावतः लड़ाके होनेके कारण उन्हें सिक्ख धर्मको लड़ाका धर्म बनानेमें यश प्राप्त हुआ। सिक्खोंके प्रादुर्भाव तक पंजाबका यह संक्षिप्त इतिहास है। पंजाबके लोग अब तीन भेदोंमें बँटे हुए हैं और आगे उनकी जागृत राजनीतिक भावना क्या करायगी, इसका विचार करना इस ग्रंथके उद्देशके बाहर है। यह कार्य भावी तथा वर्तमान राजनीतिज्ञोंको सौंपा जाना चाहिये।

उत्तर भारतके हिंदू राजाओंने पंजाबपर अपना राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न क्यों नहीं किया, इसका कारण संक्षेपमें हम इस प्रकार दे सकते हैं। पंजाबके आधे लोग मुसलमान हो गये थे, और वे ऐसे प्रयत्नके अनुकूल नहीं थे। काश्मीर या कन्नौजके राजा इस समय ऐसा प्रयत्न करनेमें असमर्थ थे। साँभरके चाहमानोंका राज्य दूर था, और उनमें भी कोई बहुत बलिष्ठ राजा हुआ दिखाई नहीं देता। यदि बीसल-देव (तीसरा) और कुछ दिनोंतक जीवित रहता तो शायद वह इस कार्यका प्रयत्न करता। आगे चौहानोंके इतिहासमें इस बातका उल्लेख आयगाही कि बीसलदेवने एक शिलालेखमें अपने वंशजोंसे ऐसा प्रयत्न करनेका आदेश दिया है।

टिप्पणी ।

पंजाबमें धर्मशिथिलता दिखानेवाले महाभारतके उल्लेख ।

कर्णपर्व में अध्याय ४० से ४६ तक कर्ण और शल्यके बीच एक जोरका संवाद दिया है। उसमें कर्णने पंजाबके लोगोंके अनाचार और बुरी चालोंके उदाहरण दिये हैं परन्तु शल्यने उसका अधिकतर उत्तर नहीं दिया। इससे

दिखाई देता है कि उस समयके आर्यावर्तके अर्थात् वर्तमान युक्तप्रान्त तथा दिल्लीके लोग पंजाबके हिंदुओंकी ओर क्षुद्र दृष्टिसे देखते थे।" लोग अपने घरमें हँसते कूदते, गोमांस खाते तथा मद्य पीकर नाचते हैं और सक्तु तथा मत्स्य खाते हैं। मद्रदेशमें और सिन्धुके उस पारके गांधार देशमें शुद्धता बिलकुल नहीं रही। बिच्छू भाड़नेके लिए जो एक मंत्र है उसमें एक वाक्य है कि "मद्रदेशके लोगोंसे मैं व्यवहार नहीं रखूंगा। इस पुण्यसे तेरा विष नष्ट हो जाए।" (अध्याय ४३)। अध्याय ४४ में यह भी लिखा है कि "वाहिक देशमें, जहाँ पाँच नदियाँ तथा छठवीं सिन्धु नदी बहती है, वहाँ जाना न चाहिये। क्योंकि वह देश हिमालयसे या गंगा, यमुना और सरस्वतीसे पवित्र नहीं हुआ। और उसमें शुद्धता तथा सच्चा धर्म रह नहीं गया। जो लोग लहसुन सहित गोमांस तथा गुड़ और चावलकी सुराका पान करते हैं वे शीलवर्जित हैं। इस देशका नाम ही आरट्ट है, और वह धर्म हीन है। मनुष्यको वहाँ जाना नहीं चाहिये। वह व्रात्योंका अर्थात् धर्म-हीनों तथा यज्ञहीनोंका देश है। यदि आप युगंधर नगरमें पानी पीजियेगा या अच्युतस्थलमें रहियेगा या श्रुतलव्यके तालाबमें स्नान कीजियेगा तो आपको स्वर्ग किस प्रकार मिलेगा। आरट्टवाहिक देशमें आर्यको दो दिन भी नहीं रहना चाहिये। वहाँ ब्राह्मण आज क्षत्रिय, फिर वैश्य, फिर शूद्र और अन्तमें नापित होकर पुनः ब्राह्मण हो जाता है।" शल्यने अपने उत्तरमें केवल इतना ही कहा कि अच्छे और बुरे लोग सब देशोंमें होते हैं।

अठारहवाँ प्रकरण।

महमूदके बादके राजा।

महमूदने काबुल और पंजाब प्रान्त ले लिया था। यह प्रदेश इसके बाद यद्यपि हिन्दू भारतका भाग न रह गया तथापि महमूदके बादके गजनवी राजाओंके शासन-कालका

उतना इतिहास देना आवश्यक है जितनेमें हिंदू भारतका उल्लेख आया है। मिनाजउस्सि राजने 'तवकातेनासिरीमें गजनीके राजवंशका संक्षिप्त इतिहास दिया है। यह प्रसिद्ध विद्वान् कई राजाओंके शासन कालमें—नासिरुद्दीन और गयासुद्दीनके राज्य कालमें भी—दिल्ली और आस पासके प्रान्तका काजी था (इलियट भा० २, पृ० २६०)। उसने यह इतिहास लिख कर हिजरी सन् ६५० के लगभग नासिरुद्दीनको अर्पित किया। ई० सन् १०५० के लगभग वैहकीने मसऊदके राज्य-कालका विस्तृत वृत्तान्त कथा-रूपमें लिखा। उसने जिन घटनाओंका उल्लेख किया है वे प्रायः उसके सामने हुई थीं। यह ग्रन्थ जानकारीसे भरा पड़ा है और आज भी उपलब्ध है। इन्हीं दो ग्रन्थोंके आधार पर हम महमूदके बादके राजाओंका संक्षिप्त इतिहास इस प्रकरणमें दे रहे हैं।

महमूदके दो पुत्र थे—मसऊद और मुहम्मद। इनका जन्म एक ही दिन दो माताओंके उदरसे हुआ था। मसऊद शरीरसे ऐसा बलिष्ठ था कि उसकी गदा खुद महमूदसे भी न संभाली जाती थी। पर वह उच्छृंखल और झगडालू था। मुहम्मद शांत और समझदार था, इसीलिए बाप उसे अधिक चाहता था। महमूदने यह विचार कर कि मसऊद शायद सेना और प्रजाको तंग करे, मुहम्मदको युवराज नियुक्त किया और खुतवेमें उसके नामका समावेश करनेकी अनुमति खलीफासे ले ली। इस पर एक अधिकारीने निजी तौर पर मसऊदकी सांत्वना करना चाहा पर मसऊदने मुसलमानोचित उत्साहसे उत्तर दिया कि "सिंहासनके निर्णयका अधिकार कागजके टुकडेकी अपेक्षा तलवारहीको अधिक है।" और हुआ भी ऐसा ही। पिताकी मृत्युके समय

मसऊद महमूदकी ही भाँति खुरासानका शासक था और महमूदने जिस प्रकार अपने भाई इस्माइलपर आक्रमण किया था उसी प्रकार मसऊदने भी पिताके मरते ही ग़ज़नीके सिंहासनपर बैठे हुए मुहम्मदपर आक्रमण किया। पर मसऊद बापसे भी बढ़ कर निकला, उसने अपने भाईकी आँखें निकलवा लीं और उसे सदाके लिए कठोर कारावासमें रक्खा। मुहम्मदने कई अधिकारियोंको पैसे दे रखे थे पर महमूदका प्रचंड साम्राज्य हस्तगत करते ही मसऊदने उन अधिकारियोंको नाना प्रकारके कष्ट देकर उनसे पाई पाई वसूल कर ली।

महमूद और शिवाजीमें जिस प्रकार साम्य है उसी प्रकार उनके पुत्र मसऊद और संभाजी भी हर बातमें एकसे थे। मसऊदकी तरह संभाजीके भी अलौकिक शारीरिक बल था और उसने भी पिताकी मृत्युके बाद अपने भाई राजाराम को पदच्युत कर उसकी माताका वध करवाया था। संभाजीने लगभग दस वर्ष तक जोरशोरसे राज्य किया और अन्तमें औरंगजेबने उसे पकड़वा कर क्रूरतासे उसका वध करवाया। दस वर्षके यशस्वी शासनकालके बाद मसऊदकी भी इसी प्रकार शोचनीय मृत्यु हुई। संभाजी मसऊद दोनों का ही अपने २ धर्मपर पूर्ण विश्वास था। मसऊद ने महमूद की ही भाँति धर्मसुधारकोंपर अत्याचार किये और धर्मप्रचारके लिए हिन्दुस्तानपर कुछ आक्रमण किये।

महमूदने राज्यकी शासन-प्रणाली बहुत व्यवस्थित कर रखी थी। इस संबंधमें बैहकीने विस्तारके साथ जो सरस वृत्तान्त लिखा है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। मंत्रियोंको जो खिलअतें दी जातीं वे बड़े समारोहके साथ दी जातीं। सब मामलोंमें सुलतान अपने मंत्रियोंसे नियमानुसार सलाह

लेता। सुलतान और मंत्रियोंमें जो लिखा पढ़ी होती वह सब सुलतानके निजी मंत्रीकी मार्फत होती। सब आज्ञाएँ लिखित हुआ करतीं। हिन्दुस्तानके पंजाब प्रान्तका शासन काजी और सेनापतिके द्वारा होता। वे दोनों लाहौरमें रहते। दीवानी विभागका शासन काजीके हाथमें होता, वह कर वसूल करता और न्याय देता। इसी प्रकार युद्ध करने, जीतकर हाथी लाने, उपद्रवी हिंदुओंको परास्त कर उन्हें दंड देने और खिराज वसूल करनेका काम सेनापतिकी ओरसे होता (इलियट भा० २, पृ० ११८)। अहमद निआल्तगीन जब हिन्दुस्तानका सेनापति नियुक्त हुआ तब उसे सुलतानकी ओरसे खिलअत और सुलतानकी मौखिक आज्ञा मिली और तुरंत ही उसे एक लिखित सनद दी गयी। फिर शपथ लेनेका कार्य हुआ और उसने इस आशयके प्रतिज्ञापत्रपर कि मैं एक-निष्ठासे सुलतानकी नौकरी करूँगा हस्ताक्षर किये। पश्चात् ये सब कागज सुलतानको दिखाकर सिरिश्तेदारको सौंपे गये (इलियट भा०२, पृ० ११८)। निआल्तगीन जब हिन्दुस्तान आया तब उसके साथ गुलामीसे मुक्त किये गये कुछ विद्रोही सैनिक और गुलाम भेजे गये। उनपर नजर रखकर उन्हें किसी काममें लगा देनेका निआल्तगीनको आदेश था और आज्ञा दी गयी थी कि उन्हें न चन्द्रभागा नदीके उस पार जाने दिया जाय, न लाहौरकी सेनामें ही सम्मिलित होने दिया जाय। राजाको यह डर रहा होगा कि यदि ये लाहौर गये तो संभव है कि उस राजधानीमें कुछ उपद्रव करें और यदि इन्हें स्वतंत्र हिंदुस्तानमें जाने दिया गया तो शायद कोई बखेड़ा खड़ा करें।

सेनापतिके अनेक कामोंमें से यह भी एक काम था कि वह पंजाबपर आक्रमण कर वहाँके ठाकुरोंसे खिराज वसूल करे।

ये ठाकुर लड़ाके तथा स्वतंत्रताप्रिय जमींदार थे और इन्हें काबूमें रखना कठिन था। इन क्षत्रियोंका वर्णन पहले किया ही जा चुका है। निआल्तगीनने हिंदुस्तानपर आक्रमण किया और वह बनारस तक चढ़ आया। बैहकीने लिखा है कि "महमूद भी इतनी दूर तक नहीं आया था।" इस उल्लेखसे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि महमूदने जिस समय राहिब नदीके तटपर राज्यपालको पराजित किया उस समय वह बारीके इस ओर न आया होगा। 'राहिब' अवधकी कोई (घाघरा या गोमती) नदी है। निआल्तगीन और काजीमें किसी बातपर झगड़ा आरम्भ हुआ। (ब्रिटिश भारतमें भी दीवानी और फौजी अधिकारियोंमें झगड़े होकर अत्यन्त हानि होनेके कारण अन्तमें सेनापति गवर्नर जनरलके अधीन किया गया।) प्रधान मंत्रीने निआल्तगीनसे यह कहा कि तुम हिन्दुस्तानके सेनाध्यक्ष हो तथा तुमपर काजीका कुछ भी अधिकार नहीं है (इलियट भा०२, पृ० १२८)। निआल्तगीनने काजीकी न मानी और मसऊदकी सम्मतिसे हिन्दुस्तानपर चढ़ाई की। इस झगड़ेमें मसऊदने निआल्तगीनका पक्ष लिया था।

इस आक्रमणका वर्णन बैहकीने इस प्रकार किया है—"निआल्तगीन गंगा पार कर किनारे किनारे बढ़ता गया। उसने अपनी सेना अकस्मात् बनारसके सामने लाकर खड़ी की। यह नगर गंगके राज्यमें था। उसका क्षेत्रफल दो वर्ग फरसाख (५ मील) था और उसमें पानीकी कमी न थी। गंगके डरसे सेना नगरमें प्रातःकाल से मध्याह्न काल तक ही रही। सैनिकोंने गंधियों, जौहरियों और जरदोजीका काम करनेवालोंकी दुकानें लूट लीं और वे सोना, चाँदी, जवाहिरात तथा सुगंधित द्रव्योंकी भारी लूट लेकर सकुशल लौट आये।" संभव

है कि वैहकीने यह सब अपनी आँखोंसे देखा हो। यह निर्विवाद है कि वह उस समय जीवित था। उसने इस आक्रमणका वर्ष ई० सन् १०३३ बताया है। जान पड़ता है कि उस समय बनारस त्रिपुरके कलचुरि राजा गांगेय देवके राज्यमें था।

गांगेय देव शक्तिशाली राजा था। उसकी सेना संभवतः कहीं समीप ही रही होगी। उसकी शक्ति प्रसिद्ध होनेके कारण तुर्क उससे बहुत डरते थे। बाजारमें जौहरियों, गंधियों और कपड़ेवालोंकी दूकानें थीं। आज दिन भी बनारसमें ये रोजगार अच्छे चलते हैं। बनारसमें विपुल पानी होनेका जो उल्लेख आया है वह संभवतः कुओंके अथवा नगरके आस पासके प्रदेशके बारेमें किया गया होगा। खास बनारस तो गंगातट पर ही बसा हुआ है।

इस सफल आक्रमणसे निआल्तगीनके मनमें महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई और अपना एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की कल्पनाएँ उसके मनमें उठने लगीं। उसने अपनी सेनामें तुर्किस्तानके तुर्कोंकी भरती आरंभ कर दी। काजीने इस ओर मसऊदका ध्यान आकृष्ट किया। मसऊदने निआल्तगीनको पदच्युत (बरखास्त) किया और उसे यथासंभव जीवित पकड़ लानेकी आज्ञा एक हिन्दू सेनापतिको दी। अन्तमें निआल्तगीन पराजित हुआ और जाटोंने सिंधु नदीपर उसका पीछा कर उसे मार डाला। इस घटनासे यह देखा जा सकता है कि किस प्रकार प्रबल सेनापति अथवा गुलाम भी शत्रुकी ही भाँति मालिकके लिए कष्टदायक हो जाते हैं।

इस महत्त्वपूर्ण और विश्वसनीय कामके लिए हिन्दू सेनापति और सैनिक नियुक्त किये गये थे। इससे जान पड़ता है कि ग़ज़नीके मुसलमान राजाओं के शासनकालमें हिन्दुओं-

का जिम्मेदारी के काम दिये जाते थे। मुसलमान लेखकोंने भी उनकी वीरताका वर्णन किया है। हिंदू सैनिकोंकी भरती महमूदके राज्यकालमें ही आरंभ हो गयी थी। जयपालने कुछ काल तक २००० सैनिक गजनीमें रखे थे।

इतना अत्याचार करनेवाले अपने शत्रुके यहाँ हिंदुस्तानके हिंदू सैनिकोंका भाड़े के टट्टू बन कर रहना इलियट को भी विचित्रसा जान पड़ा (इलियट भा० २, पृ० ४४६)। यह पहले ही बताया जा चुका है कि हिन्दुओंमें धार्मिक तथा राजनीतिक उदासीनता छा गयी थी। इसे देखते हुए यदि उन्होंने विदेशियोंकी नौकरी कर अपनी राजनिष्ठा और युद्धकौशलसे गौरव प्राप्त किया हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। हिन्दुओंके इस पहिले तथा अन्य सम्मानोंका इलियटने उल्लेख किया है। मसऊदने अपने राज्यारोहणका विरोध करने वाले सरदारोंके विरुद्ध सावंद नामके हिन्दूको नियुक्त किया था। (इस युद्धमें सावंद अपनी सेनाके साथ खेत रहा)। विजय राजाको महमूदने ही सेनापति नियुक्त किया था और मसऊद के बादके सुलतानोंने भी उसे नोकरीपर बुलाया। ऐसे कई उदाहरणोंका इलियट ने उल्लेख किया है (इलियट भा० २, पृ० ६०)। जाटोंने जो निआलतगीनका वध किया वह भी राजनिष्ठा दिखानेके लिए ही था।

निआलतगीनका बनारसका आक्रमण सफल हुआ। इससे इस बातका पता चलता है कि कन्नौजका राज्य कितना कमजोर हो गया था। वह अब साम्राज्य न रह गया था। राज्यपाल मर चुका था और त्रिलोचनपाल गद्दीपर था। त्रलोचनपालके प्रयागके दानपत्रका उल्लेख पहले आ ही चुका है। बनारसकी भाँति सम्भवतः प्रयाग भी गांगेय देवके अधि-

कारमें चला गया था। कलचूरी वंशके इतिहासमें इस बात-का उल्लेख आनेवाला है कि गांगेय देवकी मृत्यु प्रयागमें हुई। त्रिलोचनपालने कितने वर्ष राज्य किया और उसके पश्चात् कौन राजा हुआ यह ज्ञात नहीं है। कोलब्रुक द्वारा प्रसिद्ध किये गये एक खडित शिलालेखमें यशःपाल नामक एक राजाका उल्लेख है (भा० २ पृ० २७८)। इस शिलालेखमें उसके नामके साथ महाराजकी उपाधि है पर सदाकी भाँति 'परमेश्वर' इस उपाधिका प्रयोग नहीं किया गया है। उसने यमुनाके दक्षिण और प्रयागके दक्षिण पश्चिमस्थित कौशांबी मडलमें एक दान-पत्र दिया है। कन्नौजका अवधपर पूर्ण अधिकार था। पर नियाल्तगीनके आक्रमणसे प्रोत्साहित होकर तुर्क अवधमें अधिक अधिक घुसने लगे। मसऊदके भतीजे सालार मस-ऊदके संबंधमें जो एक असंभव कथा कही जाती है उससे इस अनुमानके लिए अवश्य स्थान मिलता है कि तुर्कोंने विशेष-कर अवधमें कई आक्रमण किये होंगे, क्योंकि इस कथाका घटनास्थल अवध प्रान्त है। लोगोंका खयाल है कि उस समय सालार मसऊदने अवधके वर्तमान बाराबकी जिलेके 'सत्रेख' स्थानमें डेरा डाला था और वहींसे उसने अवधके विभिन्न भागोंमें कई आक्रमण किये। लोगोंकी कल्पना है कि अवधके कई जिलोंमें इस साधु पुरुषके स्थान हैं। ये आक्रमण ई० सन् १०३८से १०५० तक हुए। सालारकी कथा बिल्कुल काल्पनिक नहीं है, क्योंकि बदायूँमें मिले हुए (एपि० इडि० २, पृ० ६४) एक राठौर शिलालेखमें कहा गया है कि राठौर राजा मदन-पालने किसी भी अमीरके लिए आक्रमण करना असंभव कर दिया था। (इस शिलालेख के सम्बन्धमें हम दूसरे एक प्रकरणमें विस्तारके साथ विचार करनेवाले हैं।) इस

शिलालेखमें समय नहीं दिया है, जिससे मदनपालका काल निश्चित नहीं किया जा सकता। तिसपर भी हमारे विचारमें निआलतगीन अथवा सालार मसऊदके आक्रमणोंको लक्ष्य कर यह वर्णन किया गया है। हिन्दुस्तानके राजपूत राजाओंको विशेष कर इस पवित्र तीर्थस्थानके आक्रमणोंसे क्रोध आया और मालवाधिपति राजा भोज (ई० सं० १०४०), त्रिपुरके राजा कर्ण कलचूरि और अन्तमें गाहडवाल राजा चन्द्रने तुर्क तथा अन्य विदेशियोंको उत्तर हिन्दुस्तानके बाहर मार भगाया तथा "देशको विदेशियोंके जुलमसे मुक्त किया।" चन्द्रने कन्नौज अधिकृत कर वहाँ अपना प्रबल राज्य स्थापित किया। इस प्रकार प्रतिहारोंका दुर्बल राजवंश ई० सन् १०८० में नष्ट हुआ। इधरके प्रतिहार राजा पूर्व वर्णनानुसार गजनीके मांडलिक बन गये थे। उन्होंने अपने राज्यमें तुरुष्कदंड नामका कर बिठाया था। गाहडवाल भी यह कर वसूल करते थे। पर जान पड़ता है कि उन्होंने वह कर तुर्कोंको नहीं दिया। दान किये गये गावोंमें वह कर जागीरदारको मिलता था।

यह वृत्तान्त आवश्यक होते हुए भी प्रस्तुत विषयसे बाहर है। इसलिए अब हम पुनः गजनी राजाओंके वृत्तान्तका विषय लेते हैं। बैहकीने लिखा है कि एक वर्ष गजनी नदीमें अकस्मात् बाढ़ आयी जिससे शहरका बड़ा नुकसान हुआ। नदीका पुल तक बह गया पर याकूबइलैस और उसके भाईका बनाया हुआ गजनीका किला ज्योंका त्यों बना रहा। गणितके पंडित मसऊदने नदीपर एक ही कमानीका प्रचंड नया पुल बनवाया। उसने कई राजमहल बनवाये और सुन्दर बाग भी लगवाये।

सामर्थ्य, वीरता, विद्वत्ता, प्रजाहित बुद्धि आदि अनेक सद्गुण होते हुए भी मसऊदका शासन असफल रहा। उसे दुर्भाग्यवश अपने राज्यके आधेसे अधिक भागसे हाथ धोना पडा। वैहकी कहता है—"अमीर मसऊदको कमी किस बातकी थी? उसके पास विश्वासी नौकर, अच्छे अधिकारी, नामी योद्धा और प्रसिद्ध विद्वान् थे पर विधाताकी यही इच्छा थी कि उसका शासन कष्टदायक हो और खुरासान, ख्वारिजम, रे तथा जब्बालप्रान्त उसके हाथसे निकल जायँ। इस अमीरने अपनी ओरसे तो प्रयत्नकी पराकाष्ठा की और बड़ी बड़ी सेनाएँ तैयार कीं। भाँति भाँतिकी योजनाओंका विचार करनेमें उसने रातें जाग जाग कर बितायीं पर उसकी हालत बिगडती ही गयी" (इलियट भा० २)। कदाचित् उसका अनिर्बद्ध विचार-स्वातंत्र्य और दूसरोंकी सलाह माननेकी अनिच्छा ही उसके अपकर्षका कारण थी।

महमूदने गलतीसे कुछ सेल्जुकी तुर्कोंको खुरासानमें बसनेकी अनुमति दे दी थी और वहींसे विद्रोहका आरंभ हुआ। मसऊदका ज्येष्ठ पुत्र शाहजादा मौदूद प्रथाके अनुसार खुरासान और बल्खका शासक था। उसीके शासनकालमें सेल्जुकी तुर्कोंने विद्रोह किया। गजनीकी सेना परास्त हुई। आक्सस नदीके उत्तर ओरसे भी इस प्रान्तपर आक्रमण हुआ। उस समय मन्त्रियों और अन्य अधिकारियोंने मसऊदको तुर्कोंपर स्वयं आक्रमण करनेकी सलाह दी। इस सलाहको न मानकर मसऊदने धर्मप्रचारार्थ हिन्दुस्तानपर चढाई कर सतलजके दक्षिणमें वर्तमान हिसार जिलेके हांसीपर घेरा डाला और इस प्रकार पंजाबके पूर्व अपना राज्य बढानेका प्रयत्न किया। यह आक्रमण ई० सन् १०३७ में हुआ। उस

समय उस प्रदेश तथा किले पर किसका अधिकार था यह निश्चित नहीं हुआ है। * हिसार गजेटियर (पृ० १६) में कहा गया है कि हांसीका प्राचीन किला चाहमान विशालदेवके पुत्र अनुराजके अधिकारमें था। अनुराजका पुत्र तेष्टपाल वहाँसे मार भगाया गया। बादमें उसने बूंदीके हाडावंशकी स्थापना की। पर आगे चलकर चाहमानोंके इतिहासमें हम देखेंगे कि इस समय यहाँ चाहमान राजा वाक्पति राज्य कर रहा था और गौरीशंकर ओझाका कहना है कि बूंदीके चाहमान वंशकी उत्पत्ति नड्डलके चाहमान वंशके बारहवें राजा आसराजसे हुई। अस्तु, वहाँके राजाका नाम कुछ भी क्यों न हो इसमें सन्देह नहीं कि वह चाहमान था और वीरतासे लड़ा। बैहकीने इस घेरेका वर्णन इस प्रकार किया है—"बार बार घोर युद्ध होता था। किलेकी सेनाने जी तोड़कर युद्ध किया। विजयी सेनामें (मुसलमानोंमें) गुलाम भी बड़ी वीरतासे लड़े। अन्तमें पाँच स्थानोंपर सुरंग लगायी गयीं और रबीउलऔवलके १० दिन पूर्व सोमवारके दिन किलेकी दीवारें उड़ा दी गयीं। पश्चात् किलेपर चढ़ाई कर वह जीता गया। ब्राह्मणों तथा अन्य प्रमुख लोगोंका वध किया गया और उनकी स्त्रियाँ पकड़ ली गयीं। किलेमें मिला हुआ सारा खजाना सैनिकोंमें बाँट दिया गया। यह किला हिन्दुस्तानके किलोंमें अजेय माना जाता था" (इलियट भा० २, पृ० १४०)।

उपर्युक्त वर्णनसे दो नयी बातें मालूम होती हैं। पहली बात सुरंगकी है। आजकल लोगोंका खयाल है कि उस समय बंदूककी बारूदका आविष्कार नहीं हुआ था। ऐसी अवस्था-

* यह वृत्तान्त कहाँसे लिया गया है यह बताना कठिन है।

में अवश्य ही कोई दूसरा विस्फोटक पदार्थ काममें लाया गया होगा। पर वह कौनसा पदार्थ था यह बताना कठिन है। दूसरी बात ब्राह्मणोंका वध होना है। महमूदकी लड़ाइयों-की क्रूरतामें यह एक कदम आगे बढ़ना था। (उत्बीने अपने विस्तृत वर्णनमें इस घटनाका उल्लेख नहीं किया है, संभव है कि यह उल्लेख गलतीसे रह गया हो।) पंजाबके क्षत्रियों और उत्तर हिन्दुस्तानके चाहमान प्रभृति राजपूतोंके स्वभावमें अन्तर था। इन राजपूतोंने राज्य किया था। दूसरोंके शासनमें रहना ये नहीं जानते थे। इसीलिए हम देखते हैं कि यह किला और उसके आसपासका प्रदेश शीघ्र ही दिल्लीके तोमरोंने तुर्कोंके हाथसे निकाल लिया। फिरिश्ताके कथना-नुसार ई० सन् १०४३ में ये तोमर चाहमानोंके आश्रयमें उन्नति कर रहे थे।

गजनी वापस आने पर मसऊदने अनुभव किया कि हमने बहुत बड़ी गलती कर दी। दक्षिण पूर्वकी ओर अपना राज्य बढ़ानेके प्रयत्नमें वह उत्तर पश्चिमके महत्वपूर्ण प्रान्त खुरा-सानसे हाथ धो बैठा। महमूद ही ऐसा व्यक्ति था जो पूर्व और पश्चिम दोनों ओर राज्यको सम्हाले रहा। सेल्जुकी तुर्कोंने यह देख कर कि मसऊदकी सेना दूर हिंदुस्तानमें युद्धमें फँसी हुई है खुरासान पर आक्रमण कर वह प्रान्त ले लिया। वे अब गजनीपर आक्रमण करनेकी तैयारी कर रहे थे। यह देख कर मसऊद घबड़ा गया। उसने अपने परिवार और खजानेके साथ हिन्दुस्तान चले जानेका निश्चय किया और तदनुसार हुक्म भी जारी किये। इससे उसके सरदार, सेनापति, सैनिक अधिकारी, यहाँ तक कि उसकी माता भी क्रुद्ध हो गयी और उन सबोंने मसऊदके

इस निश्चयका घोर विरोध किया। पर सदाकी भाँति मसऊद-पर इसका कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। उसे उपदेश या सलाह देनेकी किसीको हिम्मत नहीं थी। तमाशा यह कि उस वीर राजाने यह निश्चय ज्योतिषके आधारपर किया था।* (मुहम्मद साहबने अपने धर्ममें यद्यपि ज्योतिष देखनेका तीव्र निषेध किया है तथापि हिन्दुओंकी भाँति तुर्क और अरब-वासियोंको ज्योतिषपर विश्वास था) मसऊदके प्रधान मंत्रीने उसके इस निश्चयका विरोध करते हुए कहला भेजा कि "यदि आप बालबच्चे और खजाना लेकर हिन्दुस्तानमें चले जायँगे तो इसकी खबर शत्रु और मित्र सबको लग जायगी और सबको अपना अधिकार बढ़ानेकी इच्छा होनेसे राज्यपर कोई संकट आये बिना न रहेगा।" इस सन्देशको पाकर उस अभागे मस-ऊदने उत्तर दिया कि "मेरा कहना क्या है, यह इस पागलकी समझमें नहीं आता। मैंने जो कुछ निश्चय किया है वही उचित है। यह मैं मानता हूँ कि तुमने जो लिखा है,वह प्रेम-वश लिखा है, पर तुम शान्त रहो और मेरे आदेशोंका पालन करो, कारण मैं जो कुछ देख रहा हूँ वह तुम नहीं देख सकते।" मसऊदने शहर और किला कोतवाल बू अलीके हवाले किया और कहा कि "पर्याप्त सेना, मन्त्री और युवराज मौदूद ये सब कुछ दूरी पर रहेंगे। कुछ भी हो मैं गरमीमें सब ठीक कर लूँगा। ज्योतिषीने बताया है कि जाड़ा मेरे लिए अनुकूल नहीं है।" कोतवालने प्रार्थना की कि आप बालबच्चों तथा खजाने-को किसी मजबूत किलेमें सुरक्षित रख दीजिये और खुद यहीं ठहरिये, पर सुलतानने उत्तर दिया कि इन्हें मैं अपने साथ ही रखूँगा। ऐसा कह कर उसने हिन्दुस्तानकी यात्रामें सुख

* अल्बेरनी गणित और फलित ज्योतिषका पंडित था।

और शान्ति प्राप्त करनेके हेतु ईश्वरसे प्रार्थना की" (बैहकी, इलियट भा० २, पृ० १६२)।

सुलतानका उद्देश था कि भारतवर्षमें जाकर अपने अनिष्ट ग्रहोंकी शान्ति करें। उस समय भी वहिंड, मार्मिनारा (?) वरशोर और किरिल (?) ये नगर भारतवर्षमें गिने जाते थे। (इलियट भाग २ पृ० १५०)। अस्तु, भारतवर्षके अनिष्ट ग्रहोंने मसऊदका नाश करनेमें कोई कसर नहीं की। मार्गिलनके दर्रेसे (रावलपिंडी और अटकके बीचकी पहाडियोंमें) जाते हुए मुसलमान और हिन्दू विद्रोही गुलामोंने उसे पकड कर कैद किया। उन लोगोंने अंधे मुहम्मदको क़ैदसे मुक्त करके मसऊदको गिरीके किलेमें ले जाकर मार डाला। मसऊदके इस दुःखदायक अन्तसे संभाजीका स्मरण आता है। उसने भी अपने पिताके राज्यका अधिकांश हिस्सा गँवा कर सुदूर कर्नाटकमें केवल एक छोटासा प्रान्त बचा रक्खा था। और जिस प्रकार भारतवर्ष ग़ज़नीके राजाओंका आश्रयस्थान हुआ उसी प्रकार वह भाग राजारामके लिए रक्षाका केन्द्र बन गया। दोनों अत्यत वीर, विद्वान् और धार्मिक होते हुए भी अपने हठसे और सदुपदेशोंकी अवज्ञासे दुःखार्णवमें डूब गये। इन दोनों राजाओंके चरित्रसे स्पष्ट दिखाई देता है कि विपुल सामग्री होते हुए भी अपात्र मनुष्य उसका कुछ भी उपयोग नहीं कर सकते। प्रारम्भमें पर्याप्त साधनोंके अभावमें भी महमूद और शिवाजीने इतनी योग्यता और महानता प्राप्त की परन्तु मसऊद और संभाजी काफी साधन रखते हुए भी मारे गये और उनका राज्य नष्ट हुआ।

हमने मसऊदके शासनकालका इतिहास इसीलिए दिया है कि उसकी तुलनासे महमूदका महत्व स्पष्ट हो जाय। इसके

अतिरिक्त उसके समयमें बनारस और हाँसीके दो महत्वपूर्ण आक्रमण भी हुए *। आगे हम भारत सम्बन्धी घटनाओंका उल्लेख करते हुए ग़ज़नीके दूसरे राजाओंका इतिहास संक्षेपमें दे रहे हैं।

मुहम्मद केवल छः महीने राज्यका उपभोग कर सका। मसऊदका पुत्र मौदूद बड़ी तेज़ीसे बल्ख प्रान्तसे अपने पिताका बदला लेनेके लिए रवाना हुआ। वह बल्ख़का सुबेदार था। उसने अफ़ग़ानिस्तान ले लिया और भारतमें आकर अपने चाचाको परिवार सहित क़ैद कर रक्खा। बादको उनका तथा विद्रोही तुर्की और हिन्दू ग़ुलामोंका वध किया गया। वापस ग़ज़नी जाकर उसने वहाँ नौ वर्ष राज्य किया। उसके पुत्र अयोग्य थे। उसके सामन्तों तथा कर्मचारियोंने उसके एक पुत्र तथा चाचा अलीको भी एक साथ गद्दीपर बिठाया। परन्तु वे दोनों दुर्बल सिद्ध हुए और उनके शासनकालमें बड़ी अव्यवस्था फैली। दो महीनेके बाद वे एक किलेमें भेजे गये और ई० सन् १०५० में महमूदका तीसरा पुत्र अबदुल रशीद गद्दीपर बिठाया गया। ईरान और ख़ुरासानके सेलजुक राजा अलपअर्सलानने ग़ज़नीपर आक्रमण किया, परन्तु महमूदके एक सरदार तुग़ीलने उसका पराजय किया। तुग़ील महमूदका तैयार किया हुआ एक वीर सिपाही था और मुहम्मदने उसे ग़ज़नीकी सेनाका सेनापति नियुक्त किया था। विजयके बाद वापस आकर उसने अबदुल रशीदको मारकर स्वयम् गद्दी

* श्री सर देसाईके ग्रंथमें एक तीसरे आक्रमणका उल्लेख है। उनके अनुसार इस आक्रमणमें उसने काश्मीरमें सरस्वती नदीके किनारेका एक किला ले लिया परन्तु बैहकीने इस आक्रमणका उल्लेख नहीं किया, न तरंगिणीमें इसका नाम मिलता है और काश्मीरमें सरस्वती नामकी नदी भी नहीं है।

ले ली। उसने और भी ग्यारह राजकुमारोंका वध किया और बडी निर्दयतासे शासन किया। चालीस दिनके अत्याचारपूर्ण शासनके बाद एक तुर्की सवारने उसका गद्दीपर ही खून किया।

एक क़िलेके कारावासमें दो राजपुत्र बचे हुए थे। तुग्रीलने उनको भी ख़त्म करनेकी आज्ञा दी थी। परन्तु पहरेदारोंने आज्ञाकी पूर्तिमें एक दिनकी देरी की। इतनेमें तुग्रीलके हत्याका समाचार आगया और उन दो राजपुत्रोंके प्राण बच गये। ये दोनों—फ़रुख़ज़ाद और इब्राहीम—क्रमसे सुलतान हुए। दोनोंने न्यायसे और दयासे शासन किया। इब्राहीम बडा धर्मशील और दयावान् राजा था। उसने कुरानका फ़ारसीमें अनुवाद किया। उसे चालीस पुत्र और छत्तीस कन्याएं थीं। इसलिए राजवंश पुनः हराभरा हो गया। सुलतानने अपनी कन्याओं-का विवाह बडे विद्वानोंसे किया। उनमेंसे एक कन्या प्रसिद्ध ग्रंथकार नासिरीके पितामहसे व्याही गयी थी। इब्राहीम शाहूके समान था। शान्ति से ४० वर्ष राज्य करके वह ई० सन् ११०० में मर गया। उसके पुत्र मसऊदने पितासे भी अधिक न्यायसे और उदारतासे राज्य किया। उसने सब इस्लामी प्रान्तोंके कष्टदायक कर बन्द कर दिये। (और सारे साम्राज्यके) और जावुलिस्तानके कर बिलकुल माफ कर दिये। उसके शासनकालमें उसके हेजिबने भारतवर्षपर धार्मिक आक्रमण (जेहाद) किया और वह गंगा पार करके "ऐसे स्थान तक गया जहाँ तक महमूदके अतिरिक्त कोई जाने नहीं पाया था।" इस आक्रमणके काल तथा स्थलका उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु इससे सालार मसऊदका आक्रमण असंभव सा जान पडता है। क्योंकि महमूद बारीके इस ओर कभी नहीं आया। सत्रह वर्ष राज्य करनेके बाद इस राजाकी ५०६ हिजरीमें

(ई० सन् ११२८) मृत्यु हुई। इससे अनुमान होता है कि अमीर द्वारा अवधका अन्तिम आक्रमण इसीका रहा होगा। और बदायूँके शिलालेखमें जिसका उल्लेख है वह आक्रमण यही होगा।

उसके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र अर्सलान राज्यारूढ़ हुआ परन्तु अर्सलानको उसके छोटे भाई बेहरामने मार भगाया। इस कार्यमें उसके मामा संजर सुलतानने बड़ी सहायता दी। उसने ४१ वर्ष राज्य किया परन्तु उससे कोई सुख प्राप्त नहीं हुआ। भारतके सूबेदारने दो बार विद्रोह किया और सुलतानको दो बार उसपर आक्रमण करना पड़ा, एक बार मुलतानके पास और दूसरी बार सिवालिकके पहाड़ोंमें। अन्तमें उस विद्रोहीका नाश हुआ। गोरी (गोरके) सरदारोंने बेहरामकी अनुपस्थितिमें ग़ज़नीको जला डाला। बेहराम कुछ दिनोंतक भारतवर्षमें रहा और गोरके सरदारोंके ग़ज़नीको छोड़नेपर ग़ज़नी वापस गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र खुसरू हिजरी ५५२ (ई० सन् ११५६)में राजा हुआ। गोरी सरदारोंने ग़जनी राज्यकी नींव हिला दी और खुसरू दुर्बल राजा था इसलिए ग़ौज तुर्कोंके झुंडोंने ग़जनी नगर हस्तगत कर बारह वर्षोंतक अपने अधिकारमें रक्खा। इसके बाद गियासुद्दीन ग़ोरीने उनको मार भगाया। पुरानी प्रथाके अनुसार खुसरू लाहौरमें आकर रहने लगा। उसने पंजाबमें ७ वर्ष तक राज्य किया। उसके पुत्र शांत खुसरूने आगे कुछ वर्षों तक राज्य किया। अन्तमें हिजरी ५८७ (ई० सन् ११६१) में उसे मुहम्मद ग़ोरीने कैद कर लिया। वह और उसका पुत्र 'गियासुद्दीन ग़ोरीकी आज्ञासे ई० सन् १२०६ में मारे गये। इस प्रकार महमूदके वंशका अन्त हुआ।

गज़नीके राजाओंके इतिहाससे स्पष्टतया दिखाई देता है कि अनुत्तरदायी राजशासनको रोकनेवाली राष्ट्रीय भावना प्रजामें न रहनेसे देशकी कैसी भयंकर अवस्था हो जाती है। हर एक देशमें राज्यके उत्तराधिकारियोंके संबंधमें कुछ न कुछ नियम रहते हैं। (पाश्चात्य देशोंमें ये नियम स्पष्ट और व्यवस्थित हो गये हैं) परन्तु पापपुण्यका विचार न करके अनियंत्रित कार्य करनेवाले महत्वाकांक्षी लोगोंको प्रतिबंधमें रखनेके लिए जबतक प्रजामें राष्ट्रीय भावनाका उदय नहीं होता तबतक राजाओंकी तथा राजवंशके राजा होने योग्य सब सदस्योंकी हत्याएँ इस भयंकर तथा प्रचंड प्रमाणमें होती हैं कि राजवंशमें जन्म लेना एक बड़ी भारी आपत्ति हो जाती है। यद्यपि हिन्दू राज्योंमें यह राष्ट्रीय भावना विद्यमान नहीं थी तथापि ऐसी घटनाएँ शायद ही मिलती हैं। हम ऐसा कह सकते हैं कि प्रायः हिंदू स्वभावमें नियमोंका पालन करनेकी इच्छा अधिक तथा क्रूरता कम होती है।

यह पुस्तक यहाँ समाप्त हुई। गज़नीके राजवंशको नष्ट करनेवाले गोरी राजाओंका इतिहास पृथ्वीराजके इतिहासके साथ दिया जायगा। क्योंकि उन्होंने पृथ्वीराजको हराकर हिंदुस्तानको सदाके लिए जीत लिया। यहाँ यह भी ध्यानमें रखना होगा कि ऊपरनिर्दिष्ट आक्रमणके अतिरिक्त भारतपर बहुतसी छोटी मोटी चढ़ाइयाँ साहसी और महत्वाकांक्षी तुर्कोंने की होंगी। यद्यपि उनका उल्लेख मुसलमान इतिहासकारोंने नहीं किया तथापि आगे कई राजपूत राज्योंके इतिहासमें यह बात स्पष्ट रूपसे दिखाई देगी।'

टिप्पणी।

गजनवी राजाओंके सिक्के।

रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल भा. ९ पृ. ६७ तथा भाग १७, पृ. १५७ के मि० टामसके लेखमें निम्नलिखित मनोरंजक बातें मिलती हैं। अपने राज्याभिषेकके स्मरणार्थ गजनीके प्रत्येक राजाने अपने नामके सिक्के जारी किये थे। (हिन्दुस्थानके अधिकांश राजा इस प्रकार सिक्के चलाते थे।) अलपतगीन, सबुक्तगीन और इस्माइलके सिक्के आज भी उपलब्ध हैं जिनसे प्रकट होता है कि वे इसी क्रमसे गजनीके सिंहासन पर बैठे। पर इन सब सिक्कोंपर सामानी बादशाह मनसूर या नूहके नाम भी खुदे हैं जिनसे मालूम होता है कि गजनीके ये राजा सामानी सम्राटोंके मांडलिक थे। महमूद संभवतः हि. ३८९ (ई. स. १०००) में स्वतंत्र हुआ, कारण इसी सालके सिक्कोंमें सामानी राजाका नाम पहले पहल निकाल दिया गया। महमूदके आरंभके सिक्कोंमें उसे सैफुद्दौला कहा गया है। सामानी सम्राट् नूहने हि. ३८४ (ई. स. ९९५) में उसे यह खिताब दिया था। उसके बादके सिक्कोंमें अलअमीर-यमीन-उद्दौलत तथा अमीनउलमिल्लत इस खिताबका उल्लेख है। यह खिताब उसे खलीफ़ाने दिया था। इसके बादके सिक्कोंमें उसे मलिक उलममालिक (राजाओंका राजा) कहा गया है और अन्तमें उसके विख्यात हो जानेपर उपाधिकी कोई आवश्यकता न देखकर सिक्कोंपर केवल महमूद इतना ही खोदा जाने लगा। महमूदने अपने आपको कहीं भी सुलतान या गाजी नहीं कहा है। सुलतानकी उपाधि सर्व प्रथम इब्राहीमके सिक्कोंपर मिलती है (हि. ४५१, ई. स. १०५९)।

महमूदके सिक्के फ़ारसी और संस्कृत दोनों भाषाओंमें खुदे हुए मिले हैं। ये हिन्दुस्थानकी प्रजाके लिए थे। इनमेंसे देवनागरी लिपिकी छाप सुन्दर है और उसे देखनेसे जान पड़ता है कि महमूदके दरबारमें हिन्दू पंडित भी रहे होंगे। उनपर ये शब्द खुदे हैं:—"अव्यक्तमेक महम्मद-अवतार नृपति महमूद।" अर्थात् पैगंबर महम्मदको अव्यक्त बताकर महमूदको उनका अवतार बताया गया है। कुछ सिक्कोंपर केवल "अयं

टव महमूद मनत् ४७२" इतना ही लिखा है। ये सिक्के लाहौरकी टकसालके हैं। लाहौर, निशापुर तथा पश्चिमके और तीन चार स्थानोंमें टकसालें थीं। काबुलमें टकसाल नहीं थी।

गजनीके राजाओंने अपने सिक्कोंमें काबुलके शाही राजा सामन्तदेवके सिक्कोंका अनुकरण किया है। उनमें एक ओर एक करवट बैठा हुआ नंदी (बैल) दिखलाया है और दूसरी ओर घुड़सवारका चित्र तथा महमूद या मसऊदका नाम खुदा है। मौदूदके तथा इब्राहीमके हि० ४३२ (ई० सन् १०४१) के सिक्कोंपर भी नन्दी खुदा है। सबुक्तगीन तथा महमूदके सिक्कोंका वजन काबुलके हिन्दू राजाओंके 'चाँदी' के वजनके बराबर है। शाही ब्राह्मण राजाओंके सिक्के (दिरहम द्रम्म) चाँदीके थे। गजनी और निशापूरकी टकसालोंके सिक्के (दीनार) सोनेके थे। हिन्दू तथा मुसलमान राजाओंके ताँबेके तथा चाँदीके छोटे सिक्के भी चलते थे।

परिशिष्ट ।

हिन्दुओंकी मूर्त्ति पूजा ।

सोमनाथकी मूर्तिका तोड़ा जाना तथा वहाँकी लूटकी कथासे उपयुक्त विषय पर जो विचार मनमें आये उन्हें यहाँ परिशिष्ट रूपमें हम दे रहे हैं–गिबनने रोम साम्राज्यके इतिहासमें मूर्तिपूजा सम्बन्धी अपने विचार इतिहास क्रमको रोक कर स्थान स्थान पर दिये हैं, वैसा हमने नहीं किया है।

हिन्दुस्थानमें दशवीं शताब्दीके अन्तमें मूर्तिपूजाके सम्बन्धमें लोगोंका अन्धविश्वास बहुत बढ़ा और इस्लाम धर्मावलम्बियोंको इससे लाभ उठानेका मौका मिला। ऐसा कहा जा सकता है कि इस अन्धविश्वासके सम्बन्धमें हिन्दुओंकी आँखें खोलनेके लिए ही महमूदके मूर्तिभंजक आक्रमण हुए पर दुर्भाग्यसे कहना पड़ता है कि इन आक्रमणोंसे हिंदुओंने अब तक कोई शिक्षा नहीं ली है।

हम यहाँ इस धार्मिक प्रश्नपर विचार न करेंगे कि मूर्तिपूजा वेद विहित अथवा बुद्धिसाध्य है या नहीं। आज हिन्दूधर्ममें मूर्तिपूजा नि:स

न्देह मान्य है और ऐसा कहा जा सकता है कि ईश्वर-प्रणिधानकी दृष्टिसे यह मानना उचित भी है। पर इससे मनुष्यके मनमें कुछ भ्रामक विचार दृढ़ होने लगते हैं, विशेषतः वह यह विश्वास कर बैठता है कि मूर्तिहीमें उस देवता विशेषकी शक्ति है। यह बात केवल हिन्दुओंकी ही नहीं है। प्राचीन कालसे आजतक जहाँ जहाँ मूर्तिपूजा प्रचलित रही है वहाँ वहाँ यही बात रही। बौद्ध धर्म आरंभमें ईश्वरके अस्तित्वकेही सबंधमें मूक था पर बादमें उसमें मूर्तिपूजाका भयंकर प्रचार हुआ और चारों ओर बुद्धकी ही मूर्तियां पूजी जाने लगीं। हमे यह देख कर आश्चर्य होता है कि ह्युएनत्संग इतना बड़ा विद्वान् और तत्वज्ञानी होते हुए भी यह मानता था कि बुद्धके शरीराव-शेष या बुद्धकी मूर्तिमें अलौकिक सामर्थ्य है। हिन्दुओंमें मूर्तिपूजा पहलेसे-ही थोड़ी बहुत प्रचलित थी और बौद्ध धर्मके उच्छेदके बाद वह और भी बढ़ी। इस समय मूर्तिकी पवित्रता और उसके अद्भुत सामर्थ्यकी कल्पना यहां तक बढ़ी कि कन्नौजके प्रतिहार सम्राट् मुलतान लेनेमें समर्थ होते हुए भी वे जब जब उसे लेनेके लिए जाते तब तब वहाँके मुसलमान अधिकारी उन्हें यह धमकी दे कर कि "यदि तुम आगे बढ़ोगे तो हम यहाँकी सूर्यकी प्रसिद्ध मूर्ति तोड़ डालेंगे" उन्हें पीछे हटाते थे (भा०२)। पश्चिममें रोम तथा ग्रीसके लोग तत्वज्ञानमें दूसरे लोगोंसे अग्रसर होते हुए भी कुछ मूर्तियोंके अद्भुत सामर्थ्यपर विश्वास करते थे। ईसाई धर्ममें आरंभमें निराकार ईश्वरका उपदेश किया गया और रोमके तथा ग्रीसके मूर्तिपूजक लोगोंमें इसका तभी प्रचार हुआ जब यह प्रमाणित कर दिया गया कि मूर्तियोंमें कुछ भी सामर्थ्य नहीं है। मूर्तियोंका अपमान करनेवाले महमूदके नाशार्थ सोमनाथके पुजारियोंने जिस प्रकार गिड़गिड़ा कर मूर्तिसे प्रार्थना की थी उसका वृत्तान्त पढ़कर हमें गिबनके एक ऐसे ही वर्णनका स्मरण हो आता है। सोमनाथके पतनके छःसौ वर्ष पूर्व अलेक्जेंड्रिया नगरमें एक बिलकुल ऐसी ही घटना हुई थी। ३८९ ई० सन्में थिओडोसियस बादशाहकी आज्ञासे अलेक्जेंड्रियाकी सिरैपिसकी मूर्ति तोड़ी गयी। उस घटनाका वर्णन करते हुए गिबन लिखता है—"लोगोंका विश्वास था कि सिरैपिस देवताकी मूर्ति अलेक्जें-ड्रिया नगरकी विशेष रूपसे रक्षा करती है और इसीलिये यह नगर सिरै

पिसका नगर कहलानेमें गौरव मानता था। उसका मन्दिर रोमके कैपिटालकी इमारतसे भी विशाल और वैभवशाली था। सौ फुट ऊँचे एक चबूतरे पर यह मन्दिर बना था। थिओडोशियस बादशाहने सब जगह मूर्तिपूजकों के यज्ञ बन्द करवा दिये तो भी सिरैपिसके नगर और मन्दिरमें ये होते ही रहे क्योंकि ईसाइयोंमें भी यह अंधविश्वास था कि इनके बन्द होने पर नाइल नदीमें बाढ़ न आयेगी, मिस्रमें फसल न होगी और राजधानी कौंस्टेंटिनोपुल को अन्न न मिलेगा। पर अन्तमें बादशाहने सिरैपिसका मन्दिर और मूर्ति तोड़नेकी कड़ी आज्ञा दी। सिरैपिसकी भव्यमूर्ति विभिन्न धातुओंके अनेक पत्रोंसे बनी थी। वह इतनी विशाल थी कि गर्भ-गृहकी दोनों दीवारों तक पहुँच गयी थी। मूर्तिके दाहिने हाथमें राक्षस रूपी सर्पका सिर और धड़ था जिसकी पूँछके तीन छोरोंपर कुत्ता, सिंह और भेड़ियेके सिर थे। लोगोंको विश्वास था कि इस मूर्तिका अपमान करनेके लिए यदि कोई हाथ भी उठायेगा तो आकाश पाताल एक हो जायँगे और प्रलय हो जायगा। अस्तु, एक साहसी सिपाही हाथमें कुल्हाड़ा लेकर सीढ़ीके सहारे मूर्तिपर चढ़ गया। ईसाई लोग भी मूर्तिके इस अपमानके भयंकर परिणामके डरसे घबड़ा गये। उस सिपाहीने सिरैपिसकी मूर्तिके गालपर जोरका प्रहार किया और वह टूट कर नीचे आ गिरा पर पृथ्वी और आकाशमें कुछ भी गड़बड़ न हुई, वे पूर्ववत् शांत तथा निश्चल रहे। कुछ भी न होते देख कर सिपाहीका उत्साह बढ़ा और उसने जोशमें आकर मूर्तिपर और कई प्रहार किये। उसने मूर्तिके टुकड़े टुकड़े कर डाले और उनका अपमान करते हुए अलेक्ज़ैंड्रिया नगरके बाहर खींच ले गया। यद्यपि इस वर्ष बाढ़ आनेमें कुछ विलम्ब हुआ तथापि नाइल नदीमें बाढ़ अवश्य आयी जिससे मिस्रकी समतल भूमिमें अच्छी फसल हुई और भविष्यवक्ताओंकी भयंकर भविष्य वाणी झूठी सिद्ध हुई। अलेज़ैंड्रियाकी रक्षा करने वाली मूर्तिमें कोई सामर्थ्य न देखकर बहुतसे लोग ईसाई हुए।"

यहाँ गिबनने दिखाया है कि मूर्तियोंके अलौकिक सामर्थ्यपर धर्म की सत्यासत्यता मानना किस प्रकार अनुचित है। मूर्तियाँ धातु, पत्थर या लकड़ीकी ही बनती हैं, उनमें कोई अद्भुत शक्ति होना संभव नहीं

है, यह शक्ति हमारी भक्तिमें ही होती है। अस्तु, बौद्ध धर्मकी तरह ईसाई धर्ममें भी बादमें वह अन्धविश्वास घुसा जिसका उसने आरंभमें विरोध किया था और जीसस तथा मेरीकी मूर्तियाँ पूजी जाने लगीं। फिर इसके विरोधके लिए इस्लाम धर्मका उदय हुआ। यह कहा जा सकता है कि मूर्तियोंके संबंधमें ऐसे अन्ध विचारोंको ही दूर करनेके लिए महमूदके आक्रमण हुए। इन आक्रमणोंसे एक दूसरी गलतफहमी भी दूर हुई। इन आक्रमणोंने लोगोंको दिखा दिया कि मन्दिरों या मूर्तियोंपर बहुत अधिक सोना और जवाहिरात लादना पागलपन है क्योंकि इससे मूर्ति भंजकोंके धार्मिक उत्साहको द्रव्य-प्राप्तिका लोभ द्विगुणित करता है। केवल सोनेकी मूर्तिमें कौनसा विशेष गुण है या उसपर अमूल्य रत्न चढ़ानेमें कौनसा पुण्य होता है? केवल सोनेकी पाँच हाथ ऊँची मूर्ति ईश्वर-प्रणिधानमें अधिक सहायक नहीं होती। हिन्दू धर्मके प्राचीन आचार्य छोटे छोटे विभिन्न पत्थरोंको, उनके स्वाभाविक रूपमें, शिव, विष्णु, गणेश तथा सूर्यके प्रतीक मान लेते थे और वैदिक ऋषि तो प्रत्यक्ष सूर्य और वायुकी ही उपासना करते थे। पर स्वभाव गुणसे मनुष्यको सुंदर मूर्तियाँ बनाना अच्छा लगता है और उन्हें बहुमूल्य रत्न पहनानेकी प्रवृत्ति होती है। शिवकी पूजामें लिंग पूजा, अर्थात् किसी स्वाभाविक आकृतिके पत्थरकी पूजा, ही श्रेष्ठ मानी गयी है पर वहाँ भी वैभवशाली राजा स्वयंभूलिंगको रत्नजडित स्वर्णमुकुट पहनाते हैं और मूर्ति भंजक मुसलमानोंके ही नहीं हिन्दू चोरों, भावी लोभी राजाओं यहाँ तक कि पुजारियोंके मनमें भी लोभ उत्पन्न कर उन्हें देवताका अपमान करनेमें प्रवृत्त करते हैं। हिन्दुस्थानके इतिहासमें नये मन्दिर बनवा कर उन्हें बड़े बड़े दान देनेके अनेक उदाहरण मिलेंगे। विशेषतः मथुरा, कोट काँगड़ा, सोमनाथ, उज्जैन आदि तीर्थस्थानोंमें सैकड़ों राजाओं तथा हज़ारों धनी व्यापारियोंके दानोंसे अपार संपत्ति एकत्र हो गयी थी। इतिहासकार तथा शासनशास्त्रके पंडित कह सकते हैं कि इस संपत्तिका उपयोग राजाओंको प्रबल सेना रखनेमें तथा धनिकोंको समाजकी स्थिति सुधारनेमें करना चाहिये था पर उस ओर ध्यान न दिया गया और मूर्ति-

योंपर तथा मन्दिरोंमें अगणित संपत्ति जमा हो गयी जिससे दोनों तरहसे देशका पतन हुआ। एक ओर विदेशी विजेताओंमें लोभ उत्पन्न होकर उनका आर्थिक सामर्थ्य बढ़ा और दूसरी ओर हमारे राजाओं तथा जनताकी वरोधशक्ति कम हो गयी। इन दो बातोंकी ओर हिंदुओंका जितना ध्यान जाना चाहिये उतना अब भी नहीं गया है, मूर्तिपूजा छोड़ना आवश्यक नहीं है, पर मूर्तिविशेषमें अद्भुत शक्ति होनेका अन्धविश्वास नष्ट कर इस विचारको दृढ़ करनेकी आवश्यकता है कि यह अद्भुत शक्ति मूर्तिमें नहीं, हमारी भावनामें है। इसी प्रकार इस धारणाका नष्ट होना भी आवश्यक है कि मन्दिरमें या मूर्तिपर अधिक द्रव्य चढ़ानेसे अधिक पुण्य मिलता है क्योंकि इस द्रव्यके कारण महन्त और पुजारी प्रलोभित होते हैं और देवताका अपमान करनेकी मूर्तिभंजकोंकी इच्छा द्विगुणित होती है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मनुष्य-स्वभाव मनुष्यमात्रसे एक ही तरहका काम करवाता है। इसी स्वभाव-दोषसे मन्दिरोंको लूटनेवाले मूर्तिभंजक महमूदको भी गजनीमें आलीशान मसजिद बनवाकर लूटमें मिले हुए हीरे जवाहिरातोंसे उसकी दीवारें सजानेकी इच्छा हुई और उसने भावीविजेताओंके लिए उसी लोभकी सामग्री तैयार कर रखी जिस लोभसे वह स्वयं हिंदुस्तानके आक्रमणोंमें प्रवृत्त हुआ था। ऐतिहासिक लेखकोंसे मालूम होता है कि चीनके मूर्तिपूजकोंकी बड़ी बड़ी टोलियोंने संपत्तिके लोभसे ही इस मसजिदको नष्ट किया। चंगेजखांने बुखाराकी जामा मसजिद नष्ट भ्रष्ट की जिसका वर्णन जूवैनीके जहांकुशा ग्रंथमें मिलता है। (इलियट भा० २, पृ० ३८८)। उसके इस आक्रमणका वर्णन बुखारासे भागकर आये हुए एक मुसलमानने एक ही छोटे पर अर्थपूर्ण वाक्यमें इस प्रकार किया है—"मुगल आये और खोदकर, जलाकर, कतलकर, लूटकर लौट गये।" जलालुद्दीनका पीछा कर ६१८ हि० (ई० सन् १२२६) में लौटते हुए इसी चंगेजखांने गजनीपर आक्रमण किया। उसने सब अधिवासियोंको बाहर निकाला, उनकी गिनती की और कारीगरोंको छोड़ शेष सबको कतल करनेकी आज्ञा दी। उसने नगर ध्वस्त किया और ओगताई वंशियोंकी लाशें दफना कर हिरातकी ओर चला गया। (इ० भा० २,

पृ० ३९०) दूसरे एक उद्धरणमें यह भी कहा गया है कि ओगताई वंशियोंने चार महीने तक घेरा डालनेके बाद गजनी नगर आक्रमण करके ले लिया और उसे पूर्णरूपसे खोद तथा ध्वस्त कर जला दिया। लगभग दो लाख आदमी कत्ल किये गये - (ई० २, पृ० ५६९)

प्रसिद्ध घटनावली।

ई० सन्	
७१२	सिंध प्रान्तका उच्छेद।
९०३	इसमाइल प्रथम, बुखाराका सामानी बादशाह।
९०३–१०१५	सामानी साम्राज्य।
९१२	याकूब इलैस कासारका हिन्दुस्थानान्तर्गत गजनीपर प्रथम आक्रमण।
९४३	तुर्की गुलाम सामानी राजाओंके संरक्षक बनाये जाने लगे।
९५९	मनसूर सामानी बादशाह हुआ और तुर्की गुलाम सरदार बन कर छोटे छोटे राज्य स्थापित करने लगे।
९६७	३० सितम्बर } महमूदका जन्म (इस सम्बन्धमें मतभेद है।)
९७१	२ अक्तूबर }
९७७–९९७	सबुक्तगीन।
९८०	सबुक्तगीनका वहिंद तथा काबुलके राजा जयपाल पर आक्रमण।
९८६–१००१	बादशाह द्वितीय नूह।
१००१	महमूदका पेशावरके मैदानमें जयपाल राजापर आक्रमण।
१००४	,, भाटियापर आक्रमण।
१००८	,, आनन्दपाल और हिंदू राजाओंकी संयुक्त सेना से युद्ध।
१००९	,, नगर कोटका आक्रमण।

१०१३	महमूदका त्रिलोचनपालसे अन्तिम युद्ध।
१०१४	„ थानेश्वरका युद्ध।
१०१८	„ मथुरा तथा कन्नौजका आक्रमण।
१०१९	„ कन्नौजपर पुनः आक्रमण।
१०२१	„ राहिब नदीका युद्ध।
१०२२	„ स्वात आदि स्थानोंपर आक्रमण।
१०२३	„ कालंजरका आक्रमण।
१०२५	„ सोमनाथका आक्रमण।
१०२९	महमूदकी मृत्यु।
१०३०	अलबेरुनीने अपना ग्रंथ समाप्त किया।

९१०–९४०	राजशेखर कवि।
९५०–१०००	धंग राजा।
९६०–१००१	जयपाल।
१००१–१००९	आनन्दपाल।
१०१०	भोजराजा मालवाकी गद्दीपर बैठा।
१००९–१०२१	त्रिलोचनपाल।
१०२१–१०२६	भीम।
१०३०	गाँगेय देव (चेदिका राजा)

सातवीं पुस्तक।

तीसरे हिन्दू राज्य।

पहला प्रकरण ।

साँभर और अजमेरके चाहमान ।

सांभरके चाहमानोंका राजकुल पिछले काल-विभागके विख्यात राजपूत राजकुलोंमेंसे एक था। इस काल विभागमें भी वह उर्जित अवस्थामें रहा । बल्कि इस काल-विभागमें ही उनका वैभव बढा। हमने अपनी चौथी पुस्तकके तीसरे प्रकरणमें इनके अभ्युदयका इतिहास दिया है। सांभरमें अथवा सपादलक्षमें राज्य-स्थापन करनेवाले इस राजकुलका मूल पुरुष सामन्त था। 'सपादलक्ष' का अर्थ है सवालक्ष गाँवोंवाला प्रान्त। सामन्तने उन अरब मुसलमानोंका बडे जोरोंसे प्रतिकार किया था जिन्होंने सिंधपर चढाइयां की थीं। यही सामन्तकी विख्यातिका कारण था । उस राजकुलका अंतिम पुरुष पृथ्वीराज था। पर सामन्तसे लगाकर पृथ्वीराजतक इस कुलके प्रत्येक चाहमान राजाको मुसलमानोंसे निरन्तर युद्ध करना पड़ा था । और इस युद्धमें वे बड़े उत्साह एवं दृढताके साथ लड़े। दूसरे भागमें सामन्तके उत्तराधिकारी गूवक राजासे लेकर, जिसका संवत् १०३० (ईसवी ६७३) का हर्ष शिलालेख प्राप्त हुआ है, दुर्लभतककी वंशावली भी दी है। इस विभागमें हम दुर्लभसे लेकर चाहमान वंशके अंतिम राजा पृथ्वीराज तककी वंशावली देते हैं। कविराज श्यामल दासने बंगालकी रा० ए० सो० के जरनलमें बिजोलिया शिलालेखसे उद्धृत कर यह वंशावली प्रकाशित की है। इसपर कील्हार्नने ए० ई० भाग ८ में और रायबहादुर गौरीशंकर ओझाने टॉड

राजस्थानके हिन्दी संस्करण (पृष्ठ ३६४) में इसकी चर्चा की है। टॉडके सुप्रसिद्ध ग्रन्थके लिखे जानेके बाद कई ऐसे लेख उपलब्ध हुए हैं जिनपर विचार करते हुए विद्वान् लोग इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि पृथ्वीराजरासो नामक काव्यको इतिहासकी दृष्टिसे कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। अतः टॉड साहबने मुख्यतया पृथ्वीराजरासोके आधारपर चाहमान राजाओंकी जो वंशावली तथा संवत् दिये हैं, उनका कोई महत्व नहीं रह जाता। इसलिए विश्वसनीय वंशावलियों तथा तारीखोंके लिए हमें शिलालेखोंका ही आश्रय लेना आवश्यक है। भिन्न भिन्न राजाओंके शासनकालका निश्चय हमें हिसाब लगा कर ही करना चाहिए। राजपूताना गॅजेटियर भाग ३ (पृष्ठ ६५) में चाहमानोंकी जो वंशावली दी है वह भी इसी बिजोलियाके शिलालेखके आधार पर दी गयी है। पर हमारे मतसे उसमें ऐसी बहुत थोडी गलतियाँ हैं जिनको दुरुस्त करनेकी आवश्यकता हो। दुर्लभसे लेकर पृथ्वीराज तकके राजाओंकी जो वंशावली हम अपने मतानुसार ठीक समझते हैं उसे पहले देते हैं। इसके बाद वह वंशावली उद्धृत करते हैं जो राजपूताना गजेटियरमें दी गयी है। साथही उन विचारोंको भी निर्दिष्ट किये देते हैं जो पं० गौरीशंकर ओझाने तदंतर्गत भिन्न भिन्न राजाओंके विषयमें प्रकट किये हैं।

बिजोलिया शिलालेख — **राजपूताना गजेटियरके अनुसार**

बिजोलिया शिलालेख

१ दुर्लभ इ० स० १७७
२ गोविन्द रा० ९८८
३ वाक्पति (रा १००३) — ४ वीर्यराम
५ श्रीचन्द (रा १०३३)
गोपेन्द्र — ७ विग्रहराज उर्फ वीसल ३ रा (रा. १०६३) = राजदेवी
८ पृथ्वीराज १ ला (रा. १०७८)
९ अजयदेव (रा. १०९३) = सोमलयदेवी
१० अर्णोराज अथवा आना
जगदेव — ११ विग्रहपाल वीसल ४ था — १३ सोमेश्वर ई० ११६९ इ. स
१२ पृथ्वीभट्ट २ रा ले. ११६३ ई
१४ पृथ्वीराज ३ रा. रा. ११६९ शहाबुद्दीनके साथ युद्धमें ११९२ में मर गया

राजपूताना गजेटियरके अनुसार

१ दुर्लभ
२ गोविन्द
३ वाक्पति
४ विजयराम
५ दुर्लभ — ६ विग्रह
७ पृथ्वीराज
८ अजयपाल
९ अर्णोराज पुत्र अथवा पौत्र
१० वीसल (विग्रह)
११ पृथ्वीराज — १२ सोमेश्वर
१३ पृथ्वीराज

तीसरे तथा अन्तिम पृथ्वीराजपर हम स्वतन्त्र प्रकरण लिखेंगे। शहाबुद्दीन गोरीके साथ उसने जो युद्ध किया उसमें

केवल उत्तर भारतका ही नहीं बल्कि समस्त भारतका पराजय हुआ था, इसलिए उसका विस्तृत वर्णन देना आवश्यक है। उसके राज्यतिलकका समय सन् ११६६ माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। इस विषयकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे। दुर्लभके राज्यका आरम्भ सन् ९७३ में हुआ होगा। तबसे तीसरे पृथ्वी राजके राज्यारंभ अर्थात् सन् ११६९ तक १८६ वर्षमें तेरह राजा हो गये। प्रत्येक राजाका राज्यकाल औसत १५ वर्ष होता है। पाठकोंको स्मरण होगा कि चाहमानोंकी वंशावलीके पिछले हिस्सेमें भिन्न भिन्न राजाओंके राज्यकालका निश्चय करते समय हमने ओसत १५ वर्षका ही हिसाब लगाया था।

दुर्लभराज अपने पूर्वगामी राजा विग्रहराजका भाई था, ऐसा हर्ष-शिलालेखमें उल्लेख है। विग्रहराज सचमुच एक लोक-विख्यात राजा था। पृथ्वीराजरासोमें इसके विषयमें एक ऊट-पटांग कथा दी गयी है। उसमें कहा गया है कि यह वीसल राक्षस था और उसने अजमेरका उच्छेद किया था। उसमें वर्णित धुंडा दानवको ही यदि विग्रहराज कहें तो यह प्रकरण मान्य हो सकता है। किन्तु जैसा हम पहले कह चुके हैं तीसरे पृथ्वीराजके पूर्वजोंके विषयमें रासोमें जो कुछ कहा गया है उसे ऐतिहासिक महत्व नहीं दिया जा सकता। इसलिए विजोलियाके शिलालेखमें जिन राजाओंका उल्लेख है उन्हें पृथ्वीराजरासोमें ढूँढनेका प्रयत्न करना भी निरर्थक है। कथामें यह भी कहा गया है कि धुंडादानव पृथ्वीराजके ३००वर्ष पहले हुआ। उसके सारंगदेव नामक एक लड़का भी था। सारंग देवका नाम शिलालेखमें दी गयी वंशावलीमें नहीं पाया जाता। रासोमें कहा गया है कि सारंगदेवके अर्णोराज नामक एक लड़का था। किन्तु शिलालेखसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि

अर्णोराज दूसरे वीसलका अथवा तीसरे विग्रहका पोता था। विग्रह सम्भवतः सन् १०६३ में राज्यारुढ हुआ होगा। इससे स्पष्ट है कि वह तीसरे पृथ्वीराजके केवल १०० वर्ष पहले ही हुआ। अतः यदि रासोमें कही गयी बातोंका ख्याल न किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि वाक्पति सन् १००३ से साँभरका राजा हुआ। अतएव वह महमूद गजनवीका समकालीन रहा होगा। पर उसके जीवनकालमें महमूदके तुर्कोंके साथ चाहमानोंका युद्ध हुआ हो, ऐसा नहीं जान पड़ता, क्योंकि महमूद अजमेर-तक कभी आया ही नहीं। सन् १००० में अजमेर चाहमानोंकी राजधानी भी नहीं था। सबुक्तगीन अथवा महमूदका विरोध करनेके लिए एकत्र हुए राजाओंमें फरिश्ताने अजमेरके राजाका भी शामिल होना लिखा है, पर मालूम होता है उसकी यह अपनी कल्पना मात्र है। शहाबुद्दीन गोरीके समय अजमेरके राजाओंकी काफी प्रसिद्धि हो गयी थी, यह देखकर उसने पीछे लौटकर महमूदके समयके विषयमें भी उनकी प्रसिद्धिका अनुमान कर एक काल्पनिक बात कह डाली। इसके बाद बिजोलिया शिलालेखके श्रीचंद्रके बदले पंडित गौरीशंकर ओझाने चामुण्डका नाम देकर कहा है कि उसने (हम्मीर काव्यके वर्णनके अनुसार) मारवाडमें—स्थान पर विष्णुका देवालय बनवाया। इधर कीलहार्नने सिंहट ओर दूसल इन दो भिन्न भिन्न राजाओंके नामका उल्लेख किया है (देखिए ए. इ. ८, परिशिष्ट)। पण्डित गौरीशंकरने एक आख्यायिका दी है जिसके अनुसार पहले पृथ्वीराजने रणथम्भोरके जैन देवालयको एक सुवर्ण-कुम्भ अर्पण किया। उसके लडके अजयदेवने अजमेरका किला बनवाया। कहा जाता है कि ग्यारहवीं सदीके

अतमें उसने वर्तमान अजमेर शहर वसाया और अपनी राजधानी साँभरसे हटाकर अजमेरमें स्थापित की। उसके तथा उसकी रानी सोमला देवीके नामसे ढाली गयी मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं (ई० एँ० १६१२)। इससे प्रतीत होता है कि वह वैभवशाली रहा होगा। उसका पुत्र अर्णोराज अथवा आना उससे भी अधिक वैभवशाली था। उसने एक बड़ा भारी बाँध बनवा कर अजमेरका आनासागर तालाब बनवाया और इस तरह "मुसलमानोंकी चढाईसे अपवित्र हुए स्थानको शुद्ध किया"। (पृथ्वीराजविजय नामक काव्यमें वर्णित यह कथा बहुत करके कवि कल्पना ही होगी। पर संभव है इसके राजत्वकालमें मुसलमानोंने अजमेरपर चढ़ाई की हो) हर विलास शारदाने इसके शासन कालको ई० सन् ११२५ से ११५० तक बताया है।* हिसाब लगाकर हमने वंशावलीमें जो समय दिया है उसमें और इसमें विशेष अन्तर नहीं है। पण्डित गौरीशंकर कहते हैं कि गुजरातके कुमारपालने संवत् १२०७ अर्थात् ११५० ईसवीमें अर्णोराजके शासनकालमें अजमेरपर चढाई की थी। श्री हरविलास शारदाने इंडियन एँटिक्वेरीमें सन् १६०२ में लिखे अपने निबन्धमें बताया है कि अर्णोराजने गुजरातके कुमारपालके साथ दो बार युद्ध किया—एक बार संवत् १२०२ में और दूसरी बार १२०७ में। (इस वर्ष कुमारपालने अर्णोराजके साथ विवाहित अपनी बहनका, अर्णोराज द्वारा किये गये, अपमानका बदला लेनेके लिए अजमेरपर चढाई की थी।) अर्णोराजके दूसरे लड़के वीसलदेव अर्थात्

*समझ में नहीं आता कि श्री शारदा ने अन्यत्र अजयपालके शासनकालका समय सन् ११६५ से ११७५ कैसे दिया है। शायद इन अंकोंके छापनेमें कुछ गलती हो गयी है।

चौथे विग्रहराजने अपने ज्येष्ठ भाई जगदेवको अलग कर राज्यपर अधिकार कर लिया। जगदेवने आनाका खून किया था, इसीलिए शायद उसे पितृघाती समझ कर राज्यपर आरूढ़ नहीं होने दिया गया। वीसलदेव आनासे भी अधिक प्रसिद्ध राजा हुआ। दिल्लीमें (अशोकका ?) जो लोहस्तम्भ है, उसपर उसने अपना एक लेख खुदवाया। उसमें उसके पराक्रमका उत्कट वर्णन दिया गया है*। "जब यह यात्राको निकला तब विन्ध्याचलसे लगाकर हिमाचलके बीच जिन जिन राजाओंने इसे रोका उन सबको इसने जीत लिया और जो नरेन्द्र इसके सामने झुक गये उन पर इसने अनुग्रह किया। मुसलमानोंको कतल करके आर्यावर्तको सचमुच आर्यावर्त अर्थात् आर्योंका निवासस्थान बना दिया। वह अपने वंशजोंको यह आज्ञमय उपदेश करता है कि हमने विन्ध्य और हिमाचलके बीचके राजाओंको जीत कर उनको अपना करद सामन्त बना लिया है, अब शेष पृथ्वी जीतनेमें तुम अपने मनको उद्योग-शून्य न होने देना।" उसने अपने राज्यका शासन बड़े उत्साह-पूर्वक किया और

*आविन्ध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसंगात् ।
उद्ग्रीवेषु प्रहर्ता नृपतिषु विनमत् कन्धरेषु प्रसन्नः ॥
आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छ विच्छेदनाभिः ।
देवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसलो क्षोणिपालः ॥
ब्रूते सम्प्रति चाहमानतिलकः शाकम्भरी-भूपतिः ।
श्रीमद् विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मजान् ॥
अस्माभिः करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः ।
शेषस्वीकरणाय मास्तु भवतामुद्योगशून्यं मनः ॥
(इ. ऐ. १९ पृष्ठ २१८)

उसे बड़े बड़े काम करनेकी खूब महत्वाकांक्षा थी, ऐसा मालूम होता है। हम पहले ही कह आये हैं कि पञ्जाबको जीत कर उसे अपने राज्यमें मिला लेनेके बाद मुसलमानोंने उत्तर भारत पर अनेक चढाइयाँ करके कई स्थानोंपर अपने थाने कायम कर दिये थे। वीसलदेवने इन मुसलमानोंको पञ्जाबमें भी मार भगाया और आर्यावर्तके नामको एक बार फिर सार्थक कर दिया। बिजोलियाके लेखमें जो यह उल्लेख है कि वीसल देवने दिल्लीको जीत लिया था, इस विषयमें विद्वानोंको जरा सन्देह है। पर उपर्युक्त अशोकस्तम्भ परके लेखसे इस सन्देहका निवारण हो जाता है। बिजोलियाके शिलालेखमें एक श्लोक है—"प्रतोल्यांच वलभ्यां च येन विश्रामितं यशः। ढिल्लिकाग्रहणश्रान्तमाशिकालाभलम्भितम् ॥" इसका ठीक ठीक अर्थ लगाना कठिन है। निःसन्देह 'प्रतोली' और 'वलभी' तथा 'ढिल्लिका' और 'आशिका' ये द्व्यर्थी शब्द हैं। (इनसे इन नामोंके शहरों और मकानके भिन्न भिन्न हिस्सोंका बोध होता है) पर इससे यह बात जरूर स्पष्ट प्रकट होती है कि दिल्ली जीतनेमें वीसलदेवको बड़ा प्रयास करना पड़ा। जिज्ञासु पाठकोंके लिए बिजोलिया लेख और लोहस्तम्भ परका लेख दोनों मूल रूपमें परिशिष्टमें दे दिये गये हैं।

वैकुन्त, जाबालिपुर, पल्ली और दिल्लीका विजेता (बिजोलिया शिलालेख) वीसलदेव जिस प्रकार एक विख्यात योद्धा था, उसी प्रकार अजरामर कीर्ति सम्पादन करनेवाले धारके भोजराजके समान वह स्वयं कवि और कवियोंका आदर करनेवाला भी था। हालहीमें अजमेरमें दो शिलाएँ मिली हैं, जिनमेंसे एकपर स्वयं वीसलदेव द्वारा रचित नाटक और दूसरीपर उसके दरबारके एक कविका लिखा नाटक खुदा

हुआ है। वीसलदेवके नाटकका नाम हरकेलि है। उसका कथानक प्रसिद्ध महाकाव्य किरातार्जुनीयसे लिया गया है। वीसलदेवने इसमें लिखा है कि अर्जुनके समान मुझे भी शंकरने प्रत्यक्ष दर्शन दिया था। मालूम होता है कि इस नाटककी रचना संवत् १२१० में (११५३ई०) में की गयी थी। दूसरे नाटकका नाम ललितविग्रहराज है। इसकी रचना उसके दरबारके कवि सोमदेवने की है। इसमें कहा गया है कि विग्रहराजका वसंतपाल (यह राजा बहुतकरके काल्पनिक होगा) नामक एक राजाकी कन्यापर प्रेम होगया। वह भी इसपर अनुरक्त होगयी थी। विग्रहने अपनी प्रियाके पास यह संदेश भेजा कि 'अमीरके साथ मेरा युद्ध समाप्त होते ही मैं तुम्हारे पास आऊँगा'। सम्भव है यह बात ऐतिहासिक दृष्टिसे ठीक हो। कहा गया है कि इस हम्मीरके (अमीर) के पास अगणित तुर्क (सम्भवतः ये अफगान ही होंगे) थे। दोनोंने अपने गुप्तचर एक दूसरेकी फौजमें भेजे थे। अन्तमें दूतोंकी मार्फत उनमें सुलह हो गयी।

वीसलसर नामक एक तालाब बनवाकर वीसलदेवने भी आनासागर बनवानेवाले अपने पिताके समान अपना नाम अजमेर में चिरस्थायी कर दिया। लोहस्तम्भपरके लेखमें उसने अपने पिता आनाका नाम अवेल्लदेव लिखा है। (इस आनाने आनासागर नामक तालाब बनवाया था जिसकी एक तरफ शाहजहाँने संगमर्मरकी बारहदरी बनवा दी है। वीसलदेवने संस्कृत पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके लिए एक विद्यालय भी बनवाया था। शहाबुद्दीन गोरीने इस विद्यालयको तोड़कर एक मस्जिदमें परिवर्तित कर दिया। आजकल वह 'अढ़ाई दिनका झोपड़ा' के नामसे प्रसिद्ध है।)

वीसलदेवका आखिरी उपलब्ध लेख (दिल्लीका लोहस्तम्भ)

सवत् १२२० अर्थात् ११६३ ईसवीका है। इसके बाद उसने नाबालिग लडके अपरगांगेयका बिजोलिया शिलालेखमें उल्लेख नहीं है। पितृघाती जयदेवका लडका अर्थात् वीसल देवका भतीजा, पृथ्वीभट या द्वितीय पृथ्वीराज इस नाबालिग लडकेको अलग हटाकर राज्यपर अधिष्ठित होगया। उसने बहुत थोड़े समयतक राज्य किया। उसके बाद वीसलदेवका छोटा भाई सोमेश्वर गद्दीपर बैठा। इसने भी थोडेही दिनोंतक राज्य किया। इसके बाद इसका लडका, चाहमान राजकुलका अंतिम राजा, तीसरा पृथ्वीराज राज्य करने लगा। पृथ्वीराज वाले प्रकरणमें हम सोमेश्वर और पृथ्वीराजके राज्यारोहण कालकी अधिक चर्चा करेंगे। पर यहाँपर इतना कह देना जरूरी है कि सोमेश्वरने कुछ दिन तो अवश्य ही राज्यका उप भोग किया होगा क्योंकि बिजोलिया लेखके अन्तमें सोमेश्वरके रेवना नामक गाँवका दान देनेका उल्लेख है। यह लेख सवत् १२२६ की फाल्गुन बदी तृतीयाको अर्थात् ११६९ ईसवी के मार्च महीनेके लगभग लिखा गया। उस समय सोमेश्वर अवश्य राज्य करता रहा होगा।

जैसा हमने अपने इतिहासके दूसरे भागमें सिद्ध कर दिखाया है, और जैसा पृथ्वीराज विजय तथा हम्मीरकाव्यमें वर्णित है, चाहमान सूर्यवंशी राजपूत थे। उनका अग्निकुलका होना, बादमें उपलब्ध शिलालेखोंसे एक कल्पना मात्र सिद्ध हो गया है। प० गोरीशंकरका भी यही मत है। किन्तु वे चाहमानोंको चन्द्रवंशी क्षत्रिय मानते हैं, यह एक विचित्र बात है। (टॉड राजस्थानका हिन्दी संस्करण देखिये) संभव है यह छापेकी गलती हो।

दूसरा प्रकरण ।

मेवाड़के गुहिलोत ।

बप्पा रावल द्वारा स्थापित राज्य इस काल विभागमें ज्योंका त्यों बना रहा। पिछले विभागमें वर्णित राजाओंके सदृश इस विभागके राजा भी बड़े शूरवीर तथा स्वातंत्र्यप्रिय थे। स्वाधीनताके वे इतने प्रेमी थे कि दूसरे राजाओं या कुलोंके प्रदेश अथवा स्वातंत्र्य अपहरण कर अपना राज्य बढ़ानेका प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया। उन्होंने अन्य राजवंशोंके राजाओंके समान सम्राट् अथवा चक्रवर्ती कहानेकी महत्वाकांक्षाको न तो पूर्वकालमें और न इस काल विभागमें ही कभी अपने हृदयमें स्थान दिया। चाहमान कलचूरी, गहरवार, आदि राजवंशोंमें तो यह कल्पना कूट कूट कर भरी हुई थी। वस्तुतः भारतवर्षमें साम्राज्य स्थापित करनेका यह मोह कौरव-पांडवोंके प्राचीन कालसे लेकर पृथ्वीराजके समयतक भारत-वर्षके अकल्याणका ही कारण साबित हुआ है और उससे उत्पन्न होनेवाला स्वाभाविक लाभ भी कुछ नहीं हो पाया, क्योंकि इस साम्राज्यकी कल्पनामें उत्तर अथवा दक्षिण भारतमें एक राज्य स्थापित करनेका हेतु कहीं भी न था जैसा कि जर्मन साम्राज्यकी स्थापनामें था। यहाँकी साम्राज्य-कल्पना तो यह थी कि अन्य राजाओंसे 'जितासि', कहला लें पर उनके राज्यको ज़रा भी हानि न पहुंचावें। अस्तु, यहाँ पर इतना ही कह देना काफी होगा कि मेवाड़के राजा सम्राट् कहलानेका मान प्राप्त करनेवाले अहंकारके शिकार कभी नहीं हुए। पर उन्होंने अपनी स्वाधीनताकी रक्षाके निमित्त जी तोड़ कर प्रयत्न किया। बारह सौ वर्षके अनेक कष्टकर

अवसरों और परिवर्तनोंके बीच गुजरते हुए भी आजतक मेवाड़का राज्य ज्योंका त्यों क़ायम है, इसका रहस्य कदाचित इसी स्वाधीनताके प्रेममें है। वे अपने राज्य और गौरवसे संतुष्ट थे। इसीलिए बप्पा रावलद्वारा स्थापित राज्यके सर्व प्रदेशपर आज भी वे शासन कर रहे हैं।

इस काल विभागमें (१००० से १२०० ई० तक) मेवाडके राजा अन्य राज्योंके और खास कर मुसलमानोंके आक्रमणों-से प्रायः सुरक्षित ही रहे। काबुल अथवा कन्नौजके चक्रवर्ती राजाओंको मुसलमान लोग हिन्दुस्थानके राजा समझते थे। उस अर्थमें मेवाड़के राजा भारतवर्षके राजा न थे, संभवतः इसी कारण महमूदकी तुर्क सेनाने भी मेवाड़पर आक्रमण नहीं किया। सभव है उस समय यह राज्य उतना सम्पन्न भी न रहा हो और न यहांके देवस्थान तथा तीर्थ-क्षेत्र प्रचुर धनसे संयुक्त रहे हों। इस लिए मेवाड़के राजा अनायास अबाधित रह सके। और वहांके तेजस्वी राजवंशमें विनाशके चिह्नोंका प्रकट होना तो दूर रहा, उलटे वहाँके राजा अपनी पूर्ण सत्ताके साथ मेवाड़पर राज्य करते रहे।

दूसरे भागमें हमने आटपुराके संवत् १०३४ अर्थात् ९७७ ईसवीके शिलालेखके आधारपर बप्पा रावलसे लगाकर शक्ति कुमारतक मेवाडके राजाओंकी वंशावली दी है। इस भागमें उस वंशावलीका शक्तिकुमारके बादका सन् १२०० तकका उत्तर भाग हम देते हैं।

पृथ्वीराज रासोमें समरसिंहको जो अजमेर और दिल्लीके तीसरे पृथ्वीराजका समकालीन राजा बताया गया है, इस बातको अब सब लोग गलत मानने लगे हैं। खुद समरसिंहके शिलालेखसे यह भलीभाँति सिद्ध होगया है कि वह तेरहवीं

सदीके अंतमें रहा । दुर्भाग्यवश रासोके कथनको तमाम राजपूत राज्योंके भाटोंने प्रामाणिक समझ लिया था, अतः उनकी वंशावलियोंमें कई स्थानोंपर गलतियाँ होगयी हैं । मेवाड़के गुहिलोतोंसे सम्बन्ध रखनेवाले नाना प्रकारके उत्कीर्ण शिलालेखों और उनमें दी हुई वंशावलियोंपर एक साथ विचार करके हम इस बातका प्रायः ठीक ठीक पता लगा सकते हैं कि रासोमें वर्णित भ्रमपूर्ण कथाका प्रचार कब हुआ। इन उत्कीर्ण शिलालेखोंमें सबसे पहला संवत् १३४२ (ई० १२८५) का आबूके अचलेश्वरका शिलालेख है । उसमें अनेक राजाओंका विस्तृत वर्णन है। उसके बाद जोधपुर प्रान्तका संवत् १४६६ (१४३६ ईसवी) का राणपुरा (राणपुरा) वाला शिलालेख है । उसमें बप्पासे लगाकर तबतककी वंशावली बहुत ही संक्षेपमें दी हुई है । अन्तिम शिलालेख रायसागरका संवत १७३२ (१६७५ ई०) का है । समरसिंहका विवाह पृथ्वीराजकी बहन पृथासे हुआ था तथा शहाबुद्दीन गोरीके साथ पृथ्वीराजका जो अन्तिम युद्ध हुआ उसमें पृथ्वीराजके साथ समरसिंहकी भी मृत्यु हो गयी, आदि जो कथा रासोमें दी गयी है वह पहले-पहल इसी लेखमें दृष्टिगोचर होती है। इस लेखमें स्वयं रासोका उल्लेख किया गया है । अतः पिछले दो लेखोंमें दी हुई वंशावलीमें कहीं कहीं परिवर्तन करना आवश्यक हो गया । इस लेखमें बताया गया है कि जिस जैत्रसिंहके शासनकालमें ई० सन् १२१६ में मेवाड़ और तुर्कोंके बीच पहला युद्ध हुआ था, समरसिंह उसीके तेजसिंह नामक लड़केका लड़का था । आबूके लेखमें तो जैत्रसिंह तुर्क सैन्य रूपी समुद्रको अगस्त्य ही बताया गया है*। इस

*तुरुष्क सैन्यार्णव कुंभयोनिः ।

लड़ाईके विषयमें हम आगे चलकर लिखेंगे। पर इतने वर्णनसे भी यह स्पष्ट है कि समरसिंहका दादा जैत्रसिंह भी पृथ्वीराजका समकालीन नहीं था। तात्पर्य यह कि १४३९ ईसवीके राणपुरा वाले लेखके बाद और १६७१ ईसवीके रायसागर वाले लेखके पहले पृथ्वीराजरासोकी कथाका प्रचार हुआ होगा। उसकी ओर दुर्लक्ष्य कर आबू और राणपुराके शिलालेखोंसे टॉड राजस्थानके हिन्दी संस्करणमें पण्डित गौरीशंकरने इस कालके मेवाड़के राजकुलकी जो वंशावली तैयार की है उसीको हम भी उद्धृत कर देंगे। इसी राजवंशके विजयसिंह नामक राजाका संवत् ११६४ (११०७ ईसवी) का और जैत्रसिंहका संवत् १२७० (१२१३ ईसवी) का, ये दो शिलालेख उपलब्ध हैं। ईसवी सन् ९७७ के आटपुरा शिलालेखमें वर्णित शक्तिकुमारसे लेकर विजयसिंह तक दस राजा हुए, उनके शासनकालका औसत $\frac{११०७-९७७}{१०}=\frac{१२०}{१०}=१२$ वर्ष निकलता है। और शक्तिकुमारसे जैत्रकुमारतक १९ राजा हुए। उनका औसत शासनकाल $\frac{१२१३-९७७}{१९}=\frac{२३६}{१९}=१२\frac{८}{१९}$ वर्ष ठहरता है। इससे मालूम होता है कि पिछले काल विभागके समान इस कालविभागमें भी अन्य राजवंशोंकी अपेक्षा गुहिलोत राजाओंका औसत शासनकाल बहुत कम था। अस्तु, अब प्रत्येक राजाका शासनकाल हम अनुमानसे १३ और ११ वर्ष लगाकर शक्तिकुमारसे समरसिंहतकको वंशावली देते हैं। विभिन्न राजाओंके विषयमें हम टॉडके राजस्थान तथा अन्य स्थानोंसे पंडित गौरीशंकर ओझाके एकत्र किये हुए तथ्योंका उपयोग करेंगे।

गुहिलोत वंशावली

१ शक्तिकुमार	(राज्यारंभ सन् ९७७ ईसवी)	
२ अम्बाप्रसाद	(,, अनुमानतः ९९० ईसवी)	
३ शुचिवर्मा	(,,	१००३ ,,)
४ नरवर्मा	(,,	१०१६ ,,)
५ कीर्तिवर्मा	(,,	१०२९ ,,)
६ योगराज	(,,	१०४२ ,,)
७ वैरट	(,,	१०५५ ,,)
८ हंसपाल	(,,	१०६८ ,,)
९ वैरिसिंह	(,,	१०८१ ,,)
१० विजयसिंह	(,,	१०९४ ,,)
	(शिला लेख	११०७)
×११ अरिसिंह	(राज्यारंभ ई. स.	१११८)
१२ चोड	(,, ,,	११२९)
१३ विजयसिंह	(,, ,,	११४०)
×१४ रणसिंह	(,, ,,	११५५)
१५ भीमसिंह	(,, ,,	११६२)
१६ सामन्तसिंह	(,, ,,	११७३)
१७ कुमारसिंह	(,, ,,	११८४)
१८ मथनसिंह	(,, ,,	११९५)
	शिलालेख	१२०३
१९ पद्मसिंह	(,,	१२०६)
२० जैत्रसिंह	(ले. १२१३,	१२२२)
२१ तेजसिंह	(ले. १२६७)	
२२ समरसिंह	(ले. १२७८,१२८३,१२८७)	

अब इस वंशावलीके राजाओंके विषयमें व्यक्तिशः विचार करेंगे। पहले पहल यह कह देना आवश्यक है कि आबू और

चित्तौडगढ़के शिलालेख एक ही समयके हैं और दोनों देव शर्मा नामक एक ही लेखकके लिखे हैं। किन्तु चित्तोडगढके लेखमें शक्तिकुमारके बाद और नरवर्माके पहले अंबाप्रसाद और शुचिवर्माका नाम दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त उसमें यह भी लिखा है कि दैत्योंके समान उग्र धर्मशत्रुओंका शक्ति कुमारने पराभव किया। यह उल्लेख विशेषकर मुसलमानोंके विषयमें ही होगा। आटपुराके शिलालेखके आधारपर इस राजाका शासनकाल ९७७ ईसवीसे शुरू होनेका उल्लेख हम ऊपर कर चुके है। इसी वर्ष गजनीका सबुक्तगीन तख्तनशीन हुआ और भारतको निगल डालनेवाले सकटका प्रादुर्भाव हुआ। काबुलके राजा जयपालने ईसवी सन् ९८९ में सबुक्तगीनका प्रतिकार करनेके लिए हिन्दू राजाओंको निमन्त्रित किया था। बहुत सभव है शक्तिकुमार भी इसमें शामिल हुआ हो (स्मिथकी अ० हि० इ०)।

चित्तौडगढके शिलालेखमें नरवर्माके बादके राजा आबूके शिलालेखके क्रमानुसार ही दिये हुए है। इसलिए हमने उसे प्रमाण लेखोंमें नहीं गिना। किन्तु यद्यपि आबूके शिला लेखमें अम्बाप्रसाद और शुचिवर्माका उल्लेख नहीं है तथापि चूँकि उसीके लेखकके लिखे चित्तौडगढके शिलालेखमें उनका समावेश हुआ है अत हमने भी इस पुस्तकमें दी हुई वंशावलीमें उसका समावेश कर दिया है। पर इससे यह भी अनुमान निकलता है कि आबूके शिलालेखमें और भी कुछ नाम छूट गये हैं। और दर असल कुछ नाम छूटे हुए दिखाई भी देते हैं। अम्बाप्रसाद नामक राजाका फिहरिस्तमें होना विचित्र मालूम होता है। पर यह नाम दूसरे वंशोंके (कलचूरी शिलालेखोंमें पाया जाता है। और चित्तौरगढके

शिलालेखमें भी उसका उल्लेख होनेके कारण उसके विषयमें अब कोई सन्देह नहीं रह जाता। योगराज (६) और हेमपाल (८) ये नाम भी अपरिचितसे मालूम होते हैं। इनका उल्लेख आबूके शिलालेखमें है और उसमें हंसपालके बदले वंशपाल नाम दिया हुआ है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है विजयसिंहका एक ताम्रपत्र संवत् ११६४ का प्राप्त हुआ है। आबू और चाणपुराके लेखोंमें विजयसिंहके बदले विक्रमसिंह नाम लिखा गया है। रणसिंह अथवा कर्णसिंहका उल्लेख आबूके लेखमें नहीं है, चाणपुराके लेखमें है। संभव है भाटोंने अपनी कल्पनासे निर्माण किये हुए कुछ राजाओंके नाम लेखमें दे दिये हों। यथार्थमें यह बात संदिग्ध ही है कि इन नामोंके राजा हुए थे या नहीं। रणसिंहके बाद दो शाखाएँ हो गयीं। बड़ी शाखाका नाम रावल, और छोटीका नाम राणा था जो सिसोदामें जाकर रहने लगी। पर यह एक दंतकथा है। इसका उल्लेख आबूके शिलालेखमें नहीं पाया जाता। पर इस दंतकथाके विषयमें संशय नहीं रहता। क्योंकि चित्तोड़के पहले राजा रावल कहे जाते थे और हमीरके बादके राजा राणा कहे जाते हैं। इसका कारण नीचे लिखे नोटमें दिया गया है। *
रायसागरके काल-क्रमानुसार जो शिलालेख आखिरी माना जाता है उससे पता चलता है कि बप्पा रावलके बाद २८ रावल हुए। उस शिलालेखमें यह दंतकथा पायी जाती है।

---

*रावलके मानी हैं छोटा राजा। यह नाम बप्पासे प्रचलित हुआ था। राणा (राजानक) के मानी मांडलिक राजा है। छोटे राजकुलसे आकर जब हमीर राज्यारूढ़ हुआ तबसे उदयपुरके राजा अपनेको राणा कहने लग गये। यही नाम अब बड़े वीरके अर्थमें प्रयुक्त किया जाता है।

रणसिंहसे लेकर भीमसिंहको छोडकर सब नाम सब शिलालेखोंमें एकसे मिलते हैं। आबू और राणपुराके लेखोंमें भीमसिंहके बदले क्षेमसिंह नाम दिया गया है। ये राजा आबूके शिलालेखके समय या उसके कुछ ही पहले हो गये हैं। अतएव उनके विषयमें गलती नहीं हो सकती। अनुमान है कि सामतसिंहके शासनका आरंभ ई० सन् ११७६ में हुआ होगा। पंडित गौरीशंकरका ख्याल है कि पृथ्वीराज रासोमें कुछ जोडनेवाले अथवा अपनी कविताओंको चंद बरदाईकी कविता बतानेवाले नवीन कविको सामत और समर इन दो नामोंमें भ्रम हो गया। इसीलिए उसने ई० सन् १२८२ के समरसिंहको पृथ्वीराजका समकालीन बतानेकी जबरदस्त गलती की है।

तीसरा प्रकरण।

धारके परमार राजा।

१ भोज

मुंज ओर सिंधुराजने मालवामें परमारोंके राज्यको पहले से ही स्वतंत्र और वैभवशाली बना दिया था। अतः इस कालविभागके आरंभमें परमार बड़े प्रबल राजा समझे जाने लगे थे। भोजके शासनकालमें परमारोंका वैभव और कीर्ति और भी बढ गयी। इतना ही नहीं, वह इस समय अपनी परम सीमाको पहुँच गयी। जब मुंजकी मृत्यु हुई तब कविगण बड़े निराश हुए। वे कहने लगे "खैर, लक्ष्मी और वीरश्री तो पुनः अपने अपने धामको लौट जायंगी पर मुंजकी मृत्युसे

सरस्वती तो बिलकुल निराधार ही होगयी" * । किन्तु भोजने यह साबित कर दिया कि उनकी चिंता व्यर्थ थी। लक्ष्मी, वीरश्री और सरस्वती, इन तीनोंको उसने अपने यहाँ एकसा आश्रय दिया। पौराणिक कालमें जिस तरह राम और युधिष्ठिर और उसके बादके समयमें जिस प्रकार विक्रम और हाल होगये, उसी प्रकार ऐतिहासिक कालमें भोजने शस्त्र और शास्त्रमें असाधारण निपुणता प्राप्त कर भारतवर्षमें उत्कृष्ट क्षत्रियत्वका एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित कर दिया।

भोज विद्वानोंका परामर्श तो लेता ही था पर वह स्वयं भी प्रसिद्ध ग्रन्थकार था। उसने अनेक और विविध विषयोंमें प्राविण्य प्राप्त कर लिया था। उसने ज्योतिष, अलंकार, शिल्प, योग और व्याकरणशास्त्रका भी खासा अभ्यास किया था। इनमेंसे प्रत्येक विषयपर उसने ऐसे ऐसे ग्रन्थ लिखे हैं जो आज भी प्रमाणभूत माने जा सकते हैं। अलंकार-शास्त्र पर सरस्वतीकंठाभरण, योग-शास्त्र पर राजमार्तण्ड, और ज्योतिषशास्त्र पर राजमृगांक-करण, ये भोजके लिखे ग्रन्थ सुप्रसिद्ध हैं। उनके देखनेसे साफ साफ पता चलता है कि उन शास्त्रोंमें उसने कितनी प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। इन ग्रन्थोंने विद्वत्ताके विषयमें उसकी कीर्तिको इतिहासमें चिरस्थायी कर दिया है। धारा नगरीमें उसने संस्कृत भाषाके उच्च अध्ययनके लिए एक पाठशाला बनवायी थी और उस पाठशालाकी शिलाओंपर अनेक विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले संस्कृत सुभाषित उत्कीर्ण किये गये थे। मुसलमानोंने इस पाठशालाको मस्जिद बना दिया है। आज वह कमाल मौला

---

* लक्ष्मी र्यास्यति गोविन्दे वीरश्री वीरवेश्मनि।
गते मुंजे यशः पुंजे निरालम्बा सरस्वती॥

मसजिदके नामसे धारमें वर्तमान है। जिन शिलाओंपर वे संस्कृत सुभाषित खोदे गये थे उन्हींको अब फर्शकी जगह हम बिछी हुई देखते हैं। उनपरके अक्षर इतने घिस गये हैं कि कुछ पढ़ा नहीं जा सकता। किन्तु इस सरस्वती-सदनके नज दोक पास ही बगलमें एक पुराना कुआ है, जिसे आजकल लोग 'अकक्कल कुई' कहते हैं। उसे देखकर उस समयकी याद आती है जब भोजके समय सरस्वती सदनमें वाद विवाद करनेवाले विद्वान् लोग इसीमेंका पानी पी पी कर अपने ज्ञानको बढ़ाते रहते थे। कर्नल ल्युअर्ड और श्री लेलेने 'धार और मालवाके परमार' नामक अपने ग्रथमें भोजकी साहित्य सम्बन्धी श्रेष्ठताके विषयमें जो अनेक बातें लिखी हैं वे सचमुच बडी मनोवेधक हैं। इन दोनों विद्वानोंने धारके पर मारोंके सुसम्बद्ध और सुविस्तृत इतिहास लिखनेके लिए परमारोंके विषयमें जानकारी प्राप्त कर देनेवाले तमाम उपलब्ध साधनोंका उपयोग अपने ग्रन्थमें कर लिया है। अत इस इतिहासमें लेने योग्य तमाम आवश्यक बातें यदि उन्हींके ग्रथसे ले ली जायँ तो कुछ अनुचित न होगा।

(१) यद्यपि आज भोजका हिन्दूधर्म शास्त्रपर लिखा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है तथापि कितने ही सुप्रसिद्ध ग्रन्थकारोंने उसे इस शास्त्रका ग्रन्थकार बताकर उसके मतोंका उल्लेख किया है। उदाहरणके लिए शूलनाथने प्रायश्चित विवेकमें, रघुनन्दनने मनु टीकामें और विज्ञानेश्वरने अपनी सुप्रसिद्ध मिताक्षरामें भोजका उल्लेख किया है। इससे केवल भोजकी विविधगामी प्रतिभाकाही पता नहीं चलता बल्कि यह भी ज्ञात होता है कि अपने राजशासनकार्यमें भी वह बड़ा निपुण था।

(२) धर्मशास्त्रके साथ ही साथ मुल्की राज्यव्यवस्थाके

विषयमें यदि उसे काफी जानकारी नहीं होती तो वह हिन्दू-धर्मशास्त्रपर अपना ग्रंथ कदापि नहीं लिख सकता था। क्योंकि हिन्दू धर्मशास्त्रमें इन दोनोंका समावेश होता है। (३) भोजने अपने प्रजाजनोंकी शिक्षा तथा ऐहिक सुखकी ओर काफी ध्यान दिया था। एक विस्तीर्ण घाटीके चारों ओरकी पहाडियोंके बीच बड़े बड़े बाँध बनवा कर उसने 'भोजसर' नामक बडा भारी तालाब बनवाया था। और संभवतः उससे नहर निकालकर खेती सींचनेका भी काम लिया था। अब उस तालको तोडकर भूपाल राज्यका एक उपजाऊ परगना बना लिया गया है। (४) उसके दो दानपत्र भी प्राप्त हुए हैं। उनके देखनेसे यह मालूम होता है कि उसके सरकारी दफ्तरकी भाषा भी कितनी बढ़िया और मँजी हुई थी। इस दफ्तरके विषयमें हम आगे चलकर और भी चर्चा करेंगे। पर यहाँ पर इतना तो जरूर कह देना चाहिये कि उसकी शासन पद्धति और व्यवस्था आदर्श थी।

भोजको साहित्यक्षेत्रमें प्राप्त की हुई श्रेष्ठता जितनी सुप्रसिद्ध है उतनी उसकी राजनीतिक निपुणता प्रसिद्ध नहीं होने पायी। अबतक भी उसका ठीक ठीक निश्चय नहीं हुआ है। ईसवी सन् १०१०में वह राज्य सिंहासन पर बैठा होगा। (कर्नल ल्यूअर्ड और श्री लेलेका मत है कि वह इससे कहीं पहले राज्यारूढ हो गया होगा।) कमसे कम चालीस साल तक उसने राज्य किया होगा। सर विन्सेन्ट स्मिथने उसका मृत्युकाल ईसवी सन् १०६० के आस पास निश्चित किया है। पंडित गौरीशंकर ओझा इसे लगभग १०५५ ईसवी (अर्थात् संवत् १११२) के कुछ पूर्व बताते हैं। उसने अनेक हिन्दू राजाओंके साथ युद्ध किया। उनमें उदयपुर-प्रशस्तिके अनुसार

चेदीके राजा इन्द्रनाथ, गुजरातके पहले ओग्गल तथा भीम कर्नट, लाट, तथा गुर्जर और तुरुष्क राजाओंका नाम भी उल्लेखनीय है (रा इ १ पृष्ठ २२२)। इनमें सबसे पहले हम उस युद्धपर विचार करते हैं जो उसने तुर्क लोगोंके साथ किया था। इसी प्रशस्तिमें कहा गया है कि इस युद्धके पहले मंजने हूण राजाओंपर एक विजय प्राप्त की थी। अतः इससे स्पष्ट है कि इसमें हूण और तुर्क नहीं हैं। इन शब्दोंका प्रयोग समानार्थक शब्दोंकी तरह नहीं किया गया है, बल्कि उनके अर्थ-भेदका ध्यान रखकर ही किया गया है। इससे अनुमान होता है कि पहले जिस हूण राजाका उल्लेख है वह अवश्य ही हिन्दू होगा। क्योंकि उस समय हूण लोग यहाँ आये या बसे नहीं थे। दूसरे, एक राजपूत राजकुलको भी 'हूण' संज्ञा दी गयी थी ऐसा दिखाई देता है। मुंज राजाका राज्यकाल ९९७ ई० से १०१० ईसवी है। इस समय अमीर सबुक्त-गीनके खिलाफ लड़नेके लिए राजपूतोंने जो संघ बनाया था उसमें मुंज भी शामिल हुआ होगा, ऐसा ख्याल करना स्वाभाविक है। किन्तु उपर्युक्त लेखसे यह निश्चयपूर्वक नहीं कहते बनता। महमूद गजनवीकी किस चढ़ाईके प्रतिकारमें भोजने उससे युद्ध किया था, यह निर्णय करना कठिन है। पर यह तो अवश्य ही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सोमनाथवाली चढ़ाईमें जो राजपूत उससे लड़े थे उनमें भोज नहीं था। क्योंकि इस प्रशस्तिमें यह स्पष्ट उल्लेख है कि उसने तुर्कोंको परास्त किया था। किन्तु तबकात् इ-अकबरीमें एक जगह इस प्रकारका उल्लेख पाया जाता है कि सोमनाथमें हिन्दू राजाओंको परास्त करने पर महमूदको पता लगा कि हिन्दुओंका अत्यंत प्रबल राजा परमारदेव उसे

रोकनेके लिए तैयारी कर रहा है। अतः वह अपनी लूटको लेकर मुलतानके रेगिस्तानके पश्चिमी भागमेंसे निकल गया। इस उल्लेखके आधार पर कर्नल ल्यूअर्ड और श्रीलेलेकी कल्पनाके अनुसार उसका मुलतानके रेगिस्तानमेंसे वाला वाला निकल जाना ही शायद भोजका किया उसका पराभव होगा। यह वर्णन दूसरे किसी परमार राजाके साथ मेल नहीं खाता। शिलालेख लिखनेवाले लेखक अक्सर स्तुति-पाठक तो होते ही हैं। अतः महमूदके भोजको केवल 'टालने मात्रको यदि वे भोजके द्वारा पराजित किया जाना कहने लग जायँ, तो इसमें उनके लिए कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। प्रशस्तिमें यह भी उल्लेख है कि भोजने सोमनाथके देवालयको बनवाया था। इससे भी यही अनुमान निकलता है कि वह पराजय विषयक उल्लेख भी इसी प्रसंग (सोमनाथके युद्ध) का होगा। बहुत सम्भव है कि महमूद केवल मूर्तिको फोड़कर ही संतुष्ट न रहा हो। बल्कि उसने देवालयको भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया हो। और क्षत्रिय तथा शिवोपासक भोजके लिए यह बिलकुल स्वाभाविक है कि वह पुनः देवालयको बनवाकर उसमें मूर्तिकी स्थापना भी कर दे। यह बात उसके शौर्यके अनुरूप ही है।

यदि भोजके राज्यारोहण कालको हम १०१० ईसवीके पहले समझ लें तो १००८ में आनंदपालने जो फौजें एकत्र की थीं उनमें अन्य हिन्दू राजाओंके साथ साथ भोजने भी अपनी सेना भेजी होगी। प्रशस्तिमें जो उल्लेख है वह स्वयं भोजके विषयमें नहीं, उसके सेनानायकोंके विषयमें है। उसमें लिखा है कि उसके सेनानायकोंने अथवा घुड़-सवार सैनाने तुर्कोंका पराभव किया था। पर इस युद्धमें

आनंदपालने तुर्कोंका पराभव नहीं किया। अतः प्रशस्तिके उल्लेखका सम्बन्ध हम इसी युद्धसे नहीं जोड सकते।

तमाम उपलब्ध साधनग्रंथोंका उपयोग कर कर्नल ल्युअर्ड और लेलेने अपनी पुस्तकमें भोजके प्रदेशके परिवर्ती राज्योंके शासक राजागणोंके साथ उसके राजनीतिक सम्बन्ध और युद्धादिका बड़ा बढ़िया वर्णन दिया है। मालवराज्यके पूर्वमें उसकी सीमासे लगा हुआ चेदी राजाका प्रदेश था। उत्तरमें चित्तौड़का राज्य था। पश्चिममें अनहिलवाड़ेके चालुक्य राज्य कर रहे थे और दक्षिणमें कल्याणके चालुक्य थे। पडोसी राज्योंमें संधि विग्रह तो होते ही रहते हैं। अतः चित्तौडके गुहिलोत राजाओंको छोडकर भोजको अन्य तीनों राजाओंके साथ बार बार लड़नेका प्रसंग आता। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं गुहिलोत राजाओंको सम्राट बननकी महत्वाकांक्षा कभी छू तक नहीं गयी। न उन्हें कभी अपनी सोमाएँ बढानेका लोभ ही हुआ। अत. भोजका चित्तौडके साथ युद्ध होनेका कहीं भी उल्लेख नहीं है। हाँ, चेदी अनहिलवाड़ा और कर्नाट आदिके साथ उसके बराबर युद्ध होते रहते और कभी कभी संधि भी हो जाया करती थी। कभी उसकी विजय होती तो कभी वह पराजित भी हो जाया करता था। जब पराजय होती तब शत्रु धारके करीब चला आता, बल्कि कभी कभी तो शहरमें घुसकर लूटमार मचा देता था। गुजरातमें उसका प्रतिस्पर्द्धी भीम था। उसने सन् १०२० से लगाकर १०६३ ईसवी तक राज्य किया। एक बार भोजके जैन सनापति कुलचन्द्रने भीमकी अनुपस्थितिमें गुजरातपर चढ़ाई कर उसकी राजधानी अनहिलवाड़ेको अपने अधीन कर उसे मनमाना लूटना शुरू किया। वह लूट इतनी बड़ी थी कि 'कुलचन्द्री' लूटको

अब भी वहाँके लोग याद करते हैं। भीम भी कम नहीं था। उसने भी इसका बदला लेनेके लिए घुड़सवारोंकी फौज लेकर अचानक धारपर आक्रमण कर दिया और शहरको लूट लिया। पर इन दोनों प्रबल राजाओंके बीच बहुत दिनतक बैर न रहा। शीघ्र ही दोनोंने समझौता कर लिया और प्रेम पूर्वक अपने राजदूत एक दूसरेके दरबारमें भेज दिये। अनहिलवाडेके वकील दामोदरके बड़े विनोदशील और चतुर राजनीतिज्ञ होनेकी प्रसिद्धि है।

पूर्वके चेदी और दक्षिणके कर्नाटोंके साथ भोजका परम्परागत वैर था। इन दोनोंने भोजका नुकसान भी बहुत किया था। क्योंकि चेदीके हैहय और कर्नाटके चालुक्योंमें अक्सर वैवाहिक सम्बन्ध होते रहते थे। चेदीके युवराजकी बहिन कर्नाटके तैलपकी माँ थी। मुंज और तैलपके बीच हमेशा युद्ध होता रहता था। अंतमें मुंज पकड़ा गया और तैलपके द्वारा मारा भी गया (भाग २)। युवराजके बाद गांगेयदेव सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने १०१० से १०३८ ईसवीतक राज्य किया। गांगेयके बाद कर्णदेव गद्दीपर बैठा। यह हैहय कुलमें अत्यन्त सामर्थ्यवान् राजा था। इसने १०३८ से १०८० ईसवीतक राज्य किया। दक्षिणमें कल्याणके जयसिंह (१०१८ से १०४०) और सोमेश्वर (१०४० से १०६६) भोजके समकालीन राजा थे। मालूम होता है कि जयसिंहने एक बार धारपर चढ़ाई कर भोजको पराजित कर दिया था। इस बातका उल्लेख जयसिंहके शिलालेखमें है* (इ० एं० भाग ५ पृष्ठ ·५)। गांगेयकी

---

* श्री लेलेके ग्रन्थमें मुद्रण दोषके कारण इस प्रसंगकी तारीख ९०० शाक छप गयी है। यह शक भोजके शासनकालसे नहीं मिलता। सम्भव है वह ९४१ अर्थात् १०१९ ईसवी रहा हो।

तरह जयसिंहको भी भोजने १०४० के लगभग पराजित किया होगा। गांगेयके पराभवपरसे ही मालवामें 'कहाँ राजा भोज कहाँ गंगातेली' वाली कहावत प्रचलित हुई होगी, जैसा कि श्री लेलेने बड़ी मार्मिकतापूर्वक सूचित किया है। इस कहावतका सम्बन्ध तेलिंगणके गांगेयसे होगा। उस समय तेलिंगण चेदी राजाओंकी अधीनतामें था।* जो हो, जयसिंहके बाद राज्यारूढ होनेवाले सोमेश्वरने फिर मालवापर चढाई की। इस चढाईका उल्लेख बिल्हणने विक्रमाङ्कदेव चरितमें किया है (पृष्ठ १६१)। बादमें शायद भोजने उसपर चढाई कर उसे परास्त किया हो। उदयपुर प्रशस्तिमें कही गयी बातका सम्बन्ध इस अथवा इसके पहलेके पराभवसे होगा।

पर यह बात हमें याद रखनी चाहिए कि इन युद्धोंके कारण न तो मालवाकी सत्तामें किसी प्रकारकी कमजोरी आयी और न उसके किसी परिवर्ती राष्ट्रकी शक्तिमें। क्योंकि ये युद्ध राज्यकी सीमा बढ़ानेकी इच्छासे किये ही नहीं गये थे। दूसरे, मालवा, चेदी, कर्नाट और गुजरातके राज्य एकसे सामर्थ्यवान् थे। उन सबके राजा भी वैसे ही वीर थे। शक्ति घटनेके बजाय इन राजाओंके तथा उनके सैनिकोंके क्षत्रियोचित गुण और अधिक संवर्धित हो गये। किन्तु भोजकी मृत्युके समय (उदयपुर-प्रशस्तिके शब्द बिलकुल स्पष्ट हैं, तदनुसार उसकी मृत्युके पहले नहीं, बादमें †) गुजरातका भीम और चेदीका कर्ण इन दोनोंके मिलकर चढाई करनेके कारण मालवा राज्यमें

* कर्णको उसके एक शिलालेखमें साफ साफ त्रिकलिंग (तेलंग) का राजा कहा है। (ए० इ० २)

† तत्रादित्य प्रतापे गतवति सदनं स्वर्गिणां भर्गभक्ते।
व्याप्ता धारेव धात्री रिपुतिमिरभरैर्मौलिलोकस्तदाभूत् ॥

अशान्ति और अव्यवस्था फैल गयी थी और उसकी सत्ता भी हिल गयी थी। जैसा कि बिल्हणने विक्रमांकदेवचरित (३, ६७) में कहा है, भोजका उत्तराधिकारी जयसिंह कल्याणके राजा आहवमल्ल सोमेश्वरके दरबारमें आश्रयके लिए गया। सोमेश्वरने मालवा और कर्नाटके बीचके अपने परम्परागत वैरको भुलाकर उसकी सहायता की और उसे धारके पूर्व-पुरुषार्जित सिंहासनपर बिठला दिया। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय भारतवर्षके राजा राज्यविस्तारके लिए युद्ध नहीं करते थे। दूसरे, इससे यह भी स्पष्ट होता है कि प्रजा यही पसंद करती थी कि पूर्वपरम्परासे उसपर राज्य करनेवाले वंशका ही कोई राजा उसपर राज्य करे। जैसा कि हम अपने ग्रन्थके दूसरे भागमें कह आये हैं, अन्य ग्रन्थकारोंने भी अपने ग्रन्थमें यह बात लिखी है कि यदि कोई राजा दूसरे राजाको जीत लेता है तो वह पराजित राजाके वंशवाले किसी पुरुषको ही पुनः सिंहासनपर बैठाता है। किन्तु इस काल-विभागमें राष्ट्रीयत्वकी यह अस्पष्ट भावना भी अदृश्य होती जा रही थी। (यही उदाहरण लीजिये। जयसिंहको अपना राज्य पुनः प्राप्त करनेके लिए एक दूसरे राजाकी सहायता लेनी पड़ी।) इसके कारणोंका विवेचन हम आगे चलकर करेंगे।

१०५५ ईसवीके पहले ही भोजकी मृत्यु हो गयी होगी, क्योंकि उसी सालका उसके पुत्र जयसिंह द्वारा धारसे प्रकाशित एक शासनपत्र अभी उपलब्ध हुआ है (ए० इ० ३, पृष्ठ ४६)। अतः समझमें नहीं आता कि विन्सेण्ट स्मिथने अपने 'अर्ली हिस्टरी ऑफ इण्डिया' नामक ग्रन्थके तीसरे संस्करण (१९१४) में भी भोजका मृत्युकाल १०६० ईसवी कैसे दिया है। उसने किस आधारपर यह तारीख दी है यह भी लिखा

नहीं, अत. इसके सम्बन्धमें हम यहाँपर अधिक विवेचन नहीं कर सकते । ❀

ई० स० १०१६ (संवत् १०७६) में भोजने कौंकण जीता, यह बात उस सालके भोजके शासन पत्रमे स्पष्ट रूपसे मालूम होती है (ए० इ० ११)। अपने राज्यके आरंभमें ही उसने कौंकणसे क्यों युद्ध किया, यह समझमें नहीं आता । (उस समय उसकी उम्र अंदाजन बीस सालकी रही होगी ।) यद्यपि उसके कौंकण जीतनेकी बातको अस्वीकार करनेके लिए हमारे पास कोई आधार नहीं है तथापि इतिहासकार अभी इस रहस्यका पता नहीं लगा सके हैं कि वह आखिर अपने राज्यसे इतनी दूर गया क्यों ? सभवत. इस कौंकणकी चढाईकी कथाकी उत्पत्ति कल्याणके पाँचवे विक्रमादित्य (१००६-१०१८) की लडाईसे हुई होगी। कर्नल ल्युअर्ड और श्रीलेलेका कथन है कि इस लड़ाइमें भोजने विक्रमादित्यको कैद करके मार डाला, पर यदि सचमुच यही हुआ होता तो भोज अपने लेखमें कौंकणकी चढाईकी बनिस्बत इसीका उल्लेख विस्तारपूर्वक करता। क्योंकि कौंकणके राजाका महत्व कर्नाटके राजाकी तुलनामें कम था । और यदि सचमुच यह युद्ध हुआ हो तो कौंकणकी चढाईके समय ही हुआ होगा । किन्तु भारतवर्षके सामान्य इतिहास पाठकोंके लिए इन लडाइयोंका महत्व कुछ नहीं है । इसलिए हम अब यहाँ उनके विषयमें अधिक विचार करनेकी आवश्यकता नहीं देखते ।

कि तु भोजकी मृत्युके कुछ ही पहले या बाद कर्णदेव और भीमदेवके साथ उसका जो युद्ध हुआ वह अत्यंत महत्व-

❀ कर्नल ल्युअर्ड और श्री लेलेने अपने परमारोंके विषयके ग्रन्थमें तरंगिणी और विक्रमाकदेवचरित इन दो प्रमाण ग्रन्थोंका उचित उल्लेख किया है और उनकी कथाओंका अच्छा विवेचन किया है (पृष्ट २२ २३)

पूर्ण है, इसलिए हम यहाँपर सावधानता पूर्वक इस विषयके उल्लेखोंपर विचार करेंगे। भीम और कर्णने मिलकर धार पर चढ़ाई की, उसपर अधिकार कर लिया और भोजको मार भगाया, और इस निर्वासनमें ही भोजकी मृत्यु हो गयी, इत्यादि कथा मेरुतुङ्गने कही है। पर हमारा ख्याल है कि इस कथाके कारण इस महत्वपूर्ण विषयके सम्बन्धमें एक विपरीत धारणा हो गयी है। सभी जानते हैं कि ऐसी रचनाओं-में सुप्रसिद्ध राजाओंके विषयमें कई कल्पित कथाएं भी कह दी जाती हैं। इसलिए खूब जाँच पड़तालके साथ इनका समीक्षण करना आवश्यक है। कीलहार्नका पहले यह ख्याल था कि उदयपूरकी प्रशस्तिके एक श्लोकसे मेरुतुङ्गकी इस बातकी पुष्टि होती है। किन्तु नागपुरकी प्रशस्तिमें उन्हें इसके विपरीत ख्याल करा देनेवाला एक दूसरा श्लोक मिल गया। उसे देते हुए उन्होंने लिखा है कि मेरुतुङ्गकी बात संभवनीय नहीं मालूम होती और इसकी सत्यताके विरुद्ध बहुतसे प्रमाण दिये जा सकते हैं। हमें भी यह बात विश्वसनीय नहीं मालूम होती कि भोज जैसे सामर्थ्यवान् राजापर इस तरह चढ़ाई की जाय, इस प्रकार वह पराजित हो जाय और ऐसी दुर्दशामें उसका अंत हो। उदयपुरकी प्रशस्तिके नवें श्लोक पर कीलहार्नने यह टीका की है "कि अंतमें भोज अपने दुश्मनोंके द्वारा पकड़ा गया यह इस चरणमें क़बूल किया गया है।" किन्तु यह ग़लत है। क्योंकि इस चरणमें तो केवल यही कहा गया है कि भोजके स्वर्गवासके बाद धारा अंधकारमें लुप्त हो गयी (आदित्यके समान प्रतापवान् और शिवभक्त भोज राजा के स्वर्ग † चले जाने पर)। इसी प्रकार नागपुरकी प्रशस्तिको

† तत्रादित्य प्रतापे गतवति सदनं स्वर्गिणां भर्गभक्ते।

प्रकाशित करते हुए कीलहार्नने कहा है कि भोजका अंत दुर्दशामें हुआ। पर बादमें उन्हें मेरुतुङ्गका दिया हुआ वृत्तान्त पूर्णतः विश्वसनीय नहीं जान पड़ा नागपुरकी प्रशस्तिकी शब्द-रचनासे भी यह अर्थ नहीं निकलता कि भोजका अंत शोचनीय हुआ। "भोजके इंद्रके बंधु बनने पर और राज्यके विपद्ग्रस्त हो जाने पर ×" इस वाक्यांशसे स्पष्ट है कि भोजकी मृत्यु शान्तिके साथ हुई और उसके बाद ही राज्यपर आपत्तियाँ आयीं। इनमेंसे किसी भी लेखसे यह अर्थ नहीं निकलता कि भोजकी मृत्युके समय दुःखका काल आगया था। इससे यह भी स्पष्ट है कि भोजकी मृत्युके बाद ही भोजके शत्रुओंको मालवा पर चढाई करनेका उपयुक्त समय दिखाई दिया। भोजके पुत्र जयसिंहका अंत जरूर बुरी दशामें हुआ। उसकी चर्चा आगे की जायगी। मेरुतुङ्गके इस कथनकी पुष्टि कि भोजका अत बुरी दशामें हुआ, न नागपुर-प्रशस्ति और न उदयपुर-प्रशस्ति ही करती है। दुर्भाग्यवश सर विन्सेन्ट स्मिथके इतिहासके तीसरे संस्करणमें भी यह बात ऐसी ही रह गयी है। इसलिए यहाँ पर उसका खंडन कर देना ज़रूरी है। मेरुतुङ्गकी कथाको बनावटी सिद्ध करनेके लिए और भी कई प्रमाण हैं। भोज जैसे सुप्रसिद्ध राजापर की गयी इस काल्पनिक विजययुक्त चढ़ाईका उल्लेख चेदीके हैहयोंके किसी भी लेखमें नहीं मिलता। इतना ही नहीं बल्कि भीमके इस विक्रमका उल्लेख गुजरातके चालुक्योंके भी किसी लेखमें नहीं मिलता। उनके कितने ही लेखोंमें भीमके नामके पहले किसी भी विशेषणका प्रयोग नहीं पाया जाता। किन्तु जयसिंह सिद्धराजका वर्णन हमेशा 'अवंतिनाथको जीतनेवाला' कहकर किया है। यदि भीमने सच-

× तस्मिन्वासवबन्धुतामुपगते राज्ये च कुल्याकुले॥

मुच ही भोजको पराजित किया होता तो अवंतीके राजाओं-मेंसे किसी छोटेसे राजापर जयसिंहकी प्राप्त की हुई विजयकी अपेक्षा भीमके यशस्वी शासनकालको अत्यंत उज्ज्वलता प्रदान करनेवाले इस पराक्रमको जरूर ही अधिक महत्व दिया गया होता। दूसरे, नागपुरकी प्रशस्तिमें भोजको मृत्युके बाद धार पर की गयी जिन चढ़ाइयोंका उल्लेख है उनमेंसे किसीमें भी भीमका जिक्र तक नहीं है। उनमें चेदीके कर्ण और कर्नाटके राजाका उल्लेख है। या तो वे दोनों मिल गये होंगे या मालवाकी प्रभुताके विषयमें उनमें प्रतिस्पर्धा शुरू हो गयी होगी। इस बातका विवेचन हम आगे चलकर करेंगे। किन्तु गुजरातके राजाओंके पराक्रमोंके फलित वर्णन देकर शायद उन्हें खुश करनेके लिए ग्रन्थ लिखनेवाले मेरुतुङ्ग परसे हमारा विश्वास उठानेके लिए केवल यही बात काफी है कि नागपुरकी प्रशस्तिमें कहीं भीमका उल्लेख नहीं है। सारांश यह कि हमें तो यह यकीन है कि भोजका अंत शांतिपूर्वक हुआ और उसकी मृत्युके बाद उसके शत्रुओंने धारपर चढ़ाई की।

इसी प्रसंगसे सम्बन्ध रखनेवाली एक और भी ग़लतफ़हमी है। वह यह है कि भोजके पराजय तथा मृत्युके बाद राज्यमें जो अराजकता फैल गयी उसे नष्ट करनेमें गहरवार राजा चंद्रदेवने सहायता की। बलिक उसीने उसका दमन भी किया। उसके दो शासनपत्र मिले हैं जिनमें लिखे हुए श्लोकोंके कुछ चरणोंमें उसकी स्तुति है। इस गलतफहमीकी उत्पत्ति इन चरणोंका अर्थ करनेमें ही हुई है। मदनपालके शासनपत्रमें (इ० एँ० १४ पृष्ठ १०३) भोजका स्पष्ट उल्लेख है। किन्तु भोजकी मृत्यु अथवा उसकी मृत्युके बाद राज्यमें जो अव्यवस्था फैली उससे गहरवार राजाका किसी प्रकार भी सम्बन्ध था,

ऐसा अर्थ उन चरणोंसे नहीं निकाला जा सकता। (इं० ऐं० १८ पृष्ठ ११, इन चरणोंका ठीक ठीक अर्थ हम आगे चलकर बतावेंगे) दूसरे चंद्रदेवके उत्कर्षका काल भोजके मृत्युकाल (सं० १०५५ के लगभग) से भी नहीं मिलता। उसका उत्कर्ष इसके कई साल बाद अर्थात् १०८० ईसवीके लगभग हुआ। इसके अतिरिक्त चंद्रदेवकी सहायताकी आवश्यकता भी तो नहीं थी। क्योंकि चेदीके कर्णदेवने चढाई कर राज्यमें अव्यवस्था उत्पन्न कर भी दी हो तो, जैसा कि कर्नल ल्युअर्ड और श्रीलेलेने अपने ग्रन्थके पृष्ठ १५ पर कहा है, कर्नाटके राजा सोमेश्वरने परमार राजासे मित्रता कर ली थी। (पृष्ठ २७ पर यह सर्वथा विरुद्ध उल्लेख है कि जयसिंहको कर्ण और भीमने ही सिंहासनपर बैठाया।) लेखकोंने कितनी ही बातें अपनी कल्पनासे ही जोड दी है, किन्तु उन्होंने भी कहीं गहरवार (अथवा राठोड) राजा चंद्रदेवका उल्लेख नहीं किया है। अत हमें तो साफ दिखाई देता है कि यह सारी गलतफहमी उक्त दो चरणोंका ग़लत अर्थ लगानेसे ही उत्पन्न हुई है।

भारतवर्षके इतिहासमें चिरस्थायी कीर्ति सम्पादन करने वाले विख्यात राजाओंमें भोजकी गणना प्रमुखताके साथ की जानी चाहिये। वह मालवा देशका स्वतंत्र राजा ही नहीं था, बल्कि उसकी सत्ता सारे भारतवर्ष भरमें मानी जाती थी। इस बातका रहस्य अभीतक पूरी तरह समझा नहीं गया है। उदयपुरकी प्रशस्तिमें उसके विषयमें कहा है कि 'वह हिमालयसे रामचंद्रके सेतुतक राज्य करता था'। शब्दशः देखनेसे तो निःसन्देह यह मिथ्या है। परन्तु पुराने समयमें सार्वभौमत्वका अर्थ यह नहीं होता था कि अन्य राजाओंपर प्रत्यक्ष रूपसे शासन किया जाय। सार्वभौम होनेका मतलब

इतना ही था कि अन्य राजा उसकी प्रधानताको मानते हैं। यदि इस प्रकारकी स्तुति उसी राजवंशके शिलालेखोंमें की गयी हो तब तो उसे आश्रित भाटोंकी अतिशयोक्तिकी अपेक्षा अधिक महत्त्व कदापि नहीं मिल सकता। पर जब ऐसी प्रशंसा अन्य राजवंशोंके लेखोंमें पायी जाती है तब ज़रूर मानना पड़ता है कि उसका आधार सत्य है। इस रीतिसे हम देखते हैं कि गहरवारोंके लेखोंसे सार्वभौम होनेकी बातको पुष्टि हुई है। मदनपाल और गोविन्दचन्द्रके शासनपत्रोंके जिन दो श्लोकोंके गलत अर्थ लगानेकी बात हम ऊपर कह चुके हैं उन्हींमें इस बातका प्रमाण मिलता है कि भोज सार्वभौम राजा माना जाता था। दूसरे शासनपत्रके श्लोकमें (इं० एं० १४ पृष्ठ १०२) कहा गया है कि * 'जब श्रीभोज भूप देववधुओंके नेत्रोंका आतिथ्य स्वीकार करने लगे और श्रीकर्ण कीर्तिशेष होगये और भूमि त्रस्त हो गयी तब उसने राजा चंद्रदेवको प्रेमपूर्वक अपना पति बनाया और विश्वासपूर्वक उसे अपना त्राता माना।' इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वीपर (भारत-भूमिपर) चन्द्रदेवके पहले सम्राट्पदको धारण करनेवाले भोज तथा कर्ण ये दो राजा हो गये थे। यह भोज प्रतिहार सार्वभौम कुलका भोज नहीं है। क्योंकि वह भोज (८४०-८९०) तो कभीका मृत्युको प्राप्त हो चुका था। (भाग २ पु० ४, प्र० ४, देखिये) अतः यह तो १०५५ ईसवीमें मृत्यु प्राप्त करनेवाला मालवाका भोज ही हो सकता है। इस श्लोकमें जिस

---

* याते श्री भोजभूपे विबुधवरवधूनेत्रसीमातिथित्वं।
श्री कर्णे कीर्तिशेषं गतवति च नृपे क्ष्मात्यये जायमाने॥
भर्तारं यं धरित्री त्रिदिवविभुनिभं प्रीतियोगादुपेता।
त्राता विश्वासपूर्वं समभवदिह स क्ष्मापतिश्चन्द्रदेवः॥

कर्णका उल्लेख है वह या तो १०६३–१०८३ तक राज्य करने वाला अनहिलवाडेके चालुक्यवंशका कर्णदेव होगा या चेदीका राजा गांगेयदेवका पुत्र कर्ण होगा। कहा गया है कि कर्णकी मृत्युके बाद सार्वभौमत्व चंद्रदेवको प्राप्त हुआ, इससे संदेह होता है कि वह चालुक्य कर्णदेव न होगा। गुजरातके कर्णकी मृत्यु सभवतः ग्यारहवीं सदीके आखिरी दशकमें हुई। और उसके उत्तराधिकारी जयसिंह सिद्धराजकी जैसी कर्णकी स्तुति कहीं पायी नहीं जाती। चेदीका कर्ण यद्यपि अपने कुलमें अत्यंत सामर्थ्यवान् राजा हुआ और भोजकी मृत्युके बाद उसने मालवापर अपना अधिकार जमा लिया हो तो भी उसने बहुत सालतक राज्य किया और जब चंद्रदेवके उत्कर्षका आरंभ १०८० ईसवीके लगभग हुआ तब वह जीवित भी था। उक्त श्लोकोंमें कहा गया है कि कर्णके मरनेपर चंद्रदेवको सार्वभोमत्वका सम्मान प्राप्त हुआ। इस लिए यह निश्चित करना कठिन है कि चंद्रदेवके उदयके पहले जिस सम्राट् कर्णकी मृत्यु हुई वह कौन था। इस प्रश्नका संतोषप्रद उत्तर चाहे जो हो, पर यह निश्चित है कि इस श्लोकका सम्बन्ध मालवासे नहीं है। क्योंकि मालवाने कभी चंद्रदेवको अपना राजा स्वीकार नहीं किया। भोज, कर्ण और चद्र ये तीनों राजा मालवा, चेदी और कन्नौज इन तीन भिन्न भिन्न राज्योंपर राज्य करते थे। श्लोकमें तो स्पष्ट ही अखिल भारतीय सार्वभौमत्वका उल्लेख है। 'क्षमात्यये' इस शब्दसे सूचित किया हुआ उपद्रव और गहरवारोंके लेखके पहले श्लोकमें जिसका वर्णन है वह उपद्रव, दोनों, एक ही हैं। (ए० इ० १८, पृष्ठ ११) उस श्लोकका अनुवाद यों होगा— "राजा चंद्रदेवने उद्धत और धीर योध रूपी तिमिरको

नाश किया और अपने विक्रमसे समस्त प्रजाके उपद्रवको शान्त कर दिया।" ❀

क्रूर तुर्कोंकी चढ़ाइयोंके कारण समस्त हिन्दू प्रजामें जो अशान्ति मच गयी उसका इस श्लोकमें स्पष्ट उल्लेख है। वस्तुतः भोजने भी इस उपद्रवको कम करनेमें अपनी शक्ति लगायी थी। और इसीलिए संकटोंसे बचानेवाले पहले सार्वभौम राजाकी हैसियतसे उसकी इतनी कीर्ति फैली है। भोजका शासनकाल १०५५ ईसवीमें समाप्त हुआ। उसके बाद यह अधिकार चेदीके राजा कर्णके हाथमें गया। कर्णके बाद विदेशियोंके जुलमको नष्ट करनेका वह काम चन्द्रदेवके सिरपर आया। हम आगे चलकर कन्नौजका हाल लिखते समय यह बतावेंगे कि चन्द्रदेवने इसी उद्देशसे कन्नौजके सार्वभौम सिंहासनसे दुर्बल प्रतिहार राजाको हटाकर वहाँ अपने राज्यकी स्थापना की। इस दृष्टिसे देखा जाय तो उदयपुरकी प्रशस्तिमें भोजको भारतवर्षका सार्वभौम राजा बताकर उसकी जो स्तुति की गयी है वह अत्युक्तिपूर्ण नहीं मालूम होती। दूसरे, गहरवारोंका यह लेख भी इसकी पुष्टि करता है। यदि एक बार फिर इसी दृष्टिसे देखा जाय तो उदयपुरकी प्रशस्तिके एक और श्लोकपर नवीन प्रकाश पड़ता है। उस श्लोकमें कहा है कि भोजने गुर्जरोंके राजाको जीत लिया। गुर्जरोंका यह राजा वह भीम नहीं जो उस प्रान्तका, जिसे आजकल हम गुजरात कहते हैं, (भाग २) राजा था। बल्कि

❀ तस्यासीत्तनयो नयैक रसिकः क्रान्त द्विषन्मण्डलो।
विध्वस्तोद्धत धीर योध तिमिरः श्री चंद्रदेवो नृपः॥
येनोदारतर-प्रताप शमिताशेषप्रजोपद्रवं ।
श्रीमद्गाधि पुराधि राज्य मसमं दोर्विक्रमेणार्जितम्॥

यह तो उन राजाओंमेंसे कोई राजा होगा जिन्हें तत्कालीन अन्य राजाओंके लेखोंमें गुर्जरोंका राजा कहा गया है अर्थात् यह कन्नौजके प्रतिहार राजाओंमेंसे ही कोई होगा। यथार्थतः वर्तमान गुजरात तो ईसाकी ग्यारहवीं सदीके अन्तमें गुजरात कहाने लगा है, जैसा कि हम आगे चलकर स्पष्टतया बतावेंगे। अतः इस श्लोकके गुर्जरसे कन्नौजके उन प्रतिहार राजाओंसे मतलब होगा जो दुर्बलताके कारण तुर्कोंके मांडलिक और मित्र बन गये थे। अतः जिसने केवल पूर्वके गांगेयदेवका ही पराभव नहीं किया बल्कि राज्यपालके बाद कन्नौजके सिंहासनपर बैठनेवाले दुर्बल प्रतिहार राजाओंका तथा उनकी सहायता करनेवाले तुर्कोंका भी पराभव किया होगा। इस तरह उसने उत्तर भारतको विदेशी एवं विधर्मी तुर्कोंके भयसे मुक्त कर दिया। इस श्लोकमें तो लिखा है कि भोजकी भेजी हुई सेना या सेनापतिने ही उन राजाओंको परास्त किया था। बहुत संभव है उसने अपनी सेना उत्तरमें दिल्ली और पंजाबतक भेजी हो। सर विंसेण्ट स्मिथने भोजकी तुलना समुद्रगुप्तसे की है। यह बहुत अंशोंमें ठीक है। क्योंकि यद्यपि भोजने समुद्रगुप्तकी तरह समस्त पृथ्वीका दिग्विजय करनेका उपक्रम नहीं किया था तथापि देशभरमें उसकी सत्ता अवश्य ही प्रस्थापित अथवा मान्य हो गयी थी और इसी कारण जैसा कि उदयपुर-प्रशस्तिमें कहा गया है वह हिन्दुस्थानकी चारों दिशाओंमें, सोमनाथ, रामेश्वर सुंडीर (पूर्व समुद्रतटपर) और केदार जैसे दूर दूरके स्थानोंमें शिवालय बनवा सका। उसने अपने ही राज्यमें जो महाकालका देवालय बनवाया था उसके उल्लेखकी कोई आवश्यकता नहीं है। पर उसने अपने आराध्य देवके मन्दिर इतनी दूर और दूसरेके राज्यमें बनवाये, इससे

उसके सार्वभौमत्व, वैभव और पुरुषार्थका प्रमाण मिलता है। यहाँपर हमें हठात् आधुनिक कालीन पुण्यश्लोका देवी अहिल्या बाईकी सत्ता, वैभव और कर्तृत्वका स्मरण हो आता है। उसने भी इसी प्रकार भारतवर्षके तमाम तीर्थक्षेत्रोंमें देवालय, घाट और धर्मशालाएँ आदि बनवायी थीं। वह भी मालवाकी ही रानी थी। मल्हाररावने अन्य राज्योंको लूट लूट कर जो अपार द्रव्य संचय किया था उसमेंसे उसने बहुतसा द्रव्य इन पुण्य कार्योंमें लगाया था। ऐसा ही शायद भोजने भी किया होगा। अनहिलवाड़ा तथा अन्य राज्योंमें उसके सेनापतियोंने जो धन लूटा था उसे उसने भारत भरमें दान धर्म करनेमें ही खर्च किया होगा। अपने समकालीन महमूदके समान उसने धन-लोभ या विषयोपभोगकी आसक्तिसे लूटके धनका संचय नहीं किया। बल्कि पुण्यप्रद देवालय बनवाकर उस धनका उसने ऐसा सदुपयोग किया जिससे देशभरमें उसकी कीर्ति चिरकाल तक फैलती रही। दूरस्थ काश्मीरमें तक, जहाँपर किसीने उसकी सत्ताको स्वीकार नहीं किया था, अपने खर्चेसे एक पुण्य कुण्ड बनवा कर वहाँ भी उसने अपनी कीर्ति फैला दी। *

भोजकी महती कीर्ति और विमल यशका ख्याल कर ही काश्मीरके राजाने उसे अपने राज्यमें यह तालाब बनवानेको

---

* कल्हणने राजतरंगिणीमें इस विषयमें एक सरस कथा लिखी है। वह कहता है कि मालवाके भोजने यह नियम धारण किया था कि काश्मीरके पापसूदन तीर्थके पानीसे रोज सुबह मुख प्रक्षालन किया जाय। काश्मीरके राजाका प्रिय सरदार पद्मराज इस नियमके पालनमें भोजकी सहायता करता था। वह काँचके बर्तनमें पानी भरवाकर रोज भोजके पास भिजवाता था।

सुविधा कर दी होगी। किन्तु हमें यह उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि महमूदके समान भोजने अनेक देश लूटे थे। इससे हमें यह मान लेना चाहिए कि उसकी सम्पत्ति अपने देशमें ही उत्पन्न हुई थी। मालूम होता है कि उसके शासन-कालमें मालवा अत्यन्त समृद्ध रहा होगा। उसकी शासन-व्यवस्था इतनी उत्कृष्ट थी कि अन्नकी उत्पत्ति बहुत अधिक होने पर भी प्रजापर करका बोझ ज़्यादह नहीं पड़ता था। उसकी यह विपुल संपत्ति उसके देशकी समृद्धि तथा उसके शासनकी सुव्यवस्था और सुखप्रदताका ज्वलन्त प्रमाण है।

भोज जैसा एक प्रसिद्ध ग्रन्थकार था, वैसा ही वह विद्वज्जनों-का विख्यात आश्रयदाता भी था। विद्वानोंके प्रति वह अत्यंत उदार था। संभव है, कविजनोंको उसके द्वारा उदारतापूर्वक दिये गये पुरस्कारोंकी कथाएं अत्युक्तिपूर्ण हों। कहा जाता है कि प्रत्येक कविको, जो एक भी उत्कृष्ट नवीन भावपूर्ण श्लोक बनाकर ले जाता, भोज एक लक्ष मुद्राएँ देता था। महमूद यद्यपि उसका सम-कालीन था तथापि उसमें और इसमें महान अन्तर था। उसका वर्ताव तो इसके ठीक विपरीत था। यद्यपि कथा-लेखकोंने इन कहानियोंके लिखनेमें अत्युक्तिसे खूब काम लिया है तथापि यह निर्विवाद सिद्ध है कि वह विद्वानोंके प्रति अतीव उदार था। उसका राजभवन अथवा उसके बनाये वे विशाल मन्दिर आज कहीं नहीं दीख पड़ते। अधिक क्यों आज तो उनकी स्मृति भी निःशेष सी हो गयी है। किन्तु उसकी इस उदारताने तो निःसन्देह उसकी कीर्तिको अजर अमर कर दिया है। हम यह बात नहीं मानते कि उसके दरबारमें कोई नया या पुराना कालिदास था। यह तो केवल कथा-लेखकोंकी कल्पना मात्र मालूम होती है। संभव है नवसाहसाङ्कचरितका लेखक

और भोजके पिताका राजकवि पद्मगुप्त ही इन कथा लेखकोंके हाथोंमें कालिदास बना दिया गया हो। धनपाल नामक एक दूसरे कविका भी भोजके नामके साथ उल्लेख पाया जाता है। वडनगरके विद्वान् ऊवटने वाजसनेयि संहितापर की गयी अपनी टीका भोजके शासनकालमें ही उज्जयिनीमें लिखी थी। (ल्युअर्ड और लेले पृष्ठ २१) कितने ही अन्य विद्वान् भी भोजके दरबारमें रहे होंगे। किन्तु उनके नाम अभी उपलब्ध नहीं हुए हैं।

भोजकी जितनी स्तुति की जाय थोड़ी ही है। भारतवर्षके अत्यंत विख्यात राजाओंमें उसकी गणना की जा सकती है। अन्य देशके शिला-लेखोंने भी उसे कविराज और मालवाका चक्रवर्ती कहा है। यह उचित ही है। * वह मालवाका सार्वभौम राजा था। (चक्रवर्ती विशेषणका अर्थ हम आगे चलकर स्पष्ट करेंगे।) भोजकी श्रेष्ठताका वर्णन करनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि उदयपुरकी प्रशस्तिमें उसका जो वर्णन आया है उसीका अनुवाद कर दिया जाय। "भोजने ऐसा राज्य किया, सत्ता स्थापित की, दान दिये और शास्त्रोंको जाना जैसा किसी राजाने नहीं किया था।" † इस छोटेसे वाक्यमें उसके द्वारा भारतभरमें बनवाये गये देवालयादिकोंका, उसकी सार्वभौम सत्ताका, कवि तथा विद्वानोंको दिये हुए उदार उपहारोंका और उसके विशाल ज्ञान तथा विविध विषयोंके अध्ययनका उत्कृष्ट रीतिसे उल्लेख किया गया है।

---

* क्षिप्रं मालवचक्रवर्तिनगरी धारेतिको विस्मय.
(ए० इ० १ पृष्ठ २९७ गुजरातके चालुक्योंकी वडनगर प्रशस्ति)

† शासितं विहितं ज्ञातं दत्तं तयस्य येनचिन्।
किमन्यत्त कवि राजस्य श्री भोजस्य प्रशस्यते॥ (ए० इ० १ पृ० २२)

चौथा प्रकरण।

भोजके बादके परमार राजा।

भोज केवल मालवाके परमार राजाओंमें ही नहीं, बल्कि समस्त भारतवर्षके हिन्दू राजाओंमें निःसंशय अत्यन्त श्रेष्ठ था। इसीलिए हम उसका वृत्तांत इतने विस्तारसे दे रहे हैं। मालवाका परमार राजवंश भोजके समय अपने वैभवकी चरम सीमाको पहुँच चुका था। इसलिए स्वभावतः भोजके बाद उसकी कला घटने लगी। उसके लड़के जयसिंहका शासनकाल संकटापन्न था। और संभवतः वह थोड़े ही समयतक रहा। भोजकी मृत्युके कुछ ही दिन बाद चेदीराज कर्णने धारपर चढ़ाई की और उसे वहांसे भगा दिया। आपत्तिका मारा जयसिंह आहवमल्ल सोमेश्वरके दरबारमें आश्रयके लिए गया। सोमेश्वरने अपने पुत्रको उसके साथ दे उसे पुनः अपने धारके पैतृक सिंहासनपर बैठा दिया। इन सब बातोंका अनुमान उस शासन पत्रसे होता है जो उसने ईसवी सन् १०५६ में राज्यारूढ होने पर जारी किया। उसने पूरणक पट्टक (पूर्णासा) का नर्मदाके तीरपर बसा हुआ मांधाता नामक एक गाँव अमरेश्वरके ब्राह्मणोंको दानमें दिया। चूँकि उसका शासनकाल अल्पकालीन ही था, और चूँकि उसने अपना राज्य दूसरेकी सहायतासे प्राप्त किया था जो शायद पुनः छीन लिया गया, इसी लिए उदयपुरकी प्रशस्तिमें उसका नामोल्लेख नहीं है, न नागपुरकी प्रशस्तिमें ही उसका नाम है। जयसिंहके राज्यकालमें मालवामें जो अव्यवस्था और अशान्ति छा गयी थी उससे किसी उदयादित्य नामक व्यक्तिने अपने पराक्रमसे मालवाको

मुक्त किया*। उदयादित्यके विषयमें केवल यही उल्लेख प्राप्त होता है कि वह भोजका कोई सम्बन्धी था। यह पता नहीं लगता कि भोजका और उसका क्या रिश्ता था। उदयादित्यके राज्यारूढ़ होनेपर मालवाके दूसरे वैभवकालका आरम्भ हुआ किन्तु वह मुञ्ज और भोजके समयकी तरह दैदीप्यमान नहीं था। यह मुसलमान सत्ताकी स्थापनातक अर्थात् कोई दो सौ वर्षतक रहा। उदयादित्य शक्तिशाली राजा था और उसमें अपने पूर्वजोंकी विद्याभिरुचि भी थी। भोजकी तरह उसने भी कई तालाब आदि बनवाये। अपने नामपर उसने उदयपुर नामक एक शहर बसाया और वहाँ उसने जो भव्य शिवालय बनवाया वह अबतक उसके वैभव और कौशलकी साक्ष्य दे रहा है। नागपुर और उदयपुरकी प्रशस्तिसे स्पष्ट मालूम होता है कि उसने मालवाका उद्धार अपने स्वतंत्र पराक्रमसे किया था। उसने किसी विदेशी राजाकी सहायता नहीं ली। नागपुरकी प्रशस्तिमें तो कर्नाटके राजाका उल्लेख शत्रु कहकर किया गया है, मित्र कहकर नहीं।

तस्मिन्वासवबन्धुतामुपगते राज्ये च कुल्याकुले।
मग्न स्वामिनि तस्यबन्धुरुदयादित्योऽभवन्नूपतिः॥
येनोद्धृत्य महार्णवोपम मिलत्कर्णाटकर्णा प्रभु—।
र्युर्वी पालकदर्थितां भुवमिमां श्रीमद्वराहायितम्॥

* बिल्हणके काव्यके एक श्लोकके आधारपर कर्नल ल्युअर्ड और श्री लेले ने ऐसा कथन किया है कि धारको पुनः प्राप्त करनेमें कल्याणके चालुक्य राजा छठे विक्रमादित्यने उदयादित्यकी सहायता की थी। हमारे मतानुसार उनका यह कथन ग़लत है। मज़ा तो यह है कि उन्होंने इस बातका उल्लेख पुनः एक बार अपनी किताबके १५ वें पृष्ठ पर भी किया है।

यहाँपर कीलहार्न ने 'प्रभुमुर्वी' पाठ दिया है। किन्तु हमने 'प्रभृत्युर्वी' रक्खा है। 'प्र' के बादवाले नष्ट अक्षरको 'भु' पढ़नेसे कोई अर्थ नहीं निकलता और वह अशुद्ध भी होता है। इस श्लोकका अनुवाद यों होगा :—"जब वह (भोज) इन्द्रका बन्धु बन गया (मृत्युको प्राप्त हुआ) और राज्यमें अशान्ति हो गयी, तथा राज्यका स्वामी निमग्न हो गया तब भोजका भाईबन्द उदयादित्य राजा हुआ। उसने समुद्रके समान कर्ण कर्णाट प्रभृति राजाओं द्वारा त्रस्त भूमिका श्री वराहके समान उद्धार किया। इसमें कर्नाट राजाका स्पष्ट रूपसे शत्रु कहकर उल्लेख किया गया है। शुरूसे इस प्रसंगका यथायोग्य बोध ही नहीं हुआ था। कीलहार्नने तो यह कल्पना प्रचलित कर दी कि स्वयं भोजके अन्तिम दिन ही सकटापन्न अवस्थामें बीते थे। इस श्लोकके 'भोजकी मृत्युके बाद' इन शब्दोंसे तथा नागपुरकी प्रशस्तिके शब्दप्रयोगसे यह स्पष्ट है कि यह त्रास भोजको मृत्युके पहले नहीं बल्कि बादमें ही उत्पन्न हुआ था। भोजने गांगेयदेवका जो बुरी तरह पराजय किया था उसका बदला चेदीराज कर्ण लेना चाहता था। भोजकी मृत्युके बाद अपने मलिन यशको उज्वल करनेका अवसर पा उसने अवश्य ही मालवापर चढ़ाई की होगी, और इसीसे कदाचित् यह अशान्ति तथा अव्यवस्था उत्पन्न हुई हो। भोजका लड़का जयसिंह तो दुर्बल था। वह संभवतः भाग गया और कल्याणके राजा सोमेश्वरके आश्रयमें जाकर रहने लगा। सोमेश्वरने अपने पूर्व परम्परागत वैरको भूलकर और शायद चेदीके बढ़ते हुए सामर्थ्यको रोकनेके ख्यालसे उसकी सहायता की और मालवाके सिंहासनपर उसे बैठा दिया। विक्रमांकदेव चरितके तीसरे सर्गके श्लोकका इशारा इसी

जयसिंहके सोमेश्वर द्वारा सिंहासनपर बठाये जानेकी ओर होगा। दुर्भाग्यवश उसमें मालवराजके नामका उल्लेख नहीं है। (स मालवेन्दुं शरणं प्रविष्टमकंटके स्थापयति स्वराज्ये—विक्रम ३) किन्तु यह मालवराज न तो भोज हो सकता है और न उदयादित्य ही। कर्णने पुनः चढ़ाई कर जयसिंहको मालवासे मार भगाया होगा। इसके बाद इस अभागे राजाके विषयमें कुछ भी सुनाई नहीं देता (नागपुर प्रशस्तिके 'मग्ने स्वामिनि' शब्दोंसे यह बात स्पष्टतया सूचित होती है) दक्षिण और उत्तरकी सेनाओंने मालवामें समुद्रके समान एकत्र हो वहाँके राज्यको डुबो ही दिया था किन्तु उदयादित्यने अपने स्वपराक्रमसे देशकी उस संकटसे रक्षा की (ए० इं० ६ पृष्ठ १०८ देखिए, 'महाकलह कल्पान्ते यस्योद्दामभिराशुगैः। कति नोन्मूलिता स्तुङ्गा भूभृतः कटकोल्वणाः ॥) मेरुतुङ्गने यह गड़बड़ी की है। किन्तु तत्कालीन शिलालेख और बिल्हणके विक्रमांक देवचरितका योग्य रीतिसे अर्थ लगाया जाय तो उसका कथन असत्य और काल्पनिक ही सिद्ध होगा।

उदयपुरके शिवालयके इतना ऊँचा शिखर भारतवर्षमें किसी भी देवालयका नहीं है। इस मंदिरको बनानेमें चूना या मसाला नामको भी नहीं लगाया गया है, पत्थर ही इस सफाईसे काटकर बैठाये गये हैं कि परस्पर मजबूतीसे जुड गये हैं। इस देवालयमें परमार राजाओंके कई शिलालेख हैं। देवालय क्या है, परमार राजाओंकी कुलक्रमागत कीर्तिका खासा संग्रहालय ही है। इन शिलालेखोंमें सबसे पुराने शिलालेख दो हैं। वे स्वयं उदयादित्यके हैं। उनसे ज्ञात होता है कि इस देवालयके निर्माणका काम सन् १०५६ में शुरू हुआ और सन् १०८० में

उसकी समाप्ति हुई (ल्युअर्ड और लेले पृष्ठ २६)। इस राजाने बहुत दिनोंतक अर्थात् १०५६ से १०८१ ई० तक राज्य किया। उसके बाद इसका पुत्र लक्ष्मणदेव सिंहासनारूढ़ हुआ।) वह शूरवीर और विद्वान् था। नागपुरकी प्रशस्तिमें उसके विषयमें कई श्लोक हैं जिनमें उसे सबसे अधिक गौरवशाली बताया है। उसमें उसके दिग्विजयका आरम्भ गौड़ देशसे किया जाना कहा गया है। चेदी, चोल, पांड्य, सिंहलद्वीपके राज्य तथा अन्य राज्योंको जीत कर अन्तमें वंक्षु (आक्सस) नदीके तीरपर रहने वाले तुरुष्क और हिमालयसे वीर राजाओं पर भी विजय प्राप्त कर उसने अपने दिग्विजयकी समाप्ति की। ये बातें प्रशस्तिमें लिखी हैं। (जैसा कि कवि लोग प्रायः किया करते हैं, इसमें भी किसी शब्द पर श्लेष रखा गया है। किसी राजाने पंजर-बद्ध तोतेकी तरह लक्ष्मणदेवकी स्तुति की, इत्यादि ऐसा वर्णन किया गया है।) यह लेख उसके छोटे भाई नरवर्माका लिखा हुआ है जो उसके बाद सिंहासनपर आरूढ़ हुआ था। निःसन्देह शिलालेख अत्युक्तिसे परिपूर्ण है। राजा नरवर्मा उत्कृष्ट कवि था। और जैसा कि कालिदासने अपने रघुके पौराणिक दिग्विजयमें वंक्षु नदीका उल्लेख किया है, वैसे ही इसने भी देखादेखी अपनी कवितामें वक्षु नदीका नाम लिख दिया होगा, ऐसा प्रतीत होता है। जिन शिलालेखोंसे केवल ऐतिहासिक सत्यकी आशा की जाती है उनमें किस तरह अत्युक्ति की जाती है, यह दिखाने मात्रके लिए हमने इसका उल्लेख यहाँ किया है। मतलब यह कि समकालीन और विश्वासार्ह शिलालेखोंको भी सत्यकी कसौटीपर खूब जाँच कर देख लेना चाहिये। चाहे इन वर्णनोंको असत्य सिद्ध करनेके लिए कोई सबूत न भी हो तथापि अन्य राजाओंके तथा

विदेशियोंके लेखोंसे यदि इनकी पुष्टि न होती हो तो हमें इनको संदेहकी दृष्टिसे ज़रूर देखना चाहिए।

लक्ष्मणदेवके कोई पुत्र नहीं था, इसलिए उसका छोटा भाई नरवर्म देव सिंहासनपर बैठा। वह बड़ा कवि था। उसने सन् ११०४ में जो 'नागपुरकी प्रशस्ति" लिखी उसके पहले किसी समय वह राज्यारूढ हुआ होगा। उज्जैनके महाकालके देवालयमें मिले हुए एक अप्रसिद्ध शिलालेखके टुकड़ेका लेखक भी शायद वही रहा होगा (ल्युअर्ड और लेले पृष्ठ २६) धारकी भोजशाला और उज्जैनके महाकालके मन्दिरमें कुछ शिलालेख मिले हैं। वे सर्पाकृति हैं और उनपर पाणिनीके संस्कृत नामों तथा धातुओंके प्रत्यय दिये हैं। साथ ही उदयादित्य और नरवर्म देवके नामोंका उल्लेख कर उनके शौर्य और विद्वत्ताका श्लेषयुक्त भाषामें निर्देश किया है। ये श्लोक बहुत करके धार और उज्जयिनीकी पाठशालाओंके पाठ्य विषयोंमें रक्खे गये होंगे। ※

उदयादित्यका सबसे छोटा लड़का जगदेव अत्यंत शूर और उदार राजपुत्र था। चालुक्योंके आश्रयमें रहते हुए गुजरातमें, मालवामें, और अन्य देशोंमें उसने जो अद्भुत पराक्रम किये, उनका वर्णन लेखकोंने खूब किया है। वह चाहे सत्य हो या असत्य, इतिहासमें उसके नामका, तथा उपन्यासकारोंके लिए एक नया विषय उपस्थित करनेवाली उसकी साहसप्रियताका, उल्लेख करना जरूरी है।

※ उदयादित्य नामांक-वर्णनाग-कृपाणिका ……………
कवि भिर्णी सृष्टा सुकवि-बन्धुना।
कवीनांच नृपाणांच हृदयेषु निवेशिता (ल्युअर्ड और लेले पृष्ठ ३०)

उदयादित्य तथा भोजके समान नरवर्मा भी शिवभक्त था। किंतु अन्य धर्मोंके प्रति, खासकर मालवा और गुजरातमें उस समय प्रचार पानेवाले जैनधर्मके प्रति ये सब राजा सहिष्णुताका बर्त्ताव करते थे। जैनधर्मके उपदेशक वाद-विवादमें प्रवीण होते थे। नरवर्मदेव हिंदू और जैन पण्डितोंके वादविवाद बारंबार सुनता था। महाकालके मंदिरमें जैन मुनि रत्नसूरि और शैव मतवादी विद्याशिववादीके बीच जो वाद-विवाद हुआ था उसका वर्णन भी मिलता है। इन विवादोंमें प्रायः जैन पण्डितोंको विजय मिलती थी अतः जिन राजाओं-के सामने ये वादविवाद होते उनपर इनका बड़ा प्रभाव पड़ता। किन्तु परमार राजा अन्ततक शिवभक्त ही बने रहे। यद्यपि नरवर्मा जैन पण्डितोंकी तारीफ करता था और जैन ग्रंथकारों-ने भी उसका आदरके साथ उल्लेख किया है तथापि उसने कभी जैनधर्मको स्वीकार नहीं किया। (ल्युअर्ड और लेले पृष्ठ ३१)

नरवर्माने ईसवी सन् ११३३ तक राज्य किया। उसके बाद उसका लड़का यशोवर्मदेव गद्दीपर बैठा। उसने अपने पिताके प्रथम वर्ष-श्राद्धके उपलक्षमें सन् ११६० में जो दानपत्र दिया था, वह इस समय भी उपलब्ध है। गुजरात और मालवाके बीचकी शत्रुता पुरानी थी। नरवर्माके समयसे ही इन दोनों देशोंके बीच युद्ध चल रहे थे। किन्तु जयसिंह सिद्धराजके समय गुजरातका बल बहुत बढ़ गया। और उसने यशोवर्माको, उसके शासनकालके अन्तिम दिनोंमें, युद्धमें परास्त कर सपरिवार कैद कर लिया। कहा जाता है कि अनहिलवाडेमें वह लकड़ीके पिंजड़ेमें बंद करके रक्खा गया था। अनेक ग्रन्थकारोंने इसका सुविस्तृत वर्णन दिया है।

और स्वयं जयसिंहके शिलालेखोंसे भी इसकी सत्यता प्रमाणित होती है (इ० ए० १०, पृष्ठ ५६)। जयसिंहने मालवाको अपने राज्यमें जोड़ लिया और उसको शासन-व्यवस्थाके लिए अपने एक जैन सचिवको नियुक्त कर दिया। चालुक्योंके शिलालेखोंमें जयसिंहको कई जगह 'अवंतिनाथ' कहा है। इससे सिद्ध होता है कि कुछ कालतक मालवाका वह हिस्सा, जिसमें उज्जयिनी और धारका समावेश होता है, चालुक्योंके अधिकारमें था। अन्तमें यशोवर्माने किसी तरह कैदसे अपना छुटकारा कराया और अजमेरके एक चौहान राज्यको सहायतासे अपने नष्ट हुए राज्यका कुछ हिस्सा फिर प्राप्त कर लिया। जयसिंहने भी उससे सुलह कर ली। ईसवी सन् ११४२ में जयसिंहकी मृत्यु हो गयी। उसके कुछ ही दिन बाद यशोवर्मा भी मर गया। इस तरह यशोवर्माने सन् ११३३ से ११४३ तक राज्य किया। उसके राज्य-कालमें मालवाके राज्यकी अवनति शुरू हुई। उसकी माता ममलादेवी चेदी राजाकी कन्या थी। उसकी स्मृतिमें यशोवर्माने ईसवी सन् ११३४ में जो दानपत्र दिया था वह अब प्राप्त हुआ है। इस दानपत्रसे पता चलता है कि धार राज्यमें ठीकरीके पूर्ववाला रेगवाँ गाँव दानमें दिया गया था (ल्युअर्ड और लेले पृष्ठ ३४)।

यशोवर्माके बाद जयवर्मा राजा हुआ। उसके शासन-कालमें गुजरातने फिर मालवाको जीता। इतिहास प्रसिद्ध कुमारपाल अपने सर्व शत्रुओंको पराजित कर इसके पहले ही गुजरातके सिंहासनपर आरूढ हो चुका था। बल्लालदेव नामक किसी मालव राजाने शत्रुकी सहायता की थी, इसलिए कुमारपालने उसका सिर काटकर अपने राजमहलके प्रवेश-

द्वारपर लटका दिया, ऐसा वर्णन लेखकोंने किया है। कुमारपालकी वडनगर-प्रशस्तिमें इस बातका उल्लेख है किन्तु बल्लालदेवके नामका निर्देश नहीं किया गया। अभीतक इस बातका निश्चय नहीं हो पाया है कि यह राजा कौन था। मालूम होता है कि यह भोजकुलका परमार राजा न रहा होगा। कीलहार्नने सूचित किया है कि यशोवर्माके बंदी-कालमें कुछ साहसप्रिय लोगोंने मालवाके किसी हिस्सेपर अपना अधिकार जमा लिया होगा। किन्तु इस रहस्यको हम आगे लिखे अनुसार सुलझा सकते हैं। संभव है कि बल्लालदेव जयवर्मदेवका ही दूसरा नाम रहा हो। क्योंकि हमारा ख्याल है कि गुजरातके अथवा अन्य किसी भी देशके राजा ऐसे किसी मामूली आदमीको मालवाका राजा न कहते जो भोजकुलमें पैदा न हुआ हो, और न उसको परास्त करने पर अपनी प्रतिष्ठाकी डींग हांकते पर यहां तो स्पष्ट लिखा है।* इसलिए यहां पर हम यदि यह कल्पना करें तो अनुचित न होगा कि कुमारपालके साथ जो लड़ाई हुई उसमें जयवर्मा ही मारा गया था।

इस युद्ध पराजयकी गडबडीमें जयसिंहके छोटेभाई लक्ष्मीवर्माने अपने बाहुबलसे भोपालसे लेकर होशंगाबाद तकके मालवाके पूर्वी हिस्सेवाले पर्वतीय प्रदेशको जीतकर वहां अपनी सत्ता प्रस्थापित कर ली और अपना नाम महाकुमार रख राज्य करना शुरू कर दिया। उसके द्वारा प्रयोग किये गये 'समधिगत पंचमहाशब्द' इस विशेषणसे स्पष्ट व्यक्त होता है

* वडनगरकी प्रशस्तिमें यों लिखा है "द्वारालम्बितमालवेशशिर और आबूके लेखमें इस तरह लिखा है "यश्चौलुक्य कुमारपाल' नृपति प्रत्यर्थितामागतं गत्वा सत्वरमेव मालवपतिं बल्लालमालब्धवान्। (ए० इ. ८ पृष्ट २११)

कि वह स्वतंत्र राजा नहीं बल्कि मालवाका सामंत था। तथापि उसने जो सत्ता स्थापित की थी वह किसीकी दी हुई नहीं बल्कि अपने बाहुबलसे संपादित की गयी थी, यह बात उसकी शाखाके शिलालेखमें साफ साफ कही गयी है। (इं० एँ० १६) कर्नल ल्युअर्ड और श्री लेले ने इस कालका वृत्तान्त लिखते हुए Interregnum and dual rule (राज्य द्वैविध्य) इन शब्दोंका प्रयोग किया है। किन्तु उपर्युक्त कारणोंको देखते हुए हमें उनके ये शब्द मालवाकी उस परिस्थितिके लिए उपयुक्त नहीं जँचते। जयवर्माके शासनकालमें मालवाका अधिकांश हिस्सा गुजरातकी अधीनतामें चला गया और उसकी मृत्युके बाद अथवा उसके राज्यभ्रष्ट होनेपर लक्ष्मण वर्माने मालवाके कुछ हिस्सेको पुनः जीत लिया। पता नहीं जयवर्माका शासनकाल कब और कैसे समाप्त हुआ। कीलहार्नकी कल्पना है कि उसे उसके छोटे भाई अजय वर्माने पदच्युत कर दिया। किन्तु जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, युक्तिसंगत तो यही मालूम होता है कि कुमारपालने उसे युद्धमें कैद कर लिया हो और अन्तमें चन्द्रावतीके यशोधवलने उसका शिरच्छेद कर डाला हो। शिलालेखोंके लेखकोंने 'राज्ये व्यतीते' यह शब्दप्रयोग बहुधा उसके दुःखद अन्तके कारण ही जानबूझकर किया होगा। पर इसमें सन्देह नहीं कि उसके शासनकालका अन्त एकाएक हुआ। लक्ष्मीवर्माके दानपत्रका समय १०६३ ईसवी है। (ए० इ० १८ पृ० २५४ और १६)। इसके पहले किसी समय, बहुत करके ११४३ ईसवीके कुछ ही वर्ष बाद, वह पदच्युत कर दिया गया होगा।

यशोवर्माके संभवतः जयवर्मा, अजयवर्मा और लक्ष्मीवर्मा ये तीन पुत्र थे। जयवर्माका शासन समाप्त होते ही स्वभावतः

अजयवर्मा मालवाका राजा हुआ और पदाभिषिक्त 'महाराजाधिराज परमेश्वर' इत्यादि साधारण पदवीका व्यवहार उसके नामके साथ होने लगा। किन्तु, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, लक्ष्मीवर्माने अपने बाहुबलसे भोपालसे होशंगाबादतकका प्रदेश जीतकर सामंत पदवी धारण कर वहां राज्य करना शुरू कर दिया। परमारकी ये दोनो शाखाएँ तीन पुश्तोंतक मालवा पर अलग अलग राज्य करती रहीं और अन्तमें देवपालदेवके समय फिर एक हो गयीं। किन्तु हम इस बातको नहीं मान सकते कि मालवापर दो राजाओंकी सत्ता थी। लक्ष्मीवर्माका राज्य यद्यपि स्वतंत्र तो था पर सामंत पदसे संतुष्ट हो उसने अजयवर्माके वंशकी अधीनताको स्वीकार कर लिया था।

अजयवर्मा उस प्रदेशपर राज्य करता था जो धारके आसपास था। धार भोजके समयसे उसके वंशमें राज्य करने वाले सभी राजाओंकी राजधानी रही है। अजयवर्मा भी भोजके वंशमें परम्परागत और क्रमप्राप्त राज्याधिकारी था। किन्तु उसका उल्लेख केवल उन्हीं शिलालेखोंमें पाया जाता है जो उसके बादमें लिखे गये थे। उसके विषयमें किसी प्रकारका वर्णन या उल्लेख नहीं मिलता। कई बार यह संदेह भी प्रकट किया जाता है कि जयवर्माके अतिरिक्त अजय वर्मा नामक कोई राजा वास्तवमें हुआ भी था या नहीं। किन्तु इन लेखोंसे अजयवर्माके अस्तित्वके विषयमें कोई शंका नहीं रह जाती। संस्कृतमें, खासकर जहाँ संधियोंका प्रयोग हुआ हो, यह कहना मुश्किल मालूम होता है कि किस शब्दका प्रयोग किया गया है। किन्तु लक्ष्मीवर्माके लेखमें जयवर्मा और विंध्यवर्माके लेखमें अजयवर्मा ये नाम

स्पष्ट पढ़े जा सकते हैं। पहले लेखमें अजयवर्माका उल्लेख क्यों नहीं किया गया? इसका उत्तर यों दिया जा सकता है कि जयवर्माकी जीवित अवस्थामें ही और संभवतः उसकी सम्मतिसे लक्ष्मीवर्माने अपने स्वतंत्र राज्यकी स्थापना की होगी। अजयवर्माने कुछ कालतक मुख्य वंशका क्रम जारी रखा, उसके बाद उसका लड़का विंध्यवर्मा राजा हुआ। मालूम होता है कि उसने अपने पैतृक प्रदेशमेंसे बहुत सा हिस्सा प्राप्त कर लिया था। उदयपुरके शिलालेखके एक लेखसे ज्ञात होता है कि यह प्रदेश ११ दिसम्बर सन् ११६३ ईसवीके दिन गुजरातके कुमारपालके अधीन था। उस दिन चन्द्रग्रहणके निमित्त कुमारपालने एक दान दिया था (इं० एँ० १८ पृष्ठ ३४३) उसका प्रतिनिधि महाराज पुत्र भी वसंतपाल था। चाहड़का लिखा सन् ११६६ का भी एक दानपत्र है। चाहड़ वसंतपालके बादका प्रतिनिधि होगा। भैलस्वामी (भेलसा) जिलाके एक गाँवका सन् ११७३ सालका एक दानपत्र गुजरातके अजयपाल देवका लिखा प्राप्त हुआ है। गुजरातके अजयपालदेवका शासनकाल सन् ११७६ में समाप्त होनेपर विंध्यवर्माने इस प्रदेशको फिर जीता होगा। अजयपालके उदयपुरवाले ११७३ के शिलालेखसे ज्ञात होता है कि उस समय पूर्व मालवापर गुजरातकी सत्ता थी। अजयपालके बादका राजा नाबालिग और संभवतः उसके शासनकालमें मालवा पुनः परमारोंकी अधीनतामें पूरी तरह आ गया। विन्ध्यवर्माके पोते अर्जुनवर्मा १२१५ (?) ने अपने दानपत्रमें लिखा है कि विन्ध्यवर्मा बड़ा योद्धा था। धारका मांडवगढ़ (मंडपदुर्ग) तो निस्सन्देह उसके कब्जेमें था। वहाँके एक अप्रकाशित शिलालेखसे मालूम होता है कि बिल्हण नामक

कवि उसका मन्त्री था* (ल्युअर्ड और लेले पृष्ठ ३७)'। इससे मालूम होता है कि यह राजा कवियोंका आश्रयदाता था। आशाधर नामक जिस जैन ग्रन्थकारके विषयमें आगे चलकर हम अधिक चर्चा करनेवाले हैं उसने विन्ध्यवर्माकी इस आनुवंशिक वृत्तिका उल्लेख किया है। विन्ध्यवर्माने लगभग १ ० से ११८० तक राज्य किया (ल्युअर्ड और लेले पृष्ठ ५८)। उसके बाद उसका लड़का सुभटवर्मा राज्यारूढ़ हुआ। वह भी प्रतापवान् राजा था। उसने मालवाकी शक्तिको और भी बढ़ाया। उसने न केवल अपने विनष्ट राज्यको पुनः प्राप्त कर लिया बल्कि गुजरातपर चढ़ाई भी की। देवगिरिके किसी यादव राजाने मालवाका पराभव किया था, इस तरहका उल्लेख पाया जाता है। पर बहुत करके यह विजय महत्त्वपूर्ण न होगी। क० ल्युअर्ड और श्री लेलेने लिखा है कि सुभटवर्माने ११८० से १२१० ईसवीतक राज्य किया। उसके बाद अर्जुनवर्मा राज्य करने लगा। उसके ईसवी सन् १२११,१२१३ और १२१५ के लिखे दानपत्र मिले हैं, जो उसने मण्डपदुर्ग. भृगुकच्छ (भडौच) और नर्मदा तीरपर बसे हुए अमरेश्वर (मांधाता) से जाहिर किये थे। उनमें लिखा है कि उसने गुजरातके राजा दूसरे जयसिंहको पराजित किया था। दरबारके कविने इस अवसरपर एक नाटक लिखा था जो कमाल मौला मसजिदमें लगी हुई शिलाओंपर खुदा हुआ है। श्री लेलेको धारमें यह नाटक उपलब्ध हुआ है। इस नाटकको पढ़कर उन्होंने एपिग्राफिया इण्डिकाके आठवें भागमें प्रकाशित किया है। जैन पण्डित आशाधरके शिष्य और राजाके गुरु मदनने जो गौड़ ब्राह्मण था यह नाटक लिखा था। किसी वसंतो-

*विन्ध्यवर्म-नृपतेः प्रसादभूः। सन्धिविग्रहिक बिल्हण. कविः

त्सवके समय इस नाटकका अभिनय भी करके दिखाया गया था। इस नाटकमें अर्जुनवर्माको भोजका अवतार बताया गया है और उसकी यह स्तुति उचित भी है। क्योंकि अर्जुनवर्मा केवल कवियोंका आश्रयदाता ही नहीं था, वह स्वयं भी कवि और ग्रंथकार था। अमरुशतककी रसिक संजीवनी टीका उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कहा जाता है कि उसने भोजके ग्रन्थोंपर भी टीकाएं लिखी थीं। ऐसा मालूम होता है कि वह अपने पूर्वज भोजके समान ही शूर, विद्वान् और उदार था और वैसा ही भाग्यशाली भी था। क्योंकि मालवाका वैभव उसकी मृत्युके बाद नष्ट हो गया। १२१६ ईसवीमें उसकी मृत्यु हुई होगी, क्योंकि उसके बादके राजाका लिखा,१२१८ ईसवीका एक दानपत्र उपलब्ध हुआ है।

अर्जुनवर्माके बाद परमारोंकी दूसरी शाखाके लक्ष्मीवर्मा-का पोता देवपाल वर्मा राजा हुआ। अर्जुनवर्मा बहुत करके निपुत्रीक ही मरा होगा। उसके शासनकालमें भी जैन पण्डित आशाधर जीवित था। आशाधरने लिखा है कि उसने अपना त्रिषष्ठि स्मृति नामक ग्रन्थ इसी राजाके शासनकालमें समाप्त किया।

इसके बाद जयतुंग देव राज्यारूढ़ हुआ। आशाधर इसके समयमें भी जीवित था। क्योंकि वह कहता है कि धर्मा-मृतपर अपनी टीका मैंने जयतुंगके समयमें १२४४ ई० में लिखी थी। देवपाल देवका राज्यकाल हम १२१६ से १२४० ई० तक मान सकते हैं। (क० ल्युअर्ड और लेले)

इससे मालूम होता है कि देवपालके शासनकालमें ईसवी सन् १२३५ में अल्तमशने मालवापर चढाई कर महाकालके मंदिरको नष्ट कर दिया। इस घटनाके बाद भी बहुत बरसों

तक मालवा मुसलमानोंके अधीन न होकर स्वतंत्र बना रहा और उसपर देवपालके नीचे लिखे पांच वंशजोंने राज्य किया— १ जयतुंग (१२४०-१२५६) २ जयवर्मा (१२५६-१२६१), ३ जयसिंह (१२६१-१२८०), ४ दूसरा भोज (१२८०-१३०१) और ५ जयसिंह । इस जयसिंहका १३०६ ई० का एक शिलालेख उदयपुरमें मिला है । अंतमें दिल्लीसे ऐनुलमुल्क नामक प्रान्ताधिकारी (सूबेदार) ने आकर मालवाका विजय किया । चंदेरी, उज्जयिनी, धार और मांडव इन सबको उसने स्वाधिकृत कर लिया । (ल्युअर्ड और लेले)

इस तरह चार सदियोंकी उज्वल सत्ताके बाद परमारोंके राज्यका अन्त हो गया । उमटवाडाके राजगढ, नरसिंहगढ (भोपाल एजन्सी) के राजा और मेवाडके अन्तर्गत बिजोलियाके संस्थानिक मालवाके उन परमारोंके वर्तमान वंशज हैं । (गौरीशंकर ओझा—टॉडका राजस्थान)

अब,जयवर्माकी मृत्युके बाद अथवा उसके पदच्युत होने पर ११४४ ईसवीके लगभग लक्ष्मीवर्मा द्वारा संस्थापित स्वतंत्र शाखाका संक्षिप्त वृत्तान्त देकर इस प्रकरणको हम समाप्त करते हैं । लक्ष्मीवर्माके पुत्र महाकुमार हरिश्चन्द्रका ११७८ ई० का दानपत्र उपलब्ध हुआ है ।हरिश्चन्द्रके बेटे उदयवर्माका भी १२०० ई० का लिखा दानपत्र मिला है । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, हरिश्चन्द्रका पुत्र देवपालदेव समस्त मालवाका राजा हो गया । इस शाखाने भोपाल हुशंगाबादके आसपासके प्रदेशपर राज्य किया होगा । उसके दानपत्र भोपाल और हुशंगाबादमें लिखे गये हैं । मालवाका राज्य पूर्वमें भोपालसे लगाकर पश्चिममें धारतक और दक्षिणमें नर्मदासे लगाकर उत्तरमें विंध्याचल और उसके आगे मंदसोरतक

फैला हुआ था। कभी यह विस्तार कम होता तो कभी बढ़कर ताप्ती और बरारका भी समावेश उसमें हो जाता। कभी कभी तो नागपुर सहित मध्यप्रदेशपर भी परमारोंका अधिकार हो जाता था। भोजसे लगाकर इस परमार वंशकी नामावली नीचे लिखे अनुसार है (ए०इ० से कीलहार्नकी दी हुई वंशावली, भाग ८)

इस राजवंशमें भोजका पुत्र जयसिंह अभागा था। उसने केवल चार ही वर्ष राज्य किया। उसमें भी वह करुं और कर्नाटके बीच भागता फिरता था। यशोवर्मा उससे भी अधिक अभागा था। वह पराजित हुआ, कैद हुआ और गुजरातके राजा जयसिंहने उसे पिंजड़ेमें बन्द कर रखा। पर जयवर्माके दुर्भाग्यने तो हद कर दी। कुमारपालने केवल उसे पराजित कर कैद ही नहीं किया, बल्कि उसका सिर कटवा कर अपने राजमहलके फाटकपर लटकवा दिया। जैसा कि कुमारपालकी वडनगरकी प्रशस्तिमें कहा गया है, गुजरातके राजाओंके हाथों मालवाके राजाओंकी जो यह दुर्दशा हुई उसको देखकर अन्य राजाओंके दिल दहल गये, * किन्तु गुजरातके राजाओंकी ये करतूतें हिन्दू राजाओंको शोभा देनेवाली और उनके हाथों होने योग्य न थीं। मुसलमान लोग हिन्दू राजाओंके साथ जैसा बर्ताव करते थे उसे सुनकर, संभव है, उनके अनुकरणमें ऐसा किया गया हो।

पाँचवाँ प्रकरण।

बुंदेलखंडके चंदेल।

बुंदेलखंडके चंद्रात्रेय, अर्थात् चंदेल क्षत्रिय राजकुलकी परम्परा इस काल-विभागमें (१००० से १२०० ई०) भी बराबर कायम रही। यद्यपि वह पहलेसे अधिक वैभवशालिनी नहीं

* दृश्यन् मालव भूपनन्धन विधिनस्ताखिलक्ष्मापतिः (ए० इं०, ८, पृष्ठ २९७)

थी तथापि पिछली शताब्दियोंके समान तेजस्विनी अवश्य थी। इस कुलका नाम गोत्र-नाम है। प्राचीन ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें गोत्रके नामसे कुलका नाम चलानेका नियम प्रचलित था। 'चंद्रात्रेय यह नाम गोत्र कर्ताके नामसे पड़ा होगा। जैसे पराशरके नामसे 'पाराशर' हुआ या जैसे अंग्रेजोंमें 'पीटर्सन', 'जानसन्' इत्यादि उपनाम चले। अल्बेरुनीने इस राज्यका ठीक ठीक वर्णन किया है। उसमेंके मुख्य किले उसने ग्वालियर और कालिंजर बताये हैं और राजधानीका नाम खजुराहा दिया है। अन्य अरब लेखक उसके राजाको चंद्रराय कहते हैं। चंदबरदाईने भी इन राजाओंके लिए हिन्दी शब्द 'चंद्र' का प्रयोग किया है।

इस कुलमें सबसे बड़ा राजा धंग था। वह गत कालविभागके अंतमें राज्य करता था। वह इतना पराक्रमी और प्रसिद्ध था कि पंजाबके जयपालने उसे सुबुक्तगीनके विरुद्ध लड़नेके लिए निमन्त्रित किया था। चंदेल कुलके लेखोंमें उसे 'हमीर-सम' कहा है। लेख लिखनेवाले अत्युक्ति तो करते हैं पर बिलकुल ही झूठी बात नहीं लिखते। इसलिए जैसा कि हम अन्यत्र कह आये हैं सिंधुके उस पार संयुक्त हिन्दू राजाओंका सुबुक्तगीनसे जो युद्ध हुआ उसमें किसी पक्षकी जीत नहीं हुई अतः धंगको जो हमीर-सम कहा है इसमें कुछ असत्य नहीं है। धंग पूरे सौ वर्ष जीया और अंतमें प्रयागमें गंगा यमुनाके पवित्र संगमपर कण्डोंकी चितामें जलकर उसने देह-त्याग किया।

धंगके बाद उसका पुत्र गंड गद्दीपर बैठा। यह भी अपने पिता जैसा ही पराक्रमी था। इसने भी जयपालके पुत्र आनंदपालको महमूदसे लड़नेमें सहायता दी। इस युद्धमें

निश्चय ही हिन्दुओंकी पूरी हार हुई और इसी कारण महमूद का चंदेलोंसे जो वैर चला उसका वर्णन हमने अन्यत्र किया है। गंड १००० ई० में गद्दीपर बैठा और १०२३ ई० तक उसने राज्य किया। १००२ और १०२२ ई० के उसके दो लेख प्राप्त हुए हैं। विन्सेण्ट स्मिथने चंदेलोंपर लिखे अपने एक विस्तृत लेखमें (इ० ए० ३७) इस कुलके राजाओंका वृत्तान्त दिया है। उनमेंसे तारीखें और वृत्तान्त तथा आवश्यकतानुसार जहाँ तहाँ चंदेलों तथा दूसरोंके मूल लेखोंसे भी कुछ विशेष बातें लेकर हम यहाँ दे रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बाद महोबा ही चंदेलोंकी राजधानी रहा।

गंडके बाद उसका पुत्र विद्याधर गद्दीपर बैठा। इसने १०२८ से १०३० ई० तक अर्थात् केवल दो ही वर्ष राज्य किया। जब यह युवराज था तभी इसने कन्नौजपर चढ़ाई करके वहाँ के राजा राज्यपालको हराया जिसने महमूदकी शरण जा और उसकी अधीनता स्वीकार कर राजपूत नामको कलंकित किया था। एक कच्छपघातके लेखमें यह वर्णन पाया जाता है कि इस युद्धमें चंदेलोंके मांडलिक अर्जुनदेवने अपने बाणसे राज्यपालका सिर उड़ा दिया था।* इस युद्धसे विद्याधरके पराक्रमकी प्रसिद्धि हुई। उसके एक खंडित लेखमें यहाँतक कहा गया है कि जब वह पलंगपर पौढ़ा होता तब भोज और कलचूरीके राजा उसकी सेवा करते थे। भोज और गांगेय उस समयके ये दो बलवान् हिन्दू राजा सम्भवत लडकर राज्यपालके मध्यदेशसे तुर्कोंको मार भगाकर

* श्रीविद्याधरदेवकार्यनिरत श्रीराज्यपाल हठात्,
कण्ठास्थिच्छिदनेक बाणनिवहै र्हत्वा महत्याहवे,
(ए० इ० २ पृष्ठ २३७)

कन्नौजके सम्राट्को उनके बन्धनसे छुड़ानेके उद्योगमें विद्याधरकी सहायता करनेके लिए आये थे †।

इस प्रकार भारतवर्षके प्रसिद्ध हिन्दू राजाओंने विद्याधरके सेनापतित्वमें, राज्यपालको, जिसने तुर्कोंकी अधीनता स्वीकार कर उनकी कुछ फौज अपने रक्षार्थ अपने यहाँ ठहरा ली थी, दण्ड देनेके लिए उसपर चढ़ाई कर दी। चन्देलोंका राज्य कन्नौजके राज्यसे सटा हुआ था। इसलिए स्वभावतः इस संयुक्त सेनाका प्रधान सेनापतित्व विद्याधरके हाथमें आया। 'तल्प भाजम्' इस विशेषणसे यह अनुमान निकला है कि विद्याधरने पलंगपर बैठे बैठे अपने सेनापति और मांडलिक ग्वालियरके कच्छपघात राजाको चढ़ाईपर भेजा। भोज और गांगेयदेवने भी सम्भवतः खुद इस लड़ाईमें न जाकर अपनी सेना ही भेजी। वे अवश्य ही विद्याधरकी अधीनतामें रक्खी गयी थीं।

विद्याधरके बाद विजयपाल सिंहासनपर बैठा। उसने भी १०२०से१०४०ई० तक अर्थात् अल्पकाल तक ही राज्य किया। (स्मिथ)। विजयपालके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र देववर्मा राजा हुआ। देववर्माने १०४० से १०६० ई० तक राज्य किया। इसका १०५० ई० का एक लेख मिला है (ई० ए० १६ पृष्ठ

---

† इस लेखके शब्द (ए. इ. १ पृष्ठ २२२) महत्त्वपूर्ण किन्तु सन्दिग्ध हैं। ...विहित कन्याकुब्ज भूपाल भङ्गं। समरगुरुमुपास्त प्रौढभीस्तल्प-भाजम् सहकलचुरिचन्द्र. शिष्यवद्भोजदेव· ॥ यहाँपर लेखके पढ़नेमें, बहुत संभव है, गलती हो गयी हो। 'प्रौढभी.' के स्थानपर 'प्रौढधी.' होना चाहिए। प्रौढ शब्दको भीः से जोड़नेपर कोई अर्थ नहीं निकलता। लेखका आशय यह है। भोज जैसा बुद्धिमान् राजा त्रिपुरके प्रसिद्ध कलचूरी गांगेय राजाके सहित युद्धविद्याके इस गुरुके साथ शिष्यवत् आचरण करता था।

२०५) इस लेखमें देववर्माने अपनेको 'कालंजराधिपति' कहलाया है। 'परमभट्टारकादि' स्वतंत्र राजाकी सामान्य पदवियाँ उसके नामके साथ लगायी गयी हैं। यह आज्ञापत्र उसने सहरवासकी अपनी फौजी छावनीसे जारी किया। उसकी माता भुवनदेवीके सांवत्सरिक श्राद्धके निमित्त उसमें एक गाँवका दान दिया गया है।

देववर्माके बाद उसका भाई कीर्तिवर्मा गद्दीपर बैठा। इसने तो अपने भाईसे भी अधिक कीर्ति संपादन की। राज्य भी अधिक अर्थात् लगभग १०६० से ११०० ई० तक, कोई ४० वर्ष, किया। इसके दो लेख प्राप्त हुए हैं। एक १०६८ ई० का है पर दूसरेपर मिति नहीं है। इनमें गण्ड, भोजके समकालीन विद्याधर, गांगेयके समकालीन विजयपाल, तथा कर्णके समकालीन देववर्माका उल्लेख है। चेदिके राजवंशमें त्रिपुरका कर्ण अतिशय पराक्रमी राजा हुआ। उसने कीर्त्तिवर्मन्को पराजित कर उसे राज्यसे मार भगाया। किन्तु अन्तमें कीर्तिवर्मन्ने गोपाल नामक ब्राह्मण सेनापतिकी सहायतासे "अनेक राजाओंका नाश करनेवाले" कर्णको हराकर अपना राज्य उससे वापस लिया। इस जयका उल्लेख कृष्ण मिश्रके लिखे प्रबोधचंद्रोदय नामक नाटकमें हुआ है। १०६५ ई० में इस नाटकका अभिनय करके राजाको दिखाया भी गया था। वेदांत तत्त्वज्ञानपर इस नाटककी रचना की गयी है और ज्ञान भक्ति वैराग्य आदि गुण मनुष्य रूपमें इसके पात्र बनाये गये हैं। कीर्तिवर्मन्ने पहले पहल चंदेलोंका सिक्का चला कर अपनी कीर्तिको अधिक स्थिर कर दिया। यह सिक्का गांगेयके सिक्केके जैसा ही है। सिर्फ लक्ष्मीके स्थानपर इसमें हनूमानकी मूर्ति है। हनूमान चंदेलोंके कुल देवता तो नहीं थे किन्तु

कीर्तिवर्मनके वह प्रिय देवता थे। खजुराहाकी एक हनूमानकी मूर्तिके नीचे अभीतक चन्देलोंका एक लेख विद्यमान है। देवगढ़में १०६८ ई० का एक लेख प्राप्त हुआ है। (इ० ए० १८ पृष्ठ २३८)। उसके मंत्री वत्सराजने चेदिवालोंसे देवगढ़का किला जीत लिया था। इसी विजयके स्मरणार्थ यह लेख खोदा गया था। यह किला ललितपुर जिलेके पूर्व पहाड़ियोंमें एक रमणीय स्थान पर है (स्मिथ)। इस लेखसे सिद्ध है कि कीर्तिवर्माने १०६८ ई० के बादतक राज्य किया था।

कीर्तिवर्माके बाद उसका पुत्र सल्लक्षण राजा हुआ। इसने थोडे ही दिन (११०० से १११० ई० तक) राज्य किया। इसके विषयमें केवल यही उल्लेख मिलता है कि इसने मालवा तथा चेदीके राजाओंकी लक्ष्मीका हरण कर लिया था। (ए० इं० १ पृष्ठ ३२७) इसके बाद इसका पुत्र जयवर्मन् राज्यारूढ़ हुआ। इसने भी थोड़े ही दिन राज्य किया (१११० से ११२०)। इसके विषयमें कोई बात उल्लेखनीय नहीं है। कीलहॉर्नने इसके नामपर एक लेख अपनी वंशावलीमें दिया है। पर वह इसके प्रसिद्ध पूर्वज धंगकी एक प्रशस्ति है जिसकी एक गौड कायस्थ लेखकने प्रतिलिपि मात्र कर दी है (ए० इं० १ पृष्ठ १४७)। जयवर्माके लड़का नहीं था। इसलिए कीर्तिवर्मन्का छोटा भाई पृथ्वीवर्मन् अर्थात् जयवर्मनका चाचा गद्दीपर बैठा। उसने भी केवल पाँच ही वर्ष, ११२० से ११२५ ई० तक राज्य किया। इन तीनों राजाओंके चलाये हुए सोने और चाँदीके सिक्के मिले हैं। अंतिम राजाका एक तांबेका सिक्का भी प्राप्त हुआ है।

अब हम चंदेल वंशके दूसरे प्रसिद्ध राजा पृथ्वीवर्मन्के पुत्र मदनवर्मन्के शासनकाल तक आ पहुँचे। इसने बहुत

दिनतक अर्थात् ११२५ से ११६५ तक दृढ़तापूर्वक राज्य किया। फीलहॉर्नने अपनी (प० ई० =) वंशावलीमें इसके नामके आठ लेख ११२६ से ११६२ ई० तकके दिये हैं। चंद बरदाई कहता है कि गुजरातके प्रसिद्ध राजा जयसिंहको इसने पराजित किया था। किन्तु गुजरातके इतिहासकारोंका कथन है कि जयसिंहको यह कर देता था। वे और भी एक मज़ेदार बात बताते हैं। जयसिंह मदनवर्मन्‌की राजधानीके पास आ गया, फिर भी वह इतना लापरवाह था कि अपने विलासोद्यानसे वह हिला तक नहीं। जब उसे सूचना दी गयी कि सिद्धराज आ पहुँचा तब उसने इतना ही कहा कि यह द्रव्य-लोभी मनुष्य कुछ द्रव्य माँगता है, उसे कुछ द्रव्य दे दो। जयसिंहको मदनवर्मन्‌के इस स्वभावपर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने स्वयं विलासोद्यानमें जाकर मदनवर्मन्‌से मुलाकात की। मदनवर्मन्‌ने भी बड़े ठाटसे उसका आतिथ्य किया। किन्तु कालंजरमें मदनवर्मन्‌का एक लेख है जिसमें लिखा है कि उसने गुर्जरराजका पराभव किया। उसमें मालवा और चेदी-के राजाओंके हराये जानेका भी उल्लेख है। कन्नौजके गहरवार अर्थात् बनारसके राजाओंसे उसकी मित्रता थी। महोबेमें उसने एक विशाल तालाब और उसके किनारे दो मंदिर बनवाये हैं। यह तालाब अभीतक मदन सागरके नामसे प्रसिद्ध है। अनेक चंदेल राजाओंने विस्तीर्ण सुंदर सरोवर और मंदिर बनवाये हैं। उनका वर्णन हम अगली टिप्पणीमें देंगे। मदनवर्मन्‌के सोनेके सिक्के बहुतसे मिले हैं।

जैसा कि प्रायः दीर्घकालतक राज्य करनेवाले राजाओं-का अनुभव होता है, इसका भी ज्येष्ठ पुत्र प्रतापवर्मन्, और छोटा लड़का यशोवर्मन भी, इसके पहले मर गया। मदनके

बाद यशोवर्मन्का लडका परमर्दिदेव राज्यारूढ़ हुआ। इसको परमाल भी कहते हैं। चंदेल वंशका यही अन्तिम प्रसिद्ध राजा था। इसने (११६५ से १२०३ ईसवी तक) राज्य किया। इसका तथा आल्हा और ऊदल नामक इसके दो सरदारोंका नाम और कीर्ति बुंदेलखंडमें घर घर गायी जाती है। ये दोनों वीर बनाफर राजपूत थे और इन्होंने परमालके लिए पृथ्वीराजके साथ युद्ध करते हुए अपने प्राण समर्पण कर दिये। पृथ्वीराज रासोमें महोबा खंडमें चंदवरदाईने इनकी शूरता और स्वदेश प्रीतिके पराक्रमोंका खूब वर्णन किया है। इनकी मृत्युके बाद पृथ्वीराजने परमालको पराजित कर दिया। यह युद्ध कालींसिहसे मिलनेवाली पहुज नदीके तीर बने हुए सिरसागढ़ नामक स्थानके पास हुआ था। युद्धके बाद पृथ्वीराजने फौरन महोबाको अपने अधीन कर लिया और वहाँ अपने सरदार पज्जुनको नियुक्त कर दिया। रासोमें लिखी हुई इस कथाकी सत्यता पृथ्वीराजके एक लेखसे सिद्ध होती है जो मदनवर्मन्के द्वारा बसाये हुए मदनपुर नामक स्थानमें मिला है। किन्तु चन्दका यह कथन सत्य नहीं मालूम होता कि परमर्दीके पुत्र समरजित्ने पज्जुनको मार भगाया क्योंकि शिलालेखोंसे पता लगता है कि परमर्दीके बाद उसका लडका त्रैलोक्य वर्मन् गद्दी पर बैठा। संभव है समरजित् उसका छोटा भाई रहा हो।

स्मिथका मत है कि परमर्दीका यह पृथ्वीराज द्वारा किया गया पराभव बहुत भारी था। इसीलिए जब १२०३ ई० में कुतुबुद्दीनने चेदीपर चढ़ाई की तब वह उसका भलीभाँति विरोध नहीं कर सका। किन्तु परमर्दीका यह पराभव तो ११८२ ईसवीमें हुआ था, इसके बाद उसे बीस वर्ष अपनी

तकके पाँच लेख दिये हैं)। उपर्युक्त ई० स० १२६१ के लेखमें (ए० इं० १ पृष्ठ ३२७) में लिखा है कि उसकी रानी कल्याण देवी दधीच राजपूत वंशकी लड़की थी। यह लेख इस रानीके द्वारा बनवायी गयी एक बावडी पर है। कह नहीं सकते कि इस समय चदेलोंका राज्य कितना बडा था। मदनवर्मन्के समयमें तो वह दक्षिणमें निःसन्देह भैलस्वामी अथवा भेलसातक था। (इं० ए० १६ पृष्ठ २०८) वीरवर्मन्के बाद भोजवर्मन् राजा हुआ। भोजवर्मन के दो लेख प्राप्त हुए हैं जिनमेंसे एक १२८८ ई० का है। इसके बाद चन्देल राजवंश अंधकारमें विलीन हो जाता है। हां, दो बातोंका उल्लेख जरूर मिलता है। एक तो यह कि कीरतसेन ने शेरशाहका विरोध किया और दूसरे, रानी दुर्गावतीने अकबरकी सेनासे लडते लडते रणभूमिमें शरीर छोड दिया (भाग २)। इस समय बगालके गिद्धोर नरेश चदेलोंके वंशज हैं।

महोबाके चदेलोंकी वंशावली।

१ गड
(१००० से १०२३) लेख, १००२,१९,२२।
|
२ विद्याधर (१०२८—१०३०)
|
३ विजयपाल (१०३०–४०) रानी भुवन देवी
|
४ देववर्मन् (१०४०–१०६०) लेख १०५१ — ५ कीर्तिवर्मन्, ले० १०९८ (१०६०–११००)

महोबाके चंदेलोंकी वंशावली (क्रमागत)

५ कीर्ति वर्मन्, ले० १०९८
(१०६०–११००)

६ सल्लक्षण (११००–१११०)
७ जय वर्मन् ले. १११७
(१११०–११२०)

८ पृथ्वीवर्मन्
(११२० से ११२५)

९ मदनवर्मन् (११२५–११६५) ले. ११२९, ३०, ३१, ३९, ५१
५५, ५८, ६२

प्रतापवर्मन्

यशोवर्मन्

१० परमर्दिदेव (११६५–१२०३) ले. ११६७
६८, ७१, ८२, ८४, ९५, १२०१

११ त्रैलोक्यवर्मन् (१२०३–१२४५) ले. १२१२

१२ वीरवर्मन्, रानी कल्याणदेवी ले. १२६१,
(१२४५–१२८७) ६२, ६८, ८१, ८६

१३ भोजवर्मन् ले. १२८८

टिप्पणी।

खजुराहो और महोबा (सर विन्सेंट स्मिथ. इं. ए. ३७)

चंदेलोंकी पुरानी राजधानी खजुराहो थी। यह आजकल वर्तमान छत्रपुर राज्यमें महोबाके दक्षिणमें एक तुच्छ ग्राम है। बुंदेलखंड अथवा

धर्माचरणी थे। उनके इतिहाससे भी यही बात सिद्ध होगी। अधिकांश राजपूतोंके समान उनके कुलदेवता शिव ही थे। उनकी राजधानी जबलपुरके नजदीक त्रिपुर थी। त्रिपुर अथवा तिउरके तिवारी ब्राह्मण उत्तर हिन्दुस्थानके ब्राह्मणोंकी एक प्रसिद्ध शाखा है।

इस कालविभागके आरम्भमें त्रिपुरमें गांगेय राज्य करता था। पिछले कालविभागमें हमने प्रत्येक पीढ़ीके लिए बीस साल लगाकर इसका समय १०२० ई० जोड़ा था। किन्तु मालूम होता है कि वह इससे कहीं पहले राज्यारूढ हो गया होगा। इस वंशमें वह सबसे अधिक कीर्तिशाली राजा था। उसने सोना चाँदी और ताँबेकी कई मुद्राएँ ढलवायी थीं। उनमें से कई अभीतक मिलती हैं। आश्चर्य है कि मुद्राएँ इसीकी मिलती हैं, इसके बादवाले राजाओंकी नहीं। इन मुद्राओंका अनुकरण कितने ही पडोसी राजाओंने तथा महम्मद गोरी तकने किया (गौरीशंकरका टॉड)। कन्नौजके प्रतिहार सम्राटोंकी गिरी हुई दशासे लाभ उठाकर इसने विस्तृत प्रदेशोंको जीत लिया। कन्नौजके पूर्वके प्रदेश इन राजाओंकी अधीनताको छोडकर गांगेयकी अधीनतामें आ गये। बनारस उसीके अधीन था। नियालतगीनके बनारस लूटनेका जो वर्णन हम पहले दे चुके हैं उसीमें यह बात कही गयी है। (इलि २ बैहकी।)

उसने प्राच्य चालुक्योंसे (इनको चोलोंने इस समय नष्ट कर दिया था) त्रिकलिंग अथवा तेलंगण भी जीत लिया। मालवाके भोजसे भी इसका युद्ध हुआ था किन्तु उसमें संभवतः इसीका पराजय हुआ। परमार अथवा चेदी इन दोनोंसे किसीके भी लेखोंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। मालूम होता

है गज़नीके महमूदने भी इसे नहीं सताया। उसने चंदेलोंके कालंजर तक ही आक्रमण किया; आगे नहीं। किन्तु गांगेय इतना कीर्तिशाली था कि अल्बेरुनीने भी उसका उल्लेख किया है। चेदीके लेखोंमें इसके विषयमें विशेष वर्णन नहीं पाया जाता। परन्तु उनमें उसे प्रायः विक्रमादित्यकी उपाधि दी गयो है (एपि० इंडि० २ पृष्ठ ३)। उसका केवल एक लेख ई० सन् १०३७ का मिला है (कीलहार्न एपि० इंडि० ८)। बहुत संभव है कि वह १०३८ में स्वर्गवासी हो गया हो। कई लेखोंमें कहा गया है कि वृद्धावस्थामें वह प्रयागमें जाकर रहने लगा और वहीं उसकी मृत्यु भी हुई। एक चेदी लेखमें लिखा है कि उसकी चितापर सौ रानियाँ जलकर मर गयीं। किन्तु यह अतिशयोक्ति ही मालूम होती है (एपि० इंडि० २ पृष्ठ ३)। उसके बाद उसका लड़का कर्ण गद्दीपर बैठा। यह उससे भी महान् राजा हुआ। इसने अधिक विस्तृत प्रदेश जीता। इसकी सत्ता बनारसके आगे विहार तक फैली हुई थी। बनारसमें इसने कर्णमेरू नामक एक मंदिर बनाया था। चेदीके लेखोंमें इसे त्रिकलिंगाधिपति कहा है (एपि० इंडि० २ पृ० ३०८)। चोलोंसे भी इसने तेलंगणका बहुतसा हिस्सा जीता था। कर्णावती नामक एक नगर बसा कर इसने उसे वेदविद् ब्राह्मणोंको ब्रह्मोत्तर सम्पत्तिके रूपमें दे दिया (एपि० इंडि० २ पृष्ठ ३)। तेउरके नजदीक कर्णबेल नामक गांव वही कर्णावती है। उसने कई राजाओंको जीता। इन राजाओंकी सूचीमें हमेशाकी तरह चोल, पांड्य, मुरल, अंग वंग, कलिंग, आदि नाम शामिल हैं। कहा गया है कि चम्पारण्यको इसने विध्वस्त कर दिया (एपि० इं० २ पृष्ठ १०)। कीलहार्नका कथन है कि चम्पारण्य मध्यप्रदेशका कोई अप्रसिद्ध स्थान होगा। किन्तु श्री जायसवालने

हालमें ही यह अच्छी तरह प्रतिपादित कर दिया है कि यह विहारका प्रसिद्ध चम्पारन ही था, अतः यह निश्चित रुपसे कहा जा सकता है कि वहाँ तकके प्रदेशको कर्णने जीता था (विहार और उड़ीसा जर्नल १९२४)। एक सौ छत्तीस राजा इसकी सेवा करते थे (गोरीशंकरका टॉड)। यह पहले कहा जा चुका है कि भोजकी मृत्युके बाद उसने मालवाको भी विध्वस्त कर दिया। उसने भोजके पुत्रको देशके बाहर भगा दिया था। यह बात परमारोंकी नागपुर-प्रशस्तिमें दी गयी है। किन्तु आश्चर्य है चेदी राजाओंके खुदे लेखोंमें यह कहीं लिखी हुई नहीं मिलती। मालवा कर्णकी अधीनतामें शायद थोड़े ही समय तक रहा होगा। उदयादित्यने शीघ्र उसे जीत लिया होगा। इसलिए चेदीके लेखोंमें इस विजयको महत्व नहीं दिया गया।

एक और भी लेख मिला है जो इसके सो साल बादका है। उसमें इसके दिग्विजयका वर्णन करते हुए दक्षिणमें चोल, और पांड्य, पूर्वमें हूण और गौड, उत्तरमें गुर्जर और कीर देशोंके जीतनेका उल्लेख है। अर्थात् उत्तरमें उसकी विजय हिमालय तक पहुँच गयी थी। यह बात बिलकुल संभवनीय प्रतीत होती है कि उत्तरमें तुर्कोंकी अधीनता स्वीकार कर रहनेवाले गुर्जर या प्रतिहार सम्राट पर चढ़ाईकर कर्णने उसे जीत लिया और तुर्कोंको देशके बाहर मार भगाया। जिस तरह गहरवारके एक लेखमें कर्णका नाम आया है उससे यह निश्चित रूपसे सिद्ध होता है। इस लेखका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं (इं० ए० १८ पृष्ठ १०३)। दूसरे राष्ट्रोंके लेखोंमें यह बात पायी गयी है, इसलिए इसका महत्व और भी ज्यादह है। लेखका आशय इस प्रकार है—

"भोज स्वर्गको गया और कर्ण कीर्तिशेष हो गया। तब पृथ्वी अतिशय त्रस्त हो गयी। किन्तु अन्तमें गहरवारके चन्द्रदेवका उसे आश्रय मिल गया।" इस वाक्यमें भोज मालवाका और कर्ण चेदीराज कर्ण है। इन दोनोंने तुर्कोंसे युद्ध कर मध्यदेशको उनके त्राससे मुक्त कर दिया: भोजने कदाचित् १०२० से १०४० तक और कर्णने १०४० से १०८० तक। चन्द्रदेवने कन्नौज जीतकर असमर्थ प्रतिहार राजाओंका इसी समय उच्छेद किया। 'जब पृथ्वी त्रस्त हो गयी' इस वाक्यमें देशपर तुर्कोंकी बार बार होनेवाली चढ़ाइयोंका ही उल्लेख है। इस समय पंजाबमें इनका राज्य कायम हो जानेके कारण ये वहाँसे बार बार मध्य देशपर चढ़ाइयाँ करते रहते थे। ईसवी सन् १०५० में लिखने वाले बैहकीने इनमेंसे एक चढ़ाईका वर्णन किया है। वह लिखता है "लाहोरके सूबेदार नियालतगीनने बनारसपर चढ़ाई की। इस शहरतक तो महमूद भी नहीं पहुँचा था। ईसवी सन् १०३३ में इसने काशीमें पहुँच कर वहाँके बाजारको लूट लिया। इस समय वहाँ गांगेयका राज्य था।" पर मालूम होता है गांगेयका राज्य उस समय वहाँ पूरी तरह प्रतिष्ठित नहीं हो पाया था। कर्णने अन्तमें बनारसको पूरी तरह अपने अधीन कर लिया। उत्तरमें हिमालयके कीर लोगोंपर भी उसने चढाई कर दी। इस तरह उसने तुर्कोंके ज़ुल्मको बिलकुल मिटा दिया। बिहार और चम्पारन भी उसने जीत लिये।

भोजके प्रसिद्ध उदाहरणका अनुकरण करनेका प्रयत्न प्रत्येक हिंदू राजा करने लगे थे, तदनुसार कर्णने भी विद्वानोंको आश्रय दिया। इस बातका उल्लेख एक लेखमें प्रसंगवश आ गया है। "उसकी कीर्तिको कवियोंने बढ़ाया और इन्द्रियोंके

समान वे उसके मनका विनोद करते थे।* (ई० ए० १८ पृष्ठ २१६) इन कवियोंके नामोंका अभी पता नहीं लगा। शायद ऐतिहासिक खोज करने वालोंका ध्यान ही इधर नहीं गया है।

मालूम होता है कि कर्णने बहुत वर्षोंतक राज्य किया। कोई कोई तो मानते हैं कि वह बारहवीं सदीके आरम्भ तक राज्य करता था। किन्तु उपर्युक्त गहरवारके लेखमें तो यह लिखा है कि कर्णके मर जानेपर चन्द्रदेवने कन्नौजको जीता था (ई० स० १०६० के लगभग), इसलिए हम कर्णका राज्यकाल १०४० से १०८० तक मानते हैं। उसने कलचुरी राजवंशको यशके सर्वोच्च शिखरपर पहुँचा दिया। सौभाग्यवश उसका पुत्र भी इस सुयशकी वृद्धि करनेके योग्य था।

इस पुत्रका नाम था यशःकर्ण। यशःकर्णकी माता—कर्णकी रानी—अवेल्ल देवी एक हूण राजकन्या थी। इसने भी बहुत वर्षोंतक राज्य किया (१०८० से ११२४ ई०)। ऐसा उल्लेख मिलता है कि इसने आन्ध्रोंका पराजय किया था। इससे यह बोध होता है कि इसने दक्षिणके चोल राजाओंका अथवा कलिंग नगरके गंग राजाओंका पराजय किया। गोदावरीके मुखके पास आन्ध्र देशमें जो भीमेश्वरका शिवालय है उसका इसने पूजन किया था, इत्यादि वर्णन भी पाया जाता है (एपि० इंडि० २ पृ० ३) इसके लेखमें भी, ई० सन् ११२२ में, यही बात कही गयी है। गहरवारोंने कन्नोज लेकर उत्तरमें अपनो सत्ता फैला दी थी, इसलिए उत्तरको ओर इसका राज्य विस्तार अवश्य ही रुक गया होगा। इसके ११२० में दिये दानको गोविन्दचन्द्रने फिर जारी

*अनीयन्त परामृद्धिं यश संवेदनैः श्रिय
मनोविनोदनैर्यस्य कवीन्द्रैरिन्द्रियैरिव।

किया था। इससे प्रतीत होता है कि इसके राज्यका कुछ उत्तरी हिस्सा कन्नौजके अधिकारमें चला गया था। जैसा कि चन्द्रदेवके लेखमें कहा गया है, काशी तो उसकी अधीनतामें पहलेसे ही चली गयी थी। मालवाके लक्ष्मदेवके द्वारा भी इसके पराजित होनेका सबूत मिलता है।

यशःकर्णके बाद उसका पुत्र गयकर्णदेव गद्दीपर बैठा। लेखोंसे ज्ञात होता है कि इसने भी कई वर्षोंतक दृढ़तापूर्वक राज्य किया। मेवाड़के गुहिलोत राजवंशकी लड़की आल्हणदेवी इसकी रानी थी। उसने एक लेख लिखा है जिसमें अपनी कुल परम्परा यों दी है (भेड़ाघाट लेख, एपि० इंडि० १ पृ० १० – "गोभिल गोत्रमें हंसपाल राजा हुआ। उसका पुत्र वैरीसिंह, उसका बेटा विजयसिंह। विजयसिंहकी रानी धारानगरीके राजा उदयादित्यकी लड़की श्यामलादेवी थी। इसकी लड़की आल्हणदेवी" इस वर्णनसे दो तीन बातोंका पता चलता है। एक यह कि राजपूत लोग कुलनामको ही इस समय गोत्र मानने लगे थे। गोभिल अर्थात् गोहिल, कुलकी संज्ञा थी। राजपूत लोगोंने इस समय शायद ऋषिगोत्रोंको गौण समझना शुरू कर दिया, क्योंकि उस समय यह विचार प्रचलित हो गया था कि ऋषिगोत्र तो पुरोहितका गोत्र होता है। कई लेखोंमें इस समयके कुल नाम ही गोत्र कहे गये हैं। दूसरी बात यह सिद्ध होती है कि मेवाड़के इतिहासों तथा शिलालेखोंमें गुहिलोत राजाओंको जो वंशावली हंसपाल, वैरीसिंह, विजयसिंह आदि, इस क्रमसे दी गयी है, वह ठीक है। इसके पहले इस सम्बन्धमें हमें थोड़ा सन्देह हो गया था (इं० एंटि० १८ पृष्ठ २१६ देखो)। तीसरी बात यह है कि इसमें मेवाड़के स्थानपर प्राग्वाट शब्दका प्रयोग किया गया है। इसका ठीक ठीक अर्थ सम-

समझमें नहीं आता। किंतु प्राग्वाटमें मालवा भी निःसन्देह रूपसे सम्मिलित था, ऐसा मालूम होता है। साथ ही उदयादित्य परमार मालवाका राजा, धारानगरीमें राज्य कर रहा था, यह भी स्पष्ट है। आखिरी बात यह है कि चेदीके हैहय वंशवाले उत्तम क्षत्रिय माने जाते थे। इसीलिए मेवाड़के गुहिलोत और मालवाके परमारोंसे इनका विवाह सम्बन्ध हो सका। ये दोनों उत्तम राजपूत कुल थे। उसी प्रकार हम आगे चलकर यह बतावेंगे कि पृथ्वीराज चौहानकी माता अर्थात् सोमेश्वरकी रानी कलचुरी राजकन्या थी। बहुत सम्भव है कि यह आल्हणदेवीकी ही लड़की हो अथवा उसके लड़के नरसिंह वर्मनकी कन्या हो।

यह शिलालेख ११५५ ई० का लिखा हुआ है। उस समय उसका लड़का नरसिंह वर्मन् संभवतः नाबालिग और आल्हण देवी उसकी प्रतिनिधि (Regent) थी। यशःकर्णका राज्य ११२४ ई० के और गयकर्ण का ११५४ ई० के लगभग समाप्त हुआ। गयकर्णका ११५१ ई० का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है (ई० ए० १८ पृ० २१०)। उसके उत्तराधिकारी नरसिंह वर्मनके तीन लेख मिले हैं, जो क्रमसे ११५५, ११५८, ११५९ ई० के हैं। यह युवावस्थामें ही मर गया। तथापि इसका राज्यकाल महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसके शिलालेखोंके समयसे चेदी राजाओंकी पदवीमें परिवर्त्तन हो गया। यह और इसके बादके राजा "स्वभुज सम्पादित नरपति गजपति अश्वपति राज्यत्रय जेता" की पदवी धारण करने लगे। वे अपनेको वामदेवपादानुध्यात भी कहने लगे। इस पदवीका अर्थ तनिक भी समझमें नहीं आता, क्योंकि इनके पूर्वज वही गांगेय, कर्ण, यशःकर्ण, गयकर्ण बताये गये हैं। मालूम

होता है कि पहली पदवी इन्होंने कन्नौजके गहरवारोंके अनुकरणमें ग्रहण की। गहरवार भी इस समयसे अपने शिलालेखोंमें यह पदवी लिखवाने लग गये थे (गोविंदचंद्र-का ११६८ ई० का दानपत्र इं० ए० १५ पृष्ठ ७)। पाठकोंको स्मरण होगा कि कन्नौजके प्रतिहार सम्राटोंकी 'हयपति' पदवी थी, बंगालके राजाकी गजपति (भाग २)। सम्भवतः आंध्रके राजा नरपति कहलाते होंगे। और इन तीनोंको जीतनेवालेके लिए "नरपति गजपत्यश्वपति त्रैराज्य जेता" की पदवी ग्रहण करना अनुचित न था। गहरवारोंने कन्नौज, बंगाल और आन्ध्रको जीता था। और चेदी वालोंने भी इनपर विजय प्राप्त की थी। इससे इन दोनोंने यह पदवी धारण कर ली होगी। नरसिंहकी धारण की हुई यह पदवी जरा भड़-कीली तो मालूम होती है किन्तु वह था शूर-वीर। उसने आन्ध्रोंको जीता भी था। किन्तु उसके पूर्वज कर्णने कन्नौज, बंगाल और आन्ध्र इन तीनोंको जीता था। अतः आश्वर्यकी बात तो यही है कि कर्णने यह पदवी धारण नहीं की, बल्कि उसके प्रपौत्रने उसका प्रयोग किया।

११६६ ई० के लेखमें नरसिंहको 'डहालिया महाराज' कहा है (इं०, एं० १८ पृष्ठ २१४)। इससे सूचित होता है कि बुंदेलखंडके कुछ भागपर उसका अधिकार रहा होगा। कौशा-म्बीके पास यमुनाके घाटपर उसने एक मंदिर बनवाया था जिससे अनुमान किया जा सकता है कि उसके राज्यकी सीमा यमुना नदीतक रही होगी।

नरसिंहका राज्यकाल ११५२ से ११७० ई० तक माना जा सकता है। उसके बाद उसका भाई जयसिंह गद्दीपर बैठा। ११७५ और ११७७ ई० के लिखे उसके दो लेख मिले हैं। उनमें

भी उपर्युक्त पदवी उसके नामके साथ लगायी गयी है। सभव है उसने ११७= तक राज्य किया हो, क्योंकि उसके पुत्र विजयसिंह वर्मन्‌का ११८० ई० का शिलालेख मिला है। ११९६ ई० का भी उसका एक लेख मिला है (इ० ए० १७ पृ० २२८, पर इस लेखकी ठीक तारीख २७ अक्तूबर ११८५ दी गयी है)। पडित गोरीशकरने इसके बाद और भी दो राजाओंके नाम दिये है, विजयसिंहका पुत्र अजयसिंह और त्रैलोक्य वर्मन्। विजयपालके ११८० ई० के शिलालेखमें अजयसिंहका नाम आया है, और त्रैलोक्यवर्मन्‌का १२४१ ई० का लेख मिला है। इस कुलका अत किस तरह हुआ इसका पता नहीं चलता। सम्भव है अल्तमश अथवा उसके बादके सुलतानके समय मुसलमानोंने उसे नष्ट किया हो। इस राजकुलकी मुहरोंपर दो हाथी और उनके बीच लक्ष्मीका और इनके भडे पर नन्दीका चित्र है।

त्रिपुरके हैहय राजाओंकी वंशावली।

१ गांगेय (१०१०–१०३८) ले० १०३७
|
२ कर्ण (१०३८–१०८०) ले० १०४२
| रानी आवेल्लदेवी हूणकन्या
३ यश कर्ण (१०८०–११२४) ले० ११२०, ११२२
|
४ गयकर्ण (११२४–११५२) ले० ११५१
| रानी आल्हण देवी गुहिलौत कन्या

५ नरसिंह (११५२–११७०) ले ११५५, ५८, ५९
६ जयसिंह (११७०–११८०) ले. ११७५,७७
|
७ विजयसिंह (११८०–९८) ११८०,११९६
|
८ अजयसिंह (गौरीशंकर टॉड)
|
९ त्रैलोक्य वर्मन्

टिप्पणी

कलचुरी नरेशोंकी राजधानी तिवर अथवा त्रिपुर
(जबलपुर गजटियर १९०८)

प्राचीन भारतमें कलचुरी राजाओंकी राजधानी त्रिपुर एक प्रसिद्ध नगर था। किन्तु आजकल वह उजाड़ खण्ड है और जबलपुरसे १० मील पर स्थित तेवर नामक ग्रामके रूपमें अवशिष्ट है। यह गाँव मार्बलरॉक्स अर्थात् नर्मदा तटके निकट है। तिवरके पास ईसवी सन्‌की तीसरी सदी तकके शिलालेख मिलते हैं। त्रिपुरके पास कर्णका बसाया कर्णावती नगर भी उजड़ी और टूटी फूटी अवस्थामें पाया जाता है। उसके समीपमें आजकल कर्णबेल नामक गाँव है। यहाँपर बेलके पेड़ बहुत ज्यादा तादादमें हैं, इसीसे इसके नाममें बेल शब्द लगाया गया है। (सम्भव है इस नगरमें कर्णके बसाये हुए सभी ब्राह्मण शैव रहे हों और उन्होंने शिव पूजाके लिए बेलके पेड़ लगाये हों।) शहरके अवशेषोंमें सुन्दर सुन्दर मूर्तियोंको छोड़कर और कुछ भी नहीं बच पाया है, क्योंकि यहाँके घाट और मन्दिरोंके पत्थरोंको रेलके पुल और नदियाँ बाँधनेके लिए ठीकेदार लोग उठा लेगये। हाँ, पुरानी सीढ़ियोंकी एक बावड़ी जरूर अभी मिली है। इसका पानी गाँवके तमाम लोग पीते हैं। इस गिरे हुए शहरके पास एक विस्तीर्ण तालाब भी है।

सातवाँ प्रकरण ।

अनहिलवाड़के चालुक्य ।

गुजरातके चालुक्यों (सोलंकियों) का इतिहास बाम्बे गजेटियर जि० १ भाग २ में जैन ग्रंथों तथा उस समय तक प्राप्त शिलालेखोंसे संगृहीत कर विस्तृत और उत्तम रूपमें दिया

गया है। उसका मुख्य आधार हेमचन्द्रका द्व्याश्रय काव्य और मेरुतुंगका विचारश्रेणी नामक ग्रंथ हैं। 'विचारश्रेणी' में भिन्न भिन्न राजाओंके राज्यकालकी तिथियाँ भी दी हुई हैं। किन्तु इन दोनों तथा अन्य प्रबन्धोंमें अद्भुत रस बढ़ानेके लिए कितनी ही काल्पनिक बल्कि असत्य बातें लिख दी गयी हैं। गंभीर इतिहास लिखनेके लिए हमें ऐसे वर्णनोंको छोड़ देना होगा। इसके अतिरिक्त हिन्दूकालीन भारतके सामान्य इतिहासमें इन बातोंका विशेष महत्व भी नहीं है। इसलिए चालुक्योंका इतिहास देते समय हम केवल उन्हीं बातोंको ग्रहण करेंगे जो महत्वपूर्ण और यथेष्ट साधार होंगी। साथ ही गजेटियर लिखे जानेके बाद शिलालेखोंसे जो वृत्तान्त ज्ञात हुए हैं उन्हें भी दे देंगे।

सबसे पहले तो यह कह देना चाहिये कि यह चालुक्य कुल दक्षिणके चालुक्योंसे भिन्न है, यद्यपि उनका नाम एक ही है और प्राचीन कवियोंमें तथा 'बखर' कारोंने भी उनको एक ही माना है, पर जैसा कि हम दूसरे भागमें कह आये हैं, हमारी रायमें भिन्न भिन्न राजपूत कुलोंके गोत्रोंका बहुत महत्त्व है। और ब्राह्मणोंमें जिस प्रकार कुलसंज्ञा एक होते हुए भी गोत्रभेद कुल-भेदका सूचक है वैसे ही क्षत्रियोंमें भी है, क्योंकि इनके गोत्र अपने कुलके गोत्र हैं, अपने पुरोहितोंके नहीं हैं जैसा कि आगे चलकर विज्ञानेश्वरने प्रतिपादित किया है। दक्षिणके चालुक्योंका गोत्र मानव्य है। यह बात उनके बहुत पुराने छठी सदीके लेखमें भी स्पष्ट लिखी है। दक्षिणके परवर्ती चालुक्य तैलप आदि इसी कुलके थे, यद्यपि उन्होंने अपने लेखोंमें अपना गोत्र नहीं लिखा है। गुजरातके चालुक्य भी ऐसा ही करते थे परन्तु चेदियोंके एक लेखमें उनका गोत्र

भारद्वाज दिया हुआ है (एपि० इं० भा १ पृ० २५३)। यह लेख दसवीं सदीका है। पृथ्वीराज रासोमें चंदने भी चालुक्योंका यही गोत्र लिखा है। आज भी रेवा तथा गुजरातके सोलंकी अपना गोत्र यही बताते हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन कालसे इनका गोत्र भारद्वाज ही है। अतः हमारी रायमें छठी और सातवीं सदीके दक्षिणके चालुक्य और गुजरातके चालुक्य भिन्न भिन्न हैं यद्यपि गजेटियर और गौरीशंकर ओझा भी इन दोनों कुलोंको एक ही मानते हैं।

दूसरी बात, पाठकोंको यह स्मरण रखनी चाहिये कि जिस भागमें चालुक्योंका राज्य स्थापित हुआ था उसे अबतक 'गुजरात' संज्ञा प्राप्त नहीं हुई थी। उनकी राजधानी अनहिलवाडपट्टण सारस्वत मंडलमें था। और इसीलिए हमने इन्हें इस प्रकरणके शीर्षकमें गुजरातके नहीं बल्कि अनहिलवाडके चालुक्य कहा है। गजेटियरमें वे गुजरातके चालुक्य ही कहे गये हैं। किंतु इस कुलके संस्थापक मूलराजने ही अपने लेखमें कहा है कि मैंने सारस्वत मंडलका राज्य सम्पादन किया (इं० ए० ६ पृष्ठ १)। कहीं बारहवीं सदीके मध्यके चालुक्य लेखोंमें जाकर उस भूमिका नाम गुर्जर भूमि मिलने लगता है (इं०ए० ६ नं० ४ वि० संवत् १२८० अथवा १२२३ ईसवी)। यही मत इस विषयमें श्री दिवाटियाका भी है। १०३० ईसवी तक (इस समय अल्बेरूनीने अपना ग्रन्थ लिखा) जयपुरके आस पास के प्रदेशकी गुजरात संज्ञा थी। इस प्रदेशको छोडकर गुर्जर भूमिकी संज्ञा दक्षिणकी ओर क्यों बढ़ी और पहले वर्तमान गुजरातके उत्तरी भागको तथा बादमें दक्षिण भागको, जो 'लाट' कहाता था, क्यों यह नाम दिया गया, इसका निर्णय अभी नहीं हो सका है। पर यह निश्चित है कि इस प्रदेशको

यह नाम इसलिए नहीं मिला कि यहाँके चालुक्य राजा गूजर अथवा गुर्जर जातिके थे। पिछले भागमें प्रकट किये हुए मतपर हम अब भी दृढ़ हैं। क्योंकि ये चालुक्य अथवा सोलङ्की अपने किसी भी लेखमें अपने आपको गुर्जर नहीं बताते। अवश्य दूसरे राजाओंके लेखोंमें वे गुर्जरराज कहे गये हैं, और वे भी बारहवीं सदीके उत्तरार्धमें अपने लेखोंमें अपनेको गुर्जर भूमिके राजा कहने लगे। पर अपनेको गुर्जर जातिके या वंशके राजा न तो उन्होंने कभी कहा है और न दूसरोंने ही उन्हें ऐसा कहा है, इससे यह सिद्ध है कि इस प्रान्तका नाम गुजरात किसी अन्य कारणसे ही पड़ा है।

तीसरी बात यह कह देनी है कि ये राजा शैव अर्थात् शिवोपासक थे। कुछ लोगोंकी धारणा है कि ये जैन हो गये थे। पर यह बिलकुल गलत है। ये कभी जैन नहीं हुए। हाँ ये परमत सहिष्णु थे जैसा कि सभी हिंदू होते हैं। यही नहीं, ये राजा जैन साधुओं तथा पंडितोंका आदर सम्मान भी करते थे। पर इस समयके अन्य समस्त राजाओंके समान ये हिंदू और शैव ही बने रहे। इन्होंने अपने लेखोंमें कहीं भी अपनेको जैन नहीं कहा है और न उन लेखोंके प्रारंभमें कहीं जिनकी स्तुति ही की है। सदा शङ्करकी ही स्तुतिसे उनका प्रारंभ किया, यहाँ तक कि इस कालके प्रसिद्ध जैन महापंडित हेमचन्द्रके कट्टर शिष्य कुमारपालने भी अपनेको शिवभक्त ही बताया है और शिलालेखोंमें इसके विषयमें "पार्वती प्रसाद लब्ध लक्ष्मी" ही लिखा गया है। इसके अतिरिक्त उसने शिवके कई मंदिर भी बनवाये। वस्तुतः इस कुलके देवता सोमनाथ थे। सोमनाथका प्रसिद्ध मन्दिर इनके ही राज्यमें था। यह सत्य है कि जैन लेखक यह दिखानेका यत्न करते हैं कि कुमारपालने

बादमें जैनधर्म स्वीकार कर लिया। यही नहीं वे यह भी कहते हैं कि सोलंकी राजाओंकी तरह चावडा राजा भी जैन थे। किंतु सोलंकी राजाओंके शासनकालमें लिखे गये शिलालेखोंमें ऐसा माननेके लिए तनिक भी आधार नहीं मिलता। इससे यही मानना पड़ता है कि ये राजा सदा शैव ही बने रहे, यद्यपि ये जैन धर्मकी सहायता करते थे और जैसा कि आगे बताया जायगा, इनके समयमें जैनधर्मका उत्कर्ष भी हुआ।

मतभेदकी इन तीन महत्वपूर्ण बातोंका उल्लेख कर देनेके बाद अब हम मुख्यतः बाम्बे गजेटियरके आधारपर अनहिलवाडके चालुक्योंका इतिहास सारांश रूपमें देते हैं। इस कुलका संस्थापक मूलराज था। वह पाटणके अन्तिम चापोत्कट राजाका भानजा था। संभवतः उस राजाके समय राज्यमें अराजकता मची होगी, और मूलराजने अपने बाहुबलसे राज्य संपादन कर और शान्ति तथा व्यवस्थाकी स्थापना की होगी। शिलालेखोंमें ऐसा ही लिखा है। गुजरातके बखरकार जो लिखते हैं कि इसने अपने मामाको मारकर अन्यायपूर्वक राज्य हस्तगत किया, यह कदाचित् सत्य नहीं। इसने ९६१ से ९९६ ई० तक अन्य सब राज्य संस्थापकोंकी तरह न्यायपूर्वक तथा दृढ़तासे राज्य किया। पड़ोसी राजाओं अर्थात् कच्छ तथा सिंधके राजाओंसे इसका युद्ध हुआ था। इसने एक विशाल राज्यको हस्तगत कर लिया था, अतः उसपर अपने अधिकार पराक्रमसे सिद्ध करना इसके लिए आवश्यक ही था। ऐसा वर्णन मिलता है कि इसने "ग्रहरिपु" को हराकर सोमनाथ छीन लिया जिसकी सहायता कच्छका खेंगार राजा तथा सिंधके अरब भी कर रहे थे। ग्रहरिपु

असली नाम नहीं मालूम होता। संभवतः वह चावडा कुलका कोई विद्रोही मांडलिक रहा होगा जिसे यह अन्वर्थक नाम दे दिया गया होगा। दक्षिण और उत्तरके राजाओं अर्थात् लाटके बारप और साँभरके विग्रह राजके साथ भी मूलराजको लड़ना पड़ा था। बारप् संभवतः कर्नाटकके राजा तैलपका सेनानायक था, क्योंकि परमारोंके लेखोंमें लाट और कर्नाटकका सदा एक साथ ही उल्लेख आता है। लाट कर्नाटका मांडलिक प्रान्त था जिसपर प्रायः राज वंशका कोई व्यक्ति प्रान्ताधिकारी या गवर्नरकी हैसियतसे राज्य करता था। बारपके युद्धमें मारे जानेकी बात लिखी है। मूलराजने इन दोनों राजाओंसे अलग अलग लडकर उनकी चढ़ाइयोंका प्रतिकार किया और अपने राज्यकी रक्षा की। वृद्धावस्थामें मूलराजने अपना जीवन धर्म कार्योंमें लगाया। पाटणमें उसने एक शिवालय बनवाया। भारतवर्षके भिन्न भिन्न प्रान्तोंसे विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उसने उन्हें सिद्धपुर आदि स्थानोंमें बसाया। गुजरातके औदीच्य और गौड़ ब्राह्मण मानते हैं कि उनके पूर्वज मूलराजके समय वहाँ आकर बसे।

मूलराजके बाद उसका बेटा चामुण्ड सिंहासनपर बैठा। जैन बखरकारोंका कथन है कि उसने ९९७ ई० से १०१० ई० तक राज्य किया। कुमारपालकी बड़नगर प्रशस्तिके अनुसार इसने मालवाके सिंधुराजको युद्धमें मार डाला। पं० गौरीशंकर इस युद्धका समय १०१० ई० मानते हैं (भाग २ पृ० १२३ देखिये)। इस घटनाको इसके बादकी मानना संभव भी नहीं। हाँ, इसके पहलेकी वह हो सकती है। क्योंकि जैसा कि हम पहले कह आये हैं, मालवाके भोजका

राज्यारंभ १०१० ई० के पहले ही हुआ मालूम होता है। मूल राज काशीयात्राको जा रहा था। मुञ्जने उसका अपमान किया और चामुण्डने इसका बदला चुकाया। यह कथा संभवतः कल्पित है।

चामुण्डके तीन पुत्र थे, वल्लभ, दुर्लभ और नागराज। ज्येष्ठ पुत्र गद्दीपर बैठा और थोड़े ही दिन राज्य करके मर गया। फलतः शिलालेखोंमें उसका नाम अकसर नहीं आया है। उसके बाद उसका भाई दुर्लभ सिंहासनारूढ हुआ। उसने १०१० से १०२२ ई० तक १२ वर्ष राज्य किया। बखर अथवा शिलालेखोंमें इसके राज्य-कालकी किसी विशेष घटनाका उल्लेख नहीं मिलता। इसके बाद इसके भतीजे नागराजके पुत्र प्रथम भीमको गद्दी मिली। यह बडा शक्तिशाली राजा था। इसने १०२२ से १०६४ ई० तक बयालीस वर्ष राज्य किया। मालवाके भोज और चेदीके कर्णका यह समकालीन था। ये भी बड़े बलवान् और पराक्रमी राजा थे। भोजके साथ इसका जो युद्ध हुआ उसका वर्णन किया जा चुका है। कहते हैं कि कर्णसे पराजित होने पर भोजने उसे एक सोनेकी पालकी भेंट की थी। भीमने कर्ण और भोज दोनोंको हराया और कर्णसे वह पालकी छीन कर अपने कुल-देवता सोमनाथको अर्पण कर दी। यह कथा सत्य हो अथवा असत्य पर यह निश्चित है कि ये तीनों ही राजा बडे पराक्रमी थे और उनमें बारम्बार युद्ध तथा मित्रता होती रहती थी। हम यह पहले ही बता चुके हैं कि यह बात असत्य है कि भोजकी मृत्युके बाद कर्ण और भीमने मिल कर मालवापर चढाई कर उसे उद्ध्वस्त कर दिया। मालवाके लेखोंसे साफ जाहिर होता है कि केवल चेदीके कर्णने मालवापर चढाई की थी। फलतः गुजरातके

वखरकारोंने इस विषयमें जो अतिरञ्जित वृत्तान्त लिखा है वह सत्य नहीं।

इसी राजाके समय महमूद गजनवीकी सोमनाथ वाली प्रसिद्ध चढाई हुई। इस बातका हमने अन्यत्र विचार किया है कि यह चढाई सच मुच हुई थी या नहीं। सोमनाथके एक शिलालेखमें लिखा है कि भीमने सोमनाथके पुराने लकडोके मंदिरके स्थानपर पत्थरका मंदिर बनवाया। यह बात लिखी जा चुकी है कि उदयपुरकी प्रशस्तिमें सोमनाथके मंदिरका निर्माण करानेवाला भोज बताया गया है। गजेटियरमें सोमनाथके शिलालेखका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इससे हम यह नहीं कह सकते कि उस लेखका मूल्य कितना है। हाँ, हम यह कल्पना कर सकते है कि भोज और भीम दोनोंने मिलकर पत्थरवाला मंदिर बनवाया। और सचमुच भीमकी सहमति और सहायताके बिना भोज यह मंदिर बनवा न सकता था।

भीमके बाद उसका दूसरा लडका कर्ण गद्दीपर बैठा। बडा लडका मूलराज पिताके सामने ही चल बसा था। कर्णने १०६४ से १०९४ ई० तक तक शान्तिपूर्वक राज्य किया। उसने कर्णसर नामक तालाब भी बनवाया। एक नगर बसाकर उसका नाम कर्णावती रखा और उसको उसने अपनी दूसरी राजधानी बनाया। यही नगर आजकलका अहमदाबाद है। सर्वपराक्रमी हिन्दू राजाओंकी तरह इसने भी शिव और दुर्गाके अनेक मन्दिर बनवाये। पडोसी राजाओंके साथ इसकी लडाई बहुत कम हुई। हम्मीर चरित्रमें लिखा है कि सांभरके चौहान राजा दुस्सलके साथ युद्ध करते हुए यह मारा गया।

कीलहार्नकी वंशावलीमें (एपि० इंडि० ८) भीमके नामपर केवल एक ही शिलालेख दिया हुआ है। वह १०२६ ई० का है। इससे भीमके विषयमें अधिक जानकारी नहीं होती (ई० ए० ६ पृष्ठ १९३)। कर्णके नामपर भी एक ही शिलालेख दिया गया है। वह १०९१ ई० का है। इसमें भी कर्णके विषयमें कोई बात नहीं है (ए० ई० १ पृ० ३१७)। कुमारपालकी वड़नगरवाली प्रशस्तिमें भी इन दोनोंके विषयमें विशेष कुछ नहीं मिलता। उसमें लिखा है कि मालव चक्रवर्तीकी धारानगरीको उसने पंचधारा (घोड़ेकी चाल या शस्त्रोंके धारा-प्रयोग) में प्रवीण अपने कुशल अश्वदलकी सहायतासे जीत लिया। उसमें कर्णकी साधारण प्रशंसा भी है। कर्णके १०९१ ई० के लेखसे सिद्ध होता है कि गुजरातके बखरकारोंने कर्णका शासनकाल जो १०६४ से १०९४ ई० तक लिखा है वह ठीक है।

कर्णके बाद उसका पुत्र जयसिंह गद्दीपर बैठा। इसकी माता कर्णाट कदम्ब-राजकन्या थी जिससे कर्णका विवाह वृद्धावस्थामें हुआ था। कर्णकी मृत्युके समय जयसिंह नाबालिग था, फलतः कुछ दिन उसकी माताने सुयोग्य तथा स्वामिभक्त मंत्रियोंकी सहायतासे राज्यकार्य चलाया। जयसिंह उर्फ सिद्धराज गुजरातके चालुक्योंमें सबसे अधिक बलवान् राजा हुआ। इसने अनेक इमारतें बनवायीं। गुजरातकी हर एक पुरानी इमारतको लोग जयसिंह सिद्धराजकी बनवायी हुई बताते हैं। सिद्धपुरका रुद्रमाल (रुद्रमहालय) नामक प्रसिद्ध शिवालय इसीने बनवाया था। अब तो इसके केवल भग्नावशेष मात्र रह गये हैं पर उससे भी इसकी कल्पना हो सकती है कि सम्पूर्ण मंदिर कितना विशाल था और उसमें

कितना बढिया काम किया गया था। पाटणका सहस्रलिंग नामक सरोवर उसीने बनवाया। उसने बड़े बड़े युद्ध भी किये। बारह वर्षतक वह मालवावालोंसे लडता रहा। इस युद्धका प्रारम्भ नरवर्मन्के परमारके समय मालवाकी चढ़ाईसे और अंत यशोवर्मनके पराजय, तथा कारावाससे हुआ था, यह बात हम पहले लिख चुके हैं। धाराको स्वाधिकृत कर जयसिंह मदनपाल चन्देलपर चढ़ गया और उससे कर वसूल किया। किन्तु चन्देलोंके कालिंजरके एक लेखमें लिखा है कि जयसिंह पराजित हुआ (जे० ए० ए० एस० १८४८ पृ० ३१६)। फिर भी मालवा उसने जीता था, यह निश्चित है। मालवाका बहुत बडा भाग असेतक गुजरातके अधीन रहा। इसीलिए शिलालेखोंमें अनेक बार यह अवंतिनाथ कहा गया है। एक शिलालेखसे पता चलता है कि उसने कच्छको जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया और वहाँ अपना प्रान्ताधिकारी नियुक्त किया। शिलालेखोंमें यह बर्बरक-जेता भी कहा गया है। इस शब्दको लेकर कितनी ही दन्तकथाएँ गढी गयी और कितनी ही अटकलें भिड़ायी गयी हैं। दंतकथाओंका भाव यह है कि बर्बरक भूत पिशाचोंका राजा था और जयसिंह सिद्धराजने भूतप्रेतोंपर ऐसी सिद्धि प्राप्त कर ली थी कि यह चाहे जो कर सकता था। किन्तु यह बात विश्वासके योग्य नहीं है। इसीसे प्राचीन इतिहासको खोज करनेवालोंने इस शब्दका अर्थ दूसरी तरहसे लगानेका प्रयत्न किया है। उनके मतसे बर्बरक कोई जंगली जाति या म्लेच्छ होंगे। यह भी कहा गया है कि ये बर्बरक पुराणोल्लिखित बर्बर अर्थात् अफ्रीकाके बर्बर होंगे। ब्यूहलरका अनुमान है कि आजकल काठियावाड़के दक्षिणमें जो बाबर भील बसे हैं वही उस समयके बर्बरक

होंगे (गॅजेटियर)। हमारे मतसे यह शब्द अरबोंके लिए आया है (भाग १ देखो) । बहुत संभव है कि सिंघपर आक्रमण करनेवाले अरबोंका जयसिंहने पराभव किया हो।

भोजके प्रसिद्ध उदाहरणका अनुकरण कर जयसिंहने भी विद्वानोंका खूब आदर-सत्कार किया। बड़े बड़े जैन और हिन्दू पण्डित इसके आश्रयमें रहते थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इन सबमें श्रेष्ठ जैन हेमचन्द्र था। उसने अपना संस्कृत व्याकरण इसको अर्पण कर उसका नाम सिद्धहेम रखा। उसके लिखे द्व्याश्रय काव्यमें चालुक्योंका इतिहास और उसके व्याकरण-सूत्रोंके उदाहरण हैं। पण्डितोंका वाद-विवाद सुननेका सिद्धराजको बड़ा शौक था। कथा है कि किसी एक ऐसे ही शास्त्रार्थमें एक दिगम्बर पण्डितको खम्बातके श्वेताम्बर जैन सूरीने पराजित कर दिया था। इस दिगम्बर पण्डितने प्रतिपादन किया कि स्त्रियों तथा कपड़े पहननेवाले यतियोंका मोक्ष नहीं हो सकता। संभव है यह कथा श्वेताम्बर पन्थसे प्रचलित हुई हो। गुजरातमें श्वेताम्बरोंका प्राबल्य है।

केवल कवि ही नहीं बल्कि वीर लोग भी सिद्धराजका आश्रय लेते थे। जगदेव परमार इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध था। यह उदयादित्यका छोटा लड़का था। बखरकारोंने इसके शौर्यकी अद्भुत कथाएँ लिख रखी हैं। चाहे वे सब सत्य न हों किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह बड़ा शूरवीर था।

गजेटियरमें सिद्धराजकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। वह अत्यंत सामर्थ्यवान्, अत्यंत धार्मिक और अत्यंत उदार कहा गया है, और ठीक ही कहा गया है। सोमनाथके दर्शनके लिए जानेवालोंपर एक भारी कर लगा हुआ था। कितने ही

यात्री इसके कारण अपनी दर्शनेच्छा पूरी न कर सकते थे। उनका दु ख देखकर जयसिंहकी माताने उससे उनकी ओरसे विनती की। इसपर जयसिंहने तत्काल वह कर उठा दिया, यद्यपि उसकी आमदनो एक लाख रुपया साल थी। वडनगर प्रशस्तिमें तो यहाँ तक कहा गया है कि इसने अपने रा यमेंके तमाम कर्जदारोंका कर्ज चुका दिया जिसके फलस्वरूप इसका सवत् चला। भारतवर्षमें ऐसी धारणा है कि नवीन सवत् चलानेवालेके लिए अपने राज्यके सब कर्जदारोंका कर्ज चुका देना आवश्यक है। वडनगरकी प्रशस्तिसे मालूम होता है कि सिद्धराजने सचमुच ही चरम उदारताका यह कार्य कर डाला। उसके सवत् चलानेमें सन्देह नहीं हैं, क्योंकि काठियावाड और गुजरातमें कई शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनपर यही सवत् खुदा है। सबसे हालका लेख विरावलका है। उसका काल चार सनोंमें दिया है—विक्रम १३२०, वल्लभी ६४५, सिंह १५१ और हिजरी ६४२ *। तात्पर्य यह कि शिलालेखोंमें जय सिंहको जो सिद्धराज और चक्र वर्तीकी दो पदवियाँ दी गयी हैं वह वस्तुत उनका अधि कारी था।

कीलहार्नने अपनी व शावलीमें जयसिंहके नामपर दो लेख दिये हैं—एक ११३८ ई० का, दूसरा ११३६ ई० का। दूसरा लेख चोलुक्योंका नहीं, उनके एक माडलिक राजाका है। उसके पहले श्लोकमें लिखा है कि जयसिंहने सौराष्ट्र और मालवाके राजाओंको कैद कर लिया। अपने उत्तराधिकारियों

* इससे प्रकट होता है कि उस समय गुजरातमें चार राज्योंके निदर्शक चार संवत् प्रचलित थे। उस समय मुसलमानी राज्यका आरम्भ काल ही था। परन्तु इसमें लिखा है कि इस समय वहाँ अर्जुनदेव बघेला राज्य करता था।

के शिलालेखोंमें बराबर अवंतिनाथ, त्रिभुवनगंड, वर्वरक जिष्णु और सिद्ध चक्रवर्ती कहकर उसका परिचय दिया गया है (ई० ए० ६ न० १ देखो)। बखरकारोंके मतानुसार जयसिंहने १०९३ ई० से ११४३ ई० तक ५० वर्ष राज्य किया। वह बालिग होनेके पहले ही राजा हो गया था। और ११९३ ई० का उसका शिलालेख भी मिला है। इससे यही सिद्ध होता है कि उसने बहुत वर्ष राज्य किया। यद्यपि उसको भूत-पिशाच सिद्ध थे, उसके पास अनेक सिद्धरस अथवा शक्तिशाली ओषधियाँ थीं और उसने अनेक पुण्य कार्य भी किये थे, फिर भी उसे पुत्र न प्राप्त हुआ और अन्तको राज्य कुमारपालको मिला जो प्रथम भीमके तीसरे लड़के कृष्णराजके पोते त्रिभुवननाथका पुत्र था। दूसरे लोग भी उत्तराधिकारी होते थे। उनसे इसका झगडा हुआ और बाहरके राजा भी इस झगडेमें शामिल हुए। पर अंतमें अजमेरके अर्णोराज तथा मालवाके बल्लालको, जैसा कि शिलालेखोंमें कहा गया है, कुमारपालने अपने पराक्रमसे तथा जैन मंत्रियोंकी सहायतासे हराकर राज्यको स्वाधिकृत किया। इसने भी अपने पूर्वजोंकी भाँति अनेक वर्षतक बुद्धिमत्ता और न्यायपूर्वक राज्य किया। बखरकारोंके मतानुसार इसने ११४३ से ११७३ ई० तक तीस साल राज्य किया। सचमुच भीम, कर्ण, जयसिंह और कुमारपालके जैसे चार बुद्धिमान्, पराक्रमी और न्यायी राजाओंके एकके बाद एक दीर्घकाल तक राज्य करनेका उदाहरण क्वचित् ही मिलेगा। नहरवालके जयसिंह और कुमारपालकी कथा १२२५ ई० के अरब ग्रन्थकारोंने भी लिख रखी है। उफीने अपने जमीयत-उल हिकायतमें पिशाचोंपर राज्य चलानेवाले जिस जयसिंहका जिक्र

किया है वह यही जयसिंह सिद्धराज है, और उसका 'गुरपाल' कुमारपाल है, जिसके विषयमें लिखा गया है कि इस राजाको राज्यसिंहासन प्राप्त करनेके पहले अनेक देशोंमें भटकना और कितने ही संकटोंका सामना करना पड़ा था। इसलिए यह बड़ा न्यायी निकला। गुजरातके बखरकार लिखते हैं कि भावी उत्तराधिकारी होनेके कारण कुमारपाल जयसिंहकी नाराजगीमें पड़ गया था। तब हेमचन्दके उपदेशानुसार कुमारपाल गुजरात छोड़ कर दक्षिण और पूर्वके, राज्योंमें घूमता रहा। हेमचन्दने उसके भावी वैभवकी भविष्यद् वाणी कर रखी थी और वह ठीक भी उतरी। इससे कुमारपालकी इस प्रसिद्ध जैन पण्डितपर बड़ी श्रद्धा हो गयी और जैन धर्मके प्रति उसके हृदयमें बड़ा आदर उत्पन्न होगया। कुमारपालका आत्मसंयम और उच्च नीति, संभव है, उसके मनपर पडे हुए जैन धर्मके प्रभावका ही परिणाम हो। इसके सिवा यह बात भी है कि कुमारपाल जब राज्यारूढ हुआ तब पचास वर्षका था। राजा लोग जिस उम्रमें दुर्गुणी और अत्याचारी होते है उसे वह पार कर चुका था।

कुमारपालका पहला युद्ध अजमेरके अर्णोराजसे हुआ। अर्णोराजसे उसकी बहिन ब्याही थी। उसके भाईकी तरफसे शायद अर्णोराज उससे लड़ने गया था। इस लडाईके विषयमें कई विचित्र बातें कही गयी हैं। पर शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि कुमारपालने इस लडाईमें बडी बहादुरी दिखायी और अर्णोराजकी छाती अपने बाणसे घायल कर दी*। शिला-

* अर्णोराजनराधिराजहृदयक्षिप्तैकबाणव्रणात् च्योतल्लोहित तर्पणादमदयचण्डीं भुजस्वामिनीम् ॥ (वडनगरप्रशस्ति एपि० इंडि० १)

लेखोंमें यह सदा 'स्वभुज पराक्रम निर्मित शाकम्बरी भूपाल' कहा गया है। बहुत सम्भव है इसी युद्धमें बडनगर प्रशस्तिमें वर्णित अर्णोराजका सहायक मालवाका राजा बल्लाल मारा गया हो। कोंकणके राजा मल्लिकार्जुनको जीतनेके लिए कुमारपालने दो बार अपने सेनापति अम्बडको भेजा था। दूसरी बारकी लड़ाईमें अम्बडने मल्लिकार्जुनके हाथीपर चढकर उसका सिर काट लिया। यह कथा भी कही जाती है कि चेदीका राजा कुमारपालपर चढ़ाई करने आ रहा था। वह हाथीपर सवार था। उसके गलेका रत्नहार किसी पेड़की डालीमें अटक गया जिससे फाँसी लगकर उसकी मृत्यु हो गयी। पूर्व मालवाके उदयपुरके मन्दिरमें कुमारपालके शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनसे प्रकट होता है कि मालवाके बड़े भागपर अबतक गुजरातका राज्य था। पश्चिम राजपूतानाके बालमेद् स्थानमें भी तथा खास चित्तौडगढ़में भी उसके लेख मिले हैं। यह बात कुछ विचित्रसी है। क्योंकि यह संभव नहीं कि चित्तौड़ और वहाँके गुहिलोत राजाओंको कुमारपालने जीत लिया हो। इस लेखमें लिखा है कि कर्णपर चढाई करके लौटते समय वह इस प्रसिद्ध किलेको देखनेके लिए गया था। संभवतः चित्तोड़के राजाने सम्मान्य अतिथिके रूपसे उसका सत्कार किया होगा। एक दन्तकथा यह भी है कि कुमारपालकी एक रानी गुहिलोत राजकन्या थी। इस सम्बन्धके कारण भी, सम्भव है, चित्तौड़में उसका मित्रोचित स्वागत हुआ हो और गुहिलोतोंकी राजधानीके किलेमें उसका लेख खोदा गया हो। कुमारपालके राज्यका विस्तार निस्सन्देह बहुत था पर जैन ग्रन्थकारोंने उसकी शक्तिका वर्णन अत्युक्तिपूर्वक किया है। इसका कारण यही होगा कि

उनके धर्मपर उसकी बड़ी श्रद्धा थी। वे लिखते हैं कि उत्तर-में उसके राज्यकी सीमा तुर्कोंके राज्यसे भिड़ गयी थी।

कुमारपालको भी अपने पूर्वजोंकी तरह इमारतें बनवानेका बड़ा शौक था। उसने अथवा उसके मन्त्रियोंने कई जैन विहार बनवाये। जैन-बखरकार तो लिखते हैं कि सोमनाथका मन्दिर भी उसीने बनवाया। वे कहते हैं कि कुमारपालने हेमचन्द्रसे पूछा कि मैं कौनसा पुण्य कार्य करूँ। तब हेमचन्द्रने कहा कि सोमनाथका मन्दिर फिरसे बनवा दो। फलतः कुमारपालने सोमनाथका प्रस्तर-मन्दिर बनवाया। इस मन्दिरको भोजने और भीमने भी बनवाया था। जयसिंहके यह कार्य करनेका तो स्पष्ट ही उल्लेख है। संभवतः यह देवालय समुद्रके इतना समीप था कि उसकी लहरें इससे टकराती रहती थीं, इसलिए पहलेके मन्दिर बनानेवाले समुद्रमें लकड़ीके खम्भे खड़े करते रहे होंगे। इसमें कुमारपालके पत्थरका मन्दिर बनवानेकी बात असंदिग्ध है। सोमनाथके मन्दिरके अहातेके बाहर स्थित भद्रकालीके मन्दिरमें ११८६ ई० का एक शिलालेख है जिसमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है। काशीनिवासी एक कनौजिया ब्राह्मण तपस्वी भारतवर्ष भरके मन्दिरोंका उद्धार करता हुआ मालवाकी राह सोमनाथ भी पहुँचा। उसने जय-सिंहसे सोमनाथका मन्दिर बनवानेकी प्रार्थना की। जयसिंहने उसको बनवाना आरंभ किया, पर उसे पूरा किया कुमारपाल-ने। सोमनाथका मन्दिर बनवानेकी प्रेरणा करनेका श्रेय इस शिलालेखके अनुसार लकुलीश पंथके 'भाव बृहस्पति' नामक एक ब्राह्मण यतिको है। पर जैन ग्रंथकार इस श्रेयको खुद लेना चाहते हैं और लिखते हैं कि हेमचन्द्रके उपदेशके अनु-सार कुमारपालने उक्त मन्दिर बनवाया। हम दोनोंको यह श्रेय

दे सकते हैं, क्योंकि कुमारपाल तो हिन्दू और जैन पण्डितों तथा संन्यासियोंका समान आदर करता था। इस शिलालेख के विषयमें अधिक चर्चा हमने अन्यत्र की है।

अब इस बातका विचार करना है कि कुमारपाल अपने शासन-कालके अंतिम दिनोंमें जैन हो गया था, यह कथन कहां तक विश्वसनीय है। सोमनाथका मंदिर बनवाते समय, हेमचंद्रके उपदेशसे, मद्य, मांस और मैथुन इन तीन मकारोंसे निवृत्त रहनेकी उसने प्रतिज्ञा की थी। और दो वर्ष तक इस व्रतका पालन कर जब कि मन्दिरका काम समाप्त हुआ तब उसने वहां जा कर देवताको पूजा की। हेमचन्द्रने भी मूर्तिको प्रणाम किया परन्तु यह व्रत जैनोंका ही नहीं मनुस्मृतिके अनुसार हिंदुओंका भी है। * अपने कुलदेवता तथा गुरु हेमचन्द्र दोनोंमें सम्भवतः कुमारपालकी समान भक्ति थी। इस बातमें तो हिन्दू सदासे बड़े परमतसहिष्णु होते आये हैं। इस समय भी कितने ही श्रद्धावान् हिन्दू मुसलमान फकीरोंके शिष्य बताये जाते हैं। अतः कुमारपालका जैन मुनियोंकी भक्ति करना अथवा जैन विहार बनवा देना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अपने शिष्यकी तरह हेमचंद्र भी परमतसहिष्णु था। उसने भी सोमनाथकी मूर्तिको जिनदेवकी मूर्ति मान कर नमस्कार किया। जो हो, यह नहीं प्रतीत होता कि कुमारपाल अन्तमें अपने कुलदेवताकी उपासना छोड़कर जैन हो गया हो। क्योंकि उसके अपने तथा उसके वंशजोंके शिलालेखोंमें सर्वत्र उसके विषयमें "उमापति प्रसाद लब्ध लक्ष्मीः" लिखा गया है। जिस प्रकार हर्षके लेखोंमें वह "परम सौगत" तथा उसका पिता

---

* न मांस भक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥

प्रतापवर्धन "परममाहेश्वर" कहा गया है; उसी प्रकार कुमारपालको किसी भी लेखमें जैन नहीं कहा है। तथापि ऐसा माननेका कारण है कि वह जैन धर्मके प्रधान सिद्धान्त अहिंसासे इतना प्रभावित हो गया था कि हर्षके समान उसने भी अपने राज्यमें सदा नहीं तो कुछ खास दिनोंमें ही प्राणिवध बन्द करनेमें अपनी राजसत्ताका उपयोग किया था। जैन बखरकार तो लिखते हैं कि उसने जीवहत्या बिलकुल बन्द करा दी थी और मालवाके शिलादित्यकी तरह घोड़े-हाथियों तकको कपड़ेसे छाना हुआ पानी पिलवाता था (भाग १ देखिये)। पर हम इसे न भी मानें तो इतना तो उसके शिलालेखोंमें लिखा मिलता है कि उसके मांडलिक राजाओंने कुछ निश्चित तिथियोंमें जीवहिंसा करनेकी मनाही कर दी थी। मारवाड़के रतनपुर और हरसोद स्थानोंमें ऐसे दो शिलालेख मिले हैं (भाव० इन्० पृष्ठ २०६)। उनमें लिखा है कि कुमारपालके दो मांडलिक राजाओंने एकादशी और अमावास्याको जीवहिंसा बन्द कर दी थी और आज्ञा दी थी कि "जो कोई करेगा उसे पाँच द्राम दण्ड होगा"। यदि मांडलिक राजाओंने इस प्रकार जीवहिंसा बन्द कर दी तो अवश्य ही उन्होंने प्रधान राजशक्तिकी मंजूरीसे ही ऐसा किया होगा। संभवतः कुमारपालने खुद भी ऐसी ही आज्ञा निकाली हो, पर इस रतनपुरके लेखमें ही कुमारपालके विषयमें "पार्वती पतिके प्रसादसे" प्रकर्ष प्राप्त करनेकी बात लिखी है। इसी प्रकार वडनगरकी प्रशस्तिमें भी लिखा है कि कुमारपालने वडनगरका परकोटा बनवाया। वडनगर नागर ब्राह्मणोंका मूल स्थान है जिनकी शिवभक्ति प्रसिद्ध है। इन सब बातोंसे यही निश्चित होता है कि कुमारपाल भी अपने पूर्वजोंकी तरह ही कट्टर शिवभक्त था, पर जैन

धर्मके लिए उसके मनमें इतना आदर था तथा हेमचन्द्रका उसपर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने जैनोंकी पवित्र मानी हुई कुछ तिथियोंपर पशुवधका निषेध कर दिया। सनदोंसे साबित है कि अकबरने भी जैनोंके धर्म-विश्वासके प्रति आदर प्रकट कर कुछ शहरोंमें, खासकर जैनोंके पचोसन पर्वके दिनोंमें, प्राणिहत्या बन्द कर दी थी।

कीलहार्नने कुमारपालके नामपर ११४५ से ११६६ ई० तकके सात लेख दिये हैं (ए० इ० ८)। इससे प्रकट होता है कि वखरकारोंके लिखे अनुसार ११४३ से ११७३ ई० तक ही उसने राज्य किया होगा। कुमारपालके भी कोई पुत्र नहीं था। इसलिए उसका भतीजा अजयपाल गद्दीपर बैठा। वह बड़ा तामसी स्वभावका था। उसने जैनोंको बहुत सताया, बल्कि हिन्दू मंत्रियोंको भी बड़ा कष्ट देने लगा। ११७६ में अर्थात् राज्यारूढ़ होनेके बाद शीघ्र ही उसके द्वारपालने उसकी हत्या कर डाली। एक शिलालेखमें वर्णन है कि उसने सालुम्बर राजाको जीतकर कर देनेके लिए मजबूर किया। पर यह संभव नहीं मालूम होता।

उसके बाद उसका लड़का मूलराज गद्दीपर बैठा। मूलराज अल्पवयस्क था इसलिए वह बालमूलराज भी कहा गया है। उसकी माता नायकीदेवी परमाडी कदम्ब कर्नाटकी राजाकी कन्या थी। वह राजप्रतिनिधिकी हैसियतसे राज्य करने लगी। इस राजाके समय मुहम्मद गोरीने गुजरातपर चढ़ाई की थी, किन्तु वह पराजित हुआ। यह पराभव हिन्दुओंके लिए गौरवप्रद था, इसलिए चालुक्योंके लेखोंमें मूलराजकी प्रशंसा होना स्वाभाविक ही है।* विजयका श्रेय राजाको ही दिया

* आह्वपराभूतदुर्जयगुर्जराधिराज (इ० ए० ६,पृ० १९४)

जाता है। पर एक लेखमें इस विजयका श्रेय मूलराजकी माताको दिया गया है।† अपने शौर्यके लिए मृत्युकी परवाह न करनेके कारण तथा धर्म ('ग्रानर') और सतीत्वकी रक्षा करनेके लिए राजपूत स्त्रियां इतिहासमें प्रसिद्ध ही हैं। किन्तु यह राजपूत रानी कर्नाटककी थी, इसलिए दाक्षिणात्योंको इसपर अभिमान होना स्वाभाविक है। यह लड़ाईमें उपस्थित थी। इसने गजनीकी सेनाके मुकाबले गुजरातकी सेनाका नेतृत्व भी संभवतः ग्रहण किया था। इस युद्धका वर्णन हमें कहीं नहीं मिलता। पर ऐसा जान पड़ता है कि गुजरातकी सेनाकी बहादुरीके कारण रानीकी विजय हुई और गुजरातके सेनापतियोंने हाथियोंकी तथा घोड़ोंकी सेनाका संचालन बड़े अच्छे ढंगसे किया। गुजरातके बखरकार कहते हैं कि उस समय जेता पक्षकी सहायताके लिए वर्षा होने लगी। पर वर्षासे जीतनेवालोंको ही क्यों सहायता मिली, यह समझमें नहीं आता। हाँ, यह मान लेना होगा कि गोरीके पास काफी फौज न रही होगी और गुजरातकी सेना बड़ी रही होगी। क्योंकि गोरीको मुलतान तथा कच्छके रेगिस्तानोंसे होकर आना पड़ा था। पराजयका कारण कुछ भी हो, इससे गुजरात मुसलमानी शासनसे और भी सौ साल तक बच गया और नहरवाला राज्यकी सेनाकी कीर्ति फल गयी। ११७८ ई० में यह लड़ाई हुई थी। गजेटियरमें कहा गया है कि यह युद्ध गदरार घाटके पास हुआ था (पृ० १९५)। मुसलमानी इतिहासकार प्रायः इस लड़ाईका उल्लेख नहीं करते। पर वे इतना लिखते हैं कि मूलराजके बाद सिंहासनारूढ़ होने

† चौलुक्य राजान्वय पूजितस्य यस्यानुभावादबलापि संख्ये
हम्मीर राजं तरसा् जिगाय ॥ (वेरावल लेख भा० इं० पृष्ठ २४)

वाले भीमसे यह लड़ाई हुई थी। पण्डित गौरीशंकरके मतसे ऐसा मानना उनका भ्रम है। संभव है मुहम्मद गोरीने पराजयका कलंक धो डालनेके लिए दूसरी बार चढ़ाई की हो। यह स्पष्ट है कि गोरी महमूद गजनवीका अनुकरण करता था। प्रारंभमें उसे कम सफलता हुई, पर आगे चल कर हम देखेंगे कि बादमें उसे महमूदसे भी बड़ी विजय प्राप्त हुई।

मूलराजने भी बहुत दिन राज्य किया। उसके बाद उसका भाई भीम गद्दीपर बैठा। वह भी अल्पवयस्क था, इसलिए शासनकार्य उसकी माता करती थी। इसको भोला भीम कहते हैं। जयसिंहके समान इसने भी बहुत वर्ष राज्य किया। कहा जाता है कि ११७८ से १२४१ ई० तक उसने ६३ वर्ष राज्य किया और यह विश्वसनीय है, क्योंकि वह बहुत छोटी उम्रमें गद्दीपर बैठा था। जयसिंहके समान ही वह भी अपनेको सिद्धराज कहता था। सच तो यह है कि गुण वैसे न होते हुए भी उसने अभिनव सिद्धराजकी पदवी ग्रहण कर ली थी। उसके राज्यकालके अनेक शिलालेख ११९९ से १२३८ ई० तकके मिले हैं। अतः इसमें सन्देह नहीं कि बखरकारोंके कथनानुसार उसने १२४१ तक राज्य किया। उसका अधिकार उसके मांडलिकों और सरदारोंने छीन लिया था पर वे उसे सदा अनहिलवाडका राजा मानते रहे। उदाहरणार्थ जयसिंहके एक शिलालेखमें (इसके विषयमें आगे चलकर अधिक लिखा जायगा) लिखा है कि अनहिलवाडमें भीम राज्य करता है। बघेला सरदार लवणप्रसाद और उसका पुत्र वीर धवल बादमें इतने बलवान् हो गये कि स्वयं भीमको वीर धवलको अपना उत्तराधिकारी घोषित करना पड़ा। ये बघेले सरदार चालुक्य कुलकी ही

एक शाखा थे जिसका संस्थापक कुमारपालकी मौसीका लडका अर्णोराज था। उसने कुमारपालकी राज्यप्राप्तिमें बडी सहायता की थी, इसलिए कुमारपालने भी उसे अनहिलवाडके निकट एक व्याघ्रवल्ली नामक गाँव इनाम दिया था। इसी गाँवको लेकर इस कुलका नाम बघेला पडा। अर्णोराजका पुत्र लवणप्रसाद दूसरे भीमका सेनानायक था और यह बडा सूरमा था। भीमका उत्तराधिकारी त्रिभुवनपाल केवल चार ही वर्ष राज्य कर पाया था कि वीर धवल उसे पदच्युत कर स्वय राजा बन बैठा (गौरीशंकरका टाड)। त्रिभुवनपालका संवत् १२६६ (१२४२ ई०) का एक ताम्रपट मिला है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस राजाने कुछ दिन राज्य किया था, पर वास्तविक अधिकार वीरधवलका था और उसने कुछ ही दिनोंमें त्रिभुवनपालको हटाकर अनहिलवाडमें बघेलोंका राज्य स्थापित किया। उसके बाद चार पीढी तक इस वशके चार राजाओंने राज्य किया—वीसलदेव, अर्जुनदेव, सारङ्गदेव और कर्ण (१२८६ से १३०१ ई० तक)। कर्णके समय मुसलमानोंने गुजरातको पूर्णरूपसे जीत लिया। इस बघेल कुलके राजा बडे ही शूर वीर थे। उनके दो प्रसिद्ध जैन मन्त्रियों—वस्तुपाल और तेजपालने गिरनारके सुविख्यात जैन मन्दिर बनवाये थे। बघेल राजवशके वर्तमान उत्तराधिकारी रेवाके राजकुलके हैं। और मूलराजके चालुक्य कुलके उत्तराधिकारी लूनावाडा, रूपनगर मेवाड और मारवाडके अन्तर्गत कोटके राजा हैं (गौरीशकरका टॉड देखो)। इनके कुछ वशज मराठा भी हैं। सतारा जिलेके कहाडके डुवल अपनेको गुजरातके चालुक्योंका वशज मानते हैं। उनका गोत्र भी भारद्वाज है।

अब इसका विचार करना है कि संवत् १२६० (१२०२ ईसवी) के शिलालेखको लिखानेवाला जयंतसिंह कौन था (इं० एं० ६ न० ४ पृष्ठ १९७)। इस लेखमें वह चालुक्य कहा गया है। पर यह नहीं बताया गया है कि उसका और भीमका क्या सम्बन्ध था। तथापि 'तदनंतरं स्थाने' शब्दोंसे यह स्पष्ट है कि वह भीमके एवज राज्य करता था। इसके अतिरिक्त इसमें जयन्तसिंह "दुष्ट कालरूपी समुद्रमें डूबी हुई गुर्जर-भूमिका वाराहके समान उद्धार करनेवाला और आपत्तिके दावानलसे दग्धभूत गुर्जर बीजका पोषण करनेवाला" भी कहा गया है। वह अपने नामके साथ वे सब पदवियां लगाता है जिन्हें गुर्जर राजा लगाते थे और अपनेको 'अलहिलवाडमें प्रतिष्ठित' लिखता है। इस सबसे यही प्रतीत होता है कि सम्भवतः इस (लेख) में कुतुबुद्दीन एबककी चढ़ाईका उल्लेख है (बम्बई गजेटियर १९५-१९७)। महमूदकी चढ़ाईके समय जिस प्रकार पहला भीम भाग गया था, उसी प्रकार शायद कुतुबुद्दीनकी चढ़ाईके समय दूसरे भीमने भी भाग कर किसी दूरके दुर्गमें आश्रय ग्रहण किया था। कुतुबुद्दीन अजमेरको लेकर अनहिलवाडकी ओर बढ़ा और आबू पर्वतके नीचे सरहदपर ही गुजरातकी सेनाने उसका मुकाबला किया। किन्तु धारावर्ष, परमार और गुजराती सेनाके अन्य अधिपतियोंकी पराजय हुई (गौरीशङ्कर)। फलतः गुजरात अरक्षित हो गया और लूटा गया। कदाचित् बहादुर चालुक्य राजपूत जयन्तसिंह अनहिलवाडमें ही रहा और उसने नगरका बचाव किया। जब कुतुबुद्दीन देशको लूटकर लौट गया तब जयन्तसिंहने अवशिष्ट मुसलमान सैनिकोंको मार भगाया और गुजरातको पुनः मुक्त किया। इस तरह उसके पराक्रमका जो अत्युक्तिपूर्ण

वर्णन है वह मूलत सत्य होगा।* जयन्तसिंहने कमसे कम तीन वर्ष राज्य किया होगा। उसका लेख १२०२ ई० का है और भीम का अनहिलवाडस प्रचारित भाद्रपद अथवा सितम्बर ११९९ ई० का लेख मिला है (इ० ए० ११ पृष्ठ ७१)। इससे मालूम होता है कि जब मुसलमान सेना देशमें घुसकर प्रजाको सता रही थी तब भीम कुछ दिनोंतक अनाहिलवाडमें ही था। इसके बाद बिलकुल लाचार होकर उसने अनहिलवाड छोडा होगा। जब सब आपत्तियाँ टल गयीं तब वह पाटण लोट आया और उसने १२४२ तक राज्य किया। उसका अन्तिम उपलब्ध शिलालेख १२३९ ई० का है। भीमने जिन पदवियोंको धारण किया था वे निरर्थक आत्मश्लाघासे भरी हुई हैं। वह अपनेका न केवल अभिनव सिद्धराज बल्कि सप्तम चक्रवर्ती कहता था। समझमें नहीं आता कि वह अपनेको गुजरातका सातवाँ भारत सम्राट क्यों कहता था? सम्भव है प्रथम भीमसे लगाकर सभी चालुक्य राजाओंको उसने चक्रवर्ती मान लिया हो और इस तरह अपनेको सातवाँ चक्रवर्ती कहा हो। निःसन्देह इस कुलके प्राय सभी राजा बडे पराक्रमी थे। अगर कोई अपवाद होगा तो यही अन्तिम भीम होगा। यह सचमुच ही "भोला" था। शिलालेख लिखनेवालोंने इसकी जो इतनी प्रशंसा कर डाली उसका खोखलापन वह नहीं समझ सका। अस्तु, इन चालुक्य राजाओंकी वंशावली उनके राज्यारोहणके *सम्भवनीय काल तथा उनके लेखोंके कालके सहित हम*

---

* भीमदेवस्तदनतरं स्थाने प्रम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर चौलुक्य-कुल-कल्पवल्ली विस्तारणदीप दु समय जलधि जलमग्न मेदिनी मंडलोद्धरण महावराह दुर्दैव दावानल दग्ध गुर्जरधरावीज प्ररोहैक पर्ज न्यैकाङ्गवीर। (इं०, ए० ६ पृ० १९७)

आगे दे रहे हैं। बम्बई गजेटियर जि० १ भाग १ तथा पं० गौरीशंकर ओझाके मतानुसार दूसरे भीमकी अनुपस्थितिमें राज्य करनेवाले जयंतसिंहका नाम हमने छोड़ दिया है। (कीलहार्नने अपनी वंशावलीमें उसका नाम दिया है।)

अनहिलवाडके चालुक्य राजाओंकी वंशावली।

(बाम्बे गजेटियर जि० १ भाग १ और कीलहार्नकी वंशावली एपि. इ. ८)

१ राजीका पुत्र मूलराज (९६१ से ९९६)
|
२ चामुण्ड (९९७ से १००९)
|
३ वल्लभ (१०१०) | ४ दुर्लभ (१०१०–१०२१) | नागराज
|
५ भीम पहिला (१०२१–१०६३) ले. १०२९
|
६ कर्ण (१०६३–१०९३) लेख १०९१ | खेमराज (अथवा हरिपाल)
|
७ जयसिंह सिद्धराज (१०९३–११४३) लेख ११३८–११३९ | त्रिभुवनपाल
|
महीपाल | ८ कुमारपाल (११४३–११७३) लेख ११४५, ५०, ५२, ५३, ६३–६५
|
९ अजयपाल ११७३–११७६—लेख ११७२–११७५
|
१० मूलराज दूसरा (११७६–११७८) | ११ भीम दूसरा (११७८–१२४१) लेख ११९९, १२०७, ०९, १६, १८ २६, ३०, ३१, ३९
|
१२ त्रिभुवनपाल ले. १२४२

आठवाँ प्रकरण ।

कन्नौजके गाहड़वाल राजा ।

मध्ययुगीन हिन्दू भारतके इतिहासके तीसरे काल-विभागमें (१०००–१२०० ई०) जिन राजपूत राजवंशोंका उदय हुआ, उनमें कन्नौजके गाहडवाल राजा सबसे अधिक शक्तिशाली थे। कहा जाता है कि गाहडवाल राष्ट्रकूटोंकी एक उपशाखा है। किन्तु यह प्रश्न विवादग्रस्त है और हम आगे चलकर इस पर विचार करेंगे। इस बातका भी अभी ठीक ठीक निश्चय नहीं हो सका है कि गाहडवाल कहाँसे आये। इस विषयपर भी हम अपना मत आगे देंगे। इस वंशके अनेक लेख मिले हैं। उनसे प्रकट होता है कि इस वंशके पहले प्रसिद्ध पुरुष गाहडवाल महीयलके पुत्र चंद्रने अपने बाहुबलसे कान्यकुब्जका राज्य प्राप्त किया और देशको त्रास-मुक्त किया। प्रत्येक लेखमें चन्द्रकी ऐसी ही प्रशंसा की गयी है। यह निश्चित नहीं कि उसने किस वर्ष यह पराक्रम किया। तथापि सौभाग्य-वश कीलहार्नके १८०८ ई० में उत्तरके राजाओंकी वंशावलियाँ एपि० इंडि० ८में प्रकाशित करनेके बाद स्वयं चंद्रदेवके तीन लेख मिले हैं। उनमेंसे पिछले दो लेखोंमें उसकी विस्तारपूर्वक स्तुति की गयी है। पर इनमें जिन विशेषणोंका प्रयोग किया गया है उनका ठीक ठीक अर्थ नहीं लगता। इनमें कहा है कि चंद्रने नरपति, गजपति और त्रिशंकुपतिको जीतकर पांचाल राजको पराजित किया (एपि० इंडि० १४ पृष्ठ १९२)। इसमें शक नहीं कि पांचालके मानी कन्नौज ही है। इस लेख-का समय १०९३ से १०९९ तक है। १०९१ के, उसके लेखमें

जो ए. इं. ६ पृष्ठ ३०२ में छपा है, उसके लिए मामूली विशेषणोंका ही प्रयोग हुआ है। चन्द्रके बादके राजाके एक राजाके लेखमें (इं० एं० १४ पृ० १०३) लिखा है कि चेदीके कर्णके परलोकगामी होने पर चद्रने पृथ्वीको सङ्कटसे मुक्त किया। हमने निश्चय किया है कि इस कर्णने १०८० ई० तक राज्य किया। इस कारण यह अनुमान होता है कि चंद्रने १०८० के बाद कन्नौजको विजय किया। इसी लेखमें यह भी कहा है कि चंद्रदेवने अनेक शत्रु राजाओंको जीतकर कान्यकुब्ज (कन्नौज) को अपनी राजधानी बनाया। हर्षके समयसे कन्नौज भारतवर्षका रोम अथवा कुस्तुनतुनिया हो रहा था। जो राजा उसे स्वाधिकृत करता वह भारतवर्षका सम्राट् माना जाता। इसलिए यद्यपि उसने कन्नौजके प्रतिहारोंके आखिरी राजाको आसानीसे जीत लिया तथापि अन्य अनेक राजाओंने उसका विरोध किया होगा। चंद्रके पूर्वोक्त दो लेखोंमें पांचालके राजाके लिए 'चपल' विशेषणका प्रयोग किया गया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रतिहार राजा दूसरे बाजीरावके समान भागता फिरता था और चंद्र उसका पीछा करता रहा होगा।

इस प्रकार चंद्रने कन्नौजका राज्य हस्तगत कर देशको तुर्कोंके शाससे मुक्त किया होगा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कन्नौजके प्रतिहार राजा गजनीके सुलतानको जो कर देते थे उसे वसूल करनेके लिए स्थान स्थानपर उसके अधिकारी रहते थे। चन्द्रने उनको मार भगाया होगा। यह कर गाहडवालोंके लेखोंमें "तुरुष्कदंड" नाम देकर अजर अमर कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त चंद्रके विषयमें यह भी लिखा मिलता है कि उसने भारतवर्षके मुख्य मुख्य

क्षेत्रों—काशी, कुशिक (कन्नौज), उत्तर कोशल (अयोध्या) तथा इन्द्रस्थान (इससे कदाचित इन्द्रप्रस्थ या दिल्लीका अभिप्राय होगा) को अपने अधीन कर लिया था। इस प्रकार उसने तुर्कोंसे हिन्दू तीर्थ क्षेत्रोंकी रक्षा करके हिन्दू राजाके कर्तव्यका पालन किया (इ० ए० १४)। गाहडवालोंके प्रायः सभी लेखोंमें चंद्रकी यह प्रशंसा पायी जाती है। उसने विद्वान् ब्राह्मणोंको कई तुलादान दिये। मतलब यह कि चंद्र केवल पराक्रमी ही नहीं था, अत्यन्त धर्मनिष्ठ हिन्दू भी था और उसकी कन्नौज-विजयको देशको म्लेच्छोंके त्राससे मुक्त करनेके लिए हिन्दुओं-का प्रबल धार्मिक प्रयत्न ही मानना चाहिये। यही सेवा भोजने भी की थी (१०४०) और बादमें कर्णने भी (१०६७)। किन्तु चन्द्रने उत्तर भारतमें कन्नौजको जीतकर तथा वहां दृढ़ राज्य स्थापित कर हिन्दू राज्यकी नींव ऐसी मजबूत कर दी कि हिन्दू भारतकी आयु सौ वर्ष और बढ़ गयी।

चंद्रके बाद मदनपाल राज्यारूढ़ हुआ। इसके तथा इसके बादके राजाओंके लेखोंमें इसकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। किन्तु वह वैसी ही है जैसी प्रशंसा करनेका साधारण नियम सा हो गया था। उससे कोई विशेष ऐतिहासिक तथ्य नहीं मालूम होता। मदनपालके बाद उसका पुत्र गोविन्दचन्द्र गद्दीपर बैठा। तीसरी पुश्तका राजा प्राय. तेजस्वी तथा बलवान् होता है। इस नियमके अनुसार गोविन्दचन्द्र सचमुच गाहड़वाड राजाओंमें सबसे अधिक पराक्रमी राजा निकला। शिलालेखोंमें इसके विषयमें लिखा है कि नवस्थापित राज्यको इसने अपने बाहुबलसे यों स्थिर कर दिया मानो रस्सोंसे जकड दिया हो। यह भी कहा गया है कि "इसके जंगी हाथी तीनों ही दिशा-ओंमें समान भावसे विचरण करते थे"। सम्भव है हर्षके समान

हो इसकी सेनाका भी यह अंग विशाल रहा हो और वह इसका उपयोग पूर्व, दक्षिण और पश्चिम तीनों दिशाओंमें सदा करता रहा हो। उत्तरमें हिमालय उसके राज्यकी स्वयंरक्षित सीमा थी। इसलिए उधर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं थी। "नरपति-हयपति-गजपति-राज्यविजेता" का विरुद पहले पहल उसीने ग्रहण किया। ये तीन राजा अथवा राज्य कौनसे थे, यह निर्णय करना कठिन है, न इसकी कोई चर्चा ही हुई है। संभवतः हयपतिसे कन्नौजके प्रतिहार राज्य, गजपतिसे बंगालके राज्य और नरपतिसे चेदीके राज्यका अभिप्राय होगा। प्रथम दो शब्दोंका प्रयोग पहले हो चुका है और हमने उनका यही अर्थ लगाया है (भाग २ परिशि० २)। नरपतिसे चेदी अथवा तिलंगानेके राज्यका अभिप्राय हो सकता है। "तिलंगानेके राजाने उसके पदकमलोंका चुम्बन कर उसकी मांडलिकता स्वीकार की" ऐसा उल्लेख मिला है। चन्द्रदेवके लेखोंमें गिरिपति शब्दका प्रयोग भी पाया जाता है। यह आंध्र या चेदीके राजाके लिए आया होगा, क्योंकि दोनोंके ही राज्यमें बहुतसे पहाड़ हैं। आन्ध्रके राजाके लिए गिरिपति शब्दका प्रयोग पहले हो भी चुका है (भाग २ के अन्तमें परिशिष्ट सं० २ का श्लोक देखिये)। अस्तु, कोई भी अर्थ लिया जाय तथापि यह माननेमें कोई बाधा नहीं कि गोविन्दचन्द्रने अपना अधिकार चारों दिशाओंमें फैलाया और वंग, आन्ध्र तथा चेदीके राज्योंकी सीमाओंको बहुत कुछ संकुचित कर दिया। बनारस तो निश्चय ही उसकी अधीनतामें था और उसके पूर्वका बहुत सा प्रदेश भी उसके अधिकारमें रहा होगा। बनारसके आस पासके कई गांव उसने दान किये थे और ये सब दानपत्र बनारससे जारी किये गये थे। इससे

प्रकट होता है कि कन्नौजके राजाओंकी दूसरी राजधानी बनारस थी। किंबहुना जयचन्द्रको तथा कन्नौजके अन्य राजा ओंको मुसलमानी इतिहासकार बनारसका राजा ही कहते हैं। इससे कई लोग अनुमान करते हैं कि ये राजा मूलत काशीके ही राजा रहे होंगे।

अस्तु, गोविन्दचन्द्रको जिस प्रकार पूर्वमें गौड राजाओंसे युद्ध करना पडा था, उसी प्रकार पश्चिममें लाहौरके मुसल मानोंसे भी उसे अवश्य करना पडा होगा। और सचमुच ही गोविन्दचन्द्रकी युवराज अवस्थाके दानपत्रमें मुसलमानोंके साथ हुए इस युद्धका सरल और अतिशयोक्तिरहित वर्णन है। इस जगहका श्लोक बडा महत्त्वपूर्ण है। उसका अर्थ इस प्रकार है—(इन दोनों लेखोंके लिखे जानेके समय वह यमुना नदीके किनारे बसे हुए आसटिका नामक गाँवमें था। इस गाँवका अभी पता तो नहीं लगा है, पर यह सभवत वायव्य दिशामें रहा होगा। इस दान-लेखके समय मदनपाल राज्य कर रहा था) "गौडराजके दुर्निवार हाथियोंके गडस्थलोंको फोडनेके कारण भयकर दिखाई देनेवाले तथा अपने असम युद्धके द्वारा हम्मीदको शत्रुता त्याग करनेको विवश कर देनेवाले गोविन्द चन्द्रने अपने सदा घूमते रहनेवाले घोडोंकी टाप रूपी राज मुद्रासे अकित पृथ्वीका राज्य सपादन किया।" * इस वर्णनसे गोविन्दचन्द्रके उन अनेक युद्धोंकी अच्छी कल्पना हो सकती है जो उसने पजाबके मुसलमानोंके साथ किये थे। और ऐसा

---

* दुर्वारस्फारगौड द्विरदवर घटा कुम्भ निर्भेद भीमो
हम्मीर न्यस्तवैर मुहुरसमरण क्रीडया यो विधत्ते
शश्वत्सचारि वल्गत्तुरग खुरपुटोल्लेख मुद्रा सनाथ
क्षोणी स्वीकार दक्ष स इह विजयते प्रार्थना कल्पवृक्ष ॥१॥

मालूम होता है कि उसने तुर्कोंको सुलह करनेपर मजबूर किया। इससे यह भी प्रकट होता है कि कन्नौजके भोज प्रतिहारके समान गोविन्दचन्द्रके पास भी बड़ी भारी घोड़सवारसेना थी और उससे वह सदा काम लेकर उसे घुमाता रहता था।

गोविन्दचन्द्र केवल अत्यंत प्रबल राजा ही न था, वह स्वयं विद्वान् भी था और मालवाके भोजका अनुसरण कर अपने दरबारमें विद्वानोंको आश्रय भी देता था। इस विषयमें उसका वर्णन "विविध-विचार-विद्या-वाचस्पति" इस विशेषणसे गाहडवालोंके लेखोंमें किया गया है। अर्थात् भिन्न भिन्न शास्त्रों तथा तत्त्वज्ञानमें वह दूसरा बृहस्पति ही था। कहा जाता है कि उसके युद्ध-सचिव लक्ष्मीधरने धर्मशास्त्र और व्यवहार-विधि पर "व्यवहारकल्पद्रुम" नामक एक ग्रन्थ लिखा था। इन गुणोंके कारण गोविन्दचन्द्रको समुद्रगुप्त, हर्ष, भोज, शिवाजी, महमूद, अकबर इत्यादि महान् विजेता और विद्वानोंका आदर करनेवाले राजाओंकी श्रेणीमें रखना अनुचित न होगा।

गोविन्दचन्द्रने बहुत दिन (१११४ से ११५५ ई०) तक राज्य किया। विन्सेन्ट स्मिथने इसके शासनकालमें ११०४ से १११४ ई० तक दस साल गलतीसे और भी बढ़ा दिये हैं (E. H. I. तीसरा संस्करण)। किन्तु गौरीशंकर ओझाने उसके राज्यारंभका ठीक काल १११४ ई० ही दिया है। यह तिथिविषयक मतभेद महत्त्वपूर्ण था। इसलिए हमने स्वयं इस कालके लेखोंको ध्यानसे देखा। ११०४ से ११०९ ई० तकके दानपत्रोंमें गोविन्दचन्द्रने स्पष्ट रूपसे मदनपालके राज्य करनेका उल्लेख कर युवराजकी हैसियतसे सही बनायी है। अतः इन वर्षोंको मदनपालके राज्य-कालमें ही गिनना

चाहिये। कीलहार्नने भी ११०४,११०६ ११०७ और ११०६ ईसवीके लेख मदनपालके नामसे दिये हैं। ११०४ ई० का पहला लेख इं० एं० १४ पृष्ठ १०३ में छपा है। वह इटावा जिलेके बसही गांवका प्रसिद्ध लेख है। इसमें गोविन्दचन्द्र को "महाराजपुत्र" कहा गया है। इसका अर्थ महाराजाका पुत्र ही करना चाहिये। अंतिम वाक्यमें कहा गया है कि यह लेख (दानपत्र) पुरोहित जागूकको सलाहसे लिखा गया। महत्तम वाल्हण और प्रतिहारी गौतमकी सलाहका भी उल्लेख है। ११०५ ई० का लेख इं० एं० २ पृष्ठ ३५८ में छपा है और वह भी इस लेखके जैसा ही है। उसके विषयमें विशेष चर्चा आगे की जायगी। उसमे पांचाल देशके एक गाँवको दान करनेका उल्लेख है। देनेवालेका स्थान गंगाके तीरपर बताया गया है। अंतिम वाक्यमें लिखा है 'यह लेख वरिष्ट अधिकारी तथा राजाकी माता श्री राल्हदेवीकी आज्ञासे लिखा गया है।' ११०७ ई० का तीसरा लेख रा० ए० सोसायटीके जर्नल, १८६६ पृष्ठ ७८६ में सारांश रूपमें छपा है। रानी पृथ्वीश्रीकाने मदनपालके लिए यह लेख बनारसमें लिखवाया था। ११०६ ई० का चौथा लेख इं० एं० १८ पृष्ठ ११ पर छपा है। यमुना तीरपर बसे हुए उपर्युक्त आसहिका गांवमें महाराज पुत्र गोविन्दचन्द्रने सूर्यग्रहण निमित्त 'मदनपालके राज्यकालमें' यह दान किया। इस लेखके अंतमें अधिकारियोंकी अनुमति का जिक्र नहीं है। इन तफसीली बातोंको हम इसलिए दे रहे हैं कि इससे दो तीन महत्वपूर्ण अनुमान निकलते हैं। *पहले यह माना जाता था कि मदनपाल १०६७ ई० में राज्यारूढ़ हुआ।* किन्तु अब १०६६ ई० का चन्द्रका लेख प्राप्त हो चुका है। संवत् ११५४ अर्थात् ई. स. १०६७ का लेख कील-

हार्नने भी चन्द्रके नामपर दिया है। यह लेख (इं॰ एं॰ १८ पृष्ठ ११) मदनपालने १०९७ ई० में चन्द्रके किसी दानपत्रको अपनी मंजूरी देनेके लिखवाया था। यह बात नहीं बतायी गयी कि स्वीकृति कब दी गयी या लेख कब लिखा गया। किन्तु चन्द्र १०९९ में जीवित था। उसके बाद ही यह घटना हुई होगी। इसलिए चन्द्रका राज्यकाल हम लगभग १०८० से ११०० ई० तक और मदनपालका ११०० में राज्यारूढ होना मानते हैं। किन्तु हमें आश्चर्य होता है कि मदनपालके राज्य करते हुए गोविन्दचन्द्रने ११०४, ११०५, ११०७ ११०९ में चारों लेख कैसे लिखवाये। इनमेंसे एक लेख राजमाता रानी राल्हदेवीने लिखवाया था। दूसरा लेख मदनपालकी रानी पृथ्वीश्रीका, जब वह पांचाल देशमें थी उस समय उसकी सम्मतिसे लिखा गया है। इससे यह अनुमान होता है कि इस समय मदनपाल बीमार रहा होगा। अथवा अन्य किसी कारणसे वह स्वतः राजकाज न करता रहा होगा और उसके पुत्र तथा रानीको दान देने तथा राजाके स्वतः करनेके अन्य कार्योंका अधिकार दे दिया गया होगा। इससे यह भी प्रकट है कि राजपूत रानियाँ अवसर राजाकी प्रतिनिधि रूपसे राज्यका काज चलाया करती थीं। अन्तिम लेखके समय ११०९में गोविन्दचन्द्र उम्रमें तथा सामर्थ्यमें इतना बड़ा हो गया होगा कि उसे अपनी माताकी स्वीकृति लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी। १११४ ई० में गोविन्दचन्द्र स्वतन्त्र रूपसे दान देता है (कीलहार्न और गौरीशंकर)। इससे अनुमान किया जा सकता है कि वह बीचमें अर्थात् १११० ई० में गद्दीपर बैठा होगा।

गोविन्दचन्द्र युवावस्थामें ही राज्यारूढ होगया था इसलिए यह अनेक वर्षोंतक राज्य करता रहा। बनारसके पास एक

स्थानपर इक्कीस ताम्रलेख एकट्ठा मिले हैं। उनमेंसे चौदह गोविन्दचन्द्रके हैं। इनका समय ११९४ से लेकर ११५४ ई० तक है। इन्हें कीलहार्नने एपि० इं० ४ में छापा है। गोविन्दचन्द्रके अवतक कुल चालीस दानपत्र मिले हैं। अन्तिम लेख ११५४ ई० का है। इसके बाद विजयचन्द्र राज्यारूढ़ हुआ। उसका सबसे पहला दानपत्र ११६१ ई० का उपलब्ध हुआ है। तथापि हम गोविन्दचन्द्रका शासनकाल १११० से ११५५ तक ही मानते हैं, इसके आगे नहीं। इसके कारण थोड़ा ही आगे चलकर बताये जायँगे। गोविन्दचन्द्रके दो रानियाँ थीं। एकका नाम नयनकेलिदेवी और दूसरीका गोसलादेवी था। पहिली रानीसे राज्यपाल नामक पुत्र हुआ था जिसने युवराज अवस्थामें ही ११४२ ई० में एक दानपत्र लिखवाया था। ऐसा जान पड़ता है कि वह अपने पिताके पहले ही मर गया।

गोविन्दचन्द्रके बाद विजयचन्द्र गद्दीपर बैठा। वह भी शक्तिशाली और योग्य राजा था। उसके पुत्रके लेखमें उसके दिग्विजय करनेकी बात लिखी है। पृथ्वीराज रासोमें इसका नाम विजयपाल दिया है। उसमें भी इसके दिग्विजयका वर्णन है। इसके ११६८ ई० के लेखमें हम्मीरके साथ इसका भी युद्ध होनेका वर्णन है। "हम्मीरने अकारण पृथ्वीको सता कर संतप्त कर रखा था। विजयचन्द्रने इस लोकतापका शमन उसकी स्त्रियोंके आँसुओंसे कराया*।" उक्त लेखके इस आलंकारिक वर्णनसे प्रकट होता है कि विजयचन्द्रने अपने पिताकी अपेक्षा हम्मीरको अधिक गहरी हार दी। संस्कृतके कवि शत्रुपर विजय-प्राप्तिका वर्णन प्रायः उसकी स्त्रियोंके दुःखका वर्णन करके किया करते हैं, जो एक विचित्र ढंग है,

* भुवनदलनहेला हर्म्यहम्मीरनारी नयनजलदधाराधौत भूलोपतापः।

अस्तु। इस समय हम्मीर अर्थात् खुस्रू गोरीके डरसे गजनी छोड़ कर लाहौरमें आकर रहने लगा था (११५२ ई०) गज़नीके राजकुलका ह्रास होते होते इस समय लोप-कालसा आ पहुँचा था। ऐसी दशामें विजयचन्द्रके हाथों उसका पराजित हो जाना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं। इसी लेखसे यह भी मालूम होता है कि विजयचन्द्रका पुत्र जयचन्द्र ११६८ में बड़ा होकर युवराज पद प्राप्त कर चुका था (इं. एं. १५ पृष्ठ ७)। जयचन्द्रके राज्यारोहणका उत्सव ३ जून सन् ११७० ई० को होनेकी बात स्पष्ट रूपसे उसीके एक लेखमें लिखी है। अतः हम विजयचन्द्रका राज्यकाल ११५५ से ११७० ई० तक मान सकते हैं।

जयचन्द भी प्रबल राजा था। किन्तु इस समय अजमेरके चाहमानोंने कन्नौजके गाहड़वाड़ोंसे भारतके सम्राट् कहानेका गौरव छीन लिया था। जान पड़ता है, यह घटना विजयचन्द्रके समयमें ही हुई, क्योंकि अजमेरके विग्रहपालने दिल्ली जीतकर ११६३ ई० में अपना एक शिलालेख खुदवाया जिसमें यह डींग मारी गयी है कि विग्रहपालने हिमालयसे लेकर विन्ध्यके बीचकी समस्त भूमि जीतकर आर्यावर्तको म्लेच्छोंसे पूर्णतया मुक्त कर दिया। विजयचन्द्रने ११६२ ई० के पहले ही दिग्विजय किया होगा। अतः उसका राज्यारंभ ११५५ ई० में मानकर उसकी विस्तृत विजयका काल ११५५ से ११६० ई० तक मानना चाहिये।

अन्तमें यह कह देना चाहिये कि कन्नौजके गाहड़वाल राजवंशके जयचन्द सहित पाँचों राजा बड़े कर्मशील थे। वे सामर्थ्यवान् थे, विजयी थे, और उनके पास बड़ी बड़ी सेनाएँ थीं। उन्होंने अनेक ब्राह्मणोंको दान और विद्वानोंको

आश्रय दिया। नैषधकाव्य जो सस्कृतके पञ्चमहाकाव्योंमेंसे है, जयचन्दके दरबारके कवि श्रीहर्षका बनाया हुआ है। यद्यपि जयचन्द्र बडा घमडी था और पृथ्वीराजसे शत्रुता कर उसने सर्वनाशकारी भूल की तथापि उसकी मानयुक्त मृत्यु हुई। मुहम्मद गोरीसे लडते समय उसका हाथी गङ्गामें चला गया और वहीं वह डूबकर मर गया। अत॰ वर्तमान प्रसिद्ध राजपूत राजकुलोंमेंसे जोधपुरके राठौर जैसे शूर वीर राजपूतोंका अपनी उत्पत्ति कन्नोजके गाहडवालोंसे मानना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं। यह बात ठीक वैसी ही है जैसी मेवाडके गुहिलोतोंका अपनी उत्पत्ति वलभीके मैत्रकोंसे मानना या सतारेके भोंसलोंका मेवाडके गुहिलोतोंको अपना पूर्व पुरुष बताना। यह धारणा साधार है अथवा नहीं, इसका विचार हम आगेकी टिप्पणीमें विस्तारसे करेंगे।

१. टिप्पणी—राठौर और गहरवार।

जोधपुरके राठौरोंकी दन्तकथात्मक धारणा है कि उनका मूल पुरुष सिहाजी, जो कि पहले पहल मारवाडको आया, जयचन्दका प्रपौत्र अथवा उसके भाईका पोता था। युक्तप्रान्तके गहरवार (इनका वर्तमान मुख्य प्रतिनिधि मिर्जापुर जिलेके कान्तित राज्यका अधिकारी है) भी मानते हैं कि उनकी उत्पत्ति सीधे जयचन्दसे हुई है। जब कन्नौजके राजाओंके कितने ही लेखोंमें जयचन्दके कुलका नाम गाहडवाल पाया गया तब इस बातका विचार आरभ हुआ कि जोधपुरके राठौर और युक्तप्रांतके गहरवार दोनों एक ही कुलके और कन्नौजके गाहडवाल राजाओंके वशज तो नहीं? डा॰ हार्नलने इं॰ एं॰ जिल्द १, १४ में इस विषयकी चर्चा की है और दो तीन कारण देकर इस उत्पत्तिके विषयमें शंका प्रकट की है। पहला कारण यह दिया है कि गहरवारोंका गोत्र काश्यप

और राठौरोंका गोत्र गौतम है। दूसरा यह कि इन दोनों कुलोंमें परस्पर विवाह होता है। उनका तीसरा कारण यह है कि गहरवारोंको अन्य राजपूत शुद्ध कुलका नहीं मानते। ये तीनों बातें सच हों या न हों पर उनसे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि जोधपुरके राठौर, जैसी कि उनकी परम्परागत धारणा है, कन्नौजके राठौर गाहड़वालोंसे उत्पन्न नहीं हुए हैं। इसके कारण नीचे लिखे हैं।

पहली बात यह है कि खुद चंद्रदेवके अत्यंत पुराने शिला-लेखमें गाहड़वाल सूर्यवंशी बताये गये हैं ("आसीदसीदद्युतिवंशजातः" आदि)। उसने अपने बादके दो लेखोंमें अपना नाम चंद्रादित्य भी दिया है। जोधपुरके राठौर भी अपनेको सूर्यवंशी मानते हैं। (आश्चर्य है कि गहरवार अपनेको जयचंदका वंशज बतलाते हुए भी चंद्रवंशी मानते हैं।) इस कारण ये राठौर दक्षिणके मालखंडके राष्ट्रकूटोंसे भिन्न हैं। क्योंकि जैसा कि दूसरे भागमें लिखा गया है, वे निश्चित रूपसे चन्द्रवंशी राजपूत हैं। राष्ट्रकूटका अर्थ देशका मुख्य अधिकारी है, अतः वह अधिकार अथवा पदकी संज्ञा है। पूर्वके चालुक्योंके शिलालेखोंमें उसका इसी अर्थमें प्रयोग भी हुआ है (पु० ४, प्रक० १०)। फलतः यह नाम भिन्न भिन्न कुलों अथवा जातियोंका भी हो सकता है जैसा कि आजकल देशपांडे या जोशी नाम है। अतएव उत्तरमें राज्य करनेवाले राष्ट्रकूट दक्षिणमें राज्य करनेवाले राष्ट्रकूटोंसे भिन्न हैं। यदि उत्तरके राष्ट्रकूट जोधपुरके राष्ट्रकूटोंकी दंतकथाके अनुसार दक्षिणके कल्याण नगरसे आये हों तो भी वे भिन्न ही हैं। अभी तक इस बातका निश्चय नहीं हुआ है कि गाहड़ गाँव कहाँ है। अब हम यह देखें कि गाहड़वाल शब्दका अर्थ क्या होता है और कन्नौजके राजाओंके लिए उसका प्रयोग क्यों किया जाता है। वर्तमान संज्ञा गहरवार है और हालमें ही यह बात मालूम हुई है कि उसका मूल रूप गाहड़वाल है। इसके पहले गहरवार शब्दकी व्युत्पत्ति दो तीन विचित्र प्रकारसे बतायी जाती थी। उसका अर्थ घर-बाहर—घरके बाहर—अथवा ग्रहवर अर्थात् शनि ग्रहको जीतनेवाला (मिर्जापुर गजेटियर पृष्ठ २०४) किया जाता था। किन्तु अब तो मूल शब्द गाहड़वाल मिल गया है, इस

लिए उसका अर्थ लगाते समय हम क्षत्रियोंकी जम्मूवाल अथवा वैश्योंकी अग्रवाल संज्ञाओंके अनुसार ही 'गाहड गाँवका रहनेवाला' अर्थ कर सकते हैं। अतः यह कुलनाम रहनेके गाँवपरसे प्रचलित हुआ होगा। सम्भवतः राठौरोंकी दूसरी शाखाओंसे इस शाखाकी भिन्नता प्रकट करनेके लिए इस संज्ञाका व्यवहार होने लगा होगा। कन्नौजके गाहडवालोंके अधिकतर लेखोंमें राष्ट्रकूट नाम नहीं पाया जाता, केवल मात्र सूर्यवंश बता दिया गया है। चन्द्रदेवके सबसे पहिले लेखमें भी यही बात है। मदनपालके शासन-कालमें गोविन्दचन्द्रने युवराज रूपसे जो लेख खुदवाये, उनमें गाहडवाल नाम मिला है। कन्नौजके समस्त राजाओंके लेखोंके सामान्य स्वरूपसे इसमें एक उल्लेखनीय विशेषता है। श्रीके नमनका श्लोक इसके आदिमें नहीं है। उसके बदले दामोदरको प्रणाम किया गया है, और यह भी लिखा है कि गाहड़वाल वंशमें महीयल राजा (इ. ए. -१४ पृष्ठ १०३ और एपि. इं. २ पृ. ३५८) अथवा महीतल राजा (इ. ए. १८ पृष्ठ १५) उत्पन्न हुआ। ये लेख पांचाल देशमें ही खुदे हैं। और इस कुलका लोकप्रिय नाम गाहडवाल इसमें दिया गया है। इससे प्रतीत होता है कि यह नाम इस कुलका वंश-नाम नहीं है। इसीलिए अन्य लेखोंमें इस दरबारके द्वारा निश्चित किये गये मजमूनमें इसका उल्लेख नहीं है।

गाहडवाल इस कुलका वंशनाम नहीं है, इसे असंदिग्ध रूपसे सिद्ध करनेके लिए हमारे मतसे सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि राजपूतोंमें जो ३६ राजवंश सर्वस्वीकृत हैं उनकी सूचीमें यह नाम नहीं है। यह सूची का यानी और वंशोंकी संख्या ३६ निश्चित की गयी, इस बातका बहुत कुछ निश्चयात्मक अनुमान किया जा सकता है। हम देख चुके हैं (पु० १, प्रक० ५) कि कल्हणने अपनी राजतरंगिणी ११४८ ई० में लिखी, उसमें राजपूत राजवंशोंकी संख्या ३६ दी है। अतः यह सूची अवश्य ही इस सन् के पहले बनी होगी। दूसरे, इस सूचीमें कछवाहोंका नाम है जो दसवीं सदीके अन्तिम भागमें प्रसिद्ध हुए। इससे यह अनुमान होता है कि यह गणना ग्यारहवीं सदीमें हुई होगी। यह गिनती क्यों की गयी इसका विचार हम इस भागके अन्तमें भारतवर्षकी सामाजिक स्थितिका विवेचन करते

समय करेंगे, पर यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि पहले काल-विभाग-में (८०० से १००० ई०) जाति-बंधन ढीला था और भिन्न भिन्न जातियोंमें अनुलोम विवाह हुआ करते थे (पु० ५, प्रक० १५)। पर इस तीसरे कालविभागमें (१०००से १२०० ई०) ऐसे विवाह बन्द हो गये। प्रत्येक जाति अपनी मर्यादा निश्चित कर विवाह-विषयमें कठोर नियमोंका पालन करने लगी। तदनुसार राजपूतोंको भी अपनी जाति-सीमा स्थिर करना आवश्यक जान पड़ा। इससे हमारे इस अनुमानकी पुष्टि होती है कि यह वंशगणना ग्यारहवीं सदीमें हुई। गोविन्दचन्द्रके एक लेखके एक श्लोकसे तो यह अनुमान और भी अधिक दृढ़ होता है। इस महत्त्वपूर्ण श्लोकके विषयमें हम आगे चलकर लिखेंगे। गोविन्दचन्द्रने, जब वह युवराज था, यह लेख पांचालमें खुदवाया था। उसमें उस समयकी प्रचलित धारणाएँ भी प्रतिबिम्बित हुई हैं। पहले गाहडवाल राजा चन्द्रके समय हिन्दू आस्तिक धर्मका जो पुनरुत्थान हुआ उसीके साथ साथ चंद्रवंशीय तथा सूर्यवंशीय क्षत्रियोंने अपने जाति-बंधन भी दृढ़ कर लिए, अस्तु। जब यह स्पष्ट है कि छत्तीस कुलोंकी गिनती इसी समय हुई तब यदि गाहडवाल सचमुच किसी राजवंशका नाम होता तो निश्चय ही वह इस सूचीमें अलग-से दिया गया होता। कहा जा सकता है कि यह गिनती गाहडवाल राजाओंके उदयकालके पहले अर्थात् ११ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें हुई होगी, इसलिए उनका नाम इसमें शामिल न किया गया होगा। पर चंदबरदाई-ने जब पृथ्वीराज रासो लिखा उस समय तो गाहडवाल राजवंश अपनी चरम सीमापर था। इसलिए चन्दकी दी हुई ३६ कुलोंकी सूचीमें इस कुलका नाम अवश्य होना चाहिये था। जब छोटे-छोटे राजकुलोंके नाम उसमें दिये गये हैं तब जयचन्द जैसे प्रबल राजाके वंशका नाम छोड़ दिया जाना असम्भव बात है। हमारे मतसे तो चंदकी सूची समस्त उपलब्ध सूचियोंमें पुरानी है (पु० ३ प्रक० ५)। पर यदि यह माना जाय कि पृथ्वीराजरासो आदिसे अन्ततक सोलहवीं सदीकी कल्पित रचना है (हमारा तो यह मत है कि मूलग्रंथ पृथ्वीराजके समय ही लिखा गया था, सोलहवीं सदीमें उसका विस्तारमात्र किया गया।) और

इस शताब्दीमें यह धारणा हो गयी कि गहरवार शुद्ध कुलके राजपूत नहीं हैं, इसलिए उनका नाम उस सूचीमें शामिल नहीं किया गया, तो भी दो सूचियाँ और हैं जिन्हें टॉडने दिया है—एक जैनोंकी, दूसरी कुमारपाल चरितकी। ये दोनों बहुत प्राचीन हैं। फिर भी गाहडवालोंके अभ्युदयके बादकी हैं। क्योंकि हम पहले लिख चुके हैं कि कुमारपालका शासनकाल सन् ११४३ से ११५३ ई० तक था। कुमारपाल चरित तो उसके भी बादकी रचना होनी चाहिये। इन दोनों सूचियोंमें गहरवारोंका नाम पृथक् नहीं दिया है। जयचन्दके समय तथा उसके सौ दो सौ वर्ष बाद तक भी गाहडवाल भारतवर्षमें जरूर प्रसिद्ध रहे होंगे। इसलिए उनका नाम उस सूचीमें न दिया जाना असम्भव था। दूसरे इन सूचियोंमें पूरे छत्तीस कुलोंके नाम भी तो नहीं हैं। अतः उनमें और नाम लिखे जा सकते थे। और तो क्या सन् १४०० ई० के लगभग जयचन्द्र सूरीके लिखे रंभामंजरी नामक नाटकमें जयचन्द्र नायक है और सूत्रधारके प्रारंभिक वाक्यमें उसे छत्तीस राजवंशोंका शिरोमणि कहा है।× तात्पर्य यह कि गाहडवाल वंश नाम नहीं, बल्कि किसी शाखा-कुलका नाम है जो उसके वासस्थानके आधारपर प्रचलित होगा।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इन गाहडवाल राजाओंका मुख्य कुल अथवा वंश कौनसा है। छत्तीस राजाओंकी तालिकामें जिस राष्ट्रकूट कुलका उल्लेख है वही इनका वंश होगा। हमारे मतसे यह बात बदाऊंके राष्ट्रकूट शिलालेखसे प्रकट होती है। इस लेखकी मिति अभी निश्चित नहीं हुई है। तथापि इसमें संदेह नहीं कि यह जयचंद के पराभवके पहलेका है, क्योंकि उसमें मदनपाल राजाके विषयमें लिखा है "कि इसने भारतवर्षपर मुसलमानोंकी चढ़ाइयोंको असंभव कर दिया" (एपि॰ इं॰ १, पृष्ठ ६४)। इस लेखके आरंभमें नीचे लिखा श्लोक है—

॥ प्रख्याताखिलराष्ट्रकूटकुलजक्ष्मापालदोर्पालिता।
पाञ्चालाभिधदेशभूषणकरी वोदामयूता पुरी ॥

इसमें राष्ट्रकूटकुलके साथ 'अखिल' और 'प्रसिद्ध' ये दो विशेषण लगाये

× षट्त्रिंशत् राजन्यवंशभालस्थल ललायमान श्री इक्ष्वाकुवंश विभूषणस्य

गये हैं। इनमेंसे अखिल शब्दका अर्थ सर्वव्यापी है। इससे सूचित होता है कि राष्ट्रकूट कुलकी अनेक शाखाएँ थीं, और ये सब पाञ्चाल देशमें फैलकर (इसमें कन्नौज भी सम्मिलित है) राज्य कर रही थीं। यही नहीं, कन्नौजका राज्य सर्वत्र पाञ्चाल राज्य कहा गया है। (अल्बेरूनीने जो लिखा है कि कन्नौज पाण्डवोंके कारण प्रख्यात है उसको हमें पाञ्चालोंके कारण समझना चाहिए। पांडवोंका मुख्य आधार पांचाल था और द्रौपदी उस देशकी कन्या थी।) यदि पाञ्चाल देशमें राज्य करने वाली राष्ट्रकूट कुलकी समस्त शाखाओंसे लेखकका अभिप्राय न हो तो कहना होगा कि उक्त श्लोकमें अखिल शब्द अर्थशून्य है। यह प्रमाण जयचन्दके पराभवके पहलेका है और इससे यह प्रकट होता है कि जयचन्दके बाद जिस तरह सब लोग उसे राठौर मानते रहे हैं, उसी तरह अपने समयमें भी वह यही माना जाता था। छत्तीस राजाओंमेंसे किसी भी अन्य राजवंशमें गाहडवालोंको सम्मिलित करनेके लिए हमारे पास न तो किसी दन्तकथाका आधार है और न किसी लेखका ही। इसलिए यही सिद्ध होता है कि जोधपुरके राठौर और युक्तप्रान्तके गहरवार एक ही वंशके अर्थात् राष्ट्रकूट वंशके हैं।

इस निर्णयके विरुद्ध जो कारण पेश किये जाते हैं, हमारे मतसे वे अधिक सबल नहीं हैं। यह सत्य है कि गहरवारोंका वर्त्तमान गोत्र काश्यप है। पर गाहडवालोंके सीधे वंशज राज्यभ्रष्ट हो जानेके कारण ऐश्वर्यहीन हो गये, उनमें पुरोहितोंकी परम्परा कायम नहीं रह सकी, इसलिए संभव है वे अपने मूल गोत्रको भूल गये हों। धार्मिक विधिके समय गोत्रोचार करनेकी आवश्यकता होती है और यह नियम हो गया है कि जिसे अपना गोत्र याद न हो वह काश्यप गोत्र कहे। इसी नियमके अनुसार संभवतः राठौरोंका यह गोत्र हो गया होगा। अथवा यह अधिक संभव है कि अपने आपत्कालमें गाहडवालोंने नये पुरोहित बनाये हों और विज्ञानेश्वरके इस नव-प्रचलित-सिद्धान्तके अनुसार कि जिस क्षत्रियका *कोई गोत्र न हो वह अपने पुरोहितका गोत्र ग्रहण करे, उन्होंने पुरोहितका* गोत्र ग्रहण कर लिया हो। यह भी हो सकता है कि इसी नियमानुसार

सिहाजीके जोधपुरके वंशजोंने ही नवीन गोत्र गौतम ग्रहण कर लिया हो, और गाहडवालोंका पुराना गोत्र काश्यप ही हो। दुर्भाग्यवश गाहडवालोंके किसी लेखमें उनके गोत्रका उल्लेख नहीं मिलता, बल्कि इस समयके प्राय सभी राजपूत राजवंशोंके लेखोंमें गोत्रका उल्लेख नहीं है। हमने खुद कन्नौज जाकर वहाँके अनेक ब्राह्मणकुलोंसे जयचन्दके गोत्रके विषयमें पूछताछ की। यह बात सर्वविदित है कि उसने राजसूय यज्ञ किया था। उसमें अनेक कनौजिया ब्राह्मणोंने ऋत्विक, अध्वर्यु आदिका काम किया होगा। उन ब्राह्मणोंसे हमने यज्ञ-विषयक कोई कागज-पत्र प्राप्त करनेका बहुत प्रयत्न किया किन्तु सफलता न हुई। तथापि जयचन्दका गोत्र काश्यप होना सम्भव नहीं दिखाई देता क्योंकि उपर्युक्त रंभामञ्जरी नाटकमें जयचन्द अपनी बड़ी रानीको काश्यप-कुल-नन्दिनी कहकर सम्बोधन करता है। राजपूत कुलोंमें रानियोंको उनके पिताके कुलका नाम देकर पुकारनेकी रीति तो प्रसिद्ध ही है। इन सब बातोंका विचार करने पर राठौर और गाहड़वालोंके गोत्र-भेदके होते हुए भी उनको एक वंशीय माननेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

उसी प्रकार राठौरों और गहरवारोंके बीच विवाह सम्बन्ध होनेके कारण भी उक्त अनुमान करनेमें कोई बाधा नहीं होती। पहले तो बहुतसे लोग इस बातको सत्य ही नहीं मानते। पर यह सत्य हो भी तो इससे यह माननेमें कोई अड़चन नहीं पड़ती कि पहले ये दोनों कुल एक ही वंशके थे क्योंकि कई क्षत्रिय वंशोंमें, खासकर पंजाबमें, इस तरहके विवाह करनेका रिवाज शुरू हो गया है। जम्मूके एक पंडितने तो यहाँतक कह दिया है कि एक ही गोत्रमें २५ पीढ़ियोंके बाद विवाह करनेकी अनुमति एक स्मृति-वचनने दे रखी है। यद्यपि यह बात गलत है तथापि हम इस बातसे इनकार नहीं कर सकते कि राजपूतोंमें एक ही कुलमें विवाह होने लग गये हैं, और चूँकि बादमें गहरवार एक पृथक् वंशसा हो गया था और टॉडने अपने ग्रंथमें राजपूतोंके छत्तीस कुलोंकी जो बिलकुल हालकी चौथी सूची दी है उसमें गहरवार तथा राठौरको भिन्न भिन्न कुल बताया है, अतः यदा कदा इनमें आपसमें विवाह होना संभव है। पर यहाँ

यह कह देना उचित होगा कि राजपूतानेके राजपूत कुलके बाहर व्याह करनेके नियमको छत्तीस कुलोंकी ' सूचीके अनुसार कड़ाईसे पालन करते हैं। हाँ, इनमें गोत्रके नियमका सदा पालन नहीं होता। उदाहरणार्थ 'जाडेजा' और 'चुडासमा' एक गोत्रके होनेपर भी आपसमें विवाह करते हैं। छत्तीस कुलोंकी पहली तीन सूचियोंमें इनके नाम नहीं आये हैं किन्तु चौथी सूचीमें गहरवार राठोरोंकी तरह ये कुल भी अलग अलग दिये गये हैं।

अंतमें यह कहना है कि गहरवार नीचे दर्जेके राजपूत हैं, यह कल्पना भी ग़लत है। यदि ऐसा हो भी तो वर्तमान गहरवारोंको ऐसा माननेके लिए कोई और कारण होंगे। कन्नौजका राजवंश गाहडवाल था, इस बातका पता हालमें ही लगा है। इस जानकारीके कारण उक्त कल्पनाका मूलोच्छेद हो जाना चाहिये। क्योंकि जयचंद, गोविन्दचन्द्र, और चन्द्र अपने अपने समयमें परम कुलीन क्षत्रिय माने जाते थे। सर विन्सेण्ट स्मिथका अनुमान है कि गाहडवाल लोग मूलतः 'भर' जातिके थे। पर इसके लिए कोई आधार नहीं है। मदनपाल गोविन्दचन्द्र (युवराज) के पूर्वोक्त ताम्रलेखमें एक महत्त्वपूर्ण श्लोक है * (इ. ए. १८ पृ० १५) जो यहाँ उद्धृत किया जा सकता है। श्लोकका आशय यह है—'सूर्य तथा चन्द्रसे उत्पन्न प्रसिद्ध क्षत्रिय कुलोंका ध्वस हो जानेपर जगत्में वेदध्वनि बन्द हो गयी। तब ब्रह्मदेवने पुनः धर्म-मार्गको स्थापित करने तथा क्षत्रियोंके उक्त प्रसिद्ध दो वंशोंको पुनः प्रस्थापित करनेके लिए अवतार लेनेका विचार किया और उपर्युक्त (गाहडवाल)

---

* प्रध्वस्ते सूर्यसोमोद्भवविदित-महाक्षत्रवंशद्वयेऽस्मिन् ।
उत्सन्नप्राय-वेदध्वनि जगदखिलं मन्यमानः स्वयभूः ॥
कृत्वा देहग्रहाय प्रवणमिह मन' शुद्धबुद्धि'र्धरित्र्या—
मुद्धर्तुं धर्ममार्गान् प्रथितमिह तथा क्षत्रवंशद्वयं च ॥
वंशे तत्र ततः स एष समभूद्भूपाल-चूडामणिः ।
प्रध्वस्तोद्धतवैरि-वीर-तिमिरः श्रीचद्रदेवो नृप. ॥

कुलमें राज-चक्र-चूड़ामणि महाराज चन्द्रदेव उत्पन्न हुआ। उसने शत्रुके उद्धत वीरोंके फैलाये हुए अंधकारको नष्ट कर डाला।' इससे यह प्रकट होता है कि उस समय लोग ऐसा मानते थे कि गाहडवाल राजवंशके संस्थापक चन्द्रदेवने सूर्य-चन्द्र वंशों तथा वैदिक धर्मकी पुनः स्थापना की। यह बात भी प्रकट होती है कि लोग उसे धर्मशील क्षत्रिय तथा रामके समान वेद और धनुर्वेद दोनों विद्याओंमें प्रवीण मानते थे। इस श्लोकसे यह भी दिखाई देता है कि महमूदकी तथा उसके उत्तराधिकारी मसऊद सुल्तानकी सेनाने क्षत्रियोंका भारी संहार किया था और बचे-खुचे क्षत्रियोंमें वैदिक धर्माचरणका बहुत कुछ लोप होगया था। ऐसी दशामें लोगोंका चन्द्रदेव गाहडवालको ब्रह्मदेवका अवतार मानने लगना स्वाभाविक ही था। क्योंकि ब्रह्मदेवने ही तो पहले पहल वेदका उच्चारण और ब्राह्मण तथा क्षत्रियोंको उत्पन्न किया था। इससे यह सिद्ध होता है कि गाहडवाल क्षत्रिय उस समय तो हीनकुल कदापि नहीं माने जा सकते थे। छत्तीस राजकुलोंमें उनकी भी गणना होना आवश्यक था और वस्तुतः मुख्य वंश राठौरके अन्तर्गत मानकर वे उसमें रखे भी गये।

इस टिप्पणीको समाप्त करते हुए उपर्युक्त श्लोकसे निकलनेवाले दो तीन अनुमानोंकी चर्चा कर देना आवश्यक है। पहला यह कि बारहवीं सदीके पूर्वार्द्धतक क्षत्रियवंश अग्निवंशको मिलाकर भी दो ही माने जाते थे। दूसरा यह कि वंश शब्दका प्रयोग दो अर्थोंमें होता था—महावंश और कुल। उपर्युक्त श्लोकमें इन दोनों अर्थोंमें इसका प्रयोग किया गया है। पु० ३ प्रक० ५ टि ४ में हमने रासोसे ३६ राजवंशोंकी जो सूची दी है उसमें भी यह उक्त दोनों अर्थोंमें आया है। तीसरा यह कि तबतक इस सिद्धान्तका जन्म नहीं हुआ था कि कलियुगमें क्षत्रिय रहे ही नहीं। कमसे कम उत्तर भारतमें, जहां यह ताम्रलेख खोदा गया जिसमें स्वयं ब्रह्मदेवके चन्द्रदेवके रूपमें अवतार लेकर सूर्यचंद्रवंशोंके प्रस्थापित करनेका वर्णन है, यह सिद्धान्त प्रचलित नहीं हो पाया था। इससे हमारे उस मतकी पुष्टि होती है जिसका प्रतिपादन हमने भाग २ परिशिष्ट ४ में किया है।

२. टिप्पणी।

क्या राठौर अर्थात् गाहड़वाल दक्षिणसे आये?

हमारे मतसे जोधपुर-बीकानेरके राठौर दूसरे भागमें वर्णित राष्ट्रकूटोंसे भिन्न हैं। इन लोगोंने अपने शिलालेखोंमें अपनेको सात्यकिके वंशमें उत्पन्न चंद्रवंशीय क्षत्रिय कहा है। किन्तु जोधपुर-बीकानेरके राठौर (राष्ट्रकूट) और कन्नौजके गाहड़वालोंने अपने लेखोंमें अपनेको सूर्यवंशी बताया है। इसलिए यदि वे दक्षिणसे आये भी हों और वे भी 'राष्ट्रकूट' इस एक ही ओहदेको धारण करते हों तथापि उन्हें हमें मालखेडके राष्ट्रकूटोंसे भिन्न ही मानना होगा। पर क्या यह सामान्य धारणा सच है कि वे दक्षिणसे आये? इस टिप्पणीमें हम इस प्रश्नपर चारणोंके लेखोंके तथा रम्भामंजरी नाटिका (जिसका नायक जयचंद है) के आधारपर विचार करेंगे।

बंगालके सेन राजा जिस तरह अपने शिलालेखोंमें साफ साफ लिखते हैं कि हम कर्नाटकसे आये हैं और कर्नाट क्षत्रिय हैं, उसी प्रकार गाहड़वाल अपने लेखोंमें यह नहीं कहते कि हम दक्षिणसे आये हैं। पर अनुमान उल्लेखपर किया जा सकता है, अनुल्लेखसे कोई अनुमान नहीं किया जा सकता। बीकानेर दरबारके पुस्तकालयके ख्यात लेखोंसे पता चलता है कि राठौर मूलतः अयोध्याके रहनेवाले थे। वहाँसे किसी राजाने आकर कन्नौज नगरपर अधिकार किया। किंतु यह वृत्त विश्वसनीय नहीं है। क्योंकि ऐतिहासिक कालमें ईसवी सन् ४०० से ११०० ई० तक कन्नौज मौखरी, वर्धन, वर्मा और प्रतिहार राजाओंके अधीन रहा है। इसके अतिरिक्त इन ख्यातोंमें जयचन्द्र और उसके पिताका उल्लेख तो है, पर गोविन्दचन्द्र और उसके पूर्वजोंका उल्लेख नहीं है। जोधपुरके ख्यातोंमें भी गोविन्दचन्द्र और उसके पूर्वजोंका उल्लेख नहीं है। बीकानेरकी तरह जोधपुरकी एक ख्यात पुस्तकमें भी दक्षिणका जिक्र नहीं है। पर एक और पुस्तकमें यह वर्णन मिलता है कि विपुलका पुत्र नंदपाल कर्नाटकका राजा हुआ और उसके वंशज कन्नौज आकर राज्य करने लगे। इनके वंशमें विजयपालका पुत्र जयचन्द्र आखिरी राजा था। विजयपालके पिता-

का नाम अभयचन्द दिया है (शायद यह गोविन्दचन्द्रका दूसरा नाम हो) और इनके बापका नाम ब्रह्म लिखा है। फिर शिलालेखोंमें चन्द्रदेवके ब्रह्मका अवतार माने जानेकी बात तो लिखी ही जा चुकी है, इसलिए इस दन्त-कथासे ऐसा प्रकट होता है कि गाहडवाल दक्षिणसे ही आये। किन्तु जोधपुरके लेखमें भी कल्याणका नाम नहीं है। इस सरकारी बहीके समान राजपुरोहितके पास भी जो वंशलेख है उसके शीर्षकमें ये शब्द हैं— "अयोध्या पीछे कुकन देश, गड कल्याण कर्नाटक देश, पीछे कन्नौज"। यह वाक्य भी सन्दिग्ध है क्योंकि कल्याण कोंकणमें भी है और कर्नाटकमें भी। कर्नाटकके कल्याणको सोमेश्वर चालुक्यने ग्यारहवीं सदीके उत्तरार्द्धके लगभग बसाया था। इसलिए गाहडवालोंका वहाँसे आना संभव नहीं देख पड़ता। यह हो सकता है कि वे पहले अयोध्यासे कोंकण गये हों और वहाँसे कर्नाटक, और अन्तमें कर्नाटकसे कन्नौज।

यद्यपि यह एक बात संदिग्ध रह गयी है तथापि और कितनी ही बातें हैं जिनसे यह मालूम होता है कि गाहडवाल दक्षिण अर्थात् महाराष्ट्रसे उत्तरमें आये। पहली बात यह है कि ओट्देका नाम राष्ट्रकूट दक्षिणके लेखोंमें ही पाया जाता है। देश अथवा प्रांतके अर्थमें 'राष्ट्र' शब्दका प्रयोग भी केवल दक्षिणमें ही होता है। (मलराष्ट्र, गोपराष्ट्र, पाण्डुराष्ट्र आदि नाम जो महाभारतकी देशोंकी तालिकामें आये हैं, सब दक्षिणके ही देश हैं। इसी प्रकार अशोकके शिलालेखोंमें राष्ट्रीक शब्द भी दक्षिणमें ही आया है)। दूसरे, जोधपुरवालोंकी धारणा है कि राठौरोंकी कुलदेवीकी मूर्ति जोधपुरका एक राजा दक्षिणसे लाया था। उसका नाम आज भी मराठी ही "नागनोची" है। तीसरे, जयचन्द्रसूरीने रंभामंजरी नामक जो नाटिका लिखी है उसका नायक जयचन्द्र है। यह नाटिका जयचन्द्रके दो सौ वर्ष बाद प्राकृत महाराष्ट्रीमें लिखी गयी। इसमें एक शुद्ध मराठीमें रचित कविता पढ़कर हमें आश्चर्य हुआ। पहले अंकके प्रारम्भमें ही जयचन्द्रकी स्तुतिमें वैतालिकसे जो पद्य गवाया गया है वह मराठीमें है—
जरिपेखिला मस्तकावरि केश कलापु। तरि परिखिला मयूराचे पिच्छ प्रतापु॥
तरि नयन विषयु केला वेणीदण्डु। तरी साक्षाजाला भ्रमरश्रेणीदण्डु॥

जरि दृग्गोचरि आला विशाल भालु । तरी अर्धचन्द्र मण्डल मइल उर्णयुजालु ॥ भ्रूजुगल जाणूदृढ़ीकृत कंदर्पचापु । नयन निर्जित सुजलासंजनु निःप्रतापु ॥ मुखमंडल जाणुशशांकदेवताचे मण्डलु । सर्वाङ्गसुन्दर मूर्तिमंत कामु । कल्पद्रुम जैसे सर्वलोक आशा विश्रामु ॥

प्रायः सारा नाटक दरबारी महाराष्ट्री भाषामें लिखा हुआ है किन्तु यहां एक पद्य मराठी भाषामें है। इससे यह अनुमान होता है कि नयचंद्र दक्षिणका जैन पंडित रहा होगा। बल्कि इससे अधिक संभवनीय अनुमान तो यह हो सकता है कि जयचंदके दरबारके अधिकांश वैतालिक दक्षिणके रहे होंगे। और उस समय विरुदावली मराठीमें गानेका रिवाज रहा होगा। सारांश यह कि गाहड़वाल कुल दक्षिणसे आया हुआ दिखाई देता है और उसकी यह परम्परा नयचंद्र सूरिके समय तक जीवित रही होगी। दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दीमें दक्षिणके और उत्तरके क्षत्रियोंका भेद उत्पन्न नहीं हुआ था। महाराष्ट्रके गाहड़वाल उत्तम क्षत्रियोंमें गिने जाते थे, यह बात तो इस नाटकके जयचंद्रके मर्यादासूचक विशेषणसे ही ज्ञात होती है। ग्यारहवीं शताब्दीके लेखोंसे यह बात स्पष्टतया ज्ञात होती है कि दक्षिणका यह राष्ट्रकूटकुल उत्तर भारतमें बदाउसे मिथिलातक फैल गया। इस कुलकी गाहड़वाल नामकी एक शाखा भी थी जिसने कन्नौजको जीतकर वहां अपना साम्राज्य स्थापित किया।

यह टिप्पणी समाप्त करनेके पहले अन्यत्र कही हुई दो बातें हम यहां फिर कह देते हैं। जयचंदके पहले विशेषणसे ही ज्ञात होता है कि उसका गाहड़वाल कुल छत्तीस राजकुलोंका शिरोभूषण माना जाता था। अर्थात् यदि यह एक स्वतंत्र कुल होता तो छत्तीस राजवंशोंकी प्राचीन सूचियोंमें उसका नाम पृथक् दिया जाता। दूसरे, जयचंद इस नाटकमें अपनी रानीको 'काश्यप कुलनंदिनी' कह कर पुकारता है। राजपूतोंमें रानियोंको उनके जन्मकुलसे संबोधन करनेकी रीति तो अब भी प्रचलित है। इससे प्रतीत होता है कि इस रानीके पिताका गोत्र काश्यप था। अतः गाहड़वालोंका गोत्र काश्यप अथवा शांडिल्य नहीं हो सकता।

नवाँ प्रकरण।

बंगालके पाल राजा।

इस इतिहासके दूसरे काल विभागके पाल राजाओंका प्रथम महीपालतकका इतिहास दूसरे भागके नवें प्रकरणमें हम दे चुके हैं। तीसरे काल-विभागमें भी यह पालवंश राज्य करता रहा (ई० सन् १०००-१२००)। अतः सर विन्सेण्ट स्मिथका यह कथन यथार्थ है कि चिरकालतक राज्य करनेवाला यह राजवंश संस्मरणीय है। तथापि इस राजवंशके राज्यकालको हम दो भागोंमें बाँट सकते हैं। और आश्चर्य यह है कि पहिला विभाग प्रथम महीपालके राज्यकालके अंतमें अर्थात् इस विभागके आरम्भमें ही समाप्त होता है। अधिकांश पालोंके लेखोंसे ज्ञात होता है कि महीपालका (या उसके पिताका) राज्य इसी समयके लगभग कभी नष्ट हुआ। क्योंकि इन लेखोंमें यह वाक्य बार बार आता है कि महीपालने "अनधिकृत लोगों द्वारा छीना हुआ अपना पैतृक राज्य उन लोगोंसे वापिस छीन लिया" * (सारनाथका लेख ई० सन् १०२६ इं० ए० जिल्द १४ पृ० १३९)। सर विन्सेण्ट स्मिथने ई० सन् १९०६ के इं० एं० में पाल राजाओंके नाम तथा विस्तृत वृत्तान्त सहित उपलब्ध लेखोंकी तालिका दी है। साथ ही प्रत्येक राजाके संभवनीय शासनकालके साथ उनकी वंशावली भी दी है। उस फेहरिस्तमें स्मिथने महीपालका राज्यारोहण काल ईसवी सन् ९८० माना है। क्योंकि इसने बहुत वर्ष राज्य किया। लेख-संख्या १७ में उसका राज्यवर्ष ४८ लिखा है। इसलिए यदि ९८० ई० उसका राज्यारोहण-काल माना जाय तो अनधिकृत

* अनधिकृतविलुप्तं राज्यमासाद्य पित्र्यम्

लोगों द्वारा उसका राज्य छीने जानेका समय भी वही मानना होगा। इसके आगे या पीछे मानना ठीक न होगा। दुर्भाग्य-वश इस बातका विस्तृत वृत्तान्त किसी भी लेखमें नहीं मिलता कि राज्य किसने और कैसे छीना। पिछले भाग (प्रकरण ६) में हमने यों अनुमान किया है कि महमूदकी चढ़ाइयोंसे भारतवर्षको जो धक्का लगा उसका असर बंगालतक पहुँचा। हम यह नहीं कहते कि मुसलमान धर्मके अनुयायी तुर्क उस समय पूर्वकी ओर इतनी दूरतक बढ़ आये। पर यह मानना संभव है कि उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश अथवा पंजाबपर राज्य करनेवाले जो राजपूत राजा राज्यभ्रष्ट होकर भटकने लगे थे उन्हींमेंसे किसीने इतनी दूर पूर्वमें आकर यह राज्य छीन लिया हो। भारतवर्षके इतिहासमें ऐसी घटनाएँ कई बार हुई हैं (उदाहरणार्थ अलाउद्दीनने जिन सीसोदियोंको चित्तौड़से स्थानभ्रष्ट किया, वे नेपालमें जाकर राज्य करने लगे अथवा जयचंद्रके पराजयके बाद राठौरोंने मारवाड़में जाकर वहाँका राज्य छीन लिया)। पर ज० रा० ए० सो० बंगाल १६११ में दिनाजपुरका जो एक लेख छपा है, उसमें गौड़के किसी कांबोज राजाका दिनाजपुरमें शिवालय बनवानेका वर्णन आया है।* इस लेखकी तिथि शक ८८८ अर्थात् ईसवी सन् ९६६ भी उपर्युक्त घटनाके निकट ही है। इससे अनुमान होता है कि काम्बोजके किसी राजाने ही गौड़पर चढ़ाई करके उसे छीन लिया होगा (काम्बोज पश्चिम तिब्बतको कहते हैं)। महीपालने या तो इसी राजासे या इसके उत्तराधिकारीसे अपना पैतृक राज्य पुनः छीन लिया होगा।

* काम्बोजान्वयजेन गौडपतिना तेनेन्दु मौलेरयम्।
प्रासादो निरमायि कुंजर घटा वर्षे जगद्भूषणः॥

किन्तु यह घटना शायद इतने शीघ्र न हुई होगी। यह किसी लेखमें नहीं कहा गया है कि विग्रहपालके समयमें किसी राजाने राज्य छीन लिया था। विग्रहपालने ई० स० ६६० से ६८० तक राज्य किया। फिर उपर्युक्त दिनाजपुरके लेखमें यह वर्णन नहीं है कि काम्बोजने पालोंका राज्य छीना था। और न पालोंके लेखोंमें ही यह उल्लेख मिलता है कि उनका राज्य किसी काम्बोज नरेशने छीन लिया था। अतः हम ऐसा कह सकते हैं कि कदाचित् गौड़ राज्यके किसी मांडलिकने ही यह उपद्रव खडा किया हो और महीपालने उसे हराकर मार भगाया हो।

इस प्रकार् राज्य छीने जानेकी सच्ची कथा चाहे जो हो, 'यह तो निश्चित है कि महीपालने इस राजवंशके नवीन जीवनका आरंभ किया और न्यायपूर्वक तथा दृढतासे ४८ वर्षतक राज्य किया। समस्त पाल राजाओंमें उसीने अपना नाम बंगालकी जनतामें चिरस्मरणीय कर दिया। उड़ीसा और कुचविहारके कोने कोनेमें उसके स्तुति गीत अबतक गाये जाते हैं। उसने पश्चिमकी ओर मगध और बिहारपर अपना राज्य पूर्णरूपसे स्थापित किया और पूर्व बंगाल तथा उत्तर बंगाल बल्कि आसाम भी उसके राज्यके अंतर्गत थे। उसके शासनकालमें बौद्ध धर्मने फिरसे जोर पकडा और धर्मपाल तथा अन्य कई साधु ई० सन् १०१३ में मगधसे तिब्बत गये। उस देशमें उन्होंने पुनः गौतमके धर्मको पूर्ववत् उज्वल और प्रकाशमान बनाया (विन्सेंट स्मिथ पृ० ४००)। अतिश नामका एक दूसरा धर्मप्रचारक महीपालके बादके राजा नयपालके शासन कालमें ई० सन् १०४२ में विक्रमशीलसे तिब्बत गया। अस्तु, स्मिथके मतानुसार प्रथम महीपालने ई० सन् ६८० से १०३८ तक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र नयपाल

और नयपालके वाद उसका पुत्र विग्रहपाल १०५६ में राज्यारूढ़ हुआ। प्रतिहार सम्राटोंकी गिरी हुई दशामें चेदीका कर्ण अपनी सत्ता बनारसके पूर्वमें और खासकर पारण्यमें बढ़ा रहा था। ऐसा वर्णन मिलता है कि विग्रहपालने इसका पराजय किया। इसके आमगाछी लेखका वर्णन हमने दूसरे भागमें किया ही है। यह तीन वार प्रकाशित हो चुका है। डा० होर्नेलके ई० एं० १४ पृ० १६४ में, उसके वाद कीलहार्नने उसका संशोधन किया (ई० एं० २१ पृ० ६७) और अंतमें आर० डी० बैनर्जीने भी उसे प्रकाशित किया। विग्रहपालकी मृत्यु ई० सन् १०८० में हुई और उसका ज्येष्ठ पुत्र दूसरा महीपाल राज्यारूढ़ हुआ। अवतक पाल राजवंशका दूसरा विभाग कोई सौ सालतक दिन प्रतिदिन उन्नति करता रहा। अव यहाँसे उसकी सत्ताका ह्रास होने लगा। दूसरा महीपाल अपने भाईको कैद करके अन्यायपूर्वक राज्य करने लगा। इसके पहले कैवर्तने एक दिव्योकके नेतृत्वमें विद्रोह खड़ा कर दिया। महीपाल इस वलवेमें मारा गया। तव उसके छोटे भाई शूरपालने कुछ समयतक राज्य किया। परन्तु वरेन्द्रमें कैवर्तोंका यह उपद्रव शांत नहीं हुआ। और दिव्योकके पश्चात् वहाँ उसका पुत्र भीम शक्तिशाली हुआ। तीसरे विग्रहपालका कनिष्ठ पुत्र रामपाल बड़ा उत्साही और योग्य राजा सिद्ध हुआ। उसने शूरपालके वाद वरेन्द्रको जीतनेकी तैयारी शुरू की। उसकी राजधानी अवतक शायद गौड अर्थात् मुंगेरमें रही होगी। उसका मामा 'महण' मिथिलाके मांडलिक राष्ट्रकूट कुलका था। उसकी, तथा अन्य मांडलिकों और उनके मित्र राजाओंकी सहायतासे, जिनमें पीथीका देवरचित भी एक था, रामपालने भीमको हरा दिया। अंतमें भीम मारा भी गया

ओर वरेन्द्रमें रामपालकी सत्ता स्थापित हुई। यह वर्णन एक 'संध्याकरनंदि' नामके काव्यमें मिला जो रामपालके संधि-विग्रहिक मंत्रीके पुत्रका बनाया हुआ है। इसकी यह विशेषता है कि इसका प्रत्येक श्लोक द्व्यर्थी है। यह अवश्य ही एक तरहका समकालीन प्रमाण है। यह वरेन्द्रकी राजधानी पौंड्रवर्धनमें लिखा गया। इसमें एक अर्थसे तो रामपालका इतिहास दिया गया है और दूसरे अर्थसे अयोध्याके अवतारी राजा रामका इतिहास है। इसके केवल पहले सर्गकी ही टीका है और अर्थ मालूम होता है। शेष तीन सर्गोंका अर्थ नहीं लगता। ताराप्रसाद शास्त्रीने प्रोसीडिंग ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी बंगाल सन् १६०० ई० में प्रकाशित अपने रामचरित्रपर लिखे हुए लेखमें यह सब लिखते हुए यह भी कहा है कि इस द्व्यर्थी काव्यके शेप तीन सर्गोंमें भी बहुतसी ऐतिहासिक बातें भरी पड़ी हैं। किन्तु वे अभीतक अज्ञात हैं। (पृ० ७३)

सौभाग्यवश गोविन्दचन्द्रकी एक रानी कुमारदेवीके सारनाथवाले एक अत्यंत महत्वपूर्ण लेखसे इस बातकी पुष्टि होती है। यह लेख एपि० इंडि० जिल्द ६ पृष्ठ ३१६ पर छपा है। इस लेखसे पाल, राष्ट्रकूट और गाहडवाल इन तीनों कुलोंके विषयमें अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। हम इन तीनों राजाओंके सबंधकी बातें पालोंके वर्णनसे शुरू कर, यहाँ देते हे। इस लेखमें लिखा है कि रामपालके मामा अंगेदश-के (मांडलिक) राजा महणने पीथीके राजा देवरक्षितको जीतकर रामपालका उत्कर्ष कराया।* अभीतक यह निश्चित

* गौडेऽद्वैत भट॰ मकाण्डपटिक क्षत्रैक चूडामणि।
प्रख्यातो महणोऽङ्गपः क्षितिभुजा मान्योऽभवन्मातुलः॥

रूपसे नहीं कहा जा सकता कि पीथी कहाँ है। पर इस लेख-को प्रकाशित करनेवाले स्टेन कोनोका मत है कि वह बेंगीदेश-का वर्तमान पीथापुर ही है। लेखमें महण गौड़ देशका एक निर्भय वीर कहा गया है,इससे वह गौडदेशके राजा रामपालका मांडलिक प्रतीत होता है। वह अङ्गप अर्थात् अंग या मिथिला-का राजा भी कहा गया है। उसके शंकरदेवी नामकी एक कन्या थी। देवरक्षितको पराजित करनेके बाद उसने राजपूत रिवाज-के अनुसार उसीको अपनी कन्या दे दी। उसी कन्याकी पुत्री प्रसिद्ध रानी कुमारदेवी थी जिसने इस लेखके कारण चिरस्म-रणीय हुए बौद्ध विहारको बनवाया। इससे यह भी मालूम होता है कि देवरक्षित बौद्ध था और उसकी कन्या कुमारदेवी भी बौद्ध थी। गोविन्दचन्द्र कट्टर हिन्दू था तथापि उसका विवाह इस कुमारदेवीसे हुआ था। उसका वर्णन इस लेखमें गाहड़वाल वंशके चन्द्रराजाका पौत्र तथा मदनचन्द्रका पुत्र कह कर किया गया है। †गाहड़वालोंको प्रसिद्ध क्षत्रवंश कहा है। इससे मालूम होता है कि वे उस समय उत्तम क्षत्रिय माने जाते थे। उसी प्रकार महणको भी क्षत्रचूड़ामणि कहा है। इससे सिद्ध होता है कि वह भी उत्तम राजपूत था। उपर्युक्त रामचरित्रमें उसे राष्ट्रकूट (राठौर) बतलाया है। उसकी बहिन रामपालकी माता थी। इस-से रामपाल भी राजपूत सिद्ध होता है। महणकी कन्या देवरक्षित-को दी गयी थी इसलिए वह भी निस्सन्देह राजपूत था। यहाँ पर यह ध्यानमें रखना चाहिए कि इस विवाह सम्बन्धसे हमारे उस सिद्धान्तको कोई बाधा नहीं पहुँचती कि राष्ट्रकूट और

तं जित्वा युधि देवरक्षितमधात् श्रीरामपालस्य यो।
लक्ष्मीं निर्जित वैरिरोधनतया देदीप्यमानो दयाम्॥

† जगति गहडवाले क्षत्रवंशे प्रसिद्धे। ऽजनि नरपति चन्द्रश्चन्द्रनामा नरेन्द्रः।

गाहड़वाल एक हं। क्योंकि देवरक्षितकी राष्ट्रकूट कुलकी स्त्रीसे पैदा हुई कन्या गाहडवालको दी गयी। अर्थात् राष्ट्रकूटकी कन्याकी पुत्रीका गाहडवालसे विवाह हुआ। इससे राष्ट्रकूटों और गाहड़वालोंमें शरीर सम्बन्ध नहीं हुआ, अस्तु। कह और बात है जिसका पालोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि उसका उल्लेख इस लेखमें आया है, इसलिए यहीं कह देना चाहिये। हम जानते ही हैं कि बनारस गोविन्द-चन्द्रके अधीन था। इस लेखमें वर्णन है कि तुरुष्क सिपाहियों द्वारा दूषित वाराणसीको रक्षाके निमित्त हरकी आज्ञानुसार हरिने गोविन्दचन्द्रके रूपमें अवतार धारण किया*। स्टेन कोनोके मतानुसार इस लेखसे मालूम होता है कि गोविन्द चन्द्रके समय बनारसपर तुर्कोंके आक्रमण हुए थे। पर उपर्युक्त श्लोकका अर्थ साफ है कि तुर्की सिपाहियोंने बनारसको पहले ही भ्रष्ट कर डाला था और उसकी रक्षाके लिए गोविन्दचन्द्र आया। अर्थात् 'तुरुष्क सिपाहियों' द्वारा शब्दोंका सम्बन्ध रक्षासे नहीं, 'दूषित' से लगाना चाहिये। इस लेखसे यह बात निश्चित होती है कि तुर्कोंने बनारसपर आक्रमण किया था। परन्तु यह 'दोष' तो पहले ही हो चुका होगा। बल्कि इस शब्दमें तो अहमद नियाल्तगीनके आक्रमणका उल्लेख स्पष्ट दिखाई देता है। कौनोने श्लोकका जो अनुवाद किया है उसमें भूलसे 'दुष्ट' शब्द छूट गया है (श्लो० १६ पृ० ३२७)।

यद्यपि इस लेखमें कोई तिथि दी हुई नहीं मिलती, तथापि इसमें जो राजाओंका सम्बन्ध बतलाया है उससे मालूम होता है कि रामपाल गोविन्दचन्द्रसे पहिले हुआ। उसमें लिखा है

* वाराणसीं भुवनरक्षणदक्ष एको। दुष्टां तुरुष्क सुभटादवितुं हरेण॥
उक्तो हरिः स पुनरत्र बभूव तस्माद्गोविन्दचन्द्रइति सुप्रथिताभिधान॥

कि महण रामपालका मामा था और गोविन्दचन्द्रकी रानी कुमारदेवी महणकी लड़की थी। स्मिथने रामपालका-राज्यारम्भ १०८० ई० दिया है सो ठीक मालूम होता है। उसने बंगालपर बहुत दिनोंतक राज्य किया, मिथिला देशको जीता और भीमको भी युद्धमें मार डाला। ये बातें वैद्यदेवके कमोलीके लेखमें भी दी गयी हैं (एपि० इडि० जिल्द २ पृ० ३५०)। इसमें कामरूपके राजा कुमारपालका उल्लेख एक द्व्यर्थीश्लोकमें आया है। रामपालका वर्णन भी बड़ी खूबीके साथ किया है कि रामपालने रामके समान भीमरूपी रावणको मारकर मिथिलाकी कन्या अर्थात् भूमिको उससे छीन लिया। * इससे प्रकट होता है कि भीमका खड़ा किया हुआ विद्रोह बहुत भीषण था और उससे युद्ध करना भी रामचन्द्रके समुद्रोल्लंघनके समान कठिन कार्य था। ज० रा० ए० सो० बंगाल जिल्द ६६ पृष्ठ ९८ पर दिये हुए लेखमें भी इस विद्रोहका उल्लेख है। इसका विशेष वर्णन हम कुमारपालके समयमें करेंगे।

रामपालके बाद ई० सन् ११३० में कुमारपाल गद्दीपर बैठा। उपरिनिर्दिष्ट एपि० इं० २ के लेखमें उसका नाम नहीं है। उसके बाद उसका पुत्र तीसरा गोपाल गद्दीपर बैठा। इन दो राजाओंके विषयमें विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती। गोपालका नाम तो उसके चाचा मदनपालके, जो ११४० में उसके बाद सिंहासनपर बैठा, एक अभी हालमें मिले हुए लेखमें मिल गया है। इसका एक ताम्रलेख ज० रा० ए० सो० बंगाल ६६ भा० १ पृष्ठ ६६ में प्रकाशित हुआ है। उसमें यह मनोरंजक वृत्तान्त दिया है कि उसकी रानी चित्रमटका-

* तेन येन जगत्त्रये जनकभूलाभाया तद्यशो।
क्षोणीनायक भीमरावणवधाद्युद्धार्णवोल्लंघनात्॥

को पूरा महाभारत सुनानेके उपलक्ष्यमें एक ब्राह्मणको यह गाँव दान दिया गया जिससे स्पष्ट है कि यह राजा बौद्ध होते हुए भी ब्राह्मणोंके अनुकूल था। और उसकी रानी भी यहाँ तक भक्त हिन्दू थी कि वह ब्राह्मणोंसे महाभारत सुना करती थी। दूसरी बात, इन पालोंके अधिकांश दान लेख पौंड्र-वर्धन भुक्तिके अर्थात् वरेन्द्र या उत्तर बंगालके हैं। सेनोंके दान लेख भी इसी प्रान्तके हैं। सेनोंकी सत्ता मुख्यतः पूर्व बंगालमें थी और उत्तर बंगाल संभवतः पाल और सेनोंके बीच बँटा हुआ था। पश्चिम बंगाल और विहार सहित मगध पालोंके अधीन था। मदनपालके शासन-कालकी राज-नीतिक घटनाओंको हम विशेष रूपसे नहीं मानते। पर इसमें संदेह नहीं कि उसके समयसे पाल राजाओंकी सत्ता घटने लगी। मदनपालके बाद उसका पुत्र गोविन्दपाल ११६१ ई० में गद्दीपर बैठा। वि० स० १२३२ का एक लेख मिला है, जो उसके राज्यके चौदहवें वर्षमें लिखा गया (स्मिथकी सूची देखो)। उससे यह राज्यारोहणका वर्ष निश्चित होता है। उसके बाद महीन्द्रपाल गद्दीपर बैठा। इसके भी लेख मिले हैं। उनमेंसे अन्तिम ११९३ ई० का है। दंतकथाओंमें विहारपर आक्रमण करनेवाले मुहम्मद बखतियार ख़लजी द्वारा जिस इंद्रद्युम्नके नाशका वर्णन है वह यही होगा, ऐसा बहुतोंका ख्याल है।

यह दुर्भाग्यकी बात है कि बारहवीं सदीमें बंगाल दो भागोंमें विभक्त हो गया। पश्चिम बंगालके मुंगेर नगरमें पालोंका और पूर्व बंगालके गौरमें सेनोंका इस तरहके दो पर-स्पर विरोधी राज्योंकी वहां स्थापना हुई। ये दोनों प्रान्त वंश और भाषाकी दृष्टिसे एक हैं और इनकी सीमा भी स्पष्ट है। ऐसे प्रान्तोंमें दो परस्परविरोधी शक्तियोंकी स्थापनासे दोनों

कमज़ोर होगये । धर्म-भेदसे तो इस विरोधका परिणाम और भी घातक हुआ । अन्तमें यह हुआ कि इन दोनोंको एक तीसरी शक्ति तथा धर्मने अनायास ही एक भी आदमीका खून बहाये विना जीत लिया । इसका वर्णन आगे किया जायगा ।

सौभाग्यवश पाल राजाओंकी तिथियोंके विषयमें विशेष मतभेद नहीं है । अतः पालवंशके दूसरे भागके राजाओंकी वंशावली, उनके लेखोंकी तिथियाँ और सर विन्सेण्ट स्मिथके अनुसार उनके राज्यारोहण काल सहित, हम नीचे दे रहे हैं । इन तिथियोंसे हमें सेन राजाओंकी तिथियाँ, जो दुर्भाग्यसे बड़ी विवादग्रस्त है, निश्चित करनेमें बहुत सहायता मिलेगी ।

बंगालके उत्तर पाल राजाओंकी वंशावली ।

(सर विन्सेण्ट स्मिथ, इण्डियन एँटिक्वेरी १९०९ पृ० २४४)

प्रथम महीपाल (ई० सन् ९८०) लेख १०२६ ई०

नयपाल (ई० सन् १०३८) लेख १०४२ ई०

विग्रहपाल तीसरा (१०५५) ले० १०५७

महीपाल दूसरा (ई० सं० १०८०) | शूरपाल दूसरा (ई० स० १०८२) | रामपाल (यक्षपाल ई०स०१०८४)

कुमारपाल (ई० स० ११३०) | मदनपाल (ई० स० ११४०)

गोपाल तीसरा (ई० स० ११२६) (रानी चित्रमटिका)

गोविन्दपाल (ई० स० ११६१)
ले० ११७५, ११७८ ई०,

महेन्द्रपाल (११८०) ले० ११९३ (इन कथाओंमें वर्णित इंद्रद्युम्न)

दसवाँ प्रकरण।

लखनौतीके सेन।

वंगालके सेन राजा यद्यपि प्रधान रूपसे तीन ही थे किन्तु वे विशेष विवादके विषय बने हुए हैं। उनके संबंधमें जो बातें मालूम हैं वे थोड़ी और सन्देहपूर्ण हैं। इतना ही नहीं बल्कि इतिहासकार तथा पुरातत्वज्ञ दुर्भाग्यवश अपने अपने पूर्व-निर्धारित मतके अनुरूप इनको भिन्न भिन्न दृष्टिसे देखते रहे हैं। कमसे कम मुसलमान इतिहासकारोंने तो अवश्य ही कुछ बातोंमें अत्यधिक अतिशयोक्ति की है। उन्होंने एक ओर मुहम्मद बख़तियार खिलजीको गज़बका साहसी बताया है और दूसरी ओर हिन्दू राजाओंको बिलकुल कायर बना डाला है। डॉ० डी० आर० भांडारकरकी यह पूर्व धारणा बनी हुई है कि राजपूतोंकी उत्पत्ति अनार्योंसे हुई है। इसलिए वे कहते हैं कि सेन वास्तवमें परदेसी ब्राह्मण अथवा पुजारी थे और बादको क्षत्रिय हुए। इधर बंगालके वर्तमान सेन वैद्य जातिके होनेके कारण कहते हैं कि सेन राजा भी वैद्य जातिके ही थे। अतः हमें इन तीनों बातोंका विस्तारपूर्वक विचार करना होगा। परन्तु उसके पूर्व हमें सेन राजवंशका वह इतिहास देख लेना चाहिये जिसके विषयमें कोई विवाद नहीं है।

सेनोंका प्रारम्भिक इतिहास देवपाडा शिलालेखमें स्पष्ट रूपसे दिया है (एपि० इंडि० जिल्द १ पृ० ३००)। इसमें लिखा है कि सामन्तसेन नामक एक दाक्षिणात्य सरदार कर्नाटकके राजाका मांडलिक था। कर्नाटकको लूटनेके लिए आये हुए अनेक शत्रुओंको उसने स्वर्गधाम पहुँचाया। अपनी वृद्धावस्थामें

वह गंगातटपर आकर रहने लगा और उसने बङ्गाल प्रान्तके अन्तर्गत काशीपुर नामक स्थानमें एक छोटा सा राज्य स्थापित किया। उसका पुत्र हेमन्त सेन बड़ा बलवान् राजा हुआ। उसका तथा उसकी रानी यशोदेवीका पुत्र विजयसेन इस राजवंशका पहला प्रसिद्ध राजा हुआ। इस लेखमें लिखा है कि इसने कामरूपपर आक्रमण करनेवाले गौड़ राजाको जीता और एक कलिंग राजाको भी जीता। यह गौड़ राजा पश्चिम बङ्गालमें मुंगेरका पाल राजा है। वह और कलिंग अर्थात् उड़ीसाका राजा केवल ये दो राजा ही विजयसेनके प्रतिस्पर्धी थे। विजयसेन एक धर्मनिष्ट हिन्दू था, किन्तु पाल राजा बौद्ध था अतः सेन सत्ताकी स्थापनाको हम बंगालमें आस्तिक हिन्दू धर्मका पुनरुज्जीवन कह सकते हैं। देवपाड़ा लेखमें यह भी लिखा है कि विजयसेनने अनेक यज्ञ किये थे। सर विन्सेण्ट स्मिथका यह कथन यथार्थ है कि इस वंशका यह पहला ही स्वतंत्र राजा था। परन्तु इसकी स्वाधीनताकी जो तिथि १११६ ई० दी है वह सम्भवतः ठीक न होगी। कदाचित् वह और पहिले होनी चाहिये। सन् १११६ ई० लक्ष्मणसेनके संवत्के आरम्भका समय है, यह कीलहार्नने इस संवत्में तथा शालिवाहन शकमें दी हुई कई लेखोंकी तिथियोंके आधारपर निश्चित किया है। अबुल फजलने भी सेन संवत्का आरंभ १०४१ शालिवाहन शक दिया है। तिरहुतके लोग सेन शकारम्भ १०२८ शक मानते हैं। किन्तु कीलहार्नका ख्याल है कि उनका विचार गलत है (इ० ए० १९ पृष्ठ ७)। तथापि यह प्रश्न हल हो जानेपर भी इस संबंधमें बड़ा भारी मतभेद है कि सेन शक किसने और कब शुरू किया। सामंत, हेमन्त और विजय, इन तीन राजाओंका

राज्यारम्भ काल सिथके मतानुसार १०८०,११०० और १११६ ई० हैं (भारतका प्राचीन इतिहास संस्करण ३, पृ० ४२६) इससे मालूम होता है कि उनके मतानुसार लक्ष्मणसेनने अपने दादा विजयसेनके राज्यारंभसे संवत् शुरू किया। गौरीशंकर ओझाका कथन है कि इस संवत्को विजयसेनके पुत्र वल्लाल सेनने मिथिल देशपर विजय प्राप्त करते समय अपने पुत्र लक्ष्मणके जन्मका समाचार सुनकर शुरू किया (प्राचीन लेख माला पृ० ४२ और हिन्दी टॉड पृ० ५३६)। श्रीयुत डी० आर० बैनर्जीने एपि० इंडि० जिल्द १४ में वल्लालसेनके एक नये लेखको छापते हुए लिखा है (पृ० १६६) कि इस शकको लक्ष्मणसेनने अपने राज्यारम्भकी स्मृतिमें शुरू किया। यह मत साधारणतः सरल और संवत् आरम्भ करनेकी सदाकी कल्पनाके अनुसार भी है। बल्कि उस समयका मुसलमानी प्रमाण (तवकाते नासिरी) तो यह है कि वल्लालसेनकी मृत्युके समय उसकी स्त्री गर्भवती थी और गर्भस्थ लक्ष्मणसेन जन्मके पहले ही राजा घोषित किया गया। तवकातने जो अनेक असम्भव बातें लिखी हैं, उनमें शायद यह भी एक है। किन्तु इतिहासकी दृष्टिसे ऐसा माना जा सकता है कि लक्ष्मणसेनका जन्म उसके पिताकी मृत्युके बाद ई० सन् १११६ में हुआ और लक्ष्मणसेनने ही इस संवत्की स्थापना की। यदि यह बात हम मान लें तो इसका अर्थ यह होगा कि उसने अपने राज्यारम्भके समयसे ही अर्थात् जन्मसे ही नया संवत् शुरू किया। परन्तु इस पर भी एक शंका उपस्थित होती है। लक्ष्मणसेनके एक लेखमें उसका राज्य वर्ष ७ दिया हुआ है और उसे परम वैष्णव कहा है (ज० रा० ए० सो० बंगाल ४४ भाग १ प० ७)। यदि यह

जन्मसे ही राज्य करता रहा हो तो हमें मानना होगा कि यह लेख उसके सातवें वर्षमें उसके पालकने लिखा है। परन्तु उसका बाप और दादा शैव थे, इसलिये सात वर्षका बालक भी शैव ही माना जाना चाहिए था। वह परम वैष्णव कैसे हो सकता था? सारांश यह कि प्रश्न अब भी संदेहजनक ही है। जबतक इन सेन राजाओंके किसी लेखमें विक्रम या शालिवाहन शक संवत्का वर्ष साथ ही नहीं मिल जाता तबतक इस प्रश्नका निर्णय नहीं हो सकता। पाल राजाओंके समान इन सेन राजाओंके दानलेखोंमें भी केवल दान देनेवाले राजाका राज्यवर्ष ही दिया रहता है। इसलिए इनकी वंशावली हमें अपने तर्कके आधार पर दो प्रकारसे देनी पड़ेगी। एक तो सर विन्सेएट स्मिथकी दी हुई तिथियोंकी और दूसरी आर० डी० बनर्जी द्वारा सूचित की गयी तिथियोंकी। कुछ लोगोंका यह भी अनुमान है कि लक्ष्मणसेन दो थे। किन्तु जैसा कि मुसलमानी लेखकोंने लिखा है लक्ष्मणसेन एक ही था। हम यह निश्चित मानते हैं कि वह ई० स० ११९९ में अपनी आयुके ८० वें वर्षमें मर गया।

इन तिथियोंकी उलझनको अलग करके अबतक सेन राजाओंका जो इतिहास निश्चित हुआ है वह संक्षेपमें इस प्रकार है। विजयसेन पहिला स्वतंत्र राजा था और वह पूर्व बंगालपर राज्य करता था। पश्चिम बंगालमें पालोंका राज्य था। उसका पुत्र बल्लालसेन पितासे भी अधिक शक्तिशाली था। मिथिल देशको जीत कर उसने पालोंकी सत्ता और भी घटा दी। वहाँके कैवर्तोंने बलवा करके दूसरे महीपाल अथवा रामपालको कैद कर लिया था। इन्हीं कैवर्तोंको बल्लालसेनने जीता। वह आस्तिक हिंदू था और तत्कालीन राजपूत

राजाओंके समान स्वय विद्वान् और विद्वानोंको चाहनेवाला था। उसने दान सागर नामक एक ग्रन्थ लिखा है। और एक दूसरा ग्रन्थ भी लिखना शुरू किया था जिसे उसके पुत्र लक्ष्मणसेनने पूरा किया। उसने वृद्धावस्थामें अपनी रानीके साथ प्रयाग जाकर त्रिवेणीके पवित्र सगममें देहत्याग किया (गोरीशकर ओझा)।

उसके बाद लक्ष्मणसेन गद्दीपर बैठा। वह भी अपने पिता के समान ही पराक्रमी था। सेनोंका राजधानी गौर थी (यह नगर बगालके वर्तमान जिला मालदामें है। अब भी इसके अवशेष वहा दिखलाये जाते ह)। पर लक्ष्मण सेनने पास ही एक दूसरा नगर बसाया। उसे लक्ष्मणावती अथवा लखनौती कहते हैं। इस प्रकार कर्णकी कर्णावती या विक्रमके विक्रमपुर (ये नगर पुरानी राजधानिया त्रिपुर और कल्याणके समीप बसाये गये थे) के अनुसार लक्ष्मण सेनने भी अपने नामसे एक नगर बसाया। लक्ष्मणसेन अनहिलवाडके जयसिंह या कल्याणके विक्रमादित्यके समान पराक्रमी था और उनके समान उसने एक नया सवत् भी शुरू किया। इस सवत्का आरम्भवर्ष कीलहार्नने ई० सन् ११०८ दिया ह। उपर्युक्त दो सवतोंके अनुसार यह बद नहीं हुआ और अबतक तिरहुतमें प्रचलित है।

अपने पिताके समान लक्ष्मणसेन विद्वान् और विद्वानोंका आश्रयदाता भी था। उसके दरबारमें ऐसे ऐसे पण्डित थे जिनके ग्रन्थ अब भी इस कालरूपी महासागरकी सतहपर दृग्गोचर हैं। हलायुध, उमापतिधर, शरण, गोवर्धनाचार्य, धोरी, (गीतगोविंदके लेखक) जयदेव और श्रीधर दास ये प्रसिद्ध हैं। इसके पूर्वज शैव थे, पर स्वय वैष्णव होनेकी बात इसने अपने लेखमें लिखी है। हरिकी भक्ति करनेवाले

बङ्गालके अर्वाचीन कवि उसीके समयसे उत्पन्न होने लगे। बङ्गालमें हरि भक्तिका उद्गम इसीसे शुरू हुआ है। वर्णाश्रम धर्मकी पुन स्थापना, किम्बहुना कुलीन विवाहकी विचित्र प्रथा इसके पिता बल्लालसेनने पहिले पहल जारी की। इन दोनों बातोंके विषयमें भारतवर्षकी सामाजिक अवस्था पर विचार करते समय विशेष लिखना पड़ेगा। "लक्ष्मणसेन स्वयं उत्तम गुणोंसे युक्त था। विश्वसनीय लोगोंका कथन है कि छोटे या बड़े किसीके साथ उससे अन्याय नहीं हुआ। उसकी उदारता तो कर्णके समान आदर्श हो गयी थी।" (सर विन्सेंट स्मिथ—अर्ली हिस्टरी पृ० ४१०)

इस राजाके अन्तके विषयमें हम आगे किसी प्रकरणमें लिखेंगे। सम्पूर्ण बंगालके अधिपति सेन राजाओंकी सत्ता इस राजाके साथ ही साथ नष्ट हो गयी और देशको मुसलमानोंने जीत लिया। तथापि पूर्व बङ्गालमें कुछ सेन राजा तेरहवीं सदीके अन्ततक राज्य करते रहे। लक्ष्मणसेनके तीन पुत्र माधवसेन, केशवसेन, और विश्वरूपसेन, विक्रमपुरमें राज्य करते थे। इनमेंसे केशव तथा विश्वरूपके लेख भी मिले हैं। तबकातसे पता चलता है कि नासिरुद्दीनने जब लखनौती-पर आक्रमण किया उस समय बंगालका विद्रोही सूबेदार खिलजी पूर्वकी ओर बंग राजापर चढाई करनेके लिए गया था (अर्थात् यह आक्रमण उपर्युक्त सेन राजाओंपर हुआ था)। गौरीशंकर ओझाका कथन है (हिंदी टॉड पृ० ४३८) कि दनुज माधवने: जो इस समय विक्रमपुर छोड़ कर चंद्र द्वीपको चला गया था, विद्रोही सूबेदारको दण्ड देनेमें बलबनकी सहायता की और उसे नदीके रास्ते भागने नहीं दिया। इसके अतिरिक्त दनुजमाधवके बाद चार राजा चंद्रपुरमें हुए।

अन्तिमराजा जयदेव था। गौरीशंकर ओझाने लिखा है कि उसके साथ सेन राजवंशका अंत हुआ।

सेनवंशका जो वृत्तान्त अबतक उपलब्ध है वह ऊपर दिया जा चुका। अब इस विवादग्रस्त प्रश्नपर विचार करना चाहिये कि ये राजा किस जातिके थे। मुसलमानोंने लखनौतीको किस प्रकार जीता, इस विषयमें मतभेद है, पर इसका विचार हम आगे चलकर करेंगे। डॉ० डी० आर० भांडारकरका कथन है कि सेन राजा आजतक सारे भारतवर्षमें फैली हुई ब्रह्मक्षत्र जातिके थे और बंगालके वैद्य उन्हें वैद्य कहते हैं, किन्तु यह स्पष्ट है कि ये राजा आर्य क्षत्रिय और चन्द्रवंशी थे। वे न ब्रह्मक्षत्र ही थे, न वैद्य ही थे, क्योंकि उपर्युक्त देवपाडा लेखके शुरूमें ही स्पष्ट लिखा है कि सामन्त सेन चन्द्रवंशमें पैदा हुआ था। यह शब्द राजपूतोंके लिए ही प्रयुक्त किया जा सकता है, ब्रह्मक्षत्रों और वैद्योंके लिए नहीं। इनमें चन्द्रवंशी या सूर्यवंशी यह भेद है ही नहीं। पूर्व-धारणाके कारण डॉ० भांडारकरका ध्यान लेखके सामन्त सेनके विषयमें लिखे हुए "ब्रह्मक्षत्रियाणाम" शब्दकी ओर ही गया। पर उन्होंने यह नहीं देखा कि उसके ठीक पहले श्लोकमें क्या लिखा है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि ये राजा चद्रवंशमें पैदा हुए हैं। इसलिए हमें 'ब्रह्म क्षत्रियाणाम' शब्दका अर्थ इस सिद्धान्तके अनुकूल लगाना चाहिए। भाग २, प्रकरण ॰ में हम बतला चुके हैं कि यह शब्द हिंदू धर्माभिमानी और उस धर्मके अनुसार आचरण करनेवाले राजपूतोंको ही लगाया जा सकता है। कीलहार्नने भी इसका अनुवाद गलत ही दिया है। इसके अर्थ में ब्राह्मणोंका समावेश नहीं हो सकता। इसका अर्थ ब्राह्मण और क्षत्रिय कुलोंका शिरोमणि नहीं बल्कि यह है कि ब्रह्मयुक्त,

अर्थात् ब्रह्म अथवा वैदिक कर्म करनेवाले, क्षत्रिय कुलोंके शिरोमणि। किंबहुना श्लोकके आरम्भमें सामन्तके लिए ब्रह्मवादिन् शब्दका प्रयोग इसी अर्थमें किया गया है। बौद्ध बने हुए अथवा अन्य क्षत्रियोंसे अपनी भिन्नता दिखलानेके लिए धर्माभिमानी क्षत्रिय अपने लिए 'ब्रह्मक्षत्रिय' शब्दका प्रयोग करते थे। तात्पर्य यह कि इस शब्दमें जातिवाचक अर्थ बिलकुल नहीं है। जाति तो पहलेके ही श्लोकसे निश्चित हो गयी है। उसमें उनके चंद्रवंशीय कहनेका यही अर्थ है कि वे राजपूत थे।

पर यदि हम थोड़ी देरके लिए यह भी मान लें कि उपर्युक्त शब्दके अनुसार वे ब्रह्मक्षत्र जातिके ही थे, तब भी इसके बाद डाक्टर भाण्डारकरने जो और कथन किया है और जिसे मान्य समझ कर सर विन्सेण्ट स्मिथने अपने इतिहासमें उद्धृत किया है, उसके लिए क्या आधार है? अनुमान इस प्रकार है (स्मिथका इतिहास तीसरा संस्करण पृ० ४२०) "जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है ये नये आये हुए लोगोंके ब्राह्मण थे और बादमें हिन्दू समाजमें समाविष्ट होनेके पूर्व ये क्षत्रिय हो गये थे।" यह केवल एक निराधार कल्पना मात्र है। उनको ब्रह्मक्षत्रिय कहा है और उनकी एक भिन्न जाति है इसलिए वास्तवमें वे एक विदेशी परकीय जातिके ब्राह्मण थे, और ब्राह्मण होनेपर भी वे बादमें क्षत्रिय होगये, और यह परिवर्त्तन उनके हिन्दू समाजमें सम्मिलित होनेके पहले हो गया, इत्यादि तर्क कैसे उत्पन्न होते हैं यही हमारी समझमें नहीं आता। इस बातकी चर्चा तो हमने दूसरे भागमें ही की है कि बाहरसे आयी हुई जातियाँ हिन्दू धर्ममें मिल गयीं या नहीं। उपर्युक्त तर्क तो डा० भाण्डारकरने अपनी पूर्वधारणाके आधार पर ही किया है और सर विंसेण्ट स्मिथने भी, बहुतसे राजपूत

कुल परदेशी लोगोंसे उत्पन्न हुए हैं, अपनी इस कल्पनाके अनुकूल होनेके कारण ही, उसे ग्रहण कर लिया है।

यह बात केवल इसीसे सिद्ध नहीं होती कि लेखोंमें सेनोंको चन्द्रवंशीय लिखा है। बल्कि बंगाल रा० ए० सो० के विवरण जिल्द ५ पृ० ४६७ में छपे हुए लक्ष्मण सेनके माढरी नगरके दानलेखसे भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें क्षत्रिय शब्दका स्पष्ट रूपसे प्रयोग किया है। इस लेखमें साफ लिखा है कि वीरसेनके कर्नाट क्षत्रिय कुलमें सामन्तसेनका जन्म हुआ था। अब यह प्रश्न विशेष महत्वपूर्ण नहीं है कि यह वीरसेन कर्नाटकी था या दाक्षिणात्य। बल्लालसेनके पूर्वोक्त देवपाड़ा लेखमें दाक्षिणात्य शब्दका प्रयोग है ।।इसका अर्थ महाराष्ट्रके ब्राह्मण या क्षत्रिय था। किन्तु यह भेद तो गौण है कि वह मराठा क्षत्रिय था या कर्नाटकी क्षत्रिय। उस समय तो उत्तरके और दक्षिणके क्षत्रियोंका भेद ही पैदा नहीं हुआ था। कमसे कम उसके भावका अतिरेक नहीं हुआ था। उनमें विवाह-सम्बन्ध बराबर जारी थे। जब ये क्षत्रिय बंगालकी ओर गये तब इनका आचार—व्यवहार सभी वहाँका सा हो गया। उत्तरके क्षत्रियोंसे इनके विवाह होने लगे। इनके नौकर आदि तथा अधिकारी भी बंगाली थे। तत्कालीन कर्नाटकी क्षत्रिय या मराठा क्षत्रियका बङ्गालमें जाकर राज्य स्थापित करना और आधुनिक सिंधिया जैसे मराठा सरदारके राज्यस्थापनमें महान् अन्तर है। सिंधियाके सेवक दक्षिणी थे। उनके विवाहादि सम्बन्ध उत्तरके लोगोंसे कभी नहीं हुए। तात्पर्य यह कि सेन राजा आगे चलकर पूर्ण रूपसे बंगाली हो गये। हां, उन्होंने केवल इतनी स्मृति बचा रखी कि हम दक्षिणसे आये थे। यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि 'उत्तर

भारतके दो राजपूतवंश अब भी इस बातको याद रखते हैं कि हम लोग महाराष्ट्र या कर्नाटक विशेषतः कल्याणसे आये थे। यदि हम इस बातको ध्यानमें रखें कि राठौर और सेन भारत भरमें क्षत्रिय थे तो हमें यह बात इतनी महत्वपूर्ण नहीं मालूम होगी। अस्तु, अब हम यह बात पुनः दोहराना चाहते हैं कि लखनौतीके सेन राजा राजपूत अर्थात् वर्णके क्षत्रिय थे,* हालमें बनी हुई ब्रह्मक्षत्र जातिके नहीं थे। उनके लिए जो ब्रह्मक्षत्र शब्द कहा गया है वह केवल उनके वैदिक धर्माभिमानका सूचक है। किंबहुना स्वयं विन्सेंट स्मिथने लिखा है कि लक्ष्मणसेनका कुल भारतके तमाम राजाओंमें सम्मानित था। और यह भारतवर्षका परम्परागत खलीफा (अर्थात् धार्मिक दृष्टिसे नेता) माना जाता था।

ग्यारहवाँ प्रकरण।

ठानेके शिलाहार राजा।

दक्षिण भारतके हिन्दू राजाओंकी ओर दृष्टि डालते ही पहले पहल ठानेका शिलाहार राज्य हमारे सामने आता है। मध्ययुगीन हिन्दू इतिहासके इस कालविभागमें (ई० सन् १००० से १२०० तक) यह राज्य पहलेसे अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण हो गया। यहाँके राजा प्रायः स्वतंत्र ही थे। उनका देश प्राचीन महाभारतका 'अपरान्त' है। उस समय

* कई लोगोंने सूचित किया है कि सेन राजा द्रविड़वंशीय और संभवतः चोल थे। किन्तु द्रविड़ कर्नाटकसे बिल्कुल भिन्न है। और न द्रविड़ शब्द किसी लेखमें ही है। उनका चोलवंशीय होना संभव नहीं जान पड़ता।

उनकी राजधानी शूर्पारक (सोपारा) थी। बुद्धने अपने शिष्य पूर्णको वहाँ उपदेश देनेके लिए भेजा था और इसके बाद ईसाके पूर्वकालमें इस देशमें अरब और यूनानके जहाज आकर माल तथा विचारोंका विनिमय करते रहते थे। शिलाहारों-का राजकुल भी बहुत पुराना था। उनके शिलालेख कपर्दिन से शुरू होते हैं। वह अमोघवर्ष राष्ट्रकूटका मांडलिक था। उसने बौद्ध यतियोंको कुछ दान दिये थे, जिनके सम्बन्धका उसका शिलालेख शालिवाहन शक ७७५ अर्थात् ई० सन् ८४३ में ठाना जिलेके कन्हेरी (कृष्णागिरि) की प्रसिद्ध गुफा-ओंमें खुदा हुआ है। इन गुफाओंमें ईसाके पूर्व १०० से लेकर इधर ईसवी सन् १५०० तक अर्थात् पोर्तुगीजोंके समय तक बौद्ध संन्यासी रहते आये हैं। शिलाहारोंका राज्य लगभग पांच सौ वर्ष, ई० स० ८०० से लेकर १३०० तक, ठाना जिलेपर रहा। प्रारम्भमें वे राष्ट्रकूटोंके मांडलिक थे। बादमें अपराजितोंके समयसे स्वतन्त्र हो गये। इनका ई० सन् ९९७ का एक लेख उपलब्ध हुआ है और वह प्रकाशित भी हो चुका है (भदात ताम्रपट एपि० इंडि० ३ पृ० २५७)। इस लेखमें अपराजित स्वयम् अपनेको महामंडलेश्वर कहता है। और अपने सम्राट् राष्ट्रकूट राजाओंकी पूरी वंशावली देकर लिखता है कि उनके अन्तिम राजा कक्कलको चालुक्य तैलपने मार डाला। यह कथा हमने अपने इतिहासके दूसरे भागमें इसी राजाके ई० सन् ९९३ में अर्थात् उपर्युक्त लेखके चार साल पहले लिखे हुए अप्रकाशित लेखके आधार-पर लिखी है। उसमें भी राष्ट्रकूटोंकी वंशावली विस्तृत रूपसे देकर उनके अन्तपर दुःख प्रकट किया है। इस अंतके बाद अपराजित सम्भवतः स्वतन्त्र हो गया होगा। तथापि साधारण

रीतिके अनुसार तथा पहलेके राजाओंके प्रति आदरके कारण 'महामंडलेश्वर' की उपाधि वह अब भी धारण किये रहा, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकारसे अवधके वज़ीर, हैदराबादके निजाम, और पूनाके पेशवाओंने स्वतन्त्र हो जानेपर भी अपनी पहली पराधीनताकी उपाधियाँ कायम रखीं। इसी कुलके बादके लेखोंमें अपराजितको 'मृगांक' और 'विरुदकराम' कहा है। उनमें यह भी लिखा है कि उसने गोमराजका उत्तम सत्कार किया, ऐय्यपदेवसे युद्ध किया और (सेउण देशके) भिल्लमकी सहायता की। इससे भी मालूम होता है कि उसने स्वतंत्र राजाकी तरह राज्य किया। उसके राज्यका वर्णन "कोंकण चौदाशें राजधानी पुरी" ऐसा मिलता है। इन शब्दोंमें राज्यके पुराने विस्तार (चौदह सौ गाँव और पुरानी राजधानी) का उल्लेख है, पर उपर्युक्त अप्रकाशित लेखसे मालूम होता है इस समय उसका राज्य बहुत बढ़ गया था। यहाँ तक कि ठाना और कुलाबा जिला, रत्नगिरीका चिपलूण प्रदेश, और घाटोंके ऊपर मालवका पर्वतीय प्रदेश भी उसके राज्यके अंतर्गत था। इस प्रदेशमें तो १४०० से अधिक गाँव हैं। इसलिए इस संख्याका उल्लेख पुरीके राज्यके विषयमें परम्परासे होनेके कारण ही कर दिया होगा। उत्तर शिलाहारोंके समय नयी राजधानी ठाना (स्थानक) के साथ नया राज्य बहुत बड़ा रहा होगा।⊛ इन शिलाहार

⊛ स्कंद पुराणकी देशोंकी तालिकामें कोंकणमें ३६००० गांव बताये गये हैं, और लघु कोंकणमें १६०० (भाग २)। यह दूसरी संख्या शिलाहारोंके लेखोंमें दिये हुए पुरी कोंकणकी संख्याके लगभग बराबर ही है। बड़े कोंकणमें सात कोंकणोंका अंतर्भाव होता था। करांट च वराटं च मराठ मारवं तथा। हविगं तौलवं चाप केरलं चेति सप्तकम्॥ (सह्याद्रिखंड)

राजाओंके समय कोंकणकी बहुत उन्नति हुई, क्योंकि एक अरबी लेखकने लिखा है कि खम्भायतसे सैमूरतकके प्रदेशमें गाँव बहुत नजदीक नजदीक बसे हुए हैं और बहुत जमीन खेतीमें भी लगी है।

अपराजितके समयसे शिलाहार राजाओंने स्वतन्त्रता प्राप्त कर उन्नति कर ली, इसलिए उनकी गणना भारतवर्षके बड़े बड़े राजवंशोंमें होने लगी। इसके बाद दूसरे अपराजितके समय तक इस राजवंशकी कीर्ति और भी बढ़ गयी। इस दूसरे अपराजितके ई० सन् ११८५ और ११८७ के दो लेख मिले हैं (ज० रा० ए० सो० बम्बई जिल्द १२ पृष्ठ ३३३)। पूर्वगामी राजाओंके समान वह भी अपनेको कोंकणचक्रवर्ती कहता है। यह उपाधि स्वाधीनता तथा सामर्थ्यकी सूचक है। अपराजितसे अपरादित्य तक उनकी वंशावलीके अनुसार ग्यारह राजा होते हैं और उनका शासनकाल लगभग २१० वर्ष (९९० से १२०० ई०) होता है अर्थात् प्रत्येक राजाका शासनकाल औसतन साधारण नियमके अनुकूल बीस वर्षका होता है। इस औसतका उपयोग करके परन्तु विशिष्ट राजाओंके लेखोंकी तिथियोंको ध्यान में रखते हुए हमने प्रत्येक राजाका सम्भवनीय शासनकाल दिया है (अंतमें वंशावली देखिये)।

इस दृष्टिसे विचार करते हुए हमने अपराजितका शासनकाल ९९० से १०१० ई० तक मान लिया है। उसके बाद उसका पुत्र वज्जड और वज्जडके बाद उसका भाई अरिकेसरी गद्दीपर बैठा। इसका एक ताम्रलेख मिला है (ठाना ताम्रपट ए० आर० आई० पृ० ३५७ कीलहार्नकी वंशावलियाँ)। इसकी तिथि ई० स० १०१७ है। इसलिए हम वज्जडका शासनकाल १०१० से १०१५ तक मान लेते हैं। अरिकेसरीका शासनकाल भी हमें

अल्प ही मानना चाहिये। ऐसा मालूम होता है इसीके समय भोज परमारके ई० स० १०२० के दानलेख (भाग २ देखिये और एपि० इंडि० ११ पृ० ८१) के अनुसार भोजने कौंकणका पराजय किया होगा। इसके उत्तराधिकारी चण्डके पुत्र छित्तराजका १०२८ का एक लेख प्राप्त हुआ है। यही लेख प्रसिद्ध भांडुप शिलालेख है (इं० ए० ५ पृष्ठ २७७)। इसलिए अरिकेसरीका समय ई० सन् १०१५ से १०२५ मानकर छित्तराजका काल हमने ई० सन् १०२५ से १०४५ तक नियत किया है। छित्तराजके इस महत्वपूर्ण भांडुप दानपत्रके विषयमें हम आगे चलकर विवेचन करेंगे।

छित्तराजके बाद उसका भाई नागार्जुन गद्दीपर बैठा और उसने सभवतः १० वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसके छोटे भाई माम्वानीका शासन अनुमानतः बहुत दिनों तक रहा। हमने इसका शासनकाल ई० सन् १०५५ से १०८५ तक माना है, क्योंकि इसका १०६० ई० का एक लेख कल्याणसे छः मीलकी दूरी पर जी० आई० पी० रेलवेके स्टेशनके निकट प्रसिद्ध 'आम्रनाथ' (अम्बरनाथ) के मंदिर में मिला है। उसमें राजाका नाम महामवानी दिया है। (कहीं कहीं इसे मामवानी और कहीं मम्मुनी भी लिखा है।) इसमें लिखा है कि पुराने कच्चे मंदिरके स्थानपर राजगुरुने यह पक्का मन्दिर बनवाया (ज० रा० ए० सो० बम्बई जिल्द ६ पृष्ठ २१६) मंदिरके पास ही एक दूसरा शिलालेख मिला है। उसमें लिखा है कि किसी स्थानीय कर्मचारीने मन्दिरके पास एक और इमारत बनवायी (ज० रा० ए० सो० बम्बई जिल्द १२ पृष्ठ ३२६) यह लेख भी उसी वर्षका अर्थात् ई० सन् १०६० का है।

मामवानीके बाद उसका भतीजा अनंतदेव (नागार्जुनका पुत्र) राजा हुआ। ऐसा मालूम होता है कि वह बडा पराक्रमी हुआ। अपने १०६४ ई० के लेखमें उसने अपने लिए कोंकण-चक्रवर्ती लिखवाया है। यह ताम्रलेख (खारे पाटण इ० ए० जिल्द ६, पृ० ३३) सुविख्यात संस्कृत पण्डित जस्टिस तेलंग जीने प्रकाशित किया है। साथ ही उन्होंने तबतक मिले हुए शिलालेखोंसे सब बातें एकत्र कर शिलाहार राजाओंकी वंशावली भी दी है। इस ताम्रपटमें लिखा है कि एक मंत्री श्रेष्ठी (व्यापारी) के जहाजका कोंकणके बदरगाहमें आने पर कर माफ किया गया है। अनन्तदेवको कहीं कहीं अनन्तपाल भी लिखा मिलता है। इसने ई० सन् १०८५ से ११२५ तक राज्य किया। इसका पुत्र पहला अपरादित्य भी प्रसिद्ध राजा हुआ, जिसका एक पण्डित प्रतिनिधि बनकर काश्मीरमें पंडितोंकी एक सभामें गया था, जैसा कि मखने अपने श्रीकण्ठचरितमें वर्णन किया है। इसका राज्यकाल हम ई० सन् ११२५ से ११४५ तक मान सकते हैं। यह ध्यानमें रखते हुए कि इसके पुत्र हरपालके ई० सन् ११४६,११५० और ११-५३ के लेख प्राप्त हुए हैं, हमने अनन्तपालका शासनकाल चालीस वर्ष, अपरादित्यका वीस वर्ष और हरपालका दस वर्ष माना है।

हरपालके लेख शिलालेख हैं। हम इस समय उन्हें देख नहीं सकते। बम्बई गजेटियर जि० १ भाग १ में शिलाहारोंका जो सम्पूर्ण यथाक्रम वृत्तान्त दिया गया है उसके आधारपर हमने इन लेखोंका उल्लेख किया है। इस वर्णनमें लिखा है कि अनंतपालके राज्यमें आपसी वैमनस्य बढ जानेके कारण देव ब्राह्मणों पर अत्याचार हुआ। यह पता लगना कठिन है

कि यह वैमनस्य और झगडे पैदा क्यों हुए। ऐसा मालूम होता है कि इस राज्यमें मुसलमानोंकी बस्ती बहुत बढ़ गयी थी, क्योंकि राष्ट्रकूट राजा अरबोंके अनुकूल थे, उत्तरके राजाओंके समान वे परधर्मद्वेषी नहीं थे (भा० २ प्रकरण १०)। सोमनाथ पाटण और खम्भातसे लेकर ठेठ चोल (सेमूर) तक लगभग हर एक बंदरगाहमें अरब लोगोंकी बस्तियां थीं और कई गावोंमें उन्होंने अपनी मसजिदें तक बनवा ली थीं। अग्निपूजक (पारसी) और अरबोंके बीचके एक झगडेका वर्णन अरबी लेखकोंने किया है। झगडेकी खबर जब अनहिलवाडके जयसिंह राजाके पास पहुँची, तब वह स्वयं उक्त टूटी हुई मसजिद देखनेके लिए गया और उसे अपने निजी खर्चेसे बनवा दिया (इलियट २ पृ० १६३)। मालूम होताहै यह झगडा राजा और उसके सम्बन्धियोंके बीच हुआ होगा और इसी समय मौका पाकर उत्तर भारतके मुसलमानोंके समान यहांके मुसलमानोंने भी देव ब्राह्मणोंपर अत्याचार किया होगा। किन्तु अन्तमें अनंतपालकी विजय हुई। उसने विद्रोह का दमन करके अपने विरोधी सम्बन्धियोंको तथा धर्मपर अत्याचार करनेवालोंको कठोर दण्ड दिया (इ० ए० जिल्द ६ पृ० १७)। इसलिए कोंकण और भी दो शताब्दियों तक हिन्दू धर्मानुयायी बना रहा।

हरपालके विषयमें अधिक बातें ज्ञात नहीं है, किन्तु ई० सन् ११५३ का इसका लेख ध्यानमें रखते हुए अनुमान होता है कि इसने ११४५ से ११५५ ई० तक राज्य किया होगा। इसके पुत्र मल्लिकार्जुनने बहुत दिनोंतक राज्य किया। इसके 'राजपितामह' की उपाधि धारण करनेसे चिढ़कर गुजरातके चालुक्य कुमारपालने कोंकण जीतनेके लिए अपने सेनापति अंबडको

भेजा। वलसाडके पास युद्धमें अंवडका पराजय हुआ। किन्तु अम्बडने पुनः तैयारी करके आक्रमण किया और इस बार मल्लि-कार्जुनको हरा दिया। इतना ही नहीं वलिक जैसा कि गुजरातके इतिहासमें कहा जा चुका है, जगदेव परमारने मल्लिकार्जुनको युद्धमें मार भी डाला। इसने ११५५ से ११७५ ई० तक राज्य किया होगा। गजेटियरमें लिखा है कि इसके दो लेख (चिपलूण और वसई) ११५६ और ११६० ई० के मिले हैं, किन्तु वे कहाँ से प्रकाशित हुए हैं, इसका उल्लेख उसमें नहीं किया गया।

इसका पुत्र दूसरा अपरादित्य इस वंशका इस॰ कालका अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ राजा था। लेखोंमें वह अपने लिए महामंडलेश्वर नहीं वलिक महाराजाधिराज और कोंकण चक्रवर्ती लिखता है। उसने स्वतंत्रतापूर्वक और कोंकणके बहुत बड़े हिस्सेपर राज्य किया। उसके बाद भी कोंकण बहुत वर्षोंतक स्वतन्त्र रहा। सौ साल बाद-जब वहां मार्को-पोलो नामका एक यात्री आया था, तब भी कोंकण स्वतन्त्र ही था। अनेक प्रतापी राजाओंके समान अपरादित्य भा स्वयं बड़ा विद्वान् था। याज्ञवल्क्य स्मृतिपर प्रसिद्ध अपरार्क टीका उसीकी लिखी हुई है। यह ग्रन्थ अब भी हिन्दू धर्म शास्त्रमें प्रामाणिक माना जाता है। काश्मीर जैसे सुदूर देशोंमें भी इसे आधारभूत मानते हैं। इससे प्रकट होता है कि उस समय भी भिन्न भिन्न हिन्दू राज्योंके बीच बराबर सम्बन्ध तथा गमनागमन होता था। हम पहले कह चुके हैं कि मंखके श्रीकंठचरितमें (यह काश्मीरी कवि ई० स० ११३५ से ११५५ तक था) जिस पंडित सभाका वर्णन है उसमें कोंकणके पहले अपरादित्यकी ओरसे तेजःकण्ठ नामका पण्डित, गया था। इस पण्डितके जाने आनेके कारण दूसरे अपरादित्यका हिन्दू

धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ काश्मीरमें शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गया होगा। इसका एक लेख ई० सन् ११८४ का मिला है और प्रकाशित भी हुआ है (ज० रा० ए० सो० बम्बई जिल्द १२ पृ० ३३३)। इसका राज्यकाल ई० सन् ११७५ से १२०० ईसवी तक माना जा सकता है।

ठानेके शिलाहार राजवंशके बादके राजाओंसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है और न उनके विषयमें विशेष बातें ही ज्ञात हैं। कीलहार्नकी वंशावलीमें (एपि० इंडि० जिल्द ८) केवल सोमेश्वरका नाम दिया है (इसका ई० स० १२५६ का एक लेख मिला है) और गजेटियरमें केशीदेवका नाम भी दिया हुआ है। पर सोमेश्वरके बाद भी कई वर्षतक यह वंश राज्य करता रहा होगा। अन्तमें जब मलिक काफूरने ई० सन् १३२८ में महाराष्ट्रको जीता, तब उसके बाद उसके सेनापति मुबारकने चौदहवीं शताब्दीमें ठाना भी जीत लिया। पाटणसे (सोमनाथ अथवा अनहिलवाड़) किसी बिम्ब नामक राजाके और पैठणसे कुछ क्षत्रियोंके आनेकी कथा बम्बई गजेटियर जिल्द ७ भाग २ में दी हुई है। इसी कथाका महाराष्ट्रके प्रसिद्ध इतिहास-संशोधक श्रीयुत वि० का० राजवाड़ेने हालमें ही विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। यह कथा देना इस ग्रन्थकी सीमाके बाहर है। किन्तु यहाँपर इतना अवश्य कह देना चाहिए कि शिलाहारोंका राज्य नष्ट हो जानेके बाद अर्थात् कमसे कम १२६० ईसवीके बाद ये लोग कोंकणमें आये होंगे।

यहाँपर इन शिलाहार राजाओं तथा उनके लेखोंके विषयमें कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कह देना आवश्यक है। सबसे पहली बात तो यह है कि यद्यपि उस समयके प्रायः सभी क्षत्रिय राजाओंने शिलालेखोंमें अपनेको सूर्यवंशी या चन्द्रवंशी कहा है, पर

शिलाहार राजा अपनी उत्पत्ति इन दोनोंमेंसे एकसे भी नहीं मानते। वे दन्तकथामें प्रसिद्ध, और गरुड़से नागोंको बचानेके लिए अपना शरीर अर्पण करनेवाले, पौराणिक देवयोनि विद्याधर जीमूतवाहनसे अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं। यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि वे क्षत्रिय नहीं थे। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे क्षत्रिय ही थे और क्षत्रिय माने भी जाते थे, क्योंकि इनका नाम ३६ राजकुलोंकी सूचीमें सर्वत्र दिया हुआ पाया जाता है। यह सूची संभवतः ग्यारहवीं सदीके अन्तमें या बारहवीं सदीके प्रारम्भमें बनी थी। हम यह पहले ही बतला चुके हैं कि कन्नौजके धर्माभिमानी गाहड़वाल सम्राट् चन्द्रने सूर्यवंश और चन्द्रवशका पुनरुज्जीवन किया था। उसीके समयमें या बहुत हुआ तो गोविन्दचन्द्रके समयमें यह क्षत्रियकुल-गणना हुई होगी। इस काल-निश्चयका एक और प्रमाण यह भी है कि उसमें शिलाहारोंके नाम भी हैं। विद्याधर वंशसे हमारे मतानुसार तो यही अभिप्राय है कि वे भी क्षत्रिय ही थे। क्योंकि अपना मांस काट काटकर गरुड़को खिलानेका कठिन कार्य क्षत्रिय ही कर सकता था। (यहाँपर महाभारतमें वर्णित कर्णकी कथा याद हो आती है। सम्भव है शिलाहार क्षत्रियोंने दक्षिणके नागवंशी लोगोंकी सहायता की हो, उसीका उल्लेख इस कथामें हो।) ये शिलाहार अपने लेखोंमें हमेशा यही कहते हैं कि हम तगरपुरसे आये। टॉलेमीने इस नगरका नाम दिया है और वह उसे पैठणके पूर्वमें गोदावरीके किनारेपर बतलाता है। इससे वे मराठ देशके बिलकुल केन्द्रके रहनेवाले प्रतीत होते हैं। अनन्तदेव या अनन्तपालके समयमें ये भारतवर्षमें स्वतन्त्र और प्रबल राजा माने जाने लगे। इसका समय हमने ई० स० १०५५ से ११२५

तक दिया है। ३६ कुलोंकी तालिका वस्तुतः राज्य करनेवाले क्षत्रिय राजवंशोंसे बनायी गयी थी, अतः उसमें ठानेके शिलाहार राजाओंका नाम रहना स्वाभाविक है। यद्यपि वे अपनेको विद्याधर वंशी कहते थे तथापि थे वे क्षत्रिय (राजपूत)। उनकी कीर्ति काश्मीरतक फैल गयी थी। मंखने जिस पंडित-सभाका वर्णन किया है उसमें दो राजाओंके प्रतिनिधियोंके आनेका वर्णन मिलता है। एक ठानेके शिलाहार राजाका प्रतिनिधि तेजःकण्ठ और दूसरा कन्नौजके गोविन्दचन्द्रका प्रतिनिधि सुवल था। अर्थात् कोंकण, कन्नौज और काश्मीरका ई० सन् १०८५ में घनिष्ट सम्बन्ध हो गया (ज० ए० सो० बम्बई जिल्द १२ विशेषांक पृ० ५१)। इसलिए ई० स० ११५४ की कल्हणकी राजतरंगिणीमें दी हुई छत्तीस राजवंशोंकी तालिकामें शिलाहारोंका भी नाम रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इस तालिकामें शिलाहार ही ऐसे हैं जो केवल दक्षिणके राजा हैं और उत्तरमें जिनका राज्य नहीं है। दिये हुए वंशोंमें राठौर और चालुक्य दक्षिण तथा उत्तर दोनों स्थानोंके राजपूत हैं परन्तु शिलाहार केवल दक्षिणके राजपूत हैं। ये शिलाहार मराठे होते हुए भी हमेशा उत्तम राजपूत माने जाते थे। इसका प्रमाण कोल्हापुरसे हालमें प्रकाशित हुए 'सिद्धान्त-विजय' नामक ग्रन्थके पृष्ट १०५ पर दिया हुआ भोज शिलाहारका शक ११९२ का अर्थात् सन् ११९१ ईसवीका लेख है। इस लेखमें भोजने अपनेको क्षत्रिय-शिखा-चूड़ामणि कहा है। मराठोंके ९६ कुलोंमें गिने जानेवाले शेलार ही शिलाहार हैं और यादव या चन्द्रवंशी माने जाते हैं।

इन शिलालेखोंके विषयमें दूसरी विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि प्रत्येक दानपत्रमें राजाके साथ साथ राज्यके पांच

मन्त्रियोंके नाम भी दिये गये हैं। यह आश्चर्यकी बात है कि इस कोंकणके राज्यमें ही मंत्रियोंको इतना महत्त्व कैसे दिया गया । शायद आजकलका यह तत्त्व उस समय भी कोंकणमें मान्य समझा गया हो कि शासनके लिए राजा नहीं बल्कि मंत्री ही उत्तरदायी हैं, और इसी तत्वके अनुसार कार्य भी होता रहा हो । प्रधान मंत्रीके नामके साथ सर्वाधिकारी या "राज्यचिंता-भार-समुद्वहन् महामात्य" विशेषण लगाया जाता था (इं० एं० जिल्द ५ पृ० २२७) । सन्धि और विग्रह करनेवाले मंत्री अक्सर दो होते थे। जमीनका हिसाब किताब रखनेवाला (श्रीकरण) मंत्री अलग होता था। कोषाध्यक्ष (भांडागारिक) भी होते थे। इनमेंसे एक तो शायद राजाके व्यक्तिगत खर्च और दूसरा सार्वजनिक कार्यके लिए। ऐसा भी हो सकता है कि एक तो उस भूमि-करके लिए हो जो नकद वसूल हो और दूसरा उसके लिए हो जो अनाज इत्यादि के रूपमें वसूल हो। अनाज इत्यादिकी वसूलीका हिसाब रखना अवश्य ही कठिन रहा होगा, क्योंकि वह परगने या गाँवमें ही रहता होगा । लेखोंमे हमेशा पाँच मंत्री कहे गये हैं । शिवाजीने ई० सन् १६६० में अष्ट प्रधानोंकी जो योजना तैयार की वह यही पुरानी व्यवस्था थी जो ई० सन् १००० के लगभग देशमें प्रचलित थी । शिवाजीने उसका पुनरुद्धार किया और उसी प्रधान शब्दका प्रयोग किया जो इन लेखोंमें पाया जाता है।

तीसरी विचित्र बात यह है कि इन प्रधानोंके नामके अन्तमें हमेशा 'पेय्या' पद रहता है। इससे कई विद्वानोंका अनुमान है कि ये तगरसे आये हुए शिलाहार वास्तवमें आन्ध्र देशके रहनेवाले होंगे और ये कदाचित् आन्ध्र देशसे ही विद्वानोंको बुला बुलाकर अपने यहाँ मन्त्री नियुक्त किया

करते थे। प्रायः आन्ध्रदेशवालोंके ही नामके अन्तमें 'पेय्य' पद लगता है। पर हम इस बातका नहीं मानते कि तगर आन्ध्र-देशमें था। हमारा मत है कि वह महाराष्ट्रके बिलकुल बीचमें था। यदि यह मान भी लिया जाय कि वह आन्ध्रमें है, तब भी शिलाहारोंको महाराष्ट्रमें या कोंकणमें बसते बसते इतनी शताब्दियाँ बीत गयी थीं कि वे पूर्णरूपसे मराठे बन गये थे। उनके सम्बन्ध, उनका सुखदुःख और उनकी भाषा मराठी हो गयी थी। इसलिए हमें यह युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता कि सन् १००० से १२०० तकके कालमें उनसे भाषा, तथा रीतिरिवाजमें बिलकुल भिन्नता रखनेवाले आन्ध्रदेशके लोगोंके प्रति उनकी इतनी सहानुभूति रही होगी। इसीसे हमें यह बात नहीं जँचती कि ये मंत्री आन्ध्र देशके होंगे। हाँ, यह सम्भव है कि ये कर्नाटकके रहे हों। क्योंकि मालखेडके राष्ट्रकूट भी मराठा जातिके थे, तथापि रहनेवाले कर्नाटकके ही थे और शिलाहार उनके मांडलिक थे। किन्तु राष्ट्रकूटोंके अथवा उत्तर, चालुक्योंके लेखोंमें दान लेनेवालोंके अथवा अन्य लोगोंके नामके अन्तमें 'पेय्य' उपपद नहीं मिलता। हमारी समझमें यह उलझन इस तरह सुलझ सकती है। पूर्व किनारे परके आन्ध्रदेशके समान पश्चिम किनारेपर भी ऊँचे वर्णके लोगोंको 'आर्य' कहनेकी रीति थी। 'पेय्य' उसी आर्यका प्राकृत स्वरूप है। कोंकणमें सामान्यतः अनार्य कोलियों (मच्छीमारों) की बस्ती अधिक है। ये लोग उन आर्यवंशीय लोगोंको, जिन्होंने इस देशको जीतकर उन्नत बनाया, प्रायः आर्य कहा करते थे। टॉलेमीके भूगोलमें इस देशको विशेषकर 'अर्याके' अर्थात् आर्योंका देश कहा है। घाटोंपर (पहाड़ोंपर) खेती करने वाले लोग अवश्य मिश्र आर्य अथवा मराठे हैं। इसलिए वहाँ

ऊँचे वर्णके लोगोंको आर्य कहनेका रिवाज प्रचलित नहीं हुआ। आन्ध्र देशमें अब भी नीच वर्णके लोग अनार्य ही हैं। कोंकणके समान वहाँ भी ऊँचे वर्गके लोगोंको आर्य कहनेकी पद्धति शुरू होगयी। इस विषयमें हम स्वयं अपना प्रमाण पेश कर सकते हैं। कोंकणके एक कोली (मच्छीमार) जातिके देहातीके मुँहसे ऊँचे वर्णके एक कार्यकर्ताको 'अज्जा' सम्बोधन करते हुए हमने सुना है। यह शब्द सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। पर उसी समय यह बात हमारे ध्यानमें आगयी कि उच्च वर्णके लोगोंको आर्य कहनेकी जो प्राचीन रीति यहाँ प्रचलित थी, उसीका यह अवशेष है। शिलाहारोंके लेखोंमें 'ऐय्य' पदान्त नाम केवल ब्राह्मणोंके ही नहीं होते। एक उदाहरण लीजिए। खारेपाटणके लेखमें महादेवैया प्रभु और श्री सोमनैया प्रभु, ऐसे दो नाम आये हैं। ये प्रभु वर्तमान कोंकणके कायस्थ प्रभुओंके पूर्वज प्रतीत होते हैं। अपरादित्यके ११८७ ई० के लेखमें (ज० रा० ए० सो० बंबई, जिल्द १२ पृष्ठ ३३३) एक अनन्त पैका उल्लेख है, वह भी प्रभु ही होगा। किन्तु वर्तमान कायस्थ प्रभुओंको यह बात मान्य नहीं है। ब्राह्मणोंके नामोंके अन्तमें कभी कभी भट्ट पद भी लगाया जाता था और क्षत्रियोंके नामके अतमें भट अथवा राउल पद आता है।

शिलाहारोंके कई लेखोंमें "हंजमन नगर पौरत्रिवर्ग प्रभृति" यह विचित्र शब्दसमूह आता है। इसका अर्थ अभी तक नहीं लगाया जा सका है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हँय्यमन या हञ्जमन एक नगरका नाम है। वह संभवतः दसवीं शताब्दीके अरब लेखकों द्वारा वर्णित और इस समयका सञ्जान गाँव है। पर दो लेखोंमें एक हञ्जमन नगरका ही नाम आनेका

कारण क्या है? और यह त्रिवर्ग क्या चीज है? शहरके, जिलेके और प्रान्तके अधिकारियोंका इसमें उल्लेख होना स्वाभाविक है, पर हञ्जम नगरके लोगोंको ही विशेषकर यह आदेश क्यों दिया जाता था? कुछ लोगोंका कहना है कि हञ्जमन प्राचीन राजधानी होगी, पर यह ठीक नहीं है। पुरानी राजधानी पुरी थी और बादको ठाना राजधानी हुई। दोनों स्थानोंके निवासियोंका उल्लेख लेखोंमें नहीं पाया जाता। इसका अर्थ एक ही प्रकारसे लगा सकते हैं, वह यह कि इस त्रिवर्गका आशय महत्वपूर्ण लोगोंसे था। तब भी उनके नाम लिखना आवश्यक था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बन्दरगाहमें बहुतसे परदेशी लोग रहते थे। दुर्भाग्यवश भारतके राजाओंने चीन और जापानकी तरह इस बातकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया कि हमारे देशमें बाहरके कौन कौन लोग आकर रहते हैं। उन्होंने चाहे जिस धर्मके मनुष्यको चाहे जहाँ रहनेके लिए स्वतंत्रता दे दी। यहाँ तक कि ये लोग अपने ही न्यायाधीशका अधिकार मानने तकका हक लेते थे। ये त्रिवर्ग, संभव है, सञ्जानमें काफी संख्यामें आकर रहते हों। पारसी, अरब और यहूदी या निग्रो ये तीनों व्यापारी थे और सारे देशमें उनका व्यापार चलता था। वे बार बार झगड़ा खड़ा करते थे। इसलिए उन्हें अपनी जातिमें विशेष अधिकार दिये जाते थे। यह बात अरब लेखकोंने भी लिखी है। हंजमन नगरके ये तीन जातियोंके लोग विशेष महत्वके थे, इसलिए हमारे विचारसे दानपत्रमें उनको भी आदेश रहता था।

अस्तु, भारतवर्षकी साधारण अवस्थाके सम्बन्धमें भी इस लेखमें कुछ बातें आयी हैं। किन्तु उनका उल्लेख हम सामान्य

निरीक्षणके समय करनेवाले हैं। कोंकणके बंदरगाहोंसे अन्य देशोंका व्यापार चलता था। संजान, सोपारा वसई, ठाना, कल्याण, चौल और चिपलूण आदि बंदरगाहोंके करसे राज्यको काफी धन प्राप्त होता था। ठानेका किला प्रथम शिलाहारोंने ही बनवाया होगा, क्योंकि उसकी नींव खोदते समय ईसवी सन् १०१७ का अनंतराजका एक ताम्रपट मिला था। एलिफंटाकी सुन्दर गुफाओंका वर्णन हम टिप्पणीमें दे रहे हैं।

ठानेके शिलाहारोंकी वंशावली।

(बम्बई गजेटियर जिल्द १ भाग २, कीलहार्नकी वंशावली एपि. इंडि. जिल्द ८ और पं० गौरी शंकर ओझा का टॉड) शासनकाल प्रायः अनुमान से लिखा गया है।

१ *अपराजित ले० ९९७ ईसवी* (ई. स. ९९० से १०१०)

२ वज्जड (ई. स. १०१०—१०१५)　　३ अरिकेसरी लेख १०१७, (ई.स. १०१५-१०२५)

४ छित्तराज ले. १०२६ (ई. स. १०२५-१०४५)　　५ नागराज (ई. स. १०४५-१०५५)　　६ मामुवानी राज ले १०६० (ई. स. १०५५-१०८५)

७ अनन्तदेव कोंकणचक्रवर्ति लेख ई. १०९४ (ई. स. १०८५-११२५)

८ अपरादित्य पहला लेख ई. ११३८ (ई. स. ११२५-११४५)

९ हरपाल लेख ई. ११४९, ५०, ५३ (ई. स. ११४५-११५५)

१० मल्लिकार्जुन ले. ई. ११५६ (ई स. ११५५-११७५)

११ अपरादित्य दूसरा, कोंकण चक्रवर्ति ले. ई. ११८४, ११८७ (ई. स. ११७५-१२००)

केशिदेव लेख ई. १२०३, १२३८

सोमेश्वर लेख ई. स. १२५९

१. टिप्पणी—हञ्जमन नगर।

उपर्युक्त वृत्तान्तमें हमने यह बात मान ली है कि कई विद्वानोंका जो यह मत है कि वर्त्तमान 'सञ्जान' नगर ही प्राचीन हंजमन होगा यह ठीक है। किन्तु छित्तराजके भाड़ुप ताम्रपटको पुनः प्रकाशित करते हुए डा० फ्लीटने एपि० इंडि० जिल्द १२ पृ० २७५ में इस संबंधमें संदेह प्रकट किया है। पारसी लोग कहते हैं कि हम ई० सन् ७६६ में पहले पहल संजानमें आये। ये ईरानसे भागकर पहले काठियावाड़के दीव द्वीपमें, और वहांसे संजान पहुँचे। उनका यह भी कथन है कि इस बस्तीका 'संजान' नाम हमींने दिया है। डा. फ्लीटका मत है कि मूलशब्द हंजमनका संजमन नाम नहीं हो सकता। और अरब यात्री जिस सिंदानका उल्लेख करते हैं वह कच्छके किनारे परका खबातके पासका दूसरा सिंदान है। हमारे मतानुसार ये कठिनाइयां ऐसी नहीं हैं जो दूर नहीं की जा सकतीं। फ्लीटने यह नहीं बतलाया कि शिलाहारोंके लेखोंमें जिस हजमनका उल्लेख है वह दूसरा कौनसा नगर हो सकता है। उनकी तो एक कल्पना है कि संजमन राजधानीके अतिरिक्त शिलाहारोंकी राज्यव्यवस्थाका एक दूसरा केन्द्र होगा (पृष्ठ ५९)। किन्तु यह कल्पना हञ्जमन नगरके वर्णनसे नहीं मिलती और त्रिवर्गका अर्थ ऊपरके तीन वर्ण नहीं मान सकते। क्योंकि दानशासन सारी जनताको बतलाना आवश्यक था। हम इस शब्दका अर्थ इस प्रकार करते हैं कि सञ्जानमें तीन परदेशी जातियोंके लोग रहते थे। उनका कारोबार स्वतन्त्र था। देशके लोगोंसे उनका लेन देन चलता रहता, इसलिए यह आवश्यक था कि किसी गाँवके इनाम या दान देनेकी खबर उन्हें भी कर दी जाय। क्योंकि ऐसे समहार पानेवालेके विशेष अधिकार होते थे। हञ्जमन नाम अवश्य कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित करता है। किन्तु हमारा विचार है कि पारसियोंने किसी पुराने गाँवके पास सँञ्जानको नये रूपसे बसाया। सञ्जान नगरका स्थान समुद्रके बिलकुल किनारेपर होते हुए भी सुरक्षित और एक अच्छा बन्दरगाह है। हमें मालूम हुआ है कि बन्दरगाहके निकट एक पुराने किलेका अवशेष अब भी

है । सञ्जान गाँवके चारों ओरकी दीवारके भी अवशेष बचे हैं । उस प्राचीन स्थानकी खोज होनी चाहिए । बादामीके चालुक्य सम्राटोंके समय पारसी लोग पहले पहल सञ्जानमें उतरे । उस समय कोंकणमें कई माण्डलिक राजा थे । बन्दरगाहके पास इन्हें नया गाँव बसानेके लिए जिस जाधराने आज्ञा दी वह भी इन्हीं माण्डलिकोंमेंसे एक होगा । इस स्थानकी बस्ती परदेशियोंकी हो गयी । वे लोग अपना शासन-प्रबन्ध स्वयम् ही कर लेते थे । और इनके अलग मैजिस्ट्रेट (न्यायाधीश) भी होते थे । संजान नाम भी पारसियोंका रखा होगा । किन्तु कोंकणके देहाती लोग उसका उच्चारण हंजमन या हय्यमन करते थे । यही उच्चारण शिलालेखोंमें भी लिखा जाना स्वाभाविक है । यहाँ यह प्रश्न ही नहीं आता कि अरबी लेखकोंने जिस सिंदानका उल्लेख किया है वह सिंदान इस संजानसे भिन्न है या वही है । संजान एक ईरानी गाँवका नाम है । और पारसी लोगोंने अपनी नयी बस्तीका भी वही नाम रखा । हंजमन उसका केवल स्थानिक उच्चारण होनेसे ही उसका शिलालेखोंमें लिखा जाना स्वाभाविक है ।

डॉ. मोदी कहते हैं कि उस बस्तीको हञ्जमन एक स्वतंत्र नाम ही दिया गया था । पर यह मानना आवश्यक नहीं है । सच्ची कठिनाई तो यह है कि इस नाममें 'म' कहाँसे आ गया ? त्रिवर्गका अर्थ पारसी, मुसलमान और हिन्दू हो सकता है । पारसियोंमें तो तीन वर्ण हैं ही नहीं । अंतमें अलबेरुनीने भौगोलिक वर्णनके साथ साथ महत्त्वपूर्ण स्थानोंके बीचका अन्तर भी दिया है । उसमें दिया हुआ सिंदान संजान ही मालूम होता है । उसने अपने वर्णनमें सिंदानको सोपाराके उत्तरमें बतलाया है । एक और अनुमान है कि हंजमन नगरके अर्थ हंजमन नामका नगर नहीं बल्कि हंजमनका (षष्ठी तत्पुरुष) अर्थात् अंजुमनका नगर हो सकता है ।

२. टिप्पणी—घारापुरीकी एलिफंटा गुफाएँ ।

बम्बईसे समुद्र मार्गसे कुछ मीलकी दूरीपर ठाना और पनवेलकी चौड़ी खाड़ीमें एक द्वीपमें ये सुन्दर गुफाएँ हैं जिनमें शिल्प कौशलके बड़े सुन्दर नमूने मिलते हैं । कई मूर्तियाँ भी हैं । मुख्य गुफाके मुहाने पर दो

बड़े बड़े हाथी खुदे हुए हैं। वे समुद्रमें बहुत दूरसे दिखाई देते हैं। इसलिए पोर्तुगीजोंने जब इन गुफाओंको पहले पहल देखा तो इनका नाम हाथीकी गुफाएँ (एलिफंटा) रखा। यहीं पर पुरी शहर भी था। पर वह आजकल उजड़ा हुआ है। पहले कोंकणकी यही राजधानी थी। पुरी ही छठी शताब्दी तककी बम्बई थी। क्योंकि शिलाहारोंके लेखोंमें "पुरी कोंकण चतुर्दश-शत" आदि शब्द हमेशा आते हैं। यह द्वीप एक बड़ी खाड़ीके मुहानेपर होनेके कारण यहाँ आस पासके किनारेसे व्यापार करनेवाले, तथा अरबोंके जहाज आसरेके लिए आते थे। और इसी कारण प्राचीन कालसे ही वह कोंकणकी राजधानी होनेके योग्य माना गया होगा। इस द्वीपमें बौद्ध कालीन इमारतोंके भी अवशेष हैं। किन्तु अधिकतर इमारतें हिन्दुओंकी ही हैं। ये आठवीं शताब्दीके लगभग राज्य करनेवाले शिलाहार राजाओंके समयकी हैं। भगवानलाल इन्द्रजीका कथन है कि इनकी बनावट और सुंदर मूर्तियां एलोराकी गुफाओंकी समकालीन मालूम होती हैं। अतः ये गुफाएँ भी संभवतः आठवींसे लेकर नौवीं शताब्दी तककी होंगी। राष्ट्रकूट राजा कृष्णने एलोराका मंदिर खुदवाया था। उनके मांडलिक शिलाहार राजाओंने राष्ट्रकूटोंका अनुकरण करनेके उद्देशसे अपनी राजधानीके निकट ये गुफाएँ बनवायी होंगी। पुरी ८ वीं और ९ वीं शताब्दीमें शिलाहारोंकी राजधानी थी। भागवतमें बलरामकी तीर्थयात्रामें आर्यद्वैपायनी (द्वीपकी देवी) का उल्लेख है। बहुत संभव है, वह उल्लेख इस गुफामें खुदी हुई पार्वतीकी देवीके संबंधमें हो। और इस उल्लेखसे भागवत पुराणका समय दसवीं शताब्दी सिद्ध होता है। एलिफंटाकी गुफाओंमें शिल्पकलाका सबसे उत्तम नमूना मुख्य गुफामें खुदी हुई त्रिमूर्ति है। यह अभी निश्चित नहीं हो पाया है कि ये गुफाएँ किस शिलाहार राजाने बनवायी थीं। जब इनकी राजधानी पुरीसे हटकर ठाना चली गयी तब पुरी नगर उजड़ गया। ठाना खाड़ीके अन्दर है और वहांका बंदरगाह अधिक सुरक्षित है। ठानेके शिलाहारोंकी कथा पुरी तथा इन गुफाओंके वर्णनके बिना पूरी नहीं हो सकती थी, इसीसे हमने यह टिप्पणी लिखना आवश्यक समझा।

बारहवाँ प्रकरण।

कल्याणके उत्तर-चालुक्य।

इस काल विभागमें महाराष्ट्रपर चालुक्योंका अधिकार रहा। पूर्व चालुक्योंके तथा मालखेड़के राष्ट्रकूटोंके समान ये भी अत्यन्त बलवान् थे। पहले चालुक्य और राष्ट्रकूट मराठा क्षत्रिय थे, विशेषतः राष्ट्रकूट तो दक्षिण के आर्यवंशके अत्यन्त प्राचीन निवासी थे। इन प्राचीन राष्ट्रकूटोंको जीतकर पूर्व चालुक्योंने अपना राज्य स्थापित किया था परन्तु राष्ट्रकूटोंने उन्हें हराकर फिर अपना राज्य चलाया। बादमें उत्तर चालुक्योंने पुनः राष्ट्रकूटोंको हराकर अपनी सत्ता जमायी। उन्होंने अपने येऊरके शिलालेखमें पूर्व चालुक्योंसे लेकर राष्ट्रकूटोंके अन्तिम राजा कक्कलको जीतनेवाले तैलप तककी पूरी वंशावली दी है। उत्तर चालुक्योंका पूर्व चालुक्योंसे सम्बन्ध है, इस विषयमें कई लोग सन्देह प्रकट करते हैं। किन्तु उत्तर चालुक्य अपने लेखोंमें पूर्व चालुक्योंसे अपना जो सम्बन्ध बतलाते हैं उसे न माननेके लिए हमारे पास कोई कारण नहीं। वे पूर्व चालुक्योंके ही विरुद धारण करते हैं और अपना गोत्र भी मानव्य ही बतलाते हैं (एपि इंडि० जिल्द ६ पृ० २०६)। वे चन्द्रवंशीय क्षत्रिय थे और उन्होंने अयोध्यामें ५६ पीढ़ियों तक राज्य किया, यह कल्पना उन्होंने शायद वेङ्गी-के प्राच्य चालुक्योंसे ली। हम प्रथम भागमें पहले ही कह चुके हैं कि पूर्व चालुक्योंके किसी भी लेखमें ये बातें नहीं मिलतीं, तथापि इनके मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं होगा। इस आधारपर निश्चित होता है कि वे ई० सन् ४०० के लगभग दक्षिणमें आये। उनका वंशज तैलप, विक्रमादित्य और चेदीके राजा

लक्ष्मणकी कन्या बोधादेवीका पुत्र था। मालूम होता है कि त्रिपुरके हैहय, दक्षिणके चालुक्य और राष्ट्रकूट राजाओंको अपनी कन्याएँ देते थे। तैलप आरंभमें सम्भवतः अन्तिम राष्ट्रकूट राजा कक्कलका एक बलवान् माण्डलिक था। उसका राज्य कहाँ था, यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। सम्भव है, वह बादामीके आस पास कहीं रहा हो। किन्तु इन चालुक्योंके लेखोंमें कहीं भी उनकी प्रारंभिक राजधानीका नाम नहीं मिलता। तैलपने राष्ट्रकूटोंकी सत्ताके ह्रासका अवसर पाकर कक्कलको हराया और अपना चालुक्य राज्य दक्षिणमें स्थापित किया। एक लेखसे पता चलता है कि उसने कक्कलके दो सेनापतियोंको मारा था। इन सेनापतियोंपर कक्कलका बड़ा विश्वास था। वे कक्कलके अत्याचारोंमें भी सहायक थे (येऊर लेख इं० एँ० जिल्द ८ पृ० १७)। तैलपने चोल, आन्ध्र, उत्कल तथा दक्षिणके अन्य मांडलिक राजाओंको जीतकर राज्य स्थापित किया और कुंतल देशमें न्यायपूर्वक राज्य किया। इस वंशके लेखोंमें *'कुन्तल'का नाम स्पष्ट

---

*कई लेखोंमें चालुक्योंके देशको 'कुन्तल' कहा है। कुन्तल शब्दसे वर्तमान दक्षिण मराठा प्रदेश समझना चाहिए। इसके एक हिस्सेकी भाषा कानड़ी है। भाग २ प्रकरण १३ में पुलकेशीके तीन महाराष्ट्रोंका—विदर्भ, मध्य महाराष्ट्र और कुन्तलका—उल्लेख है। वे सब मिलकर बृहत् महाराष्ट्र बनते हैं। इन तीनों देशोंको उत्तर, मध्य और दक्षिण महाराष्ट्र कह सकते हैं। पहला ताप्ती और वर्धा नदीके बीचका प्रदेश, दूसरा गोदावरीका प्रदेश और तीसरा कृष्णानदीके किनारेका प्रदेश। कुन्तलदेशका विशेष चिन्ह कृष्णानदी बतलायी गयी है (इं० ए० ८ पृ० १८। यहाँपर महाराष्ट्र और कर्नाटकका मिलान होता है। तुंगभद्राके उसपार मुख्य कर्नाटक है। वहाँ इस समय गंग और बादको होयसल राजा राज्य करते थे।

रूपसे आता है (इं० एं० जिल्द ८ पृ० १८)। और 'इसने लोगों-को वडा सुख दिया' इन शब्दोंसे प्रतीत होता है कि राष्ट्र-कूट राजाओंके समय लोगोंपर वहुत अत्याचार हुआ था।

तैलपने ९७३ से ९९७ ई० तक २४ वर्ष राज्य किया। मुंजसे उसका जो युद्ध हुआ था उसका वर्णन हम दूसरे भागमें कर चुके हैं। गुजरातके इतिहासकारोंका कथन है कि इस युद्धके अंतमें उसने बड़ी बुरी तरहसे मुंजको मार डाला। पर इस संवंधमें हम पहले ही सदेह प्रकट कर चुके हैं। हमारा मत है कि मुंज लडाईमें ही मारा गया होगा। किन्तु येऊरके लेख और गिरजके लेखमें लिखा हे कि तैलपने एक प्रसिद्ध राजाको जो कवि भी था कैद किया था। गिरजका लेख १०२४ ई० का है और करीव करीव इस घटनाके समयका है। इससे अनुमान होता है कि लड़ाईमें हारनेपर तैलपने मुंजको कैद कर लिया होगा। किन्तु यह असम्भव प्रतीत होता है कि उसने मुंजको पिंजड़ेमें वन्द करके रखा, उससे दर दर भीख मँगवायी और अन्तमें उसका वध किया। हिन्दू राजा इतने क्रूर नहीं होते। फिर इस लेखमें भी इस वातका उल्लेख नहीं है (इं० एं० जिल्द १३ पृ० १७)। इस लेखके कई श्लोकोंका जो अनुवाद किया गया है उससे हमारा मतभेद है। हम उनका अर्थ दूसरा ही समझते हैं। इस लेखमें कहा गया है कि एक हूण राजाको, तथा मारवाड़, चेदी, और उत्कलके राजाओंको भी तैलपने हराया। यह अत्युक्ति भले ही हो किन्तु असंभव नहीं है। क्योंकि इस समय तैलप राष्ट्रकूटोंकी विस्तृत राजशक्तिका स्वामी वना था और राष्ट्रकूटोंने कनौजतक आक्रमण किये थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि तैलपका सेना-पति भारप लाट देशपर राज्य करता था। तैलपके समयके

लगभग मूलराज सोलंकीने गुजरातपर अधिकार जमाकर पाटणमें राज्य करना शुरू किया था। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि भारपने उसका विरोध करके कई युद्ध भी किये।

तैलपको अपनी स्त्री राष्ट्रकूट कन्या जाकब्बासे सत्याश्रय और देववर्मन् नामके दो पुत्र हुए थे। तैलपके बाद सत्याश्रय राज्यभिषिक्त हुआ। इसके विषयमें न तो येऊरके लेखमें और न मिरजके लेखमें विशेष वर्णन मिलता है। पर इसके शासनमें दक्षिण कोंकणके किसी मांडलिक शिलाहार राजाने खारेपाटणका दानलेख लिखा था (बॉ० बॉ० रा० ए० सो० भाग १)। इस लेखके विषयमें दो तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं। इसका लेखक शिलाहार राजा रट्टराज अपने सम्राट्का नाम स्पष्ट रूपसे सत्याश्रय लिखता है। पर उत्तर कोंकणके शिलाहार राजाओंके लेखोंमें किसी सम्राट्का नाम नहीं पाया जाता। उनके पूर्व कालीन लेखोंमें राष्ट्रकूट सम्राटोंके नाम बराबर पाये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि उत्तर कोंकणके शिलाहार उत्तर चालुक्योंके अधीन नहीं थे। दूसरी बात यह कि उत्तर शिलाहारोंके समान इनके लेखमें मंत्रियोंके नाम नहीं हैं। तीसरे, दान लेनेवाले ब्राह्मणका नाम 'ऐय्य' पदान्त नहीं, आर्य' पदान्त है। इससे मालूम होता है कि कर्नाटकमें, कमसे कम संस्कृत लेखोंमें, ऐय्यके स्थानपर 'आर्य' पदका ही प्रयोग होता था।

सत्याश्रयने ई० सन् ९९७ से १००८ तक राज्य किया। निपुत्रीक होनेके कारण उसका भतीजा देववर्मन् या यशोवर्मन् और भगवतीका पुत्र विक्रमादित्य गद्दीपर बैठा। इसका राज्याभिषेकके वर्षका ही खुदा हुआ एक लेख प्राप्त हुआ है (ज० रा० ए० सो० बंबई ४ पृ० ४)। इसका राज्य थोड़े ही

दिनोंतक रहा। इसके बाद इसका भाई जयसिंह गद्दीपर बैठा। जयसिंहका ई० सन् १०१६ का एक लेख प्राप्त हुआ है (इं० ए जिल्द ५ पृष्ठ १७)। उसके अनुसार "भोज कमलके लिए वह सूर्य हुआ और उसने मालवाके संयुक्त राजाओंको हराया।" मुंजकी मृत्युका दक्षिणके चालुक्योंसे बदला लेनेका भोज का प्रयत्न असफल हुआ। गुजरातके इतिहासकारोंने जो यह वर्णन किया है कि भोजने तैलपको मुंजका बदला लेनेके उद्देशसे मार डाला, वह बिलकुल असत्य है (बम्बई गॅजेटियरमें यही लिखा है), क्योंकि भोज तैलपके बाद गद्दीपर बैठा। पर गॅजेटियरका भी यह कथन ठीक नहीं मालूम होता कि भोजने यह बदला तैलपके उत्तराधिकारी विक्रमादित्यसे लिया क्योंकि यद्यपि इसका शासनकाल (ई० सन् १००८ से १०१८) भोजके शासनकालके समकालीन है तथापि इस बातका उल्लेख न तो दक्षिणके चालुक्योंके किसी लेखमें है और न मालवाके परमारोंके लेखमें है। अत यह बदला लेनेकी कथा काल्पनिक ही प्रतीत होती है। चन्दने भी इसी प्रकार पृथ्वीराजके शहाबुद्दीन गोरीसे बदला लेनेकी एक काल्पनिक कथा अपने पृथ्वीराज रासोमें लिखी है। सभव है भोजको किसी किसी लडाईमें विजय प्राप्त हुई हो, किन्तु अतमें उपर्युक्त वर्णनके अनुसार जयसिंहने ही भोजको हराया।

तथापि इस समय दक्षिणकी ओर चोलराजा राजराजका दिन प्रतिदिन उत्कर्ष हो रहा था। उसके आक्रमणोंसे विक्रमादित्यको बडा कष्ट हुआ। उसने नौ लाख सेना लेकर समस्त महाराष्ट्रको उजाड दिया। उसकी चढाइयोंके वर्णनमें तो स्त्रियों और बच्चोंको भी मार डालनेका उल्लेख है। इसमें

लेखकोंने अवश्य ही अत्युक्ति की है पर इसमें कोई संदेह नहीं कि उसने विक्रमादित्यका पराजय किया। चालुक्योंका और चोलोंका अथवा महाराष्ट्र और मद्रासका परम्परागत झगड़ा बरसोंतक जारी था। और एक बार यदि सत्याश्रयको या विक्रमादित्यको राजराजने हराया तो दूसरी बार जयसिंहने राजराजके पुत्र चोल राजा राजेन्द्रको हराया। मिरजके लेखमें यह स्पष्ट लिखा है कि दक्षिणमें चोलोंको तथा पश्चिममें सप्त कोंकणोंको जीतकर जयसिंहने उत्तर दिशाकी ओर दिग्विजयके लिए रवाना होते समय अपने रास्तेमें कोल्हापुरमें यह दान दिया। सप्तकोंकण कौनसे थे, यह हम पहले बता चुके हैं। इनके सात भिन्न भिन्न राजा नहीं थे। जयसिंहने इनमेंसे उत्तर कोंकण संभवतः नहीं जीता था। यह दान शालिवाहन शक ९४६ अर्थात् १०२४ ईसवीमें दिया गया था। इसके बाद जयसिंह (जगदेकमल्ल) ने मालवाके भोजको भी पराजित कर कई वर्षोंतक राज्य किया। श्रीगौरीशंकर ओझाका अनुमान है कि भोजके साथ जो युद्ध हुआ था उसीमें जयसिंहकी मृत्यु हुई, किन्तु हम समझते हैं कि यह बात इसके पहलेके राजा विक्रमादित्यके सम्बन्धमें कही जा सकती है, जयसिंहके सम्बन्धमें नहीं। इसका कारण यह है कि विक्रमादित्यके समयमें लिखे गये येऊरके लेखमें जयसिंहकी इस तरह मृत्यु होनेकी बातका उल्लेख नहीं है।

जयसिंहकी मृत्यु १०४० ई० में हुई होगी। उसके बाद उसका पुत्र सोमेश्वर गद्दीपर बैठा। यह अपने सभी पूर्वजोंसे अधिक प्रतापी राजा हुआ। येऊरके शिलालेखोंमें इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—"मालवाका राजा पराजित होकर अपने आश्रयका स्थान ढूँढ़ते हुए जंगल जंगल फिर

रहा है, चोलोंका राजा समुद्र किनारेके तालवनमें जा बैठा है, और कान्यकुब्जका राजा, सोमेश्वरके प्रतापके भयसे व्याकुल होकर हिमालयकी एक गुफामें छिप गया है।" मालवाका यह राजा संभवतः भोज ही रहा होगा, क्योंकि भोजके बादके राजाकी तो सोमेश्वरने स्वयं सहायता की थी। कान्यकुब्जका राजा कदाचित् प्रतिहारोंका दुर्बल वंशधर राज्यपाल था जिसे महमूदने पराजित किया था। चोलोंका राजा बहुत करके स्वयं राजेन्द्र ही था। विल्हणके विक्रमांकदेवचरितमें इन घटनाओंका विशद वर्णन किया गया है। विल्हण सोमेश्वरके पुत्र विक्रमांकका राजकवि था। इसलिए उसका वर्णन काव्यमय होते हुए भी प्रायः समकालीन इतिहास सा है। उसमें तो यहां तक लिखा है कि सोमेश्वरने भोजको हराकर धारा नगरीपर अधिकार कर लिया और भोज आश्रयके लिए वनवन घूमने लगा। उसमें यह भी वर्णन है कि उसने चेदीके कर्णको हराकर युद्धमें मार डाला (विक्रमांकदेवचरित श्लोक १०२-१०३ सर्ग पहला)। पर यह संभव नहीं दिखाई देता। विजयके लिए आक्रमण करते करते वह कन्नौजतक पहुँचा। कन्नौजके प्रतिहार राजाने संभवतः हिमालयमें शरण ली। येऊरके लेखमें चोलराजाकी मृत्युके विषयमें कोई वर्णन नहीं है। तथापि ऐसा कहा जाता है कि ई० सन् १०५४ में राजेन्द्र चोलसे सोमेश्वरका कोप्पममें युद्ध हुआ था और उसमें राजेन्द्रकी मृत्यु हुई। इस बातका उल्लेख येऊरके लेखमें होना चाहिये था। किन्तु उसमें केवल राजेन्द्रके समुद्रकी ओर भागनेका वर्णन है। यह लेख विक्रमांकके समयका होनेपर भी इसमें तुंगभद्राकी उस लड़ाईका कोई भी उल्लेख नहीं जो कोप्पममें हुई थी और जिसमें राजेन्द्र मारा गया था।

कहा जाता है कि सोमेश्वरने कल्याण नामका नया नगर बसाकर उसे राजधानी बनाया। यह अभीतक स्पष्ट रूपसे ज्ञात नहीं हुआ कि उत्तर चालुक्योंकी राजधानी अबतक कहाँ थी। संभव है वह मलखेडमें रही हो जहां पहले राष्ट्रकूटोंका केन्द्र था। या उनके पूर्वके चालुक्योंकी,अर्थात् अपने पूर्वजोंकी, राजधानी बादामीको ही इन्होंने राजधानी बना लिया हो। विल्हणने स्पष्ट लिखा है कि सोमेश्वरने कल्याण नगर (वर्तमान निजाम राज्यमें वेदरके निकट) बसाया। कुलपरंपरागत शत्रु चोलोंके अधिक निकट होनेके कारण ही शायद यह राजधानी बनायी गयी। भारतवर्षके अनेक प्रसिद्ध राजाओंके समान सोमेश्वर भी कवियों तथा विद्वानोंका भक्त था (येऊर का लेख और बिल्हण १ और ४)। उसने भी धंग आदि अन्य विख्यात हिन्दू राजाओंके समान बुखारसे पीडित होनेपर शकरका स्तोत्र गान करते हुए ई० सन् १०६८ में चैत्र वदी अष्टमी रविवारके दिन तुंगभद्रा नदीमें जलसमाधि ले ली।

सोमेश्वरके जीवनकालमें ही उसका दूसरा पुत्र विक्रमादित्य अपनी बुद्धिमत्ता और वीरताके कारण प्रसिद्ध हो गया था। सोमेश्वरके युद्धोंमें प्रायः विक्रमादित्य ही सेनापति होता था। विल्हणने अपने काव्यमें सोमेश्वर द्वारा कांचीके लिए जानेका वर्णन किया है। उसका सरल अर्थ तो यही होता है कि विक्रमने कांचीको जीतकर लूटा, क्योंकि यह संभव नहीं कि पिताने एक बार और पुत्रने दूसरी बार कांचीको लिया हो। बिल्हणका तो कथन है कि पिताकी जीवितावस्थामें ही विक्रमने चारों दिशाओंको जीत लिया था। वह लिखता है कि विक्रमने चेर, सिंहल, गंगैकोंड, चोल, वेंगी, वंग और आसामको भी जीत लिया था। बहुत संभव है,

बिल्हणने अपने आश्रयदाताके पराक्रमका वर्णन करते हुए यहाँ अत्युक्तिसे काम लिया हो। पर इसमें संदेह नहीं हो सकता कि उसने संपूर्ण दक्षिण भारत जीत लिया था। इस विजयमें ही उसे पिताकी मृत्युका समाचार मिला और वह तुरंत राजधानीको लौट आया। वहाँपर उसका बड़ा भाई सोमेश्वर गद्दीपर बैठा था। उसको विक्रमने राजा मानकर प्रणाम किया। कुछ रोज दोनों भाइयोंमें प्रेमका व्यवहार रहा, पर अंतमें, जैसा कि हमेशा होता आया है, कुछ तनातनी हुई और विक्रमादित्य राजधानी छोड़ कर कांचीकी ओर चला गया। बड़े भाईने उसपर अपनी सेना भेजी, उसे विक्रमादित्यने परास्त कर दिया। वह वनवासीमें कुछ रोज रहा और वहाँसे फिर गोवाकी ओर चल दिया। वहाँ जयकेशीके कदम्ब राजा विक्रमकी अधीनता स्वीकार की और उसे मूल्यवान् खिराज दिया। बादमें विक्रमादित्यने इसी जयकेशीके पोतेसे अपनी कन्याका विवाह किया (ज० रा० ए० सो० बम्बई जिल्द ६ पृष्ठ २४२,२६८,२७६)। इसके बाद वह अलूप और चेरको जीतकर चोलोंकी ओर बढ़ा। चोल राजानेभी उससे मित्रता कर अपनी लड़कीका विवाह उससे कर दिया। इस प्रकार अपनी शक्तिको संघटित कर विक्रमादित्य तुङ्गभद्राकी ओर अग्रसर हुआ।

किन्तु शीघ्र ही कई ऐसी घटनाएँ हुईं जिनके कारण कुंतलदेशका मुकुट विक्रमके सिरपर रखा गया। इसी समय चोलराजाकी मृत्यु हुई। उसका पुत्र, अर्थात् विक्रमका साला अन्य वारिसोंके विरोधके कारण गद्दीपर न बैठ सका। विक्रमने कांचीमें जाकर अपने सालेको गद्दीपर बैठाया। फिर वह वापस आया। पर चोलोंके एक प्रबल मांडलिकने चोल राजाको पुनः राज्यच्युत किया और अन्य विद्रोही

सरदारोंको साथ लेकर वह विक्रमपर चढ़ आया। उसने विक्रमके भाई सोमेश्वरको भी पश्चिमकी ओरसे विक्रमपर चढ़ाई करनेके लिए बुलाया। विक्रम दो सेनाओंके बीच फँस गया। पर उसने एकके बाद दूसरीसे लड़कर दोनोंको बुरी तरह हराया यहाँ तक कि सोमेश्वर कैद हो गया। विक्रमने सीधे कल्याणपर आक्रमण करके सोमेश्वरको राज्य-च्युत कर दिया और राजमुकुट स्वयं धारण कर लिया। यह घटना ९९८ शक (ई० सन् १०७६) की है। अर्थात् दूसरे सोमेश्वरने १०६९ से १०७६ तक केवल सात वर्ष राज्य किया।

उत्तर चालुक्योंमें विक्रम सबसे अधिक प्रतापी और शक्तिशाली राजा हुआ। उसका राज्य भी दीर्घ कालतक रहा। ई० सन् १०७६ से ११२६ तक अर्थात् ५० वर्ष उसने राज्य किया। उसने 'त्रिभुवनमल्ल' का पद धारण किया था। जैसे पूर्व चालुक्य 'वल्लभ' पद एवं राष्ट्रकूट राजा 'वर्ष' पद धारण करते थे, वैसे ही उत्तर चालुक्य 'मल्ल' पदका प्रयोग करते थे। पहले राजा तैलपने 'आहवमल्ल' नाम ग्रहण किया था। विक्रमके पिता सोमेश्वरने भी उसी विरुदको धारण किया। गुजरातका चालुक्य राजा जयसिंह विक्रमका समकालीन था। जयसिंहके समान इसने भी अपना नया संवत् शुरू किया। यह एक विचित्र संयोग है कि ये दोनों समकालीन राजा बड़े पराक्रमी थे और दोनोंने अपना अपना नया संवत् शुरू किया। पर कुछ समयके बाद दोनों संवत् नष्ट हो गये (इं० एं० जिल्द १३ पृ० १८९ में फ्लीटका लेख)।

बिल्हणने अपने विक्रमांकदेवचरितमें लिखा है कि कन्हाडके शिलाहार राजाकी कन्या चन्द्रलेखाने विक्रमको स्वयंवरमें वरा था। किंतु यह वर्णन ऐतिहासिक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि

इस समय स्वयंवरकी प्रथा बिलकुल बन्द हो गयी थी। फिर जहाँ दक्षिणका सम्राट् विक्रम स्वयं उपस्थित हो, वहाँ कन्याका दूसरे किसी राजाको वरना एक तरहसे असम्भव ही था, क्योंकि और राजा उसके मांडलिक थे। यह राजकन्या बहुत ही सुन्दर थी। कल्हणने लिखा है कि काश्मीरके राजा हर्षने भी इसके सौन्दर्यकी कीर्ति सुनकर प्रतिज्ञा की थी कि मैं कर्नाटकको जीतकर चन्द्रलेखाका हरण करूँगा।* हमारे विचारमें यह भी एक कवि-कल्पना मात्र है। तत्कालीन राजाओंके समान विक्रमकी भी कई रानियाँ थीं। उनको खर्चेके लिए अलग अलग गाँव दिये जाते थे।

विक्रमने अपने छोटे भाई जयसिंहको वनवासीका प्रान्ताधिकारी नियुक्त किया था। उसने विद्रोह करके एक बड़ी सेनाके साथ विक्रमपर आक्रमण किया। अन्तमें हारनेपर वह कैद कर लिया गया। बिल्हण लिखता है कि विक्रमने अन्तमें उसे क्षमा कर दिया।

विक्रमके दीर्घ शासनकालमें सर्वत्र शांति रही। हां, एक बार होयसलके राजा विष्णुवर्धनके नेतृत्वमें और गोवाके कदम्ब राजाकी सहायतासे दक्षिणके कई राजाओंने एक संघ बनाकर आक्रमण किया और कृष्णानदका प्रदेश लूटा (इ० एं० जिल्द २ पृ० ३०० और ज० रा० ए० सो० बम्बई जिल्द ११ पृष्ठ २४४)। विक्रमने शिंदे राजकुलके आचगी नामक एक सरदारको इनका सामना करनेके लिए भेजा और उसने सबको मार भगाया। स्वयं विक्रमादित्य एक बार चोल राजासे लड़ा

* कर्णाटभर्तु पर्माडेः सुन्दरीं चंद्लाभिधाम्। आलेख्यलिखितां वीक्ष्य सोभूत्पुष्पायुधाहत ॥ स विटोद्गेयिनो वीतत्रपश्चक्रे सभांतरे। प्रतिज्ञां चन्द्लावाप्त्यै पर्माडेश्च विलोडने ॥ २ ॥ (राजतरंगिणी ७-११२४)

और इस युद्धमें भी वह विजयी हुआ। ऐसा वर्णन पाया जाता है कि आचगीने गुजरातके और मालवाके राजाओंको भी जीत लिया था। किन्तु संभवतः ये युद्ध महत्त्वपूर्ण नहीं थे।

अस्तु, विक्रमका शासनकाल दक्षिणकी जनताके लिए शान्ति और सुखका काल कहा जा सकता है। इसने भी विक्रमपुर नामक एक नगर बसाया। इसके समय साहित्यकी बड़ी उन्नति हुई। इसके मंत्री विज्ञानेश्वरने इसीके जमानेमें याज्ञवल्क्य स्मृतिपर अपनी मिताक्षरा नामकी विख्यात टीका लिखी, इस बातसे सिद्ध होगा कि इसके राज्यमें सुव्यवस्थित कानून थे। अब भी बंगालको छोड़ कर समस्त भारतवर्षमें यह टीका हिन्दूधर्मशास्त्रपर श्रेष्ठ पुस्तक मानी जाती है और पश्चिमके न्याय पंडित तथा ब्रिटिश अदालतोंमें भी यह मान्य समझी जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय भारतवर्षके सब बड़े राज्योंमें हिन्दू धर्मका गहन अध्ययन हो रहा था। क्योंकि मिताक्षराके अतिरिक्त स्वयम् ठानेके शिलाहार राजा अपरादित्यकी याज्ञवल्क्यपर लिखी हुई अपरार्क नामक विद्वत्तापूर्ण टीका इसके थोड़े ही दिन बादकी है। उसी प्रकार कन्नौजमें गोविन्दचन्द्रके आश्रयमें लक्ष्मीधरने व्यवहार कल्पतरु नामक व्यावहारिक नियमोंके संबंधका ग्रन्थ भी लिखा था। अस्तु, मिताक्षराके तीनों भागोंके अंतिम तीन श्लोकोंमें तीन बातोंकी प्रशंसा की गयी है—अत्यन्त सुंदर कल्याण नगर, अत्यन्त विद्वान् पंडित विज्ञानेश्वर और हिमालयसे रामेश्वर तथा पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्रतक राज्य करनेवाले अत्यन्त प्रतापी राजा विक्रमकी।

विक्रमके बाद उसका पुत्र तीसरा सोमेश्वर सिंहासनपर बैठा। वह अपने पिताके समान ही पराक्रमी था और विद्वत्ता

में तो उससे भी बढकर था। उसका बनाया मानसोल्लास अथवा अभिलषितार्थ चिंतामणि सब शास्त्रोंका आधारस्थान है। राजनीति, युद्धशास्त्र, अश्वशास्त्र गजशास्त्र, काव्य, तर्क, दान, ज्योतिष, किंबहुना मनुष्यने अपने सुखोंके लिए जितने शास्त्र बनाये हैं, वे सब इस ग्रंथमें विद्यमान है। ज्योतिषशास्त्रमें तो उसने शक १०५१ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवारके ग्रहगणितके लिए ध्रुवांक भी दिये हैं। इससे ज्ञात होता है कि उसने यह ग्रन्थ अपने राज्यके पाँचवें वर्षमें लिखा। एक दीर्घ शासनके बाद गद्दीपर बैठनेके कारण उसकी आयु अधिक हो गयी थी। उसका शासन ग्यारह साल तक रहा।

सोमेश्वरके बाद ईसवी सन् ११३८ में उसका पुत्र जगदेकमल्ल गद्दीपर बैठा। उसके बाद ११५० ई० में उसका भाई दूसरा तैलप राजा हुआ। इसके समयमें चालुक्योंकी शक्ति बहुत घट गयी और तैलपके सेनापति विज्जल नामक कलचूरी क्षत्रियने विद्रोह खडा कर दिया। कोल्हापुरके मांडलिक राजा विजयार्कने और तेलंगणके स्वतंत्र राजा काकतीयने भी विज्जलकी सहायता की। तैलप कैद हुआ पर बादको मुक्त कर दिया गया। कुछ साल कल्याणमें एक प्रकारके बन्धनमें रहनेपर वह वहाँसे भाग खडा हुआ और उसने जिला धारवाडमें अण्णेगिरिमें एक छोटासा मांडलिक राज्य स्थापित किया। इधर विज्जलने चालुक्योंका राज्य लेकर कल्याणमें अपना राज्य कायम किया। ईसवी सन् ११६२ में विज्जलने तैलपपर पुन आक्रमण किया और उसे दक्षिण वनवासीकी ओर भगा कर अपनी स्वाधीनताकी घोषणा कर दी। इन कलचूरी राजाओं द्वारा छीने गये राज्यका इतिहास हम आगे दे रहे हैं।

इसी समय कल्याणमें लिंगायतोंका पंथ उत्पन्न हुआ और विज्जलकी हत्या हुई जिसके कारण कलचूरी सत्ता घटने लगी। तब दूसरे तैलपके पुत्र सोमेश्वरने पुनः चालुक्य राज्यकी स्थापना करके ई० सन् ११८२ में अण्णेगिरिको अपनी राजधानी बनाया। इस कार्य्यमें ब्रह्मा नामका एक मांडलिक उसका सहायक था (ई० ए० जिल्द २)। परन्तु इस समयके देवगिरिके तथा द्वार समुद्रके यादव उन्नति कर रहे थे। उन्होंने ब्रह्मापर चढ़ाई की और होयसल वंशके वीरबल्लालने ब्रह्माको हरा दिया। यादवोंने उत्तर चालुक्योंकी सत्ताका अंत किया। शक ११११ अर्थात् ई० सन् ११८९ के बाद सोमेश्वरका कहीं पता नहीं लगता।

उस समय चालुक्योंकी छोटी छोटी शाखाएँ महाराष्ट्रमें जरूर भिन्न भिन्न स्थानोंपर राज्य कर रही होंगी। एक शाखा निःसन्देह कोंकणमें थी। कल्याणके चालुक्य वंशकी एक शाखाके राजाका एक लेख प्राप्त हुआ है। रत्नागिरि जिलेमें चालके नामक मराठे कई स्थानोंमें हैं। कर्हाडका डुबल कुल चालुक्य वंशीय होनेपर भी इन चालुक्योंमेंसे नहीं है। बल्कि वे पहले कहे हुए (भाग २) भारद्वाज गोत्रीय उत्तर चालुक्योंमें से हैं।

अस्तु, इन उत्तरी चालुक्योंके इतने लेख मिले हैं और वे इतने पहले मिले हैं कि कई वर्ष पूर्व ही विद्वानोंने इनका इतिहास लिख रखा है। मद्रासकी सिविल सर्विसके अकेले वॉल्टर इलियटने ही लंडनकी रॉयल एशियाटिक सोसायटीके सामने ईसवी सन् १८३५ में दक्षिण भारतके इन राजाओंके ५९६ शिलालेखोंकी नकलें पेश की थीं (ज० रा० ए० सो० ४)। इन सब साधनोंके आधारपर डॉ० भांडारकर और डॉ०

फ्लीटने चालुक्योंका इतिहास लिखा है। उपर्युक्त वृत्तान्त हमने डॉ० भांडारकरके 'दक्षिणके प्राचीन इतिहास'के आधार पर ही दिया है। और कहीं कहीं नयी उपलब्ध बातें जोड दी हैं तथा अपने अनुमान और विचार भी ग्रथित कर दिये हैं। कीलहार्नने कल्याणके उत्तर चालुक्योंके नामपर दक्षिणके शिलालेखोंकी फेहरिस्तमें जो अनेक लेख दिये हैं उन सबको पढना और जाँचना तो प्राय असभव है, क्योंकि उनकी संख्या भी १४० से लेकर ३१५ तक अर्थात् १७५ तक होती है। किन्तु उत्तरी चालुक्योंके इतिहासको विद्वानोंने भलीभाँति निश्चित कर लिया है, इसलिए हमारा ख्याल है कि उसमें कोई सदेह नहीं रह गया। हां, यह प्रश्न जरूर उठ सकता है कि वे मराठे थे या कर्नाटकी ? किन्तु हमारे मतके अनुसार यह भेद केवल ऊपरी है।

इन राजाओंने ई० सन् ९७३ से ११८९ तक अर्थात् २१६ सालतक राज्य किया। वशावलीके अनुसार ये कुल ११ राजा थे। प्रत्येक राजाका औसत शासनकाल वही बीस वर्षका होता है। इन राजाओंके समयमें दक्षिणमें बल्कि समस्त भारतवर्षमें जो सामाजिक तथा धार्मिक परिवर्तन हुए, अर्थात् बौद्ध धर्मका अन्त, जैन धर्मका उत्कर्ष तथा ह्रास आदि, उनके विषयमें इस पुस्तकके अन्तमें देशकी सामान्य परिस्थितिपर विचार करते हुए हम विस्तारपूर्वक लिखेंगे।

कल्याणके उत्तर चालुक्योंकी वंशावली ।

(बम्बई गजे० भाण्डारकर तथा कीलहार्न वंशावली एपि इंडि ६)

(१) तैलप ई० सं० ९७३-९९७

(विरुद नूरमाडि, आहवमल्ल, वा रणराग भीम) लें० शक ८९५,९०२,४,११,१९

(२) सत्याश्रय (ई० स० ९९७-१००८) लेख शक ९२४, ३० — दशवर्मन् (यशोवर्मन)

(३) विक्रमादित्य त्रिभुवनमल्ल (ई०स० १००९-१०१८) ले० शक ९३० — (४) जयसिंह जगदेकमल्ल (ई० स० १०१८-१०४०) ले०शक ९४०, ४१,४४, ४६,५०,५५,५७,६२

(५) सोमेश्वर पहिला आहवमल्ल (ई० स० १०४०-१०६८)

(६) सोमेश्वर दूसरा (ई०स० १०६८-१०७६) (भुवनैकमल्ल) ले० श० ९९३,९६,९७ — (७) विक्रमादित्य दूसरा* (त्रिभुवनमल्ल पर्माडी) (ई० स० १०७६-११२५) ले० शक ९९९, १००१, ४, ६, ८, ९, १३, १५, १७, १८, २० आदि

(८) सोमेश्वर तीसरा (ई०स० ११२६-११३८) ले० शक १०५१, ५२

(९) प्रतापचद्र जगदेकमल्ल (ई०स० ११३८-११५०) ले० शक १०६१, ६४, ६६, ६९, ७२ — (१०) दूसरा तैलप (ई० स० ११५० ११८२) (नूर्माडि त्रैलोक्यमल्ल) ले० शक १०७६, ७७

(११) सोमेश्वर चौथा, त्रिभुवनमल्ल (ई० स० ११८२-८९) ले० शक ११०५,११

---

* कीलहार्न दूसरे विक्रमादित्यके भाई जयसिंह तथा उसके पुत्र विष्णुवर्धन विजयादित्यका नाम देता है और विक्रमके पुत्र जयकर्णका ई० स० १०८७-११२७ तक स्वतंत्र उल्लेख करता है। जयकर्ण अपने पिताके पहले ही मर गया था।

कल्याणके कलचूरी राजा ।

यहांपर हम इनका इतिहास भी संक्षेपमें दिये देते हैं। इन्होंने अधिक वर्षोंतक राज्य नहीं किया। ये प्रायः विद्रोही ही रहे। विज्जन (विज्जल) एक कलचूरी मांडलिक था। त्रिपुरके कलचूरी अक्सर अपनी कन्याओंका विवाह दक्षिणके राजाओंसे कर देते थे। इसलिए वह किसी रानीके सम्बन्धीकी हैसियतसे जागीरदार बने हुए किसी सरदारका वंशज रहा होगा। पश्चिमी भारतके आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट जिल्द १० में प्रकाशित एक दानलेखमें लिखा है कि वह (विज्जल) जगदेकमल्लका महामंडलेश्वर था। अल्प कालमें ही सेनापतिके पदपर शक्तिशाली बन जानेपर उसने अपने स्वामीको हटाकर कल्याणका राजमुकुट स्वयम् धारण कर लिया। किन्तु एक धार्मिक झगड़ेके कारण शीघ्र ही किसीने उसकी हत्या कर डाली। उसके ब्राह्मण मंत्री बसवने जैनधर्मके विरोधमें—ब्राह्मणधर्मके विरोधमें नहीं—लिंगायत पंथकी स्थापना की। (इसका वर्णन आगे करेंगे) विज्जन जैन हो गया था। वह लिंगायतोंके यतियों अर्थात् जंगमोंपर अत्याचार करने लगा। इसपर जो झगड़ा खड़ा हो गया उसका जैन और लिंगायतोंने भिन्न भिन्न वर्णन दिया है। उसमें कितना सत्य है, यह निश्चत करना कठिन है। पर यह तो निर्विवाद है कि विज्जनकी हत्या इसी झगड़ेमें सन् ११६७ में हुई। उसके बाद उसका पुत्र सोम अथवा सोमदेव राज्य करने लगा। उसकी रानीने एक ब्राह्मणको जो दान दिया था, उसे सोमने अपने एक लेखमें स्वीकृत किया है (इं० एं० जिल्द १० पृष्ठ १८३)। उसने ईसवी सन् ११७६ तक

राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र संकट राजा हुआ। इसके भी कुछ लेख प्राप्त हुए हैं। जैसा कि पहले कहा गया है ११८३ में चालुक्य सोमेश्वरने फिर इससे अपना राज्य छीन लिया। इस प्रकार कलचूरी राजाओंने ई० सन् ११६० से ११८४ तक २४ वर्ष ही राज्य किया। किन्तु इनका शासन लिंगायत धर्ममतके उदयके कारण विशेष प्रसिद्ध है। इनके समयमें वैश्योंमें जैन मतका ह्रास होने लगा और बौद्ध मत तो बिलकुल नष्ट हो गया। दक्षिण महाराष्ट्रमें इस समय अधिकांश वैश्य लिंगायत हो गये (बम्बई गॅजेटियर जिल्द १ भाग २ पृ० २८८)।

जं० रा० ए० सो (ई० १८३९) में लिखा है कि इन कलचूरी राजाओंकी उत्पत्ति मलखेडके जैन गुरुओंके कथनानुसार कल्याणके ही महामंडलेश्वर सन्तरस नामक कालंजर पुर-निर्गत कलचूरी वंशके एक सरदारसे हुई। उसमें विज्जनको संतरससे आठवीं पीढ़ीका मानकर निम्नलिखित वंशावली दी है।

विज्जन त्रिभुवनमल्ल
- सोमेश्वरदेव (रायमुरारि)
- संकटदेव (आहवमल्ल)

तेहरवाँ प्रकरण।

त्रिकलिंगके प्राच्य गंग।

भारतीय इतिहासके इस कालविभागमें कलिंग देशमें एक नये राजवंशका उदय हुआ। कीलहॉर्नने त्रिकलिंगके प्राच्य गंगोंको उत्तर भारतका माना है, सो ठीक ही है। परन्तु

कलिंग देशको (वर्तमान विजगापट्टम और गंजाम जिला) वहांके लोगोंकी जाति तथा भाषा आदिकी दृष्टिसे दक्षिण भारतमें शामिल करना चाहिये, तथापि 'प्राचीन कालसे ही अंग'वग कलिंग ये नाम जुडे हुए से हैं। बिहार, बङ्गाल, उड़ीसा तो आजकलके इतिहासमें भी एक ही सूत्रमें बँधे हुए माने जाते हैं । कलिंगदेशमें बहुत प्राचीन कालमें ही आक्रमणकारी आर्योंने बस्ती कर ली थी। उससे भी पूर्व कालमें वहाँ रहनेकी तो कौन कहे, आर्य लोग कलिंगमें जाना भी पाप समझते थे। तथापि अशोकके समयसे, बल्कि उससे भी पूर्व, ब्राह्मण कालसे आर्य बहुत भारी संख्यामें कलिंगमें जाकर बसने लगे। अशोकने बड़ी कोशिश करके और एक लाख लोगोंको मार कर कलिंग देश जीता, तब वहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार हुआ। प्लिनीके समयमें इस देशके तीन भाग माने जाते थे। शायद इसी कारण त्रिकलिंग नामकी उत्पत्ति हुई हो (विजगापट्टम गजेटियर पृ० २६)। दक्षिणमें देशके नामके पूर्व कोई संख्या जोड़नेकी प्रथा थी, जैसा कि 'तीन महाराष्ट्र' 'सप्त कोंकण' 'त्रैराज्यपल्लव' इत्यादि उदाहरणोंसे दिखाई देता है। यह निश्चित करना कठिन है कि कलिंगके ये तीन भाग कौन कौन थे। संभवतः वे इस प्रकार होंगे—(१) मुख्य कलिंग अर्थात् पूर्व किनारेपरके वर्तमान गंजाम, विजगापट्टम और गोदावरी, ये जिले (२) आन्ध्र अर्थात् पूर्वी घाटके ऊपरका प्रदेश और (३) ओद्र अर्थात् उड़ीसा, महानदीके उत्तरका प्रदेश। वेंगी त्रिकलिंगसे भिन्न माना जाता था (भाग १)। नवीं शताब्दीके अन्ततक कलिंग वेंगीके प्राच्य चालुक्योंके अधीन था। उनकी राजधानी गोदावरीके दक्षिण थी। इस प्रदेशकी सर्वसाधारण जनता द्रविड़

जातिकी है। बाहरसे आये हुए आर्य भी उस समय अनार्य तेलगू भाषा बोलते थे तथा अब भी बोलते हैं।

ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भमें यहाँ प्राच्य गंगोंका उदय हुआ। वे अपने शिलालेखोंमें लिखते हैं कि हम गंगवाड़ीके कोलाहल नगरसे अर्थात् दक्षिणसे यहाँ आये (जर्नल बंगाल ६५ भा० १ पृ० २३७), पर वे इस देशमें बहुत दिनोंसे बसते थे। जब उन्नतिशील चोलोंकी शक्तिसे प्राच्य चालुक्योंका नाश हुआ, तब उस सुअवसरसे लाभ उठा कर गंग भी वज्रहस्तके नेतृत्वमें स्वतंत्र हो गये। वज्रहस्तका पुत्र राजराज, वेंगीका नाश करने वाले प्रसिद्ध राजेन्द्रकी कन्या रूपसुंदरीका पति था। उनके पुत्र अनंतवर्मन्‌को गंग और चोल वंशोंमें उत्पन्न होनेके कारण चोड गंग कहते थे। नित्यकी तरह इस राजवंशका यह तीसरा राजा अत्यंत प्रबल हुआ और उसने बहुत वर्षोंतक राज्य भी किया। इन राजाओंके शिलालेख प्राप्त हुए हैं। चूँकि वेंगीके प्राच्य चालुक्योंकी सत्ता और साथ ही उनकी राज्यव्यवस्था भी इनके हाथोंमें आ गयी, इसलिए इनके लेख भी प्राच्य चालुक्योंके लेखोंके समान ही ब्योरेवार और निश्चित बातोंसे भरे हुए हैं। इनमें हमेशा शक वर्ष ही दिया गया है, तथा राजाका निश्चित शासनकाल भी दिया गया है। बल्कि अंतिम या प्रसिद्ध राजाके राज्याभिषेकका काल तो वर्ष, महीना, दिन, तिथि सहित दिया गया है। उसी प्रकार लेखोंमें इनके कुलका गोत्र तथा चंद्रसे लगाकर विस्तृत वंशावली भी दी रहती है, इसलिए इन राजाओंकी तिथियोंके विषयमें तो किसी प्रकारकी अनिश्चितता नहीं है। इन लेखोंके आधारपर जो इतिहास जाना जा सका है वह हम नीचे दे रहे हैं। हाँ, नित्यकी तरह इन लेखोंमें भी राजाओंकी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा की गयी है

और ऐतिहासिक बातें बहुत कम हैं। फिर भी उनमें कहीं कहीं समकालीन राजाओंका भी उल्लेख होनेके कारण मध्य युगीन भारतके इतिहासपर भी कुछ प्रकाश पडता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, त्रिकलिंगमें पहला प्रसिद्ध राजा द्वितीय वज्रहस्त हुआ। इसका १०५८ ईसवी का एक दानलेख इ० ए० जिल्द ४ (पृ. १७५-१८६) में छपा है। उसमें इस कुलका संपूर्ण वृत्तान्त दिया हुआ है। यह राजवंश चन्द्रवंशी है और इसका गोत्र आत्रेय है। कुलका प्रवर्तक राजा गांगेय था (भीष्म नहीं)। यह कुल कलिंग में आकर गोकर्ण महादेवके प्रसादसे शक्तिशाली हुआ। इस महादेवका मंदिर महेन्द्र पर्वतपर है। ये लोग पहले मांडलिक थे और इनको पंचमहाशब्द (पाँच वाद्य) मिले थे। इनकी पाँच शाखाएँ हो गयीं किन्तु आगे चलकर नवीं शताब्दीमें वे फिर मिल गयीं। वज्रहस्तके लिए परम भट्टारकादि स्वतंत्र राजाके सदृश विरुदोंका प्रयोग हुआ है और उसका राज्याभिषेक ई० सन् १०३८ में दिया है। इस कालके अन्य राजकुलोंके समान यह कुल भी शैव ही था और वज्रहस्त परम माहेश्वर (शिवका परम भक्त) था। इसने वेंगी और उडीसा दोनों देशोंके राजाओंको हराया और तीस वर्षोंतक राज्य किया। इसके कई लेख मिले हैं जिनमेंसे कीलहार्नने इसके नामके साथ दो लेख दिये हैं। १०५८ ई० का इसका गद्यमय लेख अर्थपूर्ण है और इसमें राज्याभिषेकका काल इतना निश्चित दिया है कि वर्ष और महीनेके साथ साथ चन्द्रका नक्षत्र और लग्न भी दिया है। यह लेख कलिंग नगर से प्रकाशित हुआ है। अब यह निश्चित हो चुका है कि गंजाम जिलेमें तालुका पार्लाकिमेडीमें समुद्रसे कुछ मीलकी दूरी-

पर जो मुखलिंगम् नामक एक छोटासा गाँव है वही प्राचीन कलिंग नगर है।

वज्रहस्तके बाद उसका पुत्र राजराज ई० सन् १०६८ में गद्दीपर बैठा। उसने आठ वर्षतक राज्य किया। उसके पुत्र अवन्तिवर्मनके एक लेखमें (इं. एं १८ पृ० १६६) लिखा है कि उसने चोल राजाके विरुद्ध वेंगीके विजयादित्यकी सहायता की। उसने उत्कलके राजाकी भी (संभवतः सेन राजाके विरुद्ध) सहायता की थी। प्राच्य चालुक्योंका इतिहास भाग १ में दिया हुआ है। उसमें यह बतलाया गया है कि विजयादित्य ईसवी सन् १०६३ से १०७८ तक राज्य करता था और उसके पूर्व २७ वर्ष तक अराजकता रही। इस अराजकताके कारण ही कलिंगके प्राच्य गंगोंको स्वतंत्र होनेका मौका मिला। राजराजके एक ब्राह्मण मांडलिक वनराजके लेखमें लिखा है (एपि० इंडि० ४ पृ० ३१४) कि वनराजने पहले चोलोंसे युद्ध किया (शायद विजयादित्यकी सहायताके अवसर पर)। इसके बाद उसने वेंगीको जीतकर लूट लिया और दानार्णवको मार डाला। यह लेख १०७५ ई० का है। इससे प्रतीत होता है कि राजराज ई० सन् १०७६ तक राज्य करता था।

राजराजकी रानी प्रसिद्ध चोल राजा राजेन्द्रकी कन्या रूपसुंदरी थी। तथापि इस कारण उसने वेंगीकी रक्षा करनेके निमित्त चोलसे युद्ध करना नहीं छोड़ा। राजराज और रूपसुंदरीका पुत्र अनंतवर्मन इस कुलका सबसे प्रतापी राजा हुआ। इसके अनेक लेख मिले हैं। (कीलहार्नने अपनी वंशावलीमें एपि० इंडि० में इसके नामसे चार लेख दिये हैं)। ई० सन् १०८१ का पूर्वोल्लिखित लेख (इं० एं० १८,

पृ० १६५) बहुत विस्तृत है। इसमें लिखा है कि राजराजने द्रमिल (चोल) से युद्ध करके विजयादित्यकी रक्षा की थी। स्वयं अनंतवर्मन्‌ने भी पूर्वमें वेंगीकी और पश्चिममें उत्कल राजाकी सहायता की और इस प्रकारसे दो दिशाओंमें दो जयस्तम्भ खड़े किये। चोल अपने लेखोंमें लिखते हैं कि हमने कलिंग जीत लिया। किन्तु यह ठीक नहीं मालूम होता। अनंतवर्मन्‌का अधिक प्रसिद्ध नाम चोल गंग है। इसका कारण हम पहले ही बतला चुके हैं। इसके राज्याभिषेकका वर्ष ई० सन् १०७८ दिया गया है। इसके उपलक्ष्यमें इसने एक दान भी किया था (इं० एं० १८ प्र० १६३)। इसके अन्य तीन लेख ई० सन् १०८१, १११८ और ११३५ इं० एं० जिल्द १८ में ही छपे हैं। इनमेंसे एकमें इसके द्वारा राजराजेश्वर नामक अपने पिताके बनवाये हुए शिवालयके लिए एक गाँव दानमें देनेका उल्लेख है।

बंगाल ज० रा० ए० सो० जिल्द ६५ भाग १ पृ० २४० पर उसका एक लम्बा चौड़ा ताम्रलेख छपा है। उसमें उसके उड़ीसा अथवा उत्कलके जीतनेका तथा अपने राज्यमें शामिल कर लेनेका उल्लेख है। लेखमें लिखा है कि इस उत्कल रूपी समुद्रका मंथन करने पर उसे भूमि, द्रव्य, एक हजार हाथी, और दस हजार घोड़े प्राप्त हुए। * इससे निश्चय होता है कि इसी समय उड़ीसाके "केसरी वंशका अंत हुआ। इसमें यह भी लिखा है कि जगन्नाथका प्रसिद्ध मंदिर चोड़ गंगने ही बनवाया है। "समस्त संसारका उत्पत्तिकर्ता और संसार भरमें व्याप्त

* निर्मथ्योत्कल सिन्धुराजमपरं गंगेश्वरः प्राप्तवानेकः कीर्तिसुधाकरं... लक्ष्मीं धरण्या समम् । मायद्दन्ति सहस्र मथनियुते रत्नान्यसंख्यानि वै । तं सिन्धोः निर्मिय प्रकर्षमथवा भूयस्तदुन्माथिना ॥

जगन्नाथ इस सुंदर मंदिरमें आकर रहने लगा और लक्ष्मी भी रत्नाकरके घरको छोड़ कर यहांपर आनंदपूर्वक रहने लगी।" ऐसा काव्यमय वर्णन लेखके २८ वें श्लोकमें है। चोडगंग अपने लिए इस लेखमें परमवैष्णव कहता है। अर्थात् इस समय इस कुलका आराध्य देवता बदल गया और इसमें विष्णुभक्ति शुरू हो गयी। इस समय कलिंग, उत्कल और बंगमें विष्णुभक्तिका प्रचार खूब ज़ोरोंसे हो रहा था और बंगमें लक्ष्मणसेन एक परम वैष्णव राजा हुआ। धर्म विषयक प्रकरणमें वैष्णव मतके उदय और विकासके विषयमें हम विशेष रूपसे लिखेंगे।

इन एक सौ सात लम्बे वृत्तोंके लेखमें (इनके अतिरिक्त अंतमें एक गद्य भाग है ही) चोडगंगकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। इसमें यह भी वर्णन है कि गंगने किसी एक मंदारके राजाको हराकर उसकी राजधानीको उजाड़ दिया। तब वह राजा गंगाके उसपार भाग गया। पता नहीं यह राजा कौन था और मंदार कहां है। चोडगंगने बहुत दिनोंतक, इस लेखके अनुसार ७० वर्ष तक, राज्य किया। इसके पुत्र कामार्णवका

का चौथा पुत्र अनियंक भीम राजा हुआ। इस लेखमें इन सब राजाओंकी स्तुति, नियमके अनुसार ही की गयी है (ज० रा० ए० सो० बंगाल ६५ भाग २) और प्रायः लिखा है कि उन्होंने शत्रुको हरा दिया था। किन्तु इनके राज्याभिषेकका समय शुभ मुहूर्त सहित नहीं दिया गया। इससे ज्ञात होता है कि इनके शासनकाल महत्वपूर्ण नहीं थे। अनियंक अथवा अनंग भीमने भी दसवर्ष तक ही राज्य किया। इस समय उड़ीसा पूर्णतया गंगोंके अधीन था। क्योंकि उड़ीसाके किसी चंद्रवशी गोतम गोत्रीय स्वप्नेश्वर नामके क्षत्रिय मांडलिकने अनियंक भीमकी ओरसे कई लड़ाईयाँ लड़ीं और उसके शासनकालमें उड़ीसामें स्वप्नेश्वर मेघवाहन नामका एक शिवालय बनवा कर एक प्रशस्ति भी खुदवाई (ज० रा० ए० सो० बंगाल ६६ पृ० १८)

अनियंक भीमके बाद उसका पुत्र राजराज गद्दीपर बैठा। राजराजने सत्रह वर्षतक राज्य किया। इस प्रकरणमें हम इस राजराज तकका ही इतिहास दे रहे हैं। तथापि इसके बाद भी दो शताब्दियोंतक कई राजा राज्य करते रहे। इस वंशका अन्तिम लेख नरसिंहका ई० सन् १३८४ का है। यह वही लम्बा चौड़ा लेख है जिसके विषयमें हम पहले कह चुके हैं (ज० रा० ए० सो जिल्द ६५, भाग २ पृ० २६०)। यह बतलाना कठिन ही है कि इस राजवंशका अंत कब और कैसे हुआ। परन्तु संभवतः बहामनी राजाओंके समय यह प्रदेश दूसरे किसी राजवंशके अधीन हो गया।

अब हम इस वंशके विषयमें कुछ साधारण बातें देना चाहते हैं। गंगोंका यह राजवंश चंद्रवंशी था। उनके लेखोंमें प्राच्य चालुक्योंकी तरह चंद्रसे लेकर वंशावली दी गयी है।

उसमें ययातिका पुत्र तुर्वसु और तुर्वसुका पुत्र गांगेय लिखा है। यदु और तुर्वसु दोनोंका उल्लेख ऋग्वेदमें है (भाग २)। वेदोंमें लिखा है कि ये तुर्वसु नष्ट होकर पाञ्चालोंमें मिल गये। तो फिर गंगोंके लेखोंमें यह कथा कहाँसे आयी कि तुर्वसु निपुत्रीक था, इसलिए उसने गंगाको प्रसन्न करके एक पुत्र प्राप्त किया? हरिवंशने भी चोल, पाण्ड्य, केरल और कोल इन दक्षिणके राजवंशोंको तुर्वसुके वंशज बतलाया है। और यह भी लिखा है कि ययातिने पृथ्वीका बँटवारा करते समय उनको आग्नेय दिशा दी थी। चोल पाण्ड्य आदि राज्य बहुत प्राचीन हैं। पर ये अपनी उत्पत्ति यादवोंसे नहीं मानते। इसलिए ये महाराष्ट्रीय आर्योंसे भिन्न हैं। गंग भी अपने लेखोंमें अपनी उत्पत्ति तुर्वसुसे मानते हैं। इसलिए ये दक्षिणकी मिश्र-आर्य-शाखाके हैं। तथापि वे पूर्णतया हिन्दू तथा वैदिक धर्मके अभिमानी थे। पहले वे शिवपूजक थे। आन्ध्रमें उन्होंने शैव मतका खूब प्रचार किया। अब भी आन्ध्र प्रधानतया शैव ही है। हाँ, बादके राजा अवश्य वैष्णव हो गये। शायद यह उड़ीसासे आये हुए वैष्णव धर्म मतका प्रभाव होगा। उड़ीसा भी पहले शैव था। पर इस काल-विभागमें वह वैष्णव मतका केन्द्र हो गया।

ये राजा इस समयके अन्य राजाओंके समान ही विद्वान् और विद्वानोंके आश्रयदाता थे। इनके दरबारके प्रसिद्ध संस्कृत विद्वानोंके नाम अभीतक प्राप्त नहीं हुए हैं। तथापि लेखमें राजराज और अनंतवर्मन् चोडगंगकी इस विषयमें जो स्तुति की गयी है उसे हम सत्य मान सकते हैं। राजराजके मुखमें "श्री और सरस्वती दोनों निवास करती थीं।" उसी प्रकार "चोडगंग वेद-शास्त्रोंमें ही नहीं बल्कि शिल्प तथा अन्य

ललित कलाओंमें भी प्रवीण था। मानों बचपनमें स्वयं देवी सरस्वती ही उसकी धात्री थी।" * शिल्प तथा इमारतोंसे उसे कितना प्रेम था, इसका अमिट प्रमाण जगन्नाथजीका मन्दिर है। इस तरह हम देखते हैं कि वह मालवाके भोजका सच्चा अनुयायी था। इन गंगोंके समय तेलगू भाषाकी बड़ी उन्नति हुई। राजराजके एक लेखमें तेलगूका प्रत्यक्ष प्रयोग मिलता है (एपि० इण्डि ४ पृष्ठ ३१४)। इन गंगोंका लांछन (चिह्न) नन्दी था।

उड़ीसा

इस प्रकरणको समाप्त करनेके पहले हम उड़ीसाका भी कुछ इतिहास दिये देते हैं, क्योंकि इस काल विभागमें वह त्रिकलिंगका ही एक भाग रहा है। ओड़ (और पौंड़ भी) अति प्राचीन कालमें द्रविड अर्थात् अनार्यवंशी थे। अब भी वह शबरोंका स्थान है। उसी प्रकार खोंड, भूर्य और हमय नामक द्रविड जातियाँ भी यहाँ हैं। इसीको उत्कल ओर मेकल भी कहते हैं (कटक गजेटियर पृ० १७)। यहाँपर शीघ्र ही आर्योंकी बस्ती बस गयी। किन्तु बौद्धकालमें यहांके ब्राह्मण और क्षत्रिय धर्महीन हो गये। केसरी राजाओंके राज्यकालमें यहाँ नवीन ब्राह्मण ओर क्षत्रिय आये। उन्होंने अशोकके द्वारा प्रचलित की गयी बुद्ध पूजाके बदले शिवपूजा स्थापित कर दी। इन केसरी राजाओंका वृत्तान्त भाग १ प्रकरण १२ में

---

* धात्री तस्य सरस्वती समभवन्नूनं न चेत्पीतवान्।
तत्सारस्वतमार्य बालकतम श्री चोडगंगेश्वर.॥
तत्त्वे वेदमति कथ निपुणता शास्त्रेषु तादृक्कथम्।
तादृक्काव्यकृति कथ परिणति शिल्पेषु तादृक् कथम्॥
(ज० रा० ए० सो० बंगाल ६५ पृ० २३१)

दिया गया है। उन्होंने आठवीं सदीसे लेकर १२ वीं सदी तक राज्य किया। कितने ही लोगोंका तो मत है कि चूँकि केसरी राजाओंके अबतक कोई लेख नहीं पाये गये इसलिए उनका अस्तित्व ही सदिग्ध है, किन्तु कटक गजेटियरमें लिखा है कि अब ऐसी शङ्का करनेके लिए कोई कारण नहीं है, क्योंकि हालमें ही उद्योत केसरीके दो लेख प्राप्त हुए हैं। एक तो खण्डगिरिकी पहाडियोंकी किसी गुफामें मिला है और दूसरा भुवनेश्वरवाले ब्रह्मेश्वरके मंदिरमें। एम० सिलव्हन् लेव्हीने तो यह भी बताया है कि एक बौद्धसूत्रके जापानी अनुवादमें बौद्ध सन्यासी अनुवादकने लिखा है कि वह ई० सन् ८९६ में उत्कलके राजाकी ओरसे जापानके बादशाहके पास आया था। इस राजाका नाम वह परम माहेश्वर महाराज शुभकेसरी बतलाता है (कटक गजेटियर पृ० २२)। इस गजेटियरने ये नयी बातें दी हैं, जो हमें भाग १ में दी हुई बातें लिख चुकनेके बाद ज्ञात हुई हैं। इसलिए इतिहासकी पूर्णताके लिए हमने इन्हें यहां लिख दिया है। केसरी राजाओंने भुवनेश्वरमें जो अनेक देवालय बनवाये, उनका भी विस्तृत वर्णन इस गजेटियरमें दिया गया है। ये देवालय तत्कालीन उत्कृष्ट शिल्पकला तथा केसरी राजाओंके ऐश्वर्यके साक्षी हैं।

चोलोंके लेखोंसे हमें पता चलता है कि राजेन्द्रने ई० सन् १०२१ में उडीसा जीता। किन्तु उसका यह जीतना स्थायी नहीं था। इसके बाद प्राच्य गंगोंका उदय हुआ। उन्होंने अलबत्ता उडीसाको जीतकर हमेशाके लिए अपने राज्यमें शामिल कर लिया। ई० सन् १११८ में लिखे हुए चोडगंगके एक लेखसे मालूम होता है कि वह उडीसाका पूर्ण रूपसे स्वामी था। जैसा कि पहले कहा गया है जगन्नाथका वर्तमान प्रसिद्ध देवालय

भी उसीका बनवाया हुआ है (लगभग ११५० ई०)। जयपुरमें उसने एक और भी देवालय बनवाया था जिसका नाम उसने अपने नामपर 'गंगेश्वर' रखा था। चोड़गंगके पुत्र राघवको बंगालके विजयसेनने पराजित किया था (पूर्वोक्त गजेटियर पृ० २४)। पर इस विषयमें सन्देह है कि उक्त पराजित राघव यही था या और कोई, क्योंकि इस राघवका राज्यकाल ११५६ से ११७० तक था। विजयसेनका राज्यकाल इतने बादका नहीं हो सकता। हम पहले कह चुके हैं कि भुवनेश्वरमें अनियंक भीमके सालेने मेघेश्वर नामक एक दूसरा प्रचण्ड देवालय भी बनवाया था (११९३ और ११९८)।

बंगालके अर्थात् लखनौतीके सुलतानोंने उड़ीसापर कई चढ़ाइयाँ कीं। कटक जिलेके चाटेश्वरवाले जगन्नाथके देवालयमें जो लेख है उसमें लिखा है कि विष्णु नामक भीमके एक ब्राह्मण प्रधानने यवनोंसे युद्ध कर उनको परास्त किया था। तबकात तथा अन्य मुसलमानी इतिहासोंमें उड़ीसापर की गयी मुसलमानोंकी चढ़ाइयोंका वर्णन दिया गया है। उनमें लिखा है कि दिल्लीके फीरोजशाह तुगलकने भी उड़ीसापर चढ़ाई की थी। विजयनगरके राजा और बहामनी राजाओंने भी उड़ीसापर और वहाँके राजा गजपतिपर चढ़ाइयाँ की थीं। अंतमें १४३५ में अन्तिम गगराजाकी मृत्युके बाद उसके प्रधान कपिलेन्द्र देवने बहामनी सुलतान दूसरे आदिलशाहकी सहायतासे इस राज्यपर अपना अधिकार कर लिया और वहां नवीन सूर्यवंशी राजवंशकी स्थापना की (कटक ग० पृ० २५)।

त्रिकलिंगके प्राच्य गंगोंकी वंशावली ।

वज्रहस्त पहला राज्यकाल ३५ वर्ष (९८४-१०१९)
|
मधुकामार्णव रा० १९ वर्ष (१०१९-१०३७)
|
१ वज्रहस्त दूसरा रा० ३० वर्ष (१०३८-१०६८) लें० १०५८
|
२ राजराज रा० ८ वर्ष (१०६८-१०७६)
रूपसुंदरी रानी, राजेन्द्र चोलकी कन्या
|
३ अनंतवर्मन् चोडगंग रा० ७० वर्ष (१०७६-११४२)
जगन्नाथके प्रसिद्ध मन्दिरका बनवानेवाला ।
|

४ कामार्णव १० वर्ष (११४२-५२)	५ राघव १५ वर्ष (११५२-११६६)	६ राजराज १५ वर्ष (११६७-८२)	७ अनियंकभीम रा० १० वर्ष ११८२-११९२

|
८ राजराज रा० १७ वर्ष (११९२-१२०९)

चौदहवाँ प्रकरण ।

तंजावरके चोल राजा ।

इतिहासकी दृष्टिसे यह एक ध्यान देने योग्य विचित्र बात पायी जाती है कि भारतवर्षके भिन्न भिन्न भागोंमें पराक्रमी राजा प्रायः एक ही समय हुए और मध्ययुगीन भारतीय इतिहासके इस कालविभागके प्रारम्भमें उन्होंने नवीन राज्योंकी स्थापना की अथवा कहीं कहीं पुराने राजवंशको नवीन वैभवसे सम्पन्न

बना दिया। (कदाचित् दुर्भाग्यवश मध्यदेश अथवा कन्नौज इसके अपवाद स्वरूप रह गया)। इस प्रकार गुजरातमें मूलराजने ई० सन् ९७४ में चालुक्यवंशको नवीन स्थापना की। इसी समयके लगभग मालवामें मुंजने परमार वंशको कीर्ति-शिखरपर चढ़ा दिया। तैलप चालुक्यने ९७७ ई० में दक्षिण-में उत्तर चालुक्य वंशकी स्थापना की। उधर उत्तरमें सबुक्तगीनने इसी समय गजनीमें नवीन तुर्क वंशकी स्थापना की। दक्षिणमें चोलराजा राजराजने ९८५ ई० में चोलोंके वंशको वैभवशाली बनाया। उधर पूर्वमें ९८० ईसवीमें महीपालने गिरी हुई पाल-सत्ताको पुनः स्थिर किया। बुंदेलखंडके धंगने ई० सन् ९८० में सबुक्तगीनसे लड़कर अपनी कीर्ति चरम सीमातक पहुँचा दी। मतलब यह कि दसवीं सदीके चौथे चरणमें प्रायः एक ही समय होनेवाले भिन्न भिन्न पराक्रमी और महत्वाकांक्षी राजा एक अनुमानको सूचित करते हैं। किन्तु इतिहासकी सीमाके बाहर होनेके कारण हम यहांपर उसकी चर्चा नहीं करते।

इन पराक्रमी पुरुषोंमें राजराज चोल किसी प्रकार कम न था। आदित्य चोलके बाद वह सिंहासनपर बैठा। आदित्य चोलने ही चोलवंशको पल्लव सत्तासे मुक्त कर अधिकारसम्पन्न बनाया था। प्रथम राजराजने अपने पराक्रम और उद्यमशीलतासे दक्षिण भारत अर्थात् तामिल भूको साम्राज्य पदके गौरवका पात्र बना दिया था। चोलोंने एक शताब्दीतक केवल दक्षिण भारतमें ही नहीं वल्कि उत्तर भारत-में भी साम्राज्यके ऐश्वर्यका उपभोग किया। इस चोल राज्य-का इतिहास इस भागके काल विभागमें ठीक ठीक रूपसे समाविष्ट हो जाता है। यह श्री० के० व्ही० सुब्रह्मण्य ऐय्यरने

बड़ी अच्छी तरह लिखा है। डॉ० स्मिथने भी इसे भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें दिया है। इन दो ग्रन्थकारोंके ही आधार-पर हम नीचे इसका संक्षिप्त इतिहास देते हैं। यथास्थान हम अपना मत भी प्रकट करते चलेंगे। ऐसा करनेका मुख्य कारण यही है कि यद्यपि इन चोल राजाओंके अनेक लेख मिलते हैं, फिर भी वे सब तामिल और कानड़ी भाषामें लिखे हुए हैं, अतः हम उनकी समीक्षा नहीं कर सकते।

दक्षिण भारत अर्थात् तामिल प्रदेश जलवायु, भूमि, उपज, आबादी और भाषा, इन सब दृष्टियोंसे भरतखंडका एक स्वतंत्र भागसा है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें इसे द्रविड़ देश कहा है। (शिलालेखोंमें प्रायः इसे द्रमिल भी कहा है।) जिस प्रकार पंजाबके लोग प्रधानतः आर्यवंशी हैं, उसी प्रकार इस देशके लोग प्रधानतया द्रविड़वंशी हैं। तथापि अत्यंत प्राचीन काल-में भी यहांकी तामिल संस्कृति ऊँचे दर्जेकी थी। इसलिए बाहरसे आये हुए आर्य जातिके लोग अल्पसंख्यामें होनेके कारण भाषा और वंशकी दृष्टिसे द्रविड होगये। चोल, पांड्य, और केरल यहांके ये तीन राजवंश महाभारत और हरिवंशमें भी प्रसिद्ध हैं। हरिवंशमें तो इन्हें ययातिके पुत्र तुर्वसुके वंशज बताया है। यह देश अत्यंत उपजाऊ किन्तु उष्ण है। पूर्वकी तरफ मैदान और पश्चिमकी ओरका प्रदेश पर्वतीय है। यहां उत्पन्न होनेवाली विशिष्ट वस्तुएं ही हैं अर्थात् ऐसी वस्तुएं हैं जो अन्यत्र नहीं पायी जातीं। मोती, कालीमिर्च और फीरोज़ा (रत्न) यहां ही पाये जाते थे, इसलिए प्राचीन रोमन साम्रा-ज्यसे यहां काफी धन आता था (स्मिथ)। हम इसमें एक और वस्तु शामिल किये देते हैं। वह है कपासका कपड़ा। महाभारत कालमें तक तामिल देश सूक्ष्म कार्पास वस्त्रके लिए

प्रसिद्ध था । महाभारतमें स्पष्ट लिखा है कि राजसूय यज्ञके समय चोल और पांड्य राजाओंने युधिष्ठिरको सूक्ष्म कार्पास वस्त्र अर्पित किये थे । मतलब यह कि तामिल देश हमेशा समृद्ध रहा है और प्राचीन कालसे ही आर्य, बौद्ध एवं जैन धर्म यहां चढ़ा ऊपरी करते आये हैं । यही विशिष्ट धार्मिक चढाऊपरी और द्वेष हमें आज भी उस प्रान्तमें दिखाई देता है । इसका वर्णन हम अगले किसी प्रकरणमें करेंगे ।

द्रविडोंके इस पुरातन देशमें और चोलोंके प्राचीन राजवंशमें ई० सन् ६८५ में पहला राजराज सिंहासनपर आरुढ़ हुआ । उसने सबसे पहले एक बलिष्ठ सेना तैयार करना शुरू किया, जैसा कि प्रत्येक महत्वाकांक्षी राजा करता है, और इस सैन्यके बलसे उसने अपना राज्य फैलाया । वेल्लाकुरी अर्थात् उस देशके धनुर्धारी भीलोंको उसने उसी तरह तैयार किया जैसे कि शिवाजीने मावलोंको तैयार किया था । उनकी अनेक पलटनें बनाकर उन्हें उसने अपने ही भिन्न भिन्न विरुदोंके नाम अर्पित कर दिये । (पेय्यरका प्राचीन दक्षिणापथका इतिहास पृ० २४५) उसने हाथियोंकी फौज भी और एक पैदल सेना भी तैयार की । इसमें प्रायः तेलंग ही भरती किये जाते थे । महमूदके समान उसने भी कुछ चुने हुए बहादुर सिपाहियोंका एक शरीररक्षक-दल बनाया । वह तंजावरमें राज्य करता था । यहांसे तीनों दिशाओंमें उसने अपना राज्य बढ़ाया । दक्षिणमें पांड्य, पश्चिममें केरल और उत्तरमें पल्लव राजाओंको उसने जीत लिया । पश्चिम किनारेपरके चेरोंके जहाजी बेड़ेको उसने डुबा दिया । इन विजयोंसे उसे सोना, चाँदी, मोती आदिके रूपमें खूब संपत्ति मिली । यह बात असम्भव नहीं है । उसने गङ्गवाडी, कुडमलै (कुर्ग) नोलम्बवाड़ी

(बल्लारी) और पूर्व चालुक्योंके वेंगीको जीतकर कलिंग भी जीत लिया। किन्तु इन जीतोंके मानी यह कदापि न समझना चाहिये कि उसने इन राज्योंको खालसा कर लिया। उसने तो इन राजाओंको केवल अपना मांडलिक बना लिया। इस प्रकार उसने शक्तिवर्मन्को पूर्व चालुक्योंके राज्यपर अपना मांडलिक बनाकर गद्दीपर बैठा दिया। इसके बादके राजा विमलादित्य-को उसने अपनी लड़की ब्याह दी (भाग १ देखिये)। विमलके पुत्र और पौत्रने भी चोल राजकन्याओंसे शादी करके यह सम्बन्ध कायम रखा। इस प्रकारके विवाह अर्थात् मामाकी लड़कीको ब्याहनेकी प्रथा केवल दाक्षिणात्योंमें ही पायी जाती है। *अनेक स्मृतियोंने ऐसे विवाहोंको निषिद्ध बतलाया है।* तथापि श्रीकृष्ण और रुक्मिणी तथा अर्जुन और सुभद्राके समयसे दाक्षिणात्योंमें ये विवाह चल पड़े हैं। राजराजने सिलोनको भी जीत लिया और वहाँकी पैदावारका कुछ हिस्सा उसने राजराजेश्वरके उस विशाल देवालयके बनवाने-में खर्च कर दिया जो तंजावरमें है। इस देवालयने दक्षिणमें उसके नामको अजर अमर कर दिया (वेंग्यर पृ० २४८)। अन्तमें उसने पश्चिमी चालुक्य राजा सत्याश्रयपर चढ़ाई की और उसे पूर्णरूपसे पराजित कर दिया। इस समय उसकी फौज नौ लाख थी। उसकी चढ़ाईका वर्णन कुछ अत्युक्ति-पूर्ण है। कहा गया है कि उसने स्त्रियों, बच्चों और ब्राह्मणों तकको कत्ल कर डाला। यह ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि ऐसी क्रूरता हिन्दुओंके युद्धमें कभी नहीं देखी गयी। इस विजयके कारण उसकी कीर्ति और सत्ता खूब बढ़ गयी और संपत्ति भी इतनी मिल गयी कि वह तंजावरमें राज-राजेश्वरका एक प्रचंड देवालय बनवा सका। इसके अतिरिक्त

उसने और भी कितने ही ऐसे देवालय बनवाये जो उसके वैभव और तत्कालीन कारीगरीका हमें आज भी परिचय कराते हैं।

किन्तु राजराज केवल एक बड़ा विजेता अथवा इमारतें आदि बनवानेवाला ही नहीं था, बल्कि वह अच्छा शासक भी था। दक्षिण भारत प्राचीन कालसे ही नहरोंके लिए मशहूर है। किन्तु कावेरीकी जो तीन प्रचण्ड नहरें हैं वे प्रथम राजराजकी ही बनवायी हुई हैं। उसने जमीनकी नाप कराकर उसकी जमाबन्दीका भी ठीक ठीक प्रबन्ध कर दिया। उसकी यह 'सर्वे-सेटलमेन्ट' (पैमाइश और जमाबन्दी) इतनी बारीकीसे की गयी है कि एक वेल्लीका (बीघेका ?) ५२,४२८,८०००० वां हिस्सा भी नापकर उसपर कर लगा दिया गया है (ऐय्यर पृ० २४६) इस सर्वेने दक्षिण भारतके तत्कालीन जमाबन्दी कारकुन और गणितकारोंकी कीर्ति स्थापित कर दी। अबतक वहाँके गणितकार और जमाबन्दी अधिकारी होशयार माने जाते हैं। स्मिथका कथन है कि राजराजके बादके राजाने ईसवी सन् १०८६ में, अर्थात् जिस साल इंग्लैंडमें डूम्सडे नामक पैमाइशका रजिस्टर तैयार किया गया था, अपने राज्यकी जमाबन्दीके लिए जमीनकी पैमाइश करवायी थी (भारतका प्राचीन इतिहास, तीसरा संस्करण पृ० ४८६)।

राजराज शिवभक्त था इसलिए अप्पार आदि तिरसठ शैव संत कवियोंके बनाये भजन उसे बहुत अच्छे लगते थे। उसने उनकी मूर्तियाँ राजराजेश्वरके मन्दिरमें बनवा कर स्थापित कर दी थीं और इन भजनोंके गाये जानेका प्रबन्ध कर दिया था। उसने अपने माता-पिताकी मूर्तियां भी इस देवालयमें रखवा दीं। उसकी माता सती हो गयी थी

और ये दोनों स्त्री पुरुष अबतक तामिलमें पुण्यवान् तथा पूज्य दम्पति माने जाते हैं।

अन्तमें एक और महत्वकी बात यह है कि राजराज गायन और नृत्यका प्रोत्साहक था। उसने अनेक कुशल गायकों, नर्तकों, और शहनाई तथा मृदंगादि वाद्योंके बजाने वालोंको बुलाकर तंजावरमें बसाया था। उसके समयमें नाट्यशास्त्रकी खूब उन्नति हुई, गायन, नर्तनके लिए खास नृत्य-संगीत-गृह बनाये गये और वहां शास्त्रीय ढंगसे इन कलाओंका अभ्यास किया जाता था। कई विद्यालय भी स्थापित किये गये। उनका प्रबन्ध विद्वान् आचार्य्योंके हाथोंमें सौंपा गया जो विद्यार्थियोंको वहां साहित्य और शास्त्रोंकी शिक्षा देते थे (ऐय्यर पृ० २५१)।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि राजराज अत्यंत धर्मशील था। ब्राह्मणों और मंदिरोंको उसने अनेक दान दिये। उसकी रानियों और अधिकारियोंने तक दान दिये। किन्तु उसने जो तुला-दान दिया उसका उल्लेख यहांपर कर देना जरूरी है। उसने अपने वजनमें सोना रखकर ब्राह्मणोंको बाँट दिया। यह दान उस समयके राजाओंको संभवतः बहुत प्रिय था, क्योंकि इस काल-विभागके कम्बोज और त्रिकलिंग राजाओंके लेखोंमें भी इसका उल्लेख पाया जाता है। लेखोंमें एक और भी बातका उल्लेख है। लिखा है कि राजराजकी मुख्य रानी इस दानके समय एक सुवर्ण-धेनुके उदरमेंसे निकली थी। मतलब यह कि दान खूब दिया गया। (कदाचित् दानकी ऐसी कथा और कल्पना आपको और कहीं न मिलेगी) जो ब्राह्मण, सच्चे ब्राह्मण, धर्माचरणमें ही निरंतर लगे रहते थे, जो अपना समय भजन, अध्ययन, अध्यापन आदिमें ही व्यतीत

करते थे, उनका पालन करना राजाका कर्तव्य था। इसलिए इन दानोंसे उस समय वही काम होता था जो आजकल विद्या या धर्मके लिए दिये गये दानोंसे होता है।

राजराजके समयकी राज्य व्यवस्था बड़ी सूक्ष्म और समुन्नत थी। शासनके सभी विभागोंके दफ़्तरोंमें सब कागजात यथाविधि रखे जाते थे और कामके निरीक्षणके लिए निरीक्षक परीक्षक भी रखे जाते थे। पर हमें इस बातका आश्चर्य होता है कि फ्लेयरने दक्षिणकी सूक्ष्म पञ्च व्यवस्थाका उल्लेख क्यों नहीं किया। हाँ, स्मिथने उसका जिक्र किया है। बल्कि उसने तो इस बातके लिए दुःख भी प्रकट किया है कि अब वह नहीं रही। राज्यशासनके सामान्य प्रकरणमें हम आगे चलकर इस पर विशेष विस्तारके साथ लिखेंगे।

राजराजके बाद उसका पुत्र राजेन्द्र गद्दीपर बैठा (१०१४ ई०)। वह संभवतः अपने पितासे भी अधिक पराक्रमी हुआ। उसने कई वर्ष (१०४४ ई० तक) राज्य किया। उसने पहलेसे भी अधिक देशोंको जीता, विद्रोही पांड्य तथा केरल राजाओंको पुनः जीतकर उनके राज्योंको खालसा कर लिया और वहां अपना प्रतिनिधि कायम कर दिया। यह देश चोल पांड्य या चोल केरल कहा जाता था। (इस नामसे तो यह पता लगता है कि ये प्रतिनिधि सच्चे राज्याधिपति अर्थात् केरल और पांड्य राजाओंके बदले राज्य करते थे। उसने पश्चिमी चालुक्य तृतीय जयसिंहको भी पुनः पराजित कर दिया। सीलोनके राजाको भी जीत लिया। इस विजयसे उत्साहित होकर उसने अपनी विजयपताका गंगा-किनारे तक फहरा दी। और कलिंग, वंग, (प्रथम महीपाल) दण्डरथ (?) कोसल और कन्नौज तकको जीत लिया। इस विजयके बाद उसने "गंगै कौंड" पदवी धारण कर ली

और त्रिचनापल्लीके नजदीक गंगै कोंड चोलपुरम् नामक एक शहर बसाया। त्रिचनापल्ली जिलेमें अवतक इस शहरके अवशेषोंकी लोग तारीफ करते हैं। यहींपर उसने एक विशाल तालाव भी बनवाया। उसका बाँध सोलह मील लम्बा है। खेतोंको पानी देनेके लिए उसमें स्थान स्थानपर नालियां भी बनी हुई हैं (स्मिथ प्राचीन इतिहास पृ० ४६६)। उसने एक शक्तिशाली नौ-सेना भी तैयार की और बंगालकी खाड़ीको पारकर ब्रह्मदेशके एक हिस्सेको जीत लिया। यद्यपि उसकी इन विजयोंका वर्णन उसके शिलालेखोंमें किञ्चित् अत्युक्तिपूर्ण है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उसका राज्य बड़ा विस्तृत था। क्योंकि स्वयं अल्वेरुनीने लिखा है कि प्रयागसे लेकर आग्नेय दिशाका समस्त प्रदेश (अर्थात् वर्तमान मद्रास इलाका तथा मध्यप्रदेश और निजामके राज्यका पूर्व भाग) चोलोंकी अधीनतामें था। इतना विस्तृत राज्य अधिक दिनोंतक टिकना असम्भव था। और शीघ्र ही ई० सन् १०४० के लगभग त्रिकलिंग और चेदियोंने, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अपनी सत्ता कृष्णाके उत्तरमें बढ़ा ली।

राजेन्द्र वीर था और विद्वान् भी था। शिलालेखोंमें 'पण्डित' कहकर उसका उल्लेख किया गया है। चीनको उसने अपना एक वकील भेजा था। यह तो निश्चित है कि उसने एक बड़ी भारी नौ-सेना रखी थी। उसने उत्तर भारतसे ब्राह्मणोंको लाकर दक्षिण भारतमें बसाया था। मालूम होता है कि दक्षिण और पूर्वके वल्लालसेन प्रभृति राजाओंने यह व्यवस्था की थी। राजेन्द्रके समय चोल साम्राज्य वैभवकी चरम सीमाको पहुँच गया था। इसके पराक्रमी पुरुषोंमें, जैसा कि प्रायः हुआ करता है, यह तीसरा था।

उसके बाद उसका पुत्र राजाधिराज गद्दीपर बैठा। यह भी बलिष्ट था। किन्तु मांडलिक राजाओंसे इसने बड़ी क्रूरताका व्यवहार किया। सीलोनके राजाका इसने वध कर डाला। एक चेर राजाको हाथीके पैरोंके नीचे रखवा दिया। इसके विषयमें विशेष वर्णन देनेकी जरूरत नहीं किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि इन कारणोंसे राज्यका पतन शुरू हो गया। एक युद्धमें इसने आहवमल्ल सोमेश्वरको भी पराजित कर दिया था। किन्तु ई० सन् १०५२ की दूसरी लड़ाईमें, जो कि कोप्पममें हुई थी, यह स्वयं मारा गया। तत्काल इसके छोटे भाई राजेन्द्रदेवका रणक्षेत्रमें ही राज्याभिषेक कर दिया गया। भारतवर्षके इतिहासमें यही एक युद्ध ऐसा है जिसमें राजाकी मृत्युके कारण फौज पराजित नहीं हुई। राजेन्द्रदेवने अपने अतुल शौर्यसे उस दिनकी दुर्घटनाका बदला ले लिया, आहवमल्लको पराजित किया और उसे तुंगभद्राके उस पार मार भगाया। पहले काल-विभागमें (६००-८०० तक) पल्लव और पूर्व चालुक्योंका हमेशा झगड़ा होता रहता था। उसी-प्रकार इस काल-विभागमें चोल और उत्तर चालुक्योंका झगड़ा होता रहता था। फ्रान्स और जर्मनीके राजाओंकी तरह इन दो पड़ोसी बलवान् राजाओंको युद्धमें बड़ा आनन्द आता था। पर दोनोंके ही पराक्रमी होनेके कारण एक दूसरेको अधिक समयतक अपनी अधीनतामें नहीं रख सकता था।

राजेन्द्रदेवने ई० सन् १०५२ से १०६२ तक दस वर्ष राज्य किया। उसके बाद उसका भाई वीर राजेन्द्र राजा हुआ। यह भी पराक्रमी था। हमेशाके अनुसार केरल और पाण्ड्योंसे तो युद्ध हुए ही, किन्तु साथ ही पश्चिमी चालुक्योंसे भी इसका तीन बार युद्ध हुआ। नर्मदाके दक्षिणमें भरतखंडमें चोल और

चालुक्य ये ही दो सम्राट् थे। इसलिए यद्यपि महाराष्ट्र और मद्रासके बीच तुंगभद्रा एक प्राकृतिक सीमा थी और विशेष झगड़ेका कोई कारण नहीं था, तथापि ये दोनों सम्राट् आपसमें बराबर झगड़ते रहते थे। कुछ समय तक वीरराजेन्द्रकी जीत होती रही किन्तु ई० सन् १०७० की लड़ाईमें वह मारा गया। लोगोंका यह ख्याल था कि उसने वेलगोलके जैनोंपर कुछ ज़ुलम किया था, इसलिए उनके शापके कारण वह मर गया (ऐय्यर पृ० २६२)।

ऐय्यरने जो वृत्तान्त दिया है वह इस राजाके राज्यकालके साथ साथ समाप्त हो जाता है। किन्तु हमें तो बारहवीं सदीके अंततकका इतिहास देना है। बिल्हणने लिखा है कि वीर राजेन्द्रने विक्रमांकको अपनी लड़की दी थी। हमें आश्चर्य हो रहा है कि यह बात ऐय्यरने क्यों नहीं कही। १०७० ई० में वीरराजेन्द्रकी मृत्युके बाद यह झगड़ा उपस्थित हुआ कि गद्दीपर कौन बैठे। अन्तमें विक्रमांक पहुंचा और उसने अपनी स्त्रीके भाई अधिराजेन्द्रको सिंहासनपर बैठा दिया, किन्तु वह ज्यों ही वहाँसे लौटा त्यों ही अधिराजेन्द्रकी हत्या कर डाली गयी। अब प्रथम राजेन्द्रकी लड़कीका लड़का (प्राच्य चालुक्य राजाका पुत्र) द्वितीय राजेन्द्र चोल गद्दीपर बैठा। वह बाल्यवास्थासे ही चोलोंके दरबारमें रहता था। और जब १०६२ में उसके पिताकी वेंगीमें मृत्यु हो गयी तब उसने अपना राज्य पानेका हक छोड़कर अपने चचाको दे दिया था। कहा जाता है कि राजेन्द्र गंगैकोंडने उसे दत्तक भी लिया था। (किन्तु क्षत्रियोंमें लड़कीका लड़का दत्तक नहीं लिया जाता।) कुछ भी हो, वह बाकायदा सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने अपना नया राजवंश शुरु कर दिया। इस वंशको

स्मिथने चालुक्य चोल कहा है। वह ई० स १ १०७४ में गद्दीपर बैठा। स्मिथका मत है कि विक्रमांकके मारे गये साले अधिराजेन्द्रने, १०७०से १०७४ ईसवी तक राज्य किया था। राजेन्द्रने बड़े पराक्रमपूर्वक ४८ वर्षतक अर्थात् १०७० से १११८ तक राज्य किया। इसकी राजधानी गगैकोंड चोलपुर थी। स्मिथका कहना है कि इसने अनन्तवर्मन् चोड गंगको पराजित किया था। किन्तु यह पराजय नाम मात्रका ही मालूम होती है। क्योंकि हम देख चुके हैं कि कलिंगका यह चोड गंग राजा अत्यंत पराक्रमी थी। इस युद्धका वर्णन किसी तामिल कविने कलिंग तुप्परणी नामक काव्यमें किया है (गौरीशंकरका टॉड पृ० ४२८ और ई० पं० १६)। स्मिथने तामिल देशकी जिस सर्वे सेटलमेन्टका ज़िक्र किया है वह इसी राजाके समय हुई। इसके शासनकालमें और भी एक महत्त्वपूर्ण बात हुई। श्रीवैष्णव मतका सम्थापक रामानुज इसी के राज्यकालमें हुआ था। कहा जाता है कि इसी महान् साधु के शापके कारण अधिराजेन्द्र मारा गया था। इसके तथा इसके मतके विषयमें धर्म विषयक विशेष प्रकरणमें हम विशेष विवरणके साथ लिखेंगे। यहां तो हम केवल यही कह देना चाहते हैं कि शैव और वैष्णव मतोंका भयंकर विरोध यहींसे शुरू हुआ। तबसे इस झगड़ेने हिन्दूधर्मकी अत्यन्त दुर्दशा की और इसके पहलेकी सदीमें हिन्दूधर्ममें जो एकता थी वह हमेशाके लिए एक बारगी नष्ट होगयो।

दूसरे राजेन्द्रने कुलोत्तंग पदवी धारण की। इसके बाद ई० सन् १११८ में विक्रम चोल राज्यारूढ हुआ। वह भी पराक्रमी था। चालुक्य, पांड्य कलिंग आदि कुल-क्रमागत शत्रुओंसे उसके भी कई युद्ध हुए। उसके पराक्रमका वर्णन

एक स्वतंत्र काव्यमें किया गया है (इं० एं० २२ पृ० १४२)। इसके बाद ११३५ ई० में दूसरा कुलोत्तुंग गद्दीपर बैठा। उसने ११ वर्ष राज्य किया। और उसके बाद ई० सन् ११४५ में उसका पुत्र द्वितीय राजराज गद्दीपर बैठा। राजराजने १६ वर्षतक राज्य किया। ११६५ से १२६७ तक और भी चार राजा हुए—राजाधिराज (११७२), तृतीय कुलोत्तुंग (११७८), तृतीय राजराज (११६०) और तृतीय राजेन्द्र चोड (१२१६)। अंतमें पांड्य राजा जटावर्मन् सुन्दर पांड्यने चोलोंकी सत्ताको नष्ट किया। अलाउद्दीन खिलजीके सेनापति मलिक काफूरके समय ई० स० १३१० से १३११ में मुसलमानोंने दक्षिण भारतका जो उच्छेद किया वह प्रसिद्ध ही है।

इन चोल राजाओंके विषयमें कुछ सर्व सामान्य बातें भी हमें यहाँ लिख देना चाहिए। अपने लेखोंमें चोल अपनेको शिवि कुलोत्पन्न सूर्यवंशी क्षत्रिय बताते हैं। किन्तु, जैसा कि पहले कहा गया है, हरिवंशमें तो यह लिखा है कि चोल, पांड्य, केवल और कोल तुर्वसु कुलोत्पन्न चंद्रवंशी क्षत्रिय हैं। ये राजा शिवभक्त थे। चोलोंके पहले वंशके अंतमें दुर्भाग्यसे वे भी धर्ममूढ़ हो गये। हिन्दू राजा प्रायः परमतासहिष्णु होते हैं। किन्तु इन्होंने इस वृत्तिको छोड़ कर अपनी सत्ताका उपयोग जैन तथा वैष्णव मतको दबानेमें किया। उनकी यह बहुत भारी भूल थी। आगे चलकर इस विषयपर विस्तार पूर्वक लिखा जायगा। चोलोंके झण्डेका चिह्न व्याघ्र था। इन राजाओंने सोने चाँदीकी मुद्राएँ खूब ढलवायीं जो अभीतक उपलब्ध हैं।

तंजावरके चोलोंकी वंशावली ।

(गौरीशंकर टॉड पृ० ४२५ ४२६)

परातक
|
आदित्यवर्मन्
|
१ राजराज (९८५ १०१२)
| (कन्या) कुमारदेवी वेंगीके विनयादित्य चालुक्यसे व्याही गई ।
|
२ राजेन्द्र (१०१२ १०१८)
| (कन्या) राज राज विवाह अम्मगा ।
|
३ राजाधिराज (१०१८ १०५२) — ४ राजेन्द्रदेव (१०५२ १०६२)

५ वीर राजेन्द्र (१०६२ १०७२)
|
६ अधिराजेन्द्र (१०७२ में मारा गया)
|
७ राजेन्द्र कुलोत्तुंग (१०७० १११८)
|
८ विक्रम चोड (१११८ ११३५)
|
९ कुलोतुंग दूसरा (११३५ ११४६)
|
१० राजराज तीसरा (११४६ ११६५)
|
कुछ काल तक अराजकता
|
११ राजाधिराज दूसरा, इत्यादि (११७२)

पन्द्रहवाँ प्रकरण।

दक्षिणके महत्त्वपूर्ण मांडलिक राजवंश।

नर्मदाके दक्षिणमें दो बड़े बड़े राज्य थे जिन्हें हम साम्राज्य भी कह सकते हैं—महाराष्ट्र तथा कर्नाटकमें पश्चिमी चालुक्योंका राज्य और दक्षिण भारतमें चोलोंका राज्य। उसी प्रकार पश्चिम समुद्र-तटपर शिलाहारोंका स्वतंत्र राज्य था। और पूर्व समुद्रके किनारेपर त्रिकलिंगके प्राच्य गंगोंका राज्य था। इन सबका वर्णन हम कर ही चुके हैं। इन महत्वपूर्ण राज्योंके अतिरिक्त भी हिन्दू इतिहासके तीसरे काल विभागमें (ई० सन् १००० से १२०० तक) कुछ महत्त्वपूर्ण मांडलिक राजवंश थे। ये बारहवीं सदीके बाद तेरहवीं सदीमें अधिक शक्तिशाली बनकर स्वतंत्र भी हो गये। उनके कितने ही शिलालेख प्राप्त हुए हैं। तेरहवीं सदीका उनका इतिहास इस ग्रन्थके विषयके बाहर है तथापि उनकी प्रारम्भिक मांडलिक अवस्थाका इतिहास इस विभागमें दे देना जरूरी है। चौदहवीं सदीके आरम्भमें अलाउद्दीन खिलजीने और उसके सेनापति मलिक काफ़ूरने दक्षिण भारतका जो उच्छेद किया वह इतना महत्वपूर्ण है कि उसके लिए एक स्वतंत्र भाग करना होगा। किन्तु जिन राज्योंका आगे चलकर उच्छेद हुआ था वे यद्यपि बारहवीं सदीमें मांडलिक ही थे फिर भी उपर्युक्त कारणसे उनका इतिहास महत्वपूर्ण है, इसलिए इस भागमें उसे दे देना हम आवश्यक समझते हैं और इस प्रकरणमें हम यही करेंगे।

इस तरहका पहला महत्वपूर्ण राज्य देवगिरि (दौलताबाद) के यादवोंका था। हेमाद्रिने उनकी विस्तृत प्रशस्ति लिखी है।

उससे ज्ञान होता है कि इस राजवंशका मूल पुरुष दृढ़प्रहार था। जिला नासिकके चन्द्रपुरी अथवा चांदोरमें इसने ई० सन ८४२ के लगभग एक छोटे न राज्यकी स्थापना की (गौरीशंकरका टॉड और वाम्बे गजेटियर जिल्द १ भाग १)। इसके वंशजोंमें द्वितीय भिल्लम कल्याणके चालुक्य तैलपका बलवान् मांडलिक था। मालवाके मुंजके साथ तैलपका जो युद्ध हुआ था उसमें वह बड़ो बहादुरीके साथ लडा था। हम यह पहले कह हो चुके हैं कि इस युद्धमें मुंज कैद कर लिया गया था। भिल्लमका एक लेख ई० सन् १००० का लिखा हुआ मिला है। उसके वाद उसका पुत्र वेसुगी और वेसुगीके वाद उसका पुत्र तृतीय भिल्लम गद्दीपर बैठा। चालुक्य तृतीय जयसिंहको कन्या उसकी रानी थी और मांडलिक राजाकी हैसियतसे उसने जयसिंहको ओरसे उसके साथ अनेक युद्धोंमें भाग लिया था। इसके वाद और तीन राजा हो गये। तब सेउणचन्द्र राज्यारुढ हुआ। हेमचन्द्रकी प्रशस्तिमें लिखा है कि परमाडो विक्रमादित्यको कल्याणको गद्दी प्राप्त करा देनेमें उसने बड़ी सहायता की थी। ई० सन् १०६९ का लिखा हुआ उसका एक लेख भी मिला है। इसके बाद जब सात राजा और राज्य-कर चुके तब अपर गांगेयके पुत्र चतुर्थ भिल्लमने अपनी स्वतंत्रताकी घोषणा कर दी। इस समय कल्याणमें कलचूरी राजाओंके बलवेके कारण दक्षिणमें सोमेश्वर चालुक्यकी शक्ति क्षीण हो गयी थी। इसलिए भिल्लमकी बन आयी और इसने महाराष्ट्के उत्तर विभागमें स्वतंत्र राज्यकी स्थापना कर ली। इसने देवगिरि बसाकर ई० सन् ११८७ में वहां अपनी राजधानी भी कायम कर दी। इसका राज्य उत्तरमें नर्मदासे लेकर दक्षिणमें कृष्णा नदीतक फैला हुआ था। अवश्य ही इसे पड़ोसी

राज्योंसे युद्ध भी करने पड़े, विशेष कर होयसल यादवोंसे जिनका वर्णन आगे आयगा। इसके पुत्र जैतुगी अथवा जैत्रपालको काकतीय आन्ध्र राजासे लड़ना पड़ा था। इस युद्धमें आन्ध्र राजा रौद्र मारा गया और उसका पुत्र गणपति कैद किया गया। किन्तु जैतुगीने उसे मुक्त कर आन्ध्रके सिंहासनपर बैठा दिया। जैतुगी स्वयं विद्वान् और विद्वानोंका आश्रयदाता था। प्रसिद्ध दाक्षिणात्य ज्योतिषी भास्कराचार्य इसके कुछ ही पहले हो गया। उसका पुत्र लक्ष्मीधर जैतुगीका प्रधान दरबारी पण्डित था। जैतुगी ईसवी सन् १२१० में मर गया। उसके बाद उसका पुत्र सिंघण सिंहासनपर बैठा। यह इस कुलका दूसरा प्रतापी राजा था। देवगिरिके यादवोंका इतिहास हम यहीं छोड़ देते हैं। इसके बादका इतिहास आगे दिया जायगा। यह तो प्रसिद्ध ही है कि इस राज्यका उच्छेद अलाउद्दीन खिलजीने किया था।

दक्षिणका दूसरा उल्लेखनीय मांडलिक राज्य काकतीयोंका आन्ध्र राज्य है। यह देवगिरिके पूर्वमें था। काकतीय अपनेको सूर्यवंशी कहते हैं। उनका राज्य आन्ध्रमें पूर्व घाटके ऊपर था, जिसकी राजधानी अन्नमकोंड (जो आगे चलकर ओंङ्गलु या वरङ्गल हो गया) थी। चांदोडके यादवोंके समान ही ये आरम्भमें पश्चिमके चालुक्योंके मांडलिक थे। इनका स्वतंत्र राजा बेटाका पुत्र प्रोल था। उसने ई० सन् १११७ से राज्य करना प्रारम्भ किया। इसका एक लेख भी प्राप्त हुआ है (पेय्यर पृ० २७७)। इस लेखका काल चालुक्य-विक्रम ४२ वाँ दिया हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि तबतक यह मुल्क चालुक्योंकी अधीनतामें ही था। प्रोलने दीर्घकालतक अर्थात् ई० सन् ११६० तक राज्य किया। इसके विषयमें वर्णन पाया जाता

है कि इसने तृतीय तैलपको परास्त किया था। इसके बाद इसका पुत्र रुद्र गद्दीपर बैठा। यह निःसन्देह प्रबल राजा था। कहा जाता है कि इसने कई शहरोंपर आक्रमण कर उनको उध्वस्त किया और वहांके लोगोंको ओरंगलुमें लाकर बसाया था। इसने कई देवालय बनवाये और अनेकों विद्वानोंको आश्रय दिया। इसकी सत्ता इतनी प्रबल हो गयी थी कि कांचीसे लेकर विंध्याचल तकके सभी राजा इसका आश्रय ग्रहण करते थे (ऐय्यर)। इसके बाद इसका छोटा भाई महादेव ई० सन् ११८९ में गद्दीपर बैठा। ऐय्यरका ख्याल है कि जैतुगी यादवके साथ युद्ध करते हुए जो काकतीय राजा मारा गया था, वह यही होगा। गणपति महादेवका पुत्र था, जो ईसवी सन् ११६८ में सिंहासनारूढ़ हुआ। यह बड़ा प्रतापी राजा था। इसने ६२ वर्षतक राज्य किया। इसके समयके कोई शिलालेख उपलब्ध हुए हैं। उनमें राज्यके ६२ वें वर्षका लिखा एक लेख भी है। इसने चोल, कलिंग, सेउण, कर्नाट, लाट वेलनाडु इत्यादि राजाओंसे युद्ध किया। देवगिरिके साथ इसका जो युद्ध होता था उसे तो पड़ोसी शत्रुओंके बीच परम्परासे चलनेवाली लड़ाई ही समझना चाहिये। ऐसे युद्धोंमें कभी एककी, और कभी दूसरेकी विजय होती थी। इसका आखिरी लेख ई० सन् १२५० का है। इसके कोई लड़का नहीं था, केवल एक लड़की थी। उसका नाम था रुद्रम्मा। रुद्रम्माने उसके बाद ३० वर्षतक राज्य किया। उसके बाद आखिरी राजा प्रतापरुद्र सिंहासनपर बैठा। यह विद्वानोंका प्रसिद्ध आश्रयदाता था। वैद्यनाथने अलंकार शास्त्रपर जो उत्कृष्ट ग्रन्थ बनाया था, वह इसीको अर्पित किया गया था। इसी कारण उस ग्रन्थको प्रतापरुद्रीय कहते हैं। अतमें इस राज्यको मुसलमानोंने नष्ट भ्रष्ट कर डाला, यह तो

प्रसिद्ध ही है। मध्यप्रदेशके वर्तमान वस्तर नरेश इन्हीं काकतीयोंके वंशज हैं।

तीसरा महत्वपूर्ण राज्य था हलेबीड़ अथवा द्वारसमुद्रके होयसल नामक यादवोंका। ये भी प्रारम्भमें पश्चिमी चालुक्योंके अधीन थे। बल्कि राष्ट्रकूटोंके समयसे ही ये उनके अधीन रहे होंगे। इनका पहला प्रसिद्ध राजा विनियादित्य था। ईसवी सन् १०४० में लिखा हुआ इसका एक लेख भी मिला है (गौरीशंकर टॉड पृ० ३३३)। इसके पुत्र एरयंगके तीन लड़के थे। उनमेंसे ज्येष्ठ बल्लाल चालुक्य राजा जयसिंहका प्रसिद्ध मांडलिक था। उसकी राजधानी वेलापुर (अर्थात् वर्तमान वेलूर) थी। किन्तु बल्लालके बाद बेट्टिग अथवा विष्णुवर्धन स्वतंत्र हो गया और उसने अपनी स्वतंत्र राजधानी भी बनायी। कल्याणके बलवान् साम्राट् विक्रमांकसे युद्ध कर उसने अपनी स्वाधीनता नष्ट कर डाली। यद्यपि वह विक्रमको पराजित नहीं कर सका तथापि अन्य पडोसी राजाओंको उदाहरणार्थ गंग, कदम्ब, तुलुप और पाण्ड्योंको, उसने पूर्णतया पराजित कर दिया। उसके समयके कई लेख ई० स० १११५ से लेकर ११३८ तकके उपलब्ध हुए हैं (गौरीशंकर)।

इसने रामानुजको आश्रय देकर वैष्णवमतका प्रचार किया था। इसलिए इसका राज्यकाल बहुत प्रसिद्ध है। उस सत्पुरुषने उसे वैष्णवमत स्वीकार करनेके लिए भी बाध्य किया। द्वारसमुद्रमें अपनी राजधानी बनाकर उसने वहां विष्णुका मंदिर भी बनवाया, जो अभीतक देखनेवालोंको चकित कर देता है। वेलूरमें भी उसने एक विशाल विष्णु-मंदिर बनवाया था।

उसके बाद उसका पुत्र नरसिंह राज्यारूढ़ हुआ। इसने ११७३ ई० तक राज्य किया। नरसिंहका पुत्र वीरबल्लाल इस

कुलका अत्यंत बलिष्ठ राजा था। आखिरी चालुक्य राजा सोमेश्वरके सेनापति ब्रह्मको इसने पराजित किया था। ईसवी सन् ११६१ में देवगिरिके यादव राजाको भी पराजित कर इसने कुंतल देशको अपने राज्यमें शामिल किया। उस समय दक्षिण भारतमें ये दो प्रबल साम्राज्य थे—देवगिरिके यादव और द्वारसमुद्रके होयसल। स्वाधीन राजाओंके साथ जो 'महाराजाधिराज' पद लगाया जाता है, उसे इसीने पहले पहल धारण किया। कई वर्षतक राज्य कर यह ई० सन् १२२० के लगभग मर गया। तब इसका पुत्र नरसिंह राज्यारूढ़ हुआ। होयसल राजवंशकी सत्ता इसके समयसे घटने लगी। किन्तु फिर भी सौ वर्ष तक इनका राज्य सुदृढ बना रहा। अंतमें १३१० ई० में वह मलिक काफ़ूर द्वारा नष्ट किया गया।

चौथा उल्लेखनीय राज्य पांड्योंका था। वह स्वतंत्र नहीं हुआ, इस कालविभागमें मांडलिक ही बना रहा किन्तु था वह बड़ा प्राचीन और प्रसिद्ध राज्य। महाभारतमें चोलोंके साथ साथ पांड्योंका भी उल्लेख है और रामायणमें उनके साथियों (अर्थात् चोलों) को छोड़कर केवल उन्हींका उल्लेख है। कालिदासने इन्दुमतीके स्वयम्वरमें एक पांड्य राजाका उल्लेख किया है और उसमें उसकी राजधानी उरगपुर बतायी है। इस राजधानीको और उसके साथ ही साथ पांड्योंकी सत्ताको भी करिकाल चोलने (ईसवी सन् १०० के लगभग) नष्ट कर दिया। तबसे कई सदियोंतक पांड्य या तो चोलोंके या और किसीके मांडलिक बनकर रहे। उनकी राजधानी मदुरा थी। इसका उल्लेख प्लीनीने भी किया है। इससे मालूम होता है कि कालिदास प्लीनीके पहले अर्थात् ईसाके पूर्व पहली सदीमें हुआ था, क्योंकि उसने पाड्योंकी मदुरा

राजधानीका उल्लेख न कर उरगपुरका उल्लेख किया है। अस्तु, यह तो प्रसंगवश कह दिया गया। इस काल विभागमें (१०००-१२००) पाँड्य पराधीन ही रहे। हम देख चुके हैं कि ग्यारहवीं सदीके आरम्भमें ही चोल राजा राजराजने दक्षिण भारतमें अपना सम्राज्य कायम कर लिया था। तेरहवीं सदीमें जटावर्मन् सुन्दर पांड्य स्वतंत्र हो गया और उसने अपने विस्तृत राज्यकी स्थापना की (१२५१-७१)। कीलहार्नने पांड्योंकी सिलसिलेवार वंशावली ईसवी सन् ११०० से १५६७ तककी दी है। किन्तु उसे यहांपर देनेकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि पाँड्य ई० सन् १२०० के बाद स्वतंत्र हुए थे। मलिक काफ़ुरकी चढ़ाई १३-० ई० के लगभग हुई थी। यद्यपि उसने पांड्योंकी सत्ताको बहुत ही कमजोर बना दिया था तथापि वे दक्षिण भारतमें (मदुरा और तिनेवल्ली जिलेमें) बहुत वर्षतक राज्य करते रहे। ताम्रपर्णी नदीके मुखपर मोतियोंकी उत्पत्तिसे उन्हें खूब कर मिलता था। इस तरह इस विभागके पांड्योंका थोड़ासा इतिहास देकर अब हम चेर अथवा केरलोंके इतिहासका वर्णन करेंगे।

श्री० पी० सुन्दर-पिल्ले एम्०ए० ने केरल अथवा मलाबार और त्रावणकोरके प्राचीन इतिहासकी भली भाँति खोज कर उसे इं० एं० ३५ में छपाया है (पृ० २५६ २५५)। उनकी इजाज़तके लिये बिना ही हम उसमेंसे खास खास बातें पाठकों-के सामने रखते हैं। केरल अथवा चिरलके मानी हैं पर्वतीय प्रदेश। इसमें उत्तरमें भारतके पश्चिम किनारे परका मलाबार और दक्षिणमें त्रावणकोरतक का प्रदेश सम्मिलित है। कभी कभी कोंगू भूमि अर्थात् वर्तमान सेलम तथा तिनेवल्ली जिले-का भी समावेश केरलमें होता था, पर हमेशा नहीं। उत्तरमें

हिमालयके समान हो इस सुदूर दक्षिणी कोनेमें अत्यंत पुराने द्रविड तथा आर्यवंश हैं और उन्होंने अपनी समाज-व्यवस्था, रीतिरस, तथा धर्म आदिको ज्योंके त्यों एक पत्थरके समान मजबूत पकड रखा है। अर्थात् द्रविडी, कनिकर या ठेठ जंगली लोगोंसे लेकर नबुद्री ब्राह्मण अर्थात् आर्य ब्राह्मणोंके उच्चतम नमूनेतक बीचके सब प्रकार आपको यहाँ मिलेंगे। आद्य शंकराचार्य इसी नबुद्री जातिके ब्राह्मण थे। भाषा, मनु व्यवशोत्पत्ति, सामाजिक व्यवस्था, वैवाहिक रीतियां आदिका अध्ययन करने योग्य काफी सामग्री इस प्रान्तमें है। क्योंकि यहाँ न तो आंतरिक महान् घटनाएँ घटीं और न चढ़ाइयाँ आदि बाहरी आपत्तियां ही आयीं जिनके कारण वहांकी शांति और व्यवस्थामें खलल पडता। वास्तवमें ठीक बात तो यह है कि नबुद्री ब्राह्मणोंका और नायर (नागर) क्षत्रियोंका यह देश एक रीतिसे विशेष स्मरणीय है। क्योंकि यहींसे शंकराचार्यके नेतृत्वमें एक धार्मिक चढ़ाई हुई थी और उसने समस्त भारत वर्षको जीत लिया था। पूर्व किनारेपर रहनेवाले पांड्योंके समान पश्चिम किनारेपरके इन केरलोंका इतिहास महाभारत रामायण कालतक पहुँचता है। संस्कृत ग्रन्थोंमें पांड्य, चोल, और केरलका उल्लेख प्रायः साथ साथ ही पाया जाता है।

त्रावणकोरका वर्तमान राजवंश बहुत पुराना है। उसके दफ्तरोंमें जो लेख हैं उनसे वर्तमान राजासे लेकर पैंतीस पुश्तों तक अर्थात् १३३५ तककी घटनाओंका पता लगता है। किन्तु इससे पहलेके इतिहासके लिए तो हमें शिलालेखोंका ही आश्रय लेना पडेगा। श्री पिल्लेने इसी प्रकार खोज कर लेखोंका एक कालक्रमानुगत वृत्तान्त लिखा है। सबसे पहले हमें यह कह देना चाहिए कि त्रावणकोरमें जो वर्णमाला

(अलफावेट) प्रचलित है वह संस्कृत अक्षरोंसे भिन्न है। इन अक्षरोंको वट्टेलुत्तु अर्थात् चेर-पांड्य कहते है। त्रावण-कोरका शक भी भिन्न है। उसका नाम कोल्लमशक है और ई० स० ८५५ उसका आरम्भवर्ष है। शिलालेखोंमें प्रथम त्राव-णकोरके राजाका नाम वीरकेरलवर्मन् पाया जाता है। यह ११३५ ई० के लेखमें मिलता है। यह राजेन्द्र चोलका मांडलिक था। उसके नामसे इसने एक शिवालय भी बनवाया था। वेनाड अर्थात् त्रावणकोर एक सुशासित देश था। वहांपर कर अनाजके रूपमें तथा नगदीके रूपमें भी वसूल होता था। चोल और चालुक्योंसे पहले पहल इसीने शक्ति प्राप्त की। ११२४ ई० के दूसरे एक शिलालेखमें भी इसका नाम है। इस समयकी राज्यपद्धतिमें ग्रामसभा और मंदिरके अधिकारीका भी समावेश किया हुआ पाया जाता है।

ईसवी सन् ११६१ के एक शिलालेखमें इसके बादके राजा का नाम रविवर्मन् पाया जाता है। इसने ठेठ दक्षिणके इलाके सहित त्रावणकोरपर बिलकुल स्वतंत्रतापूर्वक राज्य किया, क्योंकि इस समय राजेन्द्रकी मृत्युके कारण चोलोंकी सत्ता बहुत घट गयी थी। ईसवी सन् ११७२ के लेखमें इसके बादके राजाका नाम वीर उदय मार्तण्ड पाया जाता है और ई० स० ११८६ के लेखमें आदित्यराम नामक राजाका उल्लेख मिलता है। श्री पिल्लेका मत है कि इसने उत्तरमें कपदेश अथवा कुपकोंमें देशको तथा मलाबारके कुछ हिस्सेको जीतकर अपना राज्य बढ़ाया था। इसके बाद ११६३ ई० के लेखमें द्वितीय केरलवर्मन् नामक राजाका नाम पाया जाता है। एक ग्रन्थमें यह त्रिखडी भी कहा गया है। इसके बादका राजा वीरराम-वर्मन् त्रिखडी था जिसका विस्तृत वर्णन ११६६ ई० के शिला-

लेखमें पाया जाता है। इस लेखमें छ सौ आदमियोंको एक सभाका जिक्र है जो देवालयोंकी देखमाल किया करती थी। उसी प्रकार राज्यके अठारह विभागोंके अधिपतियोंका भी वर्णन है। इससे प्रतीत होता है कि यहाँका शासन जनताके प्रतिनिधियों द्वारा संचालित किया जाता था। यह व्यवस्था प्राचीन कालकी व्यवस्थाका अवशेष है। इसके बादके राजाओंके नाम वीरराम, केरलवर्मन् और वीर रविवर्मन् थे। इनमेंसे केरलवर्मनका एक लम्बा चौड़ा लेख, जो ई० सन् १२३५ में लिखा गया था, प्राप्त हुआ है। उसके आधारपर श्री पिल्लेने बताया है कि उस समय केरल राज्यमें जमाबन्दी-की व्यवस्था किस प्रकारकी थी। त्रावणकोरका वर्तमान राजवंश बारहवीं सदीके जितना प्राचीन है। तब उसकी राजधानी त्रिवेन्द्रम थी। वहाँकी राज्यव्यवस्था प्राचीन कालसे ही सुरक्षित और ग्रामसंस्थाओंके अधीन थी।

तुंगभद्राके उत्तरस्थ प्रदेशका, अर्थात् वर्तमान दक्षिण महाराष्ट्रका नाम पहले कुंतल देश था। इसमें चार मांडलिक राजवंश राज्य करते थे। उनका उल्लेख भी इस भागमें कर देना जरूरी है, क्योंकि वे इसी कालविभागके हैं। यद्यपि वे स्वतन्त्र नहीं थे, तथापि काफी शक्तिसम्पन्न थे। वर्तमान निजामके राज्यान्तर्गत येलबुर्गके शिंदेका राजवंश उनमेंसे एक है। कानडी भाषामें लिखे हुए इनके कुछ लेख पाये गये हैं। बम्बई गजेटियर जिल्द १ भाग २ (पृ० ५७२ ५७५) में इनका इतिहास दिया हुआ है। उसके आधारपर संक्षेपमें हम उनका वृत्तान्त अपने वक्तव्य सहित नीचे देते हैं। इस लेखमें इसको "शिंदेवाडी, नाड़" कहा है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये शिंदे मराठे थे और कानडी भाषा-भाषी प्रान्तपर

इनका राज्य था। (जैसा कि भाग १ में कहा गया है कानडे और मराठोंके बीचका भेद काल्पनिक है। अर्थात् यह वंशगत नहीं, भाषागत भेद है)। बीजापुर जिलेके बादामीसे इनका मुल्क शुरू होता था और उसमें जिला धारवाडके बागलकोट और नेरलका समावेश भी होता था। एपि० इंडि० ७ पृ० ३०६ पर एक और शिंदे कुलका उल्लेख है। उसमें मुंजका वर्णन किया गया है "भोगावती पुरवराधीश्वर नागवंशतिलक प्रत्यंडक चतुःसहस्र राजा"।* हमारा तो ख्याल है कि पहले विभागमें जिस सेंद्रक कुलका जिक्र आया है उसीकी यह परम्परा होगी। वहाँ कर्नाटकमें कृष्णा और तुंगभद्राके बीचकी किसी जमीनका दान देनेके विषयमें प्रार्थना करनेके सिलसिलेमें पुलकेशी चालुक्यके मामा सेनानंदराज सेन्द्रकका जिक्र आया है (भाग १)। यह कुल नागवंशी था। येलबुर्गके शिंदे भी नागवंशी थे, और वर्तमान सेंधिया भी कदाचित् उन्हींके प्रतिनिधि और नागवंशी हैं।

उत्तर चालुक्योंकी अधीनतामें येलबुर्गके ये शिंदे अत्यन्त शक्तिसम्पन्न माण्डलिक थे। इनमें पहला प्रसिद्ध राजा आचुगी था। इसके दो पुत्र थे। उनके नाम थे बम्म और सूर्य। इनका उल्लेख १०७६ ईसवीके एक लेखमें हुआ है। बमका पुत्र आच अथवा द्वितीय आचुगी, विक्रमादित्यका पराक्रमी सेनापति था। उसने एक होयसल राजाका पराभव किया था। ईसवी सन् ११२२ के एक लेखमें इसका उल्लेख है। आचुगीके दो पुत्र थे, पेर्माडी और द्वितीय चोकंड। इनका उल्लेख ११४४ और ११६३ के लेखोंमें है।

---

*भारतवर्षमें शिंदे लोगोंके तो अनेक कुल हैं। उदाहरणार्थ इंडि० एंटि० १४ में और भी एक शिंदे का उल्लेख है जो तालुका कहादका है।

चोकंडके चार पुत्र थे। एक रानीसे तो तृतीय आचुगी और पेर्माडी तथा दूसरी पत्नीसे विज्जल और विक्रम। इन चारोंका उल्लेख ११६८ से ११८० तकके लेखोंमें पाया जाता है। कल्याणके उत्तर चालुक्योंकी सत्ता नष्ट होनेपर तथा होयसलोंके उत्कर्ष होनेपर इस शिंदे कुलकी सत्ता भी कम हो गयी और वह स्वतंत्र नहीं होसका। अंतमें इन लोगोंका देश देवगिरिके यादवोंके उस विशाल राज्यमें शामिल कर लिया गया जो तुंगभद्रातक फैला हुआ था।

दूसरा उल्लेखनीय राजवंश था सौदत्तोके रट्टोंका। इनका इतिहास बम्बई गजेटियर, जिल्द १ भाग २ पृष्ठ ५४६-५५५ पर फ़्लीटने दिया है। उसीका सारांश हम यहां दिये देते हैं। स्पष्ट ही ये राजा महाराष्ट्रके किसी राष्ट्रकूट सम्राट्के वंशज होंगे। इनका राज्य 'कुंडी ३०००' अर्थात् वर्तमान वेलगाँव या धारवाड जिलेके एक भागपर था। इनकी राजधानी पहले सौदत्ती (सुगन्धावती) और बादमें स्वयं वेलगांव (वेणुग्राम) थी। गजेटियरको उनके राष्ट्रकूट वंशमें जन्म लेनेके विषयमें सन्देह है। किन्तु राष्ट्रकूटोंके बदले 'रट्ट' शब्दका प्रयोग तो ठेठ नवीं सदीसे ही पाया जाता है। आज कलके रेड्डी भी रट्ट अथवा राष्ट्रकूट ही हैं। वे स्वयं ही अपनेको लट्टलूरपुरवराधीश्वर कहते हैं। उनका लांछन सिंदूर (हाथी) है और ध्वजापर तथा मुहरपर भी सोनेका गरुड़ है। ये राजा पहले पहल पश्चिमी चालुक्योंकी अधीनतामें थे। किन्तु कलचूरीके विद्रोहके समय वे स्वतंत्र हो गये। वे सेंधियोंके जैसे बलवान् नहीं थे, इसलिए होयसलोंने उनको पराजित कर दिया। किन्तु अन्तमें उनका प्रदेश भी देवगिरिके यादवोंके राज्यमें शामिल हो गया।

इनका पहला मुख्य राजा प्रथम कार्त्तवीर्य अथवा कत्त था। इसका उल्लेख ६८० ईसवीके एक शिलालेखमें है। यह द्वितीय तैल (आहवमल्ल) का मांडलिक था। इसने अपने कुंडीके राज्यकी सीमा निश्चित कर दी। इसके दो पुत्र थे, दावरी और कन्नकैर। कन्नकैरके पुत्र एरगने ई० सन् १०४० में संस्कृत लेख लिखवाया था (इं० एं० १६ पृ० १६१)। उसमें वह अपनेको जयसिंह अथवा जगदेकमल्लका सामंत कहता है। उसकी विरुदावलिमें 'रट्टवंशोद्भव-लट्टलूरपुरवराधीश्वर गरुड़ध्वज' आदि पद हैं। एक पदमें इसे गायन-विद्याका विद्याधर कहा है। एक जैन दानलेखमें भी इसका उल्लेख है। प्रोफे० पाठकने इं० एं० १४ पृ० २३ पर उसे छपाया है। इसका भाई अंक था जिसका उल्लेख सौदत्तीके १०४८ ई० के लेखमें हुआ है। उसके लड़केका नाम प्रथम सेन था। सेनका पुत्र द्वितीय कन्नकैर था जिसके १०६६ से १०८७ ई० तकके कई लेख उपलब्ध हुए हैं। अपने भाई द्वितीय कार्तवीर्यके साथ साथ इसने कई वर्षतक राज्य किया। यह विक्रमादित्य छठेका सामंत था, इस तरह इसका वर्णन पाया जाता है। इसका पुत्र द्वितीय सेन था जिसका उल्लेख १०६१ से ११२१ ई० तकके अनेक लेखोंमें पाया जाता है। द्वितीय सेनका पुत्र था तृतीय कार्तवीर्य। इस कार्तवीर्यके १ ४३ ई० से लेकर ११६६ ई० तक के कितने ही लेख पाये गये हैं। उनमें इसे 'कत्त' अथवा 'कत्तम' कहा है। कल्याणके कलचूरी-विद्रोहसे फायदा उठाते हुए इसने ११६५ ई० के बाद स्वाधीनताकी घोषणा कर दी। बल्कि एक लेखमें तो अपनेको चक्रवर्ती भी कह डाला है (बम्बई ज० रा० ए० सो०, २० पृ० १८२)। यद्यपि सोमेश्वर चालुक्यने इसका विरोध किया तथापि यह राजवंश तीन

पुरतोंतक स्वाधीनताका उपभोग करता रहा। अर्थात् इसका पुत्र प्रथम लक्ष्मीधर, लक्ष्मीधरका पुत्र चतुर्थ कार्तवीर्य और पुन कार्तवीर्यका पुत्र द्वितीय लक्ष्मीधर भी स्वाधीन रहा। अंतमें इस लक्ष्मीधरको देवगिरिके सिङ्घण यादवके अधिकारी विचणने लगभग १२२८ ई० में जीत लिया। ये रट्ट शिवभक्त थे। किन्तु जैनोंपर भी इनकी कृपा बनी रहती थी और कितने ही जैन देवालयोंको इन्होंने दान भी दिये।

तीसरा महत्वपूर्ण मांडलिक राज्य हनगलके कदम्बोंका था। ये कदम्ब बहुत प्राचीन मराठा कुलके हैं। अशोकके राष्ट्रकूट अर्थात् रट्ट अथवा राष्ट्रिकोंका कुल जितना प्राचीन था, उतना ही इनका कुल भी था। ये सभवतः प्राचीन चालुक्योंके समकालीन कदम्बोंके ही वंशज थे और कदाचित् उन्हींके कुल गोत्रादिके होनेके कारण अपने लेखोंमें अपनेको चालुक्योंके मानव्य गोत्र और हारीत पुत्र-वंशके बताते थे। प्रारम्भमें वे बनवासीमें राज्य करते थे। ये कदम्ब भी अपनेको बनवासी पुराधीश ही कहते हैं और उसी मुल्कपर इनका राज्य भी था। उसके अलावा भी धारवाड़ जिलेका हनगल ५०० का प्रदेश उनके अधीन था (शिलालेखोंमें कहीं कहीं हन्नु राल भी मिलता है)। उनका लांछन सिंह था और झंडेपर कपीश्वर हनुमानका चिह्न रहता था। वे विष्णुके अर्थात् बनवासी या जयन्तीके मधुकेशवके उपासक थे। बम्बई गजेटियर जिल्द १ भाग २ पृ० ५५६-५६३ पर फ्लीटने इनका जो इतिहास दिया है उसीका सारांश हम नीचे देते हैं।

इन कदम्बोंकी विस्तृत वंशावली पहले इं० ए० १० पृ० २४६ पर छपे हुए उनके लेखमें (११०८ ई०) पायी जाती है। इस कालविभागमें राज्य करनेवाला पहला राजा द्वितीय कीर्ति-

वर्मन् ई० सन् १०५८ में राज्य कर रहा था। वह सोमेश्वर चालुक्य और छठे विक्रमादित्यका सामन्त था (इं० एं० ४ पृ० २०६)। इसके बाद इसका लड़का द्वितीय शान्तिवर्मन् वनवासी १२०० और हनगल ५०० पर छठे विक्रमादित्यके समय १०८९ ई० में राज्य करता था। इसके पुत्र तैलके अनेक लेख प्राप्त हुए हैं। वे १०९९ से ११२८ तकके हैं और उनमेंसे करगुदरीके ११०८ ई० के लेखका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। ये सभी लेख हनगल तालुकामें ही मिले हैं। हनगल राजधानीको पांथीपुर और विराटनगर भी कहते थे। होयसल विष्णुवर्धनने घेरा डालकर इसे अपने अधीन कर लिया था। ११३५ में वह मर गया। उस समय उसके पुत्र मयूरवर्मन् और मल्लिकार्जुन उसके सहकारी बनकर राज्य करते थे। यहाँपर यह बात कह देनी चाहिए कि दक्षिणके इस राज्यमें युवराज (पुत्र अथवा बन्धु) एक साथ ही राज्य करते हैं। ऐसा उल्लेख मिलता है कि ईसवी सन् ११४७ में उसका तीसरा पुत्र तैलप हनगलमें अकेला ही राज्य करता था। इस बातका भी प्रमाण उपलब्ध हुआ है कि इसका पुत्र कामदेव ई० सन् ११८९ में हनगल वनवासी और पुलिगेरीपर चालुक्योंके आखिरी राजा चतुर्थ सोमेश्वरकी अधीनतामें राज्य करता था। उसको होयसलके प्रसिद्ध राजा वीरवल्लालने जीत लिया। इसके अतिरिक्त कदम्बोंकी और भी मांडलिक शाखाएँ थीं। किन्तु वे उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं। इसलिए हम इस कुलकी एक दूसरी महत्वपूर्ण शाखाकी ओर झुकते हैं जो गोवामें राज्य कर रही थी।

गोवाके ये कदम्ब इसी राजवंशके हैं। किन्तु हनगलके कदम्बोंके शिलालेखोंमें कदम्बोंकी जो उत्पत्ति दी है उससे इनके

अपने लेखोंमें बतायी हुई उत्पत्ति भिन्न है। इन्होंने गोवाको दक्षिण कोंकणके शिलाहार राजाओंसे जीता था। इसके अतिरिक्त जिला बेलगाँवके तालुका खानापुरके अंतर्गत घाटपरके प्रदेशको भी इन्होंने अपने अधीन कर लिया था। यह प्रदेश तब पलसिगे कहा जाता था। ये सप्त कोटीश्वर नामक शिवलिंगके उपासक थे, विष्णुके नहीं। ये अपने लेखोंमें कलियुगी संवत्का उपयोग करते हैं, शालिवाहन शकका नहीं। इनके लेख भी कानडीमें नहीं, संस्कृत भाषामें लिखे गये हैं। इन बातोंको छोडकर अन्य सब बातोंमें इनमें तथा अन्य कदम्बोंमें समानता है। अर्थात् ये भी मूलत. बनवासीके रहनेवाले हैं और इनका लाञ्छन सिंह तथा झंडेपरका चिह्न वानर है। इनका गोत्र मानव्य और वंश हारीतपुत्र ही है। महासेन मातृगण प्रसाद लब्ध लक्ष्मी आदि विशेषणोंका प्रयोग ये भी करते हैं। ये विशेषण पुराने कदम्बोंके लेखोंसे ही आये हैं (बाम्बे जर्नल ९ पृ० २३५)। ये अपने पूर्वके राजाओंके नाम देनेकी झंझटमें न पड कर अपनी वंशावली गुहलसे शुरू करते हैं। गुहलका पुत्र षष्ठदेव अथवा छट्ट था जिसका ई० सन् १००७ का लिखा एक लेख भी प्राप्त हुआ है। इसी कदम्ब कुलकी हनगल शाखामें पहले जिस राजा छट्टका उल्लेख आया है, वह यही होगा। और इसका समय ई० सन् १००० के आस पास पाया जाता है। इससे नयी शाखा भी शुरू हुई होगी। इसका पुत्र जयकेशी बलिष्ठ राजा था। गुडिकट्टि लेख में इसका विशद वर्णन किया गया है (बाम्बे ज० रा०, ए० सो० भा ९ पृ० २९२)। ऐसा उल्लेख मिलता है कि कपर्दी द्वीपके किसी मावनी नामक राजाको इसने मार डाला था। गजेटियरके ख्यालसे कपर्दी द्वीपके मानी हैं वर्तमान साष्टी

द्वीप। ठानेके अनंतदेव राजाके लेखमें जिस आपत्तिका उल्लेख आया है, हमारा ख्याल है, उससे इस चढ़ाईका कोई सम्बन्ध न होगा। यह भी वर्णन मिलता है कि चोल ✠ और चालुक्य (विक्रमादित्य छठे) राजासे भी इसने मित्रता कर ली थी। गोवाको भी पहले पहल इसीने अपनी राजधानी बनाया था। इसका निश्चित समय १०५२-१०५३ है। गुजरातके कर्णकी रानी मैनल्लदेवी जिसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वह कदम्बोंकी राजकन्या थी, गजेटियरके मतानुसार इसी राजाकी लड़की रही होगी। इसके बादके राजा विजयादित्यके पुत्र द्वितीय जयकेशीको विक्रमांक चालुक्यने अपनी लड़की अर्थात् सोमेश्वरकी बहिन दी थी † (इं० ए० १४ पृ० २८८)। मालूम होता है कि यह विवाह बाल्यावस्थामें ही कर दिया गया था। इस राजाके निश्चित समय ईसवी सन् १११९ और ११२५ है। इस दूसरे लेखमें विक्रम चालुक्य शक वर्ष ५० लिखा है। इसका मुख्य राज्य पलसिगे १२०० और कोंकण ९०० ही था। किन्तु विक्रमका दामाद होनेके कारण इसकी अधीनतामें अन्य प्रदेश भी थे। यह अपनेको कोंकण चक्रवर्ती कहने लगा और स्वाधीनता प्राप्त करनेकी इसकी इच्छा भी हुई। इसलिए विक्रमके मांडलिक प्रथम आचुगीने चढ़ाई करके इसे पराजित कर दिया। आचुगीके लेखमें वर्णन है कि उसने गोवा

✠ चालुक्यचोलभूपालौ कांच्यां मित्रे विधाय यः
पेर्माडितूर्यनिर्घोषेऽप्यासीद्र राज पितामहः।
(बाम्बे ज० रा० ९ पृ० १४२)

† श्रीपेर्माडिनृपः पयोनिधिनिभः पोमानुजां कन्यकाम्।
यस्मै विस्मयकारि भूरि विभवै र्दत्तेभ कोशादिभिः॥
× × × ×
ख्यातः श्रीपतये स मैलल महादेवीं कृतार्थोऽभवत्।

और कोंकणको अपने अधीन कर लिया किन्तु ११४७ में लिखे हुए लक्ष्मणके लेखमें लिखा है कि सोमनाथको कोई दान देते समय यह प्रदेश नज़रके बतौर उसे प्राप्त हुआ था (गजे॰ पृ० ५६६)। जयकेशीके दो पुत्र थे, पेर्माडी और विजयादित्य। ये दोनों क्रमशः शिव और विष्णुके भक्त थे। उनकी पदवी मलवेरमार थी, जो होयसलोंकी भी पदवी थी। विजयादित्य बड़ा विद्वान् था। उसे वाणीभूषणकी उपाधि प्राप्त हुई थी। एक लेखमें उसके नामके साथ इस उपाधिका उल्लेख किया गया है। उसमेंसे आवश्यक अंश हम नीचे उद्धृत करते है।* पेर्माडीकी रानी सोमवंशोत्पन्ना कमलादेवीने दो सुन्दर देवालय बनवाये, एक नारायणका और दूसरा लक्ष्मीका। धारवाड जिलेके संपगाव तालुकामें वे अबतक हैं। उनमें वे लेख भी हैं जिनमें पेर्माडीकी तिथि ई० सन् ११४७ पायी जाती है। मालूम होता है कि इस समयके बाद विजयादित्य भी उसके साथ साथ राज्य करने लगा था। ईसवी सन् ११५८ के शिलालेखोंमें (इं० एं ११ पृ० २७३) तथा हलशीके ११७१ ईसवीके लेखमें (कलियुगी वर्ष ४२७२) भी दोनोंके नाम पाये जाते हैं। एक शिलाहार लेखमें वर्णन है कि कन्हाडके राजा विजयादित्यने गोवाके इस राजाको पुन गद्दीपर बैठा दिया। इससे प्रतीत होता है कि बीचमें किसीने इसका राज्य छीन लिया था। जो हो, ये राजा शक्तिशाली अवश्य थे और इन्होंने अपने सिक्के भी बनवाये थे। पेर्माडीकी ईसवी सन् ११८२ में ढाली गयी एक सुवर्ण मुद्रा प्राप्त हुई है।

---

* भृगौ कुन्ते प्रान्ते, धनुषि विषमे चासिफलके। वरे वाद्ये गीते सरसकविताशास्त्रविसरे। तुरंगा धारोहे स्मृतिषु च पुराणेषु पुरजित्। परिज्ञानाधोभूजगति बहुविद्याधर इति॥

ऐसा प्रतीत होता है कि विजयादित्यका पुत्र जयकेशी ई० सन् ११८७ में गद्दीपर बैठा। इसके राज्यके तेरहवें और पंद्रहवें वर्षके लेख प्राप्त हुए हैं (११९९ ई०, १२०१ ई०)। ईसवी सन् १२०० और १२१० में ढाली गयी इसकी सुवर्ण मुद्राएँ भी प्राप्त हुई है। इसका पुत्र त्रिभुवनमल्ल और उसका पुत्र छट्ट अथवा षष्ठदेव द्वितीय ईसवी सन् १२४६ में राज्यारूढ़ हुआ। इसके राज्यके पाँचवें वर्षका अर्थात् १२५० ई० का गोवामें लिखा हुआ इसका एक लेख प्राप्त हुआ है। हुबली तालुकामें इसका और लेख १२५७ ई० का भी मिला है। उससे प्रतीत होता है कि यह स्वतंत्र राजा था। पता नहीं, यह राजवंश किस समय, कैसे नष्ट हुआ, क्योंकि इसके बादका इनका कोई लेख नहीं मिला। बहुत संभव है, देवगिरिके यादवोंने इनको जीत लिया हो (ज० ब० रा० ए० सो०, पृ० २४७)। हरिवर्मन् इत्यादि इनके बिलकुल प्रारम्भके पूर्वज जैन लेखोंमें भी अपनेको 'मानव्यसगोत्र' आदि कहते हैं। जिला बेलगाँवमें पलसिगे स्थानपर ऐसे कितने ही जैन-लेख प्राप्त हुए हैं (बम्बई ज० रा० ए० सो० ९ पृ० २३५-२४१)।

अंतिम मांडलिक राजवंश, जिसका उल्लेख करना आवश्यक है, कन्हाड अथवा कोल्हापुरका शिलाहार राजवंश है। यह शुद्ध मराठा क्षत्रिय राजवंश था और इसके तमाम लेख संस्कृतमें ही पाये जाते हैं। आदिमें शिलाहारोंकी तीन शाखाएं हो गयीं और ठाना, राजापूर (खारे पाटण) तथा कोल्हापुरमें बंट गयीं। ये राष्ट्रकूटोंके मांडलिक थे। इनमेंसे ठानेके शिलाहार, जैसा कि पहले कहा गया है, राष्ट्रकूटोंके पतनके बाद स्वतंत्र हो गये। किन्तु कन्हाडके शिलाहार-चालुक्य सत्ताके केन्द्रके नजदीक होनेके कारण, महामंडलेश्वर

ही बने रहे। तथापि वे शक्तिशाली हो गये और उन्होंने कोंकण के शिलाहारोंका प्रदेश अपने अधीन कर लिया। सणफुल्ल द्वारा स्थापित दक्षिण कोंकणकी (राजापुरकी) शाखा इस कालविभागमें नष्ट हो गयी। अर्थात् इस विभागमें केवल दो ही शाखाएँ रह गयीं—एक तो ठानेकी और दूसरी कन्हाडकी।

ये शिलाहार कन्हाड १४००० मिरज ३००० कुंडी ४००० और दक्षिण कोंकणपर राज्य करते थे। इनकी राजधानी कन्हाड थी। इनका मुख्य किला पनाल (प्रणालक) था। अर्थात् आधुनिक मराठोंके इतिहाससे भी इस किलेका नाम संलग्न है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इनकी उत्पत्ति विद्याधर वंशसे हुई और ये तगरमें राज्य करते थे। इनका लांछन सुवर्ण गरुड था और ये अपनेको महाक्षत्रिय कहते थे (एपि० इंडि० पृ० २०९)। ये कोल्हापुरकी महालक्ष्मीके भक्त थे। इनका ख्याल था कि उसीके प्रसादसे हमें यह ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है। ठानेके शिलाहार शिवभक्त थे। उनकी कुल स्वामिनी पार्वती अथवा भागवतमें वर्णित आर्या द्वैपायनी थी। इन सब बातोंसे यह निस्सन्देह सिद्ध होता है कि ये दोनों कुल मूलतः एक ही थे।

कन्हाडके इन शिलाहारोंका इतिहास बम्बई गॅजेटियर जिल्द १ भाग २ में डॉ० फ्लोटने पृ० ५४४ पर दिया है और डॉ० भांडारकरने दक्षिणके इतिहासमें पृ० ६२ पर दिया है। दोनों ही शिलालेखोंके आधारपर लिखे गये हैं। हम भी उन्हींके आधारपर इस कालविभाग (१०००-१२००) के जेतिग दूसरेसे लेकर आगेका इतिहास सक्षेपमें यहाँ देते हैं। जेतिगके चार लडके थे। उनमेंसे गोंकके पुत्र नरसिंहका ईसवी सन् १०५८ में लिखा हुआ एक लेख प्राप्त हुआ है। नरसिंह शक्तिशाली

राजा था। इसने कितने ही मन्दिर बनवाये। संभवतः इसके पहले ही गोंकने दक्षिण कोंकण जीत लिया था। लेखमें कहा गया है कि नरसिंह खिलिगिलि किलेपरसे राज्य करता था। फ्लीटके मतानुसार इस किलेका ठीक ठीक पता अभी नहीं लगा है। किन्तु यह पनालाके किलेसे जरूर दूर रहा होगा। डॉ० भांडारकरका तो ख्याल है कि यह पनाला किलेका ही दूसरा नाम था। फ्लीटका मत है कि विक्रमांककी प्रसिद्ध रानी चंद्रलेखा संभवतः इसी नरसिंहकी लड़की थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह शिलाहार राजाकी कन्या थी और कल्याणमें विक्रमके राजतिलक होनेका समय १०७६ ई० है। इसलिए यह तर्क असंगत नहीं प्रतीत होता। नरसिंहने कई वर्ष राज्य किया।

नरसिंहके पाँच पुत्र थे। सभी उसके बाद क्रमशः राज्यपर आरूढ़ हुए। ज्येष्ठ गूवल था। उससे छोटा था भोज। इन दोनोंके शिलालेख प्राप्त हुए हैं। तीसरे लड़केका नाम बल्लाल था, ऐसा एक कानडी लेखमें उल्लेख पाया जाता है (इं० एं० १२) सबसे छोटा लड़का गंडरादित्य था। इसके तो कई लेख प्राप्त हुए हैं। लेखोंमें वर्णन है कि इसने प्रयागमें एक लक्ष ब्राह्मणोंको भोजन कराया था। मिरज प्रान्तमें इसने एक बड़ा भारी तालाब बनवाया था और उसके किनारेपर शिव, बुद्ध, तथा जिनदेवके मन्दिर बनवाये थे। इसकी राज्यव्यवस्था अच्छी और न्यायपूर्ण थी (भांडारकर)।

गंडरादित्यके बाद विजयादित्य राज्यारुढ़ हुआ। इसके ई० सन् ११४८ और ११६३ के लिखे दो लेख प्राप्त हुए हैं। एक लेखमें किसी जैन मन्दिरको एक गाँव देनेका उल्लेख है और प्रारम्भमें जिनदेवको नमन किया गया है (एपि. इंडि. ३ पृ. २०७)। इसमें संक्षेपमें विजयादित्यकी वंशावली

भी, स्तुतियोंसे रहित, स्पष्ट रूपमें दी गयी है। हाँ, दान करनेके कारण उसकी उदकी प्रशंसा अवश्य की गयी है। इसमें विजयादित्यके नामके साथ कई विरुद लगाये गये हैं। उनमेंसे कितने हो तो कानडी हैं। सबसे आश्चर्यजनक विरुद "शनवार सिद्धि" है। पता नहीं इसके मानो क्या हैं। इस जैन लेखमें भी यह लिखा है कि महालक्ष्मीके प्रसादसे उसको यह वैभव प्राप्त हुआ है, जिससे स्पष्ट है कि ये शिलाहार हिन्दू थे किन्तु यह भी साफ जाहिर होता है कि ये राजा जैनोंको चाहनेवाले थे। इसलिए जिस प्रकार कुमारपालके समय गुजरातमें जैन धर्मका प्रचार हुआ, उसी प्रकार महाराष्ट्रमें इसके समयमें जैन धर्म खूब फैला। इसके पुत्र द्वितीय भोजके दानलेखसे पता चलता है कि विजयादित्य बड़ा प्रतापी राजा था और उसने ठानेके शिलाहार राजा (संभवतः मल्लिकार्जुन) को अपना राज्य पुनः प्राप्त करनेमें बड़ी सहायता दी थी। गोवाके कदम्बोंकी भी उसने सहायता की थी। मालूम होता है कि ११५७ ई० में कल्याणके चालुक्योंकी सत्ता छीननेमें विज्जल कलचूरीको भी सहायता इसीने की थी। अब तो विजयादित्यकी सत्ता अवश्य ही बहुत बढ़ गयी होगी। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि उसके पुत्र द्वितीय भोजने स्वाधीनताकी घोषणा कर दी। उस समयके लिखे हुए एक जैन ग्रन्थमें यह 'महाराज पश्चिम चक्रवर्ती' कहा गया है। पाठकोंको स्मरण होगा कि उत्तरके शिलाहार भी इसी समय अपनेको चक्रवर्ती कहलाने लगे थे।

द्वितीय भोजके ई० सन् ११७६ से लगाकर १२०५ तकके अनेक लेख उपलब्ध हुए हैं। उसने ब्राह्मणों और जैन देवालयोंको भी दान दिये थे। एपि० इंडि० ३ पृष्ठ २१४ पर छपे

हुए दानलेखमें दो करहाटक ब्रैसास ब्राह्मणोंका उल्लेख है। इन नामोंका महत्त्व हम आगे चलकर बतावेंगे। किन्तु यहाँ इतना जरूर कह देना चाहते हैं कि ब्राह्मणोंके गोत्र भेदके स्थानमें उपनाम अथवा आन्तरिक भेदोंका उल्लेख पहले पहल इसी लेखमें पाया जाता है। उसी प्रकार मराठे सरदारोंको इसी लेखमें पहले पहल नायक पदवी दी गयी है। भोज था तो शक्तिशाली किन्तु वह अपनी स्वाधीनताकी रक्षा नहीं कर सका। प्राच्य चालुक्योंके बाद साम्राज्य प्राप्त करनेवाले यादवोंने उसे जीत लिया। ईसवी सन् १२०५ के बाद इस कुलका कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता। इसलिए यह प्रायः निश्चित है कि शासक वंशकी हैसियतसे शिलाहारों (शेलारों) का अस्तित्व यहीं समाप्त हो गया।

वंशावली

१ शिलाहारोंकी वंशावली

१ जतिग दूसरा

गोंक — तीन बंधु

गोंक → नरसिंह १०५८

नरसिंह → गूवल, भोज, बल्लाल, गंडरादित्य, विजयादित्य

विजयादित्य → भोज दूसरा ११७९–१२०५

(२) सोंदत्तीके रट्टोंकी वंशावली

कार्तवीर्य पहला (९८० ई० सन्)

कन्नकैर पहला

एरग (१०४० ई०) — अंक (१०४८)

सेन पहला

कन्नकैर दूसरा (१०६८–१०७६ १०८२–१०८७) — कार्तवीर्य दूसरा १०६९,१०७६,१०८६,१०८७

सेन दूसरा (१०९६,११०२,११२८)

कार्तवीर्य तीसरा (११४३–११६५)

लक्ष्मीदेव पहला

कार्तवीर्य चौथा ११९९ और १२१८ — लक्ष्मीदेव दूसरा १२२० — मल्लिकार्जुन १२०१–६

(३) गोवाके कदम्बोंकी वंशावली

गुहल

छट्ट अथवा षष्टदेव (१००७–१००८)

जयकेशिन् पहला (१०५२–१०५३)

विजयादित्य

जयकेशिन दूसरा (१११९–११२५)
| रानी मैनलदेवी विक्रमादित्य ६ की कन्या

शिवचित्त पेरमाडी (११४७–११४८) — विष्णुचित विजयादित्य दूसरा (११५८–११७२)

जयकेशिन् तीसरा (११८७–१२१०)

त्रिभुवनमल्ल

छट्टय शिवचित्त, षष्टदेव दूसरा (१२४६–४७, और १२५७)

(४) हनगलके कदम्बोंकी वंशावली

छट्ट (१०००)
|
जयसिंह (१०२०)
|
मावली तैल पहिला (१०४०) — शान्तिवर्मन् (१०८९)

मावली तैल पहिला → कीर्तिवर्मन् दूसरा

शान्तिवर्मन् → तैल दूसरा (१०९९–११२९)

तैल दूसरा → मयूर वर्मन् दूसरा (११३१), मल्लिकार्जुन (११३२–११४५), तैलप (११४९)

मल्लिकार्जुन → कीर्तिदेव दूसरा (१०६८)

तैलप → कामदेव (११८१–१२०३)

सोलहवाँ प्रकरण।

उत्तर भारतके महत्त्वपूर्ण मांडलिक राजवंश।

इस काल-विभागमें उत्तर भारतमें राज्य करनेवाले जिन जिन मांडलिक राजवंशोंके शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनका इतिहास हम इस प्रकरणमें संक्षेपतः देना चाहते हैं। उत्तरके पूर्व कोनेकी तरफ नज़र दौड़ाते ही आपको पहले पहल आसामका राज्य दिखाई देगा। भारतके इतिहासमें आजतक आसाम या तो स्वतंत्र रहता आया है या बङ्गालका मांडलिक बन कर रहा है। इस काल-विभागमें एक ब्राह्मण सेनापति वैद्यदेव आसाममें राज्य करता था। उसने अपने अधिराज गौड़ेश्वर कुमारपालकी ओरसे एक दानलेख लिखवाया था (एपि० इंडि० २ पृ० ३५१)। इसका उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। फिर विहार अथवा अङ्गदेशका मांडलिक राजा राष्ट्र-

कूट महण था जो गौड़के रामपालका मामा था। इनका भी जिक्र पहले किया जा चुका है। बङ्गाल और विहारमें और भी मांडलिक रहे होंगे। किन्तु उनमें आसाम (कामरूप) और विहार (अंग) मुख्य देख पड़ते हैं।

अब पालोंके गौड़ राज्यके दक्षिणमें हमें दक्षिण कोसलके अन्तर्गत रत्नपुरमें हैहय कलचूरी राजाओंको एक शाखा दिखाई देती है। कीलहार्नने इनकी वंशावली इस तरह दी है (एपि० इंडि० ८)—कोकल्लके अठारह लड़के थे। उनमेंसे सबसे छोटे लड़केके वंशज कलिंगराजने इस देशको (दक्षिण कोसलको) जीत लिया। उसके बाद उसका पुत्र कमलराज और कमलराजके बाद उसका पुत्र रत्नराज गद्दीपर बैठा। रत्नपुर इसीने बसाया और वहाँपर एक सुन्दर शिवालय भी बनवाया। इसलिए "शिवके सतत सान्निध्यके कारण यह नगर कुबेरपुरीसे स्पर्धा करने लगा"। रत्नराजके लड़केका नाम था पृथ्वीराज और पृथ्वीराजका पुत्र था प्रथम जाजल्ल। इसका ई० सन् ११९४ को लिखा हुआ एक लेख उपलब्ध हुआ है। एपि० इंडि० १ पृ० ३४ पर लिखा है कि इसने अपने गुरु रुद्रनसिंहके लिए एक गाँव एक शिवालयको दिया था। इसने जाजल्लपुर नामक शहर बसाया था। इसके पुत्र द्वितीय रत्नदेवने त्रिकलिंगके प्राच्य गंगोंको पराजित किया था, ऐसा वर्णन मिलता है। प्रथम जाजल्लका पुत्र द्वितीय पृथ्वीदेव था, जिसका एक लेख, ई० सन् ११४१ का लिखा हुआ, प्राप्त हुआ है (इं० एं० १० पृ० ८४)। द्वितीय पृथ्वीदेवका पुत्र द्वितीय जाजल्ल था। इसका भी ई० सन् ११६७ का लिखा एक दानलेख प्राप्त हुआ है (एपि० इंडि० १ पृ० ४०)। द्वितीय जाजल्लका लड़का तृतीय रत्नदेव था। उसका भी ई०

सन् ११८१ का एक लेख उपलब्ध हुआ है (इं० एं० २२ पृ० ८२)। तृतीय रत्नदेवका लड़का तृतीय पृथ्वीदेव था, जिसका एक लेख ई० सन् ११६० का लिखा हुआ मिला है (एपि० इंडि० पृ० ४७)। यह राजवंश स्वतंत्र जान पड़ता है। त्रिपुरके हैहय राजकुलसे इसका माण्डलिकी सम्बन्ध नाममात्रका ही रहा होगा। यह देश उनके लेखोंमें तोमर कहा गया है। ये लोग शिवभक्त और वैदिक धर्माभिमानी क्षत्रिय थे, क्योंकि इनके लेखोंमें इनका गोत्र कृष्णात्रेय प्रवरों सहित दिया गया है (एपि० इण्डि० १ पृ० ४०)।

अब युक्त प्रान्तका अवलोकन कीजिए। अवध, अंतर्वेद और बुंदेलखंडमें निःसन्देह अनेक मांडलिक राजवंश रहे होंगे। किन्तु हमें तो केवल दो ही राजवंशोंका पता लगा है और वे अभीतक कायम हैं। वर्तमान युक्तप्रान्तमें गौतमोंका प्रसिद्ध राजपूतकुल है। फतहपूर गजेटियरमें लिखा है कि यह कुल बहुत पुराना है और इसका गोत्र भारद्वाज है। अर्गलके किसी गौतम राजाके साथ जयचंद्रकी बहिनका विवाह हुआ था। जयचंद्रका खजाना जिस अस्नीके किलेमें रहता था, सम्भव है, वह इन्हींकी अधीनतामें रहा हो। दूसरा राजवंश सेंगरोंका था। इनका एक लेख भी प्राप्त हुआ है। छत्तीस राजकुलोंकी सूचीमें इनका भी नाम है। इनके वर्तमान वंशज जगभनपुरके महाराज हैं। जगभनपुर जिला जालौनमें है। इनकी एक छोटीसी शाखा जिला इटावाके अंतर्गत भरेहमें है।

सेंगर कुलका जो लेख मिला है वह बनारससे जारी किया गया था। शायद यह दान देनेवाला राजा यहाँ तीर्थ-यात्राके निमित्त गया होगा। ईसवी सन् ११२४ में जब कि गोविन्दचन्द्र राज्य करता था, सेंगर कुलके वत्सराजने ब्राह्मणोंको

एक गाँव दानमें दिया था । इस लेखकी शैली ठीक वैसी ही है जैसी कि गाहड़वालोंकी होती है । इसमें लिखा है कि इनमें पहले पहल राजपट्टी अर्थात् मांडलिकी मुकुट प्राप्त करने वाला पुरुष सिंगरोटसे आया था । वत्सराजके पूर्वजोंके नाम इस तरह दिये हैं—(१) कमलपाल, (२) रल्हण, (३) कुमार, (४) लोहडदेव और (५) दान देनेवाला वत्सराज। इससे अनुमान होता है कि कुलस्थापक कमलपाल ई० सन् १०५० के लगभग हुआ होगा। अर्थात् उसका राज्य गाहड़वालोंके उदयके पहले था। इस कुलमें प्रचलित कथाके अनुसार कनारके विशोकदेवको जयचन्दकी लडकी व्याही गयी थी । इनका वंश धर्मनिष्ठ, वैदिक धर्मानुयायी क्षत्रिय कुल रहा है। इस लेखमें इनके गोत्रका नाम शाण्डिल्य बताया गया है (एपि० इंडि० ४ पृ० १३१)। बहुधा इस समयके लेखोंमें गोत्र लिखा हुआ नहीं होता।

यह एक उल्लेखनीय बात है कि कनारकी भरेहवाली मुख्य शाखाके राजा भगवन्तदेवके समयमें, जो भोजादि राजाओंके समान ही विद्वान् और पण्डितोंका चाहनेवाला था, नीलकंठ भट्टने हिन्दू धर्मपर एक प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा था। इस राजाके नामसे ही उसने उसे भगवन्तभास्कर कहकर प्रसिद्ध किया था। 'व्यवहार-मयूख' इस ग्रन्थका एक हिस्सा मात्र है। किन्तु वह बम्बई अहातेके कोंकण, गुजरात, आदि कितने ही भागोंमें हिंदू लॉका आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है।

अब यहाँसे और भी पश्चिमकी ओर आगे बढ़ने पर हमारी नजर उन यादवोंपर पडती है जो मथुरा और महावनमें ई० सन् ११५० तक राज्य करते थे। इन यादवोंकी एक शाखाने ईसवी सन् ९९३ में बियानामें एक राज्यकी स्थापना की। उनका ईसवी सन् ११४३ का लिखा एक लेख बियानामें मिला

है। मुसलमान इतिहासकारोंसे पता चलता है कि शहाबुद्दीनने इस स्थान पर चढ़ाई की थी। उसने ईसवी सन् ११९३ में कुँवरपालको पश्चिमकी ओर मार भगाया। करौलीके वर्तमान राजवंशका आदि पुरुष यही कुमारपाल था (गौरीशङ्कर कृत टॉड)।

इसके बाद अब मेरठ और बदायूँके राजाओंका उल्लेख करना चाहिये। जैसा कि महमूदके इतिहासमें कहा गया है. मेरठमें डोर राजपूत राज्य करते थे। हस्तिनापुर मेरठ जिलेमें गङ्गाके किनारेपर है। शायद ये डोर राजपूत पाण्डवोंके वंशज भी हों। पाण्डवोंके वर्तमान वंशज तुवर माने जाते हैं। बदायूँके पुराने किलेमें एक लेख मिला है जिससे सिद्ध होता है कि वहाँ राष्ट्रकूटोंकी एक शाखा राज्य करती थी (एपि० इंडि० १ पृ० ६४)। इस लेखमें काल नहीं दिया गया है। इसके सम्बन्ध में हम पहले ही विस्तारपूर्वक विचार कर चुके हैं। उसमें इन राजाओंके नाम क्रमशः दिये हुए हैं—१ चंद्र, २ विग्रहपाल, ३ भुवनपाल, ४ गोपाल, ५ त्रिभुवनपाल, और उसका पुत्र ६ मदनपाल (इसके विषयमें यह कहा गया है कि इसके पराक्रमके कारण हम्मीर गङ्गातक नहीं आ सका), ७ देवपाल बन्धु, इसके बाद ८ भीमपाल, ९ शूरपाल, १० अनन्तपाल, ११ लक्ष्मणपाल (उसका भाई)। कुतुबुद्दीनने ई० स० १२०८ में बदायूँपर कब्जा किया था, इससे हम कह सकते हैं कि ये ग्यारह राजा ईसवी सन् १००० से लेकर १२०० तक राज्य करते रहे होंगे।

ये राठोड़ और गाहड़वाल, उसी प्रकार अङ्गदेशके राष्ट्रकूट भी, एक ही वंशके थे। वे सूर्यवंशी थे और दक्षिणके मालखेड़के राष्ट्रकूटोंसे (जो चंद्रवंशी थे) भिन्न थे। इस विषयकी ये सब

बातें हम पहले ही लिख चुके हैं। पं० गौरीशंकरका मत है कि मध्यभारतके राठोड़ और गुजरातके हथोड़ी (राजपूताना) के राठोड़ दक्षिणके राठोड़ोंके वंशज हैं (टॉड, पृ० ३६४)। जोधपुरके राठोड़ उत्तरके राठोडोंके वंशज हैं और गाहड़वालों की तरह ही वे सूर्यवंशी हैं, चाहे उनके कुलमें परम्परासे प्रचलित कथामे यह अनुमान भले ही निकलता हो कि वे दक्षिणसे आये हैं। राष्ट्रकूट नाम अधिकारके विषयमें है। इसलिए नाम-सादृश्य होते हुए भी मनुष्य भिन्न कुलका हो सकता है। अतः वे मालखेड़के राष्ट्रकूटोंसे भिन्न हैं।

काठियावाड़में चूडासमा और जाड़ेजा नामक यादव हैं। यह उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि ये दोनों राजवंश इस काल-विभागमें राज्य कर रहे थे। कहा जाता है कि इनमेंसे जाड़ेजा गजनीसे आये थे। अवश्य ही वे महमूदके पहले आये होंगे। पर इस विषयमें किसी शिलालेख इत्यादिका आधार नहीं मिलता। काठियावाड़में सबसे अधिक महत्वपूर्ण राजकुल गुहिलोंका है (भावनगरके वर्तमान शासक इसी राजकुलके हैं)। इनका एक लेख भी प्राप्त हुआ है। उससे पता चलता है कि ये गुजरातके चालुक्योंके मांडलिक थे। ये गुहिल मेवाडके गुहिलोतोंसे भिन्न हैं। चन्दके रासोमें दी हुई छत्तीस राजकुलोंकी सूचीमें इनका नाम पृथक् दिया हुआ है।

इनके बादका महत्वपूर्ण मांडलिक राजवंश आबूके परमारोंका है। ये मूलतः आबूके ही रहे होंगे, क्योंकि इनकी उत्पत्ति-कथामें यह वर्णन है कि पहला परमार आबू पर्वत परके वसिष्ठके अग्निकुंडसे पैदा हुआ था। आबूका पहला प्रसिद्ध राजा धूमराज था। पर हमारे कालविभागके आरम्भमें जो परमार राजा राज्य करता था उसका मन्त्री देवल था।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि इसी देवलने देलवाड़ामें ईसवी सन् १०२३ में आदिनाथका एक सुन्दर देवालय बनवाया था। इसका लड़का पूर्णपाल गुजरातके भीमका सामन्त था। वह १०४५ में राज्य करता था। उसके पुत्र ध्रुवभट और ध्रुवभटके पुत्र रामदेवका उल्लेख आबू पर्वत परकी तेजपाल-वस्तुपालकी प्रशस्तिमें है। रामपालके बाद उसका पुत्र विक्रमसिंह राजा हुआ। कुमारपालका अर्णोराजसे जो युद्ध हुआ उसमें विक्रमसिंह अर्णोराजसे जा मिला। तब कुमारपालने आबूका माडलिक राज्य उसके भतीजे यशोधवलको दे दिया। उसका पुत्र प्रसिद्ध वीर धारावर्ष था। महम्मद गोरीके साथ हिन्दुओंका जो युद्ध हुआ था उसमें वह गुजरातकी सेनाका अधिपति था। यह युद्ध सन् ११७८ में हुआ और गोरी पूर्णतया पराजित हुआ। मुसलमान इतिहासकारोंने भी यह बात कबूल की है। चालुक्योंपर जो प्रकरण लिखा गया है, उसमें हम कह आये हैं कि उस समय गुजरातका राजा मूलराज नाबालिग था। कुतुबुद्दीनके साथ ईसवी सन् ११९७ में जो युद्ध हुआ था, उसमें गुजरातकी सेनाके अधिपतियोंमेंसे एक धारावर्ष था। इस युद्धमें उसकी हार हुई। उसके समयके अनेक लेख ११६३ से लेकर १२०८ ई० तकके प्राप्त हुए हैं (गौरीशंकरका टॉड पृ०३८४)। रासोमें आबूके राजाओंमें जेता और सलखके नाम भी दिये हैं। पण्डित गौरीशंकरका ख्याल है कि ये नाम काल्पनिक हैं। किन्तु हो सकता है कि ये धारावर्षके छोटे भाई हों और छोटे होनेके कारण पृथ्वीराजके दरबारमें जाकर उसके सरदार बन गये हों।

नड्डूलके चोहानोंका वंश भी पराक्रमी था, इसलिए यहां उनका भी उल्लेख कर देना जरूरी है। सांभरके चोहानोंकी यह

एक शाखा थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पहला राजा लक्ष्मण वाक्पति राजाका छोटा भाई था (भा० २)। इसके वंशज नड्डूलमें राज्य करते थे। वे गुजरातके चालुक्योंके मांडलिक थे और उनकी ओरसे हमेशा लड़ते भी थे, उदाहरणार्थ आसराज नामक एक राजा कुमारपालका सेनापति बनकर मालवराजसे लड़ा था। आसराज एक प्रतापी राजा था। इसने कई देवालय तथा तालाव बनवाये और विद्वानोंको आश्रय दिया। इसके छोटे भाई माणिकरायसे बूंदी कोटाके वर्तमान प्रसिद्ध राजवंशकी उत्पत्ति हुई है (गौरीशङ्करका टॉड पृ० ४०८)। इसके पुत्र अल्हण और पौत्र कल्हणके दो लेख संवत् १२०६ और १२३४ अर्थात् ११५२ और ११६७ ईसवीके प्राप्त हुए हैं। कल्हणका छोटा भाई भी एक प्रसिद्ध राजा होगया। आबूके नजदीक शहाबुद्दीन गोरीका जो पराभव हुआ था उस लड़ाईमें यह हिंदू सैन्यकी ओरसे लड़ा था। जालोर तथा दूसरे कितने ही किले इसकी अधीनतामें थे। जब अल्लाउद्दीनने जालोरपर चढ़ाई की और अल्तमशने मंडावर पर आक्रमण किया था, तब यह मुसलमानोंसे लड़ा था। प० गौरीशंकरका मत है कि अल्लाउद्दीनने जालोरके अन्तिम राजा कन्हडदेवके समय जालोरपर चढाई की थी। (टॉड पृ०४०)

अब हम उत्तरभारतके जिन दो आखिरी राजपूत राजवंशोंका उल्लेख करेंगे वे हैं ग्वालियरके कच्छपघात और दिल्लीके तोमर। इन्हींसे वर्तमान प्रसिद्ध कछवाहा और तुवरों की उत्पत्ति हुई है। कच्छपघात कुलके अनेक लेख पाये गये हैं। उनमें दो मुख्य हैं एक तो वह जो ग्वालियर किलेमें सासबहू नामक मन्दिरमें मिला था और दूसरा वह जो उसी राज्यमें ग्वालियरसे ७६ मीलकी दूरीपर नैऋत्य कोणमें दुभकुण्डके जैन

देवालयमें प्राप्त हुआ था। इनके आधारपर कच्छपघातोंका इतिहास हम नीचे लिखते हैं। प० गौरीशंकरके टॉड और कीलहार्नकी वंशावली एपि० इंडि० ८ से भी सहायता ली है।

इन कच्छपघातोंका राज्य, पहले पहल ग्वालियर राज्यके नरवरमें था। यह प्रसिद्ध राजा नलका निषध देश है जिसकी कथा महाभारतमें कही गयी है। भवभूतिके मालतीमाधवमें वर्णित सिंधुपारासंगम भी यही है। इस राजवंशमें वज्रदामन् नामक एक राजाने कन्नौजके प्रतिहार सम्राटोंकी गिरी दशामें ग्वालियरका किला छीन लिया। ई० सन् ९७७ के लगभग इसका राज्य ग्वालियरमें था (ज० रा० ए० सो० बंगाल ३१ पृ० ३९३)। इस लेखमें उसे महाराजाधिराज कहा है। इससे मालूम होता है कि वह सम्भवतः स्वतन्त्र रहा होगा। किन्तु यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि शीघ्र ही उसे बुन्देलखंडके चन्देलोंका आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। अतः अलबेरूनीने चन्देलोंकी अधीनतामें ग्वालियर और कालिंजर इन दो मजबूत किलोंके होनेका जिक्र किया है सो ठीक ही है। वज्रदामनका पुत्र मंगलराज था। कहा जाता है कि इसी मङ्गलराजके छोटे लडकेसे जयपुर और अलवरके वर्तमान कछवाहा राजवंश उत्पन्न हुए हैं। ग्वालियरमें मङ्गलराजका पुत्र कीर्तिराज गद्दीपर बैठा। ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि इसने मालवेश्वर अर्थात् भोजको पराजित किया था। महमूद गजनवीने इसी कीर्तिराजके समय ग्वालियरपर चढाई की होगी। कीर्तिराजने उससे सुलह कर ली। तीस हाथी देकर नाममात्रके लिए उसका मांडलिकत्व स्वीकार कर उसने बुद्धिमत्ता पूर्वक अपने राज्यको बचा लिया। उसका पुत्र मूलदेव था। इसीका नाम त्रैलोक्यमल्ल अथवा भुवनमल्ल था। मूलदेवका देवपाल उर्फ

अपराजित और अपराजितका लड़का पद्मपाल था जिसका भतीजा महीपाल अथवा भुवनैकमल्ल था। इसी भुवनैकमल्लने सासबहूके मन्दिरमें मिला हुआ उपर्युक्त लेख ई० सन् १०९३ में लिखवाया (इ० ए० १५, पृ० ३६)। उपर्युक्त सभी वृत्तान्त इस लेखमें लिखा है। इसमें यह भी लिखा है कि कीर्तिराजने सिंहमन नगरमें पार्वतीपतिका एक देवालय बनवाया था। ग्वालियर किलेके सासबहूके मन्दिरमें रखा हुआ यह लेख लिखनेसे (११५० संवत) कुछ ही पहले महीपाल गद्दीपर बैठा था। यह मन्दिर विष्णुका है। इसका प्रारंभ पद्मपालने किया था। इसलिए इसका नाम भी पद्मनाथ है। मालूम होता है, इस राजाके समयसे कछवाहा लोग वैष्णव हो गये और अभीतक बने हुए हैं। इस बातके विषयमें लोगोंमें बड़ा गलत ख्याल फैला हुआ है कि इस मन्दिरका नाम सासबहूका मन्दिर कैसे रखा गया। हमारा तो ख्याल है कि इस नामसे केवल बड़े और छोटे मन्दिरका ही मतलब है। ग्वालियर गजेटियरमें इस शब्दकी व्युत्पत्ति ठेठ सहस्रबाहुसे जोड़नेका यत्न किया गया है। किन्तु न तो शिवका ही नाम सहस्रबाहु है और न विष्णुका ही, इसलिए यह व्युत्पत्ति ठीक नहीं मालूम होती। सासबहूका छोटा मन्दिर बड़े मन्दिरका सा ही है और वह ईसवी सन् ११०८ में बनाया गया था (इ.ए १६ पृ० २०१)

महीपालके बाद पण्डित गौरीशंकरने आगे लिखे हुए राजाओंके नाम मितियों सहित दिये हैं (टॉड पृ० ३७३)। पुत्र त्रिभुवनपाल अथवा मधुसूदनपाल (ग्वालियर गजेटियर) ई० स० ११०४, इसका पुत्र विजयपाल ई० स० ११३२, इसका लड़का शूरपाल ई० स० ११५५ और युवराज अनङ्गपाल। इसके बादका राजा सम्भवत सोलंखपाल होगा जिसके समय में

शहाबुद्दीनने ई० स० ११९६ में ग्वालियरके किलेके आसपास घेरा डाल दिया था। किन्तु ग्वालियर गजेटियरमें तो लिखा है कि ई० स० ११२९ में ही परिहारोंने कच्छवाहोंसे ग्वालियरका किला ले लिया था। यदि यह सच हो तो यह सोलंखपाल परिहार सिद्ध होगा। मालूम होता है कि अन्तमें यह किला कुतुबुद्दीनके हाथमें चला गया। किन्तु श्रीमान् बलवन्तराव भैया साहब सेंधियाके द्वारा प्रकाशितग्वालियरनामामें लिखा है कि उस किलेको पुनः परिहारोंने ले लिया और जैसा कि बादमें कहा गया है अलतमशने उसे पुनः जीत लिया। मुसलमानोंकी राजधानी दिल्ली नजदीक है, यह सोचकर शायद कच्छपघात उस किलेको छोड़कर दूर कहीं चले गये होंगे अथवा शायद वे नरवरको ही लौट गये होंगे।

ग्वालियरके नैऋत्यमें ७६ मीलकी दूरीपर दुभकुंड है। वहाँ भी इनकी एक शाखा राज्य करती थी। इसके दो लेख प्राप्त हुए हैं (ई० ए० १४ पृ० १०) (एपि० इंडि० पृ० २९३) जिनमें बड़ा मनोरंजक वृत्तान्त लिखा हुआ है। इनमें जिस पहले राजाका उल्लेख है वह है युवराज। युवराजके पुत्रका नाम अर्जुन दिया हुआ है इसने कन्नौजके प्रतिहार राज्यपालको बाणोंसे मार डाला। चन्देल राजा गंड और ग्वालियरके कच्छपघात राजा कीर्तिराजके नेतृत्वमें संयुक्त राजपूत सेनाने राज्यपालपर चढ़ाई की। उसी समय यह घटना घटी। इसका पुत्र अभिमन्यु था। लिखा है कि यह घोड़ेपर बैठने तथा शस्त्रास्त्र चलानेमें अत्यन्त कुशल था। स्वयं मालवेश्वर भोजदेवने तभी इसकी प्रशंसा की है।* इसका पुत्र विजयपाल

*यस्यास्यद्भुतवाहवाहनमहाशस्त्र-प्रयोगादिषु।
प्राविण्यं प्रविकत्थितं पृथुमतिश्रीभोजपृथ्वीभुजा॥ दुभकुंड ले० ई० रा० ३

था जिसका समय ई० सन् १०४४ था। विजयपालका पुत्र था विक्रमसिंह (१०८८ ई०)। यह शाखा ग्वालियरके राजवंशकी मांडलिक रही होगी। ग्वालियरके राजा यद्यपि नाममात्रको चन्देलोंके मांडलिक थे तथापि वास्तवमें वे स्वतन्त्र ही थे।

कच्छपघातोंके लेखोंमें इस कुलका नाम कच्छपारि भी पाया जाता है। कच्छपघात शब्दसे ही प्राकृत भाषाके नियमानुसार वर्तमान कच्छवाह नामकी उत्पत्ति हुई। हम पहले कह चुके हैं कि कुलोंके नामोंकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न तरहसे होती है। यह कहना कठिन है कि स्वयं कच्छपघात नाम किस तरह बना। इसकी व्युत्पत्ति चाहे जैसे हुई हो, कच्छवाह कुलकी गिनती हमेशासे उत्तम राजपूतोंमें होती आयी है। चंदकी छत्तीस राजकुलोंकी सूचीमें इसका नाम सबसे पहले है। गाहड़वालोंके उदयकालके समय यदि यह सूची बनी है तो उनके पहले जिन राजाओं-का उदय हुआ था उनका नाम पहले आना स्वाभाविक ही था। क्योंकि कन्नौजके नीतिभ्रष्ट प्रतिहार राजाको दंड देनेके लिए जो संयुक्त राजपूत सेना गयी थी उसका आधिपत्य कच्छपघातोंके हाथोंमें ही था।

अंतमें अब हमें तुवरोंका इतिहास दे देना चाहिए। जिस प्रकार कच्छपघात शब्दसे कच्छवाह नामकी उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार शिलालेखोंमें उल्लिखित तोमर नामसे 'तुवर' इस सरल नामकी उत्पत्ति हुई। कहा जाता है कि अनंगपाल तोमर-ने नवीं सदीमें दिल्ली शहर बसाया। किन्तु अल्बेरूनीके समय यह शहर महत्वपूर्ण नहीं था और प्रतिहारोंकी सत्ताके अधीन दिल्लीका मांडलिक राज्य नगण्य ही रहा होगा। इन तोमरोंका ख्याल है कि वे प्राचीन दिल्ली अर्थात् इन्द्रप्रस्थकी पहले पहल स्थापना करनेवाले पांडवोंके सीधे वंशज हैं।

-कुतुबुद्दीनके समय दिल्लीके पास इन्द्रप्रस्थ नामका एक छोटासा गाँव था। यह बात तत्कालीन इतिहास ताज-उल्-मासर्से स्पष्ट है (इलियट २ पृ २१६)। जैसा कि पहले कहा गया है तोमरोंका नाम चौहानोंके लेखोंमें भी आता है। उनके ये पड़ोसी अर्थात् सहज शत्रु थे। अबतक तोमरोंके लिखे कोई लेख प्राप्त नहीं हुए हैं। किन्तु दूसरोंके लेखोंमें उनके दिल्लीके राज्यका उल्लेख पाया जाता है। उसपरसे और दिल्ली गजेटियरसे हम उनका अधूरा इतिहास नीचे देते हैं।

दिल्लीके प्रसिद्ध लोहस्तम्भके लेखसे पता चलता है कि उसे दूसरे अनंगपालने ई० स० १०५२ में मथुरासे उखाड़ कर पुरानी दिल्लीमें लाकर खड़ा किया था। (यह स्तम्भ कोई १५०० वर्षसे धूप और वर्षा सहता आया है। किन्तु न तो उसपर जंग चढ़ा है और न उसपरके अक्षर ही अस्पष्ट हुए हैं।) जब कन्नौजकी सत्ताको महमूदने नष्ट कर डाला तब यह राजा प्रबल हो गया। अनंगपालके वंशजोंने दिल्ली और उसके आसपासके प्रदेशपर कोई सौ सालतक राज्य किया होगा। इसके बाद वीसलदेव अथवा तृतीय विग्रहराज चाहमान-प्रसिद्ध पृथ्वीराजके चाचा—ने ई० स० ११५२ में उन्हें जीत लिया। तबसे दिल्ली चाहमानोंके अधीन हो गयी। पृथ्वीराज रासोमें लिखा है कि तोमरोंका आखिरी राजा अनंगपाल निपुत्रीक था। इसलिए उसने अपनी लड़कीके लड़के पृथ्वीराजको राज्य सौंप दिया और खुद बदरिकाश्रमको चल दिया। किन्तु यह तो केवल एक काल्पनिक कथा है। क्योंकि पृथ्वीराजकी माता तोमर कुलकी नहीं, बल्कि चेदी-वंशकी कन्या थी। वास्तवमें रासोमें लिखी हुई बहुतसी कथा काल्पनिक ही है, इसलिए उसकी अनेक बातोंपर

विश्वास करनेको जी नहीं चाहता। उनको ऐतिहासिक महत्व तो हम कदापि नहीं दे सकते। दिल्ली गजेटियरमें लिखा है कि लालकोटका किला (यह अभीतक दीखता है) पहले पहल दूसरे अनंगपालने बनवाया और पृथ्वीराजने पुरानी दिल्लीकी चहारदिवारी बनवायी। यह भी अबतक दीख पड़ती है। जिस समय कुतुबुद्दीनने चढ़ाई की थी उस समय यह दीवार और किला दोनों कायम थे। और वे दुर्भेद्य प्रतीत होते थे।

मुसलमान इतिहासकारोंने दिल्लीके गोविन्दरायका उल्लेख किया है और लिखा है कि उसने महम्मद गोरीको पकड़ लिया था। किन्तु दूसरी लड़ाईमें वह मारा गया। पता नहीं कि यह चौहान था या तोमर। इस लड़ाईके बाद तुवर चारों तरफ फैल गये। किन्तु उनका मुख्य हिस्सा चंबलके इस पार वर्तमान ग्वालियर राज्यमें जा बसा। इसलिए अबतक उस भागको तवरघार कहते हैं। कुछ तुवर महाराष्ट्रमें भी पहुँचे। वर्तमान माने इत्यादि कुल तुवर ही माने जाते हैं।

जनरल कनिंगहमने अबुलफज़लके दिये हुए वृत्तान्तसे तथा भाटोंके लेखोंके आधारपर तुवरोंकी एक वंशावली बनायी है। इसे पं० गौरीशंकरने पृ० ३४८ पर (टॉड) उद्धृत भी किया है। किन्तु उसमें लिखी बातोंके लिए शिलालेखोंका आधार नहीं मिलता। "दिल्लीका लालकोट किला बनवाने वाले द्वितीय अनंगपालके ढलवाये हुए तांबेके कुछ सिक्के ज़रूर मिले हैं (१०५१ ई०)। तोमरोंने दिल्ली बसायी, उसके आस-पासके हरियान प्रदेशपर पहले पहल तोमरोंका राज्य था और बादमें चौहानोंका, इत्यादि बातें संवत् १३८४ अर्थात् ई० स० १३२७ में लिखे एक लेखसे, जो कि एक बावड़ीमें

मिला है, सिद्ध होती है। यहाँपर चौहानोंके तीन राजा हुए, वीसलदेव, सोमेश्वर, और पृथ्वीराज।* (दिल्ली म्यूजियम् शिलालेख ई० पं० पृ० २१८)

टिप्पणी

कच्छपघातोंकी उत्पत्तिके विषयमें हरप्रसाद शास्त्रीका गलत मत।

बड़े दुर्भाग्यकी बात है कि इस प्रकरणमें हमें भारतवर्षके एक प्रसिद्ध विद्वान्के मतका खंडन करना पड़ रहा है। पिछले भागमें हमें इसी प्रकार चंदेलोंकी उत्पत्तिके विषयमें यूरोपियन पण्डित सर विन्सेण्ट स्मिथके मतका खंडन करना पड़ा था। भाटोंके ख्यातोंके अनुसन्धान विषयक विवरण (ई० स० १९१६) में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री लिखते है—"कच्छवाह लोग अपनी उत्पत्ति रामचंद्रके पुत्र कुशसे बताते हैं। उनका कथन है कि वे नरवरसे आये। नरवर निषादोंका देश है। वहाँपर प्राचीन कालमें कच्छपघात वंशके लोग रहते थे। वर्तमान कच्छवा उनके प्रतिनिधि हे जो अस्पृश्य हैं। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनके राजा किसी समय क्षत्रिय हो गये।" इस तरहका भ्रमपूर्ण लेख हमने आजतक नहीं पढ़ा। बड़े दुःखकी बात है कि ऐसे ऐसे तर्कशून्य अनुमान करनेका मोह पंडितों तकको हो सकता है। हम पहले कह ही चुके हैं कि अधिकांश यूरोपियन और कुछ भारतीय पंडितोंकी यह एक भ्रान्त धारणा हो गयी है कि क्षत्रियजाति अस्पृश्यादि मूल निवासियोंसे या बाहरसे आये हुए म्लेच्छोंसे उत्पन्न हुई है। इस धारणाके कारण कैसे कैसे तर्कशून्य और भ्रमपूर्ण अनुमान किये जा सकते हैं, इसका यह एक ध्यानमें रखने योग्य अच्छा नमूना है।

---

* देशोस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः।
ढिल्लिकाख्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता॥
तोमरानन्तरं तस्यां राज्यं निहतकण्टकम्।
चाहमाना नृपाश्चक्रुः प्रजापालनतत्पराः॥

सबसे पहली बात तो यह है कि नरवर, निषादोंका देश नहीं है। इसका असली नाम 'निषध' है। इन निषधोंका राजा नल यहाँ राज्य करता था। दूसरी बात यह है कि नरवरके आसपास यदि कुछ कच्छवा अस्पृश्य हैं तो इससे यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि वे पूर्व कालीन कच्छपघातोंके प्रतिनिधि हैं। क्योंकि नरवर जिलेमें केवल कच्छवा लोग ही तो नहीं रहते। फिर कच्छवा शब्द कच्छवाहासे कहीं भिन्न है। इसके अतिरिक्त यदि यहाँपर कच्छवा जातिके लोगोंकी संख्या बहुत अधिक हो तो इससे यह तर्क नहीं किया जा सकता कि इस देशके राजा भी कच्छवा ही रहे होंगे। यह मिथ्या तर्क वैसा ही है जैसा सर विन्सेण्ट स्मिथका था जिन्होंने, चन्देल गोंडोंके देशमें राज्य करते थे, इसपरसे यह अनुमान किया कि वे स्वयं भी गोंड थे। यथार्थतः भारतवर्षके इतिहासका क्रम, तो हमेशा यह रहा है कि राजपूत वीर अपनी जन्मभूमि, अर्थात् मध्यदेशसे निकल कर दूर कहीं भिल्ल और गोंडोंके मुल्कमें चले जाते और वहाँ अपना राज्य स्थापित करते। इसी प्रकार बाप्पा रावलने भिल्लोंके मुल्कमें जाकर वहाँ अपने राज्यकी स्थापना की। पर इससे यह तो सिद्ध नहीं हो सकता कि बाप्पा रावल स्वयं भील था। अंग्रेजोंने बंगालमें राज्यकी स्थापना की। क्या इससे यह अनुमान निकाला जा सकता है कि वे बंगाली हैं? इसी प्रकार यदि कच्छवाहा लोग आजकल अस्पृश्य माने जानेवाले कच्छवाओंके मुल्कपर राज्य करते थे, तो इससे यह कदापि सिद्ध नहीं हो सकता कि वे स्वयं भी कच्छवा थे।

तीसरी बात यह है कि यदि हम 'कच्छवा' और 'कच्छवाहा' दोनों शब्दोंको एक ही मान लें तो भी हमें यह अनुमान करनेके पहले कि ये दोनों एक ही जातिके थे, जरा ठहर जाना चाहिए। संभव है, कच्छवाहा राजपूतोंने यह नाम देशके नामसे ग्रहण कर लिया हो। दूसरे भागमें हमने बताया है कि प्रतिहारोंने 'गुर्जर प्रतिहार' नाम इसलिए धारण किया कि वे गुजर देशमें राज्य करते थे। हमने यह भी सिद्ध कर दिया है कि वे गुजर नहीं थे। हो सकता है कि कच्छवाओंने ही अपने राज्यकर्ताओंसे यह नाम ले लिया हो। उच्च जातियोंके नाम नीचेकी जातियाँ अक्सर धारण

कर लिया करती हैं। इसके कई उदाहरण बताये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ चमारोंमें चौहान, परमार आदि नाम पाये जाते हैं। मालवाकी सोंधिया जातिमें भी चौहान, परमार आदि नाम पाये जाते हैं। इसलिए यदि किसी क्षत्रिय जातिका नाम दूसरी किसी जातिसे मिलता जुलता हो तो हमें फौरन यह अनुमान नहीं कर लेना चाहिए कि वे क्षत्रिय भी उसी जातिके रहे होंगे। फिर कच्छपघात क्षत्रिय तो बहुत प्राचीन कालसे उत्तम राजपूत माने गये हैं। चंदकी दी हुई छत्तीस राजकुलोंकी सूचीमें इनका नाम सबसे पहले दिया गया है। इसलिए इनके विषयमें ऐसा अनुमान करना अनुचित है। भारतवर्षमें जाति-भेद पुराने समयसे ही बड़ा तीव्र रहा है। इसलिए अस्पृश्योंके अस्पृश्य राजा थेइ, क्षत्रिय हो ही नहीं सकते थे। इनको कमसे कम धर्मके विषयमें कोई विलक्षण पराक्रम करके दिखाना आवश्यक था। किन्तु इस बातका कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता कि अस्पृश्योंके इन कल्पित राजाओंने ऐसा कोई पराक्रम किया हो। इसलिए इतने प्रसिद्ध राजवंशपर ऐसा आरोप करना सचमुच आश्चर्यकी बात है।

सबसे आश्चर्यकी बात तो यह है कि जाँच करनेपर इस तमाम तर्कके आधारका कहीं पता ही नहीं चलता। ग्वालियर राज्य नरवरके मुल्की अधिकारी श्री भालेरावसे पूछ पाछ करनेपर हमें मालूम हुआ है कि न तो नरवरमें और न नरवरके आसपास ही कहीं कोई कच्छरा नामक अस्पृश्य जाति रहती है।

अंतमें हमें यह कह देना चाहिये कि प्राकृत भाषाके नियमानुसार 'कच्छपघात' इस संस्कृत शब्दसे ठीक कच्छवाह शब्द ही प्राप्त होता है। और लेखोंमें भी यह शब्द अथवा इसके समान ही अर्थ रखनेवाला कच्छपारि शब्द आया है। इससे यह अनुमान भी निकलता है कि ये कच्छवाहा राजपूत उस कच्छरा नामक कल्पित अछूत जातिके शत्रु थे। वे स्वयं कच्छरा नहीं थे। हम पहले ही कह चुके हैं कि यह कच्छपघात शब्द कैसे बना, यह हम नहीं बता सकते, तथापि नरवरके आसपास कच्छरा नामक अछूत जाति है यह मानकर भी (यद्यपि उसकी असत्यता सिद्ध हो चुकी

है) इस शब्दकी व्युत्पत्ति यों लगायी जा सकती है कि कच्छवा लोगोंको मार कर उन्होंने यहाँपर अपना राज्य कायम किया। इसीलिए उनको 'कच्छपघात' नाम प्राप्त हुआ। आश्चर्य है कि इस सरल अनुमानको छोड कर श्री हरप्रसाद शास्त्री उलटे यह अनुमान करते हैं कि ये कच्छपघात ही कच्छवा हैं।

सत्रहवाँ प्रकरण ।

हिमालयके राज्य ।

इस कालविभागमें हिमालयमें जो राज्य थे उनका इतिहास अब हम देंगे। काश्मीर और नेपाल उनमें मुख्य और चंपा, नूरपूर, कांगडा, मंडी, सुकेत आदि अन्य मामूली राज्य हैं। नैपालका जितना इतिहास मालूम हुआ है वह सब हमने हिन्दूकालके अंततक पहले दे ही दिया है। इस कालविभागमें, अर्थात् १००० से १२०० ई० तक इस राज्यका जो इतिहास है उसे हम पुन संक्षेपमें यहाँ देते हैं। इधर हालमें जो ऐतिहासिक खोज हुई है, खासकर पंजाब हिस्टॉरिकल सोसायटीके लेखोंसे कितनी ही नयी बातें मालूम हुई हैं, उस सबका उपयोग करके सिलसिलेवार वृत्तान्त नीचे दिया जाता है।

काश्मीर ।

इस कालविभागके प्रारम्भमें काश्मीरमें लोहरवंश राज्य करता था। कुप्रसिद्ध दिद्दारानीकी मृत्युके बाद यह वंश राज्यारूढ हुआ। यह लाहोरके एक राजाकी लडकी और काबुलके भीमशाहकी पोती थी। अपने पुत्रपौत्रोंकी पालिका की हेसियतसे और बादमें स्वतंत्र रूपसे कई वर्षोतक राज्य

कर वह १००३ ई० में मर गयी। तब उसके आज्ञानुसार उसके भाईका पुत्र काश्मीरके सिंहासनपर बैठा। इस समस्त काल-विभागमें इसीका वंश काश्मीरमें राज्य करता रहा। इस वंशके सभी राजा सुयोग्य थे इसलिए मुसलमानी आक्रमणोंकी लहरसे उन्होंने अपने राज्यकी रक्षा की। इस लहरने महमूदके समयमें पंजावको डुबा दिया और शहाबुद्दीनके समयमें समस्त उत्तर भारतमें वह फैल गयी थी। लोहरवंशका इतिहास राजतरंगिणीके आधार पर ई० सन् ११४३ तक हम पहले भागमें दे चुके हैं। कल्हणने इस साल तकका ही इतिहास दिया है। इसके बादका इतिहास जोनराजके परिशिष्ट ग्रन्थसे दिया जा सकता है। पहिले भागमें दिया हुआ इतिहास कुछ विशेष बातोंके साथ सक्षेपमें हम पहले दिये देते हैं।

समस्त वंश-संस्थापकोंके समान संग्रामराज बुद्धिमान् और समर्थ राजा था। उसने ई० सन् १००३ से १०२८ तक राज्य किया। इस भागमें हम पहले ही बता चुके हैं कि महमूदने काश्मीरका सरहद्दी किला लेनेके लिए दो बार प्रयत्न किया किन्तु वह दोनों बार असफल हुआ। काश्मीर एक मुहरबंद राज्य था। उसकी मुहरको महमूद तोड़ नहीं सका। स्मिथका यह कथन अक्षरशः सत्य है कि "काश्मीरका बचाव उसके दुर्लंघ्य पहाड़ोंके कारण हुआ। काश्मीरकी हार हुई हो, ऐसा नहीं दिखाई देता। हम प्रथम भागमें कह आये हैं कि संग्रामके समयमें काश्मीरपर चढ़ाई ही नहीं हुई। इसके स्थानपर अब हमें यह कहना होगा कि काश्मीरपर दो बार चढ़ाई की गयी, किन्तु महमूद काश्मीरमें घुस नहीं सका। शाही राजा त्रिलोचनपालकी सहायताके लिए संग्रामराजने एक फौज भेजी थी। ई० स० १०२१ में इस फौजको लेकर

उसने युद्ध भी किया था, किन्तु वह पराजित हो गया। इसका वर्णन हम इस भागमें तथा पहले भागमें भी कर चुके हैं। इसके बाद त्रिलोचनपाल एक स्थानसे दूसरे स्थानको भटकता रहा। उसके पुत्र भीमकी मृत्यु ई० स० १०२७ में हुई। किन्तु रुद्रपाल वगैर उसके दूसरे लडके और भतीजे काश्मीरमें संग्राम राजके आश्रयमें, जो उनका रिश्तेदार भी था बहुत दिन तक रहे।

इन शाही राजपुत्रोंने संग्रामके पुत्र और उत्तराधिकारी अनन्तराज (१०२८–३८) की बडी सेवा-सहायता की। इसके शासनकालमें काश्मीरके एक राजद्रोही सरदारने तुर्कोंको काश्मीरपर चढाई करनेके लिए आमन्त्रित किया। उसने उनकी सहायता भी, की। किन्तु इन शाही राजपुत्रोंके तथा स्वय अनन्तराजके पराक्रमके कारण उस विशाल सेनाका पूर्ण पराभव हुआ और तीन सौ वर्षके लिए काश्मीर मुसलमानी सत्तासे बचा रहा। इस युद्धका वर्णन हम प्रथम भागमें कर चुके है। अनन्तराजकी रानीका नाम सूर्यमती था। सूर्यमती एक त्रिगर्त राजाकी कन्या थी। ये दोनों पतिपत्नी वडे धार्मिक थे। उन्होंने अनेक वर्षतक बड़े पराक्रमके साथ न्यायपूर्वक राज्य किया। वृद्धावस्थामें अपने पुत्र कलशको राज्य सांप कर वे वनवासके लिए चल दिये। किन्तु इस पुत्रने उनको बहुत कष्ट दिये जिनके कारण अनन्त मर गया और उसकी स्त्री सूर्यमती सती हो गयी। अन्य बातोंमें कलश अच्छा राजा, हुआ। उसके पुत्र हर्षने विद्रोह किया किंतु पराजित होनेपर वह कैद कर लिया गया। कलश ईसवी सन् १०७३ में मर गया। तब उसका दूसरा पुत्र उत्कर्ष राज्यारूढ हुआ किन्तु लोग तो हर्षको चाहते थे, क्योंकि उस समयके

तमाम राजाओंमें हर्ष बड़ा गुणवान् राजा था। वह स्वयं विद्वान् संगीतज्ञ, रसिक, और विद्वानोंका चाहनेवाला था। वस्तुतः वह कन्नौजके हर्षदेव अथवा मालवाके भोजकी टक्करका राजा था। किन्तु दैव-दुर्विपाकसे उसका अन्त बड़ी बुरी तरहसे हुआ। हर्षका एक भाई था विजयमल्ल। उसने अपने भाई हर्षकी ओरसे उत्कर्षके खिलाफ बलवा किया। उत्कर्ष पराजित हुआ और युद्धमें ही मारा गया (ई०स० १०८६) विजयमल्लने हर्षको कैदसे छुड़ाकर सिंहासनपर बैठा दिया। ई० स० १०८६ से ११०१ तक उसने राज्य किया। विजयमल्लने बादमें कितने ही निरङ्कुश सलाहकारोंकी सलाहके चक्करमें आकर हर्षके खिलाफ बलवा कर दिया, किन्तु उसमें उसे विजय नहीं मिली। इसके बाद हर्षने उसके साथियोंपर बड़ी निर्दयताके साथ ज़ुल्म करना आरम्भ कर दिया। इसके कारण सारे राज्यमें इतनी अन्धाधुन्धी और अव्यवस्था फैल गयी कि उसके चाचाके वंशके उच्चल नामक एक राजपुत्रके नेतृत्वमें फिर बलवा हो गया। अबकी बार हर्षका पराजय हुआ और राजधानी उच्चलके हाथमें चली गयी। हर्षकी रानियोंने महलोंमें जलकर अपने प्राण दिये। हर्षने किसी मठमें जाकर आश्रय ग्रहण किया। उसका पुत्र भोज, जिसे काश्मीरसे देश निकालेकी सजा दी गयी थी, उसकी सहायताके लिए आया, किन्तु उच्चलके साथ लड़ते लड़ते मारा गया। चारों ओरसे दैवको प्रतिकूल जानकर हर्ष हाथमें तलवार लेकर मठके आसपास घेरा डाले हुए सैनिकोंपर झपटा और लड़ते लड़ते मारा गया। इस तरह लोहर वंशकी पहिली शाखा काश्मीरपर सौ सालतक पराक्रम पूर्वक राज्य करके (१००३-११०१) समाप्त हो गयी।

उच्चलने ११११ ई० तक राज्य किया। उसके भाई सुस्सलने ११२८ ई० तक राज्य किया। कल्हणने ई० सन् ११४८ में जब अपनी राजतरङ्गिणी समाप्त की, तब सुस्सलका पुत्र जयसिंह राज्य कर रहा था। ये तीनों राजा पराक्रमी और अच्छे थे। कल्हणने इनके राजकार्यसे सम्बन्ध रखनेवाली छोटी मोटी बातें तक दी हैं। उनकी तरफ ध्यान देनेकी कोई आवश्यकता नहीं।

यह लोहरवंश राजपूत था अर्थात् भारतवर्षके अन्य भागोंके समान काश्मीरमें भी ग्यारहवीं और बारहवीं सदीमें राजपूत राजा ही राज्य करते थे। इसके पहलेका पर्वगुप्तका वंश वैश्य था और उसके भी पहलेका यशस्करका वंश ब्राह्मण था। यथार्थतः इन दोनों वंशोंको क्षत्रिय ही मानना चाहिये, क्योंकि उनका विवाह-सम्बन्ध क्षत्रिय कुलोंसे होता था। उनका जीवन-क्रम भी क्षत्रियोंका सा ही था। कहा जाता है कि लोहर राजवंश भट्टी राजपूत कुलका था।

काश्मीरके डामर बड़े लड़ाकू और झगड़ालू लोग थे। वे बलवाइयोंकी हमेशा सहायता किया करते थे। हर्षने इन डामरोंको कत्ल करनेका हुक्म दे दिया था। किन्तु उन्होंने दो बागी राजपुत्रोंकी सहायता करके अन्तमें उसके प्राण ही ले लिए (पञ्जाब जरनल भाग २ पृष्ठ ८१)। अर्थात् उच्चलको इन्हीं बलवान् डामरोंकी सहायतासे सिंहासन प्राप्त हुआ था।

जोनराजने अपनी तरङ्गिणीमें जयसिंहके बाद १२०० तक और दो तीन राजाओंके नाम दिये हैं। उनको लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं। जयसिंहने मुसलमानोंके विरुद्ध एक त्रिगर्त राजाकी सहायता की थी। इनका वर्णन आगे आयगा।

२ नेपाल

हिमालयमें दूसरा बड़ा राज्य नेपालका था। उसके पहले काल-विभाग (६०० से ८०० तक) का इतिहास हम पहले भागमें दे चुके हैं। दूसरे काल-विभागमें ८०० से १००० तक नेपालमें एक राजपूत राजवंश राज्य करता था। इसीने ई० सन् ८८५ में नेपाली शक शुरू किया जो अबतक चल रहा है। तीसरे काल विभागमें (१००० से १२०० तक) भी संभवतः यही राजवंश राज्य करता रहा होगा। उसके साथ न तो हिन्दू राजाओंने और न मुसलमान राजाओंने ही किसी प्रकारकी छेड़छाड़ की। इस वंशके राजाओंके विषयमें कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हुई है। इसलिए अब हम काश्मीर और नेपालके बीचके उन अनेक राजाओंका हाल देते हैं जिनके विषयमें आधुनिक अनुसन्धानके कारण बहुत सी बातें ज्ञात हुई हैं।

३ चम्बा

पहले भागमें चम्बा राज्यके विषयमें हम कुछ वृत्तान्त दे चुके हैं। यह राज्य काश्मीरकी आग्नेय दिशामें है। यह अक्सर काश्मीरकी अधीनतामें ही रहता था। कनिंगहमने निश्चित किया है कि सूर्यवंशी आदिवर्मन्‌ने ईसवी सन् ६२० के आसपास इस राजवंशकी स्थापना की। किन्तु अब यह बात गलत साबित हो गयी है। अब जो नवीन ताम्रलेख और शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनकी जाँच कर डॉ. व्होजेलने नवीन बातोंकी खोज की है और उन्हें आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, नवीन माला, जिल्द ३६ भाग (ई. स १९११) में प्रकाशित किया है। पंजाब हिस्टारिकल

सोसायटीके जर्नल जिल्द २ में डा. हचिन्सनने उसपर एक संक्षिप्त लेख लिखा है (पृ. ७५–८०)। उससे यह पता लगता है कि सूर्यवंशी मेरुवर्मन्ने गंगातीरपर बसे हुए कलाप ग्रामसे आकर यहाँ ई० सन् ७०० के लगभग इस राज्यको स्थापना की। धीरे धीरे यह राज्य रावीकी घाटीमें फैलता रहा। उस समय इसकी राजधानी ब्रह्मपुर अथवा ब्रह्मोर थी। इसके वंशज साहिलवर्मन्ने वर्तमान राजधानी चम्बाको बसाया। इसका नाम इस राज्यमें बच्चे बच्चेकी जबानपर है। इसके पुत्र युगाकरवर्मन्के दो ताम्रलेख प्राप्त हुए हैं। अब तक इस विषयमें जितने लेख मिले उनमें यही सबसे पुराने हैं। इन सब लेखोंमें ईसवी सन् १३३० के पहले कोई शक नहीं दिया गया है, केवल राज्य-वर्ष दिया गया है। ईसवी सन् १३३० वाले लेखमें पहले शास्त्रशक (कलियुग शक) या विक्रम संवत् दिया है। ये समस्त लेख प्रायः गुप्त कालीन लिपिमें लिखे हुए हैं। बादके लेखोंमें शारदा लिपि और अंतमें नागरी लिपिका उपयोग किया गया है। लिपिकी दृष्टिसे उपर्युक्त दोनों लेख दसवीं सदीके मालूम होते हैं। राजतरंगिणीसे पता चलता है कि काश्मीरके राजा अनंत (१०२८ से १०६३) ने चंपापर चढाई करके सालवर्मन्को जीत लिया था। आसटवर्मन् कलशके समयमें काश्मीर गया था। उसकी बहिन बप्पिका कलशकी रानी थी। दुर्दैवग्रस्त हर्ष इन्हींका पुत्र था। आसटने उसकी और उसके पुत्र भोज इन दोनोंकी सहायता की थी। आसटके पुत्र जासटने ई० स० ११०३ में भोजके पुत्र भिक्षाचारकी सहायता की थी। किन्तु इसका भी कुछ नतीजा नहीं निकला। जासटके बादके राजा उदयवर्मन्ने ईसवी सन् ११२१ में सुस्सलकी सहायता की,

क्योंकि सुस्सलने चंपाकी दो राजकन्याओंसे शादी की थी। काश्मीरके इस भैया-बंदीके झगड़ेके कारण चंबा करीब करीब स्वतंत्र हो गया (पृ. ७६)।

इसके बाद चम्बाके राजा १२०० ई० तक राज्य करते रहे। हम केवल उनके नाम देना नहीं चाहते। हाँ, यह कह देना जरूरी है कि अबतक यही राजवंश चम्बामें राज्य कर रहा है। इस पहाड़ी राज्यको मुसलमान आक्रमणकारियों—महमद गजनवी, गोरी और उनके बादके बादशाहोंसे—अकबरके समयतक कोई हानि नहीं पहुँची।

ये सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। इनका गोत्र योपनाश्व अथवा युवनाश्व (?) दिया हुआ पाया जाता है। इनके राज्यमें कुछ स्थानिक राजा हैं जो इनसे पहले आये थे। उन्हें राणा कहते हैं (शिलालेखोंमें राजानक शब्दका प्रयोग किया गया है)। इनके भी पहले आनेवाले लोगोंको राठी या ठाकुर कहते हैं। ये राणाओंसे निचली श्रेणीके समझे जाते हैं। कहावत भी है "चनाल जेठा, रानी कनेठा।"

४ नूरपुर

नूरपुरका राज्य हिमालयका पुराना राज्य नहीं है। नूरपुरके विषयमें दन्तकथा है कि दिल्लीसे आये हुए किसी तुवर राजपुत्रने इसकी स्थापना की थी। उसने पथानकोटके किसी पठान सरदारको मार भगाया और पहाड़ोंमें जाकर वहाँ नूरपुरमें एक किला बनवा लिया। लोगोंका ख्याल है कि नूरपुर यह नाम नूरजहाँसे पड़ा है। इतिहासकारोंका विचार है कि पथानकोटमें इस राज्यकी स्थापना ग्यारहवीं सदीके मध्यमें हुई होगी। पर ये सब बातें असम्भव जान पड़ती हैं, क्योंकि

इस समय पंजाब बलवान् गजनवीके हाथोंमें था। इसलिए यह संभव नहीं मालूम होता कि इस समय किसी राजपुत्रने आकर पठान सरदारको वहाँसे खदेड़कर अपने नवीन हिन्दू राज्यकी स्थापना की हो। मालूम होता है, यह दन्तकथा पथानकोट इस नामके आधारपर भ्रमवश गढ़ ली गयी है। पथान शब्द तो प्रतिष्ठानका प्राकृत स्वरूप है और हमारा ख्याल है कि महमूदके पहले 'प्रतिष्ठान' में ही एक तोमर राजा राज्य कर रहा होगा। महमूदकी चढ़ाइयोंका आरम्भ होते ही वह प्रतिष्ठानको छोड़कर पहाड़ोंमें भाग गया होगा और धनेरमें उसने नवीन राज्यकी स्थापना की होगी। उसीने एक अच्छा सुरक्षित स्थान देखकर नदीके तीरपर नूरपुरका वह किला बनवाया होगा जो आज हमें गिरी हुई हालतमें दिखाई देता है। इस भागके काल-विभागमें यही वंश नूरपुर-पर राज्य करता रहा। बल्कि अभीतक इसी वंशके राजा वहाँ राज्य कर रहे हैं। परन्तु वर्तमान राजाको राज्याधिकार नहीं है।

इन पथानिया राजपूतोंका गोत्र अत्रि है। इससे ज़रा सन्देह होता है कि वे यथार्थमें तोमर नहीं होंगे। वे अपनेको पण्डीर (पांडवोंके वंशज) बतलाते हैं। परन्तु पांडवोंका तथा उनके वर्तमान वंशज तोमरोंका गोत्र तो वैयाघ्रपद्य है। संभव है जब ये पथानिया धनेरमें आये तब इन्होंने नवीन पुरोहित बनाकर नवीन गोत्र धारण कर लिया हो। पञ्जाब हिस्टॉरिकल सोसाइटी के जरनल जिल्द २ पृ० १७ में लिखा है कि पथानकोटका पुराना गाँव किलेके पूर्व जो टीला है उसपर था। इस किलेका स्थान तो मिट्टीके पड़े हुए ऊँचे ऊँचे ढेरोंसे निश्चित किया जा सकता है। वहाँ पुरानी मुद्राएँ भी कहीं कहीं पायी जाती हैं। इससे

मालूम होता है पथानकोट पठानोंका बसाया हुआ नवीन शहर नहीं, प्राचीन शहर ही है। बहुत सम्भव है, उसका पुराना नाम प्रतिष्ठान ही रहा हो। नूरपुरके राजवंशकी दो वंशावलियाँ उपलब्ध हुई हैं। किन्तु वे एक दूसरेसे भिन्न भिन्न हैं। कनिंगहमने नूरपुर राजवंशकी स्थापनाका काल १०९५ ई० दिया है। ऐसा समझा जाता है कि इसका संस्थापक दिल्लीके एक राजाका छोटा भाई जेठपाल था। वंशावलीमें जसपालके नामके सामने यह लिखा है कि वह संस्थापकसे पन्द्रहवीं पुश्तमें था और उसने अलाउद्दीन खिलजीका विरोध किया था (१२९५-१३१५ ई०)। बीस बीस सालकी एक पुश्त मानी जाय तो जेठपालका समय १००० ईसवीके लगभग आता है। इससे प्रतीत होता है कि ये तोमर दिल्लीसे नहीं आये थे, क्योंकि इस समय तो दिल्लीकी स्थापना भी नहीं हुई थी। अतः ये तोमर सम्भवतः पञ्जाबके ही हैं और उन्होंने महमूदकी चढ़ाइयोंके समय यहाँ पहलेसे स्थापित हुए प्रतिष्ठानको ले लिया। बादमें उसे छोड़कर उन्होंने पहाड़ोंमें नूरपुर आकर राज्यकी स्थापना की होगी।

टिप्पणी—नूरपुरका किला और मंदिर।

धनेर अथवा नूरपुरका गिरा हुआ किला बड़ा सुंदर स्थान है। वह नूरपुर गाँवसे लगा हुआ ही है। इस समय शफाखाना और तहसीलका दफ्तर भी इसी किलेके भीतर है। किलेमें कई तालाब हैं। इससे मालूम होता है कि वहाँ पानीकी प्रचुरता थी। इसमें महादेवका एक मंदिर अच्छी अवस्थामें है। पर किलेमें सबसे महत्वपूर्ण स्थान एक पुराने मंदिरका वह चबूतरा है जो अभी खोद कर बाहर निकाला गया है। मंदिरका ऊपरका हिस्सा नष्ट हो गया है। परन्तु चबूतरा अच्छी स्थितिमें है। उसपर खुदे हुए चित्र तो बहुत ही सुंदर हैं। पुराणोंके कई प्रसंगोंके

चित्र भी इनमें हैं । मध्य-युगीन हिन्दू कालमें जैसे मनुष्य रहते थे, उनकी रहन-सहन, हाथी, घोडे, ऊँट, गायें आदि सभी बातोंका चित्रण किया गया है । चित्रोंकी स्वाभाविकता देखकर तत्कालीन कारीगरीकी उत्कृष्टता-के सामने सिर झुक जाता है । पुरानी दिल्लीमें कुतुब मस्जिदके स्तम्भपर जितनी अच्छी खुदाई है वैसी ही, बल्कि उससे भी बढिया, कारीगरी इसमें दिखायी गयी है । यह मंदिर कदाचित विष्णुका मन्दिर रहा होगा। मुसलमान मूर्ति भजकोंने प्रत्येक मूर्तिका सिर हथोडेसे उडा दिया है ।

इस पुराने मन्दिरसे कुछ ही दूरीपर एक नया मन्दिर है। मालूम होता है, यह अकबरके समय बनवाया गया होगा । इसमें मुरलीधरकी काली पत्थरकी एक सुन्दर मूर्ति है। यह मूर्ति दूसरी मजिलपर, अर्थात् हमेशाकी प्रथाके विपरीत, रक्खी गयी है । नीचेकी मंजिलके बडे दालानमें और ऊपरकी मजिलकी सभी दीवारोंपर कृष्णकी बाललीलाके अनेक रंगीन चित्र हैं। वे इतने सुन्दर हैं कि देखते ही बनते हैं । उनसे यह पता लगता है कि अकबरके समयमें नूरपुरके लोगोंकी वेशभूषा, रहन-सहन आदि कैसी थी।

५ मंडी अथवा सुकेतु

इस पहाडी राज्यका संक्षिप्त इतिहास हम पहले भागमें दे ही चुके हैं। यहाँपर हम ब्हाँजेल और हचिन्सनके लेखोंके आधारपर (पंजाब जर्नल ७ पृष्ठ १४) अपने विचारों सहित कुछ और बातें भी लिखते हैं। हिमा लयका कुलूसहित यह भूभाग एक प्राचीन राज्य था । उसके मूल निवासियों-का नाम कुनिन्द था । आजकल वहाँ कुनेत नामके जो लोग खेती करते हे वे उन्हींके वशज हैं । इस देशमें तिब्बतसे हरसाल बौद्ध लोग आते हैं, क्योंकि उनका ख्याल है कि प्रसिद्ध बौद्ध साधु पद्मसभव इसी मंडी इलाकेके रावलसर तालाबपर रहता था । हिन्दू लोगोंका ख्याल है कि इस स्थानपर लोमश ऋषि रहते थे ।

मडी सुकेतका राजवश अत्रिगोत्रीय चन्द्रवंशी राजपूत है। इनके नामके अन्तमें हमेशा सेन पद लगाया जाता है। इस उपपदके कारण

यहाँ यह भ्रामक दन्तकथा प्रचलित हो गयी कि ये लोग बंगालसे यहाँ आये और बंगालमें इनका अन्तिम बड़ा राजा लखनौतीका लक्ष्मणसेन था (ई० सन् ११६९-११९८)। सर लेपिल ग्रिफिनने भी अपनी 'पंजाबके राजा' नामक पुस्तकमें इस दंतकथाको सत्य माना है। परन्तु कनिङ्गहम इसे स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि लक्ष्मणसेनसे भी पाँच सौ वर्ष पहले सुकेतका राजवंश स्थापित हो गया था। यही मत व्हाँजेल और हचिनसनने, पूर्वोक्त लेखोंमें, कई कारणोंसे मान्य समझा है। हमारे ख्यालसे इस बातकी स्वयं बंगालके सेन राजाओंके शिलालेखोंसे भी पुष्टि होती है। उनमें लिखा है कि वे ग़लत. कर्नाटकसे आये हुए क्षत्रिय थे। इसके विपरीत सुकेत मंडीकी दन्तकथा यों है कि उनके पूर्वज पहले इन्द्रप्रस्थमें राज्य करते थे। वहाँसे वे बंगाल गये और लखनौतीकी स्थापना की। मतलब यह कि नामपरसे उत्पन्न होनेवाली कितनी ही स्थानीय दन्तकथाओंमें अक्सर ऐतिहासिक सत्य नहीं होता और उनको छोड़ना पड़ता है। जिस प्रकार पथानकोटके पधानियोंने वहाँसे पठानोंको भगा दिया, यह दन्तकथा केवल नामके आधारपर चल पड़ी है और उसे हमें छोड़ना पड़ा, उसी प्रकार मंडीसुकेतके सेनोंके बंगालकी लखनौतीसे आनेके सम्बन्धकी दन्तकथाको भी हमें कोई महत्व नहीं देना चाहिये।

तथापि इस राज्यकी वंशावलीको आधारभूत मान कर उसपर हमें विचार कर लेना चाहिये। यद्यपि शिलालेखोंकी अपेक्षा उसका मूल्य अल्पकम है तथापि उसमेंसे हमें कुछ इतिहासकी बातें भी जरूर प्राप्त हो सकेंगी। जैसा कि भाग १ में कहा गया है, कनिंगहमके मतानुसार सुकेत मण्डी राजवंशके संस्थापक वीरसेनने ई० सन् ७६५ के लगभग इस राज्यकी स्थापना की। इस सालका कनिंगहमने इस तरह निश्चय किया। वीरसेन और बाहुसेनके बीचमें (इसके समयमें यह राज्य सुकेत और मंडी इन दो हिस्सोंमें बट गया) दस पुश्तें गुजर गयीं। और निर्मण्डीका शिलालेख खुदवानेवाले समुद्रसेनतक और भी छ पुश्तें बीत गयीं। अजबर सेनका जो एक ताम्रलेख प्राप्त हुआ है, उसपर विक्रम संवत १५८४ अर्थात् १५२७ ई० दिया हुआ है। समुद्रसेनसे इस अजबर सेनतक

और भी ग्यारह पुश्तें बीत गयीं। इस वीरसेनसे ई० सन् १५२७ के अजयरसेनतक २७ पुश्तें होती हैं। प्रत्येक पुश्तके ३० साल समझे जावें तो ई० स० १५२७–८१०=७१७ ई० होता है। और मण्डी राज्यके संस्थापक वाहुसेनका काल १०१७ अथवा ९८७ ईसवी होगा। स्थूल मानसे हम यह मान सकते हैं कि वाहुसेनने ई० स० १००० के लगभग मण्डी राज्यकी स्थापना की और समुद्रसेनने निर्मण्डका लेख ई० स० १०५० के आसपास खुदवाया। हचिन्सन और व्होजेलका मत है कि हम प्रत्येक राजाका औसत राज्यकाल, २५ वर्ष समझ लें, फिर भी वंशावलीमें कुछ नाम छूट गये होंगे, इस बातका विचार करते हुए कनिंगहमका निश्चित किया हुआ काल ही ठीक प्रतीत होता है। इस कालका मेल चम्पाकी दन्तकथासे भी मिल जाता है। दन्तकथा यों है कि चम्पाके एक राजाकी गर्भवती रानी सुकेतके राजाके पास आश्रयके लिए गयी और उसके पुत्र मोपनाथको राजाने चम्पाकी गद्दीपर बैठा दिया। यदि हम प्रत्येक पुश्तके २५ साल समझ लें तो वीरसेनका काल १५२७–६७५=८५२ प्राप्त होता है। और वाहुसेनका काल ८५२+२५०=११०२; तथा समुद्रसेनका ११०२+१५०=१२५२ होता है। मतलब यह कि सुकेत राज्यकी स्थापनाका काल ८०० ई० सन् के इधर नहीं आ सकता और मण्डीका ११०० के इधर। कनिंगहम समुद्रसेनके शिलालेखका समय १२२७ संवत् अर्थात् ११७० ईसवी मानते हैं। पर डा० फ्लीटका ख्याल यह नहीं है। इस लेखमें कालका अंक केवल छः दिया हुआ है। सम्भव है यह शास्त्र-शक हो। अक्षरोंकी बनावटसे वह सातवीं सदीके इधरका नहीं हो सकता, ऐसा उनका कथन है। परन्तु यह बात हमारे उपर्युक्त हिसाबमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुँचाती। क्योंकि निर्मण्ड लेखके लेखकको हम वंशावलीमें दिये हुए राजाओंसे भिन्न मान सकते हैं और यही ठीक भी मालूम होता है। क्योंकि वस्त्रके लेखमें जिन पूर्वजोंका नाम दिया हुआ है वे वंशावलीके नामोंसे भिन्न हैं। जो हो; यदि हम मण्डी राज्यका स्थापनाकाल १००० या ११०० ई० भी मान लें तो भी इन सब बातोंका विचार करने पर यही ठीक मालूम होता है कि महमूदके समय या उसके बादमें मुसलमानोंने पंजाब-

पर जो चढ़ाइयाँ कीं उन्हींके कारण सेन राजपूतोंने सुकेत राज्यकी स्थापना की। दन्तकथा है कि शाहुसेन और बाहुसेन दोनों भाई भाई थे और जैसा कि अक्सर होता है वे आपसमें लड़ बैठे। ऐसी दन्तकथाओंमें दो भाई अक्सर एकसे उच्चारणवाले नामके होते ही हैं। जो हो; सुकेत पुराना राज्य है और हम उसकी स्थापनाका काल ई० सन् ८०० के लगभग मान सकते हैं। यह एक विचित्र बात हमारे देखनेमें आयी कि काँगड़ाके कटोच राजपूत सुकेत कुलसे तो अपना विवाह सम्बन्ध करते हैं किन्तु मण्डीके वंशसे नहीं करते। परन्तु मण्डी और सुकेतका वंश तो एक ही है। यह बात गुलेरके महाराजने हमसे कही।

मंडी और सुकेतका ई० सन् १२०० के बादका इतिहास इस भागके विषयके बाहर है। इस पहाड़ी राज्यपर बहुत समयतक मुसलमानोंकी चढ़ाइयाँ नहीं हुई और इस कालविभागमें तथा इसके पहलेके कालविभागमें (८००–१२००) यहाँके शासक काश्मीरके अधीन नहीं, बल्कि स्वाधीन थे।

६ कश्तवार।

कश्तवार (प्राचीन काष्ठवाट) नामक एक छोटा सा राज्य, इस कालविभागमें किसी राजपूत राजवंश द्वारा शासित था और वह काश्मीर साम्राज्यके अंतर्भूत था। राजतरंगिणीमें लिखा है कि काश्मीरके राजा कलशके दरबारमें ई० स० १०८७ में जो आठ मांडलिक राजा आये थे उनमें काष्टवाटका उत्तमराज भी एक था (भाग १)। इस बातका ध्यान रहे कि सुकेत और मंडीके राजाओंका उल्लेख इस दरबारके वर्णनमें नहीं है। हचिन्सन और व्हॉजेलने पंजाब जर्नल भाग ४ (पृ० २२-४१) में कश्तवार राज्यपर जो लेख लिखा है उससे पता चलता है कि कश्तवारके राजा मंडी और सुकेतके राजाके वंशके ही हैं। ये भी यही मानते हैं कि इस गौड़ देशसे आये हैं। इनके नामके अन्तमें भी सेन उपपद लगाया जाता है। पर यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि इस उपपदके आधार पर रची हुई गौड़ देशसे आनेके सम्बन्धकी दन्तकथा गलत है। कश्तवारके वर्तमान राजा मुसलमान हैं और इनकी बतायी वंशावलीमें १०८७ ई० में

उत्तमराजका नाम नहीं है। इससे अनुमान होता है कि वह इस वंशका नहीं होगा। हमारा ख्याल है कि सुकेतसे जो कन्दपाल राजा यहाँ आया उसीने १२०० ई० के लगभग इस राज्यको जीत लिया। ई० सन् १२०० के बादमें अथवा मुगलोंके समयमें जो राजा हो गए उनका वर्णन हचिन्सन और व्हॉजेलने अपने लेखमें किया है। परन्तु यहाँ उसके देनेकी आवश्यकता नहीं है। इस समय यह राज्य काश्मीरका भाग माना जाता है। रणजीत-सिंहने इसे जीता था। यह राजवंश चंद्रवंशी अत्रिगोत्री है। कह नहीं सकते कि उत्तमराजका गोत्र क्या था और उसका वंश कौन सा था।

७ बल्लापुर (बालौर) अथवा बसोहली

यह एक दूसरा पहाडी राज्य है जो काश्मीरकी अधीनतामें है। इसके राजाका नाम उपर्युक्त आठ मांडलिक राजाओंमें है जो कलशके दरबारमें ई० सन् १०८७ में गये थे। इनका इतिहास हचिन्सन और व्हॉजेलने पंजाब जर्नल जिल्द २ पृ. ७७ से ९७ तक दिया है। उसके आधारपर हम इस कालविभागसे सम्बन्ध रखनेवाला इतिहास यहाँ देते हैं। कहा जाता है कि यह राजवंश पांडवोंसे उत्पन्न हुआ है। इस वंशके सम्बन्धमें जो यह दन्तकथा है कि ये लोग इलाहाबादसे पहले पहल अल्मोडा आये और वहाँसे हरिद्वार होते हुए सुकेतके मार्गसे पहाड़में आये, वह मान लेने योग्य प्रतीत होती है, क्योंकि पांडवोंके अंतिम पौराणिक वंशज कौशाम्बीमें राज्य करते थे और ऐतिहासिक कालका उनका सबसे बड़ा राजा कथासरित्सागरमें वर्णित उदयन था। वह अपने मंत्री योगन्धरायणके साथ साथ कौशाम्बीमें राज्य करता था। अस्तु, यह कुल चंद्रवंशी था। परन्तु इसका गोत्र नहीं बताया गया। अब यह राजवंश नष्ट हो गया है, तथापि इस वंशवालोंके भैयाबन्दोंके वंशज बालोरिया राजपूत कहे जाते हैं। इस राज्यकी स्थापना ई० स० ९०० के पहले भोगपालने की थी। उसकी प्राचीन राजधानी बल्लापुर (बालोर) में थी। इन राजाओंके नामके अन्तमें 'पाल' उपपद पाया जाता है। त्रिलोचनपाल ग्यारहवीं सदीके पूर्वार्धमें राज्य करता था। उसका पुत्र तुंग और पौत्र

कलश था। इस कलशका नाम काश्मीरके कलशके दरबारियोंकी फेह-रिस्तमें है। वल्लापुरके पद्मक और उसके पुत्र आनन्द, इन दो राजाओंके नाम भी राजतरंगिणीमें पाये जाते हैं। परन्तु ये बालोरिया राजाओंकी वंशावलीमें नहीं पाये जाते। इन दोनोंने हर्षके पोते भिक्षाचारकी सहायता की थी, जब वह उचल और सुस्सल द्वारा छीनी हुई काश्मीरकी गद्दीको पुनः प्राप्त करनेमें लगा हुआ था, क्योंकि ये उसके रिश्तेदार थे। परन्तु उन्हें इस काममें यश नहीं मिला। अन्तमें वे दूसरे पक्षके साथ जाकर मिल गये। जयसिंहने बालोरके किसी राजाको राज्यच्युत किया था, ऐसा वर्णन मिलता है, परन्तु मालूम होता है कि जयसिंहके समयके बाद होनेवाले सभी राजा स्वतन्त्र थे। ई० सन् १२०० तकके उनके नाममात्र लिख देना अनावश्यक है।

८ कोट-काँगड़ा।

जालन्धर राज्यका वृत्तान्त पहले भागमें हम दे ही चुके हैं। महाभारतके युद्धमें जब सुशर्माने कौरवोंकी ओरसे युद्ध किया था, तबसे यह राज्य चला आ रहा है। यही कटोच राजाओंका ज्ञात पूर्वज है। उनके वंशके सीधे वारिस महाराज सर जयचन्द जिला कांगड़ाके एक गाँवमें रहते हैं। ये राजपूत राजा विद्वान् थे और पूर्व हिमालयके राजपूत लोगोंपर इनका बहुत भारी रोब था। त्रिगर्त देशमें जालन्धर (मैदान) और कांगड़ा (पहाड़) का समावेश होता था। हम अबतक इस बातका निश्चय नहीं कर सके हैं कि महमूदके समयमें यहाँपर कौन राजा राज्य कर रहा था। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि वह चाहे कोई भी रहा हो, पर वह पंजाबके शाहीराजा आनन्दपालका माण्डलिक रहा होगा और उसने संयुक्त हिन्दुओंकी आखिरी लड़ाईमें भी भाग लिया होगा। मालूम होता है कि हिन्दुओंके पराजित होनेपर, कोट-कांगड़ाके राजाके वापस लौटनेके पहले ही, महमूदने कोट-कांगड़ापर चढ़ाई कर दी। किलेके रक्षकोंने कुछ समयतक किलेकी रक्षा की परन्तु अन्तमें भीतरकी अतुल सम्पत्ति सहित किला महमूदके हाथोंमें चला गया। जैसा कि पहले कहा गया

है, कोट-कांगड़ाका किला अजेय समझा जाता था, इसीलिए इतनी सम्पत्ति वहाँ इकट्ठी हो गयी थी। महमूदके समकालीन इतिहासकार उत्बीके कथनसे मालूम होता है कि महमूदकी प्रचण्ड सेनाको देखकर दुर्गरक्षकोंकी हिम्मत टूट गयी और उन्होंने जोरोंके साथ लड़ना छोड़ एकदम आत्मसमर्पण ही कर दिया। हमारा ख्याल है कि ये लोग किरायेके टट्टू थे, अपने देशके लिए लड़नेवाले शूर योद्धा नहीं थे। क्योंकि उत्बीका कथन है कि वे "केवल आत्मसमर्पण ही करके नहीं रहे, बल्कि उन्होंने तो सुलतानके झंडेके नीचे नौकरी करना तक स्वीकार कर लिया। बादमें उन्होंने किलेका दरवाजा खोल दिया और नम्रतापूर्वक सुलतानकी नौकरी बजाने लगे" (उत्बी पृष्ठ ३४१)। इस तरह यह अजेय किला मय अतुल सम्पत्तिके महमूदके अधिकारमें चला गया। जब महमूदने उसे स्थायीरूपसे अपनी अधीनतामें कर लिया, तब अपने कुछ विश्वसनीय आदमियोंको उसकी रक्षाके लिए छोड़ कर वह लौट गया। इसके बाद त्रिगर्तके राजाओंका मैदानका राज्य नष्ट हो गया और उन्होंने पहाड़ोंका आश्रय ग्रहण किया। ई. स. १०४४ में चार महीने तक घेरा डालकर उन्होंने दिल्लीके राजाओंकी सहायतासे फिर किला ले लिया। उत्बीने वहाँ एक भी मूर्ति या मंदिरके तोड़नेका उल्लेख नहीं किया। हाँ, दूसरे इतिहासकारोंने जरूर ऐसा किया है। परन्तु कौनसी मूर्ति तोड़ी गयी, इसका उल्लेख नहीं है। कांगड़ामें हमने पूछताछ की तो मालूम हुआ कि वहाँपर अंबिका अथवा वज्रेश्वरी देवीका प्रसिद्ध देवालय था। यह देवालय ज्वालामुखी देवीके मन्दिरसे भिन्न था। ज्वालामुखीका मंदिर तो कोट-कांगड़ासे बीस मीलकी दूरी पर है। जैसा कि पहले कहा गया है, महमूदने इस मूर्तिको तोड़ डाला होगा और कांगड़ाके राजाओंने जब किला वापस ले लिया तब पुनः नवीन मूर्तिकी वहां स्थापना कर दी होगी।

ईसवी सन् १२०० तकका कांगड़ाका इतिहास संक्षेपमें कहा जा सकता है। कल्हणने राजा इंद्रचंद्रका उल्लेख ई० स० १०४० में किया है। संभवतः इसीने किला वापस लिया होगा। कांगड़ाके दूसरे राजाओंका नाम हमें नहीं मिलता। परन्तु जोनराजकी तरंगिणीमें उल्लेख है कि

तुर्कोंने त्रिगर्तके किसी राजाको पराजित कर दिया था और वह काश्मीर भाग गया था। उसने जयसिंहकी सहायतासे चढ़ाई करनेवाले तुर्कोंपर आक्रमण करके अपने राज्यको पुन प्राप्त किया। कटोच राजाओंकी वंशावलीसे आगेके राजाओंके केवल नाम दे देना व्यर्थ है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इन कटोच राजाओंकी वशावली सभी वशावलियोंसे अधिक विश्वसनीय है। कांगडाका वर्णन हमने अन्यत्र दूसरे प्रकरणमें दिया ही है।

अठारहवाँ प्रकरण।

अन्तिम हिन्दू सम्राट्-रायपिथौरा।

चदने अपने रासोमें इस वीर हिन्दू सम्राट्का पूरा चरित्र दिया है। कहा जाता है कि चन्द भाट पृथ्वीराजका समकालीन था परन्तु वर्तमान रासो ग्रन्थ तो मूल ग्रन्थका अत्यत विस्तृत स्वरूप है। उसमें लिखी हुई कितनी ही कहानियाँ और कितने ही कथन शिलालेखादि विश्वसनीय आधारोंसे झूठे साबित हुए हैं। इसलिए यह निश्चित करना कठिन है कि रासो में दिये हुए चरित्रका कितना हिस्सा सच्चा है। तथापि हमारी सहायताके लिए और भी दो ऐतिहासिक काव्य हैं। पहला है पृथ्वीराजविजय काव्य। इसे पृथ्वीराजके दरबारी कवि किसी काश्मीरी पंडितने लिखा था। वह पहले पहल ब्यूल्हरको प्राप्त हुआ। इसका सारांश अजमेरके श्री हरबिलास सारडाने प्रकाशित किया है (ज० रा० ए० सो० १९१३)। दूसरा हम्मीर काव्य है। इसे जे० बी० कीर्तने ने प्रकाशित किया है। परन्तु पहला काव्य अधूरा है। उसमें पृथ्वीराजके अन्त तककी बातें नहीं लिखी गयीं। दूसरेमें पृथ्वीराजके वंशज हमीरके मुख्य पराक्रमोंका वर्णन है। अस्तु, इन तीन आधारों-

पर हम पृथ्वीराजके चरित्रका दिग्दर्शन करानेका प्रयत्न करेंगे। रासोमें दी हुई जितनी बातें हमें संभवनीय और अविरोधित मालूम हुईं, वे सब हमने ग्रहण की हैं।

स्वयं पृथ्वीराजका ही एक शिलालेख मदनपुरमें मिला है। परमर्दिदेव चन्देलको पराजित करनेके बाद ई० सन् ११८२ में यह खुदवाया गया था। इसमें पृथ्वीराजको सोमेश्वरका पुत्र और अर्णोराजका पौत्र बताया है। परन्तु पृथ्वीराज और सोमेश्वरकी माताओंका नाम इसमें नहीं दिया गया। रासो का कथन है कि दिल्लीके अनंगपालकी लड़की पृथ्वीराजकी माता थी। परन्तु हम्मीरकाव्य और पृथ्वीराजविजयमें लिखा है कि चेदी हैहय राजपुत्री कर्पूरदेवी इसकी माता थी। अवश्य ही यह दूसरा कथन अधिक सभवनीय प्रतीत होता है। रासोमें पृथ्वीराजका जन्मकाल आनंद सं० १११५ अर्थात् ई० सन् ११४६ दिया है और लिखा है कि मृत्युके समय उसकी आयु ४३ वर्षकी थी। अर्थात् उसकी मृत्युका वर्ष ईसवी सन् ११६२ में निकलता है, जो ठीक है। परन्तु टॉडने उसका जन्म संवत् १२१५ (ई० स० ११५८) दिया है। अर्थात् इस हिसाबसे मृत्युके समय उसकी आयु केवल चौंतीस वर्षकी होती है। रायबहादुर पं० गौरीशंकर ओझाके मतानुसार उसका जन्मकाल संवत् १२२५ अर्थात् ११६८ ई० होगा। इस प्रकार मृत्युके समय वह निरा २४ वर्ष का ही सिद्ध होता है। किन्तु यह तो असंभव प्रतीत होता है। बिजोलिया शिलालेखमें लिखा है (ज० ए० सो० बंगाल ५४ भाग १ पृ० ३१, ४०) कि बीसलदेव अथवा तीसरे विग्रहने दिल्लीको जीता था। बीसलका एक लोहस्तंभ दिल्लीमें है। उसमें भी यही बात लिखी है। इस लेखका निश्चित समय ६

अप्रैल ११६४ ई० है (कीलहार्न ई० पं० १६ पृ० २१८), इस-लिए हम मान सकते हैं कि यह विजय ई० सन् ११६३ के दिस-म्बरमें प्राप्त हुई थी। विजोलियाके लेखमें पृथ्वीराज दूसरेको वीसलके बादका राजा बताया है। उसने एक देवालयको दान दिया था। उसके बाद सोमेश्वर सिंहासनपर बैठा। उसने भी किसी दूसरे जैन मन्दिरको दान दिया। इतनी बातें उसमें लिखी हुई हैं। इस लेखका काल ईसवी सन् ११७० है। पृथ्वीभट अर्थात् पृथ्वीराज दूसरेके ई० स० ११६७ और ११६९ में लिखे हुए लेख प्राप्त हुए हैं (कीलहार्न एपि० इंडि० ८)। इससे यह निश्चित होता है कि वह ११६४ से ११६७ के बीच सिंहा-सनपर बैठा और उसने ११६९ तक राज्य किया। उसके बाद सोमेश्वर राजा हुआ। यह नहीं कहा जा सकता कि उसने ई० स० ११७० के बाद कितने वर्ष राज्य किया। पं० गौरीशंकरके मतानुसार उसने संवत् १२३६ (अर्थात् ई० सन् ११७९ तक) राज्य किया। पिताकी मृत्युके समय पृथ्वीराज कम उम्रका था। जैसा कि 'पृथ्वीराज' विजय काव्यमें लिखा है, उसकी तरफसे उसकी माता शासन-कार्य चलाती थी। परन्तु ई० सन् ११८२ में वह इतना बड़ा और शक्तिशाली हो गया था कि उसने परमर्दिदेवको पराजित कर दिया। इस समय यदि हम उसकी उम्र २१ सालकी मान लें तो उसका जन्म ११६१ में पड़ता है और सोमेश्वरकी मृत्युके समय अर्थात् ई० स० ११७९ में वह १८ वर्षका रहा होगा। इस उम्रका हिन्दू राज-पुत्र कमउम्र नहीं कहा जा सकता। साथ ही यहाँपर पृथ्वीराज विजयका लेखसे विरोध होता है। इसलिए हमारा तो यह मत है कि सोमेश्वरने ई० सन् ११७९ तक राज्य ही नहीं किया होगा। अस्तु, तो पृथ्वीराजके जन्मको नीचे लिखी तीन भि-

तियां प्राप्त होती है—रासो ई० स० ११४६ वैशाख वदी द्वितीया देता है। पृथ्वीराज विजयमें ग्रहोंकी स्थिति और मिति इस प्रकार दी है। ज्येष्ठ वदी द्वादशीको जब वैशाख शुक्ल पक्ष समाप्त होनेपर मंगल मकरमें, शनि कुंभमें, गुरु मीनमें, सूर्य्य मेषमें, चंद्र वृषभमें और बुध मिथुनमें था, तब उसका जन्म हुआ था। * टॉड ई० स० ११५८ जन्मकाल देता है और प० गौरीशंकरके मतानुसार उसका जन्म ई० स० ११६८ में हुआ। पृथ्वीराजके जन्मके समय सोमेश्वर राजा नहीं हुआ था। उसका भाई तीसरा विग्रह राजा था, इसलिए वह अनहिलवाडके जयसिंह सिद्धराजके दरबारमें रहता था। सिद्धराजकी लडकी कांचनदेवी सोमेश्वरकी माता थी। पृथ्वीराज दूसरेकी मृत्यु हो जानेपर सोमेश्वर अजमेर आया और उसने वहाँ कई सालतक राज्य किया। यह बात तो निश्चित है। उसके कई तांबेके सिक्के भी प्राप्त हुए हैं जिनसे यही बात सिद्ध होती है। पृथ्वीराजके जन्मका स्थान रासोमें दिल्ली ही दिया गया है। परन्तु बहुत संभव है, उसका जन्म अनहिलवाड या चेदीके त्रिपुरमें हुआ हो। पृथ्वीराज विजयमें तो उसका जन्म स्थान अनहिलवाड बताया गया है (ज० रा० ए० १६१३, पृ० २७३)।

पृथ्वीराजके जन्मका काल और स्थलका विचार कर लेने पर अब हम उसके विवाहका विचार करेंगे। यह काम उत्तमें

* यह ग्रह स्थिति तो काल्पनिक मालूम होती है। क्योंकि ज्येष्ठ शु० द्वादशीको न तो सूर्य्य मेषमें रह सकता है और न चंद्र वृषभ में। अर्थात इस काव्यमें भी उच्च और स्वगृहोंके काल्पनिक ग्रह बताये गये हैं। इस गृहस्थितिसे जन्म और वर्ष निकालना असंभव है। परन्तु संभव है जन्म की तिथि और महीना ठीक हो।

ही स्वभावतः बड़ा बलिष्ठ रहा होगा और तत्कालीन हिन्दू रूढ़िके अनुसार उसका विवाह भी जल्द ही हो गया होगा। रासोमें लिखा है कि उसकी अनेक रानियाँ थीं। परन्तु पहली और मुख्य रानी तो आबूके जेता परमारकी कन्या इंछिनी देवी थी। रासोमें इस विवाहकी जो कथा दी हुई है वह मूर्खतापूर्ण है। आबूके इस परमार सरदारकी बड़ी लड़की चालुक्य राजा भीमको दी गयी थी। उसने उसकी छोटी बहिनके विलक्षण लावण्यकी कथा सुनकर उसकी भी याचना की, किन्तु पिताने उसका विवाह पृथ्वीराजसे कर दिया। इसलिए भीमने आबू राज्यपर चढ़ाई कर दी। इधरसे पृथ्वीराजने भीमपर आक्रमण किया। तब भीमने शहाबुद्दीन गोरीको उत्तरसे पृथ्वीराजपर आक्रमण करनेके लिए तैयार किया और खुद दक्षिणसे उसपर चढ़ाई करनेके लिए चला। पृथ्वीराज और उसके सेनापति कैमासने दोनोंको क्रम क्रमसे पराजित कर दिया। शहाबुद्दीन इस बार पकड़ा गया। रासो-की आश्चर्यजनक अत्युक्तिके अनुसार शहाबुद्दीन कई बार पृथ्वीराजका कैदी होकर रहा और प्रत्येक बार पृथ्वीराजने उसे उदारतापूर्वक छोड़ दिया। परन्तु यह बात असंभवनीय मालूम होती है। अस्तु, पृथ्वीराज और परमार राजकन्या इंछिनी इन दोनोंका विवाह हो गया। और हम मान लेते हैं कि इस कारण गुजरातके भीमका और पृथ्वीराजका युद्ध भी हुआ, जिसमें भीम पराजित हो गया।

यहाँपर पृथ्वीराजकी दूसरी रानियोंका वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती। हां, उसकी अंतिम रानी कन्नौजके गाहड़वाल राजा जयचंद्रकी कन्या संयोगिता थी। उसके विषयमें यहां दो शब्द लिख देना जरूरी है। रासोमें तो

इस विवाहपर एक सुन्दर आख्यान ही रच डाला गया है। जयचंदने संयोगिताका स्वयंवर करना निश्चय किया। उसमें उसने अपने शत्रु पृथ्वीराजको नहीं बुलाया। इतना ही नहीं वल्कि उसका उपहास और अपमान करनेके लिए उसे छड़ीदार बनाकर स्वयंवर मंडपके द्वारपर उसको एक मूर्ति बनवा कर रख दी। परन्तु कालीने स्वप्नमें संयोगिताकी शादी पृथ्वीराजसे कर दी थी, इसलिए उसने जयमाला पृथ्वीराजकी उस मूर्तिके ही कण्ठमें डाल दी। वीरोदात्त पृथ्वीराज ठीक वक्तपर वहाँ जा पहुँचा और कन्याको वहाँसे तुरन्त ले भागा। इस समय जयचंदकी प्रचण्ड सेनासे उसे खूब लड़ना पड़ा। इस युद्धमें दोनों तरफके अनेक वीर खेत रहे। यह सब कथा इतनी रमणीय है कि वह सत्य नहीं प्रतीत होती। परन्तु, जैसा कि कुछ लोगोंका कथन है, वह हमें सर्वथा झूठ भी नहीं मालूम होती। जूलियटकी तरह संयोगिताने भी पृथ्वीराजको प्रीति-संदेश भेजा होगा और पृथ्वीराज एकाएक कन्नौजपर आक्रमण कर युद्ध करके संयोगिताको ले गया होगा। यद्यपि चन्दने रासोमें और इससे भी पहले बिल्हणने *विक्रमांकदेवचरित*में स्वयंवरका वर्णन किया है तथापि इस समय तो स्वयंवरविधि बिलकुल लुप्त हो गयी थी। अस्तु, इस प्रीति कथाके कारण पृथ्वीराजका नाम तो भारतवर्षमें अजरामर सा हो गया है। सर विन्सेण्ट स्मिथने इस विवाहकी मिति, प्रायः रासोके आधारपर, ई० स० ११७५ दी है (प्राचीन इतिहास पृ० ३८७ तृ० संस्क०)। परन्तु टॉडके अनुसार पृथ्वीराजका जन्म यदि ११५८ मान लिया जाय तो ई० स० ११७५ में वह केवल सत्रह वर्षका होता है। रासोके अनुसार उस समय वह २६ वर्षका पाया जाता है। जो कुछ हो,

यदि मान लिया जाय कि ११७५ ई० में उसका विवाह हुआ तो यह निश्चित है कि उसका अन्त (११९२), विवाहके सत्रह वर्ष बाद होता है। परन्तु रासोके अनुसार तो विवाहके बाद शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी। इसलिए यही संभवनीय मालूम होता है कि उसका यह विवाह ई० स० ११८५ में हुआ होगा। रासोमें भी हमें यही मिति मिली।' हमारा ख्याल है कि ११७५ ई० यह तारीख सिंधके इतिहासमें गलतीसे छप गयी होगी। रासोमें वर्णन है कि पृथ्वीराजकी एक रानी देवगिरिके यादवोंकी कन्या भी थी।

पृथ्वीराजके चरित्रकी जो अनेक बातें रासोमें लिखी हुई हैं (उसके बुद्धिमान् मन्त्री और शूर सेनापति कैमासका वध इत्यादि) उनके यहां देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। मुसलमानोंके साथ उसका जो युद्ध हुआ, उसके अतिरिक्त उसके अन्य संभवनीय युद्धोंका हाल हम यहाँ देते हैं। कन्नौज, बुंदेलखंड और गुजरात, ये उसके पड़ोसी बलवान् राज्य थे और इनपर क्रमशः गाहड़वाल, चंदेल और चालुक्य राजा इस समय राज्य कर रहे थे। वे सब भी चतुर और शूरवीर थे। जयचंद, परमर्दिदेव और भीम इन तीनोंके साथ पृथ्वीराजका युद्ध हुआ था। पृथ्वीराजने प्रत्येकको पराजित कर उसपर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इस तरहके प्रत्येक युद्धमें शूरवीरताके अनेक काम किये गये, उनका वर्णन करना आवश्यक नहीं। पर एक बात हम जरूर कह देना चाहते हैं। आल्हा और ऊदल, इन दोनों बनाफरवंशी राजपूत भाइयोंको बुंदेलखंडके चंदेल परमर्दिदेवने इस देशसे निर्वासित कर दिया था। जब पृथ्वीराजने महोबा-पर चढ़ाई की तब इनकी माताने इन्हें स्वदेशकी रक्षाके लिए

शीघ्र आनेको कहा और खूब समझाया। तब वे वापस आये और पृथ्वीराजसे युद्ध करते करते वीर-गतिको प्राप्त हुए। यह और इसके जैसी कई वीरोत्साहवर्धक तथा हृदयद्रावक कथाएँ रासोमें दी हुई हैं। ये शूरवीर राजपूतोंको बड़ी प्रिय हैं; इसलिए राजपूतानेमें चन्दका काव्य 'पृथ्वीराजरासो' मानो बच्चे बच्चेकी जबानपर है। किन्तु इतिहासकार इस बातका ठीक ठीक निश्चय नहीं कर सकता कि ये बातें कहाँतक सत्य हैं, क्योंकि इनके विषयमें अभी कोई सुदृढ़ और समकालीन लिखित प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है। हाँ, पृथ्वीराजके पूर्वोक्त मदनपुरवाले लेखसे यह बात तो जरूर सिद्ध हो जाती है कि ईसवी सन् ११८२ में उसका परमर्दिदेवसे युद्ध हुआ था जिसमें परमर्दिदेव पराजित हुआ था।

हर विलास शारडाने 'ज०रा० ए० सो० १९१३' में पृथ्वी राज विजय नामक काव्यका जो सारांश दिया है, उसमें न तो पृथ्वीराजके युद्धोंका और न उसके विवाहोंका ही उल्लेख है। हाँ, उसमें उसके दो मंत्रियोंका नाम जरूर आया है— एक तो कदम्बवास (कैमास) और दूसरा भुवनैकमल्ल। ये दोनों बड़े शूरवीर थे, किन्तु इनके पराक्रमका वर्णन उसमें नहीं किया गया है। तथापि इतना कहा गया है कि गुजरात से एक दूत आया और उसने यह शुभ समाचार सुनाया कि (पृथ्वीराजने) गुजरातमें शहाबुद्दीनको पराजित कर दिया। पृथ्वीराजके पूर्ण राज्याधिकारी हो जानेके बादकी यह बात मालूम होती है। हम पहले ही गुजरातके प्रकरणमें कह चुके हैं कि यह युद्ध ईसवी सन् ११७९ में हुआ था। इस समय पृथ्वी· राज बड़ा हो गया था। अर्थात् नाबालिग अवस्थामें उसने थोड़े ही समयतक राज्य किया था।

इन पड़ोसी राजाओंके साथ उसके जो युद्ध हुए, उनका परिणाम कितना बुरा हुआ, इसके विषयमें हम आगे चलकर कहेंगे। परन्तु इनसे इतना तो जरूर हुआ कि पृथ्वीराजकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी और वह स्वभावतः उत्तर भारतका सम्राट् माना जाने लगा। अर्थात् अजमेर और दिल्लीका राजा होते हुए भी वह उत्तर भारतका चक्रवर्ती सम्राट् होगया, (ठीक उसी प्रकार जैसे कि पञ्चम जार्ज इंग्लैंडके राजा और भारतके सम्राट् हैं।) राजपूतोंमें यह चक्रवर्तित्व हमेशा झगड़ेकी जड़ रहा है और पराक्रमी होनेपर प्रत्येक राजा चक्रवर्ती बननेका प्रयत्न करता था। हम पढ़ चुके हैं कि कोंकणके शिलाहार राजा अपनेको कोंकण चक्रवर्ती कहलाते थे। सम्राट्का सम्मान प्राप्त करनेके लिए इस समय दो प्रतिस्पर्धी थे—अजमेरका पृथ्वीराज और कन्नौजका जयचंद। जयचन्दका दादा गोविन्दचन्द सचमुच समस्त उत्तरीय भारतका सम्राट् हो गया था, किन्तु बीसलदेवने उसके पुत्रसे यह सम्मान छीन लिया। उसने दिल्लीको जीतकर अपने राज्यमें शामिल कर लिया। अब चौहानोंकी तूती बोलने लगी। पृथ्वीराज और जयचंदके बीच इसके लिए प्रतिस्पर्धा शुरू हुई। अतः बाहरसे आक्रमण करनेवाले गोरीके समय मुसलमान सत्ताका विरोध करना बंटी हुई हिन्दू शक्तिके लिए असंभव हो गया। इसका वर्णन हम अगले प्रकरणमें करेंगे।

टिप्पणी

रासोमें पृथ्वीराजके चरित्रके विषयमें ये तिथियां दी हुई हैं—

१ जन्म— आनन्द सं० १११५=११४९ ई० = १२०५ विक्रम सं०

२ दिल्लीमें दत्तक ,, ११२२=११५६ ,, = १२१३ ,, ,,

३ कैमाससे युद्ध आनन्द सं० ११४०=११७४ ,, =१२३१ विक्रम सं०
४ कन्नौजपर चढाई ,, ११५१=११८५ ,, =१२४२ ,, ,,
५ अंतिम युद्ध और मृत्यु ,, ११५८=११९२ ,, =१२४९ ,, ,,

(रासोका बनारसका संस्करण पृ० १४०)

उन्नीसवाँ प्रकरण।

शहाबुद्दीन गोरी और हिन्दुओंका अन्तिम युद्ध।

गजनीके तुर्क राजा महमूदने जैसे पंजाबका विध्वंस किया था, वैसे ही गोरके अफगान राजा शहाबुद्दीनने समस्त उत्तर भारतका विध्वंस किया। इसलिए जिस प्रकार पंजाबके उच्छेदका वर्णन करनेके पहले हमें गजनीके तुर्की राज्यके उदयका इतिहास देना पडा था, उसी प्रकार उत्तर भारतके राजपूतोंके उच्छेदका वर्णन करनेके पहले हमें गोरके राज्यका इतिहास भी देना जरूरी है।

गजनीसे वायव्यकोणमें गोरका पहाडी इलाका है। उसमें अफगान जातिके लोग रहते हैं। अफगानिस्थानके अन्य भागोंके समान ही यहांके लोग भी पहले हिन्दू ही थे। महमूदके पहले, या शायद उससे भी कुछ पहले, वे मुसलमान बना दिये गये थे। बहुत समयतक तो गोरके राजा गजनीके सुलतानोंकी अधीनतामें रहे। परन्तु सुलतान बहिरामके समय इनका-उनका झगडा हो गया। बहिरामने अनावश्यक रीतिसे कुतुबुद्दीन-गोरीका वध कर डाला और बादमें उसके भाई सैफुद्दीनको भी गजनीमें बुरी तरह कत्ल कर डाला। इसपर उसके तीसरे

भाई अल्लाउद्दीनने इसका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा की और गजनीपर चढ़ाई कर दी। सुलतान बहिराम भी एक प्रचण्ड सेना लेकर गजनीसे निकला। उसकी सेनाका महत्वपूर्ण अंग था गजसेना। कुछ वीरोंके शौर्यसे अलाउद्दीनने इस गजसेना-को पराजित कर दिया। बहिरामकी दूसरी सेना भी पराजित हो गयी। तब वह गजनीको क्रोधान्ध अलाउद्दीनके रोषका शिकार बनाकर वहाँसे भाग गया। अलाउद्दीनने बड़ी क्रूरताके साथ गजनीसे अपने वैरका बदला निकाला। सात दिनतक वह उस शहरको लूटता और जलाता रहा। जो कोई मिलता उसे वह कत्ल कर डालता। स्त्रियों और बच्चोंको उसने गुलाम बना डाला। महमूदी राजाओंके महल पृथ्वीमें अद्वितीय थे, किन्तु उनको भी उसने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इस तरह अनेक क्रूरताएँ करनेके बाद अपने भाइयोंके मृत शरीरोंको लेकर वह गोरको लौटा और अपने पुरखोंके कब्रस्तानमें उन्हें दफ-नाया (तबकात नासिरी इलियट २ पृ॰ २८६)। राजाके अप राधके कारण लोगोंसे कैसा भयंकर बदला लिया गया। बहिराम हिन्दुस्तानको भागा किन्तु रास्तेमें ही मर गया। इस क्रूरता और निर्दयताके कारण अलाउद्दीनको जहाँसोज (संसारको जलानेवाला) कहते हैं। जैसा गुण वैसा नाम। उसकी मृत्युके बाद उसका लड़का राज्यारूढ़ हुआ। परन्तु वह शीघ्र ही मर गया। इसलिए उसका भतीजा ग़ियासुद्दीन मह-म्मद बिनसाम गद्दीपर बैठा और गोरकी राजधानी फिरोज-कोहमें राज्य करने लगा। उसका भाई मुइज्जुद्दीन महम्मद बिनसाम ई॰ ११७२ में गजनीके सिंहासनपर बैठा। महमूदी सुलतान खुसरूके हिन्दुस्तानमें भाग जानेपर बारह वर्षतक गजनीपर गोभ्रू तुर्कोंका कब्जा रहा। गोरीने उन्हें मार

भगाया। यद्यपि वह अपने भाई घियासुद्दीनकी तरफसे राज्य करता था तथापि वस्तुतः वह स्वतंत्र ही था। उत्साही और महत्वाकांक्षी भी था। इसलिए स्वभावतः उसने महमूदी सुलतानोंके तमाम हिन्दुस्तानी मुल्कोंको बल्कि समस्त हिन्दुस्तानको जीतनेकी ठान ली। महम्मद गोरीका खिताब 'शिहाबुद्दीन' (धर्मका प्रचलित तारा) था।

पहले पहल उसने मुलतान और उसके आसपासके प्रदेशको ई. स ११७५ में जीता। ई. स ११७८ में उछ और मुलतानके मार्गसे उसने नाहरवालापर चढ़ाई की। नाहरवालाका राजा इस समय अल्पवयस्क था। तबकातमें गलतीसे उसका नाम भीम लिख दिया गया है। गुजरातके इतिहासमें हम कह चुके हैं कि उसका नाम मूलराज था। वह भीमका बड़ा भाई था। यद्यपि मूलराज अल्पवयस्क था तथापि उसके पास एक बहुत बड़ी फौज और अनेक हाथी थे। इस युद्धमें सुलतानको पराजित होकर लौट जाना पड़ा।

ई० सं० ११७९ में उसने पेशावर लिया और दो वर्ष बाद सुलतान खुसरूकी राजधानी लाहौरपर आक्रमण कर दिया। इस समय इन सुलतानोंकी शक्ति कम होगयी थी और उनका राज्य नष्ट होता जा रहा था। खुसरू मलिकने अपना एक लड़का जामिनमें भेजा और गोरीको एक हाथी नजर किया, इसलिए इस बार गोरीने उसे छोड़ दिया। अब उसने सिंधकी ओर दृष्टि फेरी और देवालको जीतकर समुद्र पर्यन्त सभी प्रदेश अपने कब्जेमें कर लिया। ई. स. ११८४ में उसने पुनः लाहौरपर आक्रमण किया। रास्तेके समस्त प्रदेशको उसने लूटपाट कर मैदान कर दिया। पर इस समय उसने सियालकोटका किला बनवा कर वहाँ एक शहर भी बसाया।

खुस्रू मलिक इस समय उसे रोकनेमें असमर्थ था। इसलिए उसने, शहरसे बाहर आकर आत्म-समर्पण कर दिया। गोरीने उसे कैद करके गोरकी राजधानी फिरोजकोहको पहुँचा दिया। ईसवी सन् ११८१ में वह पुत्र सहित वहाँसे दूसरे किलेको भेज दिया गया और ई स. १२०५ के करीब वहीं मारा गया। गजनीके इस आखिरी सुलतानका वर्ताव वैसा ही था जैसा औरंगजेबके साथ बीजापुरके आखिरी सुलतानने किया था और दोनोंका अन्त भी एक ही तरहसे हुआ। मुएज्जुद्दीन गोरीने लाहौरमें अपना एक अधिकारी नियुक्त कर दिया और तबकातके लेखकके पिताको वहाँकी फौजका काजी बनाया। इतना इन्तज़ाम करके वह गज़नीको लौट गया। इस प्रकार पंजाबमें पुराने और कमजोर महमूदी राजवंशके स्थानपर नये वंशका राज्य क़ायम हुआ और गजनीमें नवीन पराक्रमी एवं महत्वाकांक्षी राजा राज्य करने लगा। उसमें वैसा ही उत्साह और वैसी ही तेजी थी जैसी महमूदमें थी। उसने उत्तर भारतके राजपूत राजाओंसे युद्ध शुरू करके उनका अन्त कर डाला। पड़ोसी राजा इतिहासमें इसी तरह परस्पर युद्ध करते आये हैं।

बीसवाँ प्रकरण।

पृथ्वीराजसे युद्ध।

इस समय अजमेर और दिल्लीके राजा पृथ्वीराजके राज्यकी हद गोरीके राज्यकी हदसे लगी हुई थी। व्यक्तिगत गुणों और साम्राज्य—बलमें भी ये दोनों सम्राट् एक दूसरेकी

बराबरीके थे। इन सम्राटोंके झगडेका इतिहास चद भाटने अपने रासोमें एक तरहसे दिया है और निजामुद्दीनने अपने 'ताजुल मासुर' ग्रन्थमें (तबकातमें इसीका अनुवाद है) और ही कुछ लिखा है। दोनों अपने अपने नायकके गुणोंको अत्युक्तिपूर्वक लिखते हैं। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे देखा जाय तो ताज और तबकातमें जो वृत्तान्त दिया हुआ है वह रासोकी अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है। क्योंकि वह इस घटनाके (क्रमशः) बीस और पचास साल बाद ही लिखा गया है। रासोका वर्तमान स्वरूप पृथ्वीराजके तीन सौ वर्ष बादका है। इसलिए उसमेंकी अधिकांश कथामें अद्भुत रस का प्रवेश अधिकतया हो गया है। इसलिए हम 'मुसलमान लेखकोंकी बातोंको लेकर उन्हें ऐतिहासिक कसोटीपर कस कर नीचे लिखा वृत्तान्त देते हैं। तथापि यहाँपर इतना जरूर कहना होगा कि ताजमेंकी कथा अधिक तफसीलवार और काव्यमय नहीं है, इसलिए जरा भद्दी मालूम होती है। तात्पर्य यह कि ताजका लिखा गोरीका इतिहास उत्बीके लिखे मह मूदके इतिहासके साथ साथ नहीं रखा जा सकता

पहले हम तबकातमें जो वर्णन है उसीको यहाँपर पाठकोंके लिए उद्धृत कर देते हैं (इलि० २ पृ० २९५)। मह म्मदगोरीने हिन्दुओंके प्रदेशोंपर आक्रमण करके पहले युद्ध छेडा और सरहिंदका किला लेकर वहाँ अपने अधिकारी रखे। राय पिथौराने इस किलेपर चढाई की। तब सुलतानने नरायनमें उसका विरोध किया। इस समय भारतवर्षके सभी राजा 'राय कोला' के साथ थे (कोला शब्द निंदाव्यजक है)। बहुत सभव है, पृथ्वीराजने हिंदुओंपर मुसलमानोंके इस आक्रमणकी जडको उखाडनेके लिए हिंदुओंकी सयुक्त सेना तैयार करके

ही चढ़ाई की हो। परंतु इस बातका सबूत शिलालेखोंमें नहीं पाया जाता कि उसने सचमुच ऐसा किया था या नहीं। "इस युद्धमें सुलतानने एक भाला लेकर दिल्लीके गोविन्दरावपर आक्रमण किया। वह हाथीपर था और सुलतान घोड़ेपर। सुलतानने गोविन्दरावके मुँहमें भाला मारा और उसके दोनों दाँत तोड़ डाले। परन्तु गोविंदरावने जोरसे भाला फेंक कर सुलतानकी बाँहपर भारी घाव कर दिया। सुलतानने अपने घोड़ेका मुँह फिराया और वहाँसे निकल आया। लौटते समय वह कुछ देरमें घोड़ेपरसे गिरने लगा। इतमेंमें एक साहसी अफगान वीर कूद कर उसके घोड़ेपर सवार हो गया और उसे सम्भाल कर सुरक्षित स्थानपर ले गया। इधर फौजमें सुलतानकी मृत्युकी अफवाह फैल गयी और वह युद्ध छोड़कर भाग खड़ी हुई। इस तरह मुसलमानोंकी यह महत्त्व पूर्ण हार हुई।'

यहाँपर इस बातकी चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं कि यह वृत्तान्त सच्चा है या नहीं, अथवा हिन्दुओंकी विजयका कारण, जैसा कि हमेशा होता है, अधिक संख्याबल, युद्ध-कौशल या असाधारण वीरता थी। हाँ, यहाँपर एक बात जरूर कहने योग्य है। और उसका उल्लेख भी मुसलमान लेखकने ही किया है। वह यह कि, ठीक हिन्दुओंके समान ही, मुसलमान भी पराजित न होनेपर भी सेनानायक राजाकी मृत्युका हाल सुनकर भाग खड़े होते हैं। पर इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। पूर्वकी सेनाएँ राष्ट्रके लिए नहीं, राजाके लिए युद्ध करती हैं। हिन्दुओंके समान मुसलमानोंमें भी राष्ट्रीय भावनाका अभाव था। हाँ, राष्ट्रीय भावनाके बदले उनमें धार्मिक भावना जरूर थी, किन्तु वह इस समय दोनों ओर समान

रूपसे मौजूद थी। अस्तु, इसमें सन्देह नहीं कि इस बार तो शहाबुद्दीन गोरीका पूर्ण पराजय हुआ (११९१ ई०)।

हिन्दुओंमें यह धारणा चली आ रही है कि इस बार सुलतान कैद कर लिया गया था। रासोमें लिखा हुआ धीर पुंडीरका कथाभाग स्पष्टतया काल्पनिक है। तथापि सम्भव है कि जब गोविन्दरावने (रासोमें तो इसका नाम तक नहीं है, और वह पृथ्वीराजके बादके युद्धमें मारा गया था) सुलतानको घायल किया, और वह अपने घोड़ेपरसे गिरने लगा तब पुंडीरने घोड़ेपरसे कूदकर उसे पकड़ लिया होगा और कैद कर लिया होगा। यह भी कहा जाता है कि तीस हाथी और पाँच सौ घोड़े लेकर पृथ्वीराजने सुलतानको जाने दिया। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह बात ठीक मालूम होती है। ताजमें तो इस पराजयका वर्णन ही नहीं है। यह इतिहासकार तो बुद्धिमत्तापूर्वक पृथ्वीराजपर की गयी सुलतानकी दूसरी चढाईसे उसका इतिहास लिखता है। रासोमें लिखी हुई यह बात असंभव जान पडती है कि सुलतान अनेक युद्धोंमें बार बार कैद हो गया और पृथ्वीराजने उसे उदारता पूर्वक प्रत्येक बार मुक्त कर दिया। कृष्ण और जरासन्धके समयसे लेकर मुंजतक लोग ऐसी बातोंमें एककी सौ लगाते आये हैं। गुजरातके बखरकारोंने लिखा है कि कल्याणके तैलप चालुक्यको मुंजने छ बार पराजित करके पकड़ा और छहों बार कर लेकर उसे छोड़ दिया। परन्तु इतना जरूर है कि अतिशयोक्तिका भी कुछ आधार अवश्य होता है। इसलिए इस युद्धके विषयमें भी यह बात मानी जा सकती है कि शहाबुद्दीन कैद हो गया होगा और पृथ्वीराजने उपर्युक्त कर लेकर उसे छोड़ दिया होगा। हम देख ही चुके हैं कि महमूदने

भी जयपालको पहले युद्धके बाद इसी तरह कर लेकर छोड़ दिया था।

इस वृत्तके विषयमें सत्य बात कुछ भी हो, यह तो दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं कि सुलतान पराजित हो गया था। इस लड़ाईका स्थान नरायन बताया गया है। वास्तवमें यह तरायन होगा। कहा है कि "युद्धका स्थान सरस्वतीका मैदान था। परन्तु कनिंगहमके मतानुसार युद्धका ठीक ठीक स्थान रौत्नी नदीके तीरपर तराइनसे चार मील और कर्नालके उत्तरमें दस मीलपर था। तराइनका नाम अज़ीमाबाद भी है। (इलियट २, पृ० २९५)" कर्नाल गजेटियरमें बिलकुल हालमें जानी गयी बात पृष्ठ १० पर इस प्रकार दी गयी है। "यह युद्ध नारदकमें नईवाडी नार्दीना गाँवके पास थानेश्वरके दक्षिणमें तेरह मील और तरावडीसे तीन मीलपर हुआ।"

तबकात नासिरीमें आगेका वृत्तान्त यों लिखा है कि सुलतानके लौटनेपर पृथ्वीराजने सरहिंदके किलेपर चढ़ाई की और ग्यारह महीनेतक उसके आस पास घेरा डाल रखा। यदि यह सत्य हो तो सुलतानके पकड़े जाने और फिर बंधमुक्त होनेवाली बात असंभव मालूम होती है। क्योंकि यदि सुलतानको पृथ्वीराजने गिरफ्तार कर लिया होता तो वह उसे छोड़नेके पहले अन्यायपूर्वक लिये हुए किलेको छोड़ देनेकी शर्त उससे जरूर करा लेता और फिर युद्ध जारी नहीं रह सकता था। बल्कि इतनी जल्दी दूसरी लड़ाई ही नहीं होती। सुलतानने तो लौटते ही दूसरी लड़ाईकी तैयारी की और एक बहुत बड़ी सेना लेकर वह फिर पृथ्वीराजपर चढ़ आया।

ताज-उल-मासिरमें इस सब वृत्तान्तको छोड़कर यों इतिहासका आरम्भ किया गया है। सुलतानने एक विश्वसनीय

और पूज्य व्यक्तिको अजमेर भेजा और पृथ्वीराजसे कहलाया कि वह इस्लामकी दीक्षा लेकर सुलतानका मांडलिकत्व स्वीकार कर ले। इस तरह इस ग्रन्थमें इस प्रकरणको धार्मिक स्वरूप दिया गया है। परन्तु हमारा तो ख्याल है कि महमूद गजनीके समान गोरीका यह युद्ध धर्ममूलक नहीं था। यद्यपि मुसलमान लेखक इसे धार्मिक स्वरूप देते हैं तथापि यह युद्ध तो केवल राज्यविस्तारके लिए ही किया गया था। तबकातमें, जिसका स्वरूप अधिक ऐतिहासिक है, इसी तरह इसका वर्णन किया गया है।

ताजमें इस अंतिम युद्धका ब्यौरेवार वृत्तान्त नहीं दिया गया है। उसमें तो केवल यही लिखा है कि इस युद्धमें इस्लामकी विजय हुई और एक लाख हिन्दू उसी समय नरककी घोर आगमें जा गिरे। तबकात सच्चा ऐतिहासिक ग्रन्थ है। उसमें तफसीलकी महत्वपूर्ण बातें दी गयी हैं। इस्लामी फौजमें लडनेवाले एक सिपाहीके मुंहसे सब बातें सुनकर यह लेखक लिखता है कि इस इस्लामी फौजमें एक लाख बीस हजार बख्तरधारी घुडसवार थे। (हिन्दू सेनाकी संख्या नहीं दी गयी) सुलतानकी फौज पहुँचनेके पहिले ही किला सर हो गया था। हिन्दू फौज लौट कर नरेनाके पास छावनी डाले पड़ी हुई थी। (इससे प्रतीत होता है कि यह दूसरी लडाई भी पूर्व स्थानपर ही हुई) तबकातमें मुसलमानोंकी चालोंका वर्णन यों किया गया है—सुलतानने अपनी फौजकी रचना इस तरह की थी कि अपनी फौजका मुख्य हिस्सा मय झंडोंके पीछे ही रखा। हाथियोंको भी वहीं रखा। हलके बख्तार पहने हुए घुडसवारोंकी दस दस हजारकी चार टुकड़ियां कीं और उन्हें आगे भेजकर

कहा कि पूर्व और बाईं तरफसे दुश्मनको खदेड़ दो। जब दोनों ओरसे दुश्मन घबड़ाया, तब एकाएक चारों ओरसे उसपर धावा कर दिया। इस चालसे दुश्मन तितर बितर हो कर परास्त हो गया। खुदाने हमें फतह बख्शी और दुश्मन भागा।" (पृ० २६७)

मुसलमान लेखकोंने जिस तरह इसका वर्णन किया है उससे यही मालूम होता है कि यह युद्ध भी ठीक वैसा ही हुआ जैसा कि महमूदका जयपाल और आनन्दपालके साथ हुआ था। अर्थात् घुड़सवारोंके दलोंका बार बार धावा करना और बादमें रिजर्व फौजका एकदम आक्रमण कर देना। अहमदशाह अब्दालोकी युद्धशैली भी यही थी। पता नहीं कि हिन्दुओंने इस धावेका किस तरह प्रतिकार किया था। रासोमें युद्धके जो वर्णन हैं वे काल्पनिक हैं। वह तो महाभारतकी नकल करके नाना प्रकारके प्राणियोंकी आकृतिवाले व्यूहोंका वर्णन करता है। रासोमें दिये हुए वर्णन प्रत्यक्ष देखनेवालेके नहीं, सदियों बाद कविकी लेखनीमेंसे निकले हुए हैं। जो हो, युद्ध अवश्य बड़ा भीषण हुआ था, क्योंकि तबकातमें लिखे 'परमात्माने हमें विजय दी' इस एक वाक्यसे ही जान पडता है कि बहुत देरतक यह निश्चय नहीं हो सकता था कि विजय किसे मिलेगी।, असई अथवा सार्साके

हो जानेपर पृथ्वीराज ऐशो आराममें डूबा रहता था, और सेनाकी तरफ उसने कोई ध्यान नहीं दिया। परन्तु हमें तो यह सब वर्णन काल्पनिक प्रतीत होता है। रासोके वर्णनोंके विपरीत पृथ्वीराज इस समय दिल्लीमें नहीं, अजमेरमें था। दिल्लीका महत्व तो कुतुबुद्दीनके समयसे बढ़ा। जो इतिहासकार आधुनिक समयमें लिखते हैं वे, तथा स्वयं फरिश्ता भी, इन राजाओंको दिल्लीमें लानेके मोहको नहीं छोड़ सकते। रासोमें तो यही लिखा है कि सभी बातें दिल्लीमें हुईं। इसलिए रासोके वर्णन और लड़नेवाले वीरोंके नाम भी सब काल्पनिक हैं। विशेषतः चित्तौढ़के समरसिंहका वृत्तान्त तो त्याज्य ही है, यह हम पहले भी बता चुके हैं।

पृथ्वीराजके अंतके विषयमें दी हुई रासोकी कथा तो अनैतिहासिक कल्पनाकी पराकष्ठा ही है। इसमें हमेशाके अनुसार बदलेकी बात गढ़ ली गयी है। महम्मद गोरी तो गक्खरोंके हाथ सिंधु नदीके तीरपर मारा गया था। इस वृत्तांतके भूल जानेके सदियों बाद इस बदलेवाली कल्पनाका जन्म हुआ। परंतु इस बातका अबतक भी पता नहीं चलता कि पृथ्वीराजकी मृत्यु कैसे हुई, ठीक उसी तरह जिस तरह कि पानीपतके युद्धमें भाऊ साहब पेशवा और जनकोजी सेंधिया की मृत्युके विषयमें नहीं चलता। ताज और तबकातमें परस्पर विरोधी वृत्तान्त दिया हुआ है। तबकात केवल यही लिखता है कि "राय पिथौरा हाथीपरसे उतरा और घोड़ेपर सवार हो तेजीसे भागा। परंतु सरस्वतीके पास पकड़ा गया और जहन्नुमको भेज दिया गया।" ताजमें लिखा हुआ भिन्न वृत्तान्त यों है (पा० इ० २, २१५) अजमेरका राय पकड़ा गया और उसे जीवदान दिया गया। बादमें उसे अजमेर ले गये,

वहाँपर वह कोई षडयंत्रमें भाग लेता हुआ दिखाई दिया। (इस षड्यंत्रका ठीक ठीक स्वरूप समझमें नहीं आता) तब उसे कतल करनेका हुक्म दिया गया। तदनुसार इस नीच और अभागेका सर फौरन धड़से अलग कर दिया गया।" इस तरह भिन्न भिन्न वर्णनोंके कारण यह तय करना कठिन है कि दर असल उसकी मृत्यु कैसे हुई।

टिप्पणी—१

महम्मद गोरी और पृथ्वीराज।

रेवर्टीने तबकातका अनुवाद किया है। उसमें इलियटके दिये हुए वर्णनसे पहली लड़ाईका वर्णन कुछ भिन्न है। "जब दोनों सेनाएँ संघटित रूपसे एक दूसरीपर धावा करने लगीं तब सुलतान एक भाला लेकर दौड़ा। दिल्लीका गोविन्दराय हाथीपर बैठकर फौजके आगे आगे आ रहा था। सुलतानने उसपर आक्रमण किया। और उसको भाला मारा। गोविन्दरायने सुलतानपर अपनी सांग फेंकी। इससे सुलतानके बड़ा भारी जखम हो गया। सुलतान घोड़ेको घुमाकर भागा। परन्तु जखमकी वेदनाके कारण वह घोड़ेपर अधिक समय न बैठ सका। इसलामकी फौज हारी और वह इधर-उधर जिधर रास्ता मिला भाग गयी। इधर सुलतानको घोड़ेपरसे गिरते हुए देखकर एक खिलजी युवकने उसे पहचान लिया। कूद कर वह सुलतानके घोड़ेपर पीछे जा बैठा। उसने सुलतानको संभाला, और अपनी आवाजसे घोड़ेको इशारा करते हुए उसे रणांगणसे बाहर ले गया। जब फौजने देखा कि सुलतानका कहीं पता नहीं है, तब चारों ओर शोक छा गया। पीछे हटते हटते अंतमें वह ऐसे स्थानपर आकर ठहरी जहां शत्रु पीछा न कर सकता हो। इतनेमें एकाएक सुलतान भी आ पहुँचा। (पृ० ४६१-३)

इस स्थानपर रेवर्टीने एक नोटमें बादके इतिहासकार तथा फरिश्ताका दिया हुआ वृत्तान्त, और दूसरे नोटमें फरिश्तापरसे वर्तमान

इतिहासकारोंका दिया हुआ वृत्तान्त दिया है। फरिश्ताने पिथौराकी फौजमें दो लाख मनुष्य और तीन हजार हाथी बताये हैं। वह यह भी लिखता है कि मुसलमानोंकी दाहनी और बायीं फौज पराम्त हो गयी। उसने तो पीठतक फेर दी। परन्तु सुलतान बीचकी फौजके शिरोभागमें था। उसने इस बातकी जरा भी परवा न की। बल्कि जोरोंसे फिर धावा कर दिया। आखिरी बात, जो उल्लेखनीय है, यह है कि एक जगह आगे लिखा वृत्तान्त पाया जाता है—"सुलतान अपने घोड़ेपरसे गिर पड़ा और रात होने तक इस बातकी खबरतक किसीको मालूम नहीं हुई। रातमें गुलाम उसकी तलाशमें युद्धभूमिमें गये। तब उन्हें वह मुर्दोंमें पड़ा हुआ मिला। इन भिन्न भिन्न वर्णनोंसे प्रतीत होता है कि रासोमें उसके पकड़े जानेकी जो कथा दी हुई है वह सत्य होगी। तब-'कातके वर्णनसे भी यही मालूम होता है कि घायल होते समय सुलतान अपनी फौजसे बहुत दूर था और लौटते समय वह मुश्किलसे किसी प्रकार अपने घोड़ेपर बैठे बैठे जा रहा होगा। उसकी यह दशा देख कर हिन्दुओंकी तरफके एक वीर राजपूत युवक धीर पुंडीरने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया होगा। पृथ्वीराजने उसे मुक्त करके कहा 'मुझसे फिर युद्ध कर।' यह वीरोदात्त वचन पृथ्वीराजके स्वभावके विपरीत नहीं। इसी कथासे मुंजके तैलपको छः बार छोड़नेकी कथा भी उत्पन्न हुई। महमूदने जिस समय कर लेकर जयपालको छोड़ा उस समय उसे भी यही मालूम हुआ होगा कि मुझे इससे फिर युद्ध करना होगा।

टिप्पणी—२

अंतिम लड़ाईमें मुसलमानोंकी चाल।

रेवर्टीने तबकातका जो अनुवाद किया है उसमें पृथ्वीराजके अंतिम युद्धकी चालोंका कुछ दूसरी तरहसे वर्णन किया गया है। वर्णन यों है—(पृ० ४६७) "सुलतानने अपनी फौजकी रचना की। फौजके बीचमें असबाब, झण्डा, अन्नसामग्री, हाथी आदिको मीलों पीछे रखा। अपनी फौजकी कतारें बनाकर उसने बिलकुल धीरजके साथ आक्रमण किया। परन्तु

हलके हथियारों और बख्तर वाले घुड़सवारोंको चार दलोंमें बाँट दिया और उन्हें कह दिया कि वे आगे बढ़कर चारों ओरसे दुश्मनपर हमला करें। सुलतानने आज्ञा दी कि दायें और बायें, आगे और पीछे, चारों तरफसे घुड़सवार धनुर्धर शत्रु-सेना को घेरलें, जब शत्रुके हाथी घोड़े तथा पैदल सेना आगे बढ़े तब एकदम मुंह फेरकर एक घोड़ेकी दौड़के फांसलेपर भागना शुरू कर दें। सुलतानकी इस आज्ञाका फौजने अक्षरशः पालन किया है। परमात्माने इस्लामको विजय दी और दुश्मन मारा गया।"

मेजर रेवर्टी एक फौजी अधिकारी हैं और इस वर्णनके सम्बन्धमें वे यह नोट लिखते हैं कि इस युद्धमें मुसलमानोंकी जिस चालेका वर्णन दिया गया है वह समझमें नहीं आया। फौजी दृष्टिसे हम इस वर्णनपर किसी प्रकारकी टीका नहीं कर सकते। पर इतना जरूर कह देना चाहते हैं कि मुसलमानोंने जो तीन बड़ा बड़ी लड़ाइयाँ (दो महमूदकी और तीसरी शहाबुद्दीनकी) जीतीं उनमें मुसलमानी घुड़सवारोंने बहुत भारी काम किया। मालूम होता है हिन्दुओंका आधार हमेशा उनकी गजसेना रही है। बल्कि शिलालेखोंमें भी वीरोंकी तारीफोंके वर्णनोंमें उनको हाथियोंके गंडस्थलोंको फोड़नेवाला बताया है। परन्तु सिकंदरके समयसे भारतवर्षके हाथी तालीमयाफ्ता घुड़सेनाके सामने नहीं टिक पाये हैं। यह ठीक है कि महमूदने तुर्किस्तानके तुर्कोंसे लड़ते समय हाथियोंका उपयोग किया था। परन्तु उस समय उसकी घुड़सवारोंकी फौजको हाथियोंके सामने जानेकी आदत नहीं हो पायी थी। दूसरे, शत्रुकी फौजपर दोनों ओरसे धावा मारनेका भी बड़ा अच्छा परिणाम होता है। शहाबुद्दीनने अपनी मुख्य सेनाको आहिस्ते आहिस्ते आने दिया इसके यही माने हैं कि आगे भेजे हुए घुड़सवारोंके दलोंको शत्रुपर आक्रमण करनेके लिए काफी समय मिल जाय। प्राचीन हिन्दू युद्धपद्धति तथा महाभारतमें बताई व्यूह रचनाका अध्ययन वर्तमान सेना वैज्ञानिकोंको जरूर करना चाहिए। परन्तु हमारा तो ख्याल है कि उनकी युद्धशैली बड़ी सरल थी। शत्रुको धोखा देने, अथवा एकाएक उसपर धावा बोल देनेकी युक्तियोंसे वे काम नहीं लेते थे अंतमें यह भी कह देना चाहते हैं कि एक मजबूत रिजर्व

को रखकर ऐन वक्त पर उसको लेकर आक्रमण कर देनेका बड़ा अच्छा असर होता है । दूसरे हाथियोंको सामने रख देनेसे वे पराजित होने पर मुँह फेर कर अपनी ही सेनाको कुचल डालते हैं। बहुत संभव है, इसी बातको ध्यान में रखकर शहाबुद्दीनने इस बार अपने हाथियोंको सीर्लो पीछे रखा था।

टिप्पणी—२

रासोमें अंतिम युद्धका वर्णन ।

पृथ्वीराज रासोमें शहाबुद्दीन गोरी और पृथ्वीराजकी अंतिम लड़ाई-का जो वर्णन दिया है, यद्यपि वह केवल काल्पनिक है तथापि पाठकोंके मनोरंजनके लिए उसे भी संक्षेपमें लिख देना अनुचित नहीं होगा। हम कई बार कह चुके हैं कि रासोकी रचना स्पष्टत महाभारतकी शैलीपर की गयी है। महाभारतके ही अनुसार इस युद्धके वर्णनके पहले जितने भी खराब शकुन हुए थे उन सबका वर्णन दिया गया है। पृथ्वीराजके शापकी भी एक कथा इसमें लिखी हुई है। यह भी लिखा है कि नवीन रानी संयो-गिताकी मोहिनीमें आकर पृथ्वीराजने तमाम शासनकार्य छोड़ रखा था। हाहुलीराय नामक एक सर्दारका पृथ्वीराजने अपमान कर डाला। इस-लिए वह उसे छोड़कर कागड़ा चला गया और वहाँसे उसने शहाबुद्दीनको पृथ्वीराजपर चढ़ाई करनेके लिए प्रवृत्त किया। परन्तु मुसलमान लेखकोंके, लिखे वृत्तान्तसे इसका समर्थन नहीं होता। समस्त युद्धके वर्णनसे यही मालूम होता है कि राजपूतोंके अन्त करण पर भावी पराजयकी काली छाया ठीक उसी तरह पड़ी हुई थी जैसी कि पानीपतमें मराठोंके अंत करणपर पड़ी थी। परन्तु मुसलमानो लेखकोंके वृत्तान्तसे हमें ऐसा नहीं प्रतीत होता। पहली लड़ाईमें पृथ्वीराजकी विजय हुई थी और आत्मविश्वासके अतिरेकमें आकर उसने गोरीको छोड़ दिया था। सरहिंदके किलेको सर करके वह लौटा ही था। परन्तु रासोमें यह सब वृत्तान्त उलट पलट कर युद्धका स्थान तथा काल भिन्न ही दिया गया है। पहली लड़ाईके बाद दूसरे ही वर्ष यह लड़ाई भी हुई थी। पृथ्वीराज सरहिंदसे दिल्ली अथवा अजमेरको लौट भी नहीं पाया था। परन्तु रासोमें तो कुछ

का कुछ वर्णन है। ऐसा लिखा है कि शहाबुद्दीनके पकड़े जानेके कई वर्ष बाद यह लड़ाई हुई। यह भी वर्णन है कि संयोगिताके साथ वह कितने ही वर्ष ऐशो आराम करता रहा। युद्धका स्थान पानीपतका मैदान मालूम होता है। यों तो सभी कुरुक्षेत्रको पानीपतका मैदान कह सकते हैं, और इस तरहसे यद्यपि यह स्थान नजदीक तो आ जाता है किन्तु वास्तवमें इस युद्धको पानीपतका युद्ध नहीं कह सकते।

शहाबुद्दीनकी फौजमें एक लाख घोड़े, नौ लाख पैदल सिपाही, और दस हजार हाथी बताये गये हैं। स्पष्ट ही यह अतिशयोक्ति है। हिन्दुओं-की फौज एक स्थानपर ८३ हजार और दूसरे स्थानपर ७० हजार लिखी है। यह अनुमान ठीक मालूम होता है। पहलेकी लड़ाईकी मृत्युओं तथा सरहिंदके घेरेके कारण पृथ्वीराजकी सेना बहुत घट गयी होगी। मुसल-मान इतिहासकारोंने *इस युद्धमें मुसलमानी फौजकी संख्या एक लाख* पचीस हजार घोड़े, बतायी है। इसपरसे यही नतीजा निकलता है कि हिन्दुओंकी सेनासे मुसलमानोंकी फौज अधिक थी।

रासोमें हिन्दू सेनाकी रचना (काल्पनिक) यों बतायी है। बाईं ओर समरसिंह अपने अनेक सरदारोंके साथ तैतीस हजार फौज लेकर तैयार खड़ा था। दाहिनी ओर जैतराव परमार इक्कीस हजार फौज लेकर लड़ रहा था। सामने उन्नीस हजार फौजको लेकर हाहुली राय शत्रुसे लड़ रहा था। और समस्त युद्धका संचालन करते हुए पृथ्वीराज बीचमें दस हजार फौजको लेकर लड़ रहा था। इसमें महाभारतके वर्णनानुसार अनेक राज-पूत वंशोंके प्रसिद्ध पूर्वजोंका किसी न किसी फौजके साथ युद्ध करते हुए वर्णन किया गया है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह तफसीलवार वर्णन भारतके राजपूतोंको हमेशासे बड़ा महत्त्वपूर्ण मालूम होता आया है।

ठीक युद्ध शुरू होनेके पहले प्रत्येक पक्ष दूसरे पक्षको सुलहकी शर्तें भेजता है। एक दूसरेको दोष देता है। यह प्राचीन परम्परा तो भारतीय युद्धसे लेकर यूरोपियन महायुद्ध तक एकसी चली आयी है। रासोमें भी उसकी अवहेलना नहीं की गयी। किन्तु उसमें जो संदेश भेजे गये हैं वे तो 'मुझे आधा पंजाब दे दो और अपना युवराज ज़ामीनके तौरपर दो'

शहाबुद्दीनकी इस मांगसे ही अनैतिहासिक सिद्ध होते हैं, क्योंकि सारा पजाब प्रान्त पहलेहीसे गोरीकी अधीनतामें था। वस्तुत लाहोर राजधानी समेत समस्त पजाब प्रान्त इस युद्धके कोई दो सौ वर्ष पूर्वसेही मुसलमानोंकी अधीनतामें था।

प्रत्यक्ष युद्ध तीन चार दिनतक चलता रहा, ऐसा लिखा है। महाभारतके ही अनुसार प्रतिदिन नये व्यूहकी रचनाका वर्णन किया है। सामुदायिक युद्धका वर्णन न कर, महाभारतके युद्धानुसार बहुधा भिन्न भिन्न योद्धाओंके द्वन्द्व युद्धोंका ही वर्णन दिया गया है। युद्धोंका वैचित्र्य भी उतना ही काल्पनिक और मनोरजक है। वही वर्णन बार बार आया है। बार बार पृथ्वीराजके पकडे जानेका वर्णन है। पृथ्वीराजने अपने बाणोंसे अनेकोंको मारा, बादमें तलवार चलायी, फिर नेजेसे दुश्मनोंको काटना शुरू किया। अंतमें वह पकडा गया। दुश्मन उसे गजनीको ले गया और कारावासमें ही उसकी आखें निकाल दी गयीं। अधा होने पर भी शब्दवेधी होनेके कारण उसने बाण चलाकर शहाबुद्दीनको मार डाला और अन्तमें प्राणघात भी कर डाला। यह वृत्त देकर चदने अपने कथानकमें कल्पनाकी पराकाष्ठा कर दी है। हम पहले ही कह चुके हैं कि यह बदलेकी कथा अविश्वसनीय है।

महाभारतके युद्धकी ही तरह चन्दने भी यही बताया हैं, कि सभी वीर बडे बडे पराक्रमके कार्य करके मर गये। इस युद्धका वर्ष आनद सवत ११५८ अर्थात् ११९२ ईसवी रासोने ठीक ठीक दिया है।

इकीसवाँ प्रकरण।

अजमेर और दिल्लीका उच्छेद।

मुसलमानोंके साथ हिन्दुओंका जो पहला युद्ध (१००८ ई०) हुआ, उससे पजाबकी स्वाधीनताका अंत हुआ। किन्तु पृथ्वीराजका इस बार पराजित होकर मारा जाना समस्त उत्तर

भारतकी स्वाधीनताका विनाशक सिद्ध हुआ। रणनीति कुशल सेनापतिकी भाँति शहाबुद्दीन गोरीने शत्रुकी मुख्य राजधानी अजमेरपर अब एकदम चढ़ाई कर दी। कहना नहीं होगा कि वहाँ उसका जरा भी विरोध नहीं हुआ। उसने अजमेरपर फौरन अधिकार कर लिया और उसे खूब लूटा। ताज लिखता है—"सम्पत्ति इतनी मिली कि मानो समुद्र और पहाड़ोंने अपनी सारी सम्पत्ति यहाँ लाकर इकट्ठी कर दी। जब तक सुलतान अजमेरमें रहा, उसने तमाम मूर्तियोंको तोड़वा डाला, मन्दिरोंको गिरवा दिया और उनके स्थानपर मस्जिदें तथा पाठशालाएँ बनवा डालीं।" तीसरे विग्रहराजने संस्कृत पाठ-शाला बनवायी थी, उसे तोड़कर गोरीने "अढ़ाई दिनकी झोंपड़ी" नामक मस्जिद बनवा डाली। अजमेरको जीत कर और उसे पूरी तरह लूटकर एक राजनीति-निपुण मुत्सद्दीके समान गोरीने अजमेरका राज्य पृथ्वीराजके लड़के रेनसीको पुनः दे दिया। उसे एकदम खालसा नहीं कर डाला, बल्कि उससे वार्षिक कर लेनेका ठहराव करके उसे अपना मांडलिक बना लिया। ताज लिखता है—"वह होशियार और भला आदमी मालूम होता था।" इसका मतलब यही है कि परि-स्थितिको पहचानने तथा कर देकर मांडलिकत्व स्वीकार करने-की अकल उसमें मौजूद थी। इस वृत्तान्तसे यही मालूम होता है कि पृथ्वीराज युद्धमें मारा गया था। क्योंकि यदि अजमेरमें पृथ्वीराजका शिरश्छेद हुआ होता तो रेनसी गोरी-का मांडलिकत्व स्वीकार कर राज्य ग्रहण न करता। अजमेरका इन्तजाम करनेके बाद सुलतान चौहानोंकी दूसरी राजधानी अर्थात् दिल्लीकी ओर चला। "वहाँपर उसने अपने सामने एक ऐसा किला खड़ा देखा जो ऊँचाई और मजबूतीके

ख्यालसे भारतवर्षमें अद्वितीय था। किलेवालोंनेने विरोध किया और दोनों ओरसे खूनकी नदियाँ वह चलीं। अंतमें किलेके अधिकारियोंने गुलामीके पथका अनुसरण किया। और करदेने तथा सुलतानकी नौकरी करनेकी शर्तोंको मंजूर कर लिया। इसके बाद सुलतान गजनीको लौट गया। परन्तु फौज दिल्लीके नजदीक मोजे इंदरपतमें ही रह गयी।" यह बात तो आसानीसे ख्यालमें आ सकती है कि विजित प्रांतसे कर वसूल करने तथा उसे अपने अधीन बनाये रखनेके लिए फौजका रहना जरूरी है।

तवकातका लेखक लिखता है "इस युद्धकी विजयके फलस्वरूप सुलतानको अजमेर राजधानी, सारा शिवालिक पहाड़, हाँसी सरसूती और अन्य प्रान्त मिले" ५८८ हिजरी (११९२ ई०)। शिवालिक पहाड़के मानी हैं सपादलक्ष अर्थात् अजमेर देशके सरहदपरका पहाड़। इन तमाम प्रान्तोंका अधिकार कुतुबुद्दीनको दे दिया गया और वह कोहरामके किलेमें रहने लगा। कोहरामका वर्तमान नाम अभी निश्चित नहीं हो पाया है। अभी यह भी निश्चय नहीं हुआ है कि दिल्लीमें पहले पहल लडनेवाला और बादमें आत्मसमर्पण कर देनेवाला अधिकारी कौन था। तवकातमें लिखा है कि दिल्लीका गोविन्दराय, पृथ्वीराजके अन्तिम युद्धमें मारा गया था। इसीलिए चौहानोंकी तरफसे कोई दूसरा अधिकारी वहाँ रहा होगा और उसने यह जानकर कि अजमेरके राजा रैनसीने मांडलिकत्व कबूल कर लिया, खुद भी मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार कर ली होगी।

परंतु रैनसीको यह जो अधिकार प्राप्त हुआ था वह अधिक दिनोंतक नहीं रहा। क्योंकि यह तो निश्चित बात है

कि ऐसा मांडलिकत्व अंतिम विनाशका पूर्व चिन्ह मात्र होता है। ताजमें किसी जतवान्का उल्लेख है (स्पष्ट ही यह नाम फारसीमें चौहानके बदले पढ़ा गया है)। इस नामको धारण करनेवाले सरदारने हांसीपर आक्रमण किया। उसका प्रतिकार करनेके लिए कुतुबुद्दीन तुरन्त दौड़ पड़ा और एक भीषण युद्ध छिड़ गया। मानो फौलादके दो पहाड़ एक दूसरेसे टकराये। रणभूमि वीरोंके लहूसे तर हो गयी। जतवान मारा गया। हिन्दू पूर्णतया पराजित हुए। हांसीका किला फिर स्वाधीन हो गया। उसकी मरम्मत भी कर दी गयी। अब कुतुबुद्दीन मेरठकी ओर चला और वह किला भी उसने ले लिया। अंतमें दिल्लीपर धावा करके वहाँका किला भी अपने हाथोंमें ले लिया। "वह शहरमें घुस गया, सारे शहरको मूर्ति तथा मूर्तिपूजासे मुक्त कर दिया और मन्दिरोंके स्थानपर मस्जिदें बनवा डालीं।" ताजमें यह नहीं लिखा कि दिल्लीपर आक्रमण करनेका कारण क्या था। तबकातमें भी इस बातका कोई खुलासा नहीं है। उसमें तो संक्षेपमें लिखा है कि कुतुबुद्दीनने कोहरामसे निकल कर ई० स० ११९३ में मेरठ लिया और उसी साल दिल्लीको भी कब्जेमें कर लिया तथापि हम एक कारणकी कल्पना कर सकते हैं। कुतुबुद्दीनको अपनी राजधानी बनानेके लिए किसी एक मजबूत और महत्वपूर्ण स्थानकी ज़रूरत थी। अजमेर तो पृथ्वीराजके लड़के को दे दिया गया था। इसलिए उसने देखा कि दिल्ली ही एक ऐसा स्थान है जो अब स्वतन्त्र रूपसे अपनी राजधानी बनाने योग्य है। इस तरह दिल्ली शहर मुसलमानी राज्यमें जोड़ लिया गया और शीघ्र ही वह समस्त भारतवर्षकी राजधानी हो गया।

टिप्पणी—१

पृथ्वीराजकी पुरानी दिल्ली।

गार्डन साहबके दिल्लीके 'सात शहर' नामक ग्रन्थको हमने देखा। दिल्ली विषयक पुराने मुसलमानी वृत्तान्त तथा भारतीय शिलालेखोंको भी देखा। और हमने स्वय वहाँ जाकर उस स्थानका अच्छी तरह निरीक्षण परीक्षण किया। ऐसा करनेसे उस दिल्ली शहरकी यथा योग्य कल्पना हो जाती है जहाँ कि पृथ्वीराज राज्य करता था। मुसलमानी लेखोंसे यह बात साफ तौरसे जाहिर होती है कि कुतुबुद्दीनके समय पृथ्वीराजकी दिल्लीसे इन्द्रप्रस्थ गाँव दूर था। यह गाँव और वर्तमान इन्द्रपत एक ही हैं। इसके नैऋत्य कोणमें कोई दो मीलके फासलेपर अनगपाल तोमरने लालकोट नामक एक किला और एक शहर बसाया था। वर्तमान मेहरौली नामक छोटेसे गाँवके पास जो स्थान है वही यह पुराना दिल्ली शहर है। इस समय जहाँ पर कुतुबुद्दीनकी मस्जिद है वहीं लालकोट रहा होगा। क्योंकि मथुरासे लाई हुई लोहेकी लाट इस मसजिदके चौकके बीचमें खडी की गयी है। कहा जाता है कि अनगपाल इस लाटको मथुरासे लाया था। इस समय कुतुब मसजिदकी पश्चिमकी ओरकी दीवार गिर गयी है। अनगपालके बनाये लालकोट नामक किलेमें कई जैन और हिन्दू मन्दिर थे। उन सबको गिराकर कुतुबुद्दीनने उनके सुन्दर सुन्दर खुदे हुए खम्भोंका उपयोग अपनी मसजिदके चौकके चारों तरफके दालान बनानेमें किया। इन खम्भोंपर खुदे हुए चित्रोंको कुतुबुद्दीनने ज्योंका त्यों रहने दिया। लोहस्तम्भको भी जहाँका तहाँ रहने दिया। इससे इस पहले मुसलमान बादशाहकी भलमनसाहत जाहिर होती है। पाँचवीं सदीसे वह लोहस्तम्भ खुली हवामें धूप और वर्षा सहता आया है। किन्तु अभीतक उसमें जंग नहीं लगा, ज्योंका त्यों खडा है। पश्चिमी लोहा बनानेवाले भी अबतक इस बातका आश्चर्य कर रहे हैं। यह स्तम्भ बिना जोडका है और इसका वजन कोई सत्रह टन होगा। इसपर लिखे हुए अनेक लेखोंमेंसे एकमें लिखा है कि चन्द्र नामक

राजाने यह स्तम्भ विष्णु देवताको अर्पण किया है। कुतुबुद्दीनकी यह बात तारीफ करने योग्य है कि उसने इस स्तम्भको जहाँका तहाँ रहने दिया और उसे बीचमें लेकर उसने उसके चारों ओर अपनी मसजिद बनवा ली। क्योंकि इसके जीतनेवाले मुसलमानोंने वहाँके खंभोंको, महज उसमें लगी हुई पीतलकी कीलोंके लिए, उखाड़ कर ज्यू (यहूदी) लोगोंको (यूरोपके मारवाड़ियोंको) बेंच दिया [फर्गूसन]। जैन स्तम्भ ठीक वैसे ही हैं जैसे कि आबूके पहाड़परके मंदिरोंके स्तम्भ हैं [फर्ग्यूसन], परन्तु यहाँ तो हिन्दू मंदिरोंके भी स्तम्भ हैं। उनपर खुदे हुए कृष्ण, यशोदा, गायों, बछड़ों आदिके चित्र बहुत ही सुंदर हैं [फनशवे] । इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध शिवदूत कीर्तिमुखके मस्तक, उनमें साफ दिखनेवाली दंतपंक्ति आदि प्रेक्षणीय चित्र भी वहाँ पाये जाते हैं। अनंगपालका किला बहुत विशाल था और मालूम होता है कि उसमें अनेक महल और हिन्दू मन्दिर थे।

अनंगपालने यह किला और दिल्ली शहर १०५२ ई० के लगभग बनवाये। और उसी साल यह स्तम्भ भी वहाँ खड़ा किया गया। यह बात स्तम्भ परके एक लेखसे ही प्रकट होती है। कोई सौ सालके बाद चाहमानोंने इस शहर और किलेको जीत लिया, और तोमरोंके राज्यको अपने राज्यमें जोड़ लिया। उस समय पृथ्वीराजने शहरको बढ़ाकर उसके आसपास एक और दीवार बनवा ली। "पृथ्वीराजके द्वारा बनवायी हुई इस दीवार स्थानका अब भी कुतुब मसजिदके आस पास निश्चित किया जा सकता है"। इस समय मसजिदके पश्चिममें कोई दो फर्लांगके फासलेपर इस दीवारका एक खासा लम्बा हिस्सा दीख पड़ता है। बुर्जके आकारका अर्द्ध वर्तुलाकार हिस्सा भी अबतक वहाँ मौजूद है। यह शहरकी या किलेकी बाहरी दीवार होगी। इस समय किला तो नहीं रहा किन्तु कुतुब मसजिदके आसपास उसका मिट्टीका निशान जरूर पाया जाता है। ताजुल मासरमें इसीके विषयमें लिखा है कि यह एक पहाड़के समान खड़ा था।

नवीन शहर और किलेका नाम प्राचीन कालमें ढिल्लिका रहा होगा। हमारा ख्याल है यह नाम तोमरोंका दिया हुआ है। यह नाम इसी रूपमें
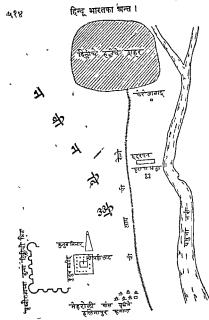
दिल्लीचे हल्लीचे शहर
फेरोजाबाद
इदरपत
पुराना किल्ला
यमुना नदी
कुतुब मिनार
कुतुब मशीद
लोखंडी लाट
पृथ्वीराजाच्या जुन्या दिल्लीची भिंत
मेहरोली
हस्तिनापुर

दो शिलालेखोंमें पाया जाता है । संवत् १२२० [११६३ ई०] के बिजोलिया लेख और १३३८ ई० के पूर्वोक्त बावड़ीवाले लेखमें साफ लिखा है कि यह शहर तोमरोंने बसाया । इसके बाद यहाँपर चाहमानोंने राज्य किया । मतलब यह कि 'दिल्ली' यह नाम साढ़े आठ सौ वर्षसे अधिक प्राचीन है । कह नहीं सकते कि इस नामका अर्थ क्या है । बहुत संभव है, यह कोई प्राकृत देशी शब्द रहा हो । इस शहरके नामके विषयमें जो जनवार्ता प्रसिद्ध है वह इसी नामके आधारपर गढ़ी गयी होगी ।

टिप्पणी—२

कुतुबमीनार ।

जनरल कनिंगहमसे लेकर पंजाब सर्किलके वर्तमान आर्कियालाजिकल सुपरिण्टेण्डेण्ट रायबहादुर दयाराम साहनी तक पुरातत्त्वज्ञोंने इस मनोरंजक सवालका ऊहापोह किया है कि कुतुबमीनारका आकार, उसकी कल्पना और रचना शुरूसे मुसलमानोंकी है या कुतुबुद्दीन अथवा अल्तमशने किसी पुराने कीर्ति-स्तम्भको मीनारका स्वरूप दे दिया है । कुछ वर्ष पूर्व श्री कँवरसेन एम० ए० ने (जो उस समय लाहौरके लॉ कालेजके प्रिन्सिपल और इस समय काश्मीर राज्यके चीफ जस्टिस हैं) सबसे पहले इस बातका प्रतिपादन किया कि कुतुबमीनार पहले कीर्तिस्तम्भके रूपमें थी, बादमें वह स्तम्भ मीनार बना दिया गया । अब भी उनका वही मत है । हाँ, जैसा कि श्री साहनीने बताया है, उन्होंने इस बातको क़बूल कर लिया है उसपरके एक लेखका काल संवत् १२०४ नहीं, १३०४ है । यहाँपर यह भी कह देना जरूरी है कि मीनारकी नीचेकी मंजिलकी दीवारपर बाहरसे कुरानके अरबी वचन खुदे हुए हैं । उसी प्रकार उसपर कई लेख पर्शियनमें भी लिखे हैं जिनमें शहाबुद्दीन गियासुद्दीन, कुतुबुद्दीन और अल्तमशके नामोंका उल्लेख है । तथापि आश्चर्यकी बात तो यह है कि मीनारकी भिन्न भिन्न मंजिलोंपर कुछ संस्कृत और हिन्दी लेख भी खुदे हुए हैं । परन्तु ये सब ई० स० ११९३ के इधरके हैं । इसलिए उनपर अधिक विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । केवल एक लेखको श्री कँवरसेनजी

संवत् १२०४ (ई० स० ११४७) का मानते थे । किन्तु अब तो उन्होंने भी यह स्वीकार कर लिया है कि यह संवत् १७०४ का है ।

तथापि श्री कँवरसेन द्वारा उपस्थित किये गये सबूत अभी खतम नहीं हुए । इस बातको सभी स्वीकार करते हैं कि यह मीनार माजाज़ीना अर्थात् समाजको प्रार्थनाके लिए पुकारनेके लिए नहीं बनायी गयी । यह बात स्पष्ट भी है क्योंकि कुतुब मसजिदसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है । दूसरे इस बातका कहीं भी उल्लेख नहीं है कि मीनारको कुतुबुद्दीन या अल्तमशने बनवाया था । हाँ, उनके नामोंका उल्लेख मात्र अवश्य हुआ है । तीसरे, मीनारपर खुदे हुए कुरानके अरबी वाक्योंको बारीकीके साथ देखनेपर साफ मालूम होता है कि वे पीछेसे खोदे गये हैं। जनरल कनिंगहमके आर्कियालॉजिकल असिस्टेण्ट मि० बेगलरको साफ साफ दिखाई दिया कि पुराने पत्थर उसमेंसे निकाल कर अपने स्थानपर लगा दिये गये हैं । इसके अलावा इस बातके कुछ और भी सबूत हैं कि ये अरबी लेख पीछेसे खोदे गये । परन्तु इस टिप्पणीमें इस विषयके अनुकूल प्रतिकूल मतोंको इससे अधिक विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । परन्तु डॉ० हेराविट्स्ने इस मीनारपर लिखे हुए तमाम अरबी पर्शियन, नागरी लेखोंको प्रकाशित कर दिया है । उसपर अपने विचार लिखते हुए उपर्युक्त विवादको अलग रखकर गॉर्डन संडरसन कहते हैं कि अबतक इस बातका निश्चय नहीं हो पाया है कि मीनार मूलतः हिन्दुओंकी थी या मुसलमानोंकी । परन्तु रचनापरसे उसके हिन्दू होनेका केवल एक ही प्रमाण उपस्थित किया जाता है और वह यही कि उसकी सितारेके समान आकृति पुराने हिन्दू मन्दिरोंके समान है । परन्तु ऐसा विश्वास किया जाता है कि ग़ज़नीमें भी ऐसी मीनारें हैं । इसलिए उस प्रमाणका महत्व कम हो जाता है । अभी समस्त संस्कृत और हिन्दी लेखोंकी जाँच पूरी तरह नहीं हो पायी है और रायबहादुर साहनीका कथन है कि अभी उनका प्रतिपादित मत अंतिम नहीं है। इस परिस्थितिमें कहना पड़ता है कि यह विषय अभी विवादग्रस्त ही है । परन्तु अन्तमें यह कह देना भी आवश्यक है कि श्री कंवरसेन का प्रतिपादित मत केवल मीनारकी तारका-आकृतिपर निर्भर नहीं है,

बल्कि इस बातपर भी निर्भर है कि अरबी लेख दीवारोंपर पीछेसे खोदे गये हैं। यह बात श्री बेगलरने मान ली है कि वे पत्थर पीछेसे बैठा दिये गये हैं।

अंतमें यह भी कह सकते हैं कि भारतवर्षमें कीर्तिस्तम्भ खड़े करनेकी रीति प्राचीन कालसे चली आ रही है। उदाहरणार्थ रघुवंशका बारहवाँ सर्ग देखिए। उसमें कीर्तिस्तम्भका उल्लेख है। [कीर्तिस्तम्भद्वयमिव तटे दक्षिणे चोत्तरे च।] उसी प्रकार सेनोंके शिलालेखमें लिखा है कि शुभनीतीके लक्ष्मणसेनने प्रयाग, बनारस, और जगन्नाथ इन तीन स्थानोंपर कीर्तिस्तम्भ खड़े किये थे। संभव है, वीसलदेव चौहानने इस कीर्तिस्तम्भको पहले मंज़िल तक बनवाया हो। इसने उत्तर भारतको जीत कर समस्त आर्यावर्तसे म्लेच्छोंको मार भगाया था और आर्यावर्तको सच्चा आर्यावर्त बना दिया था। सचमुच उसका यह कार्य कीर्तिस्तम्भ बनवाने योग्य ही था। और शिलालिक स्तम्भपर लिखे पूर्वोल्लिखित श्लोकमें इस बातका वर्णन भी आया है। बड़े प्रयाससे दिल्लीको जीतने पर [दिल्लिका ग्रहण श्रान्तम्—बिजोलिया लेख] इसने अनंगपालके लाल कोट किलेके भीतर यह कीर्तिस्तम्भ खड़ा किया होगा। वीसल और लक्ष्मणसेन करीब करीब समकालीन थे। और उत्तर भारतके पूर्व और पश्चिम भागमें करीब करीब सम्राट बन गये थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है, लक्ष्मणसेनने कीर्तिस्तम्भ खड़े किये थे, इसलिए बहुत सम्भव है वीसलने भी कीर्तिस्तम्भ खड़ा किया हो।

चौहानोंके प्रकरणमें हम लिख ही चुके हैं कि वीसलने अजमेरमें एक संस्कृत पाठशाला बनवायी थी। उसको मुसलमानोंने शहाबुद्दीनकी आज्ञानुसार "अढ़ाई दिनकी झोपड़ी" नामक मसजिद बना दिया। इससे प्रतीत होता है कि वीसलको रुचि नामी नामी इमारतें बनवानेकी ओर जरूर थी। अपनी विजयके बाद शीघ्र ही वह मर गया और उसके द्वारा शुरू किया गया स्तम्भ पहली मंज़िलतक बनकर ही रह गया। उसके बादके राजा पृथ्वीराज दूसरा और सोमेश्वर बहुत जल्दी जल्दी मर गये। तीसरे पृथ्वीराजके समयमें कीर्तिस्तम्भका काम आगे बढ़ा होगा। बादमें जब कुतुबुद्दीनने दिल्लीको जीता, और किलेके भीतरके उत्तमोत्तम मंदिरोंको तोड़

कर उन पत्थरोंसे अपनी मसजिद बनवायी तब उसने वीसलके कीर्ति-स्तम्भका भी रूपान्तर करके उसे मीनार बना दिया होगा। और अन्तमें अल्तमशने उसपर तीसरी और चौथी मंजिल चढ़ाकर उसको पूरा कर दिया होगा।

इस तरह हमारा तो यही ख्याल है कि इस इमारतका असली बनवाने वाला वीसल या और कोई रहा हो। रचनाके प्रमाणसे तो यही मालूम होता है कि वह पहले पहल तो निस्सन्देह कीर्तिस्तम्भ था, बादमें उस-को मीनारका रूप दे दिया गया था।

इसके बाद शीघ्र ही अजमेरकी बारी आयी। ताज लिखता है कि पृथ्वीराजके भाई हिरजने (स्पष्ट ही हरिराजके बदले यह नाम गलतीसे पढ़ा गया है) रणथंभोरके चौहान राजाके खिलाफ बगावतका झण्डा खड़ा कर दिया। तब उसके दमनके लिए कुतुबुद्दीन शीघ्र जा पहुँचा। हरिराज भागा। इस अवसरपर ताज लिखता है—"पृथ्वीराजके लड़केको पोशाक दी गयी। और रेनसीने दो सोनेके तरबूज, जो बड़ी खूबीके साथ बनाये गये थे, और बहुतसा धन नज़र किया।" इस तरह रेन-सीने मुसलमानोंकी सहायतासे कुछ दिन राज्य किया। पता नहीं, बादमें उसका क्या हुआ। परन्तु वह शीघ्र ही मर गया होगा और बहुत सम्भव है कि हरिराजने अजमेरका राज्य अपने अधीन कर लिया हो। ताज हरिराजको ही अजमेरका राजा कहता है (इलियट २ पृ० २२५)। अवश्य ही उसने पराधीन रहना अस्वीकार किया और बगावतका झंडा खड़ा कर दिया। "जेहतर (?) दिल्लीकी सीमातक चला आया और वहाँके लोग एकाएक अन्याचार रूपी अंधकारमें फँस गये"। कुतु-बुद्दीनने अपनी फौजका बहुत बड़ा हिस्सा उसके विरुद्ध भेजा। तब वह परास्त हुआ। जबरदस्त गरमीके होते हुए भी

कुतुबुद्दीनने अजमेरपर चढ़ाई कर दी। "जिहितर (हरिराज) पहाड़ी किलेमें पहुँचा। तब वह घेर लिया गया। अंतमें निराश होकर उसने अपनेको चितामें जला दिया। किला अनायास ही कुतुबुद्दीनके अधीन हो गया। अजमेर प्रान्तने अपना पूर्वकालीन वैभव प्राप्त किया। पुनः धर्मकी स्थापना हुई, रास्ते चोरोंकी भीतिसे मुक्त हो गये और त्रस्त प्रजा भी इनके त्राससे मुक्त हुई।" इसका मतलब यही है कि अजमेरका राज्य खालसा कर दिया गया और वहाँपर मुसलमानी राज्यकी सत्ता व्यवस्थित रूपसे प्रस्थापित हो गयी। अधीनस्थ रईस और जागीरदारोंने आत्मसमर्पण कर दिया। "सरदारोंके तथा भारतके प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषोंके मस्तकोंसे जमीन घिसी गयी"। इस तरह अजमेरमें व्यवस्था स्थापित कर कुतुबुद्दीन दिल्ली लौट गया। यह बात ई० सन् ११९४ में घटी। तबसे अजमेर मुसलमानी साम्राज्यका प्रान्त बन गया।

मंगलानाके एक शिलालेखसे इन सब बातोंकी पुष्टि होती है। इं० ए० २१ पृ० ८५ पर यह लेख छपा है। यह संवत् १२७२ अर्थात् ई० स० १२१५ का है। इस लेखके द्वारा एक सीढ़ीदार बावड़ी लोगोंको अर्पित की गयी है। और एक मांडलिक दाहिमा राजाने उसपर कुछ कर भी लगाये हैं। इस लेखमें पहले पहल उस समयके मुसलमान बादशाहका शमसुद्दीन सुरत्राण हम्मीर गोरगर्जिस्तानका राजा इस तरह नाम दिया है और बादमें लिखा है कि उसकी अधीनतामें रणथम्भोरमें वल्हणदेव राज्य करता था। इससे प्रतीत होता है कि इस समय चौहानोंकी राजधानी रणथम्भोर थी। इस लेखके छपानेवाले जोधपुरके पंडित रामकरणजीका मत है कि वल्हण पृथ्वीराजका पौत्र अर्थात् हम्मीर-काव्यमें वर्णित

गोविन्दका पुत्र था। मालूम होता है कि जब रेनसी अजमेरका राजा हुआ, तब गोविन्दको रणथम्भोर दिया गया था। हरिराजने रणथम्भोरपर पहले चढ़ाई की थी। बादमें रेनसीके मर जानेपर उसने अजमेरको छीना और अन्तमें कुतुबुद्दीनने उसकी बगावतका दमन किया।

बाईसवाँ प्रकरण।

कन्नौज और बनारसका उच्छेद।

अजमेर और दिल्लीका उच्छेद हो गया। चाहमानोंने मुसलमानोंका मांडलिकत्व स्वीकार कर लिया। अब दूसरे नम्बरमें उत्तर भारतमें कन्नौज और बनारसके गाहडवालोंका राज्य प्रबल था। अतः शहाबुद्दीनने उनको हड़पनेके लिए उधर नजर दौड़ायी। सर्वसाधारणका सामान्यतः यह ख्याल है कि जयचन्दने अपने शत्रु पृथ्वीराजपर चढ़ाई करनेके लिए शहाबुद्दीनको निमन्त्रित किया था और अन्तमें वही उसका भी काल साबित हुआ। हमने इस बातकी जो कुछ खोज की है उससे हमें यह पता नहीं लगा कि जयचन्दने बाहरके शत्रुको निमन्त्रित किया हो। हां, यह ठीक है कि उसने पृथ्वीराजकी सहायता नहीं की। गोरीका विरोध करनेके लिए पृथ्वीराजने जो संयुक्त सेना एकत्र की थी उसमें संभवतः जयचंदकी फौज नहीं थी और न शायद पृथ्वीराजने उससे फौज मांगी ही होगी। तबकातमें भी लिखा है कि पृथ्वीराजने एक संयुक्त सेना एकत्र की थी। किन्तु इस बातका कोई सबूत नहीं मिलता कि पृथ्वीराजकी सहायताके लिए कहां कहांके

राजा आये थे। रासोमें दी हुई बातें ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रामाणिक नहीं हैं। हमें तो इस बातमें भी संदेह है कि कोई गुहिलोत राजा उसकी सहायताके लिए आया भी था या नहीं। यदि आया भी होगा तो वह समरसिंह नहीं, सामन्त सिंह (समत्सिंह) होगा। जो हो यह बात अबतक सिद्ध नहीं हुई है कि जयचन्दने ही शहाबुद्दीनको पृथ्वीराजपर चढ़ाई करनेके लिए प्रवृत्त किया। अतः अब जो उसकी बारी आयी थी वह उसके देशद्रोहका फल नहीं थी। बल्कि भारतको जीतनेकी शहाबुद्दीनकी महत्वाकांक्षाकी अगली सीढ़ी थी।

अत्युक्तिपूर्ण वर्णन देनेवाले ताज ग्रंथमें इस युद्धका तफसीलवार वृत्तान्त नहीं दिया गया। संक्षेपमें वह कहता है कि सुलतान "५० हजार बख्तरधारी घुडसवारोंको लेकर ग़ज़नीसे निकला। मूर्तिपूजकोंका मुखिया अर्थात् बनारसका राजा दरिया किनारेकी रेतके समान असंख्य सेना लेकर उसका विरोध करनेके लिए बढ़ा। राजा सेनाके सामने एक ऊँचे और लडाकू हाथीपर हौदेमें बैठा था। उसे अपने असंख्य वीरों और लड़ाकू हाथियोंका बडा अभिमान था। परन्तु एक ही मर्मभेदी तीरसे वह बुरी तरह घायल होकर गिर पड़ा।" (इलियट २ पृ० २२२-२३) "मूर्तिपूजाका पाप इस भूमिसे नष्ट कर दिया गया। लूटकी सम्पत्ति असीम थी। उसे देखते देखते आँखें थक जाती थीं। बादमें शाही फौजने असनीके किलेको अपने अधीन किया। इसे सुरक्षित स्थान समझ कर राजाने यहांपर अपना खजाना रखा था।" तबकातमें इस लड़ाईका वर्णन एक वाक्यमें करके छोड दिया है। "सुलतान गजनीसे लौटा, बनारस और कन्नौजतक पहुँचा और ५९० हिजरी (११९३ ई०) में चन्दनराके नजदीक राय

जयचंदको परास्त कर ३०० हाथी पकड़ कर ले आया।" यह एक दुर्भाग्यकी बात है कि तबकातका लेखक इस युद्धका अधिक वर्णन नहीं देता। संभव है, पृथ्वीराजकी लडाईकी अपेक्षा उसे यह लडाई कम महत्वपूर्ण नजर आयी हो। परन्तु जयचन्द भारतवर्षका सबसे अधिक बलवान राजा था। वह अभिमानी और शूर राठोड था। राज्यपालके समान वह भागा नहीं, वरन्, अपने धर्म, स्वाधीनता और स्वदेशके भयानक शत्रुसे लडनेके लिए सामने आया। इसलिए इस युद्धका अधिक वर्णन देना जरूरी था। कहा जाता है कि इस युद्धका स्थान चन्द्वाह, इटावा और कन्नौजके बीचमें था। इस वृत्तान्तके विषयमें भारतवर्षके लेखोंसे भी कोई बात जानी नहीं जाती। परन्तु अबुल फजलके ग्रथमें यह दन्त कथा लिखी गयी है कि जयचन्दका हाथी गङ्गाको तैर कर पार कर रहा था कि बीचमें जयचन्द डूबकर मर गया। उपर्युक्त समकालीन मुसलमानी लेख और इस दन्त कथाको एकत्र करनेपर हम यह मान सकते हैं कि जयचन्द युद्धमें घायल हो गया। तब उसने शत्रुके हाथोंमें कैद होनेकी अपेक्षा अपने हाथोको गगामें ले जाकर एक शूर और धर्मशील हिन्दू राजाके समान गगामें जलसमाधि ले लेना ठीक समझा। तब कातमें लिखा भी है कि रणभूमिपर जयचन्दके शरीरको खूब ढूँढा लेकिन नहीं मिला। उसमें यह भी लिखा है कि 'बहुत खोजनेपर एक लाश मिली। उसके वृद्धावस्थाके लक्षण देख कर अनुमान कर लिया गया कि वह जयचन्दकी हीं होगी। (यह बात तबकातके बादके एक वृत्तान्तसे रेवर्टीने पृ० ४७० पर एक नोटमें लिखी है।) परन्तु हमारा तो ख्याल है कि जयचन्द वृद्ध न रहा होगा। वह अपनी युवावस्थामें ही ई०

सन् ११६६ में राज्यारूढ़ हुआ और २४ वर्ष राज्यकर ई० सन् ११६३ में मर गया।

कन्नौज और असनी लूटनेपर शहाबुद्दीन स्वभावतः बनारस को जीतकर लूटनेके लिए बढ़ा। बनारस गाहड़वालोंकी दूसरी राजधानी थी। इस घटनाका वर्णन ताजमें इस प्रकार दिया गया है। "शाही फौजने बनारसपर चढ़ाई की और वहां एक हजार मन्दिरोंको तोड़ा एवं उनके स्थानपर मसजिदें खड़ी कर दीं। दिनार और दिर्हम, इन मुद्राओंकी पीठपर बादशाहका पुण्यकारक नाम और उसकी पदवियाँ ठोक दी गयीं।" इसका मतलब यही है कि इस प्रान्तको भी खालसा करके हिन्दुओंके सोने और चाँदीके सिक्कोंको टकसालमें ले जाकर उनपर शहाबुद्दीनका नाम छाप दिया गया।

"शहाबुद्दीनने शहर और आसपासके प्रान्तका बन्दोबस्त करके इस प्रसिद्ध और पवित्र युद्धका इतिहास लिख कर संसार भरमें प्रसिद्ध कर दिया और लौट आया। लौटते समय उसने कुछ रोज असनीमें मुकाम किया था। वहाँ पर आस पासके मुख्य मुख्य और बूढ़े-पुराने लोग आये। उन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार की और दुर्लभ वस्तुएँ उसको नजर कीं।" इससे यही मालूम होता है कि देशने उसका जरा भी विरोध नहीं किया। और राजसत्ताके इस परिवर्त्तनको उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। इस बात पर हम आगे चलकर टीका करेंगे। भारतमें कुतुबुद्दीनको अपना वाइसराय (राज-प्रतिनिधि) बना कर शहाबुद्दीन गज़नी लौट गया।

बादकी चढ़ाइयाँ।

कुतुबुद्दीनका चरित्र हम आगे चल कर देंगे। परन्तु यहाँ पर इतना तो जरूर कह देना चाहिये कि वह बड़ा योग्य

अधिकारी था। वह इतना निष्पक्ष न्याय करता था कि "उसके राज्यमें भेड़ बकरी एक ही तालाब पर पानी पीने लगे थे।" (ताज इलियट २ पृ० २२५) इस कारण देशमें शीघ्र ही शान्ति फैल गयी। परन्तु वह बागियोंको दण्ड भी बड़ी निष्ठुरतासे देता था। "कोलके नजदीक एक उपद्रवी जाति थी। वह खूब उपद्रव मचाने लगी। तब कुतुबुद्दीनने समस्त जातिको कत्ल करनेका हुक्म दे दिया और उनके मस्तकोंके तीन बुर्ज बना दिये।" जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कुतुबुद्दीनने हरिराजके विद्रोहका भी ई० सन् ११९५ में तत्काल दमन कर डाला। ई० सन् ११९६ में शहाबुद्दीन फिर भारतमें आया। कुतुबुद्दीन उससे जाकर मिला। थंगरका किला मजबूत था, अतः उसने फिर विरोध शुरू कर दिया था। इन दोनोंने उसपर चढ़ाई की और उसे घेर लिया। वहाँके राजा कुंवरपालने देखा कि अब टिकना कठिन है तो उसने आत्म-समर्पण कर दिया। "उसको जीवदान दिया गया किन्तु उसका राज्य खालसा कर लिया गया।" (ताज इलियट २ पृ० २२७) इस स्थानका ठीक ठीक पता अभीतक नहीं लगा है। पंडित गौरीशंकरजीका मत है कि यह कुंवरपाल करौलीके यादववंशका था। और वह इस समय बियानासे भगा दिया गया था (टॉड पृ० ३४६)। जीते हुए प्रदेशमें विरोध करनेवाले सभी किलोंको पुनः जीतनेका विचार सुलतानने किया। इसलिए वह ग्वालियरकी ओर बढ़ा और वहाँके किलेको उसने घेर लिया। ताज लिखता है "ग्वालियरके राजा सोलंखपालने माण्डलिकत्व और कर देना स्वीकार कर लिया। इसलिए उसे मुआफी बख्शी गयी और किला भी लौटा दिया गया।" इसके बाद सुलतान पुनः कुतुबुद्दीनको अपना राज-

प्रतिनिधि बना कर गजनीको लौट गया। कुतुबुद्दीनने बागी मांडलिकोंको राह पर लानेका काम पूरा किया। इस समय गक्खर नामक एक जाति बहुत उपद्रव मचा रही थी। उसको जीतनेके लिए सुलतान फिर भारतमें आया। कुतुबुद्दीन भी उससे जा मिला। दोनोंने मिल कर उसे दबा दियो। परन्तु जैसा कि पहले कहा गया है, इन्हीं गक्खरोंने सिंधु नदीके तीरपर ई० सन् १२०५ में सुलतानके सेनानिवेशमें घुस कर उसका खून कर डाला।

इसके बाद भारतवर्षके तुर्की सरदार और सेनापतियोंने कुतुबुद्दीनको अपना सुलतान और बादशाह चुन लिया। उसके इस अधिकारको गोरके राजा शहाबुद्दीनके भाईने भी मंजूर कर लिया, क्योंकि उसे गजनी और भारत दोनों राज्य अपने हाथमें रखनेकी महत्वाकांक्षा नहीं थी। इस तरह भारतकी स्वतंत्र तुर्की बादशाहत शुरू हुई। दिल्ली उसकी राजधानी बनायी गयी और वहीं कुतुबुद्दीन रहने लगा।

तेईसवाँ प्रकरण।

उत्तर भारतके अन्य राजपूत राज्योंका उच्छेद।

अजमेर तथा दिल्ली, एवं कन्नौज तथा बनारस इन शहरों को लेकर वहाँ राज्य करनेवाले दो पराक्रमी राजपूत राजवंशोंका अर्थात् चौहान और राठोडोंका उच्छेद कर उन्हें शहाबुद्दीनने खालसा कर लिया। इसके बाद शीघ्र ही उत्तर हिन्दुस्तानके अन्य राजपूत राजवंश भी धडाधड उसके अधीन होते गये। वस्तुतः पच्चीस वर्षके भीतर इतनी शीघ्रतासे उनका

अधीन हो जाना आश्चर्यकी बात है। इस थोडेसे समयमें सारा उत्तरीय भारत मुसलमानोंका गुलाम हो गया। मुसलमान लेखकोंने इस उच्छेदका जो इतिहास दिया है वह स्वभावतः चित्तको चकित कर देनेवाला होगा। उसमें अत्युक्ति तो जरूर होगी किन्तु फिर भी वह अविश्वसनीय न होगा। क्योंकि, जैसा कि आगे चल कर हमने एक प्रकरणमें लिखा है, इस समय उत्तर भारतकी ऐसी ही अवस्था हो गयी थी कि वह अधिक दिनोंतक टिक ही नहीं सकता था। यद्यपि यह सारा वृत्तान्त ई० सन् १२०० के बादका हे तथापि वह इस इतिहाससे इतनी दृढ़ रीतिसे संबद्ध है कि उसका यहाँ वर्णन किये बिना हम इस ग्रन्थको समाप्त नहीं कर सकते। वस्तुत: मध्य युगीन भारतीय इतिहासका वह अतिम अध्याय है। हाँ, दक्षिण भारतमें जरूर हिन्दू राज्य इसके बाद भी एक सदीतक टिके रहे।

उत्तर भारतके इन दूसरे राज्योंको जीतनेका काम शहाबुद्दीनके सेनापतियोंने, विशेषकर उसके गुलाम कुतुबुद्दीनने, पूरा किया। उस समय मुसलमानोंमें गुलामोंकी प्रथा थी। परन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि ईसाई लोग अमेरिकामें तथा और और देशोंमें जिस निर्दयताके साथ नीग्रो गुलामोंके प्रति व्यवहार करते थे, उससे बिलकुल भिन्न रीतिसे मुसलमान लोग अपने गुलामोंको, विशेषकर तुर्किस्तानसे लाये हुए गुलामोंको, रखते थे। कुतुबुद्दीनका ही इतिहास लीजिए। यह व्यक्ति गुलामीकी अवस्थासे ही बढ़ते बढते अतको भारतका पहला बादशाह हो गया। वह रूपवान भी न था। उसके दाहिने हाथकी एक उगली टूट गयी थी, इसलिए उसे ऐवक भी कहा करते थे। परन्तु वह शरीरसे बडा मजबूत और, पराक्रमी था। इसके अतिरिक्त उसमें विलक्षण बुद्धि भी

थी। इसलिए वह बराबर उन्नति ही करता गया। उसका हृदय बड़ा उदार था। मुसलमान इतिहासकारोंको उसकी उदारताकी बातें लिखनेमें बड़ा आनंद होता है। उनमेंसे एक यह भी है कि जबसे वह भारतवर्षका बादशाह हुआ उसने एक लाखसे कम कभी किसीको इनाम ही नहीं दिया। बचपनमें खुरासानकी राजधानी निशापुरमें उसे एक काजीने खरीदा था। उसीके घरपर उसके लड़कोंके साथ साथ वह भी घोड़ेपर सवारी करना, हथियार चलाना, आदि बातें सीख गया। सचमुच उसके उस मुसलमान मालिकके लिए यह बात अभिनन्दनीय है कि उसने कुतुबुद्दीनको ये सब कलाएँ सीखने दीं। उस काजीके पाससे किसी व्यापारीने उसे खरीदा। वह उसे गजनी ले गया। वहाँपर शहाबुद्दीन गोरीने उसे खरीद लिया और पहले तो फौजमें, फिर अपने साम्राज्य की मुल्की शासन व्यवस्थामें उसे लगा दिया। इस नौकरीमें भी वह बराबर तरक्की करता गया और अंतमें पृथ्वीराजके पराजय और मृत्युके बाद शहाबुद्दीनने पंजाबके इधरके अपने भारतीय प्रान्तोंपर उसे अपना प्रान्ताधिकारी (गवर्नर) बना दिया।

इस महान् सेना-नायकका चरित्र संक्षेपमें देनेसे हमारा मतलब केवल यही बता देना है कि इतिहासमें व्यक्तियोंका महत्त्व बहुत अधिक होता है। महान् पुरुष समय समयपर पैदा होकर राष्ट्रकी भवितव्यता बदल देते हैं। भारतमें हिंदू राज्योंके उच्छेद तथा मुसलमानी सत्ताके उदयके कारणोंमेंसे एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि उस समय मुसलमानोंमें महमूद, शहाबुद्दीन, और कुतुबुद्दीन जैसे व्यक्ति पैदा हुए थे। तबकात नासिरीके लेखकने कुतुबुद्दीनका वृत्तान्त लिखते हुए

ठीक ही कहा है कि "जब वह सर्वशक्तिमान् ईश्वर अपने जनों-के सामने महत्ता तथा राजोचित स्वभावका आदर्श रखना चाहता है, तब वह ऐसे पुरुषोंको उत्पन्न करता है जिनके शौर्य और उदारताका प्रभाव शत्रु और मित्र दोनोंपर एकसा पड़ता है" (इलियट २ पृ० २६८)। ऐसे पुरुष—उदाहरणके लिए शिवाजी अथवा बाजीरावको ही लीजिए—शीघ्र ही अपने गुणोंके कारण शूरवीर लोगोंको आकर्षित कर लेते हैं और अंतमें राज्य स्थापित कर नूतन राजवंश चलाते हैं। अस्तु, उत्तरीय भारतको जीतनेका आरम्भ तो कुतुबुद्दीनने किया किन्तु उसे पूरा किया अल्तमशने। अल्तमश भी तुर्किस्तानका ही एक गुलाम था और वह कुतुबुद्दीनके समान शूर, उदार और भाग्यवान् भी था। कुतुबुद्दीनने तो उसे अपनी लड़की दी थी। यह जरूर आश्चर्यकी बात है कि इतने ऊँचे बढ़ जाने पर भी ये गुलाम गुलाम ही रहे। बहुत वर्षों बाद उतरती अवस्थामें पहुँचनेपर उनको गुलामीसे मुक्तताकी सनदें मिलीं। हम उनके विजयका इतिहास पूर्वोक्त समकालीन ग्रन्थ ताजुल मासर और तबकात-ई-नासिरी इन दो ग्रन्थोंके आधारपर देते हैं। तबकात-ई-नासिरी ग्रन्थ नासिरुद्दीनके समय लिखा गया था।

दिल्ली और कन्नौजके बाद गुजरातके चालुक्योंका अर्थात् अनहिलवाड़का राज्य नष्ट किया गया। इसका इतिहास गुजरातके चालुक्योंके आधारपर हम पहले लिख ही चुके हैं। परन्तु इसी घटनाका इतिहास मुसलमानी लेखकोंने भी दिया है। ताजल मासर समकालीन ग्रन्थ था। अतः हम उसीपरसे चालुक्य-राज्यके विनाशका इतिहास यहाँ लिख देते हैं। ११६५ में जब कुतुबुद्दीन अजमेर आया तब उसे यह

खबर लगी कि मेर लोगोंने (ये उस समय हिन्दू थे) नहरवाला तरफसे फौज मँगायी है। उसकी गति रोकनेके लिए कुतुबुद्दीनने अपनी फौज भेजी। परन्तु वह परास्त कर दी गयी और अजमेरतक उसका पीछा किया गया। नहरवालाकी सेनाने अजमेरका किला घेर लिया। कुतुबुद्दीनने सहायताके लिए गजनीसे सेना मँगायी। उसके आनेपर गुजरातकी फौज लौट गयी। स्वभावतः मुसलमानोंने आक्रामक नीति धारण करके गुजरातपर चढ़ाई कर दी। "पाली और नाडूलके ऊँचे किले सुनसान पाये गये। हिन्दुओंकी फौज आबूके नीचे एक घाटीके मुहानेपर रायकर्ण और धारावर्षके सेनापतित्वमें खड़ी देख पड़ी। इसी घाटीमें शहाबुद्दीन पहले पराजित हुआ था, इसलिए यहाँपर मुसलमान हिन्दुओंपर हमला करनेसे डरते थे। तब एक युक्ति की गयी। मुसलमानी फौज यह दिखा कर मानो वह सचमुच डर गयी हो, अजमेरकी तरफ लौट पड़ी। यह देखकर हिन्दू लोग, जिस ,पहाड़ीका आश्रय उन्होंने ले रखा था उसे छोड़ कर, मुसलमानोंपर हमला करनेके लिए मैदानमें आ गये। मैदानमें खासा युद्ध हुआ, अन्तमें हिन्दू पूर्णतः हार गये। उनके सेनापति या तो मारे गये या कैद कर लिये गये। रायकर्ण भाग गया परन्तु २०००० गुलाम, बीस हाथी, और शस्त्रोंका बड़ा ढेर विजेताओंके हाथ लगा। सम्पत्ति इतनी अधिक मिली मानो संसारके कुल राजाओंके खजाने मुसलमानोंके हाथ आगये हों। नहरवाला शहर और गुजरातका राज्य मुसलमानोंके अधीन हो गया। विजयी खुसू (सुलतान) के झंडे अजमेरको लौटे और बादमें दिल्लीको चले गये। कुतुबुद्दीनने नाना प्रकारकी कीमती और दुर्लभ वस्तुएँ गजनीको भेज दीं।" (इलियट २ पृ० २८०)

इस वर्णनसे यह भी अनुमान होता है कि आबू पहाड़के नजदीक एक स्थानपर विजय प्राप्त करके कुतुबुद्दीनने एकदम नहरवाला (पाटण) पर धावा कर दिया और उसे जीत कर लूट लिया। कहा गया है कि यह घटना ई० सन् ११९७ में हुई परन्तु जैसा कि पहले कहा गया है, भीम ने अनहिलवाड पाटणमें ई० स० ११९९ में एक दान-लेख लिखवाया था। इसलिए यह मानना पड़ता है कि अनहिलवाडको कुतुबुद्दीनने कुछ देरसे अर्थात् ११९९ ई० में लिया होगा। ईसवी सन् १२०२ में लिखे हुए जयतसिंहके एक दान-लेखमें इस बातका उल्लेख है कि गुजरातका विध्वंस करके राजधानीको मुसलमानोंने ले लिया। इससे गुजरातकी भयंकर अवस्थाका पता चलता है। भीमके भाग जाने पर इस जयंत सिंहने चालुक्योंकी सत्ता पुनः प्रस्थापित की। उसने मुसलमानोंको मार भगाया और गुजरातके राज्य तथा उसकी राजधानीको पुनः स्वाधीन किया। भीमके स्थानपर उसने कुछ वर्ष अनहिलवाडमें राज्य किया। ऐसा कहा जा सकता है कि जयसिंह सिद्धराजके बनाये कुछ मंदिर इस समय नष्ट कर दिये गये होंगे। इस चढ़ाईके कारण गुजरातकी हिन्दू सत्ता शक्तिहीन हो गयी। फिर भी वह अगले सौ सालतक टिकी रही।

अजमेरको अपने अधीन कर और गुजरातसे हिन्दू सत्ता दूर कर कुतुबुद्दीनने अपने राज्यकी सरहद परके अन्य सामर्थ्यवान् हिन्दू राजाओंकी तरफ नज़र फेरी। इसमें कालंजर सबसे पहला था। उसपर चढ़ाई कर कुतुबुद्दीनने वहाँके मजबूत किलेको सर कर लिया। चंदेलोंके प्रकरणमें हम इस चढ़ाईका वर्णन कर चुके हैं। ताजुल-मासिर ग्रंथ समका-

लीन होनेके कारण हम यहाँपर उसमेंसे दो चार तफसीलकी बातें और दिये देते हैं। "हिजरी ५६६ (ई० १२०२) में कुतुबुद्दीनने अल्तमशको साथ लेकर कालंजरपर चढ़ाई की। परमार (परमर्दिदेव) ने किलेमें जाकर आश्रय लिया किन्तु बहुत समयतक जी जानसे लड़नेके बाद उसने आत्म समर्पण कर दिया। महमूदने चंदेलोंपर माण्डलिकत्वकी जो शर्तें मढ़ी थीं वे ही फिर उसपर लाद दी गयीं। किन्तु उनके अमलमें आनेके पहले ही वह मर गया। उसका मेहता अजदेव इतनी आसानीसे झुकनेवाला न था। उसने खूब विरोध किया। परन्तु इसके बाद अनावृष्टिके कारण किलेके अन्दरके पानीके सब कुण्ड सूख गये, अतः लाचार होकर उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा। संसार-प्रसिद्ध कालंजरका किला सर हो गया। उसके अंदरके मंदिरोंको तोड़कर उनके स्थानपर मसजिदें बना दी गयीं। पचास हजार आदमियोंको गुलाम बनाकर ले आये। बीस हाथी और अगणित शस्त्रास्त्र लूटमें मिले। इसके बाद विजयी झण्डे महोबाकी ओर चले और उस प्रांतकी व्यवस्था हसन अमीरको सौंप दी गयी।" गुजरातके वृत्तान्तकी तरह यह वृत्तान्त भी चंदेलोंके शिलालेखोंसे सत्य प्रमाणित होता है। चंदेलोंने भी गुजरातकी ही तरह कालंजरके किलेको और उसके राज्यके अधिकांश हिस्सेको पुनः ले लिया और फिर सौ सालतक स्वतंत्रतापूर्वक राज्य किया।

अजमेर, दिल्ली, कन्नौज और बनारसमें मुसलमानी सत्ता पूर्णरूपसे स्थापित हो गयी। इसकी सरहद्दपर अब तीसरा बलवान् हिन्दू राज्य बंगालके सेनोंका था। मुसलमान इतिहासकारोंने बंगालके उच्छेदका जो इतिहास लिखा है वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है। बख्तियार खिलजीके लड़के महमदने

यह प्रदेश जीता, कुतुबुद्दीनने नहीं । इसका वृत्तान्त समकालीन ग्रंथ ताजुलमासिर में नहीं है । तबकात-इ-नासिरीमें सुनी हुई बातोंके आधारपर स्पष्टरूपसे लिख दिया गया है। तबकातमें लिखा यह वृत्तान्त अपनी टीका-टिप्पणी सहित हम नीचे देते हैं।

महमद बख्तियार खिलजी (तुर्क नहीं, अफगान) एक साहसी पुरुष था। जिस समय शहाबुद्दीन गोरीकी सत्ता चारों ओर फैलती जा रही थी, उस समय यह उसके पास नौकरीके लिए गया था। जब विजयी लोग दूर दूरके प्रान्तोंको जीतते चले जाते हैं, तब उनके प्रान्तके शूर-वीर और साहसी लोग अपना भाग्य अजमानेके लिए सामने आते हैं। शिवाजी तथा बाजीरावके समय इसी प्रकार अनेक मराठे वीर नौकरी प्राप्त कर नवीन विजित प्रान्तोंपर सेनाधिकारी बन गये थे। महमद बखत्यार खिलजी इसी प्रकारका एक साहसी वीर था। कई बार उसे इनकार कर दिया गया किन्तु अन्तमें वह मिर्जापुरका प्रान्ताधिकारी बनाया गया। उसने पहले पहल तुर्क और अफगान सेना एकत्र कर विहारपर चढ़ाई की। उस देशको जीतकर उसने सारे मुल्क और शहरोंको लूटा। बिहार नामक एक बौद्ध निवासस्थानको लूटनेका भी इसमें जिक्र है। यह संभवतः विक्रमशील रहा होगा। उसने उन मुण्डित सिर वाले, प्रतिकार न करनेवाले तमाम बौद्ध भिक्षुओंको कत्ल कर डाला और उनकी समस्त पवित्र पुस्तकोंको फेंक दिया, 'क्योंकि न तो उनका पढ़नेवाला ही कोई बच रहा और न अर्थ करनेके लिए ही कोई बचा'। यह घटना कदाचित् ११९९ ई० की होगी। क्योंकि ताजुल मासिरमें लिखा है कि महमद बखितयार अवध और बिहारको जीतकर उपहार लेकर कुतु-

चुद्दीनसे मिलनेके लिए आया था। (इस समय कुतुबुद्दीन कदाचित् महोबामें रहा होगा)। कुतुबुद्दीनने पोशाक देकर उसका सम्मान किया और उसे पुनः बिहार भेज दिया।

"बादमें बङ्गालको जीतनेका विचार कर उसने गुप्त रूपसे एक फौज एकत्र की और बङ्गालकी राजधानी नदियापर एकाएक धावा कर दिया। उत्सुकतापूर्वक वह फौजके आगे चलकर केवल एक सवारको साथ लिए हुए नदिया जा पहुँचा। घोड़ेका व्यापारी बनकर किसी प्रकार उपद्रव न करते हुए वह शहरमें घुसा और ठेठ राजमहलतक जा पहुँचा। वहाँ तलवार निकालकर एकाएक दरबानपर वार किया। सारे महलमें तहलका मच गया। परन्तु किसीने उसका विरोध नहीं किया। वृद्ध राजा लक्ष्मणसेन भोजन करनेको बैठने ही वाला था। इस शोरको सुनकर उसने पूछताछ की और स्थिति मालूम होते ही वह पीछेके दरवाजेसे भागकर सीधे जगन्नाथपुरी जा पहुँचा। शीघ्र ही महमदकी फौज वहाँ आ धमकी। उसने शहर और राजमहलको अपने अधीन कर लिया और सारे प्रान्तको जीत लिया। फलतः कोई मुकाबला करनेवाला न होनेके कारण शहर लूट लिया गया और उजाड़ दिया गया। महमद बख्तियार खिलजीने बङ्गालकी मुख्य राजधानी गौर अथवा लखनौतीको भी जीत लिया और उसे अपनी भी राजधानी बना लिया।"

अनेक विद्वानोंने इस वर्णनकी सत्यताके विषयमें संदेह प्रकट किया है। बात आश्चर्यजनक तो अवश्य है। क्या बंगालकी सरकार राजनीतिक बातोंमें इतनी लापरवाह और निद्रितावस्थामें थी कि उसे इस बातकी खबर भी नहीं हुई कि इतनी बड़ी फौज उसपर इतनी दूरसे, विक्रमशीलसे नदियातक,

चढ़ाई करनेके लिए आरही है? क्या दिल्ली और कन्नौजके पतनकी खबर सारे भारतवर्षमें फैल जानेपर भी इस सोई हुई बंगालकी सरकारके कानपर जूँतक नहीं रेंगी जो उसने ऐसे प्रबल शत्रुसे टक्कर लेनेके लिए कुछ भी तैयारी नहीं की और स्वयं शत्रुके पहुँच जाने पर भी उसने नदियाकी तरफसे या बंगालकी तरफसे अपनी उँगली तक नहीं उठायी? तबकात-इ-नासिरीके ग्रन्थकारको जिन मुसलमानोंने यह खबर सुनायी, उन्होंने खूब अतिशयोक्तिसे काम लिया होगा अथवा स्वयं ग्रन्थकारकी ही यह अत्युक्ति हो सकती है। इस ग्रन्थमें एक और भी इसी तरहके पागलपनसे भरी हुई बात लिखी हुई है। उससे पता चल जायगा कि इस उपर्युक्त वृत्तान्तपर हमें कहातक विश्वास करना चाहिए। उसमें लिखा है कि राजा लक्ष्मणसेनके जन्मके समय ज्योतिषियोंका बताया मुहूर्त साधनेके लिए उसकी गर्भवती माताके पाँव बाँधकर ऊपर टांग दिये गये थे। अस्तु, उपर्युक्त घटनाका समय तबकातमें ११९९ ई० दिया है और यह भी लिखा है कि लक्ष्मणसेनके शकका ८० वां वर्ष था, परन्तु हमारा ख्याल है कि यह घटना ईसवी सन् १२०२ में घटित हुई होगी। लोगोंके जरा भी विरोध न करनेका इस ग्रन्थमें यह कारण बताया गया है कि इस राजाके ब्राह्मण मन्त्रियोंने इससे कह दिया था कि "एक तुर्क आवेगा जो तुझसे यह राज्य छीन लेगा, ऐसा हमारे ज्योतिषसे पाया जाता है।" इसमें एक और भी गप लिखी है। वह यह कि जब राजाने उनसे प्रश्न किया कि आपके ज्योतिषके अनुसार इस जेताके क्या क्या लक्षण पाये जाते हैं? तब उत्तरमें उन विद्वान् ज्योतिषियोंने कहा कि वह आजानु-बाहु होगा। तब राजाने यह तलाश किया कि किस तुर्कमें ये लक्षण विद्यमान हैं। उसे

खबर मिली कि महमद बख्तियार खिलजीमें ये लक्षण मौजूद हैं। संभवतः इस बातमें तो जरूर कुछ तथ्य होगा कि भारत वर्ष म्लेच्छोंके हाथमें चला जानेवाला है इत्यादि पुराणोंमें लिखी कथाओं तथा ज्योतिषियोंके पागलपनसे भरे हुए इन भयप्रद भविष्य-वर्णनोंके कारण भारतीयोंकी विरोधशक्ति बहुत कम हो गयी होगी, किन्तु तबकातमें लिखी हुई उपर्युक्त कहानी एक बार पढ़ते ही इतनी मूर्खतापूर्ण मालूम होती है कि संभवतः यह सच न होगी। हम तो उसके दिये हुए बंगाल-के उच्छेदके वृत्तान्तको अयुक्तिपूर्ण और असत्य मानते हैं। हमारा ख्याल है कि महमद बख्तियारका काफी विरोध करनेके बाद ही बंगालका पतन हुआ, सो भी एकदम नहीं, बल्कि गुजरात और बुंदेलखंडकी तरह धीरे धीरे ही यह उसके अधीन हुआ।

यह विलक्षण कहानी तबकातमें ईसवी सन् १२५० के लगभग लिखी गयी। मालूम होता है कि जिन गप्प हाँकने वाले वीरोंके कथनानुसार वह लिखी गयी उन्होंने विजेताओं की शूरता और विजितोंकी कायरताको खूब बढ़ाकर लिखवा दिया है। फिर जब किसी अपरिचित प्रदेशमें विदेशी लोग जाते हैं तो वहाँके निवासियोंकी रहन सहन, जन-स्व-भाव आदिका ज्ञान न होनेके कारण कितने ही प्रकारके गलत ख्याल हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक बात और है। बहुत संभव है कि हिन्दुओंकी ज्योतिष-विषयक मूर्खतापूर्ण कल्प-नाओंका मजाक उड़ानेके ख्यालसे भी यह मन-गढंत कथा लिखवा दी गयी हो। विदेशियोंके इस कथनकी सत्यता एक भारतीय समकालीन लेखके आधारपर जांच लेनी चाहिए। यह केशवसेनका लेख है जो बाकरगंजमें उपलब्ध हुआ है

(ज० रा०ए०सो० बंगाल जिल्द ७पृ०४० से ५०) यह सत्य है कि इस लेखमें दूसरे प्रकारकी अत्युक्ति है—इसमें लक्ष्मणसेनके पराक्रमका तथा दान देनेवाले केशवसेनके पराक्रमका अत्युक्ति पूर्ण वर्णन है—परन्तु इसमें लक्ष्मणसेनकी उस अत्यन्त अपमानास्पद पराजयकी वार्ताका नामोनिशानतक नहीं है। कदाचित् यह कहा जावे कि शिलालेखोंमें उनके लिखानेवालेकी पराजयका वर्णन न आना स्वाभाविक ही है। परन्तु बात ऐसी नहीं। तुरुष्कोंके साथ छिडे हुए युद्धोंके प्रतिकूल परिणामोंका वर्णन भी, गुजरात और बुंदेलखण्डके समान कहीं कहीं मिल ही जाता है। जो हो, इतना तो हम जरूर कह सकते हैं कि लक्ष्मणसेन एक शूरवीर राजा था और उसने बनारस, जगन्नाथ तथा प्रयागमें जयस्तम्भ खडे किये थे। साथ ही हमें यह बात भी माननी पडेगी कि केशवसेन अभीतक पूर्व बंगालमें एक शक्तिशाली राजा था। और लक्ष्मणसेनके वंशज इसके बाद पूर्व बङ्गालमें कई वर्षतक राज्य करते रहे। इसलिए यह बात संभवनीय नहीं मालूम होती कि वीर लक्ष्मणसेन विना युद्ध किये ही कहीं भाग गया हो। अतः यही मानना पडता है कि लक्ष्मणसेनकी मृत्युके बाद माधवसेनके नाबालिग रहने पर ही यह घटना हुई होगी। इस बाकरगंजवाले लेखमें माधोसिंहका नाम निकाल डाला गया, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है (ज० रा० ए० बंगाल जिल्द ७, पृ० ४२) इन सब कारणोंको देखते हुए तथा दो परस्पर विरोधी उल्लेखोंको मिलाते हुए यही मालूम होता है कि बंगालका उच्छेद बहुत विरोधके बाद और बहुत धीरे धीरे हुआ।

फिर यदि क्षणभरके लिए हम तबकातके वर्णनको सच मान भी लें तो यह उतना अपमानास्पद नहीं जितना प्राय माना

जाता है। सबसे पहले यह स्मरण रखना चाहिए कि नदिया सेनोंकी राजधानी नहीं थी। यह तो ब्राह्मणोंकी एक नवीन बस्ती थी। गंगाके एक टापूमें मानो यह एक विशाल ब्राह्मण विहार ही था। वहांपर लक्ष्मणसेन कभी कभी रहता था। राजमहलमें पहरेदार बहुत थोड़े रहे होंगे और शहरमें भी फौज बहुत कम रही होगी। दूसरे, ऐसे स्थानपर एकाएक चढ़ाई कर देना कठिन नहीं है* बल्कि इतिहासमें तो ऐसे कितने ही हमलों-का उल्लेख है। एक शताब्दीके बाद अल्लाउद्दीनने देवगिरिपर इसी प्रकार धोखा देकर हमला किया था। दूर जानेकी क्या जरूरत है? इस घटनाके केवल पाँच ही साल बाद जब सारे भारतवर्षको भी जीतनेवाला शहाबुद्दीन सिंधु नदीके तीरपर छावनी डालकर अपने तम्बूमें सो रहा था, तब दस पाँच गक्खरोंने सबकी नजर बचा कर पानीमेंसे होते हुए, उसके तम्बूमें घुसकर उसका खून कर डाला। तीसरी बात यह है कि ऐसे अचानक हमलेसे जान बचाकर भाग जाने, और दूसरी जगह राजधानी बसाकर वहाँसे विरोध करते रहनेमें जरा भी बुराई या अपमानकी बात नहीं है, बल्कि ऐसा करना उचित और प्रशंसनीय ही है। कन्नौजके राज्यपाल और गुज-रातके भीमने महमूदके समयमें यही किया था। आधुनिक मराठोंके इतिहासमें भी राजारामने औरंगजेबके खिलाफ

* उस समय घोड़ेके व्यापारी अक्सर मुसलमान रहा करते थे। वे अरबी और ईरानी घोड़े लेकर शहरोंमें बेचनेके लिए जाया करते थे। हिन्दू राजाओंको ये घोड़े बहुत पसंद आते थे और उन्हें वे बड़ी बड़ी कीमतें देकर खरीदते भी थे। इसलिए मुसलमान व्यापारी उनके यहाँ अक्सर जाया करते थे। यही कारण था कि महमूद बख्तियारका किसीने विरोध नहीं किया।

ऐसा ही किया था। यह क्यों, आजकलकी सरकारें भी तो यही करती हैं वे घिरी हुई राजधानीको छोडकर दूसरी राजधानीमें रहकर अपना विरोध जारी रखती हे। मालूम होता है कि लक्ष्मणसेन तथा उसके वंशजोंने भी यही किया। नदियाके पूर्वमें विक्रमपुर महत्वपूर्ण शहर था। वहाँसे जारी किया हुआ लक्ष्मणसेनका एक दानलेख पाया जाता है। इससे हम यह अनुमान निकाल सकते हैं कि उसने उसे राजधानी बनाकर पूर्व बङ्गाल पर सौ वर्षतक और राज्य किया और वहींसे वह, गुजरात तथा बुन्देलखण्डकी तरह, मुसलमानोंका विरोध करता रहा। स्वयं तबकातमें लिखा है कि जब नासिरुद्दीनने लखनौतीपर चढ़ाई की, तब खिलजी उसे वहाँ नहीं मिला। वह "बङ्गालमें घुसनेके इरादेसे" अपनी फौज लेकर पूर्वकी तरफ गया हुआ था। इसके मानी हे कि उसने सेन राजापर चढाई की थी (रेव्हर्टी पृ० ६२६) अब यह एक जुदा सवाल है कि यह विरोध उत्तर हिन्दुस्तानके अन्य स्थानोंके समान बङ्गालमें भी हिंदू सम्राज्यकी स्थापना करनेमें क्यों समर्थ नहीं हुआ। इस असमर्थताके कारण हम अगले प्रकरणमें विस्तारपूर्वक देंगे।

चौबीसवाँ प्रकरण।

उत्तर भारतका पतन।

चालुक्यों, चन्देलों और सेनोंके राज्यके सदृश सुदृढ हिंदू राज्योंको, जो मुसलमानी साम्राज्यकी अन्तिम सीमा पर थे, कुतुबुद्दीन और महमद बख्तियार खिलजीने जीत लिया, अथवा उन्हें नीचा दिखाया। उनके आगे जो हिन्दू राज्य बचे

थे उन्हें जीतनेका काम उसके बादके सुलतान अलतमशने किया। वह भी कुतुबुद्दीनके समान ही शूरवीर और भाग्य शाली था, साथ ही उसीके समान गुलाम भी था। उसका शौर्य और उसके गुण शहाबुद्दीनने पहचाने और उसने उसे गुलामीसे मुक्त कर दिया। शनै. शनैः वह भी कुतुबुद्दीनके समान अपने गुणोंके बलपर ऊपर चढने लगा। कुतुबुद्दीनने उसे अपनी लडकी ब्याह दी। तबकातमे उसके विषयमे एक कहानी लिखी हुई है। अलतमशको खरीदनेके लिए शहाबुद्दीन जो कीमत दे रहा था उसपर व्यापारी वेचनेको राजी न हुआ। तब शहाबुद्दीनने हुक्म कर दिया कि उसे गजनीमे कोई न खरीदे। कुतुबुद्दीनने बादशाहकी आज्ञा स्वीकार कर उसे दिल्लीमे खरीदा। (इलियट २ पृ० ३२२) "जब कुतुबुद्दीन लोहर (लाहोर) में मर गया, तब शमसुद्दीन अल्तमश जो बदामीमे प्रान्ताधिकारी था, समस्त सरदारोंकी सम्मतिसे दिल्ली बुलाया गया और सबने मिलकर उसे अपना सुल्तान बना लिया। कुबाचा इत्यादि कुछ सेनाधिकारी तथा प्रान्ता धिकारियोंने इस चुनाव पर आपत्ति की परन्तु परमात्माकी कृपासे वे सब पराजित हो गये और दिल्ली, बदायू, अवध, बनारस, शिवालिक पर्वत आदि सभी प्रान्त उसके अधिकार में आगये। यिलदुससे लाहोर प्रान्त भी छीन लिया गया और ई० सन् ११२७ मे कुबाचासे सिंध और वखर प्रान्त भी छीने गये। गियासुद्दीन बख्तियारका बङ्गाल प्रान्त भी जीता गया और उसने अलतमशका मांडलिकत्व स्वीकार कर लिया तथा कर भी दिया।"

इस तरह दिल्लीका मुसलमान साम्राज्य एक दूसरे योग्य राजाके हाथोंमें चला गया। अब उसने अपना ध्यान अपने

राज्यमेंके उन हिन्दू सरदारोंके दमन करनेमें लगाया जो बागी हो गये थे। ६२३ हिजरीमें उसने रणथंभोरपर चढ़ाई कर दी। "इस किलेके सामने सत्तर राजा हार हार कर चले गये थे। परन्तु परमात्माकी दयासे सुलतानके नौकरोंने उसे सर कर लिया। ६२४ हिजरी (१२२७ ई०) में शिवालिक प्रान्तमें मंडावर पर उसने चढाई करदी और परमात्माकी दयासे उसे भी जीत लिया। साथमें बहुतसी लूटकी सम्पत्ति लेकर वह दिल्लीको लौट आया।" (ग्वर्टीका तबकात पृ० ६१८)। ये दोनों स्थान संभवतः चौहानोंकी अधीनतामें रहे होंगे, और उनके बागी हो जानेके कारण ही उनपर चढ़ाइयांकी गयीं।

हम पहले कह आये हैं कि रणथंभोर पर कुतुबुद्दीनने भी चढ़ाई की थी, और वहाँके सरदारको, आत्मसमर्पण कर देनेके कारण, कुतुबुद्दीनने छोड़ दिया था। परन्तु चौहानोंने पुन रणथम्भोर हस्तगत कर लिया और उनका अन्तिम राजा हम्मीर काव्यका नायक वीर हम्मीर था। अभी मंडावरका प्रश्न किञ्चित् विवादग्रस्त है। विवाद शुरू होनेका कारण यह है कि यह शहर पहले शिवालिकमें था, ऐसा कहा गया है (इलियट २ में "पहाड़" लिखा है परन्तु रेवर्टीने "प्रान्त" लिखा है।) मंडावरके समान ही इसीका भी शिवालिक पर्वतमें होना बताया गया है। परन्तु यह शहर हिमालयके नीचे नहीं, कर्णाल जिलेमें है। हम पहले कह ही चुके हैं कि शिवालिक शब्दसे सांबरके चौहानोंके सपादलक्ष प्रान्तका बोध होता है (भाग २)। कदाचित् मंडावर मूलतः नाहरराय प्रतिहारकी अधीनतामें रहा होगा। बादमें पृथ्वीराज द्वारा जीते जाने पर वह चौहानोंके राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया होगा और इस समय वहां कोई चौहान राजा ही राज्य करता

होगा। मंडावर इस समय बहुत गिरी हुई अवस्थामें है और वर्तमान जोधपूर शहरसे चार मीलके फासले पर है।

इसके बाद अल्तमशने ग्वालियरके किलेपर चढ़ाई कर दी। इस किलेके अधिकारीने आत्मसमर्पण कर दिया था। इसलिए कुतुबुद्दीनने इसे छोड़ दिया था। मुसलमानी साम्राज्यमें यह एक सुदृढ़ और महत्वपूर्ण स्थान था और इसे सर कर लेना जरूरी था। इस समय यह किला कछवाहोंकी अधीनतामें नहीं था। वे वहाँसे चले गये थे और फासलेपर अवर के किलेमें रहते थे। इस समय यह किला प्रतिहारोंकी अधीनतामें था। श्रीमन्त बलवन्तराव भैया साहब सेंधियाने 'ग्वालियर नामा' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें आपने लिखा है कि इस किलेको परिहारोंने ले लिया था। ग्वालियर गैजेटियरमें भी लिखा है कि परिहारोंने कछवाहोंसे इस किलेको ई० स० ११२६ में छीन लिया था और कुतुबुद्दीनने सोलङ्कपाल परिहारसे उसे प्राप्त किया था। परन्तु बादमें परिहारोंने फिर उसे ले लिया। इसलिए अल्तमशको उसपर चढ़ाई करनी पड़ी। ६२६ हिजरी (१२३२ ईसवी) अल्तमशने किलेके आसपास घेरा डाल दिया। वसिलदेव (रेवर्टीके अनुसार मालदेव) के लड़के मलिकदेवने (रेवर्टी इस स्थानपर मङ्गलदेव लिखता है) युद्ध शुरू किया। ग्यारह महीनेतक मुसलमान सेना घेरा डाले पड़ी रही। अन्तमें एक रातको मलिकदेव भाग गया। सुलतानके तम्बूके सामने १७०० मनुष्योंको दण्ड दिया गया। ग्वालियरमें अपना एक अधिकारी नियुक्त करके सुलतान दिल्लीको लौट गया।" (इलियट २ पृ०२२७)। हमारा ख्याल है कि जिन लोगोंको दण्ड दिया गया वे सुलतानकी सेनाके ही लोग होंगे। मलिकदेव उनके बीचसे निकलकर भाग सका यही उनका

अपराध था। ये लोग मलिकदेवके पक्षके न होंगे। मलिकदेवके लोग पकडे भी गये थे, ऐसा यहाँ नहीं कहा गया और "दण्ड दिया" ये शब्द उन लोगोंके लिए नहीं कहे जा सकते। इसके अतिरिक्त, बाबरके समयमें इस किलेमें एक शिलालेख था। उसमें लिखा था कि राजपूत स्त्रियोंने किलेपर चितायें बनाकर अपने आपको जला दिया था। अब भी वह स्थान 'जोहर ताल' कहा जाता है। (ग्वालियर गजेटियर पृ० १२५)। घेरेको तोडकर जाते समय कई राजपूत सिपाही मारे गये होंगे और कई भाग भी गये होंगे। इसके बादका ग्वालियरके किलेका जो वृत्तान्त बलवन्तराव भैया साहबने दिया है उसे यहाँ लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं। उसका स्वामित्व हमेशा बदलता ही रहा होगा। तैमूरलगके समय इस किलेको तोमरोंने ले लिया। और उनसे पुनः बाबरने उसे छीन लिया। मुगलोंके शासन कालमें वह राजपुत्रोंको कैद रखनेके कममें लाया जाता था। उसके बाद भदोरा राजाओंने उसे ले लिया और उनसे सेंधियाने लिया। अंग्रेजोंने उसे दो बार सेंधियासे ले लिया था, किंतु इस समय वह सेंध्याके अधिकारमें है।

"६३२ हिजरी (१२३४ ईसवी) में अल्तमशने मालवापर चढ़ाई कर दी और किले सहित भेलसाको ले लिया। वहांपर एक मंदिर था। संभवतः वह ३०० वर्षोंमें तैयार हुआ था। वह कोई १०५ गज ऊंचा था। वह तोड दिया गया" (इलियट २ पृ० ३२८)। यह मन्दिर शायद वही भेलस्वामी (विष्णु) का मंदिर होगा जिसका जिक्र अलबेरुनीने किया है। वह गरुड़-स्तम्भ, जिसपर ईसाके पूर्व पहली सदीका लेख है, बेतवा नदीके दूसरे किनारेपर बनाये गये विष्णुके मंदिरका होगा। यह मंदिर सम्भवतः पहलेहीसे गिर गया होगा, अस्तु। उदैपुरका

शिवालय अबतक ज्योंका त्यों खड़ा है। हमें तो यही आश्चर्य होता है कि मुसलमानोंसे यह किस तरह बच गया। इस शिवालयका ऊपर कहीं उल्लेख नहीं है। उदयादित्य परमारने उसे बनवाया था। इसका शिखर भी बहुत ऊँचा है। अब भी वह परमारोंके वैभवकी याद दिला रहा है। अन्तिम परमार राजा देवपालके समयमें भेलसाका उच्छेद हुआ। जैसा कि उत्तर परमारोंके प्रकरणमें लिखा है, इसने ईसवी सन् १२१६ से १२४० तक राज्य किया था।

"भेलसासे अल्तमश उज्जयिनीकी ओर बढ़ा। वहाँ पर महाकालका जो प्रसिद्ध देवालय था, उसे उसने तोड़ा और इस समयसे १३४६ वर्ष पहले राज्य करनेवाले विक्रमादित्यकी मूर्ति भी नष्ट कर डाली। हिन्दुओंका शक इसी राजाके समयसे शुरू होता है। (इस अंकसे ई० स० १२८९ आता है। परन्तु उज्जैनका उच्छेद तो १२३४ में किया गया था। इसलिए हम यह मान सकते हैं कि विक्रमने ५५ वर्षतक राज्य किया था) वहाँ पर मिली हुई कुछ तांबेकी मूर्तियाँ तथा महाकालकी पत्थरकी मूर्तिको अल्तमश दिल्ली ले गया।" (इलियट २ पृ० ३२८) उपर्युक्त वर्णनको जो अतिशयोक्ति रहित है, सत्य न माननेके लिए कोई कारण नहीं है। यद्यपि इसकी पुष्टि करनेवाले कोई हिन्दू लेख हमें नहीं मिले हैं, तो भी इसमें संदेह नहीं कि महाकालका मन्दिर तोड़ कर उसके स्थानपर एक मसजिद बना दी गयी थी, क्योंकि हमें इतिहाससे मालूम होता है कि राणोजी सेंधियाके समय मसजिद तोड़ कर फिर वहाँ महाकालका शिवालय बना दिया गया। राणोजी सेंधियाके वंशज अब तक उज्जैनमें राज्य कर रहे हैं और वे महाकालके भक्त भी हैं। महाकालका जो ऊँचे शिखरवाला देवालय है उसे ५०

सेंधियाके शेणवी दीवान रामचन्द्र बाबाने बनवाया था। वह निपुत्रीक था, इसलिए उसने अपनी सारी सम्पत्ति इस मन्दिरके बनवानेमें लगा दी (१७४५ ईसवी)। वर्तमान मन्दिर सम्भवतः पहलेके मन्दिरके स्थानपर ही है। यहाँपर हमें यह भी कह देना चाहिए कि उज्जैनके मुसलमान राज्य कर्ताओंने हिन्दुओंको यह इजाजत दे दी कि वे टूटे हुए असली पुराने मन्दिरके नजदीक ही महाकालकी दूसरी मूर्ति स्थापन कर लें और ऐसा किया भी गया। आजकल ये महाकाल वृद्ध अथवा प्राचीन महाकालके नामसे प्रसिद्ध हैं।

मालवाकी यह चढ़ाई कदाचित् प्रसिद्ध हिन्दू मंदिरोंको तोड़नेके ही लिए की गयी थी। अत महमूदकी चढ़ाईयोंके अनुसार यह भी धार्मिक कही जा सकती है। मालवाको जीतकर उसे मुसलमानी सत्ताके अधीन करनेके लिए यह प्रयत्न नहीं किया गया था। कदाचित् यह प्रान्त ग्वालियरकी तरह मुसलमानी राज्यसे लगा हुआ नहीं था, इसीलिए गुजरातके चालुक्य राज्यके समान परमारोंका यह राज्य भी अगले सौ वर्ष तक टिका रह सका। मालवाकी अंतिम विजय अल्लाउद्दीन खिलजीके समय हुई।

इस तरह हम उत्तर भारतके मुख्य मुख्य अर्थात चोहान, राठौर, चालुक्य, चंदेल, सेन, कच्छवाह और परमार राजाओंके उच्छेदका वृत्तान्त दे चुके। इसके बाद मेवाड़के गुहिलोतोंकी बारी आयी परन्तु इनका कोई अधिक वृत्तान्त नहीं मिलता। नासिरुद्दीनके समय मेवाड़पर चढाई की गयी थी—उस समय जेत्रसिंह राजा था (१२५३ ई०)—और गुहिलोतोंकी राजधानी नागदा उध्वस्त कर दी गयी। परन्तु जैत्रसिंहने मुसलमानोंको पराजित कर दिया और अपनी पहाडी

राजधानीको सुरक्षित रखा। वहांपर गुहिलोत पराक्रमके साथ राज्य करते रहे। जब ई० स० १३०० के लगभग अल्लाउद्दीनने चित्तौड़ ले लिया तबतक उनका शासन वहाँ बना रहा।

पचीसवाँ प्रकरण।

उत्तर भारतके पतनके मुख्य कारण।

उत्तर भारतके पतनके कारण पजाबके पतनके कारणोंसे भिन्न होने चाहिए और हैं भी। पंजाबमें राजपूत राज्य नहीं थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वह हमेशा बाहरके राजाओंके अधीन रहा करता था। उसपर पहले पहल सिंध, बादमें काश्मीर, और उसके अनन्तर काबूलकी सत्ता थी। किन्तु उत्तर भारतपर अभीतक स्थानीय राजा राज्य करते थे। उत्तर भारतने अभीतक बाहरसे चढाई करनेवालोंको कई बार मार भगाया था। सिकन्दरने सतलजको पार ही नहीं किया था। मिनएडर अयोध्यातक आया था। परन्तु अन्तमें पुष्यमित्रने उसे मार भगाया था। शक मथुरातक आये थे। परन्तु उन्हें भी विक्रमादित्यने मारकर बाहर निकाल दिया था। हाँ, कुशन और हूण जरूर भारतवर्षके पश्चिम भागमें कई वर्ष राज्य करते रहे। परन्तु उन्हें भी पाटलिपुत्रके स्कंदगुप्त, मन्दसोरके विष्णुवर्धन, और थानेश्वरके प्रतापवर्धनने भगा दिया। ई० सन् ६०० से लेकर १००० तक भारतवर्षपर बाहरसे चढ़ाइयाँ नहीं हुईं। ईसवी सन् १०१८ में महमूदने राज्यपालको जीतकर उत्तर भारतपर कर लगा दिया। परन्तु शीघ्र ही गाह-

ड़वालोंने इन विदेशी शत्रुओंको बाहर निकाल दिया और कर देना बन्द कर दिया। चन्देल तथा कछवाहा राजाओंने राज्यपालपर चढाई कर महमूदके सामने सिर झुकानेके अपराधमें उसे मार डाला। मतलब यह कि उत्तर भारतके आर्य राजाओंने अपना राज्य बाहरकी चढाइयोंसे सुरक्षित रखा था। हिन्दूकालके राजपूत राजवंश निःसन्देह बड़े पराक्रमी थे। उन्हें पराधीनता जरा भी बरदाश्त नहीं होती थी। तो फिर शहाबुद्दीगोरी उनका उच्छेद कैसे कर सका? न शस्त्रोंकी न्यूनता थी और न योग्य सेना-नायकोंकी ही कमी थी। बल्कि अजेय चौहानोंने अपने सर्वश्रेष्ठ वीर पृथ्वीराजको मुसलमानोंका प्रतिकार करनेके लिए खड़ा कर दिया था। उसने एकके बाद एक इस तरह लगातार चार राजाओंको जीत लिया था। मुसलमानोंकी सैनिक बाढको उसने बाँधकी तरह बड़ी दृढताके साथ रोक रखा था। उस बाँधके टूटते ही समस्त उत्तरी हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी विजयका पूर आ गया। और पाँच सालके भीतर उसने तमाम राजपूत राज्योंको उलट पुलट कर दिया। इसलिए प्रश्न यह है कि चौहान और राठौर, चन्देल और सोलंकी, जैसे शूरवीर राजपूत राजवंशोंका पतन इतनी शीघ्रतासे और एकाएक कैसे हो गया।

इनके और इनके विरुद्ध पक्षवालोंके शारीरिक बलमें और शौर्यमें कोई अन्तर न था। राजपूत लोग अपने विजेता तुर्कोंके सदृश ही शक्तिमान, शूर और कष्ट सहिष्णु थे। शस्त्रास्त्र भी दोनों तरफ एकसे थे। अफगान और राजपूत इन दो मेंसे किसीके पास भी अग्न्यस्त्र नहीं थे। वे एक ही प्रकारके शस्त्रोंसे अर्थात्, तलवार, भाले और बाणोंसे लड़ते थे। दोनोंके पास हाथी थे और वे भी सम संख्यामें

थे। हाँ, मुग़लोंने जरूर राजपूतोंको तोपोंकी सहायतासे जीता था और बादके इतिहासमें सेंधियाके मराठोंने भी उन्हें केवल तोपोंके बलसे ही जीता था। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, विज्ञानकी सहायतासे पश्चिमी देशोंमें जिन नवीन नवीन शस्त्रास्त्रोंके आविष्कार हुए, उनके सामने तो स्वभावतः भारत अपने सीधे सादे शस्त्रोंके बलपर कदापि नहीं टिक सकता था। परन्तु शहाबुद्दीनके समय तो किसी भी पक्षके पास आग्नेयास्त्र नहीं थे। चन्द बरदाई और फरिश्ताने उनका उल्लेख कालातिक्रम दोषसे ही किया है।

हम यह भी नहीं कह सकते कि शहाबुद्दीन गोरी और उसके मुसलमान सिपाहियोंका धार्मिक उत्साह राजपूतोंकी अपेक्षा अधिक था। यद्यपि मुसलमान इतिहासकार उसे धार्मिक युद्ध करनेवाला ही कहते हैं, तथापि वह वस्तुतः प्रदेश जीतनेके ही लिए युद्ध करता था, धर्मके प्रचारके लिए नहीं। वास्तवमें, हम तो देखते हैं कि उत्तर भारतको जीतनेमें उसका यह उद्देश्य नहीं था कि वहाँके लोग मुसलमान बना दिये जायँ। और न उत्तर भारतमें ऐसे बड़े पैमानेपर धर्मान्तर हुआ ही है। इसके कारणोंका जिक्र हम आगे चलकर करेंगे। दूसरी ओर, राजपूत और उत्तर भारतके लोगोंका धार्मिक उत्साह पंजाबके लोगोंकी अपेक्षा अधिक तीव्र था। हम पहले कह ही चुके हैं कि पंजाबमें हिन्दू धर्म-भावना हमेशा कमजोर रही है और है। सरस्वती, यमुना और गंगाका प्रदेश हिन्दू धर्मकी जन्मभूमि होनेके कारण हिन्दू-धर्मकी भावनाका सुदृढ़ केन्द्र था और आज भी है। इसलिए हमारा तो मत यही है कि दोनों पक्षोंमें इस समय धार्मिक भावना एकसी प्रबल थी।

इस उच्छेदका सबसे मुख्य कारण है राजपूतोंका आपसका युद्ध। माना कि राजपूत राजवंश प्रायः अपना राज्य बढ़ानेके लिए आपसमें युद्ध नहीं करते थे, फिर भी अपना प्राधान्य स्वीकार करानेके लिए तो जरूर वे वार वार लडते थे। इसी समयका उदाहरण लीजिए। पृथ्वीराजने केवल अपना बडप्पन जतानेके लिए, प्राधान्य स्थापित करनेके लिए, अपने पडोसी राष्ट्रोंपर—गुजरात, बुंदेलखंड और कन्नौजपर—चढाई की थी। वे लडाइयां हमेशा बड़ी भीषण होती थीं। वस्तुतः वे यूरोपीय राष्ट्रोंके आपसी युद्धोंकी तरह बहुत समयतक चलती रहती थीं, अतः उनमें दोनों ओरके असंख्य वीर मारे जाते थे। इस कारण इन चारों राष्ट्रोंकी, अर्थात् दिल्ली, कन्नौज, बुंदेलखंड और गुजरातकी युद्ध शक्ति बहुत कम हो गयी थी, और प्रत्येक राष्ट्र अलग अलग अपने समान शत्रुसे लड लडकर बरवाद हो गया। आपसी लडाई राजपूतोंका हमेशाका दोष है। राजपूतोंने तोपखानोंकी ओर ध्यान नहीं दिया, इस कारण आधुनिक युद्धोंमें भी वे अक्सर बलहीन ही रहे। तथापि इतने पर भी यदि वे अपनी तमाम शक्तियोंको एकत्र कर लेते तो मुगलोंको कभी हीं मार भगाते, ऐसा मनूचीने अपनी बखरमें स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया है। इसी प्रकार मराठोंकी भी, अंग्रेजोंकी नहीं, दाल उनके सामने नहीं गल पाती क्योंकि मराठोंका तोपखाना यूरोपियनोंके अधीन था। राजपूतोंको इस बातकी खबर अपने दूतों द्वारा जरूर हो गयी होगी कि शहाबुद्दीन समस्त उत्तर भारतको जीतनेकी महत्वाकांक्षा रखता है। इसलिए कमसे कम उस समय तो जरूर उन्हें आपसी झगडोंको अलग रखकर हिलमिल कर उसके प्रतिकारका उपाय सोच लेना चाहिए था। सबको निगल डालनेवाले इस सामान्य

शत्रुका प्रतिकार करनेके लिए भी उन्होंने अपने आपसी झगड़ोंको अलग रखकर संघटन नहीं किया और इसका फल उन्हें भोगना पड़ा। वे सभी, एकके बाद एक, बरबाद हो गये।

इस समय भारतवर्षकी स्थिति ठीक वैसी हो थी जैसी कि अठारहवीं सदीके अन्तमें जर्मनीकी थी। उस समय जर्मनीमें भी अनेक छोटे छोटे किन्तु प्रबल राज्य थे। और उनमेंसे प्रत्येकका शासक इस बातका प्रयत्न करता था कि उसे पवित्र रोमन साम्राज्यके सम्राट्का सम्मान मिल जाय। और इसी तरह वह भी दूसरे जर्मन राज्योंको नष्ट करनेका नहीं, उन्हें नीचा दिखानेका उद्योग करता था। भारतमें भी वही हो रहा था। प्रत्येक राजा चक्रवर्ती बननेकी धुनमें था और अन्य राजाओंको अपने मांडलिक बना लेना चाहता था। इसका फल यह होता था कि अन्य राज्य तो बलहीन होते ही थे, साथ ही स्वयं जेता भी बलहीन होता था। क्योंकि उसका राज्य और आय न बढ़नेके कारण उसकी शक्ति भी नहीं बढ पाती थी। मालवेन्द्र भोजका ही उदाहरण लीजिये। उसने अपने आसपासके अन्य राजाओंको दबाकर अपने आपको मालव चक्रवर्ती कहला लिया। उसी प्रकार चेदीके कर्ण और गुजरातके कुमारपालने भी चक्रवर्ती अथवा सम्राट् बननेकी कोशिश की। इस कालमें गाहडवाल और चौहानोंके बीच कोई तीस वर्षतक इस चक्रवर्तित्वके लिए कशमकश होती रही। पहले पहल विजयचन्द्र और विग्रहराजके बीच यह चढ़ा-ऊपरी शुरू हुई और बादमें पृथ्वीराज तथा जयचन्द्रके बीच। फलतः दोनों राष्ट्र बलहीन हो गये। रासोमें लिखा है कि जयचन्द्रकी कन्या संयोगिताका ही हरण करनेमें पृथ्वीराजके सौ सामन्तोंमेंसे ६० सामन्त मारे गये। इस हालतमें यदि शहाबुद्दीनके सामने सभी राज-

पून राजवंश पराभूत हो गये तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। ऐसी ही परिस्थितिमें जर्मनीके वे छोटे छोटे राज्य भी नेपोलियनके सामने पराजित हो गये।

परन्तु जर्मनीकी वह पराजय चिरस्थायी नहीं थी। वह हमेशाके लिए पराधीन नहीं हुआ। इसके विपरीत उत्तर भारत हमेशाके लिए नेस्तनाबूद हो गया। इसलिए हमें जो कारण ढूंढ़ निकालना है वह ऐसा होना चाहिये जो इस थोड़े समयकी पराजयकी नहीं; चिरकालीन पराधीनताकी गुत्थीको सुलझा सके, जो यह बता सके कि उस समय भारत अपने पैरोंपर क्यों खड़ा नहीं रह सका। हमारा ख्याल है कि उस समय भारत वर्षमें जातिबन्धन अधिक दृढ़ हो गये थे, यही इस अधःपातका कारण है। सामान्य निरीक्षणके विभागमें तो हम यह बात दिखावेंगे ही कि इस काल-विभागके आरम्भमें जाति-बन्धन बहुत शिथिल थे। किन्तु बारहवीं सदीके अन्तमें वे बहुत कठोर हो गये। हिन्दू जातिकी वर्तमान जाति-व्यवस्था, उसके असंख्य उपभेद और उन उपभेदोंके पुनः बारीक बारीक भेद, ये सब उसी समय पैदा हुए। क्षत्रिय पहले वैश्य स्त्रियोंसे शादियाँ करते थे और ब्राह्मण लोग क्षत्रिय तथा वैश्य स्त्रियोंसे। कभी कभी इसके विरुद्ध भी हो जाया करता था। परन्तु अब तो प्रत्येक जाति और उप-जाति अपने ही अन्दर विवाह करने लग गयी। रोटी और बेटी व्यवहारमें पहले जो स्वाधीनता थी उसके कारण भिन्न भिन्न वर्गोंके बीच पारस्परिक सहानुभूति थी। वह इस नियन्त्रणके कारण नष्ट हो गयी और उसके स्थान पर अब उदासीनता अथवा द्वेष उत्पन्न हो गया।

परन्तु जाति-बंधनोंके कड़े होनेका इससे भी हानिकर परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रोंकी युद्ध करनेकी शक्ति बहुत

घट गयी। अब भी इसके कारण भारतकी जो शक्ति कम हो रही है इसे हम देखकर भी भलीभाँति नहीं देखते हैं। तैंतीस करोड़ लोगोंके राष्ट्रको चार करोड़ जन संख्यावाला एक छोटासा राष्ट्र अपनी अधीनतामें कैसे रख सकता है, यह बात अबतक सारी पृथ्वीको आश्चर्यमें डाले हुए है। परन्तु यह हमेशा ध्यानमें रखना होगा कि भारतवर्षमें लड़ाकू जातियोंकी सख्या पूरी चार करोड़ भी नहीं होगी। ब्रिटेनमें युद्धकी भरती करनेके लिए समस्त भूमि अर्थात् पूरी चार करोड़की जन-संख्या है। परन्तु यहां तो पजाबको छोड़कर अन्य सभी प्रान्तोंमें जनसंख्या स्वभावतः आर्य और द्रविड़ इन दो भागोंमें बंट जाती है। और फिर उनमें भी जातिके अनुसार लड़नेवाले और न लड़नेवालेके इस तरह भेद होते हैं। भारतमें द्रविड़वंशी लोगोंकी संख्या आधेसे भी अधिक है। और उनमें भी ऐसे ही लोग अधिक हैं जो लड़नेवाले नहीं हैं। आर्यवंशियोंमें भी प्राचीन परम्परा तथा पेशेके ख्यालसे केवल क्षत्रिय ही लड़नेके लिए तैयार रहते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि भारतकी समस्त जनसंख्याका केवल दसवां हिस्सा ऐसा होगा जो लड़ने योग्य है और युद्धके लिए तैयार तो उससे भी कम लोग रहते हैं। शेष नौ हिस्से स्वभावतः अथवा परम्परासे लड़नेमें अयोग्य हैं, और किसी भी विदेशी विजेता अथवा राज्यकर्ताके सामने सिर झुकाकर उसकी सत्ता स्वीकार कर लेनेवाले हैं। आगे चलकर हम यह भी बतायेंगे कि मूलतः भारतमें राष्ट्रकी कल्पना तो थी किन्तु वह स्थायी नहीं रही। और देशकी आम जनताने बाहरके विजेताओंका कभी विरोध नहीं किया। विशेषतः इस समय जातिबंधन अधिक दृढ़ हो जानेके कारण आपसी झगड़े बार बार होने लगे

और स्वातन्त्र्यके लिए लड़नेवालोंकी संख्या बहुत घट गयी। अतः राजपूतोंके हारते ही सारे देशने बिना किसी प्रकारका विरोध किये विदेशी सत्ताको मान्य कर लिया।

परन्तु प्राचीन स्मृतिकारोंसे यह बात छिपी न थी कि जातिसंस्थाकी कठिन व्यवस्थाके कारण देशके स्वातन्त्र्यके लिए लड़नेवाले लोगोंकी संख्या कम हो जाती है। उन्होंने तो इसके प्रतिकारके लिए एक उपाय भी बतलाया है। उन्होंने लिख दिया है कि सामान्यत. तो शस्त्र धारण करना क्षत्रियोंका ही काम रहेगा। किन्तु जिस किसी समय धर्मपर आपत्ति आवे उस समय तीनों उच्च वर्णोंका यह कर्तव्य होगा कि वे धर्म रक्षाके लिए शस्त्रधारण करें। हमारी हिन्दू धर्म शास्त्रकी कल्प नाके अनुसार राजशासन शास्त्र भी धर्म में ही समाविष्ट है, और परधर्म अथवा पराज्यकी स्थापना भी धर्मपर आपत्ति ही है। मनुने कहा है "शस्त्र द्विजातिभि र्ग्राह्यं धर्मो यत्रोप रुध्यते।" परन्तु जब लोग पुश्त दर पुश्त शांति युक्ति पेशे करते रहते हैं, और शस्त्र न धारण करते हुए चुपचाप राजकीय सत्ताके सामने सिर झुकानेके आदी हो जाया करते हैं, तब उनसे यह आशा करना व्यर्थ है कि वे शस्त्र धारण कर सकेंगे। दूर जानेकी क्या जरूरत है। हम अभी पढ चुके हैं कि जब महम्मदगोरीने कन्नौजको जीता तब देशके बड़े-बूढ़े और रईस जमीन्दार उसके पास गये और उन्होंने खुशी खुशी उसकी सत्ता स्वीकार कर ली। साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उत्तर भारतकी जनता मुख्यतः द्रविड़ वंशी है, पंजाबके समान आर्यवंशी नहीं है।

इस समय भी यहाँ क्षत्रियोंकी संख्या बहुत कम है। मतलब यह कि शहाबुद्दीन तो अपनी फौजमें पंजाब, अफगानिस्तान,

खुरासान बल्कि तुर्किस्तान तकके देशोंसे सिपाही भरती कर सकता था। परन्तु राजपूतोंको अपनी फौजमें भरती करनेके लिए बहुत कम जन संख्यामेंसे सिपाही चुनना पड़ता था। इसलिए सब जन समाजने मिलकर विदेशी सत्ताका विरोध नहीं किया। यहाँपर यह कह देना जरूरी है कि आजकल जब देशकी स्वतंत्रतापर कोई आपत्ति आती है तब पाश्चात्य देशोंमें फौजी भरतीके लिए देशकी समस्त जनसंख्याका उपयोग होता है। उदाहरणके लिए जर्मनीको ही लीजिये। उसने गत महायुद्धमें सत्तर लाख सिपाही अपनी जनसंख्यामेंसे देशके लिए लड़नेको खड़े किये थे। वहाँपर राष्ट्रीय भावना इतनी प्रबल है कि देशके प्रत्येक स्त्री पुरुषने राष्ट्रीय संकटके समय उसे टालनेके लिए अपनी अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न किया। इस दृष्टि से यदि हम उत्तर भारतका विचार करते हैं तो स्थिति बिलकुल विपरीत दिखाई देती है। फौजी भरतीके लिए उपयोगमें आने योग्य केवल एक ही जाति, क्षत्रिय जाति, थी। यह सत्य है कि कुछ वैश्य और ब्राह्मण उस समय जरूर लड़े थे। परन्तु इन अपवादोंसे तो यह मुख्य सिद्धान्त ही सिद्ध होता है कि उस समयके वैश्य और ब्राह्मण सामान्यतः आज कलके समान ही लड़नेके अयोग्य थे। गुप्त, वर्धन, दाहर अथवा ललियाओंके समयकी परिस्थिति जुदी थी। दूसरे, प्रचलित झगड़ों और युद्धोंके लिए लोगोंमें जरा भी आत्मभाव नहीं था। अर्थात् बिना किसी प्रकारके विरोधके वे विदेशी सत्ताको स्वीकार करनेके लिए तैयार थे। उदासीनताका एक और भी कारण था। वह यह कि ये नवीन मुसलमान राजा महमूदके समान अपने धर्मका प्रचार करनेका जोरोंसे प्रयत्न भी नहीं करते थे। आगे चलकर हम इस बातका वर्णन करेंगे।

उत्तर हिन्दुस्थान, विशेषतः मध्यदेश के निर्वीर्य होनेका एक और भी कारण था। इन युद्धोंमें जितने भी स्वातंत्र्य प्रिय शूरवीर राजपूत बचे थे, उन्होंने वहीं रहकर अपनी स्वाधीनताके लिए लड़नेका प्रयत्न नहीं किया। वे मध्यदेशको छोडकर राजपूतानेके रेगिस्तान और पहाड़ोंमें या अन्यत्र जा बसे और वहां नवीन राज्योंकी स्थापना कर दी। इस कारण उत्तर भारत इतना बलहीन हो गया कि वह न तो इन विदेशियोंका राष्ट्रीय विरोध करनेके काबिल रह गया और न वह आगे चलकर कभी अपना सिर ऊंचा उठा सका। यूरोपके छोटे छोटे राष्ट्रोंतकने दूसरोंके द्वारा गुलाम बनाये जानेके प्रयत्नोंका किस तरह हमेशा विरोध करके यश प्राप्त किया है, इसका कारण हम ऊपर बता चुके हैं। इसके विपरीत भारतके बडे बड़े देशोंको, सांबर और कन्नौजके राज्योंतकको, मुसलमानोंने हमेशाके लिए नेस्तनाबूद कर दिया। ये राज्य अथवा ये देश इतने बडे बड़े थे कि ये अकेले भी मुसलमानोंसे लडकर उनको परास्त कर सकते थे। पर बात यह थी कि उन्होंने राष्ट्रीय विरोध कभी नहीं किया। केवल राजपूतोंने विरोध किया, किन्तु आपसी युद्धोंके कारण उनका संख्या बल घट जानेसे वे भी यशस्वी नहीं हो सके। पोल लोगोंका सर्वश्रेष्ठ वीर सोविएस्की तुर्कोंके बढते हुए सैन्यप्रवाहको रोक सका, इसका कारण दैवयोग नहीं था। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि पोलेण्डके लोग यूनानियोंकी अपेक्षा अधिक वीर थे। परन्तु दूसरा एक यह भी बडा महत्वपूर्ण कारण था कि वे सर्व राष्ट्रशक्तिसे लडे थे, इसीलिए उनको विजय मिली। अगर हम क्षणभरके लिए मान लें कि उत्तर भारतमें पृथ्वीराज और जयचन्दकी पराजय केवल दैवयोगके कारण हुई, फिर भी यदि

देशके सभी लोग उस विदेशी सत्ताका विरोध करते तो वह कदापि पराधीन नहीं होता।

हमारा ख्याल है कि सर्वराष्ट्रीय विरोधकी आवश्यकता और शक्तिका अनुभव भारतमें पहले पहल शिवाजीने किया। उसकी उदात्त कल्पनासे प्रेरित होकर महाराष्ट्रने सार्वराष्ट्रीय विरोध किया और औरंगज़ेबसे प्राणान्तिक युद्ध किया। महाराष्ट्रको कुचलनेके लिए औरंगजेबने मुगल साम्राज्यकी सारी शक्ति लगा दी। किन्तु राजारामके समय ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा शूद्र तीनोंने मिलकर एक दिलसे युद्ध किया और औरंगजेबकी समस्त शक्तिका खासा प्रतिकार ही नहीं किया बल्कि उसे बिलकुल बेकाम कर दिया। इस तरह शिवाजी तथा राजारामके समयके मराठोंने भारतवर्षके इतिहासमें सर्वराष्ट्रीय विरोध किया और स्वाधीनता प्राप्त कर उसकी रक्षा की। पश्चिममें आजकल यह सिद्धान्त माना जाने लगा है कि कोई बड़ीसे बड़ी विदेशी सत्ता सर्वराष्ट्रीय विरोध करनेवाले किसी देशको उसकी इच्छाके विपरीत, चाहे उसकी जनसंख्या कितनी ही थोड़ी क्यों न हो, अपने अधीन नहीं कर सकती। भारतवर्षमें मराठोंने इस सिद्धान्तको चरितार्थ कर दिखाया। जबतक भारतवर्षपर केवल हिन्दू राजा ही—फिर वे चाहे किसी भी कुलके हों—राज्य करते थे, तबतक वह सर्वराष्ट्रीय विरोधकी आवश्यकता नहीं समझ सकता था। जब तीन सदियोंतक मुसलमानोंका विदेशी राज्य भारतपर रह चुका, तब मराठोंको पहले पहल यह कल्पना सूझी। आगे चलकर तो सिक्खोंने भी धार्मिक संघटन करके मराठोंका अनुकरण किया। आज भी यदि इस अंग्रेजी सल्तनतके अधीन भारतीयोंको स्वातंत्र्य प्राप्त करना है तो

उन्हें सर्वराष्ट्रीय प्रयत्नकी आवश्यकता भलीभाँति समझ लेनी चाहिए।

अस्तु, यदि इस इतिहाससे हम भविष्यके लिए कोई पाठ पढ़ना चाहते हैं तो वह यही है कि राजपूतोंको एकत्र होकर एकताके महत्वको समझ लेना चाहिए। और समस्त हिन्दू जातिको भी, यह जानकर कि इन जाति संस्थाओंके कारण हम लोगोंमें फूट पैदा हो गयी है, हिल मिल कर काम करना सीख लेना जरूरी है। यह सत्य है कि अब हिन्दुओंसे यह कहना असम्भव है कि अपनी जातियोंको नष्ट कर दो क्योंकि आज हजारों वर्षसे भारतमें जो उत्क्रान्ति हो रही है उसके कारण जातिसंस्था यहाँ उत्पन्न होकर बहुत बढ़ गयी है। इस लिए हिन्दुओंसे हम यह तो नहीं कह सकते कि वे अपनी जातिको, कमसे कम चातुर्वण्यको, छोड़ दें। दूसरे, इसका यह भी एक कारण है कि इस जाति संस्थाके ही कारण आज क्षत्रियोंमें वह वीरोदात्तता तथा शौर्य पाया जाता है। यह आनुवंशिक संस्कारका फल है। राजपूत लोग अपनी जातिको शुद्ध रखनेकी जो इतना चेष्टा करते हैं वह उचित ही है। परन्तु उन्हें एक बात तो जरूर करनी चाहिए। सभी प्रान्तोंके राजपूतोंको एक होकर बराबरीके नाते रहनेका यत्न करना चाहिए। इससे भी अधिक आवश्यकता है इस बातकी कि समस्त हिन्दू लोग अपने अनेक जातीय भेद भावोंको एक बार ही भुलाकर समानताके नामपर एक स्थानपर इकट्ठे हों और अपनी मुख्य जाति या वर्णको कायम रखते हुए भी एक होनेका प्रयत्न करें। भिन्न भिन्न उपजातियाँ तो काल्पनिक कारणोंसे उत्पन्न हुई हैं। अतः उन्हें नष्ट करनेमें कोई हर्ज नहीं। राजनीतिक ध्येयके लिए स्वतन्त्र और भिन्न भिन्न जातियाँ

तथा प्रान्त जरूर एकत्र हो सकते हैं। इस बातका अनुभव सबसे पहले अमेरिकाकी रियासतोंने किया और उसपर अमल करके दिखा दिया। इसी प्रश्नको जर्मनीने भी हल कर दिखा दिया था। इसलिए कोई कारण नहीं कि हिन्दू भी इस तरह एक होकर क्यों सर्वराष्ट्रीय प्रयत्न न करें। भविष्यमें तो हमारे सामने अब यही काम है कि भिन्न भिन्न वर्णोंको कायम रखकर भी हम राजनीतिक एकता संपादित कर लें। हमारा प्राचीन इतिहास भी हमें यही शिक्षा देता है। उसे पूर्ण करना असम्भव भी नहीं। यदि इसके लिए हिन्दुओंको आपसमें रोटी व्यवहार, अर्थात् खानपानमें छुआछूतका परहेज छोड़ने तथा किसी एक देवताको राष्ट्रीय भक्तिकी आवश्यकता हो तो हमें उसे जरूर करना चाहिए, अस्तु। हम अन्तमें भी यह कह देना चाहते हैं कि उत्तर हिन्दुस्थानकी लम्बी पराधीनताके मुख्य कारण उसके इतिहासके अवलोकनसे ये दो ही दिखाई देते हैं—राजपूतोंकी आपसी फूट और जातियोंका सख्त बन्धन। राजपूतोंकी यह फूट मानो भारतके दो बाहुओंकी फूट है और सख्त जातीय बन्धन वह विष है जिसके कारण देशकी जनताके नौ हिस्से परकीय सत्ताका विरोध करनेमें कमजोर, अथवा अनिच्छुक हो जाते हैं।

छब्बीसवाँ प्रकरण।

उत्तर भारतके पतनके आनुषंगिक कारण।

हमारे मतानुसार उत्तर भारतके पतनके मुख्य कारण दो थे—(१) भिन्न भिन्न राजपूत राजाओंमें आपसी लड़ाइयां और उसके कारण उत्पन्न होनेवाली दुर्बलता। (२) सुदृढ़

जातीय बंधन। इसके कारण राजपूतोंको छोडकर अन्य जातियोंमें युद्ध-विषयक अनिच्छा तथा असमर्थता उत्पन्न हो गयी। पिछले प्रकरणमें हम इसका विस्तृत विवेचन कर ही चुके हैं। इस प्रकरणमें हम उन आनुषंगिक कारणोंका विवेचन करेंगे जिनकी वजहसे उन हिन्दू राज्योंके पतनमें सहायता पहुँची। इन कारणोंको आनुषंगिक हमने इसलिए कहा है कि ये स्वतंत्ररूपसे उनका उच्छेद नहीं कर सकते थे। यहांपर कही गयी कितनी ही बातोंका निर्देश देशके सामान्य निरीक्षणके भागमें भी किया जायगा। परन्तु इन कारणोंके विवेचनमें यदि उनका भी स्वतंत्र रूपसे उल्लेख कर दें तो वह पुनरुक्ति दोष न होगा।

(१) सबसे पहले हम इस बातको पुनः कह देना चाहते हैं कि सभी राज्योंके लोगोंके अन्तःकरणमें राष्ट्रीय भावनाका एक दम अभाव था। भारतमें, बल्कि यों कहना चाहिए कि समस्त एशिया भरमें, इस समय केवल राज्य थे, राष्ट्र नहीं। लोगोंमें यह भावना उत्पन्न नहीं हुई थी कि राज्य हमारा है, और राजा भी हमारा ही होना जरूरी है। इसके विपरीत यहाँ तो इस कल्पनाका साम्राज्य था कि देश राजाका है और जिसे परमात्मा सत्ता दे उसीको राजा होना चाहिए। इस कल्पनाके कारण राष्ट्रीय भावनाका उत्पन्न होना असम्भव था। उसी प्रकार देश-प्रेमका गुण भी उत्पन्न होना असम्भव था (पुस्तक १ प्रक० ७ और पुस्तक ५, प्रक० ४)। हाँ, राजभक्ति अवश्य उत्पन्न होती थी पृथ्वीराज रासोमें तो राजभक्तिका ही बार बार उपदेश दिया गया है। मालिकके लिए प्राणोंको भी समर्पण कर देना, यही राजपूतोंका वीर धर्म बताया गया है। अर्थात् इसका यह अर्थ हो सकता था कि यदि पहले मालिक-

के स्थानपर दूसरा मालिक भी आ जाय तो वीर राजपूतको उसके लिए भी अपने प्राणोंको समर्पण करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। इसी कल्पनाके कारण इस देशमें ऐसे क्षत्रिय भी पाये जाते हैं जिन्होंने मुसलमानोंके ही लिए नहीं वल्कि अन्य मालिकोंके लिए भी प्राण अर्पित कर दिये। जिस जातिका स्वभाव-धर्म राज्य करना था उसमें भी जब यही बात पायी जाती थी, तब यदि अन्य जातियोंकी भी यही भावना थी तो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है ?

(२) राष्ट्रीयताकी वर्तमान कल्पनामें एक देशमें एक भाषाका होना भी समाविष्ट है। और यह सत्य है कि यह महत्वपूर्ण बात उस समयके राज्योंमें भी उत्पन्न हो चुकी थी। गुजरात, राजपूताना, अंतर्वेद, बंगाल, महाराष्ट्र, तैलगण तामिलनाडू, इन प्रान्तोंमें भिन्न भिन्न भाषाएँ अर्थात् वर्तमान गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, बंगाली, मराठी, तैलंगी, तामिल और मलयाली इत्यादि स्वतंत्र भाषाएँ उत्पन्न हो गयी थीं। परन्तु ये देश राष्ट्र नहीं बने और न उनके एक भाषाभाषी होनेके कारण उनमें राष्ट्रीयता ही उत्पन्न हो सकी। इसके विपरीत उनमेंसे प्रत्येक प्रान्तमें अनेक राज्य थे और वे हमेशा आपसमें एक दूसरेसे लड़ते रहते थे। इसका कारण राष्ट्रकी उपर्युक्त गलत कल्पना ही है। इसके विषयमें हम आगे चलकर विस्तार पूर्वक कहेंगे। परन्तु यहाँपर इतना कह देना जरूरी है कि इन प्रान्तोंके अन्दर इनकी अपनी एक भाषा होनेपर भी राष्ट्रीय भावना उत्पन्न नहीं हुई।

(३) राष्ट्रीय भावनाके अभावके कारण बाहरसे आकर देशमें बसनेवाले परकीय लोगोंका किसीने कहीं विरोध ही नहीं किया। काश्मीर और तिब्बतको छोड़कर, क्योंकि

उनकी सीमाएँ दुर्लंघ्य थीं, अन्य प्रान्तोंमें कहीं भी विदेशियोंके आकर वसनेकी मनाही नहीं की गयी। वलिक इस बातकी तरफ किसीका ध्यान भी नहीं था। इसलिए मुसलमान लोग भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें स्वतंत्रता पूर्वक आते जाते रहते थे, और जहां चाहते अपनी वस्ती करके रहते थे। इस तरह हम देखते हैं कि नहरवाला, खंबात, सोपारा, महाराष्ट्र और कन्नौजके सारे राज्य भरमें मुसलमान आकर बस गये थे। *

फिर ये मुसलमान इस बातका भी हठ करते थे कि हमारा न्याय हमारे ही अधिकारियों द्वारा किया जाय। यह बात मुसलमानी लेखकोंके लेखोंसे ही सिद्ध होती है। थानाके शिलालेखके हजमन-नगर त्रिवर्ग इस पूर्वोल्लिखित शब्दसे भी इस कथनकी पुष्टि होती है। आजकलके पश्चिमी राष्ट्रोंने इस बातकी यथार्थता समझ ली है कि राष्ट्रमें विदेशियोंके आजानेके कारण उसकी शक्ति घट जाती है और तदनुसार वे अन्य देशोंके लोगोंके आने जानेपर नजर भी रखने लगे ह। परन्तु राष्ट्रीय भावनाके अभावके कारण हिन्दू-समाज इस बातको नहीं समझ सका, अथवा विदेशियोंपर कड़ी नजर रखना उसे जरूरी नहीं मालूम हुआ। इस बातका सबूत तो नहीं है कि भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें मुसलमानोंकी वस्ती कितनी हो गयी थी, परन्तु वे बस जरूर गये थे और इसलिए उन राज्योंका उच्छेद करनेमें विजेताओंको बडी सहायता मिली।

---

* बनारस गजेटियरमें लिखा है कि बनारसमें कई मुसल्मान मुहल्ले ऐसे हैं जो मुसलमानोंके बनारसको जीतनेके पहलेके हैं। संभव है यह दंतकथा विश्वसनीय न हो। चन्द्र, गोविन्द चन्द्र अथवा जयचंदने यद्यपि उन्हें इजाजत न भी दी होगी तथापि वे कदाचित प्रतिहारोंके समयसे ही आकर बस गये होंगे।

(४) यह भी कह देना जरूरी है कि राष्ट्रके उच्छेदमें कुछ भोली भाली मूर्खतापूर्ण धारणाएँ भी कारणीभूत होती हैं और हिन्दुस्तानके उच्छेदमें तो ये दुधारी तलवारकी तरह दोनों ओरसे काम करती थीं। मुसलमानोंका यह विश्वास था कि उनकी विजय बनी बनायी है। उत्बीने कुरानका वाक्य उद्धृत किया है कि "जो लोग ईश्वरके खिलाफ हैं उनपर वह कोप करता है। और वह कदापि टाला नहीं जा सकता।" इसके विपरीत हिन्दुओंका यह विश्वास था कि उनकी पराजय निश्चित है। कलियुगमें भारतवर्ष म्लेच्छोंके अधीन होगा, इस पूर्व विश्वासके कारण कई अनर्थकारी परिणाम हुए हैं जिनकी साक्षी स्वयं इतिहास देता है। मेक्सिकोके अज़टेक लोगोंकी यह पूर्व-धारणा हो गयी थी कि पूर्वकी तरफसे आनेवाले लोग उनको जीत लेंगे। जिस समय गॉथ और व्हण्डल, इन जंगली लोगोंने रोम साम्राज्यका विध्वंस कर डाला उस समय ईसाइयोंको ऐसा जान पड़ा मानो अब, जैसा कि बाइबिलमें लिखा है, संसारका अन्त हुआ चाहता है और उन्होंने उन आक्रमण-कारियोंका जरा भी विरोध नहीं किया। यद्यपि हमारे पास इसका कोई लिखित प्रमाण मौजूद नहीं है तथापि हमारा ख्याल है कि उस समय हिन्दुओंको सम्भवतः ऐसा मालूम पड़ा होगा कि यह नवीन परिवर्तन अनिवार्य है और इस मूर्खतापूर्ण धारणाके कारण उन्होंने उसका कुछ विरोध नहीं किया।

(५) प्रत्येक राष्ट्रका यह पहला कर्तव्य है कि वह एक काफी बड़ी और शक्तिशाली सेना हमेशा अपने पास रखे। मालूम होता है, इस समयके हिन्दू राज्योंने इसकी उपेक्षा की। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पूर्वकालमें भारत इस विषयमें कीर्ति प्राप्त कर चुका था, किन्तु सम्भवतः इस समय वह नष्ट

होगयी थी । पहले हर्ष और भोज (प्रतिहार) के समय जैसी स्थायी सेनाएँ रहती थीं वैसी इस समय कदाचित् किसी भी राष्ट्रके पास नहीं थीं । राज्यकी फौज हमेशा सामन्तोंके द्वारा लाये गये दलोंसे बनती थी । ये सामन्त यद्यपि पूर्ण रूपसे तो नहीं किन्तु अधिकांशमें इंग्लैंडके वेरनोंके समान थे । राज्यके उपयोगके लिए वे एक निश्चित संख्यामें सिपाही रखते थे और उनका खर्च अपने पाससे देते थे । मोगलोंके समय भी शायद यही व्यवस्था थी । हजार हजार या पांच पांच हजार सिपाहियोंको रखनेवाले सरदार थे । शायद पृथ्वीराजके पास राज्यकी स्वतंत्र स्थायी फौज थी । परन्तु यह हुजूर फौज शायद थोड़ी ही रही होगी । हम जानते हैं कि पानीपतके युद्धके बाद पेशवाओंने बड़ी हुजूर फौज रखनेकी ओर ध्यान नहीं दिया । राजनीति कुशल अहिल्याबाईने नाना फडनवीसको इस बातके लिए कई बार सचेत किया । कहनेकी आवश्यकता नहीं कि संख्या और योग्यताके ख्यालसे सामंतोंके द्वारा एकत्र की गयी सेनापर हमेशा निर्भर नहीं रहा जा सकता । महमूद और महमद गोरीकी स्वतंत्र फौज हिन्दू राजाओंकी उस फौजकी अपेक्षा कहीं अधिक विश्वसनीय थी जिसे उन्होंने सामन्तोंके द्वारा जल्दीमें एकत्र कर लिया था, क्योंकि सामन्त अथवा फौजी सरदार प्रायः पूरी शक्तिके साथ नहीं लड़ते । फिर, उनको अपनी अपनी जागीर बचानेका भी मोह होता है । जब कोई विदेशी सत्ता अधिक प्रबल सी मालूम होती है, तब वे उसकी तरफ झुककर अपनी जागीरें संभाले रखनेकी ही चिंता करते हैं । यह प्रत्यक्ष इतिहासका अनुभव है । मतलब यह कि इस समय हिन्दू राज्यमें स्वतंत्र और प्रबल स्थायी सेनाएँ हमेशा तैयार नहीं रहती थीं और

हमारा ख्याल है कि उनके उच्छेदके कारणोंमें यह भी एक कारण था।

(६) हमें बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है कि भारतवर्षकी बुद्धि इस समय युद्धशास्त्रकी श्रोर साथ ही राष्ट्र-शास्त्रके सच्चे सिद्धान्तकी भी उपेक्षा कर रही थी। ब्राह्मण श्रौर क्षत्रियोंकी बुद्धि इस समय अलंकार शास्त्रकी श्रोर झुकी हुई थी। अतः उसने उससे अधिक उपयोगी शास्त्रके आवश्यक अध्ययनकी अवहेलना की। संयोग-विप्रलम्भ शृङ्गार-में नायिकाओंके बारीक भेद, काव्यके रसादि गुण, तथा दोष इत्यादि बातोंको छानबीन करने तथा भाषा सौन्दर्यकी वृद्धिके प्रयत्नमें देशके उत्तमोत्तम मस्तिष्क लगे हुए थे। यहाँ तक कि राजा लोगतक काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्रपर विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखनेमें अपना समय लगाते थे। इस कालमें इस शास्त्र पर लिखे गये ग्रन्थोंसे हिन्दुओंकी बुद्धि-सूक्ष्मता तो जरूर सिद्ध होती है, परन्तु उन्हें इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात-की तरफ अपना ध्यान लगानेकी ज़रूरत थी। राजाओंकी दृष्टि श्रौर सम्पत्ति सेनानायकोंकी अपेक्षा राजकवियोंकी श्रोर अधिक झुकती थी। श्रौर रणभूमिकी अपेक्षा रंगभूमि ही उनका अधिक समय ले लिया करती थी। इस अलंकार-शास्त्र के सूक्ष्म अभ्यासका फल यह भी हुआ कि लोगोंकी रुचि श्रौर नीति दोनोंका प्रवाह दूषित हो गया। इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव हमें राजशेखरकी कर्पूरमंजरीसे लेकर नयचन्द्र सूरीकी रम्भा-मंजरी तकके काव्योंमें बहनेवाले मस्त शृङ्गारकी बाढ़को देखनेसे ही हो जायगा। नियमनिष्ठ ब्राह्मणोंको दिये गये दानपत्रोंके सदृश कन्नौजके दरबारी लेखों तकके आरम्भमें शृंगाररसका ही श्लोक पाया जाता है। इसीसे तत्कालीन

बिगडी हुई लोकरुचिका अनुमान हो सकता है। वस्तुतः इस कालमें ऐशो आरामका बढ जाना अनिवार्य भी था, क्यों कि पिछले कालविभागके अंतमें, जैसा कि दूसरे भागके अंतिम प्रकरणमें कहा गया है, हिन्दू राज्य अपने वैभवकी चरम सीमाको पहुँच गये थे। जब मनुष्य उत्कर्षकी चरम सीमापर पहुँच जाता है, तब उसकी नैतिक अवनति शुरू होती है और क्रमश उसकी मानसिक तथा शारीरिक सामर्थ्य घटने लग जाती है। यह बात हम इतिहासमें भी देखते है। रोमन, अरब, मुगल तथा अन्य लोगोंमें भी तो यही पाया गया था। इसलिए इस कारणसे भी बारहवीं सदीके अन्तमें हिन्दू राज्य कमजोर हो गये थे।

(७) उत्तर भारतके राजपूत राज्योंके उच्छेदके कारणोंकी मीमांसा करते समय हमें इस बातकी ओर भी पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना है कि बौद्ध धर्मके अहिंसा तत्वका पुन रुदय इस कालमें हुआ था। इस समय नवीन वैष्णव धर्मका उदय हुआ, जैन धर्मका अधिक प्रचार हुआ, और लिंगायत तथा अन्य कितने ही सम्प्रदायोंकी स्थापना हुई। इसी परसे हम ख्याल कर सकते है कि अहिंसाका कितना प्रभाव देशपर उस समय पड रहा होगा। उत्तर भारतके उच्छेदका मुख्य और प्रत्यक्ष कारण यह नहीं कि उस समय वैष्णवधर्म या जैन धर्मका अधिक प्रचार हुआ। हम इस बातको मानते हैं कि जिस प्रकार सिंधके पतनका प्रत्यक्ष कारण बौद्ध धर्म था, उस प्रकार यह उत्तर भारतके उच्छेदका प्रत्यक्ष कारण न था। फिर भी हम इस बातसे इनकार नहीं कर सकते कि इस समय हिन्दू समाजमें अहिंसा धर्मका अधिक प्रचार होनेके कारण वह अधिक शान्तिप्रिय तथा अहिंसा प्रेमी हो गया। सभी

धर्मनिष्ठ (शैव या वैष्णव) ब्राह्मणोंने, उसी प्रकार सभी वैश्योंने—चाहे वे शैव, वैष्णव या जैन रहे हों—प्राणिहिंसा-त्यागको ही धर्मका मुख्य तत्त्व मान लिया और, जैसा कि हमने आगे कहा है, उन्होंने पूर्ण रूपसे मांस भक्षण छोड़ दिया। इसके कारण राजपूतोंको छोड़ कर सारा समाज युद्धके प्रति अनिच्छुक और कमजोर हो गया। हमारा ख्याल है कि इन बातोंके कारण मनुष्योंके चित्तपर ऐसा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यहाँपर इसकी अधिक चर्चा करना आवश्यक है। राजपूतोंको छोड़ कर भारतवर्षके समस्त राज्योंका जन-समाज (ब्राह्मण और वैश्योंकी देखादेखी, तथा दारिद्र्यके कारण, शूद्रवर्ग भी) भारतके हाथियोंका सा हो गया। हाथी, उसके प्रचंड आकार और शक्तिको देखते हुए, स्वभावसे भीरु और सीधा होता है। उसका प्रतिकार करनेका शस्त्र तो सूण्ड ही होती है। वह भी नरम होती है और आसानीसे तोड़ी जा सकती है। हाथी हमेशा मृत्युसे डरता है। बारूदके ज़रासे विस्फोटसे भी वह अपने अंग सिकोड़ने लगता है। परन्तु हमें ध्यानमें रखना चाहिये कि हाथीको भी युद्धकला सिखायी जा सकती है और वह बारूदके सामने खड़े रहनेके लिए तैयार किया जा सकता है। उसी प्रकार शाकाहारी हिन्दूको भी युद्ध-कला सिखायी जा सकती है, और वह साहसी बना दिया जा सकता है। परन्तु यदि उसे ऐसी शिक्षा न दी गयी तो भीरु स्वभावका होनेके कारण उसे हर कोई जीत सकता है और अपने सामने झुका सकता है। इस कालके इतिहासमें शूर-वीर ब्राह्मण सेनापतियों और जैन वीरोंके कितने ही उदाहरण मिलते हैं। परन्तु सामान्य लोगोंके युद्ध-कलामें अभ्यस्त न होनेके कारण, तथा स्वभावतः

शान्तिप्रिय होनेके कारण भी, जब राजपूतोंकी पराजय हो गयी, तब सतलजसे लेकर ब्रह्मपुत्रतक और हिमालयसे लेकर विंध्याचलतक सभी हिन्दू राज्य पचीस सालके भीतर भीतर, किसी प्रकारका विरोध न करते हुए, मुसलमानोंके अधीन हो गये। इतिहास उन हिन्दुओंको, जो धार्मिक विश्वास के कारण मांसाहार नहीं करते, यह आदेश देता है कि वे अपने आपको शारीरिक तथा मानसिक शिक्षा द्वारा सामर्थ्यवान् बना लें। वे इस बातको खूब याद रखें कि इस संसारमें मानव-वंशकी भिन्न भिन्न शाखाओंके बीच युद्ध कभी बन्द नहीं हो सकता, अतः हमें अपने आपको इतना शक्तिमान् बना लेना चाहिए कि हम इन जीवन युद्धोंमें सम्मानपूर्वक भाग ले सकें और अपना अस्तित्व कायम रख सकें।

आठवीं पुस्तक ।

सामान्य परिस्थिति ।

पहला प्रकरण ।

जातियाँ और उपजातियाँ ।

जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, यह निश्चित करनेके लिए कि इस कालविभागके आरम्भमें हिन्दू भारतकी सामाजिक परिस्थिति कैसी थी, अल्बेरूनीका ग्रन्थ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। वह ई० स० १०३० में लिखा गया था। अल्बेरूनी मुलतानमें और पंजाबमें अन्यत्र भी हिन्दू लोगोंके बीच रहा था और वह बड़ा सूक्ष्मदर्शक भी था। परन्तु दुर्भाग्यवश उसने हिन्दूधर्मके कई ग्रन्थ स्वयं पढ़े थे, इसलिए वह पुस्तकोंमें पढ़ी हुई बातों तथा प्रत्यक्ष देखी हुई बातोंको मिला देता है। इसीसे अरबी आगन्तुकोंके लेखोंकी तुलनामें, जिन्हें हमने दूसरे भागमें उद्धृत किया है, अल्बेरूनीके कथन उतने विश्वसनीय नहीं मालूम होते। फिर भी इस कालविभागकी सामाजिक परिस्थितिका वर्णन देते हुए, हम यहाँ वही भाग उद्धृत कर देते हैं जो अल्बेरूनीने जात-पाँतके सम्बन्धमें अपने ग्रंथमें लिखा है। सौभाग्यवश वह ईरान और यूनानके इतिहाससे भी परिचित था, अतः यहाँकी बातोंकी तुलनामें वह पश्चिमी देशोंकी बात भी लिखता जाता है।

अल्बेरूनीने बतलाया है कि यूनानी और रोमन लोगोंमें ही नहीं, बल्कि ईरानके लोगोंमें भी प्राचीन कालमें जातियाँ उत्पन्न हो गयी थीं। "प्राचीन खुस्रू (बादशाह) ने इस तरहकी बड़ी बड़ी श्रेणियाँ उत्पन्न की थीं। वे किसी व्यक्तिके विशिष्ट सद्गुणोंके कारण या रिश्वत वगैरा देकर भी नहीं तोड़ी जा

सकती थीं। जब अर्देशिरने ईरानकी बादशाही पुनः स्थापित की तब उसने नीचे लिखे अनुसार जातियाँ और वर्ग पुनः कायम किये—(१) सरदार और राजपुत्र (२) जोगी, अग्निपुजारी और कानूनके पण्डित (३) वैद्य, ज्योतिषी और शास्त्रज्ञ (४) किसान और अन्य प्रकारके कारीगर। इन चारों वर्गोंमें भी अपनी अपनी सामान्य भिन्नताके अनुसार विशिष्ट गुणोंके आधारपर उपवर्ग भी किये गये थे। इसी प्रकारकी व्यवस्था हिन्दू लोगोंमें भी है। हम मुसलमान तो सब लोगोंको एकसा मानते हैं, केवल सद्गुणोंके अनुसार किसीको ऊँच नीच मानते हैं। इस कारण हम लोगोंमें और हिन्दुओंके बीच समझौता होनेमें बड़ी कठिनाइयाँ हैं।"

"हिन्दू लोग जातिको वर्ण अथवा रंग कहते हैं, और वे उसे उत्पत्तिके अनुसार मानते हैं। प्रारंभसे ही मुख्य जातियाँ केवल चार ही मानी जाती हैं। सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण, उसके नीचे क्षत्रिय है परन्तु यह ब्राह्मणोंसे अधिक नीचे नहीं समझा जाता। इसके बाद वैश्य और शूद्र वर्ण हैं। इन दो वर्गोंके बीच भी वैसा महान् अन्तर नहीं है। अनेक बातोंमें इनमें भेद होने पर भी ये सभी एक ही शहर या गाँवमें रहते हैं, बल्कि एक ही मकानमें भी शामिल रहते हुए पाये जाते हैं।" (सचाऊ भाग १ पृ० ९९-१०१)

इस लम्बे अवतरणसे पाठकोंको ज्ञात हो गया होगा कि हिन्दुओंकी जातियोंका यह वर्णन द्वितीय भागमें दिये हुए अरबी लेखकोंके लेखोंसे गृहीत अवतरणोंकी तरह ब्यौरेवार तथा उतना ही सत्य नहीं है। इब्न् खुरदादबाने क्षत्रियोंके जो दो भेद बताये हैं—राज्य करनेवाले और खेती करनेवाले क्षत्रिय (पुस्तक ५, प्रक० २), वे यहां पर नहीं दिये गये। बहुत

संभव है कि १०३० ईसवीतक पंजाबमें राजपूत इतनी तादाद-में मारे गये हों और उनकी हालत इतनी क्षुद्र हो गयी हो कि उनकी भिन्नता या विशेषता अल्बेरूनीके ख्यालमें भी न आ सकी। गाहड़वालके शिलालेखमें दिया हुआ पूर्वोल्लिखित वर्णन (पृ० ३३६) इस समयकी सामाजिक परिस्थितिके सम्बन्धमें विशेषतः सत्य मालूम होता है। अर्थात् क्षत्रिय कुल कमसे कम पंजाब और युक्तप्रान्तमें, सम्भवतः नष्टप्राय हो गये थे। वेदों-का अध्ययन बन्द हो गया था, तब चंद गाहड़वालने इन दोनों-की स्थापना की। दूसरे, यह भी सम्भव है कि अल्बेरूनीने किन्हीं धर्मपुस्तकोंके आधारपर यह कथन किया हो, प्रत्यक्ष निरीक्षण-से नहीं। इसके अतिरिक्त विवाहादिके विषयमें वह कुछ भी नहीं लिखता। इब्न खुरदादबा तो लिखता है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय अपने नीचेके वर्णोंकी लड़कियोंसे शादी करते हैं। इसके अनुकूल हमारे सामने स्वयं कवि राजशेखरके एक चौहान स्त्रीसे विवाह करनेका प्रत्यक्ष उदाहरण है। बहुत संभव है, अल्बेरूनीके समय (या आगे चलकर जाति बंधनोंके दृढ़ हो जाने पर) ऐसे मिश्र-विवाह बन्द हो गये हों। तीसरे, चार व-र्णोंके अन्तर्गत जातियोंका उल्लेख अल्बेरूनी बिलकुल नहीं करता। पर वे बहुतसी रही होंगी। इसके अतिरिक्त मुख्य मुख्य जातियोंके आंतरिक भेदोंका उल्लेख भी वह नहीं करता। शायद ये भेद उसके बाद उत्पन्न हुए होंगे।

ईरानी लोगोंकी जातियाँ सभी आर्यवंशीय थीं, इसलिए हिन्दुओंकी जातियोंसे वे भिन्न थीं। हिन्दुओंकी जातियाँ आर्य और अनार्य दोनों प्रकारके लोगोंके मेलसे बनी हैं। स्वभावतः ईरानियोंमें शूद्र वर्ण नहीं है। इसके अतिरिक्त हम यह भी नहीं जानते कि ईरानी जातियोंमें केवल धधोंके विषयमें ही प्रतिबन्ध

था, या विवाहके सम्बन्धमें भी । प्रतिलोम विवाह भारतवर्षमें तो बुद्ध कालके पहलेसे ही बन्द हो गये थे। अब इस कालमें अनुलोम विवाह बन्द हो गये। अन्तमें अल्बेरूनी लिखता है कि सभी जातियाँ एक ही मकान (lodging) में शामिल रहती हैं। शायद यह कथन पंजाबके विषयमें सत्य हो, क्योंकि वहाँ पर भिन्न भिन्न वर्ण होने पर भी कोई वैसा भेद नहीं था, प्राय. सभी मांसाहारी थे। शेष देशकी यह स्थिति नहीं रही होगी। यदि ई० स० १०३० के लगभग ऐसी स्थिति रही भी होगी तो भी अगली दो शताब्दियोंमें अहिंसाकी जो लहर देशभरमें फैल गयी उसके कारण सारी परिस्थिति बदल गयी और अनेक जातियोंने मांसाहार छोड़ दिया। तात्पर्य यह कि उस समय मांसाहारी और शाकाहारी लोग एक ही मकानमें नहीं रह सकते थे। इसी कारण अल्बेरूनीके बाद जातियोंकी संख्या इतनी बढ़ गयी कि भारतवर्षकी मुख्य चार जातियोंके बदले, जैसा कि आगे बताया गया है, सैकड़ों अथवा हजारों जातियाँ उत्पन्न हो गयीं।

प्रथम भागमें हम बता चुके हैं कि पहले काल विभाग (६०० ८००ई०) में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इनमेंसे प्रत्येक एक अविभक्त जाति थी। दूसरे कालविभाग (८००-१०००) में भी यही परिस्थिति रही। परन्तु शिलालेखोंसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि तीसरे काल विभागमें एक एकको सैकड़ों उप जातियाँ बन गयीं। जैसा कि ऊपर बताया गया है, इसके कारण संक्षेपमें ये हैं—(१) खान पानमें भेद, (२) जातियोंकी न्यूनाधिक शुद्धताका विचार। (३) और भिन्न भिन्न देशोंके भिन्न भिन्न रिवाज। अब इन्हीं कारणोंके अनुसार प्रत्येक वर्णको लेकर हम यह देखेंगे कि उसके अन्दर अनेकों भेद कैसे उत्पन्न हो गये।

ब्राह्मणोंके आन्तरिक भेद।

निःसन्देह प्रारम्भमें तो समस्त भारतवर्ष भरमें ब्राह्मण जाति केवल एक ही थी। ई० स० एक हजारके पहले तक शिलालेखोंमें ब्राह्मणोंका वर्णन उनका गोत्र और शाखा देकर किया गया है। उनमें किसी भी आन्तरिक भेदका जिक्र नहीं पाया जाता। कुछ समयतक इस कालविभागमें भी यही बात पायी जाती है। उदाहरणके लिए चन्देलका एक दानलेख लीजिए। यह लेख १०५० ईसवीका है और इण्डियन एण्टीक्वेरी १६, पृ० २०६ पर छपा है। उसमें दान लेनेवाले ब्राह्मणका वर्णन केवल 'भारद्वाजगोत्र, त्रिप्रवर तथा यजुर्वेद शाखा' इतना ही है। जिला गोरखपुरके अन्तर्गत कहलामें कलचुरी दानलेख प्राप्त हुआ है जो १०७७ ई० का है और जो एपिग्राफिका इण्डिका भाग ७ पृ० ८६ पर छपा है। "उसमें दान लेनेवाले अनेकों ब्राह्मणोंका वर्णन उनके गोत्र, प्रवर और शाखा तथा रहनेका स्थान देकर किया गया है। इसी प्रकार दक्षिणमें उत्तर चालुक्योंका एक लेख ई० स० १०७० का है जो बी. बी. आर. ए. एस् भाग १२, पृ०४१ में दिया गया है। उसमें केवल यही वर्णन है कि दान लेनेवाला ब्राह्मण कौशिक गोत्रीय वव्हृच था। इसके बादके लेखोंमें हमें ब्राह्मणोंके रहनेके देशका उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ, ऐसा वर्णन मिलता है कि वड़नगरकी कुमारपाल प्रशस्तिका लेखक नागर ब्राह्मण था। यह लेख संवत् १२०८ अर्थात् ११५१ ई० का है। चन्देल और गाहडवालोंने कुछ दानपत्र दिये हैं। उनमें दान लेनेवाले ब्राह्मणोंका वर्णन 'ठाकुर' शब्द द्वारा किया गया है। (एपि० इंडि० ४ पृ० १२१)। उसी प्रकार गाहडवाल और हैहयोंके कुछ दानपत्रोंमें दान लेनेवाले ब्राह्मणोंका वर्णन 'राऊत'

शब्द द्वारा किया गया है (एपि० इण्डि० भाग १४ पृ० २७४)। दक्षिण मालवाके किसी सामन्तके दानलेखमें दान लेनेवाले ब्राह्मणके वर्णनमें गोत्र, प्रवर देकर करहाट शब्द लिखा गया है। लेखका काल ई० स० ११३५ है (इंडियन एटिक्वेरी भाग १५)। कन्हाडके शिलाहारोंके एक दानलेखमें दान लेनेवाले ब्राह्मणका वर्णन करहाट घैसास पढकर हमें बडा आश्चर्य हुआ। (घैसास और पटवर्धन उपनाम कोंकण तथा कन्हाडके ब्राह्मणोंमें अबतक पाये जाते हैं, वे उनके पेशेको सूचित करते हैं। किन्तु अबतक यह पता नहीं चला कि वे पेशे आखिर थे कौनसे)। इस तरह रहनेके स्थानोंका नाम इतना महत्वपूर्ण समझा जाने लगा कि आगे चलकर ब्राह्मणोंके गोत्र और शाखा देना भी बन्द हो गया। सास बहूके मंदिर (ग्वालियर) के शिलालेखमें दान लेनेवाले ब्राह्मणोंके केवल नाम दिये हैं, गोत्र नहीं। यह लेख ईसवी सन् १०९३ का है (इं० एंटि० भाग १५ पृ० ३६)। गुजरातके भोले भीमने एक दान लेखमें दान लेनेवाले, ब्राह्मणका गोत्र, शाखा इत्यादि कुछ भी नहीं लिखा है। केवल 'रैक्वाल जातीय' इन शब्दों द्वारा उसकी उपजातिका उल्लेख कर दिया है। यह लेख ई० सन् १२०७ का है (इं ऍ० भाग ११ पृ० ७२)। ई० स० १२४९ के कोंकणके एक दानलेखमें दान लेने वाले ३२ ब्राह्मणोंके नाम और गोत्र दिये हुए हैं। परन्तु शाखा नहीं लिखी गयी, उसके बदले उपनाम दे दिये गये हैं। मालूम होता है कि इस समय उपनाम उत्पन्न हो चुके थे। वे सम्भवतः धंधे, रहनेके स्थान अथवा अन्य किसी विशेषता परसे रखे गये होंगे। शाखाका महत्व घटकर इस समय उपनामोंका महत्व बढ़ गया। ब्राह्मणोंमें ये उपनाम पाये जाते हैं— दीक्षित, राऊत, ठाकुर, पाठक, उपाध्याय, तथा पट्टवर्धन

इत्यादि। * इस तरह कुछ कालतक गोत्रोंका उल्लेख भी पाया जाता है क्योंकि अबतक ब्राह्मणोंमें उनका महत्व कायम है। परन्तु प्रवर और शाखाका उल्लेख अब नहीं आता। यह बड़े ही दुर्दैवकी बात है कि आजकल ब्राह्मण लोग भी इनको भूलते जा रहे हैं।

ब्राह्मणोंके वर्तमान दो मुख्य भेद हैं, पंचगौड और पंच द्राविड। परन्तु शिलालेखोंमें १२०० ई० तक इस भेदका उल्लेख नहीं पाया जाता। किन्तु इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि हम द्वितीय भागमें बता चुके है कि स्कंदपुराण नवीं सदीमें लिखा गया था। मालूम होता है यह भेद ई० स० १२०० के बाद उत्पन्न हुआ होगा। इस भेदका आधार शायद यह कल्पना होगी कि गौड मांसाहारी होते हैं और द्राविड शाकाहारी परन्तु यदि यह गलत हो तो भी यह तो निर्विवाद है कि ब्राह्मणोंमें रहनेके देश और नगरके अनुसार ई० स० १२०० के पहले ही अनेक भेद उत्पन्न हो गये थे। भिन्न भिन्न रीतियाँ तथा जातिकी शुद्धता विषयक कल्पना इस भेदकी कारणभूत हुई होगी। स्कन्द पुराणके नागर खण्डमें नागर ब्राह्मणोंका इतिहास और उनके मुख्यदेव हाटकेश्वरकी कथा दी है। उसमें एक यह बात भी लिखी है कि एक अज्ञात ब्राह्मण उनके शहरमें आया और उसे एक नागर ब्राह्मणने अपनी लड़की दे दी। बादमें पता लगा कि वह ब्राह्मण नहीं; चांडाल था। तब जातिमें बड़ी खलबली मच गयी। तबसे नागरोंने यह निश्चय कर लिया कि नागर ब्राह्मणके सिवा वे अन्य किसीको अपनी लड़की नहीं देंगे, इसलिए उन्होंने नागर कुलों-

* इस लेखमें 'त्रिवाड़ी' नाम भी आया है और क्रमित नामका भी उल्लेख हुआ है। परन्तु इनका अर्थ समझमें नहीं आता।

की गिनती भी कर ली। धीरे धीरे यही व्यवस्था सब जातियों और उप जातियोंमें शुरू हो गयी। अतः उपजातिके लिए अब 'ज्ञाति' शब्दका प्रयोग सार्थक हुआ। आबूके लेखमें लिखनेवाला अपने आपको 'नागर ज्ञाति भाजा' लिख कर प्रकट करता है (संवत् १३३१ अर्थात् १७२४ ईसवी)। यह बात संभवतः बनावटी है और स्कंदपुराणमें पीछेसे लिख दी गयी होगी। परन्तु इससे यह स्पष्ट रूपसे मालूम हो जाता है कि विवाह-सम्बन्ध उसी देशके ज्ञातिके कुलोंमें क्यों सीमित कर दिया गया। इसीसे यह भी मालूम होता है कि देशके अनुसार ही ब्राह्मणोंमें उपजातियोंकी उत्पत्ति हुई। काश्मीरसे दक्षिण तक जो बड़ी बड़ी उपजातियाँ उत्पन्न हो गयीं उनके नाम ये हैं—
१ काश्मीरी २ नगर कोटिया (नगरकोट कांगडाके कटोचराजाकी राजधानी थी) ३ मुहियाल, (यह पंजाबकी उपजाति है) ४, सारस्वत, ५ गौड़ (गुड अर्थात् बंगाल नहीं, वरन थानेश्वरके आस पासका प्रदेश) ६ नारनोल (पतयाला), ७, कनोजिया (कन्नौज देशमें रहनेवाले), ८ सरयूपारी (सरयूके पारके), ९ जभोती (जभोति अर्थात् बुन्देलखण्डमें रहने वाले), १० तिवारी (हैहयोंकी राजधानी त्रिपुरमें रहनेवाले) ११ सिंधी १२ नागर (नगर अर्थात् बडनगरमें रहनेवाले) १३ श्रीमाली (श्रीमाल राजपूतानेमें है) १४ पुष्करणा (पुष्करमें रहनेवाले) १५ दसोरे (दशपुर अर्थात् मंदसौरमें रहने वाले), १६ मालवी, १७ मोढ़ अर्थात् धर्मारण्यमें, रहनेवाले, १८ गुजराती, १९ बंगाली, २० मैथिल, २१ उड़िया, २२ देशस्थ, २३ चितपावन, (चित्तपोलण अर्थात् चिपलूणके आस पास रहनेवाले), २५ गौड सारस्वत, २६ कर्नाटक, २७ आन्ध्र अथवा तेलगु, २८ तामिल, २९ मल्याली (नंबुद्री)

इत्यादि। हम देखते हैं कि ब्राह्मणोंकी इन उपजातियोंका नाम जो जिस देशमें रहता था।प्रायः उसीके अनुसार रखा गया है। इनके अन्तर्गत और भी कई उपभेद हैं। दशा, बिशा आदि कितने ही भेद उत्तरमें और ऐयर, ऐयंगार, आचार्य इत्यादि भेद दक्षिणमें कई कारणोंसे उत्पन्न हो गये। धार्मिक सिद्धान्तोंके कारण भी कई भेद उत्पन्न हो गये। ऐयर स्मार्त हैं अर्थात् शिव और विष्णुको वे समान रूपसे मानते हैं। परन्तु ऐयंगर नारायणको ही सर्वश्रेष्ठ देवता मानते हैं और वे रामानुजके सिद्धान्तोंके माननेवाले हैं। इसके अतिरिक्त मध्वाचार्यके द्वैत सिद्धान्तके माननेवाले ब्राह्मण भी हैं, जो आचार्य कहे जाते हैं। इन सभी उपविभागोंके बीच विवाह सम्बन्ध बन्द हो गये, और कितनों हीमें तो खानपान भी बन्द हो गया।

आश्चर्यकी बात है कि इस काल-विभागके आरंभमें लोगोंकी धारणा थी कि उत्तर भारतके ब्राह्मण, वंश और आचारके ख्यालसे, अधिक शुद्ध हैं। कई दं कथाओंके आधारपर यह माना जाता है कि दक्षिणके कितने ही राजाओंने उत्तर भारतसे ब्राह्मण कुलोंको बुलाकर अपने देशमें बसाया। बंगालके राजा बल्लालसेनने पाँच कनौजिया ब्राह्मणोंको अपने राज्यमें बसनेके लिए बुलाया था। दंतकथा है कि ये ब्राह्मण आदिसूरके समय आये थे। परन्तु यह नाम तो काल्पनिक है। या फिर आदिसूरसे सेनोंका पहला राजा समझना चाहिए। इसी प्रकार इतिहासमें पाया जाता है कि केसरी राजाके समय उड़ीसामें जा बसनेके लिए उत्तर भारतसे ब्राह्मण बुलाये गये थे। गुजरातमें मूलराजने भी उत्तरसे सौ ब्राह्मण बुलाये थे। *उनको इस समय गुजरातमें औदीच्य कहते हैं।* कथा है कि ठेठ दक्षिणमें तामिल देशके किसी चोल राजाने भी उत्तरसे

ब्राह्मणोंको लाकर बसायाथा । इन सब स्थानोंमें नवीन आये हुए ब्राह्मणोंने अपनी अपनी जाति अलग बनाकर उस देशके अन्य ब्राह्मणोंको अपनेसे नीचा समझ कर उनसे रोटी-बेटीका व्यवहार बंद कर दिया। इस तरह उपजातियोंकी सख्या और भी बढ़ती गयी। इसी प्रकार हम यह भी मान सकते है कि पंजाब और युक्त प्रान्तके कई ब्राह्मण परिवार मुसलमानोंके आक्रमणों एवं अत्याचारोंसे त्रस्त हो कर दक्षिणको चले गये थे। गोवा के गौड सारस्वत ब्राह्मण इसी प्रकार सरस्वतीके प्रदेशसे उधर चले गये होंगे। स्वय उनका यह ख्याल है कि वे बंगालसे आये है। परन्तु यह कल्पना अनैतिहासिक प्रतीत होती है। वराह मिहिरने थानेश्वरके आस पासके प्रदेशको 'गुड' नाम दिया था, ऐसा उल्लेख पाया जाता है। इन ब्राह्मणोंकी विशेषता मत्स्याहार है। इसकी कथा महाभारतमें यों लिखी है कि सरस्वतीके तीरपर रहनेवाले ब्राह्मणोंने एक दीर्घ अकालमें मछलियाँ खाकर वेदोंकी रक्षा की थी। बंगाली ब्राह्मण भी इसी सरस्वतीके प्रदेशसे पूर्वकी ओर चले गये थे। इसीलिए उनके देशका नाम भी गौड हो गया। हम पहले कह चुके है कि गोवाके गौड सारस्वत ब्राह्मण बंगालसे नहीं आये थे। इसका एक कारण तो यह है कि बंगाल छोड कर यहा आनेके लिए उन्हें कोई ऐतिहासिक कारण नहीं था। दूसरे, बंगालियोंकी भाषामें जो उच्चारणकी विशेषता है, सो इनमें नहीं दिखाई देती, जैसे वे 'स' को 'ष' और 'अ' को 'ऑ' नहीं कहते। *

* चित्पावनोंमें भी यह दंतकथा प्रचलित है कि हम बाहरसे आये हैं। उनके गौरवर्णसे प्रतीत होता है कि वे पंजाबसे आये होंगे। कुछ काल बसईके पास रहकर चिपळूण इलाकेमें अर्थात् दोनों शिलाहार राज्योंके बीच सरहदी झगडेवाले पर्वतीय प्रदेशमें उन्होंने इसी समय अपनी बस्ती

इसी प्रकार जब चालुक्योंने वेंगीको जीत लिया तब कुछ दक्षिणी ब्राह्मण जेताओंके साथ साथ आन्ध्रको चले गये। वहाँ पर उनकी एक भिन्न उपजाति बन गयी। वे आजकल नियोगी कहे जाते हैं। मतलब यह कि विजेताओंके साथ साथ भी इस काल विभागमें ब्राह्मण यहां वहां चले गये थे जैसा कि आधुनिक कालमें मराठोंकी विजयके समय हुआ था।

नागर ब्राह्मणोंने जिस प्रकार अपनी जाति इत्यादि निश्चित कर गोत्र तथा कुटुम्बोंको गिन कर सब जातिको सुसंघटित और व्यवस्थित कर लिया, उसी प्रकार ब्राह्मणोंकी इन सभी उपजातियोंने अपनी अपनी जातिकी व्यवस्था कर विवाह-सम्बन्ध तथा अन्न-व्यवहार मर्यादित कर दिया। इन सभी उप-जातियोंने अपने अपने देश अथवा नगर परसे नवीन नाम धारण कर लिये। विवाह सम्बन्ध भी मर्यादित हो जानेके कारण इन नामोंको ओर भी महत्व प्राप्त हो गया। साथ ही साथ गोत्र तथा शाखाका महत्व घट गया।

परन्तु यहांपर यह कह देना जरूरी है कि इन सभी जातिके ब्राह्मणोंने अपने वैदिक धर्मका पालन दृढ़तापूर्वक किया। उन्होंने अपने वेद तथा शाखाके अनुसार अपने संस्कारोंकी केवल रक्षा ही नहीं की बल्कि अपने गोत्र प्रवरको भी याद रखा। वैदिक सूत्रोंमें ये गोत्र और प्रवर ग्रथित हैं और इस समय समस्त भारतवर्षमें वे ही प्रचलित हैं। यद्यपि उनमें हजारों आंतरिक भेद हैं तथापि स्मृतियोंमें सगोत्र-विवाहका जो निषेध किया गया है उसका भी पालन सभी ब्राह्मण करते हैं। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें उपनाम शुरू हो गये और उनको

की थी। हम महाभारत मीमांसामें बता चुके हैं कि परशुरामका मूलस्थान भी यही बसईके नजदीक था।

महत्त्व भी प्राप्त हो गया। इसलिए शिलालेखोंमें गोत्रोंका उल्लेख भी अब नहीं पाया जाता। तथापि ब्राह्मणोंने, विशेष कर दक्षिणी ब्राह्मणोंने, अपने गोत्रोंको याद रखा, यह बात सचमुच उनके लिए अभिनन्दनीय है।

टिप्पणी—मार्कोपोलो द्वारा वर्णित लाड ब्राह्मण।

मार्कोपोलोने लाड ब्राह्मणोंका जो वर्णन किया है उसे यहाँ उद्धृत कर इसपर विचार करना जरूरी है। मार्कोपोलो भारतवर्षमें ई. सन् १२८० के लगभग आया था। ई. सन् १३ सौ के आसपास उसने अपना प्रवास-वृत्त लिखा। यह वृत्त स्पष्ट ही हमारे कालके सौ वर्ष बादका है। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उसका हमारे कालसे कोई सम्बन्ध नहीं। उसके समयमें भी देशकी परिस्थिति करीब-करीब वैसी ही रही होगी जो ई. सन् १२०० में थी, क्योंकि मुसलमानोंने दक्षिण देश ई. स. १३०० के बाद जीता। लार देशके विषयमें वह कहता है:—(मिस युलका मार्को पोलो भाग २, पृष्ठ ३६०) "ये सभी ब्राह्मण पश्चिमके उस देशसे आये हैं। वे उत्तम व्यापारी और अत्यन्त सत्यनिष्ठ हैं। वे मांस नहीं खाते, शराब भी नहीं पीते और स्वधर्म निष्ठाके साथ एक पत्नीव्रतसे रहते हैं। वे एक रूईका सूत्र धारण करते हैं जो कन्धे परसे पीठपर और वक्षस्थल पर पड़ा रहता है। उनका राजा शक्तिमान् और सम्पत्तिमान् है। वह इन ब्राह्मणोंको उत्तम हीरे और मोती खरीदनेके लिए चोल देशमें भेजता है। उनकी धारणा है कि सप्ताहके प्रत्येक दिनमें शुभ और अशुभ घटिकाएँ होती हैं। उनमेंसे वे शुभ घटिकाओंमें ही व्यापार करते हैं। वे तपस्वी वृत्तिसे रहते हैं। इसलिए दीर्घायु भी होते हैं। वे किसी वनस्पतिको हमेशा दाँतोंसे चबाते रहते हैं इसलिए उनके दाँत उत्तम रहते हैं।

"दूसरे प्रकारके ब्राह्मण भी यहाँ हैं जिनका नाम चुगी (जोगी) है। वे प्रतिमापूजन करते रहते हैं। ये उनसे भी अधिक दीर्घकाल तक अर्थात् १५० से लगाकर २०० वर्षतक जीते हैं। वे केवल भात (चावल) और दूध ही खाते हैं। गंधक और पारेसे बनाया हुआ एक पेय होता

है, जिसे उसे ये दिनमें दो बार पीते हैं। इसीसे उनकी आयु बढ़ती है। इनमेंसे कुछ तपस्वी हैं जो नग्न अवस्थामें रहते हैं। जस्त अथवा सोनेके बने एक छोटेसे बैलको वे अपने सिरपर बाँधते हैं। गायके गोबरसे बने उपलोंकी राख वे अपने बदनपर लगाते हैं। यदि कोई उनकी सेवा करता है तो वे उसके सिरके बीचोंबीच वह राख लगा देते हैं। स्वर्गफल (केले ?) के पेड़के सूखे पत्तोंपर वे भोजन करते हैं। वे किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करते। अधिक क्या कहें, मक्खी और मच्छड़को भी वे नहीं मारते। वे बहुत लंबे लंबे उपास करते हैं। उस समय सिवा पानीके और कुछ नहीं खाते-पीते। वे ज़मीनपर सोते हैं। फिर भी वे बहुत कालतक जीते रहते हैं। वे मुर्दोंको जलाते हैं।"

"इस वर्णनपर टिप्पणी करते हुए मिस यूल कहती है "लार देशमें दक्षिण, गुजरात, थाना, और चोलका समावेश होता है। कोंकणके ब्राह्मणोंने जब उन्हें गाँवसे भगा दिया तब वे व्यापार करने लगे। ब्राह्मणोंकी सत्यआदिताकी यह प्रशंसा उचित है और वह यूनानियोंके समयमें भी पायी जाती थी। यूनानी लेखकोंने तो इस सत्यताकी प्रशंसा की ही है, साथ ही उनके बाद हुएनत्संग और उसके भी बाद अरबी यात्रियोंने भी की है।"

यह निश्चय करना कठिन है कि मार्कोपोलोने यह वर्णन किनको लक्ष्य कर किया है। यह सत्य है कि अरबी पर्यटकोंके वर्णनके अनुसार लार देशमें थाना और कुलाबा जिलेका समावेश होता है और उसकी भाषा भी स्वतंत्र लारी नामक थी। परंतु मार्कोपोलोने आगे चलकर थाना राज्यका स्वतंत्र वर्णन दिया है। यह तो हम देख ही चुके हैं कि थानामें शिलाहार राजा राज्य करते थे। लार देश गुजरातसे भी भिन्न है, क्योंकि मार्कोपोलोने गुजरातका भी पृथक् वर्णन लिखा है। ई० स० १३०० के लगभग गुजरातका राज्य पृथक् था और पाटणमें बघेले राजा राज्य करते थे। उसने यह भी लिखा है कि इस भागकी भाषा भिन्न और विचित्र है (पृष्ठ ३९२)। १३०० ई० तक आजकलका दक्षिण गुजरात अर्थात् लारदेश उत्तर गुजरातसे भाषा तथा राजसत्ताकी दृष्टिसे भिन्न था।

लारदेशके लोगोंका एक स्वतंत्र और भिन्न राजा रहा होगा परन्तु इसके पहलेकी शताब्दीमें वे राष्ट्रकूटोंके अधीन और बादमें पश्चिम चालुक्योंकी सत्ताके अधीन थे। यह पता नहीं कि इन लारदेशके ब्राह्मणोंकी आजकल कोई पृथक् जाति है या नहीं परन्तु उस समय लाड ब्राह्मणोंकी एक पृथक् जाति शायद रही होगी और वे चोल तथा पांड्य जैसे दूरदेशोंमें व्यापारके लिए जाते रहे होंगे। उन देशोंमें हीरे और मोती पैदा होते थे। कोंकणी ब्राह्मण यदि अपनी सत्यताके विषयमें अन्य ब्राह्मणोंकी भाँति प्रसिद्ध रहे हों तो भी व्यापारके विषयमें वे इतने कुशल या प्रसिद्ध नहीं है। पट्टवर्धन, बलिस तथा वैसास आदि उपनाम कोंकणस्थ और कहाडे ब्राह्मणोंमें ही पाये जाते हैं। इनका उल्लेख गोवाके कदम्बोंके शक ११७१ अर्थात् ईसवी सन् १२४९ के शिलालेखमें आया है (ज० रा० ए० सो बम्बई ९ पृष्ठ २४२)। और इन नामोंसे प्रतीत होता है कि ये कुटुम्ब व्यापार करनेवाले होंगे। हम यह निश्चय नहीं कर सकते कि इन उपनामोंसे किस व्यापारका बोध होता है। कहाडके शिलाहार राजा दूसरे भोजके ई. स. ११९० ई० स० में लिखे एक शिलालेखमें चार ब्राह्मणोंके नाम हैं। वे इस प्रकार है—(१) आदित्यभट्ट (२) लक्ष्मीधर भट्ट (३) प्रभाकर वैसास, (४) वासियन वैसास, (गोत्रका उल्लेख कहीं भी नहीं है)। यहाँ पर 'कट्टाटक' शब्द स्पष्ट रूपसे ब्राह्मण उपजाति वाचक है। और वैसाससे ऐसे किसी धंधेका बोध होता है जो धार्मिक नहीं है। परन्तु यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे हीरे और मोतीका धन्धा हरगिज नहीं करते थे, यद्यपि मार्कोपोलोने ऐसा लिखा है। हमें तो यह मालूम होता है कि लाड ब्राह्मणोंकी एक पृथक् जाति थी जो दक्षिण भारतभरमें फैली हुई थी। वह हीरे मोती आदिका व्यापार करती थी और अपनी सचाईके लिए प्रसिद्ध थी। मालूम होता है कि वे ब्राह्मण मार्कोपोलोको पाड्यमें मिले होंगे। क्योंकि पांड्य देशके बाद ही उसने एक दम लाड देशका वर्णन किया है। उसने जिस देशको मावार कहा है वह निःसन्देह पांड्य देश ही है, क्योंकि मोती वहीं मिलते हैं। उसी प्रकार नीचे लिखा हुआ वर्णन पूर्णरूपसे इसी देशको लागू होता है। "इस देशमें

रजी है ही नहीं। सभी लोग—पुरुष, स्त्रियाँ, धनी, निर्धन, स्वयं राजा भी—बहुधा नंगे बदन ही घूमते हैं। केवल कमरके आस पास एक वस्त्र लपेट लिया जाता है। सिपाही भी बरछा तथा ढाल ले कर इसी प्रकार नंगे बदन युद्धमें जाता है। नग्न राजाकी यही पहिचान है कि उसके पहननेका वस्त्र महीन होता है और कण्ठमें मूल्यवान् रत्नोंका हार।" इस वर्णनको पढ़कर कालिदासके रघुवंशमें लिखे हुए पाण्ड्यदेशके वर्णन (पांड्योयमंसार्पितलंबहार', आदि) की हठात् याद हो आती है। द्रविड़ देशके ब्राह्मण आज भी प्रायः नंगे बदन ही घूमते हैं। इसके बाद मार्कोपोलो मुतफिली देशका वर्णन करता है। इस नामका पता नहीं चलता। परन्तु यह देश निश्चय पूर्वक वरंगलका आन्ध्र राज्य ही है, क्योंकि इसमें वर्णन है कि उस समय वहाँ रानी राज्य करती थी (यह प्रसिद्ध प्रतापरुद्रकी लड़की है)। उसने यह भी लिखा है कि यहाँके पर्वतोंमें हीरे पाये जाते हैं। यह वर्णन गोलकोंडाकी हीरेकी खानोंका है। इन दो देशोंमें ही शायद लाड देशके ब्राह्मणोंसे उसकी भेंट हुई होगी, क्योंकि उसके बाद ही उसने एकदम पश्चिम किनारेवाले लाड देशका वर्णन किया है। अर्थात् यह 'लाट देश' याने वर्तमान दक्षिण गुजरात है।

जिन जोगियोंका आगे वर्णन किया है वे शैवयोगी प्रतीत होते हैं। परन्तु मस्तकपर धातुका बना हुआ बैल बाँधनेवाले ये लोग संभवतः इधर उधर घूमनेवाले न रहे होंगे। क्योंकि इधर उधर भटकनेवाले योगी प्रेतोंको जलाते नहीं, गाड़ देते हैं। यह सत्य है कि वीर शैव लिंगायतमत इस समय उत्पन्न हो गया था। परन्तु अभी लिंगायत कोंकण या लाट देशमें नहीं गये थे। अब भी वे वहाँ पर बहुत कम पाये जाते हैं। जैसा कि मिस यूल कहती हैं आजकल ऐसे जोगी नहीं पाये जाते।

ये जैन भी नहीं हो सकते, यद्यपि उनके प्राणिहिंसा न करने, मक्खी-मच्छर न मारने, लम्बे लम्बे उपास करने इत्यादि परसे कोई उन्हें जैन समझ सकता है। परन्तु जैन उपलोंकी राख न तो स्वयं लगाते हैं और न अपने शिष्योंके ही सिरपर लगाते हैं। इसलिये मालूम होता है कि वे एक ऐसे शैव पथके तपस्वी थे जो आजकल अस्तित्वमें नहीं रहा। शायद

वे लकुलीशके अनुयायी भी रहे हों। इनका पुण्यस्थान, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भड़ौंचके पास है। मतलब यह कि लाड ब्राह्मण कोंकणी ब्राह्मण नहीं। हमारा मत है कि ये दक्षिण गुजरातमें रहनेवाले ब्राह्मण थे। आज वे दक्षिण गुजरातमें नहीं हैं, किन्तु समस्त दक्षिण देशमें (हैदराबादमें भी) जो व्यापार करते हुए पाये जाते हैं, वे व्यापारी ब्राह्मण थे और अत्यन्त धार्मिक तथा पुराने ख्यालके थे। परंतु पूछताछ करने पर पता चला कि इस प्रदेशके ब्राह्मण अपने आपको लाड नहीं बताते। इसलिये यह प्रश्न अनिश्चित ही रह जाता है कि मार्कोपोलोके बताये हुए लाड ब्राह्मण कौनसे हैं।

राजपूतोंकी उपजातियाँ।

इसके बादका महत्वपूर्ण वर्ण क्षत्रिय वर्ण है। इसका विचार करते हुए हम देखते हैं कि इसमें भी आन्तरिक उपभेद उत्पन्न हुए, यद्यपि उतने नहीं जितने ब्राह्मणोंमें हुए। यह तो स्पष्ट ही है कि रहनेके देश परसे या शहरके नाम परसे राजपूतोंके भेद होना संभव नहीं था। इसके पहले ही क्षत्रियोंके दो मुख्य भाग हो गये थे—खेती-करनेवाले और खेती न करनेवाले। खेती करनेवालोंका स्थान स्पष्ट ही दूसरा था। जो खेती नहीं करते थे वे देशके राजा थे। अथवा प्रान्तके मुख्याधिकारी या गाँवके मुखिया थे। स्वभावतः इनका दर्जा ऊँचा माना गया। प्रायः इन्हीं क्षत्रियोंको आजकल राजपूत कहने लगे हैं। यह शब्द इस काल विभागके शिलालेखोंमें विशेषकर राज्य करनेवाले क्षत्रियोंके अर्थमें प्रयुक्त किया गया है। उदाहरणार्थ, वल्लालसेनके लेखमें (एपि० इंडि० १४५-१५८) "जज्ञिरे राजपुत्रः" का प्रयोग आया है। राजपूतोंका दर्जा, जैसा कि दूसरे भागमें बताया

गया है, ब्राह्मणोंसे भी बड़ा समझा जाने लगा। पिछली सदीके अरबी लेखकोंने इस बातका उल्लेख किया है। किन्तु अल्बेरूनी इस सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखता। क्योंकि, जैसा कि हम पहले कह आये हैं, वह कई बार प्रत्यक्ष स्थितिको न देखते हुए, धर्म शास्त्रोंको देखकर ही लिखता है। परन्तु यह भी हो सकता है कि मुसलमान आक्रमणोंके कारण उसके जमानेमें पंजाबके अधिकांश राज्य करनेवाले क्षत्रिय परिवार नष्ट हो गये हों। गाहडवाल राजा चन्द्रने उत्तर भारतपर ज़ुल्म करनेवाले मुसलमानोंको मार भगाया, और क्षत्रिय वर्णका पुनः संघटन किया। तब स्वभावतः क्षत्रियोंको धर्मशास्त्रोंमें वर्णित अपना पुराना स्थान प्राप्त हुआ। अर्थात् ब्राह्मणोंके बाद उनको स्थान मिला। फिर भी वे थे सभी बातोंमें ब्राह्मणोंकी बराबरीके, क्योंकि अल्बेरूनी स्वयं लिखता है कि उनका दर्जा ब्राह्मणोंसे अधिक नीचे नहीं था। उदाहरणार्थ, उन्हें वेदोंका अध्ययन करनेका अधिकार था। वे वेद और शास्त्रोंका अध्ययन करते भी थे। हम भी देख चुके हैं कि भोज तथा गोविंदचन्द जैसे राजा वैदिक तथा लौकिक विद्याओंमें विद्वान् ब्राह्मणोंके सदृश ही प्रवीण थे।

जैसा कि हमेशा होता आया है, राजपूतों अर्थात् भारतवर्षमें राज्य करनेवाले क्षत्रियोंने ई० सन् ११०० के लगभग धर्मनिष्ठ शुद्ध क्षत्रिय राजकुलोंकी सूची तैयार करके अपनी एक उपजाति बना ली। स्वभावतः इस सूचीमें पंजाबका समावेश नहीं किया गया, क्योंकि वहाँपर मुसलमानोंका राज्य था। और सचमुच पंजाबमें राज्य करनेवाले क्षत्रिय राजकुल बचे भी नहीं थे। हिमालयमें राज्य करनेवाले क्षत्रिय कुलका नाम भी इस तालिकामें नहीं आया। इसका कारण

ओर है, जो हम आगे बतावेंगे। दक्षिण भारतमे राज्य करने वाले क्षत्रियोंके कुल भी शामिल नहीं किये गये। शायद यह समझा गया हो कि वे शुद्ध आर्यवंशीय क्षत्रिय वर्णके नहीं हैं। हाँ, महाराष्ट्रमे राज्य करनेवाले क्षत्रिय कुलोंकी गिनती इसमें कर दी गयी है क्योंकि उत्तर भारतमे राज्य करनेवाले क्षत्रिय कुलोंसे उनके विवाह सम्बन्ध होते आये थे। ऐसे राजपूत कुलोंकी संख्या ३६ निश्चित की गयी। शीघ्र ही यह संख्या प्रतिष्ठित हो गयी। हम देखते हैं कि ११५८ ई० में लिखी कल्हण की राजतरंगिणीमे इस संख्याका उल्लेख है। इन ३६ राजकुलोंकी आरम्भिक तालिकामें किन किन गोत्रोंके नाम थे, यह निश्चय करना कठिन है। क्योंकि उस समयकी लिखी कोई विश्वसनीय सूची अभीतक उपलब्ध नहीं हुई है। रासो वर्तमान समयमे जिस स्थितिमे है, वह तो निःसंदेह १६ वीं सदीका है। तथापि हम मानते हैं कि उसमे जो तालिका दी हुई है वह पृथ्वीराजके समयकी है। इस बातका विचार हम आगे चल कर एक टिप्पणीमें करेंगे कि रासोमें दी हुई यह तालिका ११०० ई० में भारतकी जो राजनीतिक परिस्थिति थी उससे मिलती है या नहीं। इस तालिकाके कारण प्रत्येक राजकुलका कुल नाम अधिक महत्वपूर्ण हो गया। और यद्यपि प्रत्येक कुलका गोत्र भिन्न था तथापि विवाहादि बातोंमें भी गोत्रोंका महत्त्व कम हो गया। बल्कि इस कालके शिलालेखोंमें तो कुल-नाम ही गोत्र नाम बन गया और 'गुहिलगोत्र', 'प्रतिहार गोत्र' इत्यादि शब्दोंका व्यवहार शुरू हो गया।

रासोकी तालिकामें सबसे पहले यह बात दृष्टिगत होती है कि उसमें लखनौतीके सेनोंका नाम नहीं है। इससे इस मतकी पुष्टि होती है कि बंगालमे उनकी सत्ता ई० सन् ११०० के

बाद प्रस्थापित हुई। दूसरे, दक्षिण भारतमें राज्य करनेवाले सभी राजकुलों अर्थात् गंग, चोल, पांड्य और केरलका नाम इस सूचीमें नहीं है। इसका एकमात्र कारण यही मालूम होता है कि उत्तर भारतके किसी भी क्षत्रिय कुलसे उनका विवाह-सम्बन्ध न होनेके कारण उनका क्षत्रिय होना मान्य नहीं किया गया। महाराष्ट्रमें राज्य करनेवाले क्षत्रिय कुल भौगोलिक दृष्टिसे बीचमें होनेके कारण वंशकी दृष्टिसे भी मध्यमें थे। हम पहले ही कह चुके हैं कि शिलाहारोंका कुल ही एक ऐसा सच्चा मराठा राजवंश था, जिसका नाम उन ३६ राजकुलोंमें शामिल किया गया है। हम दक्षिण देशके चालुक्यों और राष्ट्रकूटोंको उत्तर भारतके चालुक्य तथा राष्ट्र-कूटोंसे भिन्न मानते हैं तथापि हम इस बातसे इनकार नहीं कर सकते कि उन नामोंके साथ साथ इन कुलोंका भी उक्त ३६ राजकुलोंमें समावेश किया जा सकता है परन्तु यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि गोवाके कदम्बोंका नाम उन ३६ राजकुलोंमें शामिल नहीं है। इस बातका प्रमाण मिलता है * कि इसी काल-विभागमें गुजरातके चालुक्य कुलमें कदम्बोंकी दो राज-कन्याओंका विवाह किया गया था। शायद उत्तर भारतके राजपूतोंने अपनी उपजाति उत्तर भारतमें ही मर्यादित रखी और महाराष्ट्रके क्षत्रिय राजकुलोंसे विवाह सम्बन्ध करना बन्द कर दिया। उदाहरणार्थ, कर्ण त्रैलोने देवगिरिके याद-

---

* कुमारपाल चरितमें ऐसे विवाहका उल्लेख है।

'कर्णोऽपि कर्नाट नृपाङ्गजायाश्चकार पाणिग्रहणं जयायाः'

उसमें यह भी उल्लेख है कि एक काश्मीरी राजकन्याके साथ भी उसकी शादी हुई थी—

कर्णाय काश्मीरपतिः स्वपुत्रीं प्रैषीद्यथो सैयलदेविनाम्नीम्।

वोंको अपनी लड़की देनेसे इनकार कर दिया (१३०० ई०)। इसका कारण यह है कि दक्षिण भारतके अनार्य माने जाने-वाले राजकुलोंसे वे सम्बन्ध करते थे। इसलिए मराठा क्षत्रियों-ने शिलाहारोंको लेकर अपनी एक अलग उपजाति बना ली। इन कुलोंकी संख्या (९६) निश्चित कर दी और विवाह-सम्बन्ध भी इन्हीं ९६ कुलोंमें मर्यादित कर दिया।

पश्चिम हिमालयके राजपूतोंका एक भिन्न संघ बन गया और उनकी एक पृथक् उपजाति बन गयी। वे एक कोनेमें पड़ गये और उनमें विचित्र विवाह रीतियाँ प्रचलित हो गयीं। प्राचीन भारतवर्षमें यह रीति थी कि ऊपरके वर्णका पुरुष नीचेके वर्णकी स्त्रीसे विवाह कर सकता था। यह प्रथा उस समय हिमालयमें अवशिष्ट थी और अब भी है। इस सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाली सतान नीचेके वर्णकी नहीं; पिताकी जातिकी ही मानी जाती थी। आज भी पंजाबसे लगे हुए पश्चिम हिमालयमें राजपूतोंके ये तीन दर्जे हैं—राजपूत, राणा अथवा ठाकुर, और राठी। राजपूत ठाकुरोंकी लड़कियोंसे शादी करते हैं और ठाकुर राठियोंकी लड़कियोंसे। परन्तु वे उन्हें अपनी लड़कियाँ नहीं देते। इस प्रकार हिमालय प्रदेशमें राज-पूतोंमें पुरानी मिश्र-विवाहकी रीति प्रचलित है। तथापि उनके वंशकी शुद्धतामें कोई अन्तर नहीं क्योंकि राठी मोगलवंशी नहीं, आर्यवंशी हैं। वस्तुतः वे हमेशा खेती करते रहनेवाले दूसरे दर्जेके क्षत्रिय हैं। इसके अतिरिक्त उनमें 'कारेवा' अर्थात् विधवा-विवाह प्रचलित है। परन्तु ब्राह्मण अथवा वैश्योंके समान राजपूतोंमें वह निषिद्ध है। 'पंजाबकी जातियाँ और उपजातियाँ' नामक पुस्तकमें हिमालय प्रदेशके राजपूतोंकी उप-जातियोंका सुविस्तृत वर्णन दिया है। इन राजपूतोंमें कटोच

जाति सर्वश्रेष्ठ है। लम्बाग्रामके महाराजाका वंश उसका मुख्य कुल है। परन्तु यहाँ पर इन सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी तथा श्रेष्ठ, * मध्यम और कनिष्ठ कुलोंके जमुवाल, गुलेरिया आदि नाम देनेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि वे रहनेके स्थान परसे ही तो चल पड़े हैं।

स्वयं पंजाबमें पश्चिमके क्षत्रिय महमूद और शहाबुद्दीनके समय जबरदस्ती मुसलमान किये गये थे। ये लोग 'राजपूत' नामका उपयोग नहीं करते और न उन्हें यह नाम पसन्द ही है परन्तु उनमें महाभारत अर्थात् ग्रीक कालीन क्षत्रिय नाम यौधेय (जोहिया), आनव (जंजुआ) आदि अब भी अवशिष्ट हैं और लड़का-बच्चा होनेके समय तथा विवाहमें ब्राह्मणको बुलाना आदि हिन्दू रीतियाँ भी अभीतक कायम हैं। पंजाबके पूर्व भागमें अभीतक राजपूत पाये जाते हैं। परन्तु वे सम्भवतः, मुसलमानी सत्ताके समय, पूर्व तथा दक्षिणके देशोंसे आये होंगे क्योंकि वे अपने कुलनाम परमार, चौहान, तुवर, राठौर, कछवाह आदि ३६ कुलोंकी तालिकामें आये हुए नाम निश्चित रूपसे बहाते हैं। उनके विवाह भी दिल्ली तथा राजपूतानाके क्षत्रियोंसे होते रहते हैं। पंजाब और सरस्वतीका प्रदेश तथा पांचालदेश ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी मूलभूमि है। भारतवर्षके दक्षिण और पूर्व भागोंमें जो ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं, वे सब यहींसे इधर उधर गये हैं। इसलिए परमार, चौहान, राठौर और कछवाहा आदि कुलनाम मूलतः पंजाबसे आये हैं। एक बात और हो सकती है। ये नाम महाभारतमें नहीं हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि छठी सदीमें या

* इनको मिया कहते हैं। यह मुसलमानी शब्द है और इसका अर्थ है परमपूज्य।

बादमें कुशन और हूण लोगोंकी चढ़ाइयोंके कारण जो क्षत्रिय पंजाब छोड़कर राजपूताने या मध्य देशमें चले गये, उनमें पीछेसे ये नाम उत्पन्न हो गये होंगे। यह बात निश्चित है कि छत्तीस राजकुलोंकी तालिकाके नाम महाभारतमें नहीं पाये जाते। और चूंकि पंजाबके पूर्व भागमें ३६ कुलोंमेंके ही नाम मिलते हैं, इससे यही सिद्ध होता है कि ये राजपूत दक्षिणसे आकर यहां बस गये हैं। स्थानीय दंत कथाओंसे भी इस अनुमानकी पुष्टि होती है। पूर्व पजाबके राजपूतोंका ख्याल है कि वे राजपूताना और दिल्लीका प्रदेश छोड़कर पंजाबमें आ बसे हैं। इसलिए इन राजपूतोंके सबको अलग नहीं मानना चाहिए, बल्कि राजपूतानेके संघोंके भीतर ही इनका भी समावेश कर देना चाहिये।

इस तरह भारतवर्षके क्षत्रियोंके तीन उप विभाग होते हैं। वे ११०० से लगा कर १२०० या तेरह सौ ईसवीतक उत्पन्न हुए। (१) छत्तीस कुलोंके राजपूत—राजपूताना, गुजरात काठियावाड़, मालवा, युक्तप्रान्त और पूर्व पञ्जाबमें रहनेवाले। (२) पश्चिम हिमालयके राजपूत और (३) मराठा क्षत्रिय। ये तीनों विभाग न तो एक दूसरेके साथ विवाह-सम्बन्ध करते हैं और न खान-पान ही करते हैं। इसलिए नित्यके नियमानुसार उन्हें निश्चित उपजातियाँ कहनेमें कोई हर्ज नहीं है। इस प्रकार शुद्ध क्षत्रियोंकी उपजातियाँ केवल तीन ही हैं। तथापि और भी अनेक उपजातियाँ अपनेको क्षत्रिय मानती हैं। इनका अस्तित्व भी प्रायः हमारे काल विभाग तक पाया जाता है। खेती करनेके कारण जो नीचे दरजेके माने गये हैं उनका समावेश उपर्युक्त क्षत्रियोंमें कर लेना जरूरी है। उदाहरणार्थ, हिमालय प्रदेशके राठी और दक्षिण देशके मराठे। राठी और

मराठे ये दोनों शब्द शायद राष्ट्रसे उत्पन्न हुए हैं। अतः इनकी व्युत्पत्तिसे यह अनुमान निकलता है कि ये लोग राष्ट्र* हैं, अर्थात् उपनिवेश बनाकर रहनेवाले किसान अथवा सामान्य लोग हैं और शूद्र अथवा मजदूरोंसे, भिन्न हैं। अल्बेरूनीने चातुर्वर्ण्यका जो वर्णन किया है उससे तो यही बोध होता है कि उस समय राजपूत ब्राह्मणोंकी तुलनामें बराबरीके समझे जाते थे। फिर भी खेती करनेवाले क्षत्रिय या वैश्योंको शूद्रोंकी अपेक्षा कहने योग्य विशेष सम्मान नहीं मिलता था, क्योंकि दोनोंको वेदाध्ययनका अधिकार नहीं था। इन खेती करनेवाले क्षत्रियोंके अतिरिक्त और भी ऐसी कई जातियाँ हैं जो अपने आपको क्षत्रिय बताती हैं। उनका भी उद्भव इसी कालविभागमें हुआ होगा। तथापि बुंदेले, रघुवंशी इत्यादिके वर्गोंके विषयमें हमें अभीतक कोई निश्चित सबूत उपलब्ध नहीं हुआ है। हिन्दू समाजमें शुरूसे ही अनेक उपजातियाँ उत्पन्न करनेकी वृत्ति पायी जाती है और ये उपजातियाँ भी अपने आपको अपने वर्णकी अपेक्षा नजदीकवाले ऊँचे वर्णमें समाविष्ट होनेका अधिकार हमेशासे मानती आयी हैं।

दक्षिण भारत अर्थात् मद्रास इलाकेके क्षत्रिय अपने आपको सूर्यवंशी और चंद्रवंशी मानते हैं। उनकी एक और भी उपजाति है जिसका समावेश उपर्युक्त गणनामें हमने नहीं किया है। "जहाँतक हमने शिलालेखोंको देखा है, अबतक हमें कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिला जिसमें दक्षिणके इन क्षत्रियोंका उत्तरके क्षत्रियोंकी कन्याओंसे विवाह हुआ हो। मनु-

* अशोकके शिलालेखोंमें आये हुए 'राष्ट्रिक' शब्दका अर्थ स्मिथके मतानुसार पश्चिम घाटपर रहनेवाले है। परन्तु हिमालय प्रदेशके उपर्युक्त राठी लोगोंका समावेश भी उनमें किया जा सकता है।

स्मृतिमें द्रविण वीर जाति व्रात्य क्षत्रिय कही गयी है, और पुराणोंमें तो यहाँतक आधार पाया जाता है कि उनकी उत्पत्ति सूर्यसे ही हुई है। आंध्र क्षत्रियोंको 'राजू' कहते हैं। यह शब्द संस्कृतका है। कहीं कहीं उन्हें 'वेल्लाल' भी कहते हैं। दक्षिण भारतके क्षत्रियोंके दर्जेके विषयमें विशेष चर्चा करनेके लिए कोई सबल साधन हमें उपलब्ध नहीं हो सके, क्योंकि इस विषयको हमने कहीं भी विस्तारपूर्वक और विशेष जानकारीके साथ लिखा हुआ नहीं पाया।

टिप्पणी—क्षत्रियोंके छत्तीस राजकुल।

हम ऊपर कह चुके हैं कि जिस समय गाहड्वाल चंद्र राजाने, जैसा कि एक शिलालेखमें कहा गया है, सूर्य और चन्द्रवशी राजपूत कुलोंकी पुनः स्थापना की, उस समय छत्तीस राजकुलोंकी यह तालिका तैयार की गयी थी। चन्द्रका राज्यकाल ई० स० १०८० से ११०० तक निश्चित हो चुका है। अतः परिगणित छत्तीस राजकुल उस समय अवश्य ही राज्य करते होंगे। आज हमारे सामने वह मूल पहिली-तालिका नहीं है। और टॉडने जो दो पुरानी तालिकाएँ दी हैं वे अपूर्ण और गलत हैं। उनमेंसे एक तो रासोसे ली गयी है और दूसरी कुमारपालचरितसे। (टॉडने जो और भी दो तालिकाएँ दी हैं वे बहुत आधुनिक हैं, क्योंकि उनमें खुलमखुल्ला आधुनिक नाम विद्यमान हैं) जब हम इन दो पुरानी तालिकाओंकी तुलना करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि ये दोनों एक ही मूल तालिकाकी प्रतिलिपियाँ मात्र हैं। अब वे कितने अंशोंमें एक दूसरीसे मिलती हैं अथवा भिन्न हैं, यह नीचे देखिये—

रासोमें वर्णित तालिका	कुमारपाल चरितमें वर्णित तालिका
रवि	इक्ष्वाकु
शशि	सोम
यदु	यदु
ककुत्स्थ	×

स्वाभाविक और अपरिहार्य भी था। अब हमें देखना चाहिये कि रासोमें दी हुई यह तालिका भारतकी ई० सन् ११०० के समयकी परिस्थितिसे किस प्रकार ठीक ठीक मेल खाती है। भाग २ में नामोंका हमने जो अर्थ किया है वही हम यहाँ भी ग्रहण करेंगे।

पहले पाँच नाम ककुत्स्थ (कच्छवाह), परमार, सदावर (तोमर) चाहमान, छदुक (चंदेल) ह जो इस विभागमें वर्णित प्रसिद्ध ग्वालियर, मालवा, दिल्ली, साँभर, और बुंदेलखंड वाले राजकुल हैं। छठाँ नाम 'शिलार' थानेका शिलाहार वंश है। सातवाँ नाम अभियर अथवा आभीर है। टॉडने यह नहीं लिखा कि इनका राज्य कहाँ था। चापोत्कट और परिहार वा राजकुलोंके नाम हैं जो अनहिलवाड और कन्नौजमें राज्य करके हालमें ही विलुप्त हो गये थे। परन्तु प्रतिहारोंके मंडावरके समान उस समय उनके छोटे छोटे अवशेष अवश्य रह गये होंगे। मेवाडका गुहिलोत राजवंश तो विख्यात ही है। उसी प्रकार माँगरोल (काठियावाड) के गुहिलोत राजवंशका वर्णन भी उनके प्रकरणमें हमने दे दिया है। यादवोंमें भाटी, और काठियावाडके जाडेजा और चूडासमाका समावेश होता है। परन्तु उस समय बियाना और मथुरा अथवा महावनके यादव ही थे। जेसलमीरके भाटियोंका उल्लेख इस तालिकामें नहीं है। परन्तु इसका कारण कदाचित् यही प्रतीत होता है कि इस समयतक जेसलमीरकी स्थापना ही नहीं हुई होगी। उसकी स्थापना ई० स० ११५७ में हुई थी (गौरीशंकरका टॉड) और काठियावाड तथा कच्छमें अभी दूसरे दो कुल नहीं आये थे। उस समय व प्रान्त अनहिलवाडके चालुक्योंकी अधीनता में थ। टाडका कहना है कि 'टाँक' का राज्य उस समय यमुनातीरवर्ती काष्ठमें था। हमारा ख्याल है कि वे तक्षक नागके वंशज नहीं हैं, जैसा कि कितने ही विद्वानोंका कहना है। चम्बल नदीके पूर्व तीर पर भैंसरोडाके सामने बडोलीमें हूणोंका राज्य था। यहाँपर पत्थरके नकाशीदार भव्य मन्दिर ह। वे हूण-विवाहमंडपोंके नामसे विख्यात हैं। गौड अथवा गौरका बंगालके सेन राजवंशसे कोई सम्बन्ध नहीं है। सेन वंशकी स्थापना तो स्वयं बंगालमें ही ई० स० ११०० के बाद हुई। इसलिए

उनका नाम इस तालिकामें नहीं है। ये गौड़ तो गुड़ अर्थात् थानेश्वरके परिवर्ती प्रदेशके रहनेवाले लोग हैं और इनका राज्य अजमेरके आसपास कहीं था। दंतकथा है कि चौहानोंने अजमेरको इन्हींसे लिया था। टॉडने इस दंतकथाका उल्लेख किया है (परन्तु कई लोग इसे सत्य नहीं मानते)। बड़गूजर ही इस समय एक शक्तिशाली राजवंश था। उनकी सत्ता आँबेर-के आसपासके प्रदेशपर थी और राजधानी थी राजपुर शहर। टॉडने एक और दंतकथा दी है जिसमें कहा गया है कि कछवाहोंने वह प्रदेश उन बड़गूजरोंसे जीत लिया। रासोमें इनका नाम 'गरुम'- दिया गया है। यह गुर्जर शब्दका प्राकृत रूप है। अंतमें, निकुम्भका एक राज्य उस समय खानदेशमें था। पं० गौरीशंकरके बताये एक शिलालेखसे यह बात सिद्ध होती है। कहीं जयपुर इलाकेमें भी इनका राज्य था। इससे प्रतीत होता है कि निकुंभ क्षत्रिय उत्तर और दक्षिण भारतमें भी थे। परन्तु शिलाहारोंकी बात जुदी है। मराठोंमें भी इन निकुंभोंके वंशज हैं। आज-कल ये अपनेको निकम कहते हैं।

इसके अतिरिक्त राठौर अथवा राठ और राजपाल, ये दो वंश और हैं। कन्नौज और मुंगेरके राजवंशोंके ये नाम हैं। चेदीके हैहयोंका उल्लेख रासोमें दी हुई तालिकामें नहीं है। शेष नामोंको धारण करनेवाले राजवंश कहाँ कहाँ थे, यह निर्णय करना कठिन है। इस बातका निश्चय टॉड, पं० गौरीशंकर और मोहनलाल पंड्या भी नहीं कर सके हैं। हाँ, दाहिमा उस समय प्रसिद्ध थे और शिलालेखोंमें वे दधीचि ऋषिके वंशज कहे गये हैं। परन्तु रासोमें इन्हें दधिपट्ट कहा है। जोधपुरके जिला परवतसरके कन्सेरू नामक मंदिरमें ई० स० १०४० का लिखा एक शिलालेख है। उसमें इनका वर्णन है (एपि० इंडि० १२ पृ० ६१)। साँभरके चाहमानोंके ये मांडलिक थे। गोदावरी-तीरवर्ती खालेनरसे ये मारवाड़ गये और वहाँ परवतसर, जालोर तथा साँचोर प्रान्तोंमें ई० स० १३०० तक राज्य करते रहे। 'इस शिलालेखका लेखक उच्च राजा प्रत्यक्ष राज्य करनेवाला था, भाड़ा राजपूत नहीं था।' अस्तु, कारट्पाल काटीसे भिन्न हैं। और ईसवी सन् ११०० के लगभग कठियावाड़में कहीं भी

काठियोंका राज्य नहीं था। जाटोंका भी इस तालिकामें समावेश नहीं हो सकता, और न जाटोंको क्षत्रिय ही माना है। इस समय उनका कहीं राज्य भी नहीं था। इस तरह ऐतिहासिक आधारके अभावके कारण हमें अभी तो यही कहना पड़ता है कि अभीतक इस बातका कोई ठीक ठीक पता नहीं लगा है कि शेष राजवंश कहाँ थे।

कायस्थ

कायस्थ वंशतः अपनेको क्षत्रिय मानते हैं। इस कालविभागके शिलालेखोंमें उनका नाम वारम्वार पाया जाता है। यद्यपि स्मृतिके अनुसार उनकी जाति मध्यवर्ती है, तथापि उनका समावेश क्षत्रिय वर्णमें किया जा सकता है। कायस्थ लोग लेखकका काम करते थे, इसी कारण शिलालेखोंके लेखकोंकी हैसियतसे उनका नाम वारम्वार आता है। इस कालविभागमें इनमें भी देशानुसार अन्तर्विभाग हो गये थे, क्योंकि १००० ई० के एक लेखमें (एपि० इण्डि० १२ पृ० ६) गौड़ कायस्थोंका नाम आया है। यहाँपर अन्वय शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है। जहाँ होता है वहाँ अक्सर उसका प्रयोग कुलके अर्थमें ही होता है। उदाहरणार्थ, बिजोलिया लेखमें नैगमान्वय (बंगाल ज० रा० ए० सो० ५५ पृष्ठ ४०), अथवा शिवालिक स्तम्भलेखमें गौडान्वय (इं० ए० १९ पृ० २१८) पाया जाता है। यह भी कह देना जरूरी है कि दक्षिण भारतके शिलालेखोंमें भी कहीं कहीं कायस्थ लेखकोंके नाम पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, कोंकणके अपराजितोंके लेखमें उनके नाम आये हैं। कोंकणके कायस्थ प्रभुओंके विषयमें यह दन्तकथा प्रचलित है कि वे इस कालविभागके बाद उत्तर भारतसे दक्षिण भारतमें आये। ११०० ई० में जिन कायस्थोंका उल्लेख पाया जाता है उनसे इस दन्तकथाका मिलान करने

पर यह कहा जा सकता है कि इस लेखमें वर्णित कायस्थोंके वंशज वर्तमान 'दवसे-कायस्थ' होंगे।*

वैश्य

ब्राह्मणोंकी देखादेखी देशानुरूप वैश्योंमें भी अनेक अन्तर्भेद उत्पन्न हो गये। परन्तु इस काल-विभागके लेखोंमें उत्तर भारतके वैश्योंके चौरासी विभागोंका उल्लेख कहीं भी नहीं पाया जाता। कुछ कुलनाम जरूर पाये जाते हैं। उदाहरणके लिए प्रागवाटान्वय अथवा बिजोलिया शिलालेखसे कारापक वंश या पोरवाल और मोढ (ई० ए० ११ पृ० ७२ मोटान्वय-प्रसूत महाक्षपटलिक) पेश किये जा सकते हैं। परन्तु अन्वय शब्दसे यह स्पष्ट है कि यह किसी भेद विशेषका नहीं, कुलका नाम है। ये वैश्य बहुधा जैन होते थे। इसीसे कदाचित् उनमें यह कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा होगा कि वे अपने ही विभागमें विवाहादि भी करें। दक्षिणमें और हिमालयके प्रदेशोंमें शैव और वैश्य भी पाये जाते हैं। काँगड़ाके वैजनाथके मन्दिरमें उल्लेख है कि उसे दो वैश्य-बंधुओंने बनवाया था। दक्षिणके वीर शैव अर्थात् लिंगायत वैश्य तो प्रसिद्ध ही हैं।

शूद्र

कहना न होगा कि इस कालविभागमें शूद्रोंमें भी अनेकानेक उपजातियाँ केवल देशके अनुसार ही नहीं, बल्कि उनके हजारों धंधोंके अनुसार भी होगयीं। प्रत्येक धंधा या पेशा करनेवाले लोगोंने अपना एक छोटासा समाज बनाकर उसीमें विवाहादिकी मर्यादा बाँध दी। जैसा कि आगे चलकर कहा गया है,

* इस शिलालेखमें प्रभु शब्द अमात्यके नामके साथ जोड़ा गया है। कायस्थ लेखकके नामके साथ नहीं।

अनुलोम विवाहोंकी प्रथा तो इस समय बिलकुल बन्द सी ही हो गयी। अब ब्राह्मणोंसे लेकर नीचेतककी प्रत्येक जाति तथा उपजाति विवाह-सम्बन्ध अपने ही अन्दर करने लगी। इस कारण तथा जाति शुद्धिकी कल्पना और खानपान सम्बन्धी विभिन्नताके कारण समस्त हिन्दू समाज अनेकों जातियों तथा उपजातियोंमें विभक्त हो गया। आजकल प्रत्येक वर्णमें—मुख्य जातिमें तथा उपजातियोंमें भी—जो सैकड़ों या हजारों विभाग दिखाई देते हैं, वे, हमारा ख्याल है, इसी कालविभागमें उत्पन्न हुए। इसके पूर्व कालविभागमें समस्त भारतमें मुख्य और उपजाति केवल एक एक ही थी। इसलिए यद्यपि अल्बेरूनीने शास्त्रानुसार केवल चार ही वर्ण बताये हैं तथापि प्रत्येक वर्णमें उपजातियाँ उत्पन्न होना इसी समय शुरू हो गया होगा और प्रत्यक्ष विभाग उसके बाद बन गये होंगे।

अस्पृश्य जातियाँ

अत्यंत प्राचीन कालसे भारतमें बहिष्कृत अर्थात् अस्पृश्य लोगोंकी अनेक जातियाँ चली आयी हैं। वे हमेशा शहर या गाँवसे बाहर रहती थीं। शिलालेखोंमें मेद और चांडालोंका अर्थात् मेहतर और शिरच्छेद करनेवालोंका नाम अक्सर पाया जाता है। ये सबसे नीच माने जाते थे। किन्तु अल्बेरूनीने और भी कुछ जातियोंका उल्लेख किया है। नीचे लिखे अनुसार वह अस्पृश्योंका वर्णन करता है। "शूद्रोंके बाद वे जातियाँ हैं जो अस्पृश्य मानी जाती हैं। ये जातियाँ भिन्न प्रकारके हलके काम करती हैं और उपर्युक्त किसी भी वर्णमें इनका समावेश नहीं होता। इनमें आठ वर्ग हैं, जो आपसमें बराबर रोटी-बेटीका व्यवहार करते हैं। सिर्फ धोबी, मोची

और कहार एक दूसरेसे रोटी-बेटीका व्यवहार नहीं करते। ये आठ वर्ग इस प्रकार हैं—धोबी, मोची, बाज़ीगर, टोकरी और ढालें बनानेवाले (बुरुड), कहार, मछली मारनेवाले, शिकारी, और जुलाहे। ये आठों वर्ग गाँवसे बाहर किन्तु नजदीक ही रहते हैं।

"हाडी, डोम, चांडाल और बधती ऐसी जातियाँ हैं जो उपर्युक्त किसी भी जाति या वर्गमें समाविष्ट नहीं हैं। ये गाँवमें अत्यंत खराब अर्थात् झाड़ने बुहारनेका काम करती हैं। इन सबका एक वर्ग बना दिया गया है। वस्तुतः ये शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्रीके अनुचित सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाली संतानके समान माने जाते हैं। इसीलिये ये बहिष्कृत कर दिये गये हैं।" (सजाऊ भाग १ प्र० १०)

उपर्युक्त उद्धरणसे पता चलता है कि अल्बेरूनीके समय (ई० स० १०३०) में भी अस्पृश्योंके दो वर्ग थे। उनमें भी दूसरा अधिक नीच समझा जाता था। यही नहीं बल्कि खुर्दादबाने भी (ई० सन् ९००) अस्पृश्योंके दो वर्ग बताये हैं, चांडाल और लहुड। दूसरे वर्गको उसने रस्सीपर नाचने वाला नट बताया है। मतलब यह कि ये दो भेद बहुत पुराने हैं। अल्बेरूनीने लहुड जातिके जो आठ भेद बताये हैं, वे एक स्मृति-वचनमें भी पाये जाते हैं। पर अल्बेरूनीका यह लिखना कि इनमें तीनको छोड़ कर शेषमें परस्पर विवाह होते रहते थे, कुछ विचित्र मालूम होता है। संभव है, उसका यह कथन गलत हो। अन्य हिन्दू-उपजातियोंकी देखादेखी, कमसे कम आज तो, वे आपसमें रोटी-बेटीका व्यवहार नहीं कर रहे हैं। समझमें नहीं आता कि धोबी, जुलाहा और बुरुड (टोकरी आदि बनानेवाला) क्यों अस्पृश्य माने गये थे। पर इसमें सन्देह

नहीं कि ये अभी अभी तक अस्पृश्य माने जाते थे। इनका काम तो जरा भी खराब नहीं है और इस बातका साक्ष्य तो अल्बेरूनी भी देता है कि दूसरी जातियोंसे उनका विवाहादि नहीं होता था। इससे प्रतीत होता है कि ये नाममात्रके अस्पृश्य रहे होंगे। और चूँकि अब वे स्पृश्य हो गये हैं, अतः कोई कारण नहीं दिखाई देता कि उनकी तालिकाके अन्य पाँच वर्ग भी क्यों अस्पृश्य समझे जायें। डोम और हाडी शब्दोंका उल्लेख स्मृतियोंमें नहीं पाया जाता। "वधतौ" शब्द तो बिलकुल अश्रुतपूर्व है। ये चार जातियाँ अबतक गंदा काम करती हैं, शायद इसीलिए ये अस्पृश्य मानी गयी हैं।

जैसा कि अन्यत्र बताया गया है, हमने जाति संस्थाको वंश और पेशा दोनोंके आश्रित माना है। पहले तीन वर्ण वंशतः आर्य हैं, शूद्र और अस्पृश्य द्रविड़ वंशी हैं। पेशेकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो ब्राह्मणोंका पेशा (कर्म) याजन है और क्षत्रियोंका युद्ध। वैश्योंका धन्धा प्राचीन कालमें कृषि था। किन्तु उसमें होनेवाली कृमि हत्याके भयके कारण उन्होंने बौद्ध कालमें उसे छोड़ दिया (पुस्तक ५, प्र० २) मध्ययुगीन कालमें कृषि कर्म शूद्रोंके हाथमें चला गया और खुर्दादबाने ई० स० ६०० में शूद्रोंका वर्णन करते हुए उन्हें खेती करनेवाले ही बताया है। यह ठीक भी है। (उसी पुस्तकका वही प्रकरण देखिये।) परन्तु वैश्योंके कृषि कर्मको छोड़ने पर मध्ययुगीन कालमें कितने ही ब्राह्मण और क्षत्रियोंने खेती करना शुरू कर दिया और पराशर स्मृतिने एक विशिष्ट वचनानुसार उसे मान्य भी कर लिया (वही पुस्तक प्र० २)। परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी प्रतिष्ठा घट गयी और वे शूद्रोंके समान समझे जाने लगे। विशेषतः हिमालयकी

तराईमें और दक्षिणमें जाकर देखनेसे इसकी सत्यता प्रतीत होगी। कांगडामें हमसे कहा गया है कि नगर कोटिया ब्राह्मण उस देशके ब्राह्मणोंसे रोटी बेटीका सम्बन्ध नहीं करते, क्योंकि वे खेती बल्कि दूसरी मजदूरी भी करते हैं। हिमालयमें खेती करनेवाले राठी तीसरे दर्जके क्षत्रिय माने जाते हैं। अपने ऊपरके दर्जेके क्षत्रियोंको अपनी लडकियाँ देनेका उन्हें अधिकार है, पर उनकी लडकियाँ लेनेका नहीं। यह भी हम देख चुके हैं कि उडीसा प्रान्तमें बादमें जानेवाले ब्राह्मणोंने खेती करके अपना गुजर करनेवाले वहाके ब्राह्मणोंको नीच समझा था। दक्षिणमें भी कुछ खेती करनेवाले ब्राह्मण हैं जो नीचे समझे जाते हैं। उसी प्रकार खेती करनेवाले क्षत्रिय बागवान आदि शूद्र समझे जाते हैं जो अनुचित है।

एक बात कह देना जरूरी है। यद्यपि क्षत्रियोंका पेशा युद्ध है तथापि इस काल विभागमें उन्होंने केवल शौर्यके द्वारा ही नहीं बल्कि अपनी विद्वत्ताके कारण भी खूब नामवरी प्राप्त की। यही नहीं वरन इस कालविभागमें कई प्रसिद्ध राजा तो इतने विद्वान् हो गये कि अपने अपने विषयपर लिखे उनके ग्रन्थोंके कारण संसारमें उनका नाम अजरामर हो गया है। भोज, गोविन्दचन्द्र, बल्लाल, लक्ष्मणसेन, अपरादित्य, सोमेश्वर चालुक्य, राजेन्द्र चोल इत्यादि नरेन्द्रोंकी साहित्यिक रचनाएँ आज भी इस काल सागरके वक्षस्थलपर अपनी पूर्ण कान्तिसे तैर रही हैं तथा उनके अवलोकन करनेवालोंका आनन्द और ज्ञान अर्पण करती हैं। गायन और नृत्यकलाका भी इस कालविभागमें अच्छा विकास हुआ था। इन कलाओंको तो अनेक राजाओंने आश्रय दिया था। किन्तु फिर भी काश्मीरके हर्षदेव, मालवाके उदयादित्य, और सबसे अधिक तंजावरके

राजराजके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आज भी गायन और नृत्यमें तंजावरकी खूब ख्याति है। मतलब यह कि अल्बेरुनी का यह वर्णन बिलकुल सत्य है कि क्षत्रिय करीब करीब ब्राह्मणोंके समान ही श्रेष्ठता रखते हैं। शास्त्र और शस्त्र इन दोनों विद्याओंमें वे एकसे प्रवीण थे। और सबसे बड़ी बात यह है कि आर्यवंशकी विशेषता—स्वातन्त्र्य प्रेम तथा दान प्रीति की अपनी परम्परागत ख्याति—को उन्होंने पूर्णरूपसे निबाहा।

दूसरा प्रकरण ।

विवाहादि प्रथाओंमें परिवर्तन ।

इस कालविभागमें हिन्दुओंके विवाहोंकी रीतियोंमें महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया। इसके पहलेकी सदीमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंको अपने नीचेके वर्णकी स्त्रियोंसे शादी करनेका अधिकार था और वे ऐसा विवाह करते भी थे। ई० स० ६०० के लगभग खुर्दादबा लिखता है कि कतरिया (क्षत्रिय) ब्राह्मणोंको अपनी लड़कियाँ देते थे पर उनकी लड़कियाँ ले नहीं सकते थे। दूसरा प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने स्वयं राजशेखरका है जो ईसवी सन् ६०० के लगभग ही हुए थे। उन्होंने चोहानोंकी लड़कीसे विवाह किया था। किन्तु अल्बेरुनी लिखता है कि "हिन्दुओंको पहले अपनेसे नीचेके वर्णकी स्त्रियोंसे विवाह करनेका अधिकार था। परन्तु हमारे समयमें तो ब्राह्मण कभी अपनेसे नीचेके वर्णकी स्त्रीसे शादी नहीं करते।" स्वभावतः अन्य जातियों और उपजातियोंमें भी अपनी बिरादरीसे बाहर विवाह करनेकी प्रथा बंद हो गयी। मालूम नहीं यह रुकावट

क्यों डाली गयी। संभव है, इसका कारण स्मृतिकारोंका वह नवीन निर्णय है जिसके अनुसार उन्होंने ऐसे विवाहोंसे होनेवाली संतानको नीचेके दर्जेकी बताया। अल्बेरूनीने भी इस बातका उल्लेख यों किया है "इस नीचेकी जातिकी स्त्रीसे विवाह करनेपर जो सतति होती उसकी गणना अपनी माता-की जातिमें ही की जाती है"। उदाहरणार्थ, एक ही घरमें एक ही पिताके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बच्चे होने लगे जैसा कि भाग २ में बताया गया है। मनुस्मृतिके अनुसार तो वे सभी बच्चे ब्राह्मण ही समझे जाते थे। कभी कभी वे माताकी जातिसे श्रेष्ठ, बीचकी जातिके समझे जाते थे। इसी समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्योंके खानपान व्यवहारमें भी भेद उत्पन्न हुआ। विशेषतः मध्यदेश और दक्षिण भारतके ब्राह्मण और वैश्योंने मांसाहार छोड़ दिया। तब अवश्य ही ऐसे मिश्र परिवारोंमें बड़ी कठिनाइयाँ खड़ी होने लगी होंगी। इसका परिणाम स्वभावतः यही हुआ होगा कि सभी विवाह अपनी अपनी जाति या उपजातिके अन्दर ही होने लगे हों।

हिन्दू समाजमें दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था बालविवाह-का विशेष प्रचार। यह ठीक ठीक नहीं कह सकते कि पहले पहल बालविवाहोंका आरम्भ किस तरह हुआ। पर इसमें सन्देह नहीं कि अल्बेरूनीके समय बाल विवाह सर्वत्र रूढ हो गये थे। क्योंकि वह कहता है—(सचाऊ भाग २ पृ० १६ पृ० १५५) "हिन्दुओंमें विवाह छोटी छोटी उम्रमें ही हो जाया करते हैं इसलिए वधूवरोंका चुनाव उनके माता पिता ही करते हैं।" यही व्यवस्था आजकल भी प्रचलित है। अल्बेरूनीका यह कथन प्रत्यक्ष देख कर किया गया है। उसने स्मृतियोंके आधारपर ऐसा नहीं लिखा परन्तु पराशर स्मृतिका यह वाक्य

'अष्टवर्षामुद्वहेत' (लडकीको आठवें वर्षमें ही विवाहमें दे देना चाहिए) सभवत अल्बेरूनीके पहले लिखा गया होगा हम देख चुके हैं कि पृथ्वीराजका पहिला विवाह बालविवाह ही था। कल्याणके विक्रमाक चालुक्यकी लडकीका विवाह गोवाके कदब युवराजसे हुआ था और यह भी बालविवाह ही था। राजपूतोंके इन उदाहरणोंसे प्रतीत होता है कि उस समय तमाम हिन्दुओंमें बालविवाह होते रहे होंगे। बाणने राज्यश्रीके विवाहका वर्णन ई० सन् ६०० में किया है। उसके वर्णनसे ज्ञात होता है कि राज्यश्री सयानी हो गयी थी। और विवाहोत्सवमें पाणिग्रहणके दिन ही वर वधूका सहवास हुआ था। इससे प्रतीत होता है कि ई० स० ६०० से लेकर १००० तक बालविवाह रूढ हुए थे। वे क्यों प्रचलित हुए, इसका कारण बताना कठिन है। ई० स० १०३० में तो बालविवाह पूर्णरूपसे प्रचलित हो गये थे। इससे यह कथन गलत सिद्ध होता है कि मुसलमानोंके अत्याचारके कारण बालविवाह होने लगे। हम अन्यत्र कह चुके हैं कि स्त्रियोंका बौद्ध भिक्षुणी होनेसे रोकनेके ही लिए यह प्रथा प्रचलित हुई होगी। बौद्ध धर्मानुसार सयानी अविवाहित लडकियोंको भिक्षुणी होनेका अधिकार था। लडकीकी कम उम्रमें शादी करनेसे इसका प्रतिकार अनायास हो जाता था। इसलिए लोगोंको यही विवाह पद्धति ज्यादा पसन्द हो गयी। आठवीं और नवीं सदीके अन्तमें बौद्ध धर्म नष्ट हुआ, तबतक अवश्य ही यह प्रथा खूब प्रचलित हो गयी होगी। अस्तु, कारण कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि इस काल विभागके आरम्भमें बालविवाह प्रचलित हो गये थे और इसके अततक तो मानो समाजमें वे पूर्णत प्रतिष्ठित हो गये।

इस काल-विभागमें क्षत्रिय और वैश्योंकी शाखाएँ तथा गोत्र भी नष्ट हो गये और उनको भिन्न भिन्न उपजातियोंने कुलों अर्थात् कुलोंकी गणना नामोंके अनुसार की और यह निर्णय किया कि विवाह-सम्बन्ध कुलों या कुलोंके बाहर किन्तु उपजातियोंके भीतर ही हों। यही नियम अबतक प्रचलित है। इस नियमका अनुकरण शूद्रोंकी तथा अन्त्यजोंकी उपजातियोंमें भी हुआ है। सारांश यह कि तमाम हिन्दुओंमें विवाह-सम्बन्ध उसी जाति, उपजाति या उपजातिके उपभेदमें ही मर्यादित हो गये। इसका परिणाम यही हुआ कि एकताजनित विशिष्ट सहानुभूति हिन्दू समाजसे नष्ट हो गयी और इसी कारण सामाजिक दृष्टिसे हिन्दू लोग बराबर दुर्बल होते चले आये हैं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, हिन्दुओंके वर्ण-विभागको नष्ट करना असम्भव है। क्योंकि भिन्न भिन्न मानव वंश तथा भिन्न भिन्न कर्मोंकी भित्तिपर उसकी रचना हुई है परन्तु उपजातियोंकी संख्या कम करना संभव और अत्यंत आवश्यक भी है। रक्त-शुद्धिकी विचित्र कल्पना तथा ऐसे ही मूर्खतापूर्ण कारणोंको लेकर हिन्दू समाजमें इतने विभागोपविभाग हुए हैं। अतः इन भेद भावोंको नष्ट कर अनेक उपजातियोंको एक करनेमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं है।

आर्यवर्णोंमें हिन्दू समाजमें प्राचीन कालसे ही विधवा-विवाहका निषेध किया गया है। यह निषेध वैदिक सूत्रोंके बल्कि स्वयं वैदिक संहिताके बराबर ही प्राचीन होगा। अपने समयके विषयमें अल्वेरूनी इसी प्रश्नपर लिखता है "विधवाएँ पुनर्विवाह नहीं कर सकतीं। वे या तो सती हो जाती हैं या तपस्वीकी तरह अपना जीवन व्यतीत करती हैं।" (सचाऊ भाग १ पृः १५५) उसका यह लिखना ठीक भी है।

वह आगे लिखता है—"राजाओंकी विधवाएँ, यदि वे अधिक वृद्ध न हों अथवा उनके पुत्र जीवित न हों तो, अक्सर सती हो जाती हैं।" बालविवाहकी नयी प्रथा तथा विधवा-विवाह-निषेधकी पुरानी प्रथा, इन दोनोंके संयोगसे शीघ्र ही ऊँचे वर्गके हिन्दुओंमें ऐसी अनेक अभागी स्त्रियाँ दिखाई देने लगीं जो बालविधवा कहलाती थीं। सबसे अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि मनुस्मृतिमें यह स्पष्ट आज्ञा है कि संभोगके पहले यदि स्त्री विधवा हो जाय तो उसका विवाह करना चाहिए। पर इस कालमें यह नियम भी बंद कर दिया गया। इस 'कलिवर्ज्य' के सम्बन्धमें हम आगे चलकर लिखेंगे और यह बतावेंगे कि वह इसी कालविभागमें उत्पन्न हुआ। बाल-विधवाओंका विवाह क्यों बन्द किया गया, इसका कारण समझमें नहीं आता।

अल्बेरूनी लिखता है कि हिन्दू लोग चारसे अधिक स्त्रियोंसे विवाह नहीं कर सकते। यह कथन विचित्र मालूम होता है। स्त्रियोंकी संख्याके विषयमें न तो कहीं धर्मशास्त्रोंमें रुकावट है और न इतिहासमें ही कहीं इसका उल्लेख पाया जाता है। खास कर राजा लोग तो जितनी स्त्रियोंसे चाहते, उतनीसे विवाह कर लिया करते थे। स्वयं श्रीकृष्णकी १०८ रानियाँ थीं। रासोसे ज्ञात होता है कि पृथ्वीराजकी भी आठ से कम रानियाँ नहीं थीं। अल्बेरूनी लिखता है कि हिन्दुओंमें तलाककी चाल नहीं है। यह विशेषता सिर्फ हिन्दुओंमें ही पायी जाती है और वह अबतक ज्योंकी त्यों प्रचलित है। यह उनके लिए गौरवकी बात है।

अल्बेरूनी लिखता है कि हिन्दुओंमें अपने ही निकट सम्बन्धियोंमें विवाह नहीं किया जाता। बाहरके लड़के लड़कियोंसे

विवाह किया जाता है (सचाऊ भा० २ पृ० १५५)। सगोत्रीसे विवाह नहीं करना चाहिए, इसीका शायद यह अनुवाद हो। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जातिके बाहर, विशेषत नीचेकी जातिमें, विवाह करना इस समय बन्द हो गया था। परन्तु एक ही जातिमें आचार तथा रक्तशुद्धिकी कल्पनाओंके कारण अनेक उपविभाग उत्पन्न हो गये। इस कारण बगालमें कुलीन विवाहकी एक विलक्षण पद्धति चल पडी। बल्लालसेन पाच ब्राह्मण और पांच क्षत्रिय कुटुम्बोंको बाहरसे लाया। वह स्वय हिन्दूधर्म शास्त्रमें अत्यत प्रवीण था। इसलिए उसने स्वय यह आज्ञा जाहिर की कि वे स्थानीय जातियोंसे विवाह सम्बन्ध न करें क्योंकि वे रक्तशुद्धि तथा आचरणको दृष्टिसे नवागन्तुकोंकी अपेक्षा हीन हैं। परन्तु समय पाकर इन कुटुम्बोंकी लडकिया भी उन श्रेष्ठ माने जानेवाले कुलोंमें दी जाने लगीं। और ये कुलीन वर दहेजके लालचसे अनेक स्त्रियोंसे विवाह करने लग गये। बगाल जर्नल ३८ में किसी लेखकने लिखा है कि यह अनुज्ञा लक्ष्मणसेनके समयमें दी गयी। वह यह भी लिखता है कि बाहरके कुटुम्बोंको यहा आये २८ पुश्तें गुजर गयीं।

विवाहोंके सम्बन्धमें अल्बेरूनीका सबसे विचित्र कथन तो यह है कि 'हिन्दुओंमें रण्डीबाजीकी आज्ञा है'। पुस्तक ५ प्र० २ में खुर्दादबाका भी इसी आशयका एक कथन दिया हुआ है। शायद इस कथनसे उसका यह भी आशय हो सकता है कि भारतमें व्यभिचारके लिए कोई दण्ड नहीं है। यह सत्य है कि समस्त देवालयोंमें और खासकर शिवालयोंमें वेश्याएँ नाचती थीं। पर वे वेश्याएँ ऐसी स्त्रिया थीं जो खासकर पूजाके समय नाचनेके लिए उन उन देवालयोंको अर्पित की गयी थीं। इन मदिरोंसे राजाओंको बडी आय

होती थी। मालूम होता है कि अल्बेरूनीका यह ख्याल था कि मंदिरोंमें वेश्याओंके कारण अधिक लोग जाते थे और इसीलिए मंदिरोंकी आय बढ़ जाती थी। अल्बेरूनी आगे चलकर यह भी लिखता है कि "यदि ब्राह्मणोंकी चलती तो वे एक भी वेश्याको मंदिरोंमें नाचनेके लिए खड़ी न होने देते। परन्तु राजा लोग ही सिपाहियोंका वेतन निकालनेके लालचसे वेश्याओंको नचानेकी आज्ञा देते हैं"। परन्तु हमारा ख्याल है कि यह कथन न तो ब्राह्मणोंके विषयमें और न राजाओंके ही विषयमें सत्य माना जा सकता।

हिन्दुओंकी अन्य रूढ़ियोंका वर्णन करनेके पहिले सबसे पहले सती-प्रथाका उल्लेख कर देना अधिक आवश्यक है। यह प्रथा उस समय जीवित और सर्वत्र प्रचलित थी। उसी प्रकार वृद्धावस्थामें या तो गङ्गामें या इसी प्रकारकी अन्य पवित्र नदीमें डूब कर मरनेकी चाल भी विशेष प्रचलित थी। कल्याणके राजा सोमेश्वरके जैसे कितने ही वृद्ध राजाओंके उदाहरण पेश किये जा सकते हैं जिन्होंने तीर्थोंमें डूब डूब कर अपने प्राण दे दिये थे। प्रयागमें गंगा यमुनाके संगमपर खड़ा हुआ वटवृक्ष अभीतक प्रसिद्ध था, और अल्बेरूनीने उसका उल्लेख भी किया है। उसका यह एक विशेष कथन विचारणीय और ध्यानमें रखने योग्य है कि "ब्राह्मणों और क्षत्रियोंको जल कर मरना मना है इसलिए वे गङ्गामें जल-समाधि ले लेते हैं" (सचाऊ भाग २ प्र० ६५ पृ० १५८)। ज्ञात होता है कि इस विशेष वचनका इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले कलिवर्ज्य वचनकी ओर कटाक्ष है। (भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादि मरणं तथा) इस वाक्यका यदि शब्दशः अर्थ किया जाय तो यह होगा कि वृद्ध पुरुष तथा इतर लोगोंको अग्निमें कूद कर या किसी

सीधी ऊँची चट्टानसे गिर कर नहीं मरना चाहिए। अर्थात् नदीमें डूब मरनेकी बात कायम रहो, यही न ? जो हो, यह निर्विवाद है कि अल्बेरूनीके इस कथनमें कलिवर्ज्य वचनका स्पष्ट उल्लेख है।

वेशभूषाके विषयमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अल्बेरूनीके ग्रन्थसे हमें इस विषयमें विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती। जैसा कि भाग २ में कहा गया है, सिंध, पंजाब, और उसके निकटवर्ती प्रदेशोंके लोगोंकी वेशभूषा मिश्र रही होगी। अर्थात् हिन्दुओंकी पुरानी पोशाक, दो धोतियाँ, के अतिरिक्त कुरता और पाजामा भी रहा होगा। जेवर पहननेका शौक लोगोंमें पहलेके जैसा ही था। ग्वालियरके सास-बाहूवाले मन्दिरके लेखमें (ई० ए० १६) देवताओंके अलंकारोंका जो वर्णन है उससे इस बातकी कल्पना हो सकती है कि धनिकों और राजाओंमें उस समय किस प्रकारके आभूषण पहने जाते होंगे। राजशेखरने अपनी काव्यमीमांसामें कन्नौजकी स्त्रियोंकी पोशाकका बड़ा ही मनोरंजक वर्णन यों दिया है "कानोंमें पहने हुए ताटंक गालोंपर नाचते हैं, गलेका लम्बा हार टेट नाभितक पहुँचता है और इधर उधर झूलता है। उनका उत्तरीय गुल्फसे होकर कमरतक समस्त भागके आसपास लपेटा हुआ है। इस तरहका उन कन्नौजकी स्त्रियोंका वेश वंदनीय है।"* इससे ज्ञात होता है कि उत्तर भारतकी स्त्रियाँ दो दो वस्त्र पहनती थीं। उनमेंसे उत्तरीय तो कंधेपर डाला ही जाता था परन्तु उससे पैरोंतकका उनका सारा शरीर ढंक जाता था। हाँ चेहरा जरूर खुला रहता होगा, क्योंकि

*ताटंक-वल्गन-तरंगित-गण्डलेखम् आनाभिलम्बिदरदोलिततारहारम्।
आश्रोणि-गुल्फ परिमण्डलितोत्तरीयं वेशं नमस्यत महोदय-सुन्दरीणाम्॥

ऐसा नहीं होता तो ताटक कैसे देख पडते ? हारोंमें वे उत्तरीयोंके ऊपरसे पहन लेती होंगी । दक्षिणकी स्त्रियाँ, जिनमें गुजरातकी स्त्रियाँ भी शामिल हैं, आज कल उत्तरीय नहीं रखतीं। परन्तु उनका एक ही वस्त्र इतना लम्बा होता है कि वह अकेला ही उत्तरीय वस्त्रका काम देता है। उत्तरमें और गुजरातमें जो घूंघटकी चाल है वह सभवतः मुसलमानोंके समयसे प्रचलित हो गयी होगी ।

अन्तमें खानपानकी बात आती है। इसके विषयमें हम पहले विस्तारपूर्वक लिख ही चुके हैं। उत्तरके ब्राह्मण केवल खास खास प्राणियोंका मांस ही खाते थे, शराब निषिद्ध थी। दक्षिणके ब्राह्मण मद्य और मांसको भी निषिद्ध मानते थे। बलिक यों कहना चाहिये कि चूंकि इस समय जैन धर्मका प्रचार बहुत हो रहा था और तमाम वैश्य मांस छोडते जा रहे थे अतः ब्राह्मणोंने भी जैन वैश्योंका अनुकरण किया और अहिंसा तत्त्वको पूर्णतः और व्याप्यतः बढाया। इस काल विभागमें भारतमें अहिंसाकी लहर फिर दौड गयी और जैनोंके अतिरिक्त वैष्णव तथा लिंगायत भी पक्के शाकाहारी बन गये। इस कारण खानपान भी अपनी अपनी जातियोंमें ही *मर्यादित* हो गया। पूर्व कालमें ब्राह्मण लोग क्षत्रिय, वैश्य, बलिक कितने ही सच्छूद्रोंके यहाँ भी भोजन कर सकते थे। किन्तु अब वह बात नहीं रही। अब वे केवल अपनी जाति या उपजातिमें ही भोजन कर सकते थे। मतलब यह कि इस समय हिन्दू समाजके अनेक विभागोपविभाग हो गये और उनमें आपसमें रोटी बेटीका व्यवहार भी बंद हो गया।

अहिंसाका प्रभाव क्षत्रियोंपर भी पडा। और कितनोंहीने निश्चय कर लिया कि खास खास दिनोंमें मांस न खाया

जाय। कुछ वैष्णव क्षत्रिय भी हैं जो विलकुल मांस खाते ही नहीं। मद्य न पीनेके विषयमें शायद वे अपने पूर्व यशको कायम न रख सके (पिछले काल-विभागके अरब लेखकोंने लिखा है कि राज्य करनेवाले क्षत्रिय मद्य नहीं पीते), क्योंकि अल्बेरूनी लिखता है:—"कुछ भी खानेके पहले वे मद्य पीते हैं, तब खानेके लिए बैठते हैं" (सचाऊ जिल्द १ पृ० १८८)। यों यह कथन समस्त हिन्दुओंके विषयमें किया गया जान पड़ता है परन्तु हमें उसे केवल क्षत्रियोंके विषयमें ही समझना चाहिए। इसके आगेका कथन "वे गोमांस नहीं खाते" समस्त हिन्दुओंके विषयमें है। हिन्दुओंने तो बहुत प्राचीन कालसे गोमांसको वर्ज्य ठहरा दिया है और गोमांस-भक्षणको महापातक बताया है। गाय और बैलोंकी हिंसा भी बहुत प्राचीन कालसे ही बन्द हो चुकी थी। और इस काल-विभाग में फैली हुई अहिंसाकी लहरके कारण तो गो-हत्या निषेध हिंदू-धर्मका एक महत्वपूर्ण तत्व बन गया। आजकलकी भांति ही उस समय भी हिन्दू मुसलमानोंमें इस नाजुक प्रश्नपर बड़ा वैमनस्य रहा होगा।

आजकलके समान ही उस काल-विभागमें भी हिन्दू अपने शवोंको जलाते थे। सूतक मानते थे। अल्बेरूनीने जन्मके अशौचका जिक्र किया है। ब्राह्मण आठ दिन, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य पंद्रह दिन और शूद्रोंको एक महीनेतक यह सूतक मानना पड़ता था। यह बात विचित्रसी मालूम होती है। स्त्रियोंके रजस्वला होनेपर चार दिन अस्पृश्य रहनेका उल्लेख भी उसने किया है। गोदान अर्थात् केशकर्तनविधि तीसरे साल और कर्णच्छेदन सातवें या आठवें वर्षमें किया जाता था। यह दूसरी चाल हिन्दुओंकी विशेषता है जो मुसलमानोंमें नहीं

पायी जाती। अल्बेरुनीने गर्भाधान संस्कारका भी उल्लेख किया है। अवश्य ही बाल विवाहोंके प्रचारके कारण स्वभावतः इस संस्कारका महत्व बढ गया होगा।

तीसरा प्रकरण ।

धर्मैक्यनाश तथा धार्मिक द्वेष ।

पिछले काल विभागमें सिन्ध प्रान्तको छोडकर समस्त भारतवर्षमें केवल एक ही धर्म अर्थात् हिन्दूधर्म ही प्रचलित था, अतः उस समय उसकी यह स्थिति अधिक सुखप्रद थी। किन्तु इस काल-विभागमें भारतवर्ष पुनः उस दुःखद स्थितिमें जा पडा जिसमें यहाँ तीन तीन भिन्न धर्म प्रचलित हो गये थे। यही नहीं, विशेष दुःखकी बात तो यह है कि अकेले हिन्दूधर्मके भीतर ही आपसमें एक दूसरेसे द्वेष करनेवाले भिन्न भिन्न मतमतान्तर खडे हो गये। इस कालविभागमें सिन्धके अतिरिक्त गजनी, काबुल और पंजाबमें भी इस्लामकी सत्ता शुरू हो गयी और राजपूताने तथा गुजरातमें जैनमतका प्रभाव फैल गया। (हां, दक्षिणमें जरूर जैनमत कमजोर पड गया।) इधर हिन्दूधर्मके अन्तर्गत भिन्न भिन्न सिद्धान्तों तथा उपासना पद्धतियोंके कारण मतभेद बहुत बढ गया। परिणाम यह हुआ कि शक्तिशाली राष्ट्रका एक मूलाधार धर्मैक्य नष्ट होते ही भारत दुर्बल हो गया। इस प्रकरणमें हम बतावेंगे कि वायव्य दिशामें इस्लामका और पश्चिममें जैनधर्मका प्रचार किस तरह हुआ। साथ ही हम यह भी बतावेंगे कि हिन्दूधर्मके अंतर्गत भिन्न भिन्न मतोंमें द्वेष किस तरह बढा।

इस्लाम धर्म।

हम पहले ही कह चुके हैं कि गजनीमें तुर्की राज्यकी स्थापना होकर सबुक्तगीन तथा महमूदने काबुल और पंजाब प्रांतोंको जीत लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि "गौर भारत" (अर्थात् सिंधुके पश्चिमका काबूल और ज़ाबुल प्रान्त) तो मुसलमान हो ही गया, परन्तु पंजाबका भी स्वातंत्र्य नष्ट हो कर वहांकी जनताका बहुत बड़ा हिस्सा बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया। यह महान् परिवर्तन इस कालविभागके प्रारम्भ (६७५ से १०२५ ई०) में हुआ। राजनीतिक सुविधा तथा धार्मिक कट्टरताके कारण भी सबुक्तगीन और उसके पुत्र महमूदने हिन्दुओंको बलपूर्वक मुसलमान बनानेकी नीति अख्तियार की। इसे रोकनेके लिए यहांकी जनताने जो विरोध किया उसमें कुछ जान न थी। इसका कारण यह हो सकता है कि यहांके लोगोंकी, विशेषतः सिंधुके पश्चिममें बसनेवाले हिन्दुओंकी, धर्म भावना ही दुर्बल थी। अब तो ये ही लोग इस तरह पक्के मुसलमान हो गये हैं कि वे इस बातको बिलकुल भूल गये कि नौ वर्ष पहले हम लोग—गोरके पर्वतीय प्रदेशमें रहनेवाले—हिन्दू ही थे। अफगान और पठान इस समय अपनेको असीरिया या अरबिस्तानसे आये हुए सेमेटिक लोगोंके वंशज मानते हैं। परन्तु यद्यपि पंजाबके पश्चिमके लोग मुसलमान हो गये हैं तथापि उन्होंने अपने पूर्वधर्मके क्षत्रिय या जाट नामोंको अबतक कायम रखा है। विवाहादिमें भी उनमें ऐसे ही प्रतिबंध अबतक हैं तथा हिंदू कालकी कुछ विधियोंका वे अबतक पालन कर रहे हैं। पंजाबके लोगोंका धर्म-परिवर्तन प्रायः इस कालके अन्तमें हुआ, क्योंकि शहाबुद्दीन गोरीने जीते हुए

लोगोंको बलपूर्वक मुसलमान बनानेकी रीति अधिकांशमें प्रचलित रखी। पंजाबका पहाड़ी प्रदेश तथा काश्मीर स्वतंत्र थे, इसीलिए वे हिन्दूधर्मानुयायी बने रहे।

यह तो हम देख ही चुके हैं कि जबर्दस्ती मुसलमान बनानेकी पश्चिम पंजाबवाली नीति महमूदने भी पूर्व पंजाबमें जोरोंके साथ नहीं बरती। यही शहाबुद्दीनने भी किया। सरस्वती, गंगा, तथा यमुनाके प्रदेशमें तो इस नीतिका प्रायः परित्याग ही कर दिया गया। इसलिए संयुक्त प्रान्त अब भी मुख्यतः हिन्दू धर्मावलम्बी ही है। इस नीति परिवर्तनके कारण सम्भवतः यही होंगे—(१) धर्मान्ध मुसलमान भी दूसरोंको जबरदस्तीसे मुसलमान बनाते बनाते थक जाते हैं। (२) शायद महमूदने सोचा हो कि जनतामें—खासकर राजधानीसे दूसरे प्रान्तोंमें रहनेवाली जनतामें—धार्मिक भेदभाव और फूट उत्पन्न कर देना राजनीतिक दृष्टिसे अधिक लाभप्रद है। (३) कुतुबुद्दीन और अलतमश धर्मान्ध मुसलमान नहीं बल्कि चतुर राज्यकर्ता थे। शायद वे अंग्रेजोंकी भाँति इस बातकी उपयोगिता समझ गये थे कि जनताकी धार्मिक बातोंमें हस्तक्षेप न करना ही न्यायोचित है और समझदारीकी नीति है। (४) अन्तिम कारण यह प्रतीत होता है कि यहाँके लोगोंकी धर्म-भावना पंजाब अथवा सिंधप्रदेशके लोगोंकी धर्मभावनाकी तरह दुर्बल न थी। यह प्रदेश ब्राह्मण धर्मका जन्मस्थान है। हिन्दू धर्मके आचार्योंकी यह उपदेश भूमि है। हिन्दुओंने जिन्हें ईश्वरका अवतार माना है उन राम कृष्ण आदिके जन्म कर्मका क्षेत्र भी यही है। इन अनेक कारणोंसे हमारा ख्याल है कि इस प्रान्तके लोगोंके धर्ममें बाधाएँ नहीं खड़ी की गयीं। और इसी लिए आज भी वे धर्मनिष्ठाके ख्यालसे भारतके

हिन्दुओंमें सबसे अधिक बलवान् है। इन प्रान्तोंमें रहनेवाले मुसलमान धर्मभ्रष्ट हिन्दू नहीं हैं। वे तो उन मुसलमान पुरुषोंके वंशज हैं जो अफगान सुलतानों तथा मुगल सम्राटों-की सत्ताके दिनोंमें अधिकारी आदि बनकर वहाँ आये थे। संख्यामें वे बहुत थोड़े हैं और हमने इस ग्रन्थके अंतमें जो भारतका नक्शा दिया है उसमें यह प्रान्त यदि पूर्णतः हिन्दू प्रान्त भी कहा जाय तो कोई हर्ज न होगा। हाँ, पूर्वमें अर्थात् बंगालमें जरूर इसके बाद खिलजी सूबेदारों तथा उनके उत्तर कालमें होनेवाले राजाओंने लोगोंको जबरदस्ती धर्मभ्रष्ट करने-का काम शुरू कर दिया था। इसलिए वहाँ हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमानोंकी संख्या अधिक भी है। परन्तु यह बात हमारे इस कालविभागके बादकी है, इसलिए उपर्युक्त नक्शेमें तो बंगालको हिन्दू प्रान्त ही समझना चाहिए। इस प्रकार सतलजसे लेकर ब्रह्मपुत्रतक और हिमालयसे लेकर विंध्यतक इस कालविभागके आरम्भमें वह समस्त प्रदेश हिन्दू ही था। तथापि इस कालावधिके अंतमें आर्यावर्तका धर्मैक्य नष्ट हो चुका था। उत्तरमें इस्लाम, गुजरात और राजपूतानामें जैन-धर्म और बंगालमें वैष्णव धर्मका प्रचार हो जानेके ही कारण इस धर्मैक्यके नाशकी नौबत आयी। जैन धर्मका एक प्रान्तमें प्रचार और दूसरेमें संकोच क्यों हुआ, इसका इतिहास बड़ा मनोरंजक है, इसलिए उसके कारण हम उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधारपर नीचे देते हैं। परन्तु इसके पहले हम जन्मसे लेकर इस समयतकका जैनधर्मका इतिहास भी संक्षेपमें लिख देना आवश्यक समझते हैं। क्योंकि बिना उसके जाने इस कालविभागमें यह महान् धर्म जिन परिस्थितियोंमेंसे गुजरा उनका कारण और रहस्य समझमें नहीं आ सकता।

जैन धर्म

कितने ही पाश्चात्य विद्वान् तथा प्राचीन पुराण लेखक जैन धर्म और बौद्ध धर्मके विषयमें बड़ी गड़बड़ी करते हैं। इसका कारण एक तो यही है कि दोनोंका मूलभूत सिद्धान्त अहिंसा ही है और इन दोनों ही धर्मोंके प्रवर्तकों या आचार्योंको बुद्ध (जिसे बोध हो गया) और जिन (जेता) कहते हैं (उदाहरणार्थ बुद्धो जिन पालु व)। महावीरके अनुयायियोंको जैन पीछेसे कहने लगे हैं। इनका पहला नाम निर्ग्रन्थ था। दूसरे, महावीर और गौतम समकालीन थे। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि इन दोनोंमें गौतम कुछ बादके हैं। वैदिक धर्मके विरुद्ध सबके बादमें बलवेका झगड़ा खड़ा करनेवाला तत्वज्ञानी बुद्ध ही था। महावीर तो काल और विचार इन दोनों दृष्टिसे बुद्धका पूर्ववर्ती तत्वज्ञानी है। अब यह देखना चाहिये कि इन्होंने वैदिक धर्मकी किन किन बातोंका विरोध किया। उपनिषदिक तत्ववेत्ताओंने इसके कहीं पहले विश्वके अत्यन्त श्रेष्ठ आध्यात्मिक प्रश्नोंके विषयमें विचार कर कुछ सिद्धान्त स्थिर कर लिये थे। तथापि वे स्वय अभीतक वैदिक धर्मको पकड़े हुए थे। इन उपनिषदोंके विचारों सहित वैदिक धर्ममें नीचे लिखी बातें मान्य हैं—(१) वेद परमेश्वरके मुहँसे निकले हैं। (२) वेदोंमें वर्णित देव, इन्द्र, वरुण, इत्यादि और उत्तर वैदिक कालमें शिव और विष्णु पूज्य हैं। (३) इन वैदिक देवताओंकी हिंसायुक्त यज्ञोंद्वारा पूजा करना श्रेयस्कर है। (४) चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ईश्वरनिर्मित है और यज्ञकर्म इत्यादि करानेवाले ब्राह्मण, धर्मकी दृष्टिसे, श्रेष्ठ हैं। (५) आश्रम चार हैं, उनमेंसे तीसरा तपके लिए और चौथा सन्यास

द्वारा मोक्ष प्राप्तिके लिए है। इस कालविभागमें ब्राह्मण यह कहने लगे थे कि ये अन्तिम दो आश्रम केवल ब्राह्मणोंके लिए ही खुले हैं। (६) शरीरमें जीवात्मा है और वह परमात्माका अंश है। (७) कर्मानुसार आत्मा अनेक योनियोंमें संचरण करता है।

तीसरी बातके विषयमें उपनिषद् कालमें ही तत्ववेत्ता लोग कहने लगे थे कि हिंसायज्ञोंसे परम पुरुषार्थ प्राप्त नहीं होगा, मोक्षका मार्ग संन्यास ही है। भगवद्गीतामें दोनोंको समान महत्त्व दिया गया है। अर्थात् प्राचीन कालके धर्मनिष्ठ लोगोंके यज्ञ तथा संन्यास, चातुर्वर्ण्य चातुराश्रम्य, उसी प्रकार तप और संन्यासका तत्वज्ञान, या योग और सांख्य, इन सबको भगवद्गीताने समान बताया है। परन्तु इसके अतिरिक्त एक और भी मार्ग भगवद्गीतामें बताया गया है—भक्ति। इससे तो स्त्रियाँ तथा शूद्र भी—जिन्हें ब्राह्मणोंके मतानुसार मोक्ष अप्राप्य है—मोक्षको प्राप्त कर सकते हैं।

ई० सन् पूर्व १००० तक भारतीय आर्यधर्मकी प्रगतिका इतिहास संक्षेपमें ऊपर लिखे अनुसार है। पुराने धर्माभिमानी लोग इन सातों बातोंको मानते थे किन्तु भिन्न भिन्न तत्ववेत्ता या ज्ञानी लोग कुछ सिद्धान्तोंको मानकर शेषका निषेध करते थे। इसके बाद अनेक प्रतिषेधक तत्वज्ञानी पैदा हुए। परन्तु महावीर और बुद्ध ये दो अन्तिम सुधारक सबसे अधिक प्रबल थे, इसलिए उनके द्वारा संस्थापित प्रतिषेधक धर्म अबतक जीवित हैं। गौतम और महावीरने भी पहले पाँच तत्वोंका निषेध किया और सातवें सिद्धान्त अर्थात् कर्मसिद्धान्तको माना। महावीर तप और संन्यास दोनों आश्रमोंको मानता है। गौतम इससे भी आगे बढ़कर तपको वृथा कहकर केवल

संन्यासको ही मानना है। फलतः लोग उसीके मतको ज्यादा पसन्द करने लगे। फिर उसने समस्त मनुष्यमात्रको, चाहे वह आर्य हो या अनार्य, त्रैवर्णिक हो या शूद्र, सबको संन्यास संस्थामें ले लिया। और तप अर्थात् शारीरिक कष्टोंको बिलकुल उडा दिया। इसलिए उसके धर्मका प्रचार बहुत ज्यादा हुआ। उसके मतानुसार न तो ईश्वर है और न आत्मा ही है। कमसे कम उसने अपने अनुयायियोंको तो यही कहा कि इस झंझटमें तुम पड़ो ही मत। उसने तो इसीपर सबसे ज्यादा ज़ोर दिया कि गृहस्थोंको नीतियुक्त आचरण करना चाहिए और भिक्षुओंको सर्वसंग परित्याग करना चाहिए।

महावीरका निषेध गौतमकी अपेक्षा कुछ सौम्य था, क्योंकि एक तो उपवासादि शारीरिक क्लेश उसे मान्य थे, दूसरे, वह उपदेश देने लगा कि सन्यासीको कपड़े तकका उपयोग नहीं करना चाहिए। गृहस्थोंके सदाचरणपर वह भी ज़ोर देता था। दोनों योग और सांख्य दर्शनको खूब मान्य समझते थे और वेद तथा ब्राह्मणोंको माननेसे दोनों इनकार करते थे।

इस प्रकार ब्राह्मण धर्मका सबसे अन्तिम और अधिक कट्टर विरोधी बौद्धधर्म था, इसलिए स्वभावतः जैन धर्मकी अपेक्षा उसका अधिक प्रसार हुआ। इसके अतिरिक्त हमारा ख्याल है कि बुद्धने जनसाधारणकी भाषामें अपने उपदेश किये, किन्तु महावीरने ऐसा नहीं किया। इस कारण शीघ्र ही बौद्धधर्म-शास्त्रका पाली भाषामें निर्माण हो गया। इसके विपरीत जैनधर्म शास्त्र बहुत दीर्घकालतक लिखा ही नहीं गया। बौद्ध भिक्षुओंका जीवन-क्रम बिलकुल सादा था। इसके विपरीत महावीरने मुनियोंको नग्न रह कर शरीर-शोषण द्वारा

तपस्या करनेका आदेश दे रखा था, जो अत्यंत कठिन था। अंतिम बात यह है कि अशोक और कनिष्क, इन दो बौद्ध सम्राटोंके कारण बौद्ध धर्म अत्यंत शक्तिशाली हो गया। इन कारणोंसे जहां भारतमें, विशेषतः उत्तर भारतमें, बौद्धधर्म सदियों तक सर्व साधारणका धर्म था, वहाँ जैनधर्म अल्पसंख्यक लोगोंका ही धर्म था। हुएनत्संगके सुविस्तृत यात्रा-विवरणसे एक धार्मिक नक्शा तैयार करके हमने अपने इतिहासके प्रथम भागमें लगा दिया है। उससे यह स्पष्ट हो सकता है कि भारतके कितने ही भागोंमें अर्थात् कपिश, सिंध, मगध, मालवा आदि प्रान्तोंमें बौद्धधर्म सर्वव्यापी था। और भारतके अन्य भागोंमें वह हिन्दूधर्मके साथ साथ फैला हुआ था। इसके विपरीत जैनधर्म कुछ ही लोगोंमें, कुछ ही प्रदेशोंमें और सो भी केवल सातवीं सदीमें फैला था। बिहार, उड़ीसा, अथवा कलिंग, चोल और कर्नाटकमें ही वह दृष्टिगोचर हो रहा था। इसके बाद जब कुमारिल और शंकरने बौद्धधर्मपर अन्तिम धावा मारा, उस समय जैनधर्म कम महत्वपूर्ण शत्रु रह गया था, इसलिए उसपर जोरोंसे आक्रमण नहीं किया गया और इसीलिए वह भारतमें जीवित रह सका। किन्तु बौद्धधर्म पर तो इतने जोरोंसे आक्रमण हुआ कि भारतसे उसका करीब करीब लोप ही हो गया। पर स्मरण रहे कि बुद्धि-सामर्थ्यमें बौद्धधर्मकी अपेक्षा जैनधर्म कदापि कमज़ोर नहीं था। बादरायणके ब्रह्मसूत्रमें जैनधर्मके दर्शनशास्त्रको महत्वपूर्ण मान कर उसका ही खंडन करनेका यत्न किया गया है। किन्तु हमारा तो ख्याल है कि जैनधर्मी शुरूसे ही उन सब विषयोंमें प्रवीणता प्राप्त कर लेते थे जो शास्त्रार्थके लिए आवश्यक होते थे। अतः उनकी ओर लोगोंका ध्यान खूब आकृष्ट होता था।

जिस प्रकार बुद्धिमान् ब्राह्मण बौद्ध हो जाते थे, उसी प्रकार वे कभी कभी कायल हो जानेपर अथवा सम्मान प्राप्त करनेके लिए जैनोंमें मिल जाते और जैनोंकी ख्यातिको अक्षुण्ण रखते।

बौद्ध धर्मकी तरह, अथवा यों कहना चाहिए कि प्रत्येक धर्मकी तरह, शीघ्र ही जैनियोंमें भी दो शाखाएँ हो गयीं। दिगम्बर अपने मुनियोंको नग्न रखने पर जोर देते थे, किन्तु श्वेताम्बरोंने उन्हें दो श्वेत वस्त्र धारण करनेकी इजाजत दे दी। जिन जैनोंने दक्षिणमें जाकर पहले पहल धर्मोपदेश दिया वे दिगम्बर शाखाके थे। आजकल दक्षिणमें कुछ थोडेसे श्वेताम्बर जैन दिखाई देते हैं पर वे उनमेंसे हैं जो पीछेसे आधुनिक कालमें गुजरात और राजपूतानासे वहाँ पर व्यापारके लिए गये थे। प्रथम महान् उपदेशका नाम, जो पहले पहल दक्षिण भारतमें गया था, भद्रबाहु था। यह किसी दीर्घ अकालमें उज्जयिनी छोड कर अपने अनेक शिष्यों सहित दक्षिण भारतकी ओर चल पडा और ठेठ मैसोरके श्रवण बेलगोल तक जा पहुँचा। दूसरे जैन विहारसे कलिंग होते हुए पूर्व किनारेके मार्गसे दक्षिणमें आये होंगे। इस तरह आन्ध्र, तामिलनाड़ और कर्नाटकमें जैन धर्म स्थापित हुआ। ईसाई संवत्की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें, तथा हुएनत्संगके कालमें और उसके बाद इन प्रान्तोंमें जैन धर्मका प्रचार था। किन्तु महाराष्ट्रमें वह नहीं फैला था। जैन मुनि बडे विद्वान् होते थे। इसलिए इन तीनों प्रान्तोंकी लोकभाषाओंका उन्होंने अध्ययन किया और तामिल, कानडी, तथा तेलगूमें उन्होंने अपने ग्रन्थ लिखे। इस कारण जनसाधारणपर उनका बडा प्रभाव पडा। इन प्रान्तोंमें पहले जैन लोग थे और अभीतक हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि उत्तर भारतमें बहुत थोडे अशिक्षित जैन होते हैं।

जैन पण्डितोंने लोकभाषाओंमें अपने ग्रन्थ लिखते समय उनमें मूल संस्कृत शब्दोंका अविकृत शुद्ध रूपमें प्रयोग किया, जिससे तामिल, कानडी, और आन्ध्र साहित्य बहुत परिष्कृत और सुशोभित मालूम होने लगा। बौद्धोंके समान नरम उच्चारणवाले प्राकृत शब्दोंका उन्होंने उपयोग नहीं किया। इसीलिए उनके देशी भाषाके ग्रन्थ रसमय मालूम होते हैं। उन्होंने संस्कृतमें देशी भाषाओंका व्याकरण भी बना दिया। ज्ञात होता है कि बच्चोंकी पढ़ाईके लिए उन्होंने पाठशालाएँ भी स्थापित कर दी थीं, क्योंकि पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आन्ध्र तामिल और कर्नाटक प्रान्तोंमें बल्कि महाराष्ट्रमें भी बच्चोंकी पढ़ाईयोंमें वर्णमालाका आरम्भ करते समय जो प्रथम नमो वाक्य—ॐ नमः सिद्धम्—है वह जैन नमोवाक्य है। तेलगू लोग 'ॐ नमः शिवाय सिद्धम् नमः' इस मन्त्रका उपयोग करते हैं। (आन्ध्र कर्नाट जैनिज़म पृ० ६४ दक्षिणके जैन धर्मका इतिहास: रामस्वामी ऐयंगर एम० ए०) रामस्वामीका कथन है कि उपर्युक्त मन्त्रका दूसरा हिस्सा बौद्ध है। परन्तु मालूम तो यह होता है कि वह भी जैन ही है। "पहला हिस्सा तो बादमें शैवोंके द्वारा जोड़ा गया जब उन्होंने जैनोंका प्रभाव नष्ट करनेके लिए शहरों और देहातमें मठ और प्राथमिक पाठशालाओंकी स्थापना की"। कलिंग अर्थात् उड़ीसामें इसका केवल 'सिद्धिरस्तु' हिस्सा ही प्रचलित है। स्पष्ट ही यह जैन वाक्य है। महाराष्ट्रमें 'ॐ नमः सिद्धम्'के पहले श्रीगणेशायनमः भी लिखा जाता है। इन प्राचीन मन्त्रोंसे यह बोध होता है कि दक्षिण भारतमें बच्चोंकी पढ़ाईके काममें जैन तपस्वी बहुत कुछ हाथ बटाते थे।

जैन लोग हिन्दू राजाओंके दरबारोंमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी भी खूब कोशिश करते थे। तामिल देशमें चोल और पांडय

राजाओंने जैन गुरुओंको दान दिये हैं। ईसाई संवत्‌के आरम्भ में ही पाण्ड्योंकी राजधानी मदुराके नजदीक बडे बडे जैन देवालय तथा तपस्वी गृह बन गये थे। मैसूर प्रान्तके गंगवाडी प्रान्तमें गंगराजोंने जैनोंको विशेष आश्रय दिया था। और बहुत संभव है कि वे खुद भी जैन ही रहे हों। स्यमन्तभद्र नामक एक दिगम्बर महान् धर्मोपदेशक था। श्रवण बेलगोलके पहाडोंमें शिलालेख नं० ५४ में ऐसा लिखा है कि इसने पाटलिपुत्र, मालवा, सिंध और टक्क देश (पंजाब) में डुग्गी पिटवा पिटवा कर शास्त्रार्थ करनेवालोंको चुनौती देकर बुलाया। अन्तमें वह कांची गया और वहाँसे कर्नाटक चला गया। इसके बाद सिंहानंदी नामक धर्मोपदेशक हुआ। कहा जाता है कि इसीने गंगवाडीके राज्यकी स्थापना की। स्यमंतभद्र आप्तमीमांसा नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थका कर्ता है। इस ग्रन्थमें "स्याद्वाद" सिद्धान्त का सबसे अधिक मान्य और विशद विवरण दिया गया है। पूज्यपाद नामक एक और विद्वान् जैन था जो 'जिनेन्द्र व्याकरण' नामक एक संस्कृत जैन व्याकरणका कर्ता है। कांचीके 'हिमशीतल' राजाके दरबारमें अकलंकने बौद्धोंका पराभव किया और इस पराभव द्वारा उसने दक्षिण भारतसे बौद्धोंके निर्वासनका आसान बना दिया" (उपर्युक्त ऐयंगरका ग्रन्थ पृ० ३३)। मतलब यह कि दक्षिणके भिन्न भिन्न राजाओंके दरबारमें अपनी विद्वत्ता और तपश्चर्यासे जैनोंने उनकी कृपादृष्टि प्राप्त कर ली। कई राजाओंने उन्हें गाँव इनाममें दिये तथा उनके लिए मन्दिर बनवा कर 'जिन'की बडी बडी मूर्तियाँ बनवा दीं। यहाँपर यह कह देना आवश्यक है कि बौद्ध धर्ममें और जैन धर्ममें भी ईश्वर और मूर्ति-पूजाका निषेध है, तथापि आगे चलकर बुद्ध और

'जिन' की ही मूर्तियाँ बन कर उनको देवताके समान पूजा होने लगी। (इस स्थानपर हमें यह भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि जैनोंमें कुछ शाखाएँ जरूर होती हैं जो न तो मूर्तियोंको मानती और न किसी प्रकारकी पूजा ही करती हैं।) जैनोंने अपने तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ बनाकर बडे बडे भव्य मन्दिरोंमें उन्हें स्थापित किया और उनकी पूजा करनी शुरू कर दी। "ईश्वर भक्तिकी यह पद्धति मनोवेधक भी है और भव्य भी। अतः हिन्दुओंने भी इसका अनुकरण करना आरम्भ किया।" (वही पुस्तक पृ० ७७) जैसा कि हम भाग १ और भाग २ में पहले कह चुके हैं इसका परिणाम यह हुआ कि दक्षिणमें भिन्न भिन्न राजाओंके शासनकालमें बड़े बडे हिन्दू देवालय बन गये। हमारा भी यही मत है कि यदि हिन्दुओंमें जैन और बौद्धोंकी मूर्ति-पूजाके कारण मूर्ति पूजा शुरू न हुई हो तो भी उनके अनुकरण-से उसकी वृद्धि तो अवश्य ही हुई।

इस प्रकार जैन धर्मकी प्रगतिका अब तकका इतिहास संक्षेपमें देकर अब हम यह देखेंगे कि इस भागमें वर्णित काल विभागमें दक्षिणमें जैनधर्मका ह्रास अथवा अंत कैसे हुआ। यह वर्णन हम मुख्यतः रामस्वामी ऐय्यंगरके उपर्युक्त ग्रन्थके आधारपर ही देंगे। जैनधर्मका सबसे अधिक विरोध शैव मतके पुनरुज्जीवन और उसके उत्साही प्रचारकों द्वारा हुआ। "सम्बन्दर (एक शैवसाधु) ने पांड्य राज्यसे जैनधर्मका लोप कर दिया तो अप्परने पल्लव राज्यसे जैनियोंको भगा दिया" (पृ० ६६)। यह बात आठवीं सदीके प्रारम्भकी है। परन्तु दसवीं सदीके अन्तमें जब कट्टर शिवभक्त चोल राजा शक्तिशाली हुए तब उन्होंने और भी अधिक क्रूरताके साथ जैनोंको सताना शुरू किया। हम पहले कह चुके हैं कि एक दंतकथाके

अनुसार अत्याचार पीड़ित जैन साधुओंके शापके कारण एक चोल राजा मर गया था। इससे यह बात निर्विवाद है कि जैनधर्मको कुचलनेके लिए चोल राजाओंने अपनी सत्ताका पूरा पूरा उपयोग किया। मदुराम राजराज चोलने जो शिवालय बनवाया है उसमें तामिल देशके ६३ प्रसिद्ध नायनार अर्थात् शैव साधुओंकी मूर्तियां भी पूजाके लिए रख दी गयी हैं। पर इससे भी विचित्र बात हमें एक दूसरी जगह देखनेको मिलती है। मदुरामें मीनाक्षी देवीके मंदिरमें "गोल्डन लिली टैंक" अर्थात सुवर्ण पद्मसरोवरके मंडपकी दीवारोंपर जो चित्रकारी है उसमें जैनधर्म और हिन्दूधर्मके बीच जो तीव्र झगड़े हुए उनके चित्र हैं। उन्हें देखकर हम आसानीसे जान सकते हैं कि किस बुरी तरह दक्षिणमें जैनधर्मका उच्छेद किया गया (पृ० ७६)।

तामिलदेशसे अब हम कर्नाटक अर्थात् दक्षिण महाराष्ट्र और मैसूरकी ओर बढ़ते हैं। कर्नाटकमें राज्य करनेवाले पूर्व चॉलुक्य यद्यपि थे तो कट्टर हिन्दू तथापि उन्होंने जैनोंको भी आश्रय दिया था तथा जैन मंदिरों और जैन साधुओंको दान भी दिये थे। इसके बाद दूसरे कालविभाग (८०० से लेकर १००० तक) में राष्ट्रकूटोंके शासनकालमें जैनधर्मका उत्कर्ष ही होता रहा। और जैसा कि भाग २ में कहा गया है कुछ राष्ट्रकूट राजा जैन साधुओंके भक्त भी बन गये थे। दक्षिण महाराष्ट्र देशकी किसान प्रजामें भी जैनधर्मका प्रचार हो गया। वैश्य तो अन्य प्रान्तोंके समान यहां भी अहिंसा धर्मके चाहने वाले थे। इसलिए उनकी अधिकांश जन संख्या इस प्रान्तमें भी जैन ही थी। मैसूरके गंग राजा स्वयं जैन थे। राष्ट्रकूट घरानेका अधिकारी चौथा इन्द्र तीसरे कृष्ण और उसकी

पश्चिमी गंगवंशीय रानीका पुत्र था, इसलिए वह धर्मशील जैन था। आगे चलकर जब उत्तर चालुक्योंने अंतिम राष्ट्रकूट राजा कक्कलका उच्छेद किया, तब चौथे इन्द्रने राष्ट्रकूट सत्ताको पुनः स्थापित करनेका यत्न किया, पर वह सफल नहीं हुआ। तब उसने सल्लेखन विधिके अनुसार (यह एक जैन व्रत है) कट्टर जैनकी तरह अपना प्राण त्याग दिया (पुस्तक ४, पृ० १०)। जब हम मालखेड गये तो वहाँ हमें एक पुराने जैन मठका अवशेष दिखाई दिया (भाग २ परिशिष्ट ६)। गाँवमें भी एक जैन बस्ती है। इससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि दसवीं सदीके अंतमें दक्षिण महाराष्ट्रमें जैन धर्म पूर्णरूपसे प्रचलित था। परन्तु इस कालविभागमें पश्चिमी चालुक्योंकी सत्ताकी स्थापना होते ही वहाँ फिर जैन सताये जाने लगे, क्योंकि ये चालुक्य नरेश, खासकर तैलप आदि राजा, कट्टर शैव थे। यदि इस प्रान्तकी परम्परागत दंत कथाओं पर विश्वास किया जाय तो कहना होगा कि बस्तीसे जैन मूर्ति और देवताओंको फेंक कर उनके स्थानपर पौराणिक देवताओंकी मूर्तियाँ स्थापित कर दी गयीं (उपर्युक्त ग्रन्थ पृ० ११२)। रामस्वामीका यह कथन गलत है कि उत्तर चालुक्योंकी सत्ता अल्पकालीन थी। कलचूरी राजाओंने उनकी सत्ताको ११२६ में नहीं बल्कि ई० सन् ११५६ में नष्ट किया था। हाँ, कलचूरी राजाओंकी सत्ता जरूर अल्पजीवी थी। परंतु कलचूरियोंका विद्रोह संभवतः धार्मिक विद्रोह रहा होगा, क्योंकि विज्जल कलचूरी जैन था। परन्तु विज्जल और कलचूरियोंकी सत्ता लिंगायत पंथके रूपमें लोटी हुई शैवमतकी लहरके सामने अधिक समयतक टिक न सकी। शीघ्र ही, जैसा कि आगे कहा गया है, उसका पतन हो गया।

तुंगभद्राके उसपार मुख्य कर्नाटकमें गंगोंका राज्य दीर्घकालतक कायम रहा। वे जैन साधुओंके अनुयायी थे। ई० स० १००४ के लगभग तंजावरके चोलोंने गंगोंकी सत्ता छीन ली। परन्तु गंगवाड़ीमें होयसलोंने उनकी सत्ता भी नष्ट कर दी। होयसल पहले पहल जैन धर्मके अनुयायी थे। परन्तु प्रसिद्ध विष्णुवर्धन राजाको रामानुजने वैष्णव धर्मका अनुयायी बना लिया। तबसे मैसूरमें वैष्णव मत मजबूत बुनियादपर स्थापित हो गया। "इस तरह मैसूरमें राज्याश्रय-विरहित होनेपर, तामिल देशमें चोलोंके द्वारा सताये जानेपर, तथा दक्षिण महाराष्ट्रमें प्रतिस्पर्धी लिंगायत धर्मपंथके खड़े हो जानेके कारण जैन धर्म स्वभावतः दक्षिण भारतमें हमेशाके लिए कमजोर हो गया। यद्यपि आज भी दक्षिणमें जैनियोंकी सख्या अच्छी है तथापि अब उसका वह प्रभाव जाता रहा जो राजप्रियता या लोकप्रियताके जमानेमें उसने प्राप्त कर लिया था।"

अब यह बतलाना है कि आन्ध्र देशमें जैनधर्म किस प्रकार कमजोर हुआ। खारवेल नामक राजाके समय दिगम्बर जैन विहारसे सीधे आन्ध्र देशमें आये और तभीसे उस देशमें जैन धर्मकी स्थापना हुई। उपर्युक्त ग्रन्थमें बी शेषगिरि रावने आन्ध्रदेशके सम्बन्धमे जो एक लेख जोड दिया है, उसमें यह ज्ञात होता है कि स्थानीय परम्परा तथा अन्य वर्णनोंसे यह सिद्ध होता हे कि यहाँ भी शैव मतके ही प्रचारके कारण जैन धर्मका ह्रास हुआ। पूसपाति तथा आन्ध्रके अन्य राजपूत वैदिक धर्मके अभिमानी थे। प्राच्य चालुक्योंने बादमें शैव कवियोंको आश्रय दिया था। उनमे से नन्नयने महाभारतका तेलगूमें अनुवाद किया था। इस

कारण शैव मतकी शक्ति बहुत बढ़ गयी। प्राच्य गंगोंके समयमें तो शैव मतके पुनर्जीवनकी लहर और भी ज़ोरोंसे उठने लगी, क्योंकि प्रारम्भमें ये राजा शैव थे। वरंगलके काकतीय भी शैव ही थे और उन्होंने जैनोंको खूब सताया। सबसे अन्तिम बात यह है कि वरंगलके गणपति देवके सामने तेलगू महाभारतके कर्ता टिक्कणसे जैनोंका जो शास्त्रार्थ हुआ उसमें जैन हार गये थे। उस समय उसने जैनोंको बहुत ही दबाया था। यह बात बड़ी प्रसिद्ध है। मदरास म्यूज़ियमके हस्तलिखित प्राच्य पुस्तकोंके संग्रहमें रखे हुए एक काव्यमें यह बात लिखी हुई है (पृ० २८, वही पुस्तक)

इस कालविभागमें दक्षिण भारतमें जैन धर्मका जो ह्रास और पतन हुआ उसका इतिहास संक्षेपमें ऊपर लिखे अनुसार है। इस ह्रासका कारण प्रधानतः शिवभक्तिकी लोकप्रियताकी वह लहर है जो दक्षिण भारतमें उस समय दुबारा उठी थी। यहाँपर शैव साधुओं द्वारा किये गये अनेक चमत्कारोंका, जैनवादियोंकी विजयका, तथा दोनोंकी यौगिक सिद्धियोंका वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। (दोनों धर्मोंको योगमार्ग मान्य है, अतः दोनोंने ही उसकी प्रशंसा की है?) उसी प्रकार यह भी विस्तारपूर्वक लिखनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि जैन किस किस तरह सताये गये तथा प्राचीन परम्परागत हिन्दू राजाओंकी शान्त और समवृत्तिको धता बता कर किस प्रकार चोल राजाओंने जैनोंको फाँसीपर तक लटका दिया। अतः आइये, अब हम इस बातका अवलोकन करें कि जिस समय दक्षिण भारतमें जैन धर्मका ह्रास हो रहा था; उस समय पश्चिम भारतमें वह कैसी उन्नति कर रहा था।

द्वितीय भागमें हम कह चुके हैं कि इसके पहलेके काल विभाग (८००-१०००) में गुजरात तथा राजपूतानेमें जैन धर्म उर्जितावस्थामें रहा था। हमारा ख्याल है कि इन प्रान्तोंमें उसका उत्कर्ष इसी कालविभागमे हुआ। सचमुच यह आश्चर्यकी बात है कि जिस समय शैव राजपूत राजा राज्य कर रहे थे, जिस समय उन्हें अपनी तलवारोंका गर्व था और जब प्राणापहरण ही उनकी वृत्ति हो रही थी, तब यह अहिंसा प्रधान धर्म यहाँ कैसे फैला। साँवर, मेवाड, मालवा, गुजरात आदि इन सभी प्रान्तोंमें उस समय दक्षिण भारतीय राजाओंके समान ही कट्टर शैव राजा राज्य कर रहे थे, किन्तु फिर भी इन प्रान्तोंमें जैन धर्म उत्कर्ष ही करता रहा। इसका रहस्य क्या है? यह सत्य है कि इस समय बौद्ध तथा जैन अहिंसा विषयक आदर देशमें फिर बढ गया था। हम देखते हैं कि उपनिषद कालसे हिन्दुओंमें बार म्बार अहिंसाका प्रचार हुआ और उन्होंने फिर फिर वैदिक प्राणिहिंसात्मक यज्ञोंका करना छोडा। कुमारिल और शकराचार्यके समय जो वैदिक या आर्य धर्मका पुनरुज्जीवन हुआ था वह इस समय शान्त हो गया था और समस्त देशमें पुन बौद्ध अहिंसा तत्त्वकी लहर दोड गयी थी। किन्तु इस लहरने दक्षिणमें जैन धर्मको कोई सहायता नहीं की (इसके कारणका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे)। इसके विपरीत मालवा, राजपूताना और गुजरातमें जैन धर्मको अधिक लोकप्रिय बनानेमें उससे सहायता मिली। इस आश्चर्यजनक बातका अर्थात् भारतके पश्चिममें जैन धर्मकी प्रगतिका कारण था वैयक्तिक सामर्थ्य। हमारा निश्चित मत है कि व्यक्ति बहुत कुछ कर सकता है और हम मानते हैं कि उस समय पश्चिममें जैन

धर्मका इतना प्रचार होनेका कारण केवल जैन महा पंडित हेमचन्द्रकी उपस्थिति और प्रभाव ही था।

इस महान् जैन उपदेशकका चरित्र कुमारिल अथवा शंकरके चरित्रके समान अस्पष्ट वा अज्ञेय नहीं है, क्योंकि गुजरातके दो प्रसिद्ध बड़े बड़े राजा जयसिंह सिद्धराज और कुमारपालके राज्योंसे उसका निकटका सम्बन्ध है। एक बार हमारा ऐसा ख्याल हुआ कि यह साधु दक्षिणका होगा, अथवा कमसे कम स्फूर्ति तो इसे दक्षिणसे ही मिली होगी। परन्तु अब ऐसा नहीं मालूम होता। वस्तुतः दक्षिणके जैन उपदेशक दिगम्बर थे। (हमें यह स्वीकार करना होगा कि दिगम्बर लोग संन्यासके तत्वका, उसके समस्त न्याययुक्त परिणामों सहित पालन करते हैं।) गुजरात और राजपूतानेके जैन प्रायः श्वेताम्बर थे और अब भी हैं। वे अपने मुनियोंको दो श्वेत वस्त्रोंका उपयोग करनेकी अनुमति देते हैं। शिष्य और गुरु, इन दोनों अवस्थाओंमें हेमचन्द्र श्वेताम्बर ही था। गुजरातके किसी वैश्य कुलमें उसका जन्म हुआ था। उसकी माताने बचपनमें ही उसे एक जैन गुरुके चरणोंमें अर्पण कर दिया था। गुरुने उसकी विशाल बुद्धि और भावी महत्त्वका उसी समय अनुमान कर लिया। अन्तमें हेमचन्द्र आचार्य हो गया और अनहिलवाडमें एक जैन मठका संचालक होकर वहाँ आया। उसका जन्म १०८४ ईसवी और मृत्यु ११६८ में मानी जाती है। अर्थात् वह कोई ८४ वर्ष तक जीता रहा। तीन बड़े बड़े ग्रन्थ लिखकर उसने अपनी कीर्ति अजरामर कर दी। एक तो संस्कृत और प्राकृत भाषाओंका व्याकरण, दूसरा द्व्याश्रय काव्य (इसमें उसने गुजरातके चालुक्योंके इतिहासके साथ साथ ही अपने व्याकरणके नियमोंके उदाहरण भी दे दिये हैं।)

और तीसरा ग्रन्थ था देशी नाममाला अर्थात् देशी शब्दों-का कोश। कहा जाता है कि किसी हिन्दू पण्डितने हेमचंद्रको ताना मारते हुए कहा—'आखिर तुम उपयोग तो हिन्दुओंके व्याकरणका ही करते हो।' इसी ताने पर उसने संस्कृत तथा प्राकृतका स्वतंत्र और संपूर्ण व्याकरण लिख डाला। यह व्याकरण हाथीके गंडस्थलपर रखा जाकर, तथा स्वयं हेम-चंद्रको भी हाथी पर बैठाकर, बड़े जुलूसके साथ राज महलमें पहुँचाया गया और राज्यके कोषागारमें रखा गया। वह जयसिंहको अर्पित किया गया था, इसीलिए उसका नाम सिद्ध हेम-व्याकरण रखा गया। मालूम होता है कि हेमचंद्र भारतवर्षमें उतना घूमा नहीं था, फिर भी कुमारपालपर उसका इतना रोब था कि उसने जैनोंके लिए उससे कितनी ही सुविधाएँ करा लीं और जैनोंके पवित्र त्यौहारोंके दिन प्राणिहिंसा बंद रखनेका अधिकार भी प्राप्त कर लिया। गुज-रातमें जैन धर्मका जो प्राधान्य पाया जाता है, कमसे कम अहिंसाको जो सम्मान उस देशमें दिया जाता है, वह हेमचंद्र-के समयसे ही है।*

इसी समय चौहानोंके मुल्कमें बल्कि सतलज नदीतक, जैन धर्मका इतना प्रचार हो गया कि मारवाड़के प्रायः सभी वैश्योंने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। ये मारवाड़ी व्यापारी भारतके सुदूर प्रान्तों तकमें व्यापार करनेके लिए जाते हैं और उनके साथ ही उनका धर्म भी वहाँ पहुँच जाता है। मालवा और मेवाड़में भी यद्यपि बादके राजा थे तो कट्टर

* गुजरातमें यह ख्याल आम तौरसे प्रचलित है कि हेमचंद्रने कुमार-पालको उसकी वृद्धावस्थामें जैन बना लिया था। परन्तु यह बात सत्य नहीं है। इसके कारण हम चालुक्योंके प्रकरणमें लिख चुके हैं।

शैव ही, परन्तु वे जैन धर्मको सहानुभूति और आदरकी दृष्टिसे देखते थे। एक सीमातक वे उसके प्रचारमें सहायक भी हुए। इस इतिहासमें जैनधर्मसे सहानुभूति रखनेवाले राजाओंके नाम तथा काम अपने अपने स्थानपर दिये ही जा चुके हैं। अतः उन्हें फिरसे यहाँ लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

नया वैष्णवमत

मालूम होता है कि उत्तर भारतके अन्य प्रदेशोंमें जैन धर्म राजा तथा प्रजाको विशेष प्रिय नहीं हो सका। (हां, समस्त देशमें जैन वैश्य जरूर बड़ी तादादमें पाये जाते थे) गाहड़वाल, पाल और सेनोंके शासन-कालमें भी कदाचित् जैनधर्म विशेष प्रिय नहीं था। यद्यपि उत्तर भारतके मध्य और पूर्व भागमें जैन-धर्मका उतना उत्कर्ष नहीं हुआ तथापि इसके मानी यह नहीं कि वहां अहिंसा वृत्तिका पुनरुज्जीवन पश्चिमकी अपेक्षा कम हुआ था। हम देख ही चुके हैं कि मगधमें नवीन आचार्योंने बौद्धधर्मको पुनः बलवान् बना दिया। बल्कि हमेशाके अनुसार कितने ही विद्वान् उपदेशक तिब्बतमें धर्म-प्रचारके लिए भी गये और वहां उन्होंने इस शान्तिधर्ममें सुधार किया। परन्तु अहिंसा मतके विशेष पुनरुज्जीवनका रहस्य तो नवीन वैष्णवमतकी उत्पत्तिमें ही हमें दिखाई देता है। यह नवीन वैष्णव मत इस समय बंगालमें, जैन या बौद्ध-धर्मके समान ही, अहिंसा तत्वका माननेवाला था। अथवा हम यों कह सकते हैं कि जिस प्रकार खीष्टधर्म यहूदियोंके धर्ममें ऊपरसे जोड़ा हुआ बौद्धधर्म ही है, उसी प्रकार यह नवीन वैष्णवमत भी श्रीकृष्णकी भक्ति युक्त जैन-धर्म ही कहा जा सकता है। इस समय मगधको छोड़कर अन्य सब स्थानोंसे बौद्धधर्म लुप्त हो गया था। बुद्धका रूपान्तर हो

कर वह विष्णुका एक अवतार मान लिया गया था और सामान्यतया बौद्ध लोग वैष्णव हो गये थे। स्वभावत. इन लोगोंमें अहिंसाधर्म पुन बडे जोरोंसे प्रचलित हो गया। और इस नवीन वैष्णवमतने अहिंसाधर्मका पालन पहलेसे भी अधिक उत्साहपूर्वक किया। यह सत्य है कि बुद्धके उपदेशसे बहुत पहले भगवद्गीताने अहिंसाका उपदेश दिया था परन्तु महाभारतसे यह सिद्ध होता है कि भगवद्गीताकी अहिंसा वैदिक धर्मके प्राणिहत्यायुक्त यज्ञकी विरोधिनी नहीं थी। वैदिक हिंसा हिंसा नहीं है, ऐसा महाभारतका सिद्धान्त है। परन्तु यह तो सभी जानते ह और मान भी लेंगे कि परमात्माकी आराधनाके लिए प्राणिहत्या करना किसी भी समयमें उचित नहीं कहा जा सकता। इस एक बातमें वैदिकधर्मका यह अश, यहूदियों के धर्मकी तरह, इतना कमजोर था कि बौद्ध और जैनधर्मके प्रचारक प्रायः इसीपर आक्रमण किया करते थे और इस बातमें उनकी विजय भी होती थी। नवीन वैष्णवमतमें अहिंसा सिद्धान्त पर पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक जोर दिया गया था, इसलिए अब जैन और बौद्धोंको उसमें कोई दोष नहीं दिखाई दे सकता था। इस कारण यह धर्म सामान्य जनसमूहमें बडा लोकप्रिय हो गया, क्योंकि जहां एक ओर उसमें प्राचीन विष्णु देवता की भक्ति थी, वहाँ दूसरी ओर प्राणिहिंसायुक्त यज्ञोंका करना भी बन्द कर दिया गया था। फिर केवल हिंसायुक्त यज्ञोंका करना ही बन्द नहीं किया गया, बल्कि जैनोंके समान मांसाहार भी निषिद्ध ठहरा दिया गया। इस कारण सिंधु नदीसे लेकर ब्रह्मपुत्रातक इस नवीन वैष्णवमतका प्रचार हो गया और वैष्णवोंने भी मांसाहार छोड दिया। आज भी "वैष्णव भोजन" का अर्थ "निरामिष भोजन" किया जाता है।

यह नवीन वैष्णव मत दक्षिणसे आया अथवा नवीन भागवत पुराणके ही कारण फैला, ऐसा नहीं प्रतीत होता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि शंकराचार्यके उपदेशोंके कारण ही उसकी उत्पत्ति हुई, क्योंकि वे तो वैदिक-विधि-विधानके कट्टर अनुयायी थे। उत्तर हिन्दुस्तानमें यह मत और किसी भी कारणसे फैला हो, इतना तो निश्चित है कि यह भागवतका असर कदापि नहीं है क्योंकि, जैसा कि हम अन्यत्र बता चुके हैं, भागवतका काल ईसाकी दसवीं शताब्दीके पहले नहीं बताया जा सकता। काश्मीरके इतिहाससे ज्ञात होता है कि राजा अवन्तिवर्मन् (८५५-८८७) इस नवीन वैष्णव मतका अनुयायी था। उसने प्राचीन मेघवाहनके शासनकालकी तरह अपने शासनकालमें भी प्राणिहिंसा बिलकुल बन्द कर दी थी (भाग १, पृ० २२१)। इससे ज्ञात होता है कि बौद्ध धर्मकी अहिंसाका प्रचार ९ वीं सदीमें ही पुनः हो गया और चूंकि राजा अवंतिवर्मन् एक कट्टर वैष्णव था, उसने इसका प्रचार करनेके लिए अपनी समस्त राजकीय शक्तिका उपयोग किया। सम्राट् प्रतिहार भोज भी परम वैष्णव था (भाग २ पृ० १७४)। उसका नाती भी वैष्णव ही था। परन्तु यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि ये राजा अवंतिवर्मन्‌की कोटिमें अर्थात् मांसाहार छोड़ने तथा प्राणिहिंसा बन्द करनेवाले थे या नहीं। गाहड़वाल राजा लक्ष्मी अथवा श्रीके उपासक मालूम होते हैं, क्योंकि उनके लेखोंके आरम्भमें लक्ष्मीको और दामोदरको नमस्कार किया गया है। तत्वतः वे स्मार्त थे। यद्यपि शिलालेखोंमें उनके माहेश्वर होनेका उल्लेख है तथापि यह स्पष्ट वर्णन मिलता है कि भूमिदानके समय उन्होंने वासुदेवका ही पूजन किया था। मगधमें तो बौद्ध राजा थे और वे अहिंसा तत्वके सुदृढ़ आधार-

स्तम्भ थे। यहाँपर भी हमें वर्णन मिलता है कि एक रानीने समग्र महाभारतकी कथा सुनी थी। पूर्व बंगालमें सेन राजा प्रारम्भमें शिवोपासक थे। परन्तु उनमेंसे सबसे अधिक प्रसिद्ध राजा लक्ष्मणसेन परम वैष्णव था और वह अहिंसा तत्त्वका पूर्ण समर्थक था। हमें समझना चाहिये कि वह स्वयं भी निरामिषभोजी रहा होगा। तथापि हमारे पास इस बातका कोई प्रमाण नहीं कि उसने अपने राज्यमें प्राणिहिंसा बन्द कर दी थी। उसका वैष्णव मत संभवतः उड़ीसाकी जगदीशपुरीसे आया था। उस समय उड़ीसामें वैष्णव मतका खूब जोर था (इसके कारण आगे चलकर बताये जायंगे)। इस प्रकार उत्तर भारतमें पश्चिमकी ओर जैन धर्म तथा पूर्व और उत्तरकी ओर वैष्णव धर्म तत्कालीन प्रधान तत्त्व अहिंसाके साथ प्रबल हो रहा था।

परन्तु यद्यपि इस नवीन वैष्णव मत और जैन मतके बीच अहिंसाके विषयमें समानता थी तथापि तपस्याके विषयमें उनमें बड़ा विरोध था। तपस्याके विषयमें भी हिन्दू समाजका मत बारबार बदलता रहा है। शरीरका पोषण श्रेष्ठ है या शोषण, इस सम्बन्धमें लोकमतमें पुनः पुनः परिवर्तन होता रहा है। श्रीकृष्णके चरित्रसे जो प्रत्यक्ष उपदेश प्राप्त होता है वह तो यही है कि संसारमें सुखोंका उपभोग करना चाहिए। तथापि श्रीकृष्णके उपदेशोंमें यही कहा है कि भोग और शरीर शोषणके मध्यवर्ती मार्गपर चलना श्रेयस्कर है। किन्तु बादमें कृष्णभक्ति की प्रवृत्ति उपभोग (एपिक्यूरियन) सिद्धान्तकी ओर ज्यादा झुक गयी और बंगाल तथा मध्यदेशमें उस समय यह मत बड़ा लोकप्रिय हो गया। इसलिए जहाँ एक ओर नये वैष्णव मतने जैन धर्मकी तरह अहिंसाकी शिक्षा

दी, वहाँ उसने जैन धर्मके विरुद्ध संसारके सुखोंका उपभोग करना भी सिखाया। झूला जब एक ओरसे दूसरी ओर जाता है तब जिस प्रकार वह बिलकुल अन्ततक पहुँच जाता है, उसी प्रकार इस नये वैष्णव मतका पर्यवसान विलासितामें हुआ। अभीतक राधाभक्तिके पंथका उद्भव नहीं हुआ था, क्योंकि भागवतमें राधाका वर्णन नहीं है। परन्तु कृष्णगोपी-लीला इस समयके वैष्णव भक्तिका मुख्य सिद्धान्त प्रतीत होता है। वैष्णव मतके नवीन पुराण भागवतमें भी स्पष्ट लिख दिया गया है कि ये लीलाएँ अनुकरणीय नहीं हैं, क्योंकि जब परीक्षितने पूछा कि महान् पुरुषोंके इस चरित्रका जन साधारणको अनुकरण करना चाहिये या नहीं? तब शुक इसके उत्तरमें यह नहीं कहते कि ये लीलाएँ जीवात्माके परमात्मासे ऐक्य, तन्मयता, तादात्म्य, संपादन करनेकी लालसा दिखाने वाली कल्पित कहानियाँ हैं। इसके विपरीत वे साफ साफ कहते हैं कि बड़ोंके काम नहीं, उनके उपदेश ही अनुकरणीय होते हैं। अर्थात् भागवतका यह स्पष्ट मत है कि कृष्णका चरित्र ऐतिहासिक तो है परन्तु अनुकरणीय नहीं। तथापि कृष्णकी इन काम लीलाओंके सम्बन्धमें जनताके दृढ़ विश्वासके कारण राधापथका उद्भव होना अनिवार्य था, क्योंकि किसीको कृष्णकी मुख्य स्त्री बनाये बिना लोगोंका समाधान नहीं हो सकता था। लक्ष्मणसेनके दरबारी विजयदेवने इस समय गीतगोविन्दके रूपमें कृष्ण और राधाकी अनुचित कामलीलाओंका अत्यंत मनोमोहक वर्णन किया।

आगे चलकर तो इस राधापंथका बड़ा विस्तार हुआ और राधा श्रीकृष्णकी प्रत्यक्ष भार्या ही बना दी गयी। परन्तु यह स्थित्यन्तर १२०० ई० के बाद हुआ अतः हमें उससे कोई मतलब

ग्रहण कर जैन धर्मोंद्वारा किया गया आक्षेप दूर कर दिया गया। परन्तु साथ ही उसके तपस्याके सिद्धान्तका भी स्वीकार कर लिया गया, ऐसा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त वेद प्रामाण्य, और वर्णाश्रमधर्म अर्थात् ब्राह्मणोंके धार्मिक श्रेष्ठत्वको भी उसमें स्थान दे दिया गया। यह बात दक्षिणवालोंके पुराण-धर्माभिमानी स्वभावको पसंद भी आयी। शंकराचार्यके धार्मिक सिद्धान्तमें भक्ति-योगको अधिक स्थान प्राप्त नहीं है। किन्तु भक्ति-योग तो प्राचीन कालसे वैष्णवधर्मका मुख्य सिद्धान्त रहा है। अतः यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि शांकर तत्वज्ञानका विरोध करते हुए पुराण-मताभिमानियोंके श्रद्धास्थान उपनिषद्, भगवद्गीता, और ब्रह्मसूत्रोंका नवीन अर्थ करके उपदेश किया जाय। शीघ्र ही दक्षिणमें इस न्यूनताकी पूर्ति कर देनेवाला एक नवीन जोरदार वैष्णव उपदेशक पैदा हुआ। जैसा कि भागवतमें कहा है, तामिलदेश वैष्णवमतका प्रधान केन्द्र है और जिस प्रकार शैव साधु नायनार शिवस्तोत्र गाते आये

नहीं। लक्ष्मणसेनके समयमें तो यह राधा-पंथ उत्पन्न होनेकी केवल तैयारी ही कर रहा था। उसके समयमें उड़ीसासे जो वैष्णवमत बंगालमें आया उसमें राधाको कोई स्थान नहीं था। तथापि इस बातसे कदापि इनकार नहीं किया जा सकता कि उस समय भी बहुत सी शृंगारोत्तेजक बातें उसमें थीं। जैसा कि पहले कहा गया है, इस समय हिन्दू समाज तपश्चर्यासे मुंह मोड़कर भोगकी ओर अधिक झुक गया था। इस समय हिंदू राज्योंमें जो अपार वैभव था उसका भी पर्यवसान इस भोगवृत्तिमें होना एक अनिवार्य बात सी थी। अलंकारशास्त्र इस समय लोगोंमें बड़ा प्रिय था। इस प्रश्नकी समीक्षा करना अभी बाक़ी ही है। परन्तु यह निश्चित बात है कि उड़ीसा और बंगालके वैष्णवमतमें श्रीकृष्ण और गोपियोंको कामलीलाओंकी कथाओंका पूर्णतः अन्तर्भाव होता था। और शरीर शोषणकी अपेक्षा शरीर पोषणकी ओर उसकी प्रवृत्ति अधिक थी।*

वल्लभ और चैतन्य अभी पैदा ही नहीं हुए थे जिनके द्वारा बादमें इन शृङ्गारिक कल्पनाओंको अधिक अशुद्ध या शुद्ध रूप मिलनेवाला था। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इसका बीज इस समय अवश्य बो दिया गया था। अस्तु, इस अहिंसा तत्व तथा उपभोग तत्वके कारण वैष्णव धर्म जैनधर्मकी अपेक्षा अब जनताको अधिक प्रिय लगने लगा होगा। और इसी कारण जैन धर्मकी प्रगति उत्तर भारतमें रुक गयी होगी। इसी समय दक्षिणमें भी वैष्णवमत फैला। परन्तु उसमें इस निकृष्ट स्वरूपका समावेश नहीं था। उसमें अहिंसा तत्वको

---

* चोल गंगने इस समय (११५० ई० में) जगन्नाथ पुरीका जो प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया था उसपर खुदे हुए अश्लील चित्रोंका और क्या कारण हो सकता था?

ग्रहण कर जैन धर्मोद्वारा किया गया आक्षेप दूर कर दिया गया। परन्तु साथ ही उसके तपस्याके सिद्धान्तका भी स्वीकार कर लिया गया, ऐसा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त वेद प्रामाण्य, और वर्णाश्रमधर्म अर्थात् ब्राह्मणोंके धार्मिक श्रेष्ठत्वको भी उसमें स्थान दे दिया गया। यह बात दक्षिणवालोंके पुराण-धर्माभिमानी स्वभावको पसंद भी आयी। शङ्कराचार्यके धार्मिक सिद्धान्तमें भक्ति योगको अधिक स्थान प्राप्त नहीं है। किन्तु भक्ति-योग तो प्राचीन कालसे वैष्णवधर्मका मुख्य सिद्धान्त रहा है। अतः यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि शांकर तत्वज्ञानका विरोध करते हुए पुराण-मताभिमानियोंके श्रद्धा-स्थान उपनिषद्, भगवद्गीता, और ब्रह्मसूत्रोंका नवीन अर्थ करके उपदेश किया जाय। शीघ्र ही दक्षिणमें इस न्यूनताकी पूर्ति कर देनेवाला एक नवीन जोरदार वैष्णव उपदेशक पैदा हुआ। जैसा कि भागवतमें कहा है, तामिलदेश वैष्णवमतका प्रधान केन्द्र है और जिस प्रकार शैवसाधु नायनार शिवस्तोत्र गाते आये हैं, उसी प्रकार आलवार अर्थात् वैष्णव साधु प्राचीन कालसे विष्णुके स्तोत्र गाते आये हैं। परन्तु इस समय वैष्णवमतको शांकर-सिद्धान्त-विरोधी तत्वज्ञानके आधारकी आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति रामानुजाचार्यने की।

रामानुजाचार्यका चरित्र प्रसिद्ध ही है। डॉ० भांडारकरकी वैष्णवधर्मपर लिखी पुस्तकमें यह अच्छी तरह दिया गया है। उनका जन्म १०१७ ई० में हुआ और उन्होंने पहले पहल यादव प्रकाश नामक अद्वैत (शांकर) दार्शनिकसे दर्शनोंका अध्ययन किया। परन्तु इससे उन्हें संतोष नहीं हुआ। अतः उन्होंने आलवारोंके प्रबन्धोंका गहरा अध्ययन किया और उनके भक्तिरसका पान किया। त्रिचनापल्लीके निकटवर्ती

श्रीरंगम्‌के वैष्णवमठमें वे यामुनाचार्यके बाद उपदेशक (महंत) हो गये। आर्योंके उपर्युक्त पवित्र ग्रन्थोंपर नवीन पद्धति और सामयिक आवश्यकतानुसार भाष्य लिखकर उन्होंने अपने जीवनका एक महान् कार्य कर डाला। तत्कालीन चोल राजा शैव थे। उन्होंने इस बातका प्रयत्न आरंभ किया कि रामानुज वैष्णवमतको छोड़ दें। तब वे भागकर मैसूरके होयसल राजा विष्णुवर्धनके पास गये और उसके आश्रयमें रहने लगे। यह राजा जैनमतानुयायी था। परन्तु रामानुजने उसे उपदेश करके अपना अनुयायी बना लिया (ई० सं० १०९६)।

अब रामानुजका मत दक्षिण भारतमें फैल गया। और इसके बादकी सदीमें उसके अनुयायी रामानंदने उसे उत्तरमें भी फैलाया। "रामानुजका वैष्णव सिद्धान्त प्राचीन पांचरात्र सिद्धान्त ही है, पर साथ ही उसमें नारायण और विष्णु इन दो तत्वोंका और भी समावेश कर दिया गया है। उनके मतानुसार ईश्वरका अत्यंत पूज्य नाम नारायण है। उनके वैष्णव सिद्धांतमें गोपालकृष्णका नाम कभी मिल ही नहीं सकता।" (पृ० ५७) कहनेकी आवश्यकता नहीं कि रामानुजाचार्यके सिद्धान्तोंमें राधापंथके निकृष्ट मतको स्थान नहीं है। "यह ठीक है कि उन्होंने भगवद्गीताके भक्तियोगको ग्रहण किया है परन्तु उन्होंने भक्तिका अर्थ लगाया है परमात्माका संतत ध्यान। इस प्रकार उन्होंने प्राचीन कालसे चले आये भक्ति-सिद्धान्तको ब्राह्मण धर्मका स्वरूप दे दिया। क्योंकि उनके मतानुसार शूद्र परम मोक्षको प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु रामानुजाचार्यके जिस पंथको रामानंदने उत्तरमें प्रचलित किया उसमें तो शूद्रोंने यह अधिकार प्राप्त कर लिया" (वही पुस्तक) इस तरह यद्यपि रामानुजका मत मूलतः पुरातन मता-

भिमानी ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठताके पक्षमें था, तथापि उनका जो पंथ उत्तरमें प्रचलित हुआ उसमेंसे वह प्रवृत्ति जाती रही और यद्यपि वर्णधर्मका त्याग नहीं किया गया तथापि जातियोंके कारण उत्पन्न होनेवाला विद्वेष उसमेंसे अवश्य निकल गया।

नवीन अथवा वीर शैव मत

इस तरह जब नवीन वैष्णव मत भिन्न भिन्न स्वरूपोंमें शैव मतके विरुद्ध पूर्व और दक्षिणमें फैल रहा था, उसी समय कर्नाटकमें लिंगायत पंथ उत्पन्न हो जानेके कारण शैव धर्मका ज़ोर फिर बढ़ गया। सच पूछा जाय तो यह जैन धर्मकी प्रतिक्रिया थी। उत्तर कर्नाटकमें कलचूरी विद्रोहके कारण कुछ वर्ष जैन धर्मका बोलबाला रहा। उसकी प्रतिस्पर्धामें पुनः अपना स्थान छीननेके लिए शैव धर्मने यह प्रबल प्रयत्न किया। इस नवीन शैव मतका वर्णन करनेके पहले प्राचीन कालसे लेकर इस कालविभाग तकका शैव मतका इतिहास संक्षेपमें लिख देना जरूरी है। जिस प्रकार जैन धर्मके प्रचारका इतिहास हमने दिया, उसी प्रकार इस नवीन लिंगायत पंथकी आवश्यकता, महत्व, और कार्य ठीक समझनेके लिए शैव मतके प्राचीन इतिहासका ज्ञान हो जाना जरूरी है।

निःसन्देह शैव धर्म वेदोंके इतना ही प्राचीन है। वैदिक ऋषियोंने इस देवताके भयंकर—रुद्रस्वरूपका तथा मंगल अर्थात् शिवस्वरूपका स्तवन किया है। यह कल्पना तो वैदिक तत्त्वज्ञानियोंकी ही है कि कोई एक परम तत्व है और अन्य देवता केवल उसके भिन्न भिन्न स्वरूप ही हैं। हाँ, उपनिषद्-कालीन तत्वज्ञानियोंने इसे एक निश्चित रूप दे परब्रह्मका सिद्धान्त ही स्थापित कर दिया। इसके बाद वेद-धर्मानुया-

यियोंमें मतभेद हो गया। कुछ लोगोंने विष्णुको परमेश्वर मान लिया, ना कुछ शिवको परमात्मा मानने लगे। परन्तु "अग्निर्वै देवानामवमो विष्णु परम" इस ऐतरेय आरण्यकके वाक्यसे ज्ञात होता है कि अधिकांश लोग विष्णुको ही परम देवता मानते थे। परब्रह्मसे शिवके तादात्म्यकी कल्पना बादकी है। प्राचीन दशोपनिषदोंमें वह नहीं पायी जाती। बादमें श्वेताश्वतरमें पहले पहल हम उसे स्पष्टरूपमें देखते हैं। यह मतभेद कोई अस्वाभाविक या अनहोनी बात तो थी ही नहीं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रत्येक धर्मके विकास रूपमें वृक्षकी तरह पहले पहल दो शाखाएँ जरूर ही हो जाती हैं। इसी न्यायके अनुरूप वैदिक आर्य धर्ममें भी वेदोत्तर कालमें वैष्णवमत और शैव मत, इस तरहकी दो शाखाएँ हो गयीं। तथापि जन समूहमें शैव मतका प्रचार अधिक हो गया, क्योंकि इन मामूली लोगोंमें भूत, प्रेत, पिशाचोंकी धाक अधिक होती है, प्राकृतिक दुर्घटनाओं और आपत्तियोंसे वे ज्यादा डरते हैं। और यह तो पहले ही मान लिया गया था कि पिशाचों और रोगोंके शासक रुद्र शिव हैं। इसके अतिरिक्त भारतके मूल निवासियोंमें लिंग पूजा प्रचलित थी और इस विषयमें वेदोंमें कितने ही स्थानोंपर स्पष्ट उल्लेख भी है। उत्तर वैदिक कालमें इस लिंगपूजा और शिवपूजामें ऐक्य स्थापित हो गया। डॉ० भाण्डारकर इस ऐक्यको जितना प्राचीन मानते हैं (११५ पृ०) हमारे मतानुसार यह उसकी अपेक्षा अधिक पुराना है। हम पहले भी कई बार कह चुके हैं कि किसी बातका उल्लेख न मिलना यह कोई उसके न होनेका निश्चित प्रमाण नहीं कहा जा सकता। यद्यपि पतञ्जलिने शिवकी मूर्तिका उल्लेख करके स्पष्ट रूपसे शिव लिंगका उल्लेख नहीं किया अथवा यद्यपि वेम कॅड फिशिसके सिक्कों

पर शिवका मानव स्वरूप दिखाया गया है तथापि इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उस समय लिंग पूजा प्रचलित ही नहीं थी। महाभारतमें शिव-पूजाका लिंग पूजाके रूपमें स्पष्ट उल्लेख है। अतः महाभारत कालमें अर्थात् ई० सन् पू० ३०० के समय लिंग-पूजा समाजमें पूर्णतः मान्य हो गयी थी। उस समय भी यद्यपि आजके सदृश शिवके दो स्वरूप माने जाते थे अर्थात् पंचमुखी मानवस्वरूप और लिंग स्वरूप तथापि लिंग-पूजाका ही जनतामें अधिक प्रचार हो गया। क्योंकि उस पूजाको एक उदात्त तात्विक और आध्यात्मिक महत्त्व प्राप्त हो गया था, और उसकी मूलभूत कल्पना प्रायः नष्ट हो गयी थी। आज भी लिंग पूजाके विषयमें किसीके मनमें अश्लील कल्पना नहीं उठती। इस तरह आर्य और अनार्य पूजाका मेल होकर अत्यन्त प्राचीन कालमें सामान्य जन समूहका पूजा मार्ग बन गया।

वैष्णवमतकी ही तरह शैवमतमें भी प्राचीन कालमें नवीन तत्वज्ञान पैदा हो गया। महाभारतमें पाँचरात्र, सांख्य योग और वेदान्तके साथ साथ पाशुपत तत्वज्ञान या दर्शनका भी उल्लेख है, बल्कि उसमें तो स्पष्ट लिखा है कि इस तरह ज्ञानके ये पाँच भेद हैं। बादरायणके वेदान्तसूत्रमें भी (ई० स० पू० १५०) पाँचरात्र और पाशुपत इन दोनों मतोंका खण्डन किया गया है। पाशुपत मत मूलतः क्या वस्तु थी, यह मूल ग्रन्थ सामने न होनेके कारण नहीं बताया जा सकता। शंकराचार्यने अपने भाष्यमें इसे उद्धृत किया है और माधवने भी अपने सर्व-दर्शन-संग्रहमें इसका समावेश किया है। यों तो शैव आगम बहुतसे हैं परन्तु वे सब अर्वाचीन हैं। सभी शैवमतोंमें तपको विशिष्ट स्थान प्राप्त है। हुएनत्सगने भी उल्लेख किया है कि शैव तपस्वी

शिवालयमें रहते हैं। वे सभवत लकुलीश आगमके अनुयायी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसिद्ध शैव दार्शनिक लकुलीश गुजरातमें छठी सदीमें हुआ। जिला भडौंचमें कायावतार नामक उसका एक तीर्थ है। ई० स० ८०० से लेकर १२०० तकके शिलालेखोंमें इन शैव तपस्वियोंका बड़ा तफसीलवार वर्णन पाया जाता है। इनके नामोंके अन्तमें शिव अथवा राशि उपपद पाया जाता है। उदाहरणार्थ बाप्पा रावलके गुरु हारीतराशि थे। उनमें मठ-गद्दी परम्परा होती थी। एक लेखमें तो राजाओंकी वंशावलीके समान इनकी भी वंशावली दी गयी है। परन्तु हमारे इस विषयके सम्बन्धकी मुख्य बातें तो अनिश्चित ही रह जाती हैं। पता नहीं कि ये शैव तपस्वी केवल ब्राह्मण ही होते थे या सब जातियोंके अथवा लकुलीश आगममें प्राणिहिंसायुक्त वैदिक यज्ञको स्थान है या नहीं। साथ ही हमें यह भी नहीं मालूम होता कि उनमें मांसाहार निषिद्ध माना जाता था या नहीं। इन बातोंको जाननेके लिए शैव तांत्रिक ग्रन्थोंका अध्ययन परमावश्यक है। हमारा इस विषयका ज्ञान तो बहुत परिमित है, इसलिए हम उसपर कोई निश्चित मत नहीं दे सकते। और स्वयं लकुलीशका तो कोई ग्रन्थ अभीतक उपलब्ध नहीं है।* परन्तु यह सभव है कि भिन्न भिन्न शैवपन्थोंमें प्रत्येक जातिके अन्दर शैव तपस्वी होनेकी आज्ञा रही हो और इन तपस्वियोंके लिए मांसान्न वर्ज्य रहा हो। किन्तु वैष्णवमतकी तरह शैव मतने भी शैव गृहस्थोंके लिए मांस खानेका निषेध किया हो, ऐसा नहीं प्रतीत होता। इसलिए जनसाधारणका और खासकर उन शूरवीर राजपूतोंका धर्म शैव

* लकुलीश पचाध्यायीका उल्लेख बार बार पाया जाता है। परन्तु अबतक वह ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ।

धर्म ही था जिन्होंने सातवीं और आठवीं सदीमें मुसलमानोंके आक्रमणोंको सफलता पूर्वक रोका था। इस सम्बन्धमें बाप्पारावलने जो महान पराक्रम और शौर्य दिखाया वह उनके शैव गुरु हारीतराशिकी प्रेरणाका ही फल था। कुछ खास अपवादोंको छोड़कर, इस तथा इसके पहलेके काल-विभागके अन्य राजपूत कुलोंमें भी शिवभक्तिका ही अधिक प्रचार था। अस्तु, भारतकी और खासकर कुंतल देशकी धार्मिक स्थिति उत्तर चालुक्योंके शासनकालमें, जो कट्टर शैव थे, इस प्रकारकी थी। इसी समय जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कलचूरियोंके विद्रोहके कारण जैनधर्म एकाएक आगे बढ़ गया।

यद्यपि जैनोंके ग्रन्थोंमें लिखी बातें, तथा लिंगायतोंके बसव पुराणमें लिखी बातोंमें अन्तर हो सकता है तथापि दोनोंकी कुछ बातें अवश्य ही एक सी हैं। लिंगायत पंथका संस्थापक बसव ब्राह्मण था और चालुक्योंके राज्य हरण करनेवाले उनके सेनापति विज्जलका कुछ समयतक वह मन्त्री था। हमारे मतानुसार तो स्वयं बसव बड़ा दार्शनिक और धर्म-सुधारक था। डॉ० रा० गो० भांडारकरका कथन है कि उसके पहले आराध्य नामक जो एक मत था उसका वह बड़ा जोरदार पुरस्कर्ता था। परन्तु हमारी रायमें यह बात ठीक नहीं मालूम होती। डा० साहबका उचित आदर करते हुए हम उनसे अपना मतभेद प्रकट करना चाहते हैं। बसवके सिद्धान्त इतने नवीन और भिन्न हैं कि उसीको इस नवीन मतका संस्थापक मानना जरूरी है। बसव पुराणमें एक कथा है कि जब नारदने शंकरसे कहा कि भारतवर्षमें शैव मत नष्ट हो गया तब भगवान् पशुपतिने अपने नन्दीको शैव मतकी स्थापना करनेके लिए भेज दिया। बसव इसी नन्दीका अव-

तार था। इस कथाका भाव भी यही है। सम्भव है आराध्य नामक पूर्व मतसे उसने कुछ सिद्धान्त लिये हों, पर उसने उन्हें बिलकुल नवीन और भिन्न रूप दे दिया। उसका मामा बलदेव उससे पहले राजाका दीवान था। बलदेवकी मृत्युके बाद उसके स्थानपर बसव स्वयं दीवान हो गया। कहा जाता है कि उसकी बहिनका विवाह राजाके साथ हुआ था। परन्तु जैनोंका कथन है कि वह राजाकी रखी हुई स्त्री थी। यह बात सम्भवतः कल्पित है। बसव वर्णधर्मको नहीं मानता था, इस लिए प्रतिलोम विवाहमें उसे कोई आपत्ति न रही होगी। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि बसव प्राचीन परम्पराको छोड़नेके लिए पूर्णतः तैयार था। इससे यह भी प्रकट होता है कि बसव तथा उसके जैन राजाके दिलमें भी पुराने ख्यालके लोगों द्वारा माने गये जातिभेदके लिए कोई आदर नहीं था। परन्तु अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक बातोंमें मतभेद होनेके कारण दोनोंमें जोरोंका झगडा शुरू हो गया। बसवने लिंगायतोंके धार्मिक पुजारी 'जगमों' के लिए राजकोशसे बहुत सा द्रव्य खर्च कर दिया। तब राजाने बसवपर मामला चलाया। बसव भाग खड़ा हुआ। इसके बादकी घटनाओंके विषयमें भिन्न भिन्न कहानियाँ कही जाती है। पर यह निर्विवाद है कि किसी जगमने विज्जलका खून कर डाला (ई० स० ११६७)। इस तरह जैन और लिंगायतोंका झगडा बढ़ता गया। कलचूरियों का विद्रोह अल्पस्थायी था। राज्यके सच्चे अधिकारी राजा सोमेश्वरने उस विद्रोहका ई० स० ११८२ में शान्त कर दिया। परन्तु कुन्तल अर्थात् दक्षिण महाराष्ट्रमें लिंगायतोंका पन्थ बहुत बढ़ गया और उसने जैन धर्मको कर्नाटकसे हमेशाके लिए निकाल बाहर किया।

जिस नवीन वीर शैवपंथने जैनधर्मको इस तरह मार भगाया उसके खास खास सिद्धान्त क्या थे, यह हमें यहाँपर संक्षेपमें जान लेना चाहिए। सबसे पहली बात तो यह थी कि बसवने अहिंसाको मुख्य स्थान दिया और इस समय जनतामें जो हिंसाके खिलाफ लोकमत बढ़ रहा था उसका सम्मान किया। अर्थात् हिन्दू धर्मके जिस छिद्रको देख देखकर जैन लोग उसपर प्रहार करते थे उस छिद्रको दूर कर उसे मजबूत बना दिया। दूसरे, उसने ब्राह्मणोंके धार्मिक श्रेष्ठत्वको भी माननेसे इनकार कर दिया और यह प्रतिपादन किया कि प्रत्येकको परमगति प्राप्त करनेका अधिकार है। यह तो हम देख ही चुके हैं कि ठेठ दक्षिणके वैष्णवोंने हिन्दुओंकी प्राचीन वर्णव्यवस्थाको नहीं छोड़ा। परन्तु बसवने धैर्य पूर्वक जाति-प्रथाको तिलांजलि देकर, कमसे कम अपने समयमें तो जरूर, ब्राह्मणों और चांडालोंमें तक अंतर्विवाह कराके दिखा दिया। उसने संन्यास और तपको भी धता बता दिया। जैनोंसे भी आगे बढ़कर उसने एक बात यह भी सिखायी कि किसी-को भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए, सबको परिश्रम करके ही अपना पेट भरना चाहिए। धार्मिक गुरु जंगमों तकको भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए। उद्यम और परिश्रमकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन करनेवाला तथा भिक्षावृत्ति बन्द करनेवाला भारतका पहला सुधारक बसव ही था। बसव ही एक ऐसा पुरुष था जिसने जनतासे यह स्पष्ट कह दिया कि केवल कर्मसे ही मोक्ष मिल सकता है। उसने इस बातपर सबसे अधिक जोर दिया कि सबको अपने नित्यकर्म नियमपूर्वक बराबर करने चाहिए। और उसे इस बातमें जैन तथा बौद्धोंकी अपेक्षा पूर्ण विजय भी मिली, क्योंकि समस्त लिंगायत समाज आडम्बरहीन तथा

सदाचारी है। सबसे अन्तिम बात यह है कि उसने जन-साधारणकी उपासनाके आधार 'लिंग'को ही कायम रखा अर्थात् उसने उनका देवता नहीं बदला। हाँ, इस लिंग-कल्पनाका एक परमोच्च आध्यात्मिक अर्थ लगाना बहुत जरूरी थां। यही उसने किया भी और यह नियम कर दिया कि प्रत्येक लिंगायत अपने शरीरपर शिवके पवित्र लिंगको धारण करे। ब्राह्मणोंके यज्ञोपवीतका परित्याग उसने कर ही दिया था। उसके बदले उसने चाँदीके धागेमें शिवलिंग बाँध कर अपने शरीरपर धारण करनेका नियम शुरू कर दिया। ब्राह्मण और जाति-व्यवस्थाको छोड़ देनेके कारण बसवको स्वभावतः तत्कालीन लोकभाषामें उपदेश करनेके मार्गका अवलम्बन करना पड़ा। यद्यपि जैन पंडित तो पुराने पंडितों-से संस्कृतमें वाद-विवाद करते थे, पर उसने इसकी परवाह नहीं की। उसने तो सरल सुबोध कानड़ी भाषामें उपदेश करना आरम्भ किया। उसके वही उपदेश आजकल लिंगायतोंके पवित्र ग्रन्थ बन गये हैं। इस तरह जनसामान्यकी दृष्टिसे उसने जैनों तथा पुराण धर्माभिमानी पण्डितोंपर भी विजय प्राप्त कर ली। तबसे आजतक कर्नाटकके किसान तथा व्यापारीवर्गमें अधिकांश लिंगायत ही पाये जाते हैं।

यहांपर हमें यह देखनेकी आवश्यकता नहीं है कि लिंगा-यतपथके किन किन सिद्धान्तोंकी तुलना शंकर अथवा रामानुजके सिद्धान्तोंके साथ की जा सकती है। अगर पाठक चाहें तो डॉ० रा० गो० भांडारकरका शैवधर्म पर लिखा विद्वत्ता-पूर्ण ग्रन्थ पढ़ जायें। परन्तु यहाँपर यह कह देना जरूरी है कि यद्यपि लिंगायत जात पाँतको नहीं मानते तथापि हिन्दुओंके आंतरिक स्वभावके कारण उनमें भी कुछ जातियां उत्पन्न हो

गयी हैं। इनमेंसे आचार्य तथा जंगम ब्राह्मणोंके समान हैं। जंगम विवाहित होते हैं। पंचमोंमें कितनी ही जातियां होती हैं, परन्तु अधिक नहीं। समाज-सुधारकी दृष्टिसे लिंगायत पंथ स्त्रियोंका बड़ा हिमायती है। उसमें बाल्यावस्थामें स्त्रियोंका भी उपनयन संस्कार किया जाता है। लिंगायत पंथमें रजस्वला स्त्रियाँ अछूत नहीं समझी जातीं। उनका मत है कि पुरुषोंके समान ही स्त्रियां भी परमगति अर्थात् 'सामरस्य' प्राप्त कर सकती हैं। इस पंथका गायत्री मंत्र भी (ॐ नमः शिवाय) पृथक् ही है। गोत्रव्यवस्था भी भिन्न ही है। वे मद्य और मांससे बहुत परहेज़ करते हैं।

टिप्पणी

वीर शैव पंथ और उसके संस्थापकोंके विषयमें राईसका लेख

राईसके कर्नाटकी साहित्यके इतिहास पर लिखे ग्रन्थसे लिंगायत पंथ तथा बसव प्रभृति संस्थापकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं (पृ० ४०-५५) "वीर शैव कट्टर शैव कहाते हैं। वे अन्य शैवों-अर्थात् (१) सामान्य शैव, (२) मिश्र शैव (जो शिव और विष्णुको भी पूजते हैं।) और शुद्ध शैव (जो पूजते तो शिवको ही हैं परन्तु अपने पास लिंग नहीं रखते)—से भिन्न हैं। वीर शैवोंकी सबसे बड़ी पहचान यही है कि उनमें पुरुष और स्त्रियां भी चाँदी अथवा लकड़ीकी एक छोटी सी डिबियामें पाषाणका शिवलिंग धरकर उसे निरन्तर अपने पास रखते हैं। जंगम अर्थात् लिंगायतोंके धार्मिक गुरु लिंगको अपने सिरपर बाँधते हैं। यह लिंग बाँधनेकी रीति उपनयनके समान ही अत्यंत पवित्र होती है और बाल्यवस्थामें ही कर दी जाती है।"

"बसवने तो यह उपदेश किया है कि समस्त जातिके लोगोंको बल्कि अस्पृश्योंको भी लिंगायत पंथमें शामिल होनेका अधिकार है। लिंगायतोंकी

एक दूसरी विशेषता यह है कि वे शवोंको जलाते नहीं। विधवाओंका पुनर्विवाह उनमें जायज है। उनका धर्म ग्रन्थ २८ शैवागमोंसे बना है। वे शिवगीताको श्रेष्ठ मानते है। उनके मुख्य सिद्धान्त अष्टावरण और षट् स्थल है। वे प्राचीन कालके तिरसठ तामिल साधुओंको मानते है। परन्तु उनमेंसे वीर शैव ता केवल आठ ही है। बसव तथा उसके मुख्य शिष्य बिल्कुल अर्वाचीन साधु समझे जाते है। उनका प्रधान मठ मैसूरके चित्तल दुर्ग नामक स्थानमें है।"

"इस पंथका प्रसिद्ध संस्थापक बसव एक आराध्य ब्राह्मण था। मल प्रभा और कृष्णाके संगमपर कप्पडी नामक एक गाव है। बसव कप्पडीके प्रसिद्ध संगमेश्वर नामक शिवालयमें अपनी बाल्यावस्थामें रहता था। यहा रहते हुए उसके हृदयमें परमेश्वरकी प्रेरणा हुई कि किसी प्रकार वीर शैव पथका उद्धार करना चाहिए। उसका मामा और ससुर बिज्जलका मन्त्री था। जब उसकी मृत्यु हो गयी तब बसव बिज्जलका मंत्री बनाया गया। उसकी बहिन पद्मावतीका विवाह बिज्जलके साथ किया गया था। उसकी दूसरी बहिनका लडका चन्न बसव उसका (बसवका) मुख्य शिष्य था। चन्न बसवकी सहायतासे बसव अपने सिद्धान्तों तथा शिवपूजाके नवीन मार्गका उपदेश करने लगा। राजाका खजाना उसीके हाथमें था, इसलिए वह जगमोंकी सहायताके लिए उसमेंसे बहुतसा द्रव्य खर्च करने लगा। मञ्चन नामक एक दूसरा मत्री था। उसने बसवपर राज्य-कोषका पैसा खा जानेका दोष लगाया। राजाने उसे पकडनेका प्रयत्न किया किन्तु बसव भाग कर अपने शिष्योंसे जा मिला। सेना इकट्ठी करके उसने राजाको परास्त कर दिया। तब राजाने लाचार हो कर उसे उसके पूर्व स्थान पर नियुक्त कर दिया।"

इसके बाद जो कुछ हुआ उसकी कहानी भिन्न भिन्न रीतिसे कही जाती है। लिंगायतोंका कथन है कि राजाने दो लिंगायत भक्तोंकी आँखें निकालनेका प्रयत्न किया। तब बसव कल्याण नगरको शाप देकर और राजाका वध करनेके लिए अपने अनुयायियोंको आदेश कर, संगमेश्वर चला गया और वहीं एकान्त जीवन व्यतीत करने लगा। अन्तमें वहाके शिव

लिंगमें ही वह विलीन हो गया। जैनोंका कथन है कि बसवने राजाको एक विष-भरा फल भेंट किया और आप पश्चिम घाटकी तलहटीमें बसे हुए वल्जी गांवको भाग गया। राजाके लड़केने उस गांवको जा घेरा, तब बसवने निराश हो कर बावलीमें कूदकर अपने प्राण दे दिये।

"बसवने अपने लिंगायत पन्थके सिद्धान्तोंको नीचे लिखे गद्य ग्रन्थोंमें प्रतिपादित किया है—षट्स्थलवचन, बाल ज्ञानवचन, सच्चरित्रवचन, राजयोगवचन तथा मन्त्रगोप्य।"

"बसवका मुख्य शिष्य था चन्न बसव। इसे लोग बसवसे भी अधिक मानते हैं। वह तो प्रत्यक्ष शंकरका अवतार समझा जाता है। बसव बहुधा, राजनीतिमें लगा रहता था, इसलिए उपदेशका कार्य मुख्यतः चन्न बसवको ही करना पड़ता था। मामाकी मृत्युके बाद, कहा जाता है, वह राजकृपाका भाजन हो गया था। बसवके दूसरे साथी माडिवाल, माचय्य, प्रभुदेव, तथा सिद्धराम थे। उनके बताये अनेक चमत्कारोंकी कथाएँ चन्न बसव तथा अन्य पुराणोंमें दी गयी हैं।

इस प्रकार इस काल विभागमें पश्चिमकी ओर तो जैन धर्मका, दक्षिणमें शैवधर्मका, और पूर्वमें वल्कि काश्मीरतक उत्तरमें भी वैष्णव धर्मका प्रचार हुआ। इन दोनों धर्मोंमें कितने ही नवीन पंथ उत्पन्न हो गये, उनके भिन्न भिन्न धार्मिक मत, भिन्न भिन्न कल्पना, परिभाषा इत्यादिके कारण देशके बुद्धिमान् लोगोंमें पारलौकिक प्रश्नोंके विषयमें परस्पर विरोधी सिद्धान्तोंको बड़ी खलबली मच गयी। इन पंथोंमें न केवल भिन्न भिन्न देवता मुख्य ईश्वर माने गये बल्कि अन्य देवता उस मुख्य देवके अनुचर बताये जाने लगे। शिव और विष्णुके अतिरिक्त दुर्गा और गणपतिको ईश्वर माननेवाले दो पृथक् पंथ उत्पन्न हो गये और वे अपने देवताओंको सर्वोपरि बताने लगे। उनके भी अपने नये सिद्धान्त, नवीन आगम, नवीन उपासना तथा नवीन तत्वज्ञानकी सृष्टि हुई। ये शाक्त तथा

गाणपत्य पंथ इसी काल-विभागमें उत्पन्न हुए होंगे। परन्तु इस विषयमें हमारे पास कोई निश्चित सबूत नहीं है। इन विभिन्न पन्थोंके कारण कितने ही सामाजिक परिवर्तन हुए। इन पथों-के कितने ही गृहस्थ अनुयायी, जो उच्च दार्शनिक सिद्धान्तों-पर वादविवाद नहीं कर सकते थे, छोटी छोटी बातोंपर लड़ने लगे। यह देव बड़ा है कि वह, ब्राह्मण ही धार्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ क्यों माने जायँ? क्या यह जरूरी है कि मुनि नग्न ही रहें? स्त्रियाँ मोक्षकी पात्र हैं या नहीं? इत्यादि प्रश्नों पर सामान्य जनतामें भी खूब वादविवाद होने लगा। इस लिए अनेक परस्पर विरोधी तथा झगडालू पंथों और मतोंकी सृष्टि हो जानेके कारण हिन्दू जनता अनेक दलोंमें विभक्त हो गयी। राष्ट्रीय शक्ति जो धार्मिक ऐक्यकी जड़ है नष्ट हो गयी। तथापि ये भिन्न भिन्न पंथ एक बातमें सहमत थे और वह थी अहिंसा। प्राणि-हिंसा तथा मांसाहारका यदि सबने प्रत्यक्ष निषेध नहीं किया, तो भी वे उसे हेय जरूर समझते थे। इस कारण भी हिन्दू राष्ट्रकी संरक्षण शक्ति दुर्बल हो गयी। अभिनवगुप्त और कल्लटने जिस नवीन धर्मको काश्मीरमें प्रतिपादित किया उसमें भी अहिंसाको प्रधान पद दिया गया। भाग २ में हमने प्रश्न किया है कि यह श्री कल्लट कौन है? कल्हणने इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि देशके उद्धारके लिए अवन्तिवर्मन्‌के समयमें यह उत्पन्न हुआ। पहले पहल तो हमने समझा था कि यह वैष्णव ग्रन्थकार रहा होगा। परन्तु डॉ० भांडारकरके शैव तत्वज्ञान पर लिखे ग्रन्थसे प्रतीत होता है कि यह शैव दार्शनिक था। तथापि जैसा कि पहले कहा गया है उसने भी अहिंसा धर्म का ही उपदेश किया होगा। यदि ऐसा न होता तो अवंतिवर्मन् जैसे कट्टर

वैष्णव राजाके पूर्व वर्णित शासनकालमें उसका प्रचार कदापि न हो पाता। फिर भी यह मानना होगा कि, क्या उत्तर भारतमें और क्या दक्षिण भारतमें, बहुजन समाज तो स्मार्त धर्मका ही अनुयायी था। स्मार्त मतमें हिन्दू धर्मके पाँचों देवताओंको एक सा महत्व दिया गया है। परन्तु दक्षिणमें शैव धर्मके तथा पूर्वमें वैष्णव धर्मके द्वारा जैन धर्मकी पराजय होने पर वे दोनों बड़े द्वेषके साथ आपसमें लड़ने लगे। राजाओंने तक विरोधी धर्मको पददलित करनेके लिए अपनी समस्त शक्ति लगा दी। हम पहले देख ही चुके हैं कि किसी चोल-राजाने रामानुजसे यह बात स्वीकार करानेका प्रयत्न किया था कि "शिव ही सर्वश्रेष्ठ देवता है"। आज भी इन दोनों धर्म पंथोंके गृहस्थ अनुयायियोंको पारस्परिक धार्मिक द्वेषने नहीं छोड़ा है। आंध्र, कर्नाटक और तामिलमें यह धार्मिक द्वेष बड़ा ही तीव्र है। चौदहवीं सदीमें माध्व मत तथा तत्वज्ञानका उदय होकर इन झगड़नेवाले पंथोंमें एक तीसरा पंथ भी शामिल हो गया।

बंगालके विजयसेनके देवपारावाले शिलालेखको देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि विजयसेनने शिव और विष्णुके भक्तोंका पारस्परिक भेद मिटानेकी कोशिश की थी (एपि इंडि० पृ० ३०७)। विजयसेन तो शैव ही था, परन्तु सम्भवतः इसी समय उड़ीसासे वैष्णव-मत फैलता हुआ इधर आया होगा, क्योंकि हम जानते हैं कि उसका पोता लक्ष्मणसेन परमवैष्णव था। इससे अनुमान होता है कि शिव और विष्णुकी भक्तिके अन्तर्गत विरोधको मिलाकर उन्हें एक मूर्तिमें शामिल करनेकी कल्पना विजयसेनको ही सूझी होगी। उसने एक देवालय भी बनवाया और

'प्रद्युम्नेश्वर' अर्थात् शिव और विष्णुकी सम्मिलित मूर्ति उस मन्दिरमें रखकर उसने अपने प्रयत्नको ठोसरूप दे दिया। इस शिलालेखमें मूर्तिका यह वर्णन पाया जाता है—"लक्ष्मी और शैलकन्या दोनोंके पति जिस मूर्तिमें एकत्र निवास करते और खेलते हैं, उस प्रद्युम्नेश्वरकी मूर्तिको हम प्रणाम करते हैं। इन दोनों देवियोंने अपने पतियोंके बीचमें खड़े होकर अभिन्न मूर्ति बनानेके काममें कुछ विघ्न उपस्थित कर दिया है। संसार-का प्रलय करनेवाले शिवका गजचर्म ही विचित्र पीताम्बर सा दिखाई देता है और वह कण्ठहार ही महानागकी शोभाको धारण कर रहा है। वह चर्चित चन्दनांगराग विभूति सा प्रतीत होता है। और उस नीलमणियुक्त मालासे रुद्राक्षका आभास होता है। वह गरुड़मणि गोनस सी दिखाई देती है और यह मुक्तामाला मुण्डमालाकी याद दिलाती है।" इस वर्णनसे तो ऐसा मालूम होता है कि एक ही मूर्ति शिव और विष्णुकी मूर्ति सी दिखाई देती होगी।*

विजयसेन कर्नाटक अर्थात् दक्षिणका क्षत्रिय था। महाराष्ट्रमें पंढरपुरके विठोबाकी भक्तिका जो नवीन वैष्णवमत इस काल विभागके अंतमें उत्पन्न हुआ उसमें भी दोनों मतोंको एक करनेकी यही भावना दृष्टिगोचर होती है। डॉ० रा० गो० भांडारकरका मत है कि भक्तिकी यह भावना महाराष्ट्रमें

---

* लक्ष्मीवल्लभ शैलजादयितयो रद्वैत लीलागृहम्, प्रद्युम्नेश्वर-शब्द लांछनमधिष्टानं नमस्कुर्महे। यत्रालिंगनभङ्गकातरतया स्थित्वान्तरे कान्तयो' देवीभ्यां कथमप्यभिन्नतनुता शिल्पेन्तराय कृतः ॥ १ ॥

चित्र क्षौमेभचर्मो हृदयविनिहित-स्थूलहारोरगेन्द्रः श्रीखण्डक्षोदभस्मा करनिहित-महानील-रुद्राक्षमालः। वेशस्तेनास्य तेने गरुडमणिलता गोनस क्रान्तमुक्ता नेपथ्यन्नस्थिमाला समुचितरचन' कल्पकापालिकस्य ॥२॥

दक्षिणसे आयी और विठोवा शब्द विष्णुका कानडी रूप है। परन्तु यथार्थमें विठोबाकी भक्तिका वैष्णवमत रामानुजके वैष्णवमतसे बहुत भिन्न है। उसी प्रकार बंगला तथा उड़िया भाषामें विष्णुका प्राकृत स्वरूप विष्ठु है।* परन्तु पंढरपुरका वैष्णवमत बंगालके वैष्णवमतसे भी भिन्न है। उसमें भोगको जरा भी स्थान नहीं है और न उसमें गोपियोंका कहीं उल्लेख ही है। वहां तो रुक्मिणी भी बादमें आयीं। पंढरपुरकी विष्णुकी मूर्ति स्त्री देवतासे रहित है। उसकी आकृति भी अद्वितीय है क्योंकि उसके दोनों हाथ कमरपर रखे हुए हैं और सिरपर शिवलिंग है। पता नहीं चलता कि इस मूर्तिकी स्थापना किसने की, क्योंकि पुंडलीक तो जो इस देवताका भक्त बताया जाता है, एक पौराणिक व्यक्ति है। डॉ० भांडारकरने जो जो ऐतिहासिक बातें बतायी हैं उनसे तो यही ज्ञात होता है कि यह स्थान उस विष्णुमूर्तिके कारण ही पुण्यक्षेत्र समझा गया है। ई० स० १२४६ के एक शिलालेखमें भीमरथीका उल्लेख है। इससे यह अनुमान होता है कि इसके १०० वर्ष या कमसे कम ५० वर्ष पहले ही पंढरपुरके विठोबा प्रख्यात हो गये होंगे। ई० स० १२७० का एक लेख पंढरपुरमें मिला है। उसमें लिखा है कि केशवके पुत्र भानुने एक आप्तोर्याम यज्ञ किया था। इस यज्ञसे लोगोंके झुण्डके झुण्ड और विट्ठल तथा अन्य देवता भी सन्तुष्ट हो गये (भांडारकरका वैष्णव मत पृ० ८१, ८८)। हेमचन्द्रका मत है कि पाण्डुरंग शिवका नाम है। और पंढरपुरमें शिवका एक मन्दिर भी है। यात्रियोंको विठोबाके दर्शनके पहले वहाँ जाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त पंढरपुरके विट्ठल मार्गका

* कानडीमें तो विट्टीदेव कहा जाता है।

सम्बन्ध किसी भी तत्वज्ञानसे नहीं है। यह तो केवल एक भक्तिमार्ग है जिसका विकास महाराष्ट्रके सबसे प्राचीन वैष्णव भक्त नामदेव (ई० स० १२७० लगभग) तथा ज्ञानदेवने किया। मन्दिरके ई० सन् १३०० के चौर्याशी लेखमें लिखा है कि समस्त महाराष्ट्रमें चंदा करके उक्त मन्दिर बनवाया गया था। इसके अनुसार तेरहवीं सदीमें विठोबाकी भक्तिका प्रचार हुआ, तथापि पंढरपुरमें तो वह बारहवीं सदीके आरम्भमें या मध्यमें आ गयी होगी अर्थात् वह इस काल-विभागमें उत्पन्न हुई। अतः उसमें शिवभक्तिका अथवा वैदिक यज्ञ-मार्गका अंश भी द्वेष न पाया जाना आश्चर्यकी बात है। किसी तत्वज्ञानसे उसका सम्बन्ध भी नहीं है और न उसमें जाति-भेदका परित्याग ही किया गया है। इस मतमें सभी जातिके लोग अपनी अपनी जातियोंको कायम रखते हुए ले लिये जाते हैं। ईश्वरकी दृष्टिमें सभी समान हैं और भक्ति मार्ग द्वारा मोक्ष पाना सभीके लिए साध्य है—चाहे स्त्री हो या पुरुष, ब्राह्मण हो या अब्राह्मण। मतलब यह कि भगवद्गीताके शुद्ध भक्तियोग सिद्धान्तपर उसमें पूर्णतया अमल किया जाता है।

इस तरह यद्यपि शैवमत और वैष्णवमत इन दोनों पंथोंको एक करनेके ये दो प्रयत्न किये गये तथापि इन दोनोंमेंसे एक का भी अधिक प्रचार नहीं हुआ और हिन्दूधर्मके लिए यह सचमुच बड़े दुर्भाग्यकी बात है कि अभीतक वह इन दो पंथोंमें विभक्त है। इस समय हिन्दूधर्म अथवा जैनधर्मसे अहिंसा छोड़नेके लिए कहना सम्भव नहीं, क्योंकि यह उनके आध्यात्मिक विकासका न्याय्य परिणाम है। उसी प्रकार इस बातका निर्णय करना भी कठिन है कि द्वैत सिद्धान्त सत्य है या अद्वैत

सिद्धान्त किन्तु यदि सब लोग इतना स्वीकार कर लें कि परमेश्वर और संसार एक ही हैं या अलग अलग दो वस्तुएँ हैं, इस सम्बन्धमें मत भेद बना ही रहेगा, तो इससे कोई हानि नहीं। जो हो हिन्दूधर्मवालोंके लिए यह तो अवश्य ही संभव है कि वे इस विवादको छोड़ दें कि शिव बड़े या विष्णु। किन्तु ऐसा होते हुए भी किसी चोलराजाने कुछ हिन्दुओंको केवल इस बातके कारण बेहद सताया कि वे विष्णुको बड़ा मानते थे। अधिराजेन्द्रने (जिसे वैष्णव कृमि कंठ भी कहते हैं) चिदम्बरकी पहाड़ी परके विष्णु मन्दिरको नष्ट कर डाला (ई० ए० १८१२)। महात्मा तुलसीदास जीके सदृश वादके भक्तोंने महाभारतमें स्पष्ट रूपसे किये गये ऐसे ही प्रयत्नके अनुरूप इन दोनों भक्तियोंके बीचके विरोधको निकाल डालनेका प्रयत्न किया है। माना कि यह विरोध महाभारतके इतना प्राचीन है, परन्तु महाभारतमें ही तो यह उल्लेख पाया जाता है कि विष्णु शंकरको बड़ा मानकर उनकी पूजा करते हैं और शंकर विष्णुको श्रेष्ठ मानकर उनकी स्तुति करते हैं। (अनुशासन पर्वान्तर्गत उपमन्यु आख्यानको देखिए।) परन्तु प्रद्युम्नेश्वरके ढंगका भी इस दिशामें फिर एक प्रयत्न होना चाहिये कि दोनों देवताओंको मिला कर एक ही मूर्ति बना दी जाय, अथवा पंढरपुरके विठोबाकी मूर्तिका अनुकरण करके विष्णुकी मूर्तिपर शिवलिंग रख दिया जाय या शिवलिंगपर विष्णुकी मूर्ति बना दी जाय! इस तरह इन दोनों भक्तियोंको एक करनेका प्रयत्न किया जाय तो बहुत संभव है कि हिन्दूधर्मकी यह फूट दूर हो कर हिन्दुओंकी दुर्बलताका एक कारण नष्ट हो जायगा।

टिप्पणी—१

मोक्ष विषयक भिन्न भिन्न कल्पनाएँ ।

हिन्दुओं तथा जैनोंमें भी इस विषयमें भिन्न भिन्न कल्पनाएँ है कि मोक्ष किसे मिल सकता है, जन्म मरणके जंजालसे मुक्त होनेका कौन अधिकारी है । प्रत्येक धर्ममें मोक्षका कल्पना अवश्य होती है और उसका एक खास रूप भी होता है । परन्तु अन्य धर्मोंमें ऐसा कहीं देखनेमें नहीं आया कि अमुक जाति या समाजके लोगोंके लिए मोक्षका द्वार बन्द हो । अल्बेरूनीने इस सम्बन्धमें यह लिखा हैः—"हिन्दू लोगोंमें इस विषयमें भिन्न भिन्न कल्पनाएँ हैं कि मोक्षका अधिकारी कौन है । कुछ लोगोंका ख्याल है कि ब्राह्मण और क्षत्रियोंको ही मोक्ष मिल सकता है, क्योंकि केवल ये ही वेदाध्ययनके अधिकारी हैं । परन्तु व्यासका वचन है 'पचीस ज्ञान लेने पर सभी मोक्षके अधिकारी हो जाते हैं' ।" इससे सिद्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति मोक्षका अधिकारी है । भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण कहते हैं, "स्त्रियाँ, वैश्य, और शूद्र भी यदि मेरी भक्ति करें तो मुझको प्राप्त कर सकते हैं । फिर ब्राह्मण और क्षत्रियोंका तो कहना ही क्या ।" इस विषयमें अल्बेरूनीकी लिखी बातें बिलकुल तफसीलवार हैं । यदि प्राचीन कालमें यह ख्याल रहा हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि केवल वेद-मार्गसे ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि कुरानके विषयमें मुसलमानोंका और बाइबिलके विषयमें ईसाइयोंका भी तो यही ख्याल है । उपनिषदिक आर्यविचारकोंने तो यह प्रतिपादित किया है कि मोक्ष सन्यासके द्वारा ही मिल सकता है । इसी कल्पनाको बौद्ध और जैन धर्मने भी स्वीकार कर लिया । ईसाने भी संभवतः इसी सिद्धान्तका उपदेश किया है । हाँ पहले यह माना जाता था कि चूँकि स्त्रियों और शूद्रोंके वेदोंको अध्ययनका तथा सन्यासका अधिकार नहीं हैं अतः उन्हें मोक्ष मिलना सम्भव नहीं । प्राचीन धर्माभिमानिनी किन्तु उदारचेता भगवद्गीताने भक्तिके नवीन मतका प्रतिपादन किया । और यह आश्वासन दिया कि यद्यपि स्त्रियों और शूद्रोंको (इनमें वैश्य भी शामिल थे ।) ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी तरह

वेदाध्ययन तथा मोक्षका अधिकार नहीं है तथापि भक्तिमार्गसे वे परमात्माके पास पहुँच सकते हैं और मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। व्यासने सांख्य मतानुसार ज्ञानको मुख्य बताया और यह प्रतिपादित किया कि परमेश्वरका सच्चा ज्ञान होते ही मनुष्यको अपने आप ही मोक्ष मिल जाता है। भगवद्गीताका उदारमत श्रीकृष्णके समकालीन तत्त्व-वेत्ताओंके लिए अभिमानकी वस्तु है, इस बातको स्वयं अल्बेरूनी भी स्वीकार करता है। परन्तु साथ ही वह यह भी कटाक्ष कर देता है कि श्रीकृष्णने तो यह इसलिए कहा कि वह शूद्र था। हमें यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि अल्बेरूनी जैसा हिन्दुओंके धर्म-ग्रन्थोंकी बारीक बातोंका जानकार आदमी भी इतनी बड़ी भूल कैसे कर सका। श्रीकृष्ण नन्दके दत्तक पुत्र थे और नन्द तो वैश्य थे। परन्तु अल्बेरूनी-के समय वैश्य शूद्रोंसे अधिक ऊँचे नहीं थे। और खासकर गायोंको पालनेवाले उस समय अक्सर शूद्र ही होते थे। संभवतः इसीलिए अल्बेरूनीसे श्रीकृष्णकी जातिके विषयमें यह गलती हो गयी। अस्तु, इस काल-विभाग (१०००-१२००) में तो हिन्दू-जनतामें यही धारणा प्रचलित थी कि ब्राह्मण और क्षत्रिय ही मोक्षके अधिकारी हैं। अभीतक क्षत्रियोंको वेदाध्ययनका अधिकार बना हुआ था। परन्तु आगे चलकर यह धारणा दृढ हो गयी कि क्षत्रिय सन्यास नहीं ले सकते अर्थात् मोक्षके अधिकारी अब केवल ब्राह्मण ही रह गये।

अंतिम गति विषयक वेदान्तियोंकी कल्पना वैष्णवोंकी कल्पनासे कुछ भिन्न थी। परन्तु हमारा तो ख्याल है कि चूंकि रामानुज कट्टर-पुराण-धर्माभिमानी तत्त्ववेत्ता था इसलिये उसका भी यही ख्याल रहा होगा कि मोक्षप्राप्तिके लिए संन्यास अनिवार्य है। लिंगायत अथवा वीर शैवोंकी मोक्ष विषयक कल्पना वैष्णवोंसे भिन्न है, क्योंकि उनका सर्वश्रेष्ठदेव शिव था। अतः उनके मतानुसार प्रत्येक व्यक्तिको, स्त्रियोंको भी, मोक्षका अर्थात् कैलाशमें जाकर शिवकी सेवा करनेका अधिकार है। बौद्धोंकी मोक्ष-विषयक कल्पना इन सबसे भिन्न है और उसका नाम भी उन्होंने निर्वाण रखा है। परन्तु वे निर्वाण-प्राप्तिके लिए संन्यासको आवश्यक मानते हैं।

उनके मतानुसार संन्यासका मार्ग सबके लिए, स्त्रियोंके लिए भी, एक सा खुला हुआ है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रारम्भमें जैन बौद्धोंकी अपेक्षा कम उदार थे, क्योंकि दिगम्बरोंका ख्याल था कि कैवल्य प्राप्तिके लिए कट्टर संन्यासकी आवश्यकता है। हम किसी पिछले प्रकरणमें दिगम्बर और श्वेताम्बर तत्त्ववेत्ताओंके बीच धारमें जो शास्त्रार्थ हुआ था उसका जिक्र कर चुके हैं। इसमें दिगम्बर तत्ववेत्ताका कथन था कि स्त्रियों तथा वस्त्र पहने हुए संन्यासीको कदापि मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। इस तरह यद्यपि इस बातमें सभी पक्ष सहमत थे कि मोक्षके मानी जन्ममरणसे छुटकारा पाना ही है तथापि कौन उसके अधिकारी हैं, इस विषयमें घोर मतभेद था। देशके धार्मिक विरोधोंकी आगमें इस विरोधने घीका काम किया।

टिप्पणी—२

परमत-सहिष्णुता।

यहाँपर इस बातका उल्लेख कर देना जरूरी है कि उत्तर भारतके राजा परधर्म-सहिष्णु थे। उत्तरमें कहीं ऐसे उदाहरण नहीं पाये जाते कि किसी शैव राजाने वैष्णवोंको सताया हो या वैष्णव राजाने शैव जनसमाजको कष्ट दिया हो। न कहीं यही उल्लेख पाया जाता कि हिन्दुओंने बौद्धोंको सताया हो। बल्कि उत्तर भारतके राजा तो इतने परमत सहिष्णु थे कि उन्होंने परधर्मोंको दानतक दिये हैं। उदाहरणार्थ, गोविन्दचन्द्र परममाहेश्वर था तथापि उसने जेतवनके किसी विहारमें रहनेवाले भिक्षुओंके जीवन-निर्वाहके लिए छ गाँव दे दिये (एपि० इण्डि० ११ पृ० २२)। इसी प्रकार यद्यपि मदनपाल बौद्ध राजा था, तथापि उसने भी अपनी रानीको महाभारत सुनानेवाले ब्राह्मणको एक गाँव दिया था। यह रानी हिन्दू रही होगी। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि शैवों, वैष्णवों, तथा बौद्ध हिन्दुओंके बीच विवाह आदि भी होते थे। गोविन्दचन्द्र परम माहेश्वर था किन्तु उसकी एक रानी बौद्ध राजकन्या थी। उत्तर भारतमें जैन और हिन्दुओंके बीच विवाह होते थे और आज भी होते हैं, अस्तु। गाहडवाल

राजाओंके लेखोंसे मालूम होता है कि वे विशेष परमत-सहिष्णु थे। भूदानके समय जो धार्मिक विधि की जाती है उसमें, स्वयं माहेश्वर होते हुए भी, उन्होंने शिव तथा विष्णुकी भी पूजा की। अन्य राजाओंके लेखोंमें शिव अथवा विष्णु इनमेंसे किसी एक देवताकी पूजाका ही उल्लेख पाया जाता है।

इस परमत-सहिष्णुताके और भी उदाहरण हैं। इस कालविभाग में मुसलमानोंने उत्तर भारतमें न जाने कितने हिन्दू मन्दिरोंको नष्ट भ्रष्ट किया किन्तु गुजरात तथा महाराष्ट्रके हिन्दू राजा और प्रजाजन इतने परमत-सहिष्णु थे कि उन्होंने मुसलमानोंको अपने शहरोंमें और खासकर समुद्रके किनारेपर मसजिदें बनानेसे भी नहीं ,रोका। बल्कि ईरानकी खाड़ीपर बसे हुए होर्मज नामक शहरसे आये हुए किसी खोजा व्यापारीको परम पाशुपताचार्य, महापंडित, महत्तर, धर्ममूर्ति और अभय आदि पंचोंने अनहिलवाड़में राज्य करने वाले अर्जुनदेव चालुक्यकी ओरसे स्वयं सोमनाथमें एक मिजिगिति (मसजिद) बनवानेकी अनुज्ञा स्थानीय अधिकारी मलिकदेवके समयमें दी। यह मिजिगिति बनानेके लिए केवल जमीन ही नहीं दी गयी बल्कि उसके दैनिक व्ययके लिए हिन्दुओंने कुछ बाजार तक लगा दिये और यह सब बात एक शिलालेखमें संस्कृतमें लिखवा दी। इस लेखका काल विक्रम संवत् १३२०, वलभी ९४५, सिंह संवत् १५१, और हिजरी ६६२ हैं। अंतमें हमेशाके अनुसार लिखा है कि "जो कोई मसजिदके लिए दिये गये इस दानमें कोई आपत्ति खड़ी करेगा वह निश्चित शाप और दण्ड का पात्र होगा" (भावनगर शिलालेख पृ० २२५)। गुजरातके हिन्दू कितने परमतसहिष्णु थे, इसका यह उज्वल चित्र है। जयसिंह सिद्धराज के विषयमें भी हम पहले लिख आये हैं कि जब खंबात में उससे किसी मुसलमानने शिकायत की कि पारसियोंने हमारी मसजिद गिरा दी है, तब वह स्वय वहाँ पहुँचा और अपने खर्चसे मुसलमानोंकी वह मसजिद बनवा दी (इलि २)। इसी प्रकार राष्ट्रकूट तथा उनके पहलेके चालुक्य राजाओंने अपने देशोंमें मुसलमानोंको मसजिदें बनाने दीं और

मुसलमानोंके मामलोंका निर्णय करनेके लिए उन्हींकी जातिका एक अधिकारीतक नियुक्त कर दिया (भाग २ पृ० ५६६)। ठानेके शिलाहारोंने तो संजानमें बसे हुए पारसियों और मुसलमानोंको विशेष अधिकार दे रखे थे। और गाँवके दान पत्र इत्यादिकी सूचना इन्हें भी कर दी जाती थी। गुजरात और महाराष्ट्रके हिन्दू राजा तथा हिन्दू जनताकी यह परमत-सहिष्णु वृत्ति प्रशंसनीय है और इतिहासमें यह विशेषतः उल्लेखनीय है। इसलिए यदि ये राजा जैनियोंसे सहिष्णुताका बर्ताव करते थे तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। इस कालविभागमें गुजरातमें राज्य करनेवाले चालुक्य राजा तथा इसके बाद राज्य करनेवाले वघेल राजाओंने जैन धर्मको काफी आश्रय और प्रोत्साहन दिया। उन्होंने जैन पंडितोंका आदर किया और जैन मंदिरोंको दान दिये। कल्याणके चालुक्य जैन धर्मका विरोध करते थे तथापि कन्हाडके शिलाहार राजा (और खास कर विजयादित्य) कोल्हापुरकी महालक्ष्मीके कट्टर भक्त होनेपर भी जैनोंके प्रति उदारताका बर्ताव करते थे और जैन मंदिरों तथा मुनियोंको उन्होंने कितने ही गाँव इनाममें दिये (एपि० इं० ३ पृ० २०७)। गुजरात और दक्षिण महाराष्ट्रमें जैन धर्मका प्रचार प्रायः इन्हीं दो राजाओंके शासनकालमें हुआ।

चौथा प्रकरण ।

हिन्दू धर्मका बदला हुआ स्वरूप ।

पिछले प्रकरणोंमें हम यह सविस्तर दिखा चुके हैं कि इस कालविभागमें हिन्दू समाजके अन्दर किस प्रकार जातियाँ तथा उपजातियाँ पैदा हो गयीं और विवाह आदिके रीति-रस्मोंमें किस किस तरह परिवर्तन हुए। गत प्रकरणमें हम यह भी बता चुके कि हिन्दू धर्मके अन्दर कैसे कैसे भेद-

भाव और मतमतान्तर उत्पन्न हो गये और उनके कारण समाज किस प्रकार दुर्बल हो गया । अब हम इस प्रकरणमें हिन्दू धर्मके अन्य सामान्य रूपान्तरोंके विषयमें चर्चा करेंगे। हम इसमें यह दिखावेंगे कि मध्ययुगीन हिन्दू कालके अन्तमें हिन्दू धर्मको किस प्रकार वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ तथा प्राचीन वैदिक स्वरूपसे वह किस हदतक भिन्न हो गया। जबसे महर्षि व्यासने वैदिक संहिताओंको सुव्यवस्थित रूप दिया तबसे मुसलमानोंके आक्रमणतक कोई चार हजार वर्ष बीत गये और इतने दीर्घकालमें वैदिक धर्मका वही पुराना स्वरूप बना रहना असंभव था, तथापि नीचे लिखे विवरणसे ज्ञात होगा कि अभीतक हिन्दू धर्म वैदिक ऋषियोंके धर्मसे अपने आपको संबद्ध रखता था ।

वेद

पहले वेदोंको ही लीजिए। वेद हिन्दू धर्मके ईश्वरदत्त ग्रन्थ समझे जाते हैं। अबतक ब्राह्मण वेदोंको कंठस्थ कर लिया करते थे, क्योंकि वेदोंकी रक्षा करना उनका कर्तव्य ही था। इस विषयमें अल्बेरूनीने आगे लिखी बातें लिखी हैं। "ब्राह्मण लोग बिना समझे बूझे ही वेदोंका उच्चारण करते रहते हैं और इसी प्रकार उन्हें कंठस्थ भी करते हैं। बहुत थोड़े लोग उनका अर्थ जानते हैं। और ऐसे लोग तो उनसे भी थोड़े होते हैं जो वेदोंकी पूर्ण जानकारी रखते हैं।" (सचाऊ भाग १ पृ० १२८) यही परिस्थिति आज भी है। आज भी ऐसे ब्राह्मण बहुत थोड़े हैं जो वेदोंमें निष्णात हों। हाँ प्राचीन, अर्थात् बुद्धसे पूर्व, कालमें बिलकुल भिन्न परिस्थिति थी। उस समय तो प्रत्येक ब्राह्मणको, बल्कि क्षत्रिय और वैश्य-

को भी, वेदाध्ययन करना पड़ता था। अल्बेरूनी आगे लिखता है "ब्राह्मण क्षत्रियोंको वेद पढ़ाते हैं परन्तु क्षत्रियोंको यह अधिकार नहीं कि वे ब्राह्मणोंको पढ़ावें। वैश्य और शूद्रोंको वेदोंका अध्ययन करनेका अधिकार नहीं है।" बौद्धकालमें बहुतसे वैश्य बौद्ध होकर वेदोंका अधिकार खो बैठे थे। इस लिए उनका वेदोंसे कोई सम्बन्ध भी नहीं रहा। धर्मनिष्ठ क्षत्रिय तो अब भी (१०००-१२००) वेद-पठन करते थे और आज भी उन्हें इसका अधिकार है यद्यपि अब बहुत थोड़े क्षत्रिय वेद पढ़ते हैं। तथापि आजकल जो यह धारणा हो गयी है कि इस कलियुगमें तो क्षत्रिय ही नहीं हैं, वह इस काल विभागमें उत्पन्न नहीं हुई थी। उपर्युक्त बात इसका ठीक ठीक सबूत है। अल्बेरूनीके कथनसे केवल यही सिद्ध नहीं होता कि ग्यारहवीं सदीमें लोग क्षत्रियोंका अस्तित्व मानते थे, बल्कि उससे यह भी मालूम होता है कि समाजको उनका वेदाध्ययनका अधिकार भी मान्य था। अर्थात् "कलावा-द्यन्तयोः स्थितिः" यह विरोधी वचन इसके बाद १४ वीं सदी-का प्रतीत होता है। भाग २ के परिशिष्टमें प्रतिपादित हमारा यह सिद्धान्त अल्बेरूनीके उपर्युक्त कथनसे और भी अधिक पुष्ट होता है।

"वेदोंमें प्रायः स्तुतियुक्त पद्य और अग्निके भिन्न भिन्न यज्ञोंके सम्बन्धके कथन हैं। ये यज्ञ इतने अधिक और कठिन हैं कि आप उनको गिन भी नहीं सकेंगे।" आजकल तो धर्म-निष्ठ ब्राह्मणतक इनकी संख्या नहीं बता सकते, क्योंकि अल्बेरूनी द्वारा भारतका मनोरंजक वर्णन लिखे जानेके बाद तो अधिकतर वैदिक यज्ञ लुप्त ही हो गये। इस बातको हम आगे भी बतानेवाले हैं।

"हिन्दुओंका ख्याल है कि वेदोंको लिखना ठीक नहीं, क्योंकि उनको विशिष्ट उच्चारणके साथ ही पढ़ना चाहिये । उन उच्चारणोंके लिखनेमें ग़लती हो सकती है, इसलिए यही अच्छा समझा गया कि वे लिपि-बद्ध न किये जायँ । इसीसे वेदोंका बहुतसा भाग नष्ट हो गया ।" इस मूढ धारणाके कारण, मालूम होता है कि वैदिक साहित्यका बहुतसा भाग ग्यारहवीं सदीके पहले ही लुप्त हो गया । परन्तु अलबेरूनीने इसके बाद एक यह भी महत्वपूर्ण बात लिखी है कि,उसके कुछ ही वर्ष पहले काश्मीरके वसुक नामक किसी प्रसिद्ध ब्राह्मणने वेदोंका अर्थ करना शुरू कर दिया और इस डरसे कि कहीं वेद नष्ट न हो जायँ उन्हें लिख भी डाला । "जिस कामको करनेके लिए सभी ब्राह्मण हिचकते थे वही इसने कर डाला" । इस तरह मालूम होता है कि ई० स० १००० के लगभग काश्मीरमें वेद पहले पहल लिखे गये और उनपर वसुकने अपना भाष्य किया । पता नहीं कि वसुकका यह पहला वेदभाष्य आजकल उपलब्ध है या नहीं । दक्षिणमें माधव विद्यारण्यने विजया-नगरमें वेदोंका भाष्य किया था जो आजकल मिल सकता है । अवश्य ही उसने इस वसुकके वेदभाष्यका भी उपयोग कर लिया होगा ।

वैदिक यज्ञ

प्राचीन वैदिक आर्योंका मुख्य धर्म घरमें अग्नि रखकर उसमें नित्य नैमित्तिक वेद-विहित यज्ञ करना था । छांदोग्य उपनिषद्में अश्वपति राजा अपनी प्रजाकी धार्मिकताका वर्णन करते हुए लिखता है "न मे स्तेनो जनपदे नानाहिताग्निः" मेरे राज्यमें न तो कोई चोर है और न ऐसा कोई गृहस्थ है जिसने

अग्नि न रखी हो। यह परिस्थिति इस समय इतनी बदल गयी थी कि यदि इस समय कोई हिन्दू राजा कहता कि "मेरे यहाँ ऐसा एक भी गृहस्थ नहीं जिसने अग्नि रखी हो" तो किसीको आश्चर्य न होता। आजकल तो ब्राह्मणतक यज्ञकी अग्नि नहीं रखते। तथापि अल्बेरुनीके समय कुछ ब्राह्मण अग्नि रखते थे। वह कहता है "जो ब्राह्मण एक अग्नि रखते हैं उन्हें इष्टिन् कहते हैं और जो तीन रखते हैं उन्हें लोग अग्निहोत्री कहते हैं (पृ० १०२)। इसके अतिरिक्त जो अग्निको विशेष आहुति देता है (अर्थात् जो नित्यके यज्ञके अतिरिक्त कोई बड़ा यज्ञ करता है) वह दीक्षित कहा जाता है।" इस समयके शिलालेखोंमें ब्राह्मणोंके लिए दीक्षित और आवश्थिक सम्मानयुक्त पदवियोंका प्रयोग पाया जाता है। आजकल तो ये केवल उपनाम बन गये हैं। हाँ, यह सत्य है कि आजकल भी कहीं कहीं, खासकर दक्षिणमें, उपर्युक्त थोड़ेसे यज्ञ किये जाते हैं परन्तु अब कहा जा सकता है कि यह वेदविहित कर्म संस्था अर्थात् गृह्याग्निमें होम करनेकी रीति लुप्तप्राय हो गयी है।

नैमित्तिक यज्ञ

परन्तु, नैमित्तक यज्ञ, उदाहरणार्थ उपनयन अथवा विवाहके समय किये जानेवाले हवन, आजकी भाँति उस समय भी होते थे। इस काल-विभागमें भूदान-विधिके समय हमेशा होम किया जाता था। अवश्य ही इस कालके शिलालेख उन धार्मिक विधियोंका विस्तृत वर्णन देते हैं जो भूमिदानके पवित्र और सम्मानयुक्त प्रसङ्ग पर की जाती थीं। ये वर्णन बड़े महत्त्वके हैं, क्योंकि उनसे हमें यह पता लगता है कि हिन्दू धर्मकी आचार-विधि किस प्रकार वैदिक और पौराणिक धर्म-

का सम्मिश्रण हो रही थी। दान देनेवाला राजा, किसी पवित्र नदीमें किसी प्रसिद्ध घाटपर स्नान करता, देव मनुष्य और पितरोंका तर्पण करता, (यह विधि वैदिक सूत्रोंकी है) सूर्यका उपस्थान करता, (यह भी एक वैदिक विधि ही है) और शिव विष्णु आदिकी (ये पौराणिक देवता हैं) पूजा करके अन्तमें पुण्य एवं पवित्र अग्निकुण्डमें घृतकी आहुतियाँ देकर (वैदिक विधि) तब दान देनेवाले व्यक्तिके हाथपर दान-जल छोड़ता था।* इस वर्णनसे ज्ञात होगा, कि तत्कालीन राजपूत राजा पुराणधर्माभिमानी थे। यही नहीं बलिक वे वैदिक यज्ञको भी महत्व देते थे और स्वयं यज्ञ करते भी थे। परन्तु कई लेखोंमें कहा गया है कि ये यज्ञ 'घृत हवि' से किये जाते थे। यह कह देना जरूरी है कि जैन भी इस तरह हिन्दू राजाओं द्वारा दिये हुए दानोंको उनकी (दानोंकी) मजबूतीके लिए ले लेते थे।

मूर्तिपूजा

इस प्रकार आजकलकी भांति उस समय भी हिन्दू धर्म वैदिक और पौराणिक विधियोंका सम्मिश्रण बन गया था। परन्तु वैदिक तर्पण, सूर्योपस्थान और हवन यद्यपि उस समय प्रचलित थे तथापि बादमें वे शनैः शनैः कम हो गये। पौराणिक देवताओं शिव, विष्णु, देवी, गणेश, तथा सूर्य आदिकी पूजाको हिन्दुओंको नित्य धार्मिक विधिमें मुख्य स्थान प्राप्त हो गया।

*यमुनायां स्नात्वा यथाविधि देवर्षि-मनुष्य-भूत-पितृंश्च तर्पयित्वा सूर्यभट्टारकमुपस्थाय सर्वकर्तारं भगवन्तं शिवं विश्वाधारं वासुदेवं समभ्यर्च्य हुतवहं हुत्वा'''(इं० ए० १४ पृ० १०३)। कहीं कहीं वासुदेवका नाम छोड़ दिया गया है।

हम इस बातका यहाँपर विचार नहीं करते कि मूर्तिपूजा वेदमान्य है या नहीं। परन्तु वैदिक सूत्रोंमें ईश्वरकी नित्य पूजामें मूर्ति पूजाका उल्लेख नहीं है। बौद्धधर्मने आरम्भ तो यहाँसे किया कि ईश्वर है ही नहीं किन्तु आगे चलकर उसमें सर्वत्र स्वयं बुद्धकी ही मूर्तिकी पूजा होने लगी। इस प्रकारके बौद्ध धर्मके उच्छेदके बाद उसकी मूर्ति पूजा हिन्दू धर्ममें घुस कर बढ गयी और प्रत्येक घरमें छोटी छोटी मूर्तियाँ रखकर उनकी पूजा करनेकी प्रथा चल पडी। बल्कि भिन्न भिन्न निबन्धों तथा धार्मिक विधिपर लिखे गये ग्रन्थोंमे इस विषयपर वचन भी लिख दिये गये। कह नहीं सकते कि आजकलकी प्रचलित पचायतन पूजा इस कालमें उत्पन्न हुई या भिन्न भिन्न देवताओंकी भक्तिके बीचका मतभेद तोडनेकी इच्छासे शकराचार्यने पहलेसे ही उसे प्रचलित कर दिया था। परन्तु यह तो निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि आजकलकी भाँति इस काल विभागमें भी भिन्न भिन्न देवताओंकी मूर्तियाँ प्रत्येक घरमें थीं। क्योंकि यह तो नहीं माना जा सकता कि भूमिदान करते समय शिला लेखोंमें वर्णित शिव और विष्णुकी पूजा प्रत्येक बार लोग मंदिरोंमें जाकर ही करते थे। ये मूर्तियाँ राजमहलमें रखी हुई ऐसी मूर्तियाँ होंगी जिन्हें आसानीसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाना सभव रहा होगा। या तो वे धातुकी बाकायदा बनायी मूर्तियाँ होती थीं या खास निशान अथवा आकारवाले पत्थर या धातुके टुकडे होते थे जो इन देवताओंके प्रतीकका काम देते थे। जब प्रत्येक घरमें इस तरह देव मूर्तियोंकी पूजा होने लगी तब गृह्याग्निमें वैदिक होम हवन करनेकी प्रथा शिथिल पड़ गयी।

घरकी इन मूर्तियोंके अतिरिक्त प्रत्येक गाँव और शहरमें भिन्न भिन्न देवताओंके मंदिर भी होते थे जिनमें धातु या पाषाणकी मूर्तियाँ रखकर उनकी पूजा की जाती थी। राजा, रानी, मन्त्री, धनिक व्यापारी बल्कि भिक्षापर अपना निर्वाह करनेवाले तपस्वी ब्राह्मणतक, जिन्हें उनके पवित्र आचरणके कारण सैकड़ों दान मिलते थे, अपने अपने इष्ट देवताके, खासकर शिव तथा विष्णुके, प्रचण्ड और सुंदर मन्दिर बन वानेमें प्रतिस्पर्धा करते थे। मतलब यह कि इस काल विभागमें जहाँ तहाँ सारे देशमें बडे बडे सुंदर मन्दिर बन गये थे। इन मन्दिरोंमें जो मूर्तियाँ रखी जातीं वे अक्सर पत्थरकी ही होती थीं। किन्तु कभी कभी वे चाँदी-सोनेकी बल्कि रत्नोंकी भी होती थीं। धनिक राजा तथा व्यापारियोंकी अंधश्रद्धाने इसमें खूब सहायता की। भिन्न भिन्न रत्नोंकी मूर्तियाँ बनवानेके लिए भिन्न भिन्न फल बताये गये। अल्बेरूनी लिखता है "रत्नकी मूर्ति बनानेसे राष्ट्रके स्त्री पुरुषोंका कल्याण होता है। सोनेकी मूर्ति बनवानेवाला सत्ताधीश होता है, चाँदीकी मूर्तिसे कीर्ति तथा पीतलकी मूर्ति दीर्घ राज्यकी देनेवाली होती है। पत्थरकी मूर्ति जमीनी मालियत अधिक दिलाती है" (पृ० १२१ देखिए)। इस तरह सोने, चाँदी, तथा रत्नोंकी मूर्ति बनानेके लिए राजा तथा धनिक व्यापारियोंको खूब प्रोत्साहन मिलता था। अल्बेरूनीने और भी बडी खूबीके साथ लिखा है "हिंदू लोग मूर्तिका आदर मूर्ति स्थापन करनेवालेके लिए करते थे। मूर्तिके द्रव्यके अनुसार नहीं करते थे।" अर्थात् भक्तके लिए तो पत्थरकी मूर्ति भी उतनी ही फलप्रद होती थी जितनी कि सुवर्णकी मूर्ति। परन्तु क़ीमती द्रव्यकी बनी मूर्तियोंसे तो चोर डाकुओंका ही फायदा अधिक होता था।

महमूद सैकडों सोनेकी मूर्तियाँ लूटकर ले गया, फिर भी हिन्दुओंने सोनेकी मूर्तियाँ बनाना नहीं छोडा और न पत्थर की मूर्तियोंको कीमती जेवर पहनाना ही बन्द किया। यह बात इस कालविभागमें मिले हुए शिलालेखोंसे स्पष्ट प्रमाणित हो जाती है। आज भी सोनेकी मूर्तियाँ बनानेका काम यद्यपि बन्द हो गया है तथापि मूर्तियोंका जेवर पहनानेकी प्रथा तो ज्योंकी त्यों प्रचलित है।

पु० २ प्र० १६ में हमने यह साफ बता दिया है कि इस कालविभागमे भारतमें मूर्तिपूजा कितनी बढ गयी थी। अल्बेरूनीकी तत्वविवेचक बुद्धिको हिन्दुओंकी मूर्तिपूजाका भार असह्य प्रतीत होता था। तथापि उसने यह बात स्वीकार की है कि प्राचीन कालमें समस्त मनुष्य-जाति, अरब जाति भी, मूर्तिपूजक थी। अल्बेरुनीने यह भी खुले दिलसे कुबूल किया है कि भारतमें ऐसे भी तत्ववेत्ता लोग थे जो मूर्तिपूजा नहीं करते थे। हिन्दुओंकी मूर्ति विषयक विचित्र बातोंका उल्लेख करते हुए उसने यह साफ लिख दिया है कि ये बातें प्राय उन लोगोंमें पायी जाती है जो अशिक्षित और मूढ है। 'मोक्षमार्गके पथिक तथा तत्व चिन्तक लोग परमेश्वरके नाम पर बनायी मूर्तिका कदापि पूजन नहीं करते"। हिन्दू लोग मूर्ति पूजा क्यों करने लगे इसका इतिहास बतानेके लिए अल्वेरूनीने अंबरीष तथा नारदकी कहानियाँ दी है। उन्हें यहाँ उद्धृत करनेकी हम कोई आवश्यकता नहीं देखते। परन्तु भारतमें उस समय जो मूर्तियाँ पूजी जाती थीं उनका विस्तृत वर्णन उसने दिया है, वह यहाँ पर उद्धृत कर देने योग्य है। प्रथम सुलतानकी सूर्य मूर्त्ति थी। यह मूर्ति लकडीकी है और इसपर कोरडोव्हाका चमडा चढाया हुआ है। इसकी

आँखोंके स्थानपर दो लाल रत्न दिये गये हैं। कहा जाता है कि यह गत कृतयुग (अर्थात् कोई ४३ लक्ष वर्ष पहले) की बनी हुई है। महमद कासिमने जब मुलतानको जीता तब उसने इस मूर्तिको इस खयालसे रहने दिया कि उसकी आय बहुत भारी है। परन्तु उसने उसी स्थानपर एक मसजिद खड़ी कर दी। जब कार्मेतियन पंथी मुसलमानोंने मुलतान लिया तब जालिम इबन शैबानने इस मूर्तिको तोड़ फोड़ कर इसके पुजारियोंको कत्ल कर डाला। उसने खलीफाकी बनायी मसजिदको बन्द करके सूर्य-मंदिरको ही कार्मेतियन मसजिद बना दिया। परन्तु विजयी महमूदने कार्मेतियन सत्ताको वहाँ से हटा दिया और पुनः उस पुरानी मसजिदको खोल कर उसमें जुम्माकी प्रार्थना करना शुरू कर दिया। कार्मेतियन मसजिद सुनसान पड़ी रहने लगी।" मुलतानके सूर्य-मंदिरके भाग्य परिवर्तनकी यह कहानी ध्यानमें रखने योग्य है।

इसके बाद अल्बेरूनीने जो बातें कही हैं वे बड़ी महत्व-पूर्ण हैं। अल्बेरूनी तो जानकारीका खजाना है और हमें इस बातके लिए पाठकोंसे क्षमा मांग लेनी चाहिए कि हमने इसके पहले इस खजानेका उपयोग नहीं कर लिया। आश्चर्य तो हमें इस बातका हो रहा है कि इलियटको यह वर्णन कैसे नहीं प्राप्त हुआ। उसके तथा हमारे सामने जो गूढ़ प्रश्न खड़े हो गये थे उनका निराकरण अल्बेरूनीके वर्णनसे पूर्णतः होजाता है। अल्बेरूनी लिखता है (सचाऊ भाग १ पृ० ११७) "ठानेमें चक्रस्वामिन् नामक एक मूर्ति थी जिसका तमाम हिन्दुओंमें बड़ा आदर था। वह पीतलकी थी और एक आदमीकी उँचाईकी थी। यह मूर्ति सोमनाथके स्वामी महादेवलिंगके साथ साथ इस समय गजनीके तहखानेमें पड़ी है। कहा

जाता है कि भारतके समय वह उसी नाम (चक्रस्वामिन्) के एक युद्धकी स्मृतिमें बनायी गयी थी।" इस वर्णनसे दो गूढ बातें प्रकट होती हैं। एक तो यह कि बादके मुसलमान इतिहासकारोंने थानेश्वरकी मूर्तिको जो "जगसोम" कहा है वह फारसीमें गलतीसे चक्रस्वामीके बदले पढ़ा गया है और यह मूर्ति शिवकी नहीं विष्णुकी थी। दूसरी बात यह कि यद्यपि उत्बीने महमूदकी सोमनाथपर की गयी चढ़ाईका वर्णन नहीं दिया है तथापि ई० स० १०३० में दिये गये अल्बेरुनीके इस वर्णनसे—क्योंकि यह उसी समयका है—सोमनाथपर की गयी चढाईके विषयमें अब कोई सन्देह नहीं रह जाता।

लोगोंमें यह एक मूर्खतापूर्ण धारणा थी कि ये मूर्तियाँ लाखों वर्ष पहलेकी बनी हुई हैं, इसलिए वे इनका बडा आदर करते थे। यही नहीं बल्कि वे तो यह भी मानते थे कि इन मूर्तियोंमें कोई अलौकिक शक्ति है। फलत. मुलतान, थानेश्वर, जैसे स्थानोंमें लोग खूब द्रव्य बहाने लगे, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन देव स्थानोंका सपूर्ण नाश हो गया।

अल्बेरुनी और भी एक प्रसिद्ध मूर्तिका उल्लेख करता है। यह काश्मीरवाली शारदाकी मूर्ति है। स्वय शकराचार्य इसके दर्शनके लिए गये थे। इसके अतिरिक्त भारतकी जिन प्रसिद्ध मूर्तियोंके विषयमें ऐतिहासिक उल्लेख पाया जाता है वे हैं काशी तथा उज्जयिनीकी शकरकी मूर्तियाँ, भेलसाकी भैल-स्वामी नामक विष्णु मूर्ति, जगन्नाथपुरीकी विष्णु मूर्ति, पढर, पुरके विठोबा और कोल्हापुरकी महालक्ष्मीकी मूर्ति। इनके सिवाय कांचीस्थित शिव मूर्ति और अल्बेरुनी द्वारा वर्णित रामेश्वरकी मूर्तिका भी उल्लेख यहाँ कर देना जरूरी है। कोट कांगडाकी देवीके विषयमें तो हम पहले ही लिख चुके

हैं। फिर जैसा कि उन्होंने लिखा है, मथुरा तथा कन्नौजकी सैकड़ों मूर्तियोंको तो महमूद नष्ट कर ही चुका था।

यहाँपर अल्बेरूनीने वराहमिहिरकी बृहत्संहिताका उल्लेख करके यह बताया है कि भिन्न भिन्न देवताओंकी मूर्तियाँ कैसी होनी चाहिए। इससे दो तीन मनोरंजक बातें विदित होती हैं। हम पहले उन्हींका उल्लेख करते हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि कई लोगोंका ख्याल है कि रामानंदके पहले श्रीरामके मन्दिर नहीं थे परन्तु वराहमिहिरने स्वयं दशरथ-पुत्र रामकी मूर्तिका वर्णन किया है और अल्बेरूनीने उसे नोट कर लिया है। इससे यह सिद्ध होता है कि छठी सदीसे लेकर ग्यारहवीं सदीतक तो श्रीरामकी पूजा होती थी। दूसरे, विष्णुकी मूर्तिके आठ, चार, और दो हाथ होते हैं ऐसा वर्णन है। इन हाथोंमें दिये जाने वाले भिन्न भिन्न आयुधोंका भी वर्णन किया गया है। यदि दो हाथवाली विष्णुकी मूर्ति हो तो उसके एक हाथमें शंख देकर दूसरा हाथ यों दिखाया जाय मानों पानी निकाल रहे हों। यह वर्णन विचित्र है और पंढरपुरमें विठोबाकी जो मूर्ति है उसको लागू नहीं हो सकता। तीसरे, बलदेव, प्रद्युम्न, सांब, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, सूर्यपुत्र रेवत, सूर्य, सप्तमातृ, भगवती तथा मनुष्यके शरीरपर हाथीके मस्तकवाले विनायक देवकी मूर्तिका भी जिक्र है। अन्तिम दो मूर्तियोंको छोड़कर और सब मूर्तियाँ आजकल नहीं दिखाई देतीं। कांगड़ाके बैजनाथके मन्दिरमें घुसते ही श्रीगणेशकी एक मूर्ति दिखाई देती है। इसके छः हाथ हैं और जैसा कि ज्ञानेश्वरकी लिखी भगवद्गीताकी प्रसिद्ध टीकामें वर्णन है, इन छहों हाथोंमें भिन्न भिन्न आयुध भी हैं। इस बैजनाथके मंदिरकी दीवारपर तथा शिखरपर बाहरकी ओर भिन्न भिन्न देवताओंकी बड़ी

सुंदर सुदर मूर्तियाँ खुदी हुई हे । वे इतनी मनोहर हैं, प्रत्येक देवताके पार्षदगण, वाहन, आयुध सब इतने हूबहू हैं कि उन्हें देखते ही वनता है। उसमें लिखे हुए लेखसे ज्ञात होता है कि यह मन्दिर ईसवी सन् १२०० के आसपासका है।

अल्बेरुनी आगे लिखता है "इन देवताओंके भक्त भेड और भैंसोंको कुल्हाडीसे मारते हैं और उनका रक्त पीकर स्वयं पुष्ट वन जाते हैं।" यह वर्णन कुछ विलक्षणसा है। यह शायद उसकी आँखों देखी वात नहीं, शाक्ततंत्रमें पढी हुई वात होगी। भिन्न भिन्न देवताओंके पुजारियोंके विषयमें अल्वेरुनी नीचे लिखी वातें लिखता है।

"विष्णुके पुजारी भागवत होते हे। सूर्यके पुजारी ब्राह्मण और शंकर महादेवके पुजारी बड़े विचित्र होते हैं। उनके मस्तकपर जटा, शरीरपर राख लगी हुई, रुड माल धारी, तथा तालावोंमें गोते लगानेवाले होते हैं।" (पृ० १२०)

इस काल विभागके शिलालेखोंसे, भी अल्वेरूनीके कथनकी, विशेपकर महादेवके पुजारियोंके सम्बन्धके कथनकी, पुष्टि होती है। वदायूंके शिलालेखमें दो शैव तपस्वियोंका विस्तृत वर्णन है। पहलेका नाम वर्मशिव है और वह अनहिल पट्टण का रहनेवाला था। वाल्यावस्थामें जब वह दक्षिण देशमें गया तो उसने बौद्धों द्वारा प्रस्थापित एक मूर्तिको उखाड डाला। वादमें वडा होनेपर अपनी विद्वत्ता तथा तपश्चर्याके कारण उसने खूब प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और घूमता हुआ वदायूँमें आया। वहाँपर उससे वहाँके राजाके रुल्ह नामक द्विज मत्रीके वनाये मदिरमें पूजा करनेके लिए कहा गया। "दूसरा तपस्वी मूलतः हरियान (दिल्लीके आसपासके प्रदेश) का रहनेवाला था। उसने शिवकी सेवाके लिए अपने धन तथा

संसारको छोड़ दिया था। उसका एक शिष्य पंचप्रवरी वत्स-गोत्री गौड देशका ब्राह्मण था जिसका नाम ईशानशिव था। उसके गुरुने उसकी पूर्ण परीक्षा करके उसे तपस्वीकी गद्दी पर बिठा दिया। अब ईशानशिवने उस भरतपुरीमें बदाऊंके राजाके मन्त्री रुल्हकी सहायतासे एक ऊँचे शिखरवाला सुंदर भव्य शिवालय बनवाया। इस मंदिरकी पूजा करनेका काम प्रथम तपस्वीके सिपुर्द कर दिया गया।" इस वर्णनसे तो प्रतीत होता है कि ब्राह्मण तथा ब्राह्मणेतर सभी व्यक्ति शैव तपस्वी हो सकते थे और वे एकसी कठिन तपश्चर्या करके अपने जीवनको ईश्वर-सेवामें लगा देते थे। शिवालयकी मूर्तिकी पूजाका काम ब्राह्मणेतर तपस्वी करते थे। आजकल भी यही प्रथा है। इस तरह देवालयकी मूर्तियोंकी पूजा करने-के कामको शैव तपस्वियोंके सिपुर्द करनेके प्रमाण कई शिला-लेखोंमें पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ भेड़ाघाटवाले आल्हणदेवी-के शिलालेखमें साफ लिखा है कि उसके द्वारा बनाये मन्दिरकी देखभाल और पूजाका काम एक लाट * तपस्वीके सिपुर्द किया गया था (इं० ए० १ पृ० ५२)। उसी प्रकार वत्सगोत्री किसी ब्राह्मण तपस्वी द्वारा बनाया हुआ एक शिवालय तथा मध्यदेशके किसी गंगाधर नामक धर्मशील तथा विद्वान् ब्राह्मणका बनाया हुआ मंदिर भी शैव तपस्वियोंके सिपुर्द किया गया था। इसका उल्लेख इं० ए० २ (पृ० ५२ और ६१) में है।

मठ

ये शैव अथवा वैष्णव तपस्वी मंदिरोंके पास ही रहते थे। ह्युएनत्संगने लिखा है—"शैव तपस्वी तथा जैन या निग्रन्थमुनि

*लाटान्वयः पाशुपतः तपस्वी श्री रुद्र राशिर्विधिवन् व्यधत्ताम्।
स्थानस्य रक्षाविधिमस्य तावद्यावत् मिमीते भुवनानि शंभुः॥

अपने अपने मठों और देवालयोंमें रहते हैं।" इससे निर्विवाद सिद्ध है कि ई० स० ६०० के लगभग मठोंका अस्तित्व था। बहुत सम्भव है कि ये बौद्ध विहारोंकी नकल हों। इस काल विभागमें मगधको छोड कर अन्य सब स्थानोंमें बौद्ध धर्म नष्ट हो गया और बौद्ध मंदिर तथा विहार शिव तथा विष्णुके मंदिर और मठोंमें परिवर्तित हो गये। परन्तु इस कालके शिलालेखोंमें मठोंके बनवानेका स्पष्ट उल्लेख भी पाया जाता है (इ० ए० २ पृ० ३१०)। इसमें एक व्याख्यानशाला तथा शिव मंदिरके पास उद्यानशाला बनवानेका उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि तपस्वियोंके व्याख्यानके लिए व्याख्यान शाला तथा रहनेके लिए मठ भी जरूर बनाये जाते होंगे। आजकल तो दक्षिण भारतको छोडकर और कहीं ऐसे मठ नहीं देखे जाते। अर्थात् जिस प्रकार आजकल बौद्ध सन्यासियोंके विहार कहीं दिखाई नहीं देते उसी प्रकार पाशुपत योगियोंके मठ भी कहीं नहीं पाये जाते।

आगम और तन्त्रग्रन्थ

भिन्न भिन्न देवताओंकी पूजा करनेके भिन्न भिन्न प्रकार तथा विभिन्न तपस्वियोंके पथोंमें जो नाना प्रकारके तप और संन्यास प्रचलित हो गये, उनके कारण इस कालविभागमें आगम और तंत्र नामक नवीन धर्म ग्रन्थोंका आविर्भाव हो गया और उनमें इन सबका यथास्थित वर्णन किया गया। ऐसे आगम अनेकों हैं। परन्तु वे केवल उन्हीं पांच देवताओं की पूजासे संबंध रखते हैं जो आजकलके प्रचलित हिन्दूधर्ममें मुख्य माने जाते हैं। इन पांच देवताओंकी पूजा विधिमें भी भिन्न भिन्न पथ हैं और देखते ही उनको

एकदम पहचाननेके लिए मस्तकपर चंदन लगानेके कई प्रकार बताये गये हैं। वेदोंको निगम और इन नवीन धर्म-ग्रन्थोंको आगम कहते हैं। आगमोंकी सत्ता वेदोंकी अपेक्षा भी अधिक समझी जाती है। तंत्र इसी प्रकारके अन्य ग्रन्थोंका नाम है। भिन्न भिन्न पूजाविधिके साथ जिन मंत्रोंका उच्चारण किया जाता है, उनका तथा कितनी ही गुप्त रूपसे करने योग्य विधियोंका संग्रह उनमें है। मालूम होता है कि इन तंत्रोंमें ब्राह्मण तथा ब्राह्मणेतरोंको भी समान अधिकार था। वैदिक तप और संन्यास का अधिकार केवल ब्राह्मणोंको ही था परन्तु आगमोक्त तपश्चर्याका द्वार सबके लिए एकसा खुला था। यह आगम-साहित्य तथा तंत्र-साहित्य बहुत प्रकारका और विस्तृत है। इसपर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेके लिए इसका अध्ययन करना आवश्यक है। तथापि यह निश्चित जान पड़ता है कि शंकराचार्यके पहले ही यह साहित्य उत्पन्न हो चुका था, क्योंकि पाशुपतादि अनेक मतवादियोंमें उनका शास्त्रार्थ हुआ था। इस कालविभागमें इस साहित्यने खूब महत्व प्राप्त कर लिया। इसीलिए इस कालविभागके शिलालेखोंमें अनेक तपस्वियोंके नाम पाये जाते है।

संस्कार और कर्मकाण्डकी वृद्धि

कहना नहीं होगा कि इस नवीन धार्मिक साहित्यकी उत्पत्तिके साथ ही साथ संस्कार तथा धार्मिक कर्मादि भी खूब बढ़ गये। प्रत्येक देशमें धर्मशास्त्रका खूब अध्ययन हुआ और अनेक संस्कारों तथा विधि आदिपर ब्राह्मणोंने बल्कि राजाओंने तक ग्रन्थ लिखे। इस कालमें धर्मपर लिखा गया सबसे पहला ग्रन्थ था विज्ञानेश्वरकी मिताक्षरा टीका। यह

ग्रन्थ दक्षिणके कल्याण नामक शहरमें याज्ञवल्क्य स्मृतिपर लिखा गया। ठानेके राजा अपरादित्यने अपरार्क नामक एक दूसरे विस्तृत ग्रन्थकी रचना की। बंगालके बल्लालसेनने स्वयं दानसागर नामक एक ग्रन्थ केवल नाना प्रकारके दानादिपर लिखा तथा उसके पुत्र लक्ष्मणसेनके अनेक विद्वान् दरबारी पण्डितोंने ब्रह्मकर्मसमुच्चय जैसे ग्रन्थ लिखे। गोविन्दचन्द्रके शासनकालमें कन्नौजमें भी धर्मशास्त्रपर कई ग्रन्थ लिखे गये। अन्तमें हमें हेमाद्रिके चतुर्वर्गचिन्तामणि नामक विशाल ग्रन्थका उल्लेख करना चाहिए। यह ग्रन्थ हमारे इस कालविभागके कोई सौ वर्ष बाद देवगिरिमें लिखा गया। इन अनेक धर्म-ग्रन्थोंसे यह बात मालूम हो जाती है कि किस प्रकार इस कालविभागमें पुराण तथा आगम-ग्रन्थोंसे आजकलके हिन्दू-धर्मकी उत्पत्ति हुई और किस प्रकार उसका स्वरूप मूल सरल वैदिक आर्यधर्मसे भिन्न हो गया। उदाहरणार्थ, बाणने अपने हर्षचरितमें प्रतापवर्धन जैसे महान् राजाकी उत्तर क्रियाका जो सरल वर्णन दिया है उसके साथ उन भिन्न भिन्न श्राद्धदानादिकी तुलना की जाय जो गरुणपुराण में लिखे गये ह, तो स्पष्ट हो जायगा कि हर बातमें संस्कार बढ गये। पौराणिक देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक व्रतों तथा क्रियाओंकी उत्पत्ति और प्रचार हो गया। उन सबको यहां विस्तृत रूपसे लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मणोंका दैनिक धार्मिक कार्यक्रम तो इतना बढ गया कि उन्हें दम लेने तकका समय मिलना कठिन हो गया। नैमित्तिक संस्कार तथा कर्म भी बेहद बढ गये। वैदिक यज्ञोंके स्थानपर विष्णु और देवीकी भक्ति सम्बन्धी अनेक झंझटों वाले नवीन प्राणिहिंसा-विरहित यज्ञोंका विधान बताया

गया। जैन रथयात्राओंकी देखादेखी पौराणिक देवताओंकी रथयात्राओंका भी प्रचार हुआ। मतलब यह कि नवीन आगमों तथा विस्तृत पुराणोंके अनुसार पौराणिक देवताओंकी भक्तिका आडम्बर इतना बढ़ गया कि वैदिक सूत्रोंमें बतायी गयी धर्म-विधियाँ ताकमें रखी रह गयीं। तथापि ब्राह्मण क्षत्रियोंमें पौराणिक विधियोंके साथ साथ इनका भी प्रचार जारी रहा।

अल्बेरूनीने उन उत्सवों तथा उपवासोंके दिनोंके नाम दिये हैं जो उसके समय पंजाबमें प्रचलित थे। उन्हें हम आगे टिप्पणीमें लिखेंगे। परन्तु वे प्रधानतः आजकलके जैसे ही हैं। हाँ, उनमेंसे कुछ इस समय लुप्त हो गये हैं। वे प्रधानतः शिव तथा विष्णुकी भक्तिके सम्बन्धके हैं, और कुछका सम्बन्ध देवी तथा सूर्यसे है। अल्बेरूनीके बाद आगम और पुराणोंपरसे और भी कई 'पवित्र दिन' उत्पन्न हो गये होंगे। संभव है, अल्बेरूनीकी दी हुई फेहरिस्त ही ठीक न हो। इस तरहके विशेष पवित्र दिनोंका नाम शिलालेखोंमें पाया जाता है। उदाहरणार्थ कलिंगके किसी एक दानपत्रमें हम गोविन्द द्वादशीका नाम देखते हैं। इस लेखके लिखनेवालेने गोविंद द्वादशीकी व्याख्या भी की है। उसमें कितने ही ग्रहोंके विशेष योग हैं *। सूर्य चन्द्रादि ग्रहोंके अनेकों नक्षत्र तथा राशियोंके साथ योग होनेसे कई पुण्य योग तथा पवित्र दिनोंकी संख्या बढ़ गयी। कहना न होगा कि श्राद्धोंकी भी संख्या बढ़ गयी। कन्यागत श्राद्धका उल्लेख गुजरातके वीसलदेवके ई० सन् १२५४ के एक शिलालेखमें पाया जाता है। (इं० ए० २ पृ० १८४)

* फाल्गुनस्य च द्वादश्यां कुंभस्थित दिवाकरे। नक्रस्थिते सूर्यसुते जीवे कार्मुक संस्थिते। पुष्यर्क्षे च संयुक्ते शोभने भानुवासरे गोविंद द्वादशी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा॥

पुराण ग्रन्थोंकी वृद्धि

प्रत्येक पथके आगम और तन्त्रोंके अतिरिक्त मध्ययुगीन हिन्दू कालमें प्राचीन पुराणोंके विस्तृत संस्करण भी तैयार किये गये। प्राचीन अठारह पुराण छोटे थे। उनमें इस कालमें इन पाँचो देवता सम्बन्धी विशिष्ट पथयुक्त भाग जोड दिये गये। इसीलिए देवता पौराणिक कहे जाते हैं और यह उचित भी है। पुराणोंमें शिव, विष्णु, देवी और गणपतिका महत्व बताया गया है तथा उनकी भक्तिके विषयमें अनेक मत बताये गये हैं। उस समय जनसाधारणमें शिवकी भक्ति बहुत ज्यादा थी, इसलिए दस पुराणोंमें शिवकी भक्तिका वर्णन किया गया है। विष्णुकी भक्ति चार पुराणोंमें बतायी गयी है। गणपति तथा देवीकी भक्तिका वर्णन करनेके लिए दो दो पुराणोंका उपयोग किया गया है।* मालूम होता है कि इस काल विभाग में सूर्यकी भक्तिका महत्व जाता रहा। परन्तु दसवीं सदीमें भागवत पुराणकी रचना होनेके कारण विष्णु भक्ति फिर बढ़ गयी थी। इन देवताओंकी भक्तिके विविध पथों और विधियों का प्रचार भी हुआ। शिव, विष्णु, देवी, तथा गणपतिकी जहाँ जहाँ कहीं मान्य मूर्तियाँ थीं और जो क्षेत्र इस विषयमें समस्त भारतवर्षमें प्रख्यात थे उनकी गणना पुराणोंमें की गयी और उनके माहात्म्यका वर्णन किया गया।

स्कदपुराणमें भारतके प्रसिद्ध चौरासी शिवलिंगोंका वर्णन तथा प्रत्येक लिंगके माहात्म्य सम्बन्धी विशिष्ट पौराणिक कहानियां भी दी गयी हैं। अन्य पुराणोंमें विष्णु, देवी, तथा गण

* अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिव ।
चतुर्भि गीयते विष्णु द्वाभ्या शक्तिश्च विघ्नप ॥

पतिसे सम्बन्ध रखनेवाले पुण्यस्थानोंका वर्णन और उनके माहात्म्यकी कहानियां लिखी हुई हैं। यह साहित्य पहले और दूसरे काल-विभागमें बढ़ा और तीसरे काल-विभागमें उसने वह रूप प्राप्त कर लिया जिसमें हम उसे अब देख रहे हैं।

उपस्मृति तथा उपपुराण

हिन्दूधर्मका स्वरूप, उसके व्रत, संस्कार इत्यादि इतने बढ़ गये कि पुराने अठारह पुराण तथा अठारह स्मृतियोंसे भी उसका काम न चला। अतः इस कालविभागमें या इसके पहले उपपुराण तथा उपस्मृतियोंकी भी सृष्टि हुई। हम पहले बता चुके हैं कि इसी प्रकार भागवत पुराणकी सृष्टि दसवीं सदीमें हुई थी। उपस्मृति तथा उपपुराणोंसे तथा उनमें वर्णित नवीन विधियोंको देखकर यह पता लगाना बहुत महत्त्वपूर्ण और मनोरंजक है कि वे कब लिखे गये थे। परन्तु यह साहित्य-सागर अथाह है। इसकी थाह लेनेके लिए तथा अध्ययन करनेके लिए बहुत समय और परिश्रमकी आवश्यकता है। तथापि यह करीब करीब निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि इस साहित्यकी उत्पत्ति अधिकांशमें इसी कालविभागमें हुई थी। क्योंकि इन उपपुराणोंमें और खासकर आदित्य पुराण-में कलिवर्ज्योंका उल्लेख पाया जाता है। इन कलिवर्ज्योंको देखनेसे यह साफ साफ पता लग जाता है कि प्राचीन सूत्र-कालीन वैदिक धर्मसे यह वर्तमान पौराणिक हिन्दूधर्म कितना और किस तरह भिन्न था। इस पुराणमें जो बातें कलिवर्ज्य बतायी गयी हैं वे वही धर्म अथवा विधियाँ हैं जो वैदिक सूत्र-कालसे (ई० स० १०००) लेकर मध्ययुगीन कालके अंततक (ई० स० १२००) लुप्त हो गयी थीं। वर्तमान हिन्दूधर्मको

तथा वैदिक सूत्रोंको, साथ ही स्मृतियोंको भी, देख कर कौन कौन बातें कलिवर्ज्य हैं यह बताया जा सकता है। इस सूची परसे हिन्दूधर्मका परिवर्तित स्वरूप तुरन्त ध्यानमें आ जाता है। इस परिवर्तनके लिए कोई आधार जरूर होना चाहिए, इस ख्यालसे यह कलिवर्ज्यवाला प्रकरण उपपुराणमें जोड दिया गया और निबंधकारोंने अर्थात् धर्मशास्त्रपर ग्रंथ लिखने वालोंने आधार बतानेके लिए इन वचनोंको उपपुराणोंसे उद्धृत कर लिया।

कलिवर्ज्य

कलिवर्ज्य वचनोंको (इन्हें हमने परिशिष्टमें उद्धृत कर दिया है) ध्यानके साथ जाँचनेसे ज्ञात होगा कि इनमेंसे कुछ निषेध इसी काल विभागमें उत्पन्न हुए और अनेकों निषेध उससे भी पहले उत्पन्न हो चुके थे। चितामें अथवा कगारपर-से कूदकर प्राण देनेका निषेध संभवतः ई० स० १००० के लगभग उत्पन्न हो गया था। अलबेरूनीने भी बताया है कि यह निषेध एक विशेष वचनसे किया गया था। पहले कालविभाग-के धर्मशील हिन्दुओंके ऐसे उदाहरण हैं जिन्होंने अपने आप-को चितामें कूदकर जला दिया था। स्वयं कुमारिल इस तरह चितामें जलकर मरा था। उसी प्रकार कुमारगुप्तके विषयमें उल्लेख है कि उपलोंकी होली जलाकर उसमें कूदकर उसने प्राण दिये (भाग १)। इसी प्रकार अनुलोम असवर्ण विवाहका निषेध भी स्पष्टरूपसे इसी कालकी बात प्रतीत होती है, क्योंकि राजशेखरने (ई० स० ६४०) क्षत्रिय स्त्रीसे विवाह किया था। संन्यासका निषेध तथा अग्निहोत्रका निषेध बौद्धकालमें उत्पन्न मालूम होता है। कुमारिल तथा शंकरके बाद

ये निषेध निकाल डाले गये थे, क्योंकि कुछ ब्राह्मण तो जरूर आज भी संन्यास धारण करते हैं तथा अग्निहोत्र भी करते हैं। इसलिए इन दो विषयोंपर कलिवर्ज्य वचनोंमें विरोधी वाक्य हैं। दूसरे, कुछ कलिवर्ज्य विषय ऐसे हैं जिनकी उपयुक्तता विवेक बुद्धिको जंच जाती है और हम स्पष्ट रूपसे जान सकते हैं कि ये केवल दया अथवा शुद्ध नीतिके ख्यालसे ही लिखे गये हैं। परन्तु कई निषेध केवल धार्मिक मूढ़ता द्वारा प्रेरित किये हुए प्रतीत होते हैं। समस्त जातियोंमें और खासकर ब्राह्मणोंमें जातिकी शुद्धता-विषयक कल्पनाएँ इतनी बढ़ गयीं कि जातिके बाहर विवाह सम्बन्ध तो दूरकी बात है, खानपान तक बन्द कर दिया गया। उत्तर भारतके ब्राह्मणोंकी कुछ उप-जातियोंमें जातिके अन्दर ही किन्तु परकीय व्यक्तिके हाथका भोजन भी निषिद्ध समझा जाता है और पानी भी नहीं पिया जाता। दक्षिण भारतमें तो अस्पृश्योंकी छाया तक दूषित समझी जाती है। इसके पहलेके काल विभागोंमें ब्राह्मण लोग क्षत्रिय तथा वैश्योंके यहाँ भी, कितने ही शूद्रोंके यहाँ भी, भोजन कर लिया करते थे। कलिवर्ज्यके कारण अब यह बात बन्द कर दी गयी। परन्तु ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंके लिये आपसमें (अपनी ही जातिवालोंमें) एक दूसरेके हाथका खानेकी मनाही संभवतः कहीं भी नहीं की गयी है। किन्तु जाति शुद्धिकी विलक्षण कल्पनाके कारण यह प्रथा भी बन्द हो गयी।

शुद्धिका निषेध

परन्तु धार्मिक मूढ़ता तथा जाति शुद्धिकी भी इन तमाम कल्पनाओंकी अपेक्षा सबसे अधिक हानिकर परिणाम शुद्धि-

निषेधका हुआ। मालूम होता है, इस निषेधकी उत्पत्ति अल्बेरूनीके समय ही हुई थी। इस विषयमें कोई कलिवर्ज्य वचन नहीं है। सम्भवत अल्बेरूनीकी इस विषयपर किसी विद्वान् ब्राह्मणसे बात चीत भी हुई थी, क्योंकि वह साफ लिखता है कि जो लोग मुसलमानोंके देशोंमें गुलाम बनाकर ले जाये जाते ह उनके लौट आनेपर उन्हें शुद्ध करनेके लिए प्रायश्चित्त बताया गया है। परन्तु इस प्रायश्चितका वर्णन दे चुकनेपर वह लिखता है कि ऐसे लोग जातिमें पुन शामिल नहीं किये जाते, यही उस ब्राह्मणने कहा था। (सचाऊ भा० २ पृ० १६३) अल्बेरूनीके समयमें भी लोकमतकी यह दशा थी। फिर यदि इस कालविभागमें तथा इसके बाद भी इस विषयमें लोकमत अधिक जोर पकड गया हो तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है। परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि जो लोग, जबरदस्तीसे कुछ खिला पिलाकर या अन्य रीतिसे, अशुद्ध कर दिये जाते थे, उनके लिए उस धर्ममें ही रहनेके सिवा और कोई उपाय ही नहीं था। हिन्दू धर्मने तो यह अपना सिद्धान्त बना लिया कि जो एक बार बिगडा वह हमेशाके लिए गया। इस कारण हजारों, लाखों हिन्दू बिना किसी अपराधके मुसलमान और ईसाई हो गये, यह सब लोगोंको मालूम ही है।

टिप्पणी।

अल्बेरूनी द्वारा गिनाये गये उपवास और उत्सवके दिन।

(१) अल्बेरूनीने हिन्दुओंके उपवासकी जो सूची दी है वह पंजाब तथा काश्मीरके उपवासोंसे सम्बन्ध रखती है। यदि उनमें थोडासा परिवर्तन कर लिया जाय तो आजकलके उपवासोंमें और उनमें कोई अन्तर

न रह जाय। वह लिखता है —(सचाऊ भाग १ पृ० १७५) "शुद्ध पक्षकी अष्टमी तथा एकादशी उपवासके दिन होते हैं। एकादशी विशेषत वासुदेवकी भक्तिसे सम्बन्ध रखती है और उस दिन लोग रातभर जागते हैं।" एकादशीका यह वर्णन तो आजकल भी लागू हो सकता है। अष्टमीका उपवास प्राय लुप्त हो गया है। वह देवीका दिन है। जैनोंमें अबतक उसका पालन किया जाता है। भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको अल्बेरूनी-ने जन्माष्टमी कहा है। इससे प्रतीत होता है कि उसके महीने पूर्णिमान्त थे। "चैत्रका छठा दिन सूर्यपूजाके सम्बन्धमें पवित्र माना जाता है" इसका आजकल प्राय लोप ही हो गया है, क्योंकि अब सूर्योपासना ही नहीं रह गयी है। 'आषाढमें जिस दिन अनुराधा नक्षत्र हो, वह दिन उपवासका दिन होता है।" यह ठीक ठीक समझमें नहीं आता। परन्तु उसने इस प्रकार संभवत देवशयनी एकादशीका ठीक ठीक वर्णन किया है। इस दिन तो समस्त भारतवर्ष में उपवास किया जाता है। "श्रावण पूर्णिमा सोमनाथके उपवासका दिन है। आजकल इसका प्राय लोप हो गया है। परन्तु उस समय समुद्र किनारपरके सोमनाथ क्षेत्रम संभवत्त "नारली पूर्णिमा" का माहात्म्य रहा होगा। इस समय वर्षा ऋतुकी आँधी बंद हो कर समुद्र भी शांत हो जाता है। "अश्विनी अष्टमी देवीके उपवासका दिन है, चन्द्रोदयके बाद उपवास तोडा जाता है।" अबतक भी स्त्रियाँ यह उपवास करती हैं। "भाद्रपद पचमी सूर्यके उपवासका दिन है। खिडकीसे जो सूर्यकी किरणें अंदर आती हैं उनकी धूप, दीप, पुष्प आदिसे पूजा की जाती है।" बहुत संभव है कि इसका पालन मुसलमान करते रहे हों। यहाँके प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिरका वर्णन हम पहले कर ही चुके है। कार्तिकमें वासुदेव के उठनेका दिन (एकादशी) भी उसमें लिखा हुआ है। परन्तु उस में यह एक बात ज्यादा लिखी है कि यदि उस दिन चन्द्र रेवती नक्षत्रपर हो तो उसका माहात्म्य बहुत अधिक है। आजकल यह बात कोई नहीं मानता। "भीष्म पचरात्र व्रतका पहला दिन यही है। ब्राह्मणमात्र दूसरे दिन व्रत तोडते हैं।" यह भी अब प्रचलित नहीं है। "पौषकी षष्ठी सूर्यके उपवासका दिन है" यह रथसप्तमीके पूर्वका दिन है।

परन्तु आजकल इस षष्ठीके दिन उपवास नहीं किया जाता। "माघ तृतीया स्त्रियोंके उपवासका दिन है। इसे गौरी तृतीया भी कहते हैं।" आश्चर्य है कि अल्बेरूनीने रामनवमीके उपवासका उल्लेख नहीं किया।

(२) अल्बेरूनीने जो उत्सवके दिन बताये हे वे इस प्रकार हैं (पृ० १७६) "चैत्र शुक्ल द्वितियाके दिन काश्मीरमें बड़ा उत्सव मनाया जाता है। वहांके राजाने इस दिन तुर्कोंपर बहुत भारी विजय प्राप्त की थी।" यह विजय वही होगी जो भारतमें ललितादित्यने तुर्कोंपर प्राप्त की थी। यह एक संस्मरणीय विजय है और हमने भाग १ में "भारतवर्षके मध्ययुगीन इतिहासमें यह विशेष उल्लेखनीय है" इन शब्दोंमें उसका वर्णन किया है। "चैत्र एकादशी वासुदेवके झूलेका दिन है और पूर्णिमाको स्त्रियाँ वसंतोत्सव मनाती हैं।" दोनों दिन दक्षिणमें प्रसिद्ध नहीं हैं। वैशाख तृतीया 'गौरी तृतीया' कही जाती है। "वैशाखी दशमीको ब्राह्मण लोग राजाकी आज्ञासे शहरके बाहर जाकर चार दिन तक यज्ञ करते हैं।" मेष संक्रान्ति को पंजाबमें उत्सव मनाया जाता है। आज भी वह 'वैशाखी' के नामसे प्रख्यात है। "ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा स्त्रियोंके उत्सवका दिन है। आषाढ़का पूरा महीना उत्सवमय है। श्रावण पूर्णिमाके दिन ब्राह्मणोंको दान दिये जाते हैं। आश्विन महा नवमीके दिन गन्नेका रस भवानीको चढ़ाया जाता है और भेड़ाके बच्चोंका बलि दिया जाता है। आश्विन पूर्णिमाके दिन जानवरोंका त्योहार होता है। उस दिन कुश्तियाँ भी होती हे।" भाद्रपदमें पितृपक्षका उल्लेख भी किया गया है और उस दिनको बड़ा पवित्र बताया है जब मघा नक्षत्रमें चन्द्र हो। (पूर्णिमान्त मास गणनाके अनुसार इसे आश्विन कृष्ण कहना चाहिए था) "भाद्रपद तृतीयाको स्त्रियोंका उत्सव होता है। वे टोकरियोंमें पौधे रखती हैं और रातको देवीकी पूजा करती हैं। कार्तिक प्रतिपदाको दीपावलीका उत्सव होता है। उस दिन लक्ष्मी एक दिनके लिए बलिराजाको छोड़ देती है। मार्गशीर्ष तृतीया स्त्रियोंका उत्सव दिन है। माघमें स्त्रियाँ ठंडे पानीसे स्नान करती है। फाल्गुन पूर्णिमा स्त्रियोंके दोला उत्सव का दिन है। देहातमें लोग होली जलाते हैं। फाल्गुनका सोलहवां दिन शिवरात्रिका दिवस होता है। लोग

महादेवकी पूजा करके रातभर जागरण करते हैं।" शिवरात्रिका यह वर्णन बिल्कुल ठीक है। परन्तु तिथि अशुद्ध प्रतीत होती है। १६ के स्थानपर चतुर्दशी होनी चाहिए। "मुल्तान शहरमें सूर्यका एक विशेष उत्सव होता है जो साम्ब परियात्रा कहा जाता है।" उपर्युक्त वर्णनमें लिखे हुए प्राय समस्त उत्सवोंको हम मनाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि ये कमसे कम नौ सौ वर्ष अर्थात् अल्बेरूनीके समय (१०३०ई०) से तो जरूर प्रचलित हैं।

पाँचवाँ प्रकरण।

राजनीतिक परिस्थिति।

हम भाग दोमें लिख चुके हैं कि दसवीं सदी ईसवीके अन्तमें काबुलसे कामरूप तथा काश्मीरसे कन्या कुमारीतक भारतवर्ष अनेक राज्योंमें विभक्त था और इन सभी छोटे मोटे राज्योंका शासन अनियन्त्रित सत्ताशाली हिन्दू राजा (विशेष कर राजपूत ही) करते थे। तथापि एक दृष्टिसे ये राज्य (लिमिटेड मॉनर्कीज) नियंत्रित राज्यतन थे। पश्चिमी देशोंके आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तके अनुसार राजसत्ताको अपने इच्छानुसार कानून बनानेका अनियंत्रित अधिकार है। परन्तु जिस देशमें राजाकी यह सत्ता पार्लमेण्ट अर्थात् लोकसभाके कानून बनानेके अधिकारके द्वारा नियंत्रित होती है उस राष्ट्रको 'लिमिटेड मॉनर्की' कहते हैं। इस प्रकार हम द्वितीय भागमें बता चुके हैं कि राजाको बल्कि लोगोंको भी नवीन कानून बनाने तथा पुराने कानूनोंको बदलनेका भी अधिकार नहीं था, क्योंकि राजाप्रजाकी यह धारणा थी कि स्मृतिकर्तान

मनुको वे तमाम कानून दे रखे हैं जो राष्ट्रके लिए शासन कार्यके संचालनके लिए आवश्यक होते हैं। यह ईश्वर-दत्त स्मृत्युक्त कानून सर्वत्र प्रचलित था। इस प्रकार अनियंत्रित सत्ता भी नियंत्रित हो गयी थी। राजा अपने मनमाने कानून बना कर प्रजापर अत्याचार नहीं कर सकता था। इसलिए भारतके सभी राज्य 'लिमिटेड मॉनर्कीज' नियंत्रित राजसत्ता वाले राज्य थे। इसीसे उनका शासनकार्य सुव्यवस्थित रूपसे चल रहा था और लोग सुखी थे।

दूसरे यह कि दूसरे भागमें लिखे अनुसार जमीन, हवा, देशकी परिस्थिति, लोक-भाषा, तथा भिन्न भिन्न प्रांतोंके विविध आचार व्यवहारके कारण देशमें अनेक भिन्न भिन्न राज्योंका खड़ा हो जाना उस समय स्वाभाविक ही था। इस काल-विभागमें जो राज्य थे वे भारतवर्षके स्वाभाविक भौगोलिक भागोंके अनुकूल भी थे। काश्मीर, युक्तप्रान्त, राजपूताना, (रेगिस्तान और पहाड़ी प्रदेश) गुजरात, कोंकण, मालवा, बुंदेलखण्ड, मध्यप्रान्त, बंगाल, तेलंगण, द्रविड, केरल, कर्नाटक और महाराष्ट्र ये भिन्न भिन्न राज्य थे तथा इनके प्रान्त प्राकृतिक देश विभाग ही थे। यह सत्य है कि इन सब राज्योंका एक विशाल साम्राज्य बनानेके लिए अनुकूल कारण भी थे। वंश, धर्म, तथा प्राचीन परम्परा आदि बातोंमें उनमें ऐक्य था। परन्तु यही बात प्राचीन रोमन साम्राज्यके विषयमें भी सत्य थी, फिर भी मध्ययुगीन यूरोपमें वे अनेक भिन्न भिन्न राज्य एकरूप न हो सके। उसी प्रकार मध्ययुगीन भारतमें भी इन भिन्न भिन्न राज्योंमें अभिन्न एकता उत्पन्न होकर इनका एक साम्राज्य नहीं बनाया जा सका। इसके कारण दोनों जगह एकसे ही थे। भारतीय राजाओंके मस्तिष्कमें भारतवर्षीय

साम्राज्यकी कल्पना तो हमेशा रहती थी, परन्तु इस कल्पनामें मांडलिक राज्योंको नष्ट करनेके लिए स्थान नहीं था। वे तो सिर्फ यही चाहते थे कि मांडलिक राजा नाममात्रके लिए सम्राट्का मांडलिकत्व स्वीकार कर लें। भिन्न भिन्न हिंदू राजाओंमें उस समय जो युद्ध होते वे इसी साम्राज्य या चक्रवर्तित्वके लिए होते थे। उनका यह ख्याल नहीं था कि सम्राट् पदका सम्मान आनुवंशिक या परम्परागामी हो। वह तो व्यक्तिगत सामर्थ्य द्वारा प्राप्त करने योग्य वस्तु थी। इस कारण भिन्न भिन्न राज्योंके प्रत्येक महत्वाकांक्षी राजाको यह अधिकार था कि वह दिग्विजय करके सम्राट्के सम्मानको प्राप्त कर ले। राजशेखरने सम्राट् और चक्रवर्तीमें एक सूक्ष्म भेद बताया है। वह लिखता है "सम्राट् वह है जो भारतवर्षको दक्षिण समुद्रतक जीतता है। परन्तु जो कुमारीपुरीसे लेकर हिमालयके आगे बिंदु सरोवरतक एक हजार योजनकी लंबाईके समस्त प्रदेशको जीत लेता है वह चक्रवर्ती कहा जाता है।" इन दो व्याख्याओंके बीच जो स्पष्ट अंतर है वह यह है कि चक्रवर्तीको उत्तरमें काश्मीर और नेपाल तथा दक्षिणमें चोल और पांड्योंको भी जीतना चाहिए। परन्तु हम तो देखते हैं कि इस कालविभागके कितने ही छोटे छोटे राजाओंने अपने आपको चक्रवर्ती कहलाया है। उदाहरणार्थ, कोंकणका शिलाहार राजा अपने आपको कोंकणका चक्रवर्ती बताता है। लक्ष्मणसेनने भी कामरूपावनी मंडल-चक्रवर्ती नाम धारण कर लिया था (प्रो० बंगाल ५, पृ० ४६७)। परन्तु ऐसा अक्सर होता ही है कि बड़े बड़े नामोंका महत्व धीरे धीरे कम हो जाता है। उदाहरणार्थ, अनेक छोटे छोटे राजाओं तकने अपने आपको शिलालेखोंमें महाराजाधिराज लिखा दिया है। तथापि

मालवाके भोजके लिए चक्रवर्तीकी पदवी सर्वथा योग्य थी (१०००-१०४० ई०), क्योंकि उसकी बात काश्मीर तकमें मानी जाती थी। राजशेखरकी व्याख्याके अनुसार भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें अशोक और समुद्रगुप्त तथा मध्ययुगीन इतिहासमे ललितादित्य वास्तविक चक्रवर्ती थे। अर्वाचीन इतिहासमे औरंगजेब भी चक्रवर्ती था। तथापि इस कालविभागमे चोल, चालुक्य, गाहडवाल और पाल राज्योंको साधारणतया हम साम्राज्य मान सकते ह, क्योंकि उनमेंसे प्रत्येककी अधीनतामें कितने ही मांडलिक थे।

हिन्दू राजाओंके इस साम्राज्य सम्मानको प्राप्त करनेके लोभके कारण देशकी जा हानि हुई उसका उल्लेख हम पहले कर ही चुके हं। भारतीय राजनीतिक तत्त्वज्ञान, मुगल तथा ब्रिटिश नीतिके समान, छोटे छोटे राज्योंको खालसा करनेकी शिक्षा नहीं देता था। भोज और कर्णने विजित राष्ट्रोंको नष्ट नहीं किया, फिर भी वे चक्रवर्ती कहलाते थे। अर्थात् न तो उनका प्रदेश ही बढ़ा और न शक्ति ही बढी। इसका फल यह होता था कि साम्राज्यलालसाके कारण लड़नेवाले दोनों राजा कमजोर हो जाते। हां, अजमेरके विग्रहराजने जरूर दिल्लीके विजित राज्यको खालसा कर लिया था। (शायद इसका कारण अनगपालका निपुत्रीक होना होगा) और इसलिए विग्रहराजका बल कन्नौजके गाहडवालोंके बराबर हो गया। चोहान और राठोरोंके बीच साम्राज्य पद लालसाके कारण जो यह प्रतिस्पर्धा शुरू हुई वह ठेठ पृथ्वीराज और जयचंद्रतक चलती रही। इन दोनोंके बीच तीव्र शत्रुता भी हो गयी जिससे उनकी शक्ति क्षीण हो गयी और एक तीसरे शत्रुने आकर दोनोंका नाश कर डाला।

पिछले काल विभागमें जो भिन्न भिन्न राज्य थे वही, एक दो अपवादोंको छोड़कर, इस काल विभागमें भी क़ायम रहे। इन अपवादोंमें पंजाब मुख्य था। जैसा कि प्रारम्भमें कहा जा चुका है, यह राज्य गजनीके महमूद द्वारा नष्ट किया गया था और इसके साथ ही यह हिन्दू भारतसे जुदा हो गया। पंजाबके नाशके कारण हम अन्यत्र दे चुके हैं परन्तु उनमें से एक महत्त्वपूर्ण कारणका उल्लेख हम यहाँ पुन कर देना चाहते हैं। वह है राज्यमें पर्याप्त स्थायी सेनाका न रखना। समस्त मध्ययुगीन हिन्दू राजाओंकी यही स्थिति थी। इस दोषको दूर करनेका उपाय भी पहले बतला चुके हैं (भाग २)। अरबी प्रवासी सुलेमान लिखता है कि हिन्दुओंकी सेना प्राय. सामन्तों द्वारा लाये गये सिपाहियोंकी बनी होती थी, जिसका खर्च वे अपने अधीन प्रदेशकी उत्पत्तिसे दिया करते थे। पिछले काल विभागमें राज्य करनेवाले कन्नोजके प्रतिहार सम्राटोंने जरूर शक्तिशाली सेना रखी थी। परन्तु बादके प्रतिहारोंने अर्वाचीन पेशवाओंकी तरह साम्राज्यकी सबल स्थायी सेना रखनेकी परवाह नहीं की, इसीसे राज्यपालको तुर्कोंकी शरण लेनी पड़ी। फिर भी दो कारणोंसे युक्तप्रान्त गजनीकी सत्ता से बच गया। एक तो महमूदके बादके राजा कर्तृत्वहीन साबित हुए। दूसरे, कन्नौजके राज्यको गाहड़वालोंने जीत लिया। मालूम होता है कि गोविन्दचन्द्रके समयतक गाहड़-वालोंने भी शक्तिशाली स्थायी सेना रखी थी। एक शिलालेख में लिखा है कि गोविन्दचन्द्रने स्थायी रूपसे गजाश्वपदाति सेना रखी थी और हम्मीरको अपनी राज्य सीमाके भीतर ही रहनेके लिए मजबूर कर दिया था। इसके बाद स्वतंत्र शासक के रूपमें प्रतिहारोंका उल्लेख नहीं मिलता।

इस काल-विभागके आरम्भमें और भी दो राज्य करने वाले राजकुल नष्ट हो गये। वे हैं दक्षिणके राष्ट्रकूट और गुजरातके चावड़ा। दोनों देशोंमें इन राजकुलोंका स्थान अन्य शक्तिशाली राजकुलोंने ग्रहण कर लिया जिससे महाराष्ट्र तथा गुजरात पहिलेकी ही भाँति पुनः शक्तिशाली हो गये। बंगालमें पालोंकी शक्ति घटकर वहाँ सेनोंका राज्य स्थापित हो गया। बंगालकी सत्ता अब इन दोनोंमें विभक्त हो गयी। द्रविड़ देशमें चोलोंकी सत्ता खूब बढ़ी और उन्होंने गंगातक, वलिक ठेठ हिमालयतक, दिग्विजय किया। तथापि शीघ्र ही प्राच्य गंगोंने कलिंग अथवा तेलिंगणमें एक भिन्न राज्यकी स्थापना कर चोलोंकी सत्ता तामिल अथवा द्रविड देशतक ही मर्यादित कर दी। इस तरह भाषा, जलवायु तथा जमीनके कारण भारतके भिन्न भिन्न प्राकृतिक भागोंमें इस काल विभागमें भी भिन्न भिन्न राज्य स्थापित हो गये। मध्ययुगीन अथवा आधुनिक यूरोपके भिन्न भिन्न राज्योंकी अपेक्षा अधिक बड़े होनेपर भी ये राज्य उनके समान शक्तिशाली क्यों न हो सके, यह मध्ययुगीन हिन्दूभारतका इतिहास लिखनेवालोंके लिए एक विचारणीय प्रश्न है। यूरोपके नन्हें नन्हें ईसाई राष्ट्रोंने अरब और तुर्कोंके आक्रमणोंका सामना करके अपनी स्वाधीनताकी रक्षा की। किन्तु इनसे कहीं अधिक बड़े होनेपर भी मुसलमान आक्रमणकारियोंके सामने, भारतके हिन्दू राज्यों के पैर क्यों उखड़ गये?

बात यह है कि, जैसा अन्यत्र कहा गया है, इन भिन्न भिन्न राज्योंमें राष्ट्रीय भावनाकी उत्पत्ति नहीं हुई थी। राष्ट्रीय भावनाके ही कारण हालैण्ड, बेलजियम, हंगेरी, पोलैण्ड आदि यूरोपके छोटे छोटे राष्ट्रोंने जर्मनी अथवा तुर्कोंके आक्रमणोंसे

शताब्दियोंतक अपनी रक्षा की और आजतक अपनी स्वतंत्रता कायम रखी परन्तु हिन्दू राज्योंमें तो जो थोड़ी बहुत राष्ट्रीय भावना पिछले कालविभागमें थी, वह भी इस कालविभागमें नष्ट हो गयी। हमारे ख्यालसे इसका कारण जातिभेदका दृढ़ीकरण ही है।

इस कालविभागमें जाति शुद्धिकी कल्पना बढ़ गयी तथा अहिंसाका भी खूब प्रचार हो गया। फल यह हुआ कि अनेक जातियोंने मांसका त्याग कर दिया और शनैः शनैः अनेक जातियां रोटीबेटीके व्यवहारमें एक दूसरीसे अलग हो गयीं। हिंदू समाजके इस तरह सैकड़ों छोटे छोटे स्वसंकुचित समाज बन कर उसकी एकता नष्ट हो गयी। और हमारा समूचा राष्ट्र ही स्वतंत्र रहे, इस प्रकारकी शुद्ध स्वहितकी कल्पना ही नष्ट हो गयी। पिछले कालविभागमें परस्पर विवाह करनेके कारण भिन्न भिन्न वर्णोंमें एकताकी कल्पना जागृत थी। और सबके साथ खान-पान प्रचलित होनेके कारण यह एकता और भी मजबूत हो जाती थी। दूसरे, हिन्दुओंके पुराणमतके पुनरुज्जीवनके कारण जनतामें यह विचार फैल गया कि राज्यका शासन करना क्षत्रियोंका धर्म है, और वस्तुतः यह अधिकार उन्हींका है। इस कालविभाग में भारतमें राज्य करनेवाले सभी राजकुल क्षत्रिय थे। कमसे कम वे अपने आपको क्षत्रिय बताते तो अवश्य थे। इन राज्य करनेवाले क्षत्रियोंने जातिको मजबूत बनानेके ख्यालसे अपना एक भिन्न संघ ही बना लिया। इस कारण शेष जातिसे, विशेष कर खेती करनेवाले क्षत्रियोंसे, उनका सम्बन्ध छूट गया। इस परिस्थितिके कारण देशकी राजकीय परिस्थितिके विषयमें लोगोंमें बहुत भयंकर उदासीनता छा गयी। उनकी यह धारणा

हो गयी कि राज्य राजाकी अपनी निजी सम्पत्ति है और यदि किसी कारणसे राजा अपना राज्य खो बैठे तो लोगोंका काम सिर्फ यही है कि वे उसीको अपना मालिक समझ लें जो जेता हो और उसीका कर देने लगें। राजाओंके अधिकारोंकी रक्षा सिर्फ राज्य करनेवाली जातिको हो करनी चाहिए, क्योंकि यह अधिकार केवल उसीका है। लोगोंका कर्तव्य तो यही है कि जिसके सिर पर विजयका सेहरा बांधकर परमात्मा राज्य करनेके लिए भेजे उसीकी आज्ञाका वे पालन करें। इस प्रकार इस कालविभागमें राष्ट्रीयत्वकी भावना समूल नष्ट हो गयी। राजपूतोंमें भी देशभक्ति या राष्ट्रीय भावना न रह गयी। केवल स्वामिभक्तिकी कल्पना ही शेष रही। राजपूत लोग इस बातको भूल गये कि राज्यके लोगोंकी स्वाधीनताकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। राजपूत सैनिकों में जो मनोवृत्ति रह गयी और जिसको जागृत या उत्तेजित करनेका बारम्बार प्रयत्न किया जाने लगा, वह स्वामि भक्ति ही थी। अर्थात् जो तनख्वाह दे उसीकी सेवा ईमानदारीके साथ की जाय। इस कारण, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, राजपूत सिपाही मुसलमान राजाओंके लिए भी प्राण देनेके लिए तत्पर रहते थे। काबुलके शाही हिन्दू राजाओंकी सत्ता नष्ट होनेपर उसके स्थानपर गजनीमें मुसलमानोंकी सत्ता स्थापित हो गयी परन्तु हम देख चुके हैं कि राजपूत सिपाहियोंने उनके लिए भी अपने प्राण दिये। इसलिए यदि इस काल विभागके हिन्दू राजा दुर्बल थे तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। और पृथ्वीराज तथा जयचंद जैसे महान् सम्राटोंके एक एक लड़ाईमें ही हार कर मर जानेपर यदि बिना राष्ट्रीय विरोध किये ही लोगोंने चुपचाप विजे-

ताओंकी अधीनता स्वीकृत कर ली, तो इसमें भी कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

यह बड़े ही दुर्भाग्यकी बात है कि हिन्दुओंकी तीव्र बुद्धिने इस बातकी खोज नहीं की कि राष्ट्रके वास्तविक अंग कौन कौनसे हैं और न उन्होंने इस विषयमें कोई सिद्धान्त ही बनाया। परन्तु इसमें कोई आश्चर्यकी बात भी नहीं है, क्योंकि यूरोपमें भी तो अठारहवीं सदीतक राजा प्रजाका पिता समझा जाता था। भारतके धर्मशास्त्रोंमें भी यही बात लिखी हुई है। वस्तुतः भारतके इस काल-विभागके राजाओंके विषय-में सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि वे इस बात-पर अमल भी करते थे और अपनी प्रजापर सहसा कोई अत्याचार न करते थे। सचमुच यह बात हिन्दू राजाओंके लिए प्रशंसनीय है। उफीकी जमियत-उल-हिकायतमें दीर्घायुके विषयमें लिखी कहानी इस दृष्टिसे बड़ी मनोरंजक है। और उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मुसलमान राजाओंकी अपेक्षा हिन्दू राजा कम अन्यायी थे, क्योंकि उनका यह पूरा विश्वास था कि अन्याय पीड़ित प्रजाके शापसे राजाकी आयु घट जाती है। जो हो, हिन्दू राजाओंके सामने प्राचीन भारतके आदर्श राजा श्रीरामचन्द्रजीका उज्वल उदाहरण हमेशा उपस्थित रहता था। इसी कारण मध्ययुगीन शिलालेखोंमें अत्याचारी राजा-ओंका उल्लेख बहुत कम पाया जाता है। (शायद काश्मीरका इतिहास इस नियमका अपवाद हो सकता है।) फिर, हिन्दू राजाओंका खर्च बहुत मर्यादित होता था। उनके राज्योंमें न तो स्थायी सेना रखी जाती थी और न बाहरकी नौकरशाही ही होती थी। तीसरी बात यह है कि हिन्दू लोग स्वभावतः कम क्रूर होते हैं। इसलिए मध्ययुगीन राजाओंकी सत्ता

अनियन्त्रित होनेपर भी शासन यन्त्र सुव्यवस्थित रूपसे चलता रहता तथा प्रजा साधारणतया सुखी होती थी। मुख्य बात यह थी कि उनमें भीतरी तथा बाहरी शत्रुओंसे कमसे कम खर्चमें रक्षा हो सकती थी। पाठकोंको शायद यह पढकर आश्चर्य होगा कि मध्य युगमें अनियन्त्रित सत्तावाले हिन्दू राजा आधुनिक विदेशी नौकरशाहीकी अपेक्षा कम खर्चमें अपना काम किस तरह चला लिया करते थे। परन्तु हमने आगे चलकर यह दिखा दिया है कि उन मध्ययुगीन हिन्दू राजाओंकी मुल्की तथा फौजी व्यवस्था वर्तमान ब्रिटिश या मुगल शासन-व्यवस्थाकी अपेक्षा कहीं कम खर्चीली थी। और अन्तिम बात यह थी कि उन राजाओंको कानून बनानेका या बदलनेका कोई अधिकार नहीं था। बल्कि वे तो नवीन कर तक प्रजापर लाद नहीं सकते थे। इस तरहके मर्यादित सत्ता वाले राज्योंमें यदि लोग अधिक सुखी रहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या? और इसी कारण पश्चिमकी भांति लोगोंने यहाँपर लोक सभाओंके सघटन द्वारा राजासे सत्ता छीननेका कोई प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत हिन्दुओंकी तो यही धार्मिक धारणा थी कि लोगोंको भी नवीन कानून बनाने या पुराने कानूनोंको बदलनेका कोई अधिकार नहीं है। दीवानी, फौजदारी तथा करोंके विषयमें भी कानून गढने और बदलनेका प्रजाको कोई अधिकार नहीं था। यह सब व्यवस्था स्मृतिकारोंने पहलेसे ही निश्चित कर रखी है। उनमें यहाँतक बतला दिया है कि राजा अधिकसे अधिक कितना तथा कमसे कम कितना कर ले। इसलिए हिन्दू राज्योंमें लोक सभाओंकी कभी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई। परन्तु यह होते हुए भी तथा इस प्रचलित कल्पनाके कारण भी कि राज्यका मालिक लोग

नहीं राजा है, राष्ट्रीयत्वकी भावना दुर्बल हो गयी और इस काल-विभागमें तो वह समूल नष्ट हो गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि वे मध्ययुगीन भारतीय हिन्दू राज्य उसके साथ ही विनष्ट हो गये, अस्तु।

इस तरह राजा राज्यके शासनका कार्य लोकसभा अथवा लोकसभाधिकृत मंत्रियोंकी सहायतासे नहीं प्रत्युत अपने इच्छानुसार चुने हुए मंत्रियोंकी सहायतासे करता था। ये मंत्री तमीतक अपने पदपर कायम रह सकते जब तक राजा उनसे प्रसन्न रहता। मन्त्री कितने होते थे, उनमें राज्यका काम किस तरह बँटा हुआ था, इत्यादि बातोंका अध्ययन बड़ा मनोरंजक होगा। परन्तु हम इसकी जाँच नीतिशास्त्रके ग्रंथोंके अनुसार नहीं (क्योंकि इनका समय निश्चित नहीं हुआ है) तात्कालीन शिलालेखोंके अनुसार करेंगे। मजा तो यह है कि शिलालेखोंमें इनाम या दानमें दिये हुए गाँवके नामके साथ ही साथ तमाम मंत्रियों तथा स्थानीय अधिकारियोंके नाम भी दिये रहते हैं। बंगालके शिलालेखोंमें तो ये बातें और भी विस्तृत रूपसे लिखी हुई होती हैं। उनमें नीचे लिखे मंत्रियोंके नाम पाये जाते हैं:—(१) राजामात्य (२) पुरोहित (२) महाधर्माध्यक्ष (४) महासांधिविग्रहिक (५) महासेनापति (६) महामुद्राधिकृत (७) महाक्षपटलिक (७) महाप्रतिहार (६) महाभोगिक। (१०) महापीलुपति। (एपि. इंडि. १४ पृ० १५६) इन नामोंके पहले लगाये 'महा'शब्दसे प्रतीत होता है कि इन अधिकारियोंकी अधीनतामें इसी नामके दूसरे अधिकारी भी होते थे। परन्तु अपने महत्कर्मके प्रधान होनेके कारण प्रत्यक्ष रूपसे राजाके पास जाने आनेका काम इन्हींपर पड़ता था। (इस 'महा'शब्दका प्रयोग पहले पहल किसी

काश्मीरके राजाने किया था। भाग १) इसके अतिरिक्त पट्टरानी, मुख्य राजपुत्र (युवराज) तथा मांडलिक राजाओंका भी उल्लेख शिलालेखोंमें किया गया है। परन्तु ये प्रधान मन्त्री नहीं कहे जा सकते। और न राजा इनसे हमेशा सलाह मशविरा इत्यादि ही किया करता था। परन्तु भूमिके दानोंकी खबर उनको भी करना आवश्यक समझा जाता था। गाहडवालोंके दानलेखोंमें नीचे लिखे अधिकारियोंके नाम पाये जाते हैं—(१) मन्त्री (२) पुरोहित (३) प्रतिहार (४) सेनापति (५) भांडागारिक (६) अक्षपटलिक, इनके अतिरिक्त (७) वैद्य (८) ज्योतिषी और (९) अन्त पुरीक (रानगी मन्त्री) दूती, राज्ञी, और युवराजका नाम भी पाया जाता है (गोविन्द्र चन्द्रके शिलालेख इ० ए० १८ पृ०१५ और एपि० इ० ४ पृ० १०१)। चेदीके कर्णके लेखमे निम्नलिखित नाम हैं—(१) महाराज्ञी (२) महाराजपुत्र (३) महामन्त्री (४) महासांधिविग्रहिक (५) महामात्य (६) महाधर्माधिकरणिक (७) महाप्रतिहारी (८) महाक्षपटलिक (९) महामाडलिक (१०) महासामन्त (११) महाप्रमत्तकरी और (१२) महाश्वसाधनिक (एपि इ० ११ पृ० ४१*) दुर्भाग्यवश परमार, चन्देल तथा चालुक्य राजाओंके दानलेखोंमें दरबारी अधिकारियोंके नाम नहीं लिखे गये। परन्तु जैसा कि पहले कहा गया है, ठानेके शिलाहारोंके दानलेखोंमें नीचे लिखे अधिकारियोंके नाम लिखे हुए हैं तथा उनके सम्मतिसूचक हस्ताक्षर भी दिये हुए हैं—(१) महामात्य (२) महासांधिविग्रहिक (३) श्रीकरण (४) और (५) दो भांडागारिक भदानलेखमे (एपि इाड० १२ पृ० २५१) इसके

* मदनपालके दानपत्रमें (जे० बी० ५९ पृ० ७१) १, ४, ५, ७, ८, के अतिरिक्त महासामन्त तथा महाकुमारामात्य ये दो नाम अधिक हैं।

अतिरिक्त (१) राजपुत्र (२) मन्त्री (३) पुरोहित और (४) अमात्योंका भी उल्लेख है। प्रधान मन्त्रीका उल्लेख करते हुए ठानेके लेखोंमें लिखा होता है "समस्त राज्यकी चिन्ताका भार इनके ऊपर है"। अब उपर्युक्त भिन्न भिन्न राज्योंके वर्णनोंसे (इनमें विशेष अन्तर नहीं है) हम यह देखेंगे कि इस कालमें प्रत्येक राज्यके कितने और कौन कौन मंत्री होते थे।

पट्टरानी, युवराज, वैद्य, तथा ज्योतिषी—ये चारों प्रत्येक राज्यमें महत्वपूर्ण अधिकारी होते थे, परन्तु इन्हें हम मंत्री नहीं कह सकते। एक प्रधान मंत्री होता था। कहीं कहीं उसे केवल 'मंत्री' तथा कहीं 'महामात्य' कहते थे। 'मंत्रिन्' शब्दका अर्थ है सलाहकार तथा 'अमात्य' का अर्थ है "हमेशा पास रहनेवाला"। परराज्य मन्त्री 'महासांधिविग्रहिक' सभी-राज्योंमें होता था। हां, ठानेमें इसके बदले 'श्रीकरण' अर्थात् "भूमि सम्बन्धी कागजातके अधिकारी" का नाम पाया जाता है। जमाखर्च तथा खज़ाना भांडागारिकके सिपुर्द होता था। महाप्रतिहारी अर्थात् राजाका द्वार-रक्षक तो सभी राज्योंमें होता था। इसके अतिरिक्त सेनापति भी होता था। बंगालमें हाथियोंके लिए एक पृथक् अधिकारी रहता था, क्योंकि वहां बहुत बड़ा गजदल रखा जाता था (इसीलिए बंगालके राजा को 'गजपति' कहते थे)। अन्य राज्योंमें अश्वसेनाका एक पृथक् अधिकारी होता था। परन्तु आश्चर्य है कि प्रधानन्यायाधीशका उल्लेख कहीं भी देखनेमें नहीं आया। संभव है, सर्वोच्च न्यायाधीशका काम स्वयं राजा ही अपने समस्त मंत्रियों तथा सभ्योंकी सहायतासे करता रहा हो। परन्तु इसपर हम आगे चलकर विचार करेंगे। मन्त्रियोंसे सलाह मशविरा करना राजाके लिए अनिवार्य नहीं था। परन्तु अक्सर राजा

उनसे परामर्श कर लिया करता। हां, ठानेमें जरूर मन्त्रियोंसे सलाह करना राजाके लिए आवश्यक था। यही नहीं वल्कि दानलेख तथा अन्य राजनीतिक लेखोंपर उसे पांच मन्त्रियोंकी स्वीकृतिके हस्ताक्षर भी लेने पड़ते थे। ऐसा करनेपर ही वह कागज सच्चा समझा जाता था। ठानेके शिलाहारोंके राज्यमें यह प्रथा विशेप प्रचलित थी। इससे प्रतीत होता है कि वहाँकी शासन व्यवस्था अधिक सुसंस्कृत थी तथा वहाँपर मन्त्रियोंके उत्तरदायित्वकी कल्पनाका विकास हो चुका था। यह भी हो सकता है कि मूलतः ठानेका राज्य राष्ट्रकूटोंका मांडलिक था, इसलिए वहाँके महत्वपूर्ण मन्त्रियोंकी नियुक्ति राष्ट्रकूटोंके साम्राज्य दरवार द्वारा होती रही हो। और सभी महत्वपूर्ण कामोंमें उनकी सलाह मानना आवश्यक रहा हो। यही पद्धति संभवतः शिलाहारोंके स्वतंत्र हो जानेपर भी प्रचलित रही। अस्तु, मध्ययुगीन कालकी यह मन्त्रिव्यवस्था मुसलमानोंके कालमें इतनी लुप्त हो गयी कि जब शिवाजीने आगे चलकर पुनः हिन्दू राज्यकी स्थापना की तब उन्होंने अपने मन्त्रियोंको जो नाम और काम सौंपे थे वे इनसे विलकुल भिन्न थे। यह वात नीचे लिखी टिप्पणीसे स्पष्ट हो जायगी।

टिप्पणी।

शिवाजीके अष्टप्रधान।

यों अनुमानसे ऐसा प्रतीत होगा कि बारहवीं सदीके हिन्दू राज्योंमें मन्त्रियोंके जो नाम थे वही नाम सत्रहवीं सदीमें हिन्दू राज्यकी स्थापना करते समय शिवाजीने भी अपने मन्त्रियोंको दे दिये होंगे। परन्तु उत्तर तथा दक्षिणमें भी मुसलमानोंने राज्यशासनकी सारी पद्धतिको इतना बदल दिया कि मध्ययुगीन भारतकी शासन-पद्धतिका अथवा नामोंका कुछ भी अंश शेप न रह गया। इससे अनुमान होता है कि मुसलमान

शासक कितने स्वतंत्र बुद्धिवाले तथा नूतन कल्पना करनेवाले थे। आजकलकी ब्रिटिश राज्य-व्यवस्थामें भी पूर्वगामी मुसलमान तथा मराठा राज्य-व्यवस्थाके कुछ कुछ अवशेष देख पड़ते हैं। अस्तु, नीचे लिखे वर्णन से पाठक देखेंगे कि शिवाजी द्वारा दिये गये नाम मध्ययुगीन हिन्दू नामोंसे बिलकुल भिन्न थे। (१) पेशवा अथवा प्रधान मंत्री, मुल्की तथा फौजी महकमोंका प्रधान अधिकारी था (२) सेनापति (३) अमात्य (४) सचिव (५) मंत्री (६) सुमन्त्र (७) पंडितराव (८) न्यायाधीश। अमात्य भूमि-कर वसूल करनेवाला अधिकारी था और सुमंत पर-राष्ट्र-मंत्री था। सचिव दफ्तरका अधिकारी और मंत्री खानगी अधिकारी था (रानडेकृत मराठी सत्ताका उदय पृ० १२६)। प्रधान मन्त्रीका नाम 'पेशवा' स्पष्ट ही मुसलमानोंसे लिया गया था। लोगोंमें यह नाम इतना प्रचलित हो गया था कि शिवाजीको भी उसे ही बनाये रखना सुविधा-जनक प्रतीत हुआ। शायद शिवाजीने यह बतानेके लिए भी यह नाम कायम रखा हो कि वे भी बीजापुरके सुल्तानके सदृश ही स्वतंत्र और शक्तिशाली थे, तथा उनके यहाँ अपना पेशवा होता था। अन्य मन्त्रियोंके मुसलमानी नाम मुजुमदार, सुरनीस, सबनीस, डबीर आदि थे। शिवाजीने इनके स्थान पर संस्कृत नाम रखे और उनके कामोंमें भी कुछ कुछ परिवर्तन कर दिया। पूनाके भारतेतिहास-संशोधक-मंडलके त्रैमासिक पत्रके जुलाई-अक्तूबर १९२३ वाले अङ्कमें श्रीयुत शेजवलकरका एक निबन्ध छपा है। उसमें उन्होंने यह बतलाया है कि शिवाजीने अष्ट प्रधानोंके नाम शुक्रनीतिसारसे ग्रहण किये हैं। वे नाम ये हैं—(१) सुमन्त (२) पंडित (३) मंत्री (४) प्रधान (५) सचिव (६) अमात्य (७) प्राड्विवाक् (८) प्रतिनिधि * इनमें शिवाजीने प्रतिनिधिके स्थान पर सेनापति शब्दका प्रयोग किया और यह उचित भी है। परन्तु शिवाजीने दूसरोंके कामोंको भी नीतिसारकी पद्धतिसे कुछ कुछ बदल दिया है। "सुमन्त हिसाब-किताब पर नजर रखनेवाला

* सुमन्त्रः पण्डितो मंत्री प्रधान. सचिव स्तथा
अमात्यः प्राड्विवाकश्च तथा प्रतिनिधिः स्मृतः

मन्त्री था परन्तु शिवाजीने उसे परराष्ट्र मन्त्री बना दिया। अमात्य भूमि कर मत्री था पर तु शिवाजीकी व्यवस्थामें वह आयव्यय निरीक्षक मत्री बना दिया गया। मत्री पर राज्य प्रधान था, पर शिवाजीकी व्यवस्थामें वह खानगी मत्री हो गया और सचिव पहले युद्ध मंत्री था, किन्तु शिवाजीने उसे दफ्तरोंका प्रधान निरीक्षक बना लिया" । सभव है, इसकी तफसीलमें कहीं गलती रह गयी हो परन्तु यह तो स्पष्ट है कि ये नाम मध्ययुगीन शिलालेखोंमें पाये जानेवाल नार्मोसे बिलकुल भिन्न ह। अर्थात् शुक्रनीतिमारमें बारहवीं सदीके प्रचलित नामों तथा कामोंका वल्लख नहीं है। इससे यह अनुमान होता हे कि यह ग्रथ कहीं मुसल-मानोंके शासन कालमें तो नहीं बनाया गया? 'पण्डित' तो बिलकुल नवीन नाम है, यद्यपि उसका काम वही था जो मध्ययुगीन धर्माध्यक्षका था। शिवाजीने प्राड्विवाकके स्थानपर न्यायाधीश नाम रखा। परन्तु यह नाम न तो कहीं स्मृतियोंमें है और न कहीं किसी शिलालखम। अक्षपटलिक, भाँडागारिक, तथा सान्धिविग्रहिक ये तीनों नाम नीतिसारके समय बिल्कुल भुला दिये गये प्रतीत होते ह। अमात्यको नवीन काम दिया गया और सचिव तो बिलकुल नया नाम हे। उसका काम भी नया ही है। आश्चर्य है कि मध्ययुगीन कालमें दफ्तरके कामका कोई प्रबन्ध नहीं दिखाई देता। अस्तु, मतलब यह कि मध्ययुगीन कालकी शासन पद्धति बादमें बिलकुल भुला दी गयी सी प्रतीत होती है। अगल प्रकरणमें पाठक यह भी देखेंगे कि स्थानीय शासन व्यवस्थामें भी मध्ययुगीन कालक नाम तथा काम आदि बदल गये थ।

छठाँ प्रकरण।

शासन-व्यवस्था।

मुल्की तथा फौजी शासन पद्धति इस समय समस्त देश भरमें प्राय एकसी हो थी। यों ही कहीं कहीं थोडा बहुत

अन्तर था। इस पद्धतिका वर्णन स्मृतियों तथा भिन्न भिन्न नीतिशास्त्रोंमें अच्छी तरह दिया गया है। कौटिल्यका अर्थशास्त्र मिल जानेसे तो हमें चन्द्रगुप्त मौर्यके समय तककी (ई० पू० ३००) शासन व्यवस्थाका पता लग गया। कुछ कुछ परिवर्तनके साथ यही शासन पद्धति इस काल विभागमें भी प्रचलित थी। पहले (६०० ८००) और दूसरे (८००-१०००) कालविभागमें जो शासन पद्धतियां प्रचलित थीं उनका वर्णन हम उन उन भागोंके इतिहासमें कर ही चुके हैं। यहां तो हम उसी शासनपद्धतिका वर्णन करेंगे जो इस कालविभागमें प्रचलित थी। यद्यपि यह भी पहली पद्धतियों जैसी ही थी, फिर भी इसमें कहीं कहीं परिवर्तन हो गया था। दुर्भाग्यवश इस-सम्बन्धमें हमें अल्बेरूनीसे कोई सहायता नहीं मिलती। क्योंकि उसने भारतवर्षपर जो ग्रन्थ लिखा है उसमें यहांकी तत्कालीन मुल्की तथा फौजी शासन व्यवस्थाका वर्णन नहीं दिया है। परन्तु इस कालविभागमें जो गॉव इनाममें दिये गये थे उनकी सनदोंमें इस विषयका विस्तृत विवरण खुदा हुआ मिलता है। नीचे हम इसी मनोरञ्जक वर्णनसे भिन्न भिन्न देशोंकी तत्कालीन प्रचलित शासन पद्धतिका वर्णन करेंगे। हम आगे चलकर यह भी बतायेंगे कि मुसलमानी शासनमें यह मध्ययुगीन शासनपद्धति बिलकुल नष्ट हो गयी। मराठोंने हिन्दू राज्यका उद्धार किया, किन्तु उसमें इसका लवलेश भी नहीं दिखाई देता।

असली शासन व्यवस्था

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, देश इस कालविभागमें भी अनेक छोटे मोटे राज्योंमें बँटा हुआ था। दक्षिणके चालु-

मन्त्री था परन्तु शिवाजीने उसे परराष्ट्र मन्त्री बना दिया। अमात्य भूमि-कर मंत्री था परन्तु शिवाजीकी व्यवस्थामें वह आयव्यय-निरीक्षक मंत्री बना दिया गया। मंत्री पर-राज्य-प्रधान था, पर शिवाजीकी व्यवस्थामें वह *खानगी मंत्री हो गया और सचिव पहले युद्ध मंत्री था, किन्तु* शिवाजीने उसे दफ्तरोंका प्रधान निरीक्षक बना लिया"। संभव है, इसकी तफसीलमें कहीं गलती रह गयी हो परन्तु यह तो स्पष्ट है कि ये नाम मध्ययुगीन शिलालेखोंमें पाये जानेवाले नामोंसे बिलकुल भिन्न हैं। अर्थात् शुक्रनीतिसारमें बारहवीं सदीके प्रचलित नामों तथा कामोंका *उल्लेख नहीं है। इससे यह अनुमान होता है कि यह ग्रंथ कहीं मुसल-*मानोंके शासन-कालमें तो नहीं बनाया गया? 'पण्डित' तो बिलकुल नवीन नाम है, यद्यपि उसका काम वही था जो मध्ययुगीन धर्माध्यक्षका था। शिवाजीने प्राड्विवाकके स्थानपर न्यायाधीश नाम रखा। परन्तु यह नाम न तो कहीं स्मृतियोंमें है और न कहीं किसी शिलालेखमें। *अक्षपटलिक, भाँडागारिक, तथा साधिविग्रहिक ये तीनों नाम नीतिसारके* समय बिलकुल भुला दिये गये प्रतीत होते हैं। अमात्यको नवीन काम दिया गया और सचिव तो बिलकुल नया नाम है। उसका काम भी नया ही है। आश्चर्य है कि मध्ययुगीन कालमें दफ्तरके कामका कोई प्रबन्ध नहीं दिखाई देता। अस्तु, मतलब यह कि मध्ययुगीन कालकी शासन-पद्धति *बादमें बिलकुल भुला दी गयी सी प्रतीत होती है। अगले प्रकरणमें पाठक* यह भी देखेंगे कि स्थानीय शासन-व्यवस्थामें भी मध्ययुगीन कालके नाम तथा काम आदि बदल गये थे।

छठाँ प्रकरण।

शासन-व्यवस्था।

मुल्की तथा फौजी शासन पद्धति इस समय सब भरमें प्रायः एकसी ही थी। यों ही कहीं कहीं

है। प्राचीन कालसे ही युवराजकी नियुक्ति बड़े समारोहके साथ की जाती थी। गाहड़वालोंके एक शिलालेखमें जयचंदकी युवराज पदपर नियुक्तिका वर्णन है (इ० ए० ४ पृ० १२३)। दक्षिणके कई लेखोंमें राजाके भाईका नाम, युवराज होनेके कारण, वारम्वार पाया जाता है। कह नहीं सकते कि युवराज-की अधिकार मर्यादा क्या थी। पिछले प्रकरणमें हम राजाके मन्त्रियोंके नाम तथा कार्मोंका उल्लेख कर ही चुके हैं।

हिन्दू राजाओंकी भूमिकर-सम्बन्धी व्यवस्थाको देखनेसे ज्ञात होता है कि प्रत्येक राज्य जिले तथा तहसीलोंमें बँटा हुआ था। इन विभागोंके संस्कृत नाम प्रत्येक राज्यमें भिन्न भिन्न पाये जाते हैं। उत्तरमें जिलेको "भुक्ति", मालवामें मंडल, और महाराष्ट्रमें 'राष्ट्र' कहते थे। ठेठ दक्षिणमें हमें इसके लिए कोई नाम ही नहीं मिलता ('नाड' तथा 'तर' ये नाम केरल देशमें पाये जाते हैं) परन्तु गांवोंकी संख्या प्रायः दी रहती है, उसी से यह मालूम हो जाता है कि अमुक नाम जिलेका है या तह-सीलका। समस्त कोंकणका वर्णन 'पुरी कोंकण चतुर्दश शत' शब्दोंसे किया जाता था। इनमेंसे कोई कोई जिला बहुत ही बड़ा होता था और कभी कभी उनको सीमामें भी परिवर्तन किया जाता था। उदाहरणार्थ चालुक्योंके पूर्वके राजाओंके शासन कालमें 'करहाटक बारह-हजार" में पूनाका भी समा-वेश होता था। पूना बहुत प्राचीन शहर है। स्टेनकुनाऊके द्वारा हालमें ही प्रकाशित लेखमें भी (ए० इ० १२) पूनाका उल्लेख है। तहसीलका बोध भी प्रायः उसके नामके साथ जोड़े हुए ग्रामोंकी सख्यासे हो जाया करता था। जैसा कि आगे कहा गया है, यह पद्धति उत्तरमें भी प्रचलित थी। तहसील अथवा तालुकेको प्रायः विषय कहते थे। और उसकी

क्योंके शिलालेखोंमें इनकी संख्या ५६ दी है (इ० ए० ८ पृ० १८)। इसके बादके मराठी कवियोंके काव्योंमें छप्पन राज्योंका उल्लेख पाया जाता है। वह इसी संख्या परसे किया गया होगा। गाहडवाल, पाल, चालुक्य और चोल ये मुख्य राज्य थे और इनकी अधीनतामें कितने ही राज्य थे जो कहनेके लिए माण्डलिक थे तथापि उनकी शासन-व्यवस्था प्रायः स्वतन्त्र ही थी और इसी कारण इस परम्परानुगत ५६ की संख्यामें उनकी गिनती की गयी होगी। कहना न होगा कि असली बातोंमें सबसे अधिक अधिकार तो राजाके ही हाथोंमें होता था। राजा प्रायः क्षत्रिय या राजपूत होता था और उसका अधिकार परम्परागत होता था। वर्तमान राष्ट्रकी शासन प्रणालीकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण शाखा व्यवस्थापक सभाका मध्ययुगीन हिन्दू राज्योंमें कहीं पता तक नहीं था। इसलिए राजाका काम केवल कानूनोंकी पाबन्दी कराना तथा सर्वोच्च न्याय प्रदान करना ही होता था। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सम्माननीयोंका सब प्रकारसे सम्मान भी राजा ही करता था।

राजाकी मुख्य रानी अर्थात् पट्ट महिषी * तथा मुख्य राजपुत्र अर्थात् युवराजका महत्व राजासे दूसरे नम्बरका होता था। अर्थात् उन्हें भी देशके शासन-कार्यमें कुछ अधिकार होता था। राजाकी अनुपस्थिति अथवा रुग्णावस्थाके समय वे राज्यका काम करते थे, यह स्पष्ट ही है। हम लिख चुके हैं कि गाहडवालोंके कुछ दान लेख मदनपालके नामके पाये जाते

* राजाके राज्याभिषेकके समय जो उसकी सहधर्मचारिणी होती है उसके मस्तकके आसपास एक सोनेका पट्ट बाँधा जाता है, इसीसे उसे पट्ट महिषी कहने लगे।

हैं। प्राचीन कालसे ही युवराजकी नियुक्ति बड़े समारोहके साथ की जाती थी। गाहड़वालोंके एक शिलालेखमें जयचंदकी युवराज पदपर नियुक्तिका वर्णन है (इं० ए० ४ पृ० १२३)। दक्षिणके कई लेखोंमें राजाके भाईका नाम, युवराज होनेके कारण, बारम्बार पाया जाता है। कह नहीं सकते कि युवराजकी अधिकार मर्यादा क्या थी। पिछले प्रकरणमें हम राजाके मंत्रियोंके नाम तथा कामोंका उल्लेख कर ही चुके हैं।

हिन्दू राजाओंकी भूमिकर-सम्बन्धी व्यवस्थाको देखनेसे ज्ञात होता है कि प्रत्येक राज्य जिले तथा तहसीलोंमें बँटा हुआ था। इन विभागोंके संस्कृत नाम प्रत्येक राज्यमें भिन्न भिन्न पाये जाते हैं। उत्तरमें जिलेको "भुक्ति", मालवामें मंडल, और महाराष्ट्रमें 'राष्ट्र' कहते थे। ठेठ दक्षिणमें हमें इसके लिए कोई नाम ही नहीं मिलता ('नाड' तथा 'तर' ये नाम केरल देशमें पाये जाते हैं) परन्तु गांवोंकी संख्या प्रायः दी रहती है, उसीसे यह मालूम हो जाता है कि अमुक नाम जिलेका है या तहसीलका। समस्त कोंकणका वर्णन 'पुरी कोंकण चतुर्दश शत' शब्दोंसे किया जाता था। इनमेंसे कोई कोई जिला बहुत ही बड़ा होता था और कभी कभी उनको सीमामें भी परिवर्तन किया जाता था। उदाहरणार्थ चालुक्योंके पूर्वके राजाओंके शासन-कालमें 'करहाटक बारह-हजार" में पूनाका भी समावेश होता था। पूना बहुत प्राचीन शहर है। स्टेनकुनाऊके द्वारा हालमें ही प्रकाशित लेखमें भी (ए० इं० १२) पूनाका उल्लेख है। तहसीलका बोध भी प्रायः उसके नामके साथ जोड़े हुए ग्रामोंकी संख्यासे हो जाया करता था। जैसा कि आगे कहा गया है, यह पद्धति उत्तरमें भी प्रचलित थी। तहसील अथवा तालुकेको प्रायः विषय कहते थे। और उसकी

सीमा प्राय बदलती नहीं थी। युक्त प्रान्तमें गाहडवालोंके उल्लेख मिले हे उनमें विषयके स्थानमें हमेशा पत्तला नाम पाया जाता है। यह शब्द बिलकुल नवीन हे। न तो उसका अर्थ और न अर्वाचीन रूप ही मिलता है। इन गाहडवाल लेखोंमें बहुधा जिलोंके नाम होते ही नहीं, सिर्फ पत्तला लिखा हुआ होता है। परन्तु सच पूछा जाय तो पत्तला लिख देना भी काफी है। बंगालके सेनोंके दानलेखोंमें भुक्ति और मंडल भी लिखा हुआ होता हे। और पालोंके लेखोंमें भुक्ति, मंडल, तथा विषयका भी उल्लेख मिलता है। मंडल विषयका छोटा भाग है। मालवाके एक लेखमें मंडल और प्रतिजागरणक (यह नवीन शब्द है), ये दो शब्द आते हैं और उनका छोटा विभाग थोडशिर ४८ बताया गया है (परिशिष्ट देखिए)। ग्राम और नगर अन्तिम विभाग होनेके कारण, बंगाल इसका अपवाद है, इनके छोटे हिस्सोंके नाम नहा लिखे जाते थे।

इन विभिन्न विभागोंका काम करनेवाले अधिकारी नीचे लिखे अनुसार थे। भुक्ति अथवा प्रान्तके अधिकारीको राजस्थानीय तथा जिलेके अधिकारीको दक्खिनके लेखोंमें राष्ट्रपति कहते थे। प्राय सभी राज्योंमें तहसीलके अधिकारीका नाम विषयपति होता था। केवल मालवामें गाँवके मुख्य अधिकारी का नाम 'पट्टकिल' पाया जाता है। उत्तर भारतके दान लेखोंमें दानमें दिये हुए गाँवके समस्त निवासियों तथा पडोसके गाँवके निवासियोंका संबोधन किया जाता था। ब्राह्मण तथा अब्राह्मण कह कर उनका उल्लेख किया जाता था, यहाँतक कि कुटुम्बी,* कायस्थ, दूत, वैद्य, महत्तर, मेद चाडाल तक

* कुटुम्बीके मानी हैं स्थायी कुटुम्ब युक्त किसान। मराठीका कुणबी तथा गुजरातीका कणबी शायद इसी शब्दके रूप हैं।

का निर्देश किया जाता था। (परिशिष्टमें परमर्दिन्‌का लेख देखिए)। अन्यत्र कई बार इन सबका वर्णन केवल जानपद शब्द द्वारा ही कर दिया जाता था। जिन लोगोंका नामोल्लेख होता है उनका गाँवमें विशेष कर्तव्य होता था और उनके लिए गाँवकी तरफसे कुछ आमदनी भी नियत थी, ऐसा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त कितने ही जिला अधिकारियोंके नाम—शौल्किक, गौल्मिक और तरिक होते थे। शौल्किक चुंगीका अधिकारी होता था। गौल्मिक पुलिस थानेका अधिकारी होता था और तरिक—तरी अर्थात् नौकाओंके द्वारा होनेवाले आयात निर्यातका निरीक्षक अधिकारी होता था। बङ्गाल तथा युक्तप्रान्तमें नदीमार्गसे यात्रियों तथा मालका विशेष गमनागमन हुआ करता था। अतः उसपर देख-भाल करनेके लिए एक पृथक् अधिकारीका होना आवश्यक था। दक्षिण भारतमें भी नदियोंके पार करनेके स्थानोंपर सरकारको तथा मल्लाहोंको कुछ कर देना पड़ता था, अतः ऐसे स्थानोंकी देखभाल करनेके लिए वहाँ भी एक अधिकारी होता था। सरकारी जंगलातके लिए, राजाकी गोशालाओंके लिए, तथा जानवरोंकी अच्छी नसलें पैदा करनेके विभागके निरीक्षणके लिए भी एक एक अधिकारी होता था जिसे अध्यक्ष कहते थे। इन समस्त मुल्की अधिकारियोंके सिपाहियोंको 'चाट' कहते थे। फौजी सिपाहियोंके लिए 'भट' संज्ञा प्रचलित थी। इन सब लोगोंको अर्थात् सरकारी अधिकारियोंको इनाममें दिये जानेवाले गाँवकी खबर हो जाना बहुत जरूरी था, क्योंकि उन्हें प्रत्येक गाँवके विषयमें निश्चित कर्तव्य करना पड़ता था। उदाहरणार्थ दानलेखोंमें यह आदेश होता है कि इनाममें दिये गये गाँवोंमें चाट अथवा भट प्रवेश

न करें । "अचाटभटप्रवेशः" का आशय था कि कोई भी मुल्की या फौजी सिपाही इनामवाले गाँवमें न तो कोई चीज खरीदनेके लिए जावे और न बेगारमें आदमियोंको पकड़े ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मालवामें गाँवके मुख्याधिकारीको पट्टकिल कहते थे । परन्तु गाहडवाल लेखोंमें उसे ग्रामपति कहा है, और दक्षिण तथा गुजरातके लेखोंमें उसके लिए ग्रामकूट शब्दका प्रयोग पाया जाता है । यह शब्द गुजरात, मालवा, तथा कोंकणमें गामोटके रूपमें अभीतक प्रचलित है । प्रत्येक ग्रामकी व्यवस्था स्वतःपूर्ण होती थी । प्रत्येक गाँवमें चौकीदार, दूत, वैद्य, जोशी, मेहतर, शिरच्छेद करने वाला, माँग अर्थात् मेद और चांडाल ये नौकर होते थे ।

गाँवके दानलेखमें दानदेनेवालेके अधिकार स्पष्ट तफसीलके साथ लिख दिये जाते थे । इसे देखकर हमें यह भी ज्ञात हो जाता है कि खालसा गांवोंमें सरकारके तथा सर्वसाधारणके क्या क्या अधिकार होते थे । गाहडवालोंके युक्तप्रान्तके दानलेखोंमें गाँवकी सरहदमें पाये जानेवाले लोह तथा लवण (नमक) का हक भी दे दिया जाता था । यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है । लोहा तथा फौलादकी सुतार तथा सिपाहोको बड़ी आवश्यकता होती थी । उसी प्रकार समुद्र बहुत दूर होनेके कारण तथा माल जानेके साधन बहुत महंगे और दुर्लभ होनेके कारण युक्तप्रान्तमें नमक एक कीमती चीज समझी जाती थी । अतः गाँवकी किसी खारी बावलीसे नमक बनाकर उसकी आय लेनेका पूरा हक इनामदारको होता था । जैसा कि भाग १ में कहा गया है प्रायः समस्त राज्यमें नमकके आयातपर सरकारी कर था । और इस आमदनीकी देखभाल करनेके लिए संभवतः एक स्वतन्त्र अधिकारी रहता

होगा। उसी प्रकार गाँवके गर्त तथा ऊपर अर्थात् गढ़े और ऊसर जमीन भी महत्वपूर्ण समझी जाती थी। इनाम दिये गये गाँवमें उनपर भी इनामदारका ही सत्व समझा जाता था। खालसा गाँवोंमें ऐसी जमीनें सरकारी अथवा सरकार तथा गाँववालोंके साझेकी होती होगी। उसी प्रकार गाँवके भीतर-की जो जो चीजें इनामदारको दी जाती थीं उनका पूरा पूरा ब्यौरा लिख दिया जाता था। उसे देखनेसे मध्ययुगीन भूमि-कर सम्बन्धी शासन-व्यवस्थाका अनुमान किया जा सकता है। गाहडवालोंके लेखोंमें दी हुई चीजोंकी फेहरिस्त यह है—"जल, स्थल, ऊपर, पाषाण, पर्वत, नदी, वन, आम्र, मधूक, लोह तथा लवण"—संक्षेपमें जो कुछ जमीनके ऊपर तथा नीचे है वह सब। युक्तप्रान्तमें आम तथा महुएके पेड़ोंका विशेष महत्व होता है। इनपर किसी व्यक्ति विशेषका स्वामित्व नहीं होता था। खालसा गाँवोंमें ये सरकारी सम्पत्ति समझे जाते थे। उसी प्रकार पत्थर, लोहा, आदिकी खानें, खारे पानीकी बावलियाँ, पहाड़ और जङ्गलके* भाग सब सरकारी समझे जाते थे। परन्तु जंगलोंके विषयमें एक बात ध्यानमें रखने योग्य है। सरकारी जंगलके कुछ भाग लोगोंके लिए जलानेकी लकड़ी लानेके लिए खुले रखे जाते थे। समस्त दानलेखोंमें यह भी लिखा होता है कि 'तृणयूतिगोचर पर्यन्त' गाँव दिया अर्थात् गोचर भूमि सहित गाँव दिया गया। इससे प्रतीत होता है कि प्रत्येक गाँवके लिए गोचर-भूमि तथा घासके मैदान

* मैदान बंगालमें जंगल नहीं इसलिए वहां तो छोटी छोटी झाडियां तक बड़ी महत्वपूर्ण समझी जाती हैं। उनका दान दान-लेखोंमें 'सझाट विटपः' इन शब्दोंसे किया जाता है। 'झाट' शब्द का रूप आजकल झाड़ हो गया है।

अलग छोड़ दिये जाते थे। इसी कारण गायके दूध तथा हलके लिए बैलोंकी कमी कमी नहीं पड़ती थी। आजकल प्रत्येक गाँवके लिए इस तरहकी गोचरभूमि तथा घासका मैदान अलग छोड़ देनेकी प्रथा नहीं देखी जाती। परमर्दिनके ११६६ ईसवीके दानलेखमें (परिशिष्ट) आम तथा मधूका वृक्षोंके साथ ही ऊख, कपासके पेड़ों, तथा सनके भी दिये जानेका उल्लेख है। बुन्देलखण्डमें आयके ये तीन साधन महत्वपूर्ण समझे जाते थे। इसलिए उनका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। परन्तु सरकारी गाँवोंमें, ज्ञात होता है, इस आमदनीपर कोई सरकारी हक नहीं होता था।

अब यदि हम यह देखना चाहें कि गाँवके निवासियोंसे कौन-कौनसे कर वसूल किये जाते थे तो दानलेखोंमें इनका उल्लेख भी तफसीलवार पाया जाता है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि वे कर गाँव दानमें पानेवालेको दिये जाते थे। आश्चर्य है कि पिछले कालविभागके शिलालेखोंमें पाया जानेवाला 'उद्रंग' शब्द इस कालविभागमें कहीं नहीं पाया जाता। (केवल ठानेके एक शिलालेखमें ई० ए० ३ पृ० २६७ में आया है) समस्त शिलालेखोंमें जो शब्द पाये जाते हैं वे भाग, भोग, कर, हिरण्य—ये हैं। इनका अर्थ यह है—जमीनकी उत्पत्तिका अनाजके रूपमें दिया हुआ अंश 'भाग' (१/६) कहा जाता था। व्यापार और उद्योगसे होनेवाले फायदेपर नकद मुद्राओंके रूपमें 'कर' दिया जाता था (१/५०)। प्राचीनकालसे महाभारत, स्मृति आदिमें जिस करका जिक्र है कदाचित् वही यह होगा। परन्तु मालूम होता है कि कन्नौजके राज्यमें उत्तर प्रतिहारोंके समय इसके अतिरिक्त और भी कितने ही छोटे छोटे कर लगाये गये थे। इनमेंसे कितनोंहीका तो अर्थ भी समझमें नहीं आता। इनकी

सूची यह है—(१) कूटक (२) दशबंध (३) विंशत्युश्र्थ (४) अक्षपटलिक-प्रस्थ (५) प्रतिहारप्रस्थ (६) आकर (७) तुरुष्क दण्ड और (८) वरवभभे (बसही दानलेख इं० ए० १४ पृ० १०३)। गाहड़वालोंके दानलेखोंमें इनके अतिरिक्त दो और विचित्र करोंका समावेश है। वे हैं (९) कुमरगद्दियानक (इं० ए० १८ पृ० १५) और (१०) प्रवणीकर (एपि० इंडि० ४ पृ० १६६ तथा १२३)। एपि० इंडि० ९ (पृ० १०२) में इन शब्दोंका प्रयोग किया गया है—'कुमरगद्दियानक आदि नित्य तथा अनित्यकर" इससे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि प्रतिहारोंके अन्तिम दिनोंमें भूमिकर सम्बन्धी व्यवस्था कितनी कष्टप्रद हो गयी थी और किस प्रकार यही अवस्था गाहड़वालोंके समयतक बनी रही। जैसा कि पहले कहा गया है, 'तुरुष्क दण्ड' नामक कर तुर्कोंको कर देनेके लिए प्रजापर बैठाया गया था। परन्तु शायद इसके अनुकरणमें अन्य छोटे-छोटे कर भी प्रजापर लाद दिये गये थे। अक्षपटलिक अर्थात् भूमि-कर वसूल करनेवालेके लिए एक प्रस्थ (मुट्ठीभर धान्य), प्रतिहार (द्वार-रक्षक) के लिए दूसरा प्रस्थ, इस तरह छोटे-छोटे कर भी अधिकारियोंकी ओरसे लगा दिये गये। दसवाँ तथा बीसवाँ हिस्सा किसके लिए अथवा क्यों लिया जाता था, कह नहीं सकते। परन्तु यहाँपर मराठोंके द्वारा मुगल प्रदेशोंपर लादे हुए चौथ तथा सरदेशमुखी नामक करोंकी याद हठात् हो आती है। कहना नहीं होगा कि ये कर प्रत्यक्ष पैदावारके रूपमें लिये जाते थे।

नक़द कर खरीद-फरोख्त पर तथा तैयार किये हुए मालके नफेपर नगर में 'मंडपिका' अर्थात् चौकीपर और देहातके बाजारमें लिया जाता था। इनमें भी सरकारी दो कर

के अतिरिक्त संभवतः धार्मिक कारणोंसे तथा विशिष्ट लोगोंके फायदेके लिए अन्य छोटे छोटे कर भी होते थे। काठियावाड़के एक शिलालेखमें (भावनगर शिलालेख पृ० ७७) इस करका एक मनोरंजक वर्णन पाया जाता है। "मंगलपुर (मंगलोर) मंडपिकामें नाजकी प्रत्येक गाड़ीपर चार कार्पापण, प्रत्येक गधेके वजनपर आधा कार्पापण, बीडेके पानों पर (एक ऊँटके वजनपर) एक कार्पापण और गाड़ीपर आधा कार्पापण" इस तरह कर लिया जाता था, इ०"। मंडपिकामें जो सरकारी कर वसूल होता उसमेंसे भी प्रतिदिन कुछ न कुछ धमार्थ दे दिया जाता था। इसमें तो और भी कई तफसीलें दी हुई हैं जो ठीक ठीक समझमें नहीं आतीं। इस समस्त नकद करका नाम शुल्क था और वह मंडपिकामें वसूल होता था।

मुल्की अधिकारियोंमें, जैसा कि पहले कहा गया है, तहसीलदारके लिए समस्त दानलेखोंमें 'विषयपति' शब्दका प्रयोग पाया जाता है। दक्षिणके लेखोंमें जिलाधीशका नाम राष्ट्रपति पाया जाता है, और बंगालके लेखोंमें उसे राजस्थानीय कहा है (इसका अर्थ है जिलेमें रहनेवाला राजप्रतिनिधि)। गाहड़वालोंके लेखमें किसी भी मुल्की अधिकारीका नाम नहीं होता। परन्तु 'पत्तला' में कोई न कोई अधिकारी तो जरूर रहता ही होगा। मालवामें 'मंडलोई' यह नाम अभी तक अवशिष्ट है। वह मंडलपतिका प्राकृत रूप है। मतलब यह कि इन भिन्न भिन्न भागोंके मुख्य मुल्की अधिपतिका नाम पतिशब्दान्त है। यह अधिकार प्रायः परम्परागत नहीं होता था। संभवतः राजा अथवा देशके प्रधानमंत्रीको उसमें परिवर्त्तन करनेका अधिकार रहता होगा। यहांपर यह कह

देना चाहिये कि दक्षिणमें देशमुख और देशपांडे ये दोनों नाम मुसलमानोंके शासन कालमें उत्पन्न हुए तथा अभीतक प्रचलित हैं। किन्तु इस काल-विभागके शिलालेखोंमें वे नहीं पाये जाते। वे मुसलमानी नहीं संस्कृत हैं और मुसलमानोंके शासनकालमें ही उत्पन्न हुए। दूसरे, जिलेके दफ्तरके व्यवस्थापक देशपांडेके समान मध्ययुगीन शिलालेखोंमें कोई अधिकारी नहीं पाया जाता तथापि यह तो निश्चित प्रतीत होता है कि प्रत्येक ग्राममें दफ़र होता था क्योंकि ग्रामके दफ़री 'करणिक' का उल्लेख कई शिलालेखोंमें पाया जाता है। जैसा कि भाग १ में दिखाया गया है, कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें 'अक्षपटल'से जमाबन्दी दफ्तर रखनेके स्थानका बोध होता है अर्थात् अक्षपटलिकके मानी गाँवके दफ़रका मुखिया या निरीक्षक। इसी शब्दका स्वरूप संक्षिप्त होकर वर्णव्यत्यासके नियमानुसार मालवाके शिलालेखोंमें पाया जानेवाला शब्द 'पट्टकिल' बना है। और इसी शब्दसे आजकल गुजरात, मालवा तथा दक्षिणमें प्रचलित शब्द पटेल या पाटील बना है। गाँवके मुखियाको दूसरे देशके लेखोंमें ग्रामपति (जे० बी० ५६ पृ० ७१) अथवा ग्रामकूट या केवल महत्तर (कोंकणमें इसका वर्तमान रूप म्हात्रे हो गया है) इत्यादि नाम पाये जाते हैं। ग्रामको शासनव्यवस्थामें करणिक पटेलकी सहायता करता था क्योंकि करण, अर्थात् खातेदारोंकी फेहरिस्त इसीके पास रहती थी। यह शब्द कोंकणमें 'कर्णिक' हो गया है। पश्चिम घाटके ऊपर इसका रूप कुलकर्णी तथा दक्षिणी भारतमें 'कर्णम्' है। उत्तर भारतमें कहीं करणिक तो कहीं कायस्थ कहा जाता है (परमर्दिदेवका लेख देखिए एपि० इंडि)। इस लेखमें और भी कई नौकरोंका वर्णन है जो दूत, वैद्य, महत्तरसे लेकर मेद और चांडाल

पर्यंत हैं। गांववालोंमें ब्राह्मण भी होते थे और उनका उल्लेख सबसे पहले किया जाता था (उदाहरणार्थ परमार लेख ई० ए० १६ पृ० २०४ देखो)। इसमें सिर्फ वैषयिक अर्थात् तहसीलके अधिकारी, पट्टकिल जानपद ब्राह्मण तथा ब्राह्मणोत्तरोंका उल्लेख है। शहर अर्थात् पट्टणके लिए विशेष अधिकारी होते थे (एपि० इंडि० ४ पृ० १०१)। गाँव तथा शहरका अधिकार आजकलके सदृश ही उस समय भी वंश परम्परागत चला आता था।

जमीनकी नाप भी होती थी (पु० १ प्रक० ८) और बहुधा बीघेके स्थानपर 'निवर्तन' शब्दका प्रयोग होता था। परन्तु कई बार दानमें दी हुई जमीनका नाम "इतने हलोंसे जोती हुई" इस तरह भी दिया जाता था (ई० ए० १८ पृ० १५)। वल्लालसेनके नैहट्टीवाले दानलेखमें (एपि० इंडि० १४ पृ० १५६) दानमें दिये हुए गाँवको परिसीमा इतनी तफसीलवार दी हुई है कि उससे हमें यह मालूम हो जाता है कि उसका जमीन सम्बन्धी दफ्तर कितना व्यवस्थित था। इसमें गाँवका कुल रकबा भी 'उन्मान' की संख्यामें दिया हुआ है (यह नाप ठीक ठीक, समझमें नहीं आता)। उसमें यह भी लिखा है कि गाँवकी कुल पैदावार कितनी होती थी (इसका नाप भी समझमें नहीं आता)। साथ ही नक़द कर वसूलीकी रकमका भी उल्लेख है। गाँवकी आमदनी पाँच सौ पुराने कपर्दिक थी। इतनी थोडी आमदनी देखकर आश्चर्य होता है। यदि एक कपर्दिकका मूल्य एक पैसा समझा जाय तो यह आय कोई आठ रुपये होती है। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि उस जमानेमें एक पैसेका मूल्य बहुत अधिक होता था। दूसरे, यह उस ग्रामका नक़द वसूलीका अंक है। गाँवका मुख्य कर तो

अनाजका छठा हिस्सा अनाजके रूपमें ही वसूल होता था। जमीन बेची भी जा सकती थी। इनाममें दिये गये गाँवोंका भी क्रय विक्रय किया जा सकता था। यह बात परमर्दिदेवके सेमरा दानपत्रमें स्पष्टतया लिखी हुई है (ए० इंडि० ४ पृ० १५३)। इस प्रकारके लेन देन प्रायः सरकारी दफ्तरमें नोट कर लिये जाते थे, क्योंकि उसपरसे उनका पता लगानेमें सुविधा होती थी (पु० ५, प्रक० ७ देखिए)।

यह तो स्पष्ट ही मालूम होता है कि इस तरहके व्यवहारके दस्तावेज, विशेषतः सरकारी लेख बड़ी सावधानीसे और कायदेसे तैयार किये जाते थे, क्योंकि समस्त भूमिदान ताम्रपत्रपर लिखे जाते और उनपर बाकायदा हस्ताक्षर मुद्रा की जाती थी। दान देनेवाला राजा दान पत्रपर अपने हस्ताक्षर करता और हस्ताक्षरोंके विषयमें भ्रम न होने पावे, इस ख्यालसे उसमें 'स्वहस्त' शब्द भी लिख देता था। ये हस्ताक्षर पहले भोजपत्रपर लिखे जाते होंगे, तब ताम्रपटपर उनकी नकल की जाती होगी। कभी कभी दान देनेवाला राजा अपने हस्ताक्षरोंके स्थानपर मजमूनके अन्तमें केवल 'मगल महा श्री" ही लिख देता था और कभी हस्ताक्षर भी कर देता था (उदाहरण ई० ए० १४ पृ०३३६)। जमीनका दान गांवके तथा पड़ोसी गांवों के निवासियोंके सामने घोषित किया जाता। दरबारके विशिष्ट अधिकारी भी ऐसे दानोंको घोषित करते तथा उनके नामोंका उल्लेख भी दानपत्रके अन्तमें कर दिया जाता था। मालवाके राज्यमें दानलेख बड़े ही संक्षिप्त होते थे, पर अन्य प्रान्तोंमें वे बड़े विस्तृत होते थे। बल्कि कहीं कहीं बगालके लेखोंकी तरह दान देनेवाले राजाका विस्तृत वंशेतिहास भी दे दिया जाता। स्मृतियोंमें इस विषयमें स्पष्ट आज्ञा भी है।

जमीनकी लगानके अलावा राज्यकी आयका दूसरा महत्व-पूर्ण महकमा शुल्कका अर्थात् व्यापार-वाणिज्य तथा कारीगरीपर लगाये गये करका था। प्रत्येक 'विषय' अर्थात् तहसीलमें आजकलकी भांति 'शौल्किक' अधिकारी (कर वसूल करनेवाला अफसर) पृथक् होता था। उसी प्रकार तरिक अर्थात् नदीपरसे होनेवाले व्यापारपर कर वसूल करनेवाला, ग्नों यानी आकर सम्बन्धी अधिकारी, गाय, भैंस, बकरी, भेड़ इत्यादि की वृद्धिपर देखभाल रखनेवाला अधिकारी, इत्यादिके नाम भी पाये जाते हैं (जे० बी० ५६ पृ० ७१)। बंगालके शिलालेखोंमें अधिकारियोंकी अधिक तफसीलवार फेहरिस्त मिलती है। उसमें ऊपर लिखे अधिकारियोंके अतिरिक्त ये नाम भी पाये जाते हैं—(१) क्षेत्रपाल—खेतोंपर नजर रखनेवाला (२) प्रान्तपाल—देशकी सरहदकी रक्षा करने वाला और (३) कोट्टपाल अर्थात् दुर्गपति। इन सब फेहरिस्तोंसे यह भलीभांति प्रकट होता है कि बंगालमें तथा अन्य प्रान्तोंमें भी कर-वसूलीका कार्य आजकलकी भांति ही तफसीलके साथ और व्यवस्थित रूपसे होता था।

अब हम यह देखेंगे कि इन भिन्न भिन्न देशोंमें कैसी कैसी और किस किस कीमतकी मुद्राएँ प्रचलित थीं। द्रम्म और दीनारका उल्लेख लेखोंमें बारम्बार पाया जाता है। इनमेंसे द्रम्म तो था चाँदीका सिक्का और दीनार था सोनेका। मुसलमानोंके शासनकालका 'दाम' शब्द इसीका रूप है। अब तो दाम केवल स्मृतिशेष रह गया है। पहले दामकी कीमत चार रुपयेके बराबर रही होगी।* मुगल जमानेके दाम तो ताँबेके होते थे और चालीस दामका एक रुपया होता था। टानेके

* रुपया शब्द पिछले कालविभागमें काठियावाड़के वि. स. १०१० के

लेखोंमें द्रम्मोंका उल्लेख है। कोंकणके एक लेखमें मलवर निष्क शब्द पाया जाता है। (ज० बम्ब० रा० ए० सो० ६ पृ० २५४) मलवरका मलाबारसे मतलब है। इससे प्रतीत होता है कि मुसलमानी तथा मराठी रुपयेके अनुसार निष्कका भी वजन और कीमत भिन्न भिन्न देशोंमें पृथक् पृथक् थी। निष्क—सोनेका सिक्का—तो महाभारतमें भी पाया जाता है। छोटे सिक्कोंमें कार्षापणका नाम अधिक पाया जाता है। बहुत संभव है, उसकी कीमत वर्तमान एक आनेके बराबर रही हो। वस्तुतः आना शब्द उसीका संक्षिप्त रूप मालूम होता है। उसके नीचे कपर्दिकोंका उल्लेख पाया जाता है। कपर्दिकका मूल्य आजकलके पैसेके बराबर रहा होगा। यदि किसी राष्ट्रकी समस्त आय उसके प्रचलित सिक्कोंमें कहीं लिखी हुई मिल जाती तो उससे बड़ी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती। उससे हमें आजकलके सिक्कोंकी तुलनामें मध्ययुगीन सिक्कोंकी तथा तत्कालीन राज्योंकी आयका ठीक ठीक पता लग जाता। परन्तु दुर्भाग्यवश हमें ऐसा उल्लेख कहीं न मिल सका।

न्याय-पद्धति

शासनका दूसरा अंग, तथा हिन्दू कल्पनाके अनुसार राज्याधिकारका सबसे महत्वपूर्ण अंग, न्याय-विभाग है। अत्यंत प्राचीन कालसे हिन्दू राजा प्रजाका न्याय स्वयं करते आये हैं। वे अपनी प्रजाकी प्रार्थनाएँ तथा फरयादें सुननेके लिए रोज सुबहसे दरबारमें बैठते थे (मनु)। उनकी अनुपस्थितिमें उनके स्थानपर प्राड्विवाक यही काम करता था।

एक लेखमें पहले पहल पाया जाता है। उसमें "द्रम्ममेकं करी दद्यात्तुरगो रूपकं द्वयम्" इस तरहका एक वाक्य है।

राजतरंगिणीसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि मध्ययुगीन कालमें भी यही प्रथा प्रचलित थी (पु. २, पृष्ठ १००)। परन्तु इस दान विभागमें दरबारी अधिकारियोंमें प्राड्विवाकका नाम नहीं पाया जाता। इससे ज्ञात होता है, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कि राजा स्वयं ही अपने कुल मन्त्रियों तथा सभ्योंकी सलाहसे अपने दरबारमें पेश होनेवाले विवादोंका निर्णय करता था। 'दण्ड नायक' नामक जिस अधिकारीका नाम समस्त शिलालेखोंमें पाया जाता है, वह संभवतः जिलेका न्यायाधिकारी रहा होगा। अभियुक्तके न्यायालयमें लाये जानेपर सभ्योंके परामर्शसे अभियोगका विचार कर वह अपराधीको दण्ड दिया करता था। स्मृति नियमोंमें दीवानी फौजदारीका व्यावहारिक भेदाभेद नहीं है। समस्त दीवानी फौजदारी अपराध व्यावहारिक विषय (विवाद) समझे जाते थे और उनमें हारनेवाले अथवा दोषी प्रमाणित होनेवाले व्यक्तिको दण्ड दिया जाता था अथवा गुरुतर अपराधोंके लिए कैदकी या प्राणदण्डकी सजा दी जाती थी। पुलिस और जेल बहुधा दंडनायककी अधीनता में ही होते थे और उनपर भी उसीकी बराबरीके दांडिक तथा दण्डपाशिक नामक अधिकारी होते थे। (बंगाल ज० रा० ५६ पृ० ७१) प्रत्येक जिलेमें चोरोद्धरणिक नामक एक अधिकारी होता था जिसका कर्त्तव्य चोर तथा डाकुओं-का पता लगाना था। हिन्दू धर्मशास्त्रमें तथा हिन्दू राज्योंमें यह काम बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता था। चोरोंको प्र यत्न चोरी करते हुए पकड़े जानेपर अत्यंत कठोर (बाँया हाथ काटे जानेका) दण्ड दिया जाता था। छोटे छोटे विवादोंको गाँवकी पंचायत अथवा वहाँके अधिकारी निपटा देते थे। प्रत्येक

इनामके दानलेखमें 'सदशापराधः' लिखा पाया जाता है। हमारे मतानुसार इसका अर्थ है दस छोटे छोटे अपराधोंको तहकीकात गाँवके अधिकारी ही कर लें। अर्थात् उनमें वसूल होने वाले जुर्मानेकी रकम इनामदारको ही दी जाती थी। इससे बड़े अपराधों या दीवानी दावोंको प्रत्यक्ष राजा, अथवा जिलेके राजस्थानीय या दण्डनायकके न्यायालयमें पेश करना पड़ता था। मालूम होता है, इनका निर्णय करनेके सम्बन्धमें इन अधिकारियोंको वही अधिकार होते थे जो राजाको होते थे। अर्थात् वे भी सभ्योंकी सहायतासे फैसला करते थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिन्दू न्याय पद्धतिमें अपीलोंकी प्रथा नहीं थी। जिला कोर्टमें मुकदमा हार जानेवाला सीधा अपने मामलेको राजाके पास ले जा सकता था और यदि राजा उचित समझता तो मामलेकी जाँच फिर शुरूसे की जाती। संभवतः पेशवाओंके कालतक यही पद्धति प्रचलित थी।

अन्तमें अल्बेरूनाने इस विषयमें जो लिखा है वह हम आगे देते हैं (प्रकरण ७५ पृ० १५८)। "वादीको लिपिबद्ध फर्याद और दस्तावेज देनी पड़ती थी। दस्तावेजके अभावमें कमसेकम चार गवाह पेश करने पड़ते थे। साक्षियोंसे जिरह करनेका अधिकार किसीको नहीं होता था। ब्राह्मण और क्षत्रियोंको खून करनेपर प्राणदण्ड नहीं दिया जाता था। उनकी सम्पत्ति जप्त कर ली जाती और वे राज्यसे निकाल दिये जाते। चोरी करनेके अपराधमें ब्राह्मणोंकी आँखें निकाल कर उनका बाँया हाथ और दाहिना पाँव काट लिया जाता। क्षत्रियोंकी आँखें नहीं निकाली जाती थीं। अन्य जातिके लोगोंको प्राण—दण्ड दिया जाता था।" चोरीके लिए ब्राह्मणोंको भी कितनी कठोर सजा दी जाती थी, यह इस वर्णनसे स्पष्ट है। स्मृतियोंमें इस-

का नियम नहीं है कि गवाहोंकी संख्या इतनी ही हो। वकी लोंका आविर्भाव तो अंग्रेजी राज्यमें हुआ। पहले इनका अस्तित्व नहीं था, कदाचित् इसीसे गवाहोंसे जिरह करनेकी प्रथा उस समय नहीं थी। परन्तु उन्हें बड़े समारम्भके साथ शपथ दी जाती और यह भय दिखाया जाता कि झूठी गवाही देनेके अपराधमें अगले जन्ममें भयंकर कष्ट सहना होगा। इस कारण आजकलकी अपेक्षा उस जमानेके गवाह अधिक सच बोलते थे। प्रत्यक्ष राजाके दबदबेके मारे भी पहलेकी गवाहियाँ अधिक सच्ची होती थीं। इसीसे उन दिनों मामलोंकी संख्या, विशेषकर दीवानी दावोंकी संख्या, कम रहती होगी।

अल्बेरूनी लिखता है कि जहाँ कहीं विवादोंका निर्णय कर नेमें कोई असाधारण शंका उपस्थित होती, वहांपर तरह तरहके दिव्योंसे काम लिया जाता। संभव है, उसने यह वर्णन धर्म-ग्रन्थोंके आधारपर किया हो, प्रत्यक्ष निरीक्षणके बाद नहीं। क्योंकि कोई भी पक्षवाला दिव्य करनेपर राजी ही कैसे होता होगा, यही समझमें नहीं आता। दिव्य करनेवाला सच्चा हो या झूठा हो, अग्नि, जल, इत्यादिके दिव्योंमें प्रकृति तो अपना धर्म छोड़ नहीं सकती। हाँ, किसी गुप्त युक्तिसे काम लिया जाय तो बात जुदी है। इस शंकाका समाधान चाहे जो हो, यह निर्विवाद है कि हिन्दूधर्मशास्त्रमें दिव्योंका उल्लेख है और अल्बेरूनीके लिखित बयानसे मालूम होता है कि इस काल विभागकी न्यायपद्धतिमें दिव्योंका उपयोग किया जाता था।

दक्षिण भारतकी लोक-सभा

दक्षिण भारत अर्थात् केरल और तामिल राज्योंमें भारतके अन्य भागोंसे भिन्न परिस्थिति थी।' इसलिए वहां ऐसी लोक-

सभाएँ होती थीं, जिन्हें कानूनकी पाबन्दी तथा न्याय दानका काम करना पडता था। इन देशोंमें मूलनिवासी द्रविड़ लोगोंकी बस्ती बहुत ज्यादा थी। इतना ही नहीं बल्कि यहांके निवासी अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा अधिक आगे बढ़े हुए थे। फिर, यहांपर आकर बसे हुए आर्योंकी संख्या बहुत थोडी थी और वे अपनेको इतना शुद्ध समझते थे कि वे उस विभागके निवासियोंसे अपने आपको बिलकुल पृथक् रखते थे। फिर भी प्रत्येक स्थानके शिलालेखोंमें इस बातका साफ साफ उल्लेख पाया जाता है कि ग्राम-पंचायतें, जिला लोकसभाएँ तथा समस्त राष्ट्रकी लोकसभाएँ भी वहां बराबर थीं। ये शिलालेख तामिल अथवा मलयाली भाषामें हैं, अतः हम इनका अध्ययन नहीं कर सके। तथापि मलाबारके इतिहास पर जर्नल ऑफ इंडियन हिस्टरीमें श्री के० पी मेनानका एक लेख छपा था, उसमेंसे एक उद्धरण हम नीचे देते हैं। ई० ए० २४ में छपे श्री पिलेके लेखके आधारपर हम छः सौ आदमियोंकी लोकसभाका उल्लेख पहले कर ही चुके हैं जो मंदिरोंके कामोंकी देखभाल करती थी।

"लोकसभाएं अर्थात् कुट्टम तीन तरहकी होती थीं—एक तो 'तर' अर्थात् ग्रामोंके लिए, एक 'नाड्ड' अर्थात् जिलेके लिए, और एक समस्त केरल देशके लिए होती थी। 'तर' नामक ग्राम पंचायतमें ग्रामवालोंके मुखिया 'करणवर' एकत्र होकर स्थानीय महत्वकी बातोंका विचार करते थे। नाड्डकी सभा इसकी अपेक्षा अधिक व्यापक बातोंका विचार करती थी। वह प्रातिनिधिक संस्थाके सदृश थी और वैसे ही व्यापक उसके अधिकार भी होते थे। कभी कभी वह राजाके अधिकारको माननेसे भी इनकार कर देती थी।"

' 'केरलोत्पत्ति' ग्रन्थसे ज्ञात होता है कि उस देशपर जब पेरुमाल राज्य करने लगे तब ब्राह्मणोंने राजाकी सत्ताको नियन्त्रित करनेके ख्यालसे देशको अठारह भागोंमें विभक्त कर दिया और उनमें अठारह लोकसभाएँ बनाकर राजासे कहा कि महत्वपूर्ण बातोंमें वह इन सभाओंसे परामर्श कर लिया करे। लोगान साहब द्वारा संगृहीत सीरिया देशवाले छठी सदीके एक ताम्रपटमें (नं ३) 'पांच सौ' 'छः सौ' और 'छः हजार' नामक लोकसभाओंका उल्लेख पाया जाता है। यहूदी और ईसाईयोंको भी उनकी इन सभाओंमें विशेष अधिकार होते थे।" (बहुत प्राचीन कालमें ईसाई और मुसलमान लोग मलाबारमें आकर बसने लगे थे।)

"श्रीयुत् प्रो॰ मेनानने ऐसे कई शिलालेखोंका जिक्र किया है जिनमें ग्रामसभाओंका उल्लेख है। मालूम होता है कि केरलकी स्थानीय सभाओंकी वृद्धि तामिल देशवासी स्थानीय सभाओंकी प्रसिद्ध वृद्धिके सदृश ही हुई थी। उत्तर पल्लव, चोल, तथा पाण्ड्योंके शिलालेखोंमें तामिल देशकी लोक सभाओंका खूब वर्णन आया है। केरलकी ग्राम सभाएँ आशान अर्थात् पटेलकी अध्यक्षतामें हुआ करती थीं। वे सामाजिक झगड़ोंका निपटारा करतीं, छोटे छोटे मामलोंके फैसले सुनातीं तथा मन्दिरोंकी भिन्न भिन्न आवश्यकताओंकी पूर्ति भी करती थीं। मलाबारमें पहले पहल आये हुए ब्रिटिश अधिकारियोंने नायरोंकी 'तर' (ग्राम लोकसभा) की अवहेलना की। समस्त देशकी बड़ी सभा बारह वर्षमें एक बार हुआ करती थी। उसका अध्यक्ष वल्लुवनाड अथवा वल्लुतिरि राजा होता था। तेरहवीं सदीमें जामारिन राजाने यह अधिकार अपने हाथमें ले लिया। इस तरहकी अन्तिम सभा १७४३ ई० में हुई थी।"

"मालूम होता है कि स्थानीय व्यवस्था वंशपरंपरासे नियुक्त होनेवाले अधिकारियोंके हाथमें थी। देशके नाड्ड विभाग अर्थात् जिले नाड्डवासियोंके अधिकारमें रहते थे। नाड्डके उपविभाग 'देशम्' कहलाते थे जिनपर देशवासियोंकी सत्ता होती थी। देशम्के और भी छोटे छोटे विभाग होते थे। परन्तु वे जातियोंके समूहानुसार होते थे। अर्थात् नबूरियोंका गाँव, नायरोंका 'तर' तथा निचली जातिके लोगोंका 'चेरी' होता था। इस तरह पश्चिम किनारेपरके नाड्ड और देशम् पूर्व किनारेपरके उसी तरहके विभागोंसे भिन्न होते थे। क्योंकि उनमें अमुक नगर अथवा गाँव इस तरहके विभाग नहीं थे, बल्कि नायरोंके अमुक समूह, इस तरहके थे।" (पृ० ११५ से ११७)

सैनिकोंका उल्लेख है जिनका जिक्र पिछले कालविभागके भागलपुरके शिलालेखमें आया है। अर्थात् गौड, मालव, खस, हूण कुलिक कर्नाट तथा लाट। इनके अतिरिक्त केरल चोलोंका नाम और आया है। इस कालविभागमें चोल (जिन्हें 'चोड' भी कहते हैं) बडे सत्ताशाली हो गये। अत. उनकी वीरता की कीर्ति फैल जानेके कारण बगालकी फौजमें यदि चोलके सैनिक रखे गये हों तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। कर्नाटके सिपाहियोंकी प्रशसा तो स्वयं अल्बेरूनीने भी की है। कन्नर सिपाही तो उत्तरमें ठेठ पजाब तकके देशोंकी सेनाओंमें भरती किये जाते थे। कर्नाटक देशका वर्णन करते हुए उसने लिखा है "भारतीय फौजोंके प्रसिद्ध कन्नर नामक सिपाहियों का जन्म देश" (सचाऊ भाग १ पृ० १७३)। यह परिस्थिति अब बदल गयी है। हमने भाग २ में जो यह लिखा था कि लोक तथा जातियोंका भी शनै शनै स्वभाव बदलता रहता है, उसकी पुष्टि इस उदाहरणसे होती है, क्योंकि यद्यपि कन्नड लोग हैं तो अब भी बलवान् और लडाकू परन्तु अब पहलेकी भांति वे दूर दूरके देशोंकी सेनाओंमें भरती होनेके लिए नहीं जाते।

मदनपालके शिलालेखमें भी उन्हीं फौजी अधिकारियोंका नाम है जो पिछले कालविभागके भागलपुरवाले लेखमें लिखे हैं। अधिकारियोंके नाम ये हैं—(१) महासेनापति (२) दो साद्य—साधनिक (३) गज, अश्व, उष्ट्र, तथा नाविकोंके अधिकारी (४) प्रेषणिक (दूत अथवा हेर) (५) गमागमिक और (६) अभित्वरमाण. (हम भाग २ में कह ही चुके हैं कि इन दो शब्दोंका अर्थ समझमें नहीं आता)। बगालके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी नाविकोंके अधिकारियोंको छोड कर अन्य समस्त अधिकारियोंके नाम सभवत. यही होंगे। कहीं

यहाँ बुंदेलखंडके समान अश्वदलके लिए भी पृथक् अधिकारी होता था। मामूली सिपाहीकी 'भट' संज्ञा थी। पुलिस विभाग सेनासे अलग था। पुलिसके गुल्म अर्थात् थाने होते थे और उनके अधिकारी गौल्मिक कहाते थे जो जिलेके दांडिक अथवा राजस्थानीयकी अधीनतामें होते थे। यह अनुमान हमने शिलालेखोंमें आये अधिकारियोंके नामक्रमके आधारपर किया है। (परिशिष्ट देखिए)

इस कालविभागके लेखोंमें भी इस विषयमें कोई उल्लेख नहीं मिलता कि सैनिकों तथा अधिकारियोंका वेतन क्या होता था। जैसा कि हमने भाग २ में अनुमान किया है, इस विभाग में भी सिपाहियोंको खानेके लिए सरकारी धान्यागारसे अनाज मिल जाया करता होगा और ऊपरी खर्चके लिए कुछ नकद भी दे दिया जाता होगा। मालूम होता है कि मुल्की अधिकारियोंको उनके निर्वाहके लिए जमीनें तथा गांव और श्रेष्ठ मुल्की तथा सैनिक अधिकारियोंको नगर दे दिये जाते थे। समरांगणमें सेनाका आधिपत्य हमेशा राजाके हाथमें होता था और राजा हाथीपर बैठ कर समस्त सेनाके शिरोभागमें रहता था।

सन्मानोंका उद्गम

समस्त पदवियाँ राजा देता था। व्यापारी लोगोंकी प्रसिद्ध उपाधि 'श्रेष्ठी' तक राजा ही देता था (एपि० इंडि० भाग २ पृ० २३७).

सातवाँ प्रकरण।

भाषा तथा साहित्य।

दूसरे भागमें कहा गया है कि हिन्दू मध्ययुगीन इतिहासके दूसरे कालविभागमें (८००-१०००) देशमें राजनीतिक, और विशेषकर धार्मिक कारणोंसे वर्तमान देशी भाषाओंकी उत्पत्ति हुई, क्योंकि बौद्ध धर्मका उच्छेद होकर इस समय हिन्दू धर्मका स्वरूप बदल गया था। तब संस्कृतका अभ्यास अधिक ज़ोरोंसे किया जाने लगा। विशेष कर शंकराचार्यका नवीन तत्वज्ञान लोगोंको उनकी अपनी भाषामें समझा देना जरूरी था, इसलिए यद्यपि अपभ्रंश भाषाएँ आर्य भारतमें प्रचलित थीं तथापि उनमें बहुत भारी परिवर्तन हो गया। संस्कृतके शब्दोंको लेकर उनका इन भाषाओंमें ज्योंका त्यों प्रयोग होने लगा। और उनमें संस्कृतके विभक्तियुक्त पदों तथा धातुक रूपोंका भी समावेश होने लगा। अतः इन अनार्य भाषाओंमें भी शुद्ध संस्कृत शब्दोंके प्रयोगसे नवीन सौंदर्य तथा नवीन मधुरता उत्पन्न हो गयी। इस तरह पिछले कालविभागमें हमारी आजकलकी प्रचलित संस्कृतोत्पन्न आर्य भाषाओंकी अर्थात् बङ्गाली, पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी (राजस्थानी) पंजाबी, गुजराती, तथा मराठीकी उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार वर्तमान अनार्य देशी भाषाओंका अर्थात् कानडी, तेलगू, तामिल तथा मलयालमका जन्म हुआ। इस कालविभागमें ये भाषाएँ इतनी विकसित हो गयीं कि इनमें भी संस्कृतके समान उच्च साहित्य तैयार होने लगा परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि इन भिन्न भिन्न भाषाओंके प्रान्तोंमें एक मात्र

देवनागरी लिपिके आधारपर भिन्न भिन्न लिपियाँ भी उत्पन्न हो गयीं। इन लिपियोंके नाम अल्बेरूनीने इस प्रकार दिये हैं (भाग १ पृ० १७३):—"सबसे अधिक प्रसिद्ध लिपि सिद्ध-मात्रिका है। यह काश्मीर तथा वाराणसीमें प्रचलित है। हिन्दू शास्त्रोंके अध्ययनके ये केन्द्र-स्थान हैं। यही लिपि मध्य देश अर्थात कन्नौजके परिवर्ती आर्यावर्तमें प्रचलित है।" यह लिपि पूर्वी हिन्दी है। "मालवेमें नागरी नामक एक भिन्न लिपि है। इसमें तथा उपर्युक्त सिद्धमात्रिकाके आकारमें थोड़ासा अन्तर है। तीसरी एक अर्धनागर नामक लिपि है जो उपर्युक्त दोनोंका मिश्रण ही है। यह भाटिया तथा पंजाबके कुछ भागोंमें प्रचलित है।" (भाटिया शहर तथा देश सिन्धके उत्तरमें था। हम प्रारम्भमें भौगोलिक अध्यायमें कह चुके हैं कि पंजाबका एक हिस्सा झेलमके पश्चिममें था। अल्बेरूनीके इस कथनसे उसकी पुष्टि होती है। शायद यही वर्तमान पंजाबी लिपि हो। "इसके अतिरिक्त अन्य लिपियाँ भी हैं जिनके नाम ये हैं—मलयवरी दक्षिण भारतमें समुद्रके किनारेपर प्रचलित है। सैंधव अलमन्सूरकी लिपि है। कर्नाटकी लिपि कर्नाट देशमें प्रचलित है जहाँके कन्नर नामक प्रसिद्ध सिपाही फौजोंमें पाये जाते हैं। आन्ध्र देशमें आन्ध्री, दिरवर देशमें दिरविरी (द्रविड़ी), लाड देशमें लाड़ी और पूर्व देशोंमें गौड़ी लिपि है। बौद्ध लोग इसी गौडी लिपिका उपयोग करते हैं।"

भारतमें उस समय जो लिपियाँ प्रचलित थीं, उनका यह सम्पूर्ण वृत्तान्त है। इस वर्णनसे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि इसमें भाषासंबन्धी परिस्थिति भी पूर्णतः प्रतिबिम्बित है। यही भाषाएँ इस समय प्रचलित भी हैं। पूर्व पंजाब तथा

काश्मीरसे लेकर बनारसतक पूर्वी हिन्दी भाषा और उसकी लिपि प्रचलित है। मालवे तथा राजपूतानेमें पश्चिमी हिन्दी है। उत्तर सिन्ध तथा पश्चिम पंजाबमें एक जुदी भाषा है और सिन्धमें सिन्धी है। पश्चिम किनारेपरकी लिपि तथा भाषाको मलावारी कहा है। संभवतः समुद्रमार्गसे वह मलावार से सिन्धतक पहुँच गयी होगी। और अलमन्सूरमें सैंधवी, अरबी, तथा हिन्दीके सम्मिश्रणसे एक जुदी भाषा बन गयी होगी। मालूम होता है कि ये दोनों भाषाएं अब जीवित नहीं हैं। शायद अल्बेरूनीके समय अर्थात् १०३० ईसवीमें गुजराती भाषा उत्पन्न नहीं हुई थी। उसी प्रकार अल्बेरूनी मराठी लिपिका भी उल्लेख नहीं करता। लाट देशकी लाडी भाषा संभवतः उत्तर कोंकणमें भी बोली जाती थी और यही पुरानी मराठी होगी। यादवोंके शासनकालमें अर्थात् तेरहवीं सदीमें वह वर्तमान मराठीमें परिवर्तित हो गयी। मार्को पोलोने लिखा है कि गुजरात और ठानेमें भिन्न भिन्न भाषाएँ बोली जाती थीं। अब तो समस्त महाराष्ट्रमें मराठी सर्व सामान्य भाषा हो गयी है। उत्तर कोंकणकी लाड़ी, दक्षिण कोंकणकी कोंकणी, तथा महाराष्ट्र, खानदेश और विदर्भकी भाषा, इन सबको यादवोंकी सर्वव्यापी सत्ताके कारण तथा पंढरपुरकी सर्वव्यापी भागवत भक्तिके कारण मराठीने हज़म कर डाला। ये दोनों बातें इस कालविभागके अन्तमें अर्थात् ईसवी सन् ११७० से १२०० तक घटित हुईं। मराठीकी स्वतंत्र स्थितिका पता इस कालमें महानुभाव ग्रन्थसे लगता है। ई० स० १३०० के लगभग तो ज्ञानेश्वरी जैसे सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थका निर्माण हो गया। इससे ज्ञात होता है कि कमसे कम इसके सौ वर्ष पहले तो जरूर मराठीका अच्छा विकास हो गया होगा। ठानेके शिलाहारोंमेंसे एक राजाके

लेखमें एक मराठी वाक्य पाया जाता है। बंगालमें भी उस प्रान्तकी भाषाका इस समयतक अच्छा विकास हो गया होगा। वहाँकी विशेष लिपि गौड़ीका उल्लेख अल्बेरूनीने किया ही है।

दक्षिण भारतकी भिन्न भिन्न भाषाएँ अर्थात् कानडी, तेलगू, तामिल, अथवा द्राविडी और मल्यालम् तो इसके पहलेसे ही विकसित हो गयी थीं और उनमें अच्छा साहित्य भी तैयार हो गया था। भाग २ में हमने डॉ० ग्रियर्सनके "भारतीय भाषाओंका परीक्षण" नामक ग्रन्थसे कुछ उद्धरण देकर यह बताया है कि कानडी, तेलगू तथा मराठी साहित्य कितना पुराना है। (टिप्पणी परिशिष्टमें है।)

इसके अतिरिक्त कानडी, तामिल, तथा तेलगू भाषाओंमें लिखे इस कालविभागके कई लेख भी मिले हैं। प्राच्य गंगोंके ई० स० १०७५ ईसवीके एक संस्कृत शिलालेखके अन्तमें तेलगू वाक्य लिखे हुए हैं (एपि० इंडि० ४ पृ० ३१४)। मतलब यह कि आजकलकी तमाम प्रचलित भारतीय भाषाओंका इस कालविभागमें खासा विकास हो गया था और उनमें अच्छे अच्छे ग्रन्थतक तैयार हो गये थे। मराठीमें महानुभाव तथा उसके बादमें ज्ञानेश्वरी, कानडी भाषामें पम्पाका आदिपुराण, तेलगूमें नन्नयका महाभारत इत्यादि इस कालविभागमें लिखे ग्रन्थ आज भी कालसागरकी तरंगोंपर तैर रहे हैं। प्राच्यहिंदी तथा राजस्थानी अर्थात् डिंगलमें भी उस समय लिखे गये ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। परन्तु अभी कोई उनका अध्ययन नहीं कर पाया है। और अन्तमें यद्यपि पृथ्वीराजरासो इस समय हमें बहुत बढ़ा हुआ ग्रन्थ दिखाई देता है तथापि हमारा अनुमान है कि वह मूल स्वरूपमें हमारे इसी कालविभागके अन्तमें लिखा गया होगा।

काश्मीरसे लेकर बनारसतक पूर्वी हिन्दी भाषा और उसकी लिपि प्रचलित है। मालवे तथा राजपूतानेमें पश्चिमी हिन्दी है। उत्तर सिन्ध तथा पश्चिम पंजाबमें एक जुदी भाषा है और सिन्धमें सिन्धी है। पश्चिम किनारेपरकी लिपि तथा भाषाको मलावारी कहा है। संभवतः समुद्रमार्गसे वह मलावार से सिन्धतक पहुँच गयी होगी। और अलमन्सूरमें सधवी, अरबी, तथा हिन्दीके सम्मिश्रणसे एक जुदी भाषा बन गयी होगी। मालूम होता है कि ये दोनों भाषाएं अब जीवित नहीं हैं। शायद अल्वेरूनीके समय अर्थात् १०३० ईसवीमें गुजराती भाषा उत्पन्न नहीं हुई थी। उसी प्रकार अल्वेरूनी मराठी लिपिका भी उल्लेख नहीं करता। लाट देशकी लाडी भाषा संभवतः उत्तर कोंकणमें भी बोली जाती थी और यही पुरानी मराठी होगी। यादवोंके शासनकालमें अर्थात् तेरहवीं सदीमें वह वर्तमान मराठीमें परिवर्तित हो गयी। मार्को पोलोने लिखा है कि गुजरात और ठानेमें भिन्न भिन्न भाषाएँ बोली जाती थीं। अब तो समस्त महाराष्ट्रमें मराठी सर्व सामान्य भाषा हो गयी है। उत्तर कोंकणकी लाडी, दक्षिण कोंकणकी कोंकणी, तथा महाराष्ट्र, खानदेश और विदर्भकी भाषा, इन सबको यादवोंकी सर्वव्यापी सत्ताके कारण तथा पंढरपुरकी सर्वव्यापी भागवत भक्तिके कारण मराठीने हजम कर डाला। ये दोनों बातें इस कालविभागके अंतमें अर्थात् ईसवी सन् ११७० से १२०० तक घटित हुईं। मराठीकी स्वतंत्र स्थितिका पता इस कालमें महानुभाव ग्रन्थसे लगता है। ई० स० १३०० के लगभग तो ज्ञानेश्वरी जैसे सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थका निर्माण हो गया। इससे ज्ञात होता है कि कमसे कम इसके सौ वर्ष पहले तो जरूर मराठीका अच्छा विकास हो गया होगा। ठानेके शिलाहारोंमेंसे एक राजाके

लेखमें एक मराठी वाक्य पाया जाता है। बंगालमें भी उस प्रान्तकी भाषाका इस समयतक अच्छा विकास हो गया होगा। वहाँकी विशेष लिपि गोड़ीका उल्लेख अल्बेरूनीने किया ही है।

दक्षिण भारतकी भिन्न भिन्न भाषाएँ अर्थात् कानडी, तेलगू, तामिल, अथवा द्राविडी और मल्यालम् तो इसके पहलेसे ही विकसित हो गयी थीं और उनमें अच्छा साहित्य भी तैयार हो गया था। भाग २ में हमने डॉ० ग्रियर्सनके "भारतीय भाषाओंका परीक्षण" नामक ग्रन्थसे कुछ उद्धरण देकर यह बताया है कि कानडी, तेलगू तथा मराठी साहित्य कितना पुराना है। (टिप्पणी परिशिष्टमें है।)

इसके अतिरिक्त कानडी, तामिल, तथा तेलगू भाषाओंमें लिखे इस कालविभागके कई लेख भी मिले हैं। प्राच्य गंगोंके ई० स० १०७५ ईसवीके एक संस्कृत शिलालेखके अन्तमें तेलगू वाक्य लिखे हुए हैं (एपि० इंडि० ४ पृ० ३१४)। मतलब यह कि आजकलकी तमाम प्रचलित भारतीय भाषाओंका इस कालविभागमें खासा विकास हो गया था और उनमें अच्छे अच्छे ग्रन्थतक तैयार हो गये थे। मराठीमें महानुभाव तथा उसके बादमें ज्ञानेश्वरी, कानडी भाषामें पम्पाका आदिपुराण, तेलगूमें नन्नयका महाभारत इत्यादि इस कालविभागमें लिखे ग्रन्थ आज भी कालसागरकी तरंगोंपर तैर रहे हैं। प्राच्यहिंदी तथा राजस्थानी अर्थात् डिंगलमें भी उस समय लिखे गये ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। परन्तु अभी कोई उनका अध्ययन नहीं कर पाया है। और अन्तमें यद्यपि पृथ्वीराजरासो इस समय हमें बहुत बढा हुआ ग्रन्थ दिखाई देता है तथापि हमारा अनुमान है कि वह मूल स्वरूपमें हमारे इसी कालविभागके अन्तमें लिखा गया होगा।

देशी भाषाओंका यह साहित्य प्रधानतः पद्यमय है और वह प्रायः संस्कृत काव्यों, पुराणों आदिका या तो अनुवाद है या अनुकरण है। परन्तु इस कालविभागमें स्वयं संस्कृतमें जो अनेक भिन्न भिन्न विषयोंपर नवीन ग्रन्थ लिखे गये उनकी तरफ यदि हम पाठकोंका ध्यान आकर्षित करें तो अनुचित न होगा। अल्बेरूनी पहले ही लिख चुका है कि विद्याके मुख्य स्थान काशी और काश्मीर थे। इनके अतिरिक्त बंगालमें नदिया, दक्षिणमें तञ्जावर तथा महाराष्ट्रमें कल्याण भी विद्या के पीठ थे। शायद कन्नोज और उज्जयिनी इस काल विभागमें भी पहलेके अनुसार प्रसिद्ध रहे होंगे और जिस प्रकार बाण और कुमारिलके समय मध्य देशके विद्वान् लोग महामीमांसक थे, उसी प्रकार इस समय भी वेदोंका अध्ययन करके वे उत्साहपूर्वक वैदिक यज्ञ करते थे।* अस्तु, इनमें अलंकार, तत्वज्ञान, धर्मशास्त्र, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक तथा संगीतादि विषय प्रधान थे। श्रीयुत पी० वी० काणेने अलकारोंकी वृद्धि तथा विकासका ब्योरेवार इतिहास दिया है। और उसमें बताया है कि मम्मट (११००) तथा अन्य शास्त्रकारोंने किस प्रकार उस समय ध्वनिके सिद्धान्तकी उत्क्रान्ति की थी। तत्वज्ञान अर्थात् दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थोंमें इस समय रामानुज आदिके ग्रन्थ रचे गये थे। यों तो पहलेसे ही सांख्य और योग, बौद्ध और जैन, कौमारिल और शांकर आदि दर्शनोंके कारण भारतीय दर्शन साहित्य

* अश्रान्त-क्रतु-कुण्ड-मण्डल चलद्धूमावलिश्यामल—
व्योमाशावलय विलोक्य विलसन्नीलाम्बुदालिभ्रमात् ॥
विप्रास्येरितवेदराशिविततोद्घोषोद्धुरे यद्गृहे
सत्पक्षप्रसरा रटन्ति पटवो हृष्टा मुहु केकिनः। (ए. ई. १ पृ. ४१)

काफी पुष्ट हो गया था, परन्तु इन उपर्युक्त ग्रन्थोंके कारण वह और भी बढ़ गया ।* हम पहले कह चुके हैं कि हिन्दू राज्योंमें धर्मशास्त्रका अध्ययन पहले किस तरह होता था तथा मिताक्षरा जैसे ठोस ग्रन्थ किस प्रकार उस कालविभागमें रचे जाते थे। न्यायमें भी नदियाके हिन्दू नैयायिकोंने एक नवीन पथका अनुसरण किया। हेमचन्द्रके नये संस्कृत प्राकृत व्याकरण-का उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। ज्योतिषमें कल्याणके विक्रमका पुत्र एक विद्वान् राज-प्रथकर्ता हो गया है। भास्करका सिद्धान्त-शिरोमणि भी जो हिन्दुओंका ज्योतिष विषयपर सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है (११७५) इसी काल विभागमें लिखा गया। इसी प्रकार वैद्यकशास्त्रमें भी इस काल-विभागमें अच्छी उन्नति हुई। मथुराके पास भदावरके डल्हण तथा बंगालके नयपालका राजवैद्य चक्रपाणि, इन दोनोंने इसी काल विभागमें चरकसंहितापर विस्तृत और विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखीं। मालवाके राजा भोजकी विलक्षण विद्वत्ता तथा अनेक विषयोंपर लिखे उसके प्रमाणभूत ग्रन्थोंका उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। मार्कोपोलो लिखता है कि केरल-देश फलितज्योतिष तथा वैद्यकके लिए विशेष प्रसिद्ध था (पृ० ३७६)। पूर्व किनारे तथा पश्चिम किनारेपर कदंब और चोलोंके शासनकालमें संगीतका खूब अध्ययन हुआ था तथा

---

* एपि० इं० नं० १ (पृ० ५१) मे एक महान् पंडितका नीचे लिखे अनुसार वर्णन है। उससे ज्ञात होगा कि तत्कालीन पंडित लोग इन समस्त दार्शनिक ग्रन्थोंका अध्ययन करते थे। वर्णन यों हैः—"मीमांसाद्वय पारगो गुररसौ य. काश्यपीये नये, सांख्ये चाप्रतिमल्लता नयनिधिर्व्यक्षोक्षपा-दोक्ति द्रुक् ॥ यश्चार्वाक विशाल-मान मल्लो दुर्वारबौद्धाम्बुधे. । पाना-नन्दित कुम्भसंभवमुनिर्दिग्वास सामन्तक" ॥

नृत्यकलाकी विशेष उन्नति हो गयी थी। इधर काश्मीरमें हर्ष राजा स्वरचित संगीत पद्यों तथा गायन कलाको दिये उदार आश्रयके कारण विशेष प्रसिद्ध हुआ। इस तरह हिन्दू लोगोंकी स्वाभाविक सूक्ष्म तथा तेजस्विनी बुद्धिमत्ताकी कीर्ति इस कालविभागमें भी काव्यप्रकाश तथा सिद्धान्त शिरोमणि, नैषध तथा गीतगोविन्द इत्यादिकी रचनाओंके कारण अक्षुण्ण बनी रही। मतलब यह कि भोज और मम्मट, भास्कर और रामानुज, जयदेव और श्रीहर्ष इत्यादि अनेक चमकीले प्रतिभाशाली ग्रन्थकर्ताओंके तारकापुञ्जोंने मध्ययुगीन हिन्दू इतिहासके इस अन्धकार युक्त भागको कुछ प्रकाशमय कर दिया।

समाप्त

परिशिष्ट

(१) डा० ग्रियर्सनके भारतीय "भाषाओंका निरीक्षण" नामक ग्रन्थसे प्राचीन ग्रन्थोंके कालके सम्बन्धमें उद्धरण

(१) कानडी—इस भाषाके प्राचीनतम ग्रन्थ दसवीं सदी तकके पाये जाते हैं। कानडी साहित्यकी उत्पत्ति जैनोंके प्रयत्नसे हुई और पहले साहित्यिक ग्रन्थपर संस्कृतका बहुत भारी असर पाया जाता है। कानडी साहित्यके तीन विभाग किये जा सकते है। (१) पुरानी कानडी १० वीं सदीसे तेरहवीं सदीतक। इसमें प्रधान ग्रन्थ हैं व्याकरण तथा छंद.शास्त्र जो मूल संस्कृतके आधारपर बनाये गये हैं। अन्य पंथोंके ग्रन्थ भी हैं। उसी प्रकार कुछ काव्य ग्रन्थ भी है जो अत्यंत कृत्रिम तरहसे लिखे गये है। ये ग्रन्थ जिस पुरानी भाषामें लिखे गये है वह एकसी और विलक्षण दरबारी शैलीपर लिखी गयी है। उसमें संस्कृतसे लिये हुए तत्सम शब्दोंकी खूब भरमार है। उसके उच्चारण वर्तमान कानडीकी अपेक्षा बहुत भिन्न है और विभक्तिके रूप भी भिन्न हैं। इसके उदाहरणस्वरूप पंपाका आदि-पुराण ग्रन्थ देखिए (९४१ ई०)। दूसरा विभाग है (२) मध्य कालीन कानडी। इसमें वाक्य रचनाके तमाम नियम बदल गये थे और नवीन रूप अस्तित्वमें आ गये थे। इस मध्य कालकी सीमा थी तेरहवींसे लेकर पंद्रहवीं सदीतक। (३) तीसरा विभाग है वर्तमान कानडीका। इसका साहित्य सोलहवीं सदीसे शुरू होता है। वैष्णवोंकी कितनी ही कविता दूसरे कालकी बनी हुई है।

(२) तेलगू—दंत-कथा है कि पहला तेलगू ग्रन्थकार कण्व था। परन्तु उसके ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। इस समय जो सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है, वह लगभग १००० ई० का है। इस समय विष्णुवर्धन अथवा

राजराजेन्द्र नामक राजाने (१०२२ १०६०) तेलगू साहित्यको अच्छा आश्रय दिया। इस समय जो प्राचीनसे प्राचीन तेलगु व्याकरण पाया जाता है उसका रचयिता और महाभारतका तलगू अनुवादक नन्नयभट्ट इसका दरबारी था। हुएनत्सग लिखता है कि आन्ध्रोंकी भाषा भिन्न थी परन्तु उनकी लिपि उस लिपिसे ज्यादा भिन्न नहीं थी जो उत्तरमें प्रचलित थी। कुमारिलने आन्ध्र द्रविड भाषाका उल्लेख किया है। (उसने तो सिर्फ द्रविड भाषाका ही उल्लेख किया है। स्मरण रहे कि आन्ध्र लोगोंकी लिपि तो उत्तरकी लिपि ही थी)

(३) बंगला—मागधीकी एक पूर्वी अपभ्रंशसे बंगलाकी उत्पत्ति हुई है। ८०० वर्ष पहले बंगाली लोग जो उच्चारण नहीं कर सकते थे उन्हें वे आज भी नहीं कर सकते। क्ष, स, और ह्म के बदले वे ख्म, ष और उम्भ कहते हैं। साहित्य निर्माताओंमें चण्डीदास एक पुराना कवि था। वह चौदहवीं सदीमें हुआ। उसने कृष्ण भक्ति पर कविता रची।

(४) प्राच्य हिन्दी—अत्यंत प्राचीन कालमें अयोध्यामें हिन्दी साहित्यकी उत्पत्ति हो गयी थी। उसका वर्णन करना बहुत मुश्किल है। जब तुलसीदासने (मृत्यु ई० १६२४) अपने ग्रन्थ लिखे तब वह साहित्य नष्ट हो गया। अब प्रत्येक ग्रन्थकार उसी ढंगसे लिखने लगा जिस ढंगसे तुलसीदास लिखते थे। मलिक महम्मद जायसीने अपना पद्मावती काव्य उनसे भी पहले लिखा था (१५४०)। उसमें मेवाडके राजा रतनसिंहका पराक्रम तथा अल्लाउद्दीनके चितौड विजयका वर्णन है।

(५) पश्चिमी हिन्दी—राजपूताने और खान देशके भील यद्यपि मूलत द्रविड वंशीय हैं, तो भी आजकल वे अपनी भाषाको छोड़कर पश्चिमी हिन्दी ही बोलते हैं। उनकी भाषाको 'भीली' कहते हैं। राजस्थानी तथा मारवाडीका प्राचीन साहित्य भी है। किन्तु अभी उसका अध्ययन नहीं किया गया। चदका पृथ्वीराज रासा ही अभी तो प्राचीनतम हिन्दी ग्रन्थ समझा जाता है, परन्तु उसके सम्बन्धमें विद्वानोंको सन्देह है। मारवाडी भाषाके प्राचीन साहित्यकी भाषा डिंगल कही जाती है। मीराबाईकी पद्य रचना व्रज भाषामें है जो पिंगल कही जाती है।

(६) मराठी—रामतर्क वागीश तथा क्रमदीश्वरने दाक्षिणात्याको ही महाराष्ट्र-अपभ्रंश बताया है। परन्तु साहित्य दर्पणमें दाक्षिणात्याको वैदर्भिका कहा है। आजकलकी मराठी इतनी प्राचीन है कि उसीके नाम दाक्षिणात्या तथा वैदर्भिका रहे होंगे। मराठीका सबसे प्राचीन शिलालेख ई० स० १११५ का है और दूसरा १२०७ ई० का है (एपि० इंडि० भा० १ पृ० ३४३ और भाग ९ पृ० १०९)

(२) कुछ आक्षेपोंके उत्तर।

(१) डॉ० कृष्णस्वामी ऐयंगरका सूर्य कुलके विषयमें आक्षेप—डॉ० कृष्णस्वामी ऐयंगर अपने जर्नल आफ इंडियन हिस्टरीमें (१९२५ अप्रैल, पृ० १२३-१२४) राजपूतोंके गोत्र तथा प्रवर सम्बन्धी हमारे मतको स्वीकार करते हैं। परन्तु उन्होंने हमारे इस सिद्धान्तसे कि "अग्निकुलकी कल्पना निराधार है" मतभेद प्रकट किया है। उनका कथन है कि रासोके कितनी ही सदियों पहलेसे यह कल्पना पायी जाती है। भाग २ में हमने लिखा है कि यह कल्पना रासोके बाद रासोका उलटा-पुलटा अर्थ लगानेसे उत्पन्न हुई है। डॉ० कृष्णस्वामीका कथन है कि संगमके किसी एक तामिल काव्यमें अग्नि-वंशोत्पन्न एक सरदारका उल्लेख है। हम यह तो पहले लिख ही चुके हैं कि परमारोंमें यह परम्परा है कि उनका मूल पुरुष वसिष्ठ-के यज्ञ कुण्डसे उत्पन्न हुआ था। परन्तु वे स्वयं अपनेको वसिष्ठोद्भव सूर्य-वंशी क्षत्रिय बताते हैं। फिर, इस कालविभागके (१०००-१२०० ई०) शिलालेखोंमें तो कहीं इस बातका उल्लेख नहीं पाया जाता कि राजपूतोंके तीन वंश हैं-सूर्य, सोम, और अग्नि वंश। गाहड़वालोंके एक लेखमें लिखा है, चद्रने पुनः क्षत्रिय-वंशकी स्थापना की थी। परन्तु वहाँ भी तो सूर्य और सोम, इस तरह केवल दो ही वंश बताये गये हैं। संभवतः इस चद्रने ही क्षत्रियोंके छत्तीस कुलोंकी सूची बनायी होगी। इससे यह निश्चित है कि मध्ययुगमें केवल दो ही क्षत्रियवंश माने जाते थे, सूर्य वंश और चद्र वंश।

दूसरी बात यह है कि डॉ० कृष्णस्वामीका कथन है कि प्रतिहारोंकी उत्पत्ति लक्ष्मणसे होनेकी परम्परागत धारणा दक्षिणमें प्रचलित थी

और वे विष्णुके भाईसे पल्लवोंके पैदा होनेके उल्लेखका प्रमाण देते हैं। परन्तु डॉ० साहबका यह प्रमाण स्वयं उन्हींके विरुद्ध है, क्योंकि यदि प्रतिहारोंकी यह परम्परा सच्ची है कि वे लक्ष्मणसे पैदा हुए थे तब यह अनुमान करना वृथा और असगत नहीं कि अग्निकुल-परम्परा निर्मूल है। क्योंकि तब तो सिवा इस अनुमानके दूसरी गति ही नहीं है। यदि प्रतिहार सूर्यवंशी हैं तो वे अग्निवंशी किस तरह हो सकते हैं? वस्तुत अग्नि कुल-कल्पना इतिहासकी दृष्टिसे निर्मूल ही है। इस कालके शिलालेखोंमें उसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत चौहान, परमार, प्रतिहार तथा चालुक्य ये चारो अग्निवंशी समझे जानेवाले कुल इस कालविभागके शिलालेखोंमें सूर्यवंशी या चन्द्रवंशी कहे गये हैं। दक्षिणके मराठोंमें भी परमार, पल्लव, चौहान, चालुक्य कुल हैं। अग्निवंशको उन्होंने भी नहीं माना है।

(२) राजपूतोंके गोत्रोंके विषयमें पंडित गौरीशंकर ओझाका मत।

इसके विपरीत अजमेरके रायबहादुर पण्डित, गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा यह स्वीकार करते हैं कि अग्निकुलकी कल्पना निर्मूल है। परन्तु उनका कथन है कि राजपूतोंके गोत्र उनके अपने नहीं, पुरोहितोंके हैं। अर्थात् वे उत्पत्ति दर्शक नहीं, शिष्यत्व-दर्शक हैं। मतलब यह कि वे मिताक्षरामें प्रतिपादित विज्ञानेश्वरके सिद्धान्तको मानते हैं। नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ५ न० ४ पृ० ४३५ में प्रकाशित अपने निबन्धमें वे लिखते हैं कि "जबतक क्षत्रिय वैदिक कर्म करते थे तबतक वे अपने गोत्र पुरोहितोंसे ले लिया करते थे। परन्तु अब तो उन्होंने यह भी छोड दिया है। इस लिए अब उनका गोत्र पुरोहितके गोत्रसे भिन्न है।" परन्तु उनका यह ख्याल गलत है, क्योंकि क्षत्रिय तो अभीतक वैदिक कर्म करते हैं। तब फिर राजपूतोंका गोत्र उनके पुरोहितोंके गोत्रोंसे भिन्न क्यों होना चाहिए? हमने अपने इतिहासके भाग १ प्र० ५ में प्रतिपादन किया है कि राजपूतोंके गोत्र पुरोहितोंके नहीं, खुद उन्हींके अपने होते थे और विज्ञानेश्वरका सिद्धान्त गलत है। पंडित गौरीशंकरजी इसके विपक्षमें दो प्रमाण देते हैं। "एक तो अश्वघोषके सौन्दरानन्द काव्यमें लिखा है कि श्रीकृष्ण और बलरामने

अपने भिन्न भिन्न गुरुओंसे भिन्न भिन्न गोत्र धारण किये, उसी प्रकार शाक्यों ने भी अपने गुरुसे गौतम गोत्र लिया । दूसरे, शिलालेखोंमें राजपूतोंके गोत्र बदलनेके उदाहरण मिलते हैं ।" अब हम बतावेंगे कि ये दोनों प्रमाण किस तरह निरर्थक हैं ।

यह तो हम पहले ही भाग २ में बता चुके हैं क्षत्रियोंके अपने गोत्र होते थे । ई० स० पूर्व २०० वर्षके वैदिक सूत्रोंसे यह सिद्ध भी होता है । यही प्रमाण सबसे अधिक सबल है । वैदिक सूत्रोंके प्रमाणके विपक्षमें ई० स० २०० में लिखे हुए एक बौद्ध काव्यमें उल्लिखित कहानीके प्रमाणका कोई मूल्य नहीं । वस्तुतः यह प्रश्न तो धर्मशास्त्रका है और विशेष कर वैदिक वचनोंसे सम्बद्ध है । हम प० वीरेश्वर शास्त्री द्रविडका शास्त्रीय मत आगे दे रहे हैं । उससे पाठक यह अच्छी तरह जान जायँगे कि क्षत्रियोंके अपने गोत्र ही होते हैं, यही वैदिक सूत्रोंका स्पष्ट आशय है ।

बौद्धोंकी यह दन्तकथा केवल मूर्खतापूर्ण प्रतीत होती है कि श्रीकृष्ण और बलरामने भिन्न भिन्न गुरु किये इसलिए उनके गोत्र भी भिन्न हो गये । हिन्दू पुराणोंको इस कथाका पता नहीं है, क्योंकि जैसा कि भागवत और हरिवंशमें लिखा है, दोनोंका गुरु उज्जयिनीका सांदीपिनी था । दूसरे, हमें यह ठीक नहीं मालूम होता कि सौंदरानन्दमें लिखे अनुसार श्री कृष्णका गोत्र गौतम था । हमारा तो खयाल है कि उनका गोत्र अत्रि रहा होगा । क्योंकि चूडासमा आदि, जो श्रीकृष्णके वंशज कहे जाते हैं, अपना गोत्र अत्रि ही बतलाते हैं । सौंदरानन्दमें लिखा यह कथन विचित्र है । सम्भव है वह प्रक्षिप्त भी हो । यह तो सभी जानते हैं कि बौद्धोंने हिन्दू कथाओंको खूब उलट सुलट करके ऊटपटाँग लिख मारा था । उनकी लिखी कहानियोंमें सीता श्रीरामकी बहिन भी है और धर्मपत्नी भी। अतः इस विषयमें लिखी गयी बौद्ध कथाओंको विशेष महत्त्व नहीं दिया जा सकता ।

पण्डित गौरीशंकर द्वारा उपस्थित किया हुआ ऐतिहासिक सबूत भी व्यर्थ है । जिन शिलालेखोंमें गोत्र परिवर्तन होनेका वे जिक्र करते हैं वे विज्ञानेश्वर (बारहवीं सदी) के बादके हैं । अर्थात् वह गोत्र-परिवर्तन

विज्ञानेश्वरके मत द्वारा बहुत कुछ प्रभावान्वित हुआ होगा। यही क्यों, आज भी राजपूतोंमें विज्ञानेश्वरके मतका बहुत भारी प्रभाव है। परन्तु हमने तो ईक्सनके पहलेके भी शिलालेख बताये हे जिनमें राजपूतोंके गोत्रोंका उल्लेख है। फिर दक्षिणके चालुक्य तथा मद्रासके पल्लव छठी सदी तक तो अपने गोत्र मानव्य और भारद्वाज लिखना नहीं भूले। यदि इन गोत्रोंको पुरोहितोंसे लेनेकी प्रथा होती तो कोई इन्हें अपने शिलालेखोंमें नहीं लिखता और आगे चलकर हम बतावेंगे कि अर्वाचीन लेखोंमें तो यह स्पष्ट वर्णन है, कि प्रत्येक क्षत्रिय कुलका गोत्रर्षि उसका उत्पत्तिकर्ता था।

पहले उन चार कुलोंको ही लें जो अग्निवंशी समझे जाते हैं (१) परमार—*इनका गोत्र वसिष्ठ है, (इसलिए नहीं कि वसिष्ठ उनके कुल पुरोहित थे)* क्योंकि यह स्पष्ट उल्लेख है कि वे उनके यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हुए। उदयपुर प्रशस्तिमें एक वाक्य भी है—"वसिष्ठ गोत्रोद्भव एप लोके ख्यातस्तादौ परमारवंश"। परमारोंका यह गोत्र केवल राजपूतोंमें ही नहीं बल्कि मराठोंतकमें प्रचलित है। (२) चाहमान वत्सगोत्री हैं। एक शिलालेखमें लिखा है कि पहला चाहमान वत्स ऋषिके आनंदाश्रुसे पैदा हुआ था और बिजोलिया *लेखमें* लिखा है कि पहला चाहमान वत्सगोत्री *ब्राह्मणसे (अथवा वत्स ऋषि गोत्रमें) उत्पन्न हुआ था। यह तो कहीं भी* लिखा नहीं है कि वत्स उनका पुरोहित था। (३) प्रतिहारोंके विषयमें एक शिलालेखमें स्पष्ट वाक्य है कि वे एक प्रतिहार ब्राह्मणसे पैदा हुए थे। परन्तु किसी एक दूसरे लेखमें लिखा है कि वे रामचन्द्रके भाई लक्ष्मणके वंशज हैं। (इनके गोत्रका अबतक पता नहीं लगा है)। (४) चालुक्य द्रोणके चुलुकसे उत्पन्न हुए और इसीलिए एक कलचूरी शिलालेखमें स्पष्ट उल्लेख है कि वे भारद्वाज गोत्री हैं। मतलब यह कि ये चारों राजपूत कुल शुरूसे लेकर आजतक अपना जो गोत्र बताते आये हैं उन्हीं गोत्रोंमें उनके उत्पन्न होनेका उल्लेख शिलालेखोंमें भी है। और ये सभी शिलालेख विज्ञानेश्वरके पहलेके हैं। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय विज्ञानेश्वरके सिद्धान्तका किसीको पता तक न था।

अब चन्द्रवंशी राजपूतोंको लीजिए। उनका गोत्र प्राय अत्रि होता है। और पुराणोंमें यह स्पष्ट उल्लेख है कि चन्द्रका पिता अत्रि था। अत वही निर्विवाद रूपसे उनका भी उत्पत्तिकर्ता कहा जा सकता है। यह बात कलचूरी, हैहय तथा सेनोंके लेखोंमें स्पष्ट रूपसे लिखी हुई है। यादव चूडासमा तथा जाडेजा भी अपना गोत्र अत्रि बताते है। अत इनका गोत्र भी उत्पत्तिदर्शक है, शिष्यत्वदर्शक नहीं।

यह सत्य है कि सूर्यवंशी राजपूतोंके विषयमें जरा कठिनाई उपस्थित होती है। मेवाड़के गुहिलोत, जयपुर-अल्वरके कछवाह तथा जोधपुर बीकानेरके राठोर सूर्यवंशी राजपूत हे। उनके गोत्र क्रमश वैजवाप, मानव तथा गौतम हैं। मत्युस जो शावली दी जाती है उसमें इन ऋषियोंके नाम नहीं पाये जाते। भाग २ में हम बता चुके हैं कि कितने ही ब्राह्मणोंके गोत्र-प्रवर ऋषि गार्ग्य, मुद्गल आदि क्षत्रिय हैं। परन्तु हमें पुराणोंमें कहीं भी ये वाक्य नहीं मिले कि वैजवाप, मानव और गौतम सूर्यवंशी राजर्षि थे। सभव है वे हों भी। जबतक ऐसा कोई वाक्य हमें नहीं मिल जाता, तबतक इस भेदका कारण यह बताया जा सकता है कि अत्यन्त प्राचीन कालमें जब ये कुल अलग अलग हुए तब अपने वैदिक धर्मके लिए वे इन ऋषियोंके कुलोंमें दत्तक चले गये। इसलिए उनके वे ही गोत्र प्रवर हो गये। पुराणोंमें एक वाक्य है कि हारीत तथा मुद्गल आंगिरस पक्षमें जा मिले।* हमने यह अनुमान इसीसे किया है। पुराणोंमें एक स्थानपर तो पुत्र शब्द तकका प्रयोग पाया जाता है। भाव यह कि शिष्यत्वसे नहीं, पुत्रत्वके कारण अत्यंत प्राचीन कालमें उनके ये गोत्र हो गये। क्योंकि पुरोहितत्व गोत्रकी कल्पना होती तो जब जब उनके पुरोहित बदलते गये तब तब उनके गोत्र भी बदलना जरूरी था। परन्तु परम्परा और पद्धति तो यह है कि ये कायम रहते हैं। फिर भी कितने ही लोगोंका यह ख्याल है कि अत्यन्त प्राचीन कालमें सिर्फ क्षत्रियोंने पुरोहितोंसे गोत्र ले लिये और आगे उन्होंने उन्हींको कायम रखा। मधुसूदन शास्त्रीका मत देखिये जो अन्यत्र

---

* हरितो युवनाश्वस्य हारिता शूरय स्मृता। एतेऽह्यंगिरस पुत्रा क्षत्रोपेता द्विजातय।

उद्धृत हुआ है। पर यह भी तो एक तरहसे दत्त-विधान ही हुआ और यही कारण है जो क्षत्रिय कुलके गोत्र हजारों वर्षसे अपरिवर्तित हें। अति प्राचीन कालमें क्षत्रिय कुलोंने जो गोत्र-प्रवर, वेद शाखादि वैदिक कर्म करनेके लिए ग्रहण किये वे बदल नहीं सकते।

ब्राह्मणोंके गोत्र बदलते नहीं। वे शिष्यत्व सूचक नहीं, उत्पत्ति सूचक ह। फिर क्षत्रियोंके गोत्रोंके विषयमें ही यह कल्पना क्यों की जाती है कि ये शिष्यत्वसूचक ह? यह प्रश्न हमारे मनमें उठा। फिर हमने यह भी देखा कि प्राचीन शिलालेखोंमें क्षत्रिय अपने गोत्रोंको बड़े अभिमानके साथ लिखते हैं। इन दोनों कारणोंसे हमारा यह दृढ मत हो गया कि ये गोत्र उन्होंने पुरोहितोंसे नहीं लिये। इस विषयमें हमने जयपुरके प्रसिद्ध विद्वान् शास्त्री मधुसूदन (मैथिल) तथा वीरेश्वर (द्रविड) इन दोनोंसे परामर्श कर लिया और हमने तभी भाग २ में अपने इस मतका निःशंक भावसे प्रतिपादन किया जब उन्होंने उसे मान लिया। इसके बाद जब कई लोगोंने इस मतके विषयमें शकाएँ प्रकट कीं तो हमने उन दोनों विद्वान् शास्त्रियोंसे उनके लिखित मत ले लिये। वे इस प्रकार हैं।

(१) श्री

जयपुर चै० शु० ५ रवौ सं १९८२

सन्ति ब्राह्मणानामिव क्षत्रियस्य वैश्यस्य च प्रातिस्विकानि गोत्राणि न वेति प्रश्ने उत्तरम्। दर्शपूर्णमासादि यागप्रकरणस्थे 'आर्षेयं वृणीते' इति विधौ कल्पसूत्रकाराणां साम्प्रतिके ग्रन्थान्ते च प्रकरणे प्रवरनिर्णायकसूत्रेषु गोत्राणाम् वर्णनस्य क्षत्रिय-वैश्य-सम्बन्धेन बहुशो विद्यमानत्वेन सन्ति तयोरपि प्रातिस्विक गोत्राणि। याज्ञवल्क्य स्मृति व्याख्यायाम् मिताक्षरायां तदभावकथनं तु प्रबल दृलनिर्देशेन न विश्वासार्हमन्येषामपि तयोपवर्णनं तदनुयायित्वेनेति तत्तुच्छमेवेति मन्यते द्रविडो

वीरेश्वर शास्त्री

(२) श्री

,क्षत्रियोंका उत्पत्ति द्रष्टया गोत्र मनु है, और वैश्योंका भलन्दन है। क्षत्रियोंके जो भारद्वाज वत्सादि गोत्र प्रसिद्ध है, वे पूर्व कालमें उनके प्राचीन पुरोहितोंसे प्राप्त हुए है। ये अब बदल नहीं सकते। क्योंकि नया पुरोहित करना मना है। हालमें पुरोहितोंका गोत्र,इसी सबबसे भिन्न है। यह पुराने पीढ़ियोंसे चला हुआ गोत्र एक तरहसे प्रातिस्विक गोत्र हो गया है, क्योंकि वह बदल नहीं सकता।

सम्मतोयमर्थो जयपुरस्थस्य राजपण्डितस्य मधुसूदनशर्मणो विद्या-वाचस्पतेः

—जयपुर स्थानम् ३०-३-२५.

पाठक देखेंगे कि उपर्युक्त दोनों मत भिन्न भिन्न मार्गोंसे एक ही निश्चयपर हमें ले जाते है। वीरेश्वर शास्त्री सूत्रोंके आधारपर अपना मत देते हैं और साफ शब्दोंमें कहते हैं कि विज्ञानेश्वरका सिद्धान्त गलत है। मधुसूदन शास्त्री कहते हैं कि गोत्र अत्यंत प्राचीनकालमें पुरोहितोंसे लिये गये है परन्तु साथ ही यह भी लिख देते हैं कि वे सब बदल नहीं सकते। अर्थात् वे भी एक तरहसे यह कबूल करते है कि ये प्रातिस्विक ही है। उन्होंने एक प्रकारसे यह कठिनाई भी दूर कर दी कि जयपुरके सूर्यवंशी कच्छवाहोंका गोत्र मानव कैसे है। अस्तु। तो इस तरह देखनेसे हमें ज्ञात होता है कि गोत्र-भिन्नत्व कुलभिन्नताको प्रकट करता है। तब तो यह सिद्ध होता है कि भावनगरके गुहिल मेवाड़के गुहिलोतोंसे तथा जोधपुर—बीकानेरके राठोड़ दक्षिणके राठोड़ोंसे भिन्न हैं।

(३) भिन्न भिन्न प्रान्तोंके लोगोंकी संस्कृत-प्राकृत उच्चारण करनेकी शैली (राजशेखर)

पठन्ति संस्कृतं सुष्ठु कुण्ठाः प्राकृत-वाचिते।
वाणारसीतः पूर्वेण ये केचिन्मगधादयः॥
ब्रह्मन् विज्ञापयामि त्वां स्वाधिकारजिहासया।
गौडस्त्यजतु वा गाथामन्या वास्तु सरस्वती॥

नातिस्पष्टो न चाश्लिष्टो न रूक्षो नातिकोमलः ।
न मन्द्रो नातितारश्च पाठो गौडेषु वाडवः ॥
रसः कोऽप्यस्तु काप्यस्तु रीतिः कोऽप्यस्तु वा गुणः ।
सगर्वं सर्वकर्णाटाष्टंकारोत्तरपाठिनः ॥
गद्ये पद्येऽथवा मिश्रे काव्ये काव्यमना अपि ।
गेयगर्भे स्थितः पाठे सर्वोऽपि द्रविडः कविः ॥
पठन्ति लटभं लाटाः प्राकृतं संस्कृतद्विषः ।
जिव्हया ललितोल्लापलब्धसौन्दर्यमुद्रया ॥
सुराष्ट्रत्रवणाद्या पठन्त्यर्पितसौष्ठवम् ।
अपभ्रंशवदंशानि ते संस्कृतवचांस्यपि ॥
शारदायाः प्रसादेन काश्मीरः सुकविर्जनः ।
कर्णे गुडूचीगण्डूषस्तेषां पाठक्रमः किमु ॥
ततः पुरस्तात्कवयो ये भवन्त्युत्तरापथे ।
ते महत्यपि संस्कारे सानुनासिकपाठिनः ॥
मार्गानुगेननिनदेननिधिर्गुणानां सम्पूर्णवर्णरचनो यतिभिर्विभक्तः ।
पांचालमण्डलभुवां सुभगः कवीनां श्रोत्रे मधुक्षरति किञ्चन काव्यपाठः ॥

(४) मूल लेखोंके महत्त्वपूर्ण अवतरण ।

(१) बिजोलिया लेख, ए० सो० ज० बंगाल ५५, पृ० ४१ ४२

विप्रश्रीवत्सगोत्रेभूदहिच्छत्रपुरे पुरा । सामन्तोऽनन्त सामन्त पूर्णतल्लो नृपस्ततः ॥१२॥ तस्माच्छ्रीजयराज विग्रहनृपौ श्रीचन्द्रगोपेन्द्रकौ तस्माद्दुर्लभगूवकौ शशिनृपो गूवाकसच्चन्दनौ । श्रीमद्वप्पयराजविंध्यनृपति श्रीसिंहराड्विग्रहौ श्रीमद्दुर्लभगुन्दुवाक्पतिनृपाः श्रीवीर्यरामोऽनुजः ॥ १३ ॥ श्रीचण्डावनिपेतिराणकधरश्रीसिंहलो दूसलस्तद्भ्राताथ ततोपि वीसलनृपः श्रीराजदेवीप्रिय. ॥ पृथ्वीराजनृपोथ तत्तनुभवो रासल्यदेवीविभुस्तत्पुत्रोऽजयदेव इत्यवनिपः सौमल्लदेवीपतिः ॥ १४ ॥ हत्वापाधिर्गामिचलाभिधयशो राजादिचीरत्रयं क्षिप्र क्रूरकृतान्तवक्त्रकुहरे श्रीमार्गदुर्गान्वितं । श्रीमत्सोल्हयदण्डनायकवरः सग्रामरंगांगणे जीवन्नेव नियन्त्रितः करभके येनेष्टनि...सात् ॥१५॥

अर्णोराजोऽस्य सूनुर्हतहृदयहरिः सत्त्वाशिष्टसीमो गाम्भीर्योदार्यवर्यः समभवदपरालब्धमध्योनदीरसः ॥ सचित्रं जंतुजाद्यस्थितिरनृतमहार्पकहेतुर्न मध्यो न श्रीमुक्तो न दोषाकररचितरतिर्न द्विजिह्वाधिसेव्यः ॥ १९॥... कृतान्तपथसञ्जोभूत्सज्जनो सज्जनो भुवः। वैकुन्तं कुन्तपालोगाद्यतो वैकुन्तपालकः ॥ २० ॥ जाबालिपुरं ज्वालापुरं कृता पल्लिका पल्ली। वातत्तूलतुल्यं रोषात्तद्दलं च सौर्येण ॥ २१ ॥ प्रतोल्यां च वलभ्यां च येन विश्रामितं यशः। दिल्लिकाग्रहणश्रान्तमाशिकालाभलम्भितः ॥ २२ ॥ तज्ज्येष्ठभ्रातृपुत्रोभूत्पृथ्वीराजः प्रभूपमः ॥ तस्मादर्जितश्येनागोहेमपर्वतदानतः ॥ २३ ॥ अतिधर्मरते—पि पार्श्वनाथस्वयम्भुवे। दत्तं मोराकरीग्रामं भुक्तिमुक्तिश्चहेतुना ॥२४॥ स्वर्णादिदाननिवहैर्दशभिर्महद्भिस्तौलानरैर्नगरदानचयैश्च विप्राः। येनार्जिताश्चतुरभूपतिवस्तुपाल्माक्रम्य चात्मनसिद्धिकरी गृहीतः ॥ २५ ॥ सोमेश्वराल्लब्धराज्यस्ततः सोमेश्वरो नृपः। सोमेश्वरनतो यस्मादजनसोमेश्वरोऽभवद ॥ २६ ॥ प्रतापलंकेश्वर इत्यभिख्यां यः प्राप्तवान् प्रौढपृथुप्रतापः। यस्याभिमुख्ये वरवैरिमुख्याः केचिन्मृताः केचिदभिद्रुताश्च ॥ २७ ॥ येन श्रीपार्श्वनाथाय रेवातीरेस्वयंभुवे। शासने रेवणाग्रामो दत्तः स्वर्गाकांक्षिणा ॥२८॥ ....(संवत १२२६ फाल्गुनविद ३)... षड्विंशे द्वादशगते गुरौतारे च हस्तके। वृद्धिनामनि योगे च करणे तैत्तिले तथा। गुहिलपुत्र सदाम्बर महघणसीहाभ्यां दत्त...नैगमान्वयकादस्थछोतिगसूनुरे शवेन लिखितं। नानिगगोविंदसूनुपाल्हणपुत्रेल्हणेनोत्कीर्णम् ॥

(२) गोविन्दचन्द्रका लेख (११०६) इं० ए० १८, पृ० १५

ओम् परमात्मने नमः। अकुंठोत्कंठवैकुंठकंठपीठलुठत्करः। संरंभः सुरतारंभे स श्रियः श्रेयसेस्तु वः। अभून्नृपो गाहडवालवंशे महीतले याम जितारिचक्रः। शेते धराभारमशेषमेव शेषः सुखी यस्य भुजे निधाय ॥ प्रध्वस्ते सोमसूर्योद्भवविदितमहाक्षत्रवंशद्वयेस्मिन्। त्रस्तब्रमायवेदध्वनिजगदखिलं मन्यमानः स्वयम्भूः ॥ कृत्वा देहमहाय प्रवणमिह मनः शुद्धिबुद्धिर्धरिण्याम् उद्धर्तुं धर्ममार्गान् प्रथितमिह तथा क्षत्रवंशद्वयं च ॥ वंशे तत्र ततः स एष समभूत भूपालचूडामणिः प्रध्वस्तोद्धतवैरिवीरतिमिरः

श्रीचंद्रदेवो नृपः ॥ येनोदारतरप्रतापशमिताशेषप्रजोपद्रवं श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम् ॥ तीर्थानि काशिकुशिकोत्तरकोशलेन्द्रस्थानीयकानि परिपालयिताभिगम्य ॥ हेमात्मतुल्यमनिशं ददता द्विजेभ्यो येनांकिता वसुमती शतशस्तुलाभिः ॥ तस्यात्मजो मदनपाल इति क्षितीन्द्रचूडामणिर्विजयते निजगोत्रचन्द्रः। यस्याभिषेककलशोल्लिखितैः पयोभिः प्रक्षालित. कलिरजः पटलं पृथिव्याम् ॥ एयातस्तनो रजनिजानिरिवांबुराशेः गोविन्दचन्द्र इति कान्तिभराभिरामः। राजात्मजेन भवता समुपार्जितानि रामेण दाशरथिनेव यशांसि येन ॥ दुर्वारस्फारगौडद्विरदवरघटाकुंभनिर्भेदभीमो हम्मीरं न्यस्तवैरं मुहुरसमरणक्रीडया यो विधत्ते ॥ शश्वत् संचारिवल्गत् तुरगखुरपुटोल्लेखमुद्रासनाथ क्षोणीस्वीकारदक्षः स इह विजयते प्रार्थनाकल्पवृक्षः ॥...परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरममाहेश्वरनिजभुजोपार्जितकान्यकुब्जाधिपत्यश्रीचन्द्रदेवपादानुध्यात परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरममाहेश्वरश्रीमन्मदनपालदेवविजयराज्ये ॥ अस्यैवात्मजो महाराजपुत्रगोविंदचन्द्रदेवः ॥ सिउरोदपत्तलायां रामैठग्रामे समस्तमहत्तमजनपदनिवासिलोकान् प्रतिवासिलोकांश्च ॥ राजराज्ञीमातृपुरोहितामात्याक्षपटलिक-भाण्डागारिक भिषक्नैमित्तिकसेनापत्यन्त.पुरिकसमस्ताधिकारिपुरुषादीन् समाज्ञापयति सम्बोधयति च यथा। अस्तु वो विदितं अनित्यायुर्गता युष्माभिः वातातपवशात् मृणामलग्नाश्यायबिंदुरिव न स्थिरपदम् बध्नाति जीवितम् मत्वा ॥...अस्मिन् ग्रामे हलानां चतुर्भिप्रमाणुः। सजलस्थलः सोपरपाषाणगिरिनदीवनवाटिकाम्रमधूकलोहलवणाकर ऊर्ध्वाधः सिद्धियुतः सदशापराधदण्ड. तृणपर्णाद्याकरआदाय-सहितः संवत् ११६६ पौष वद्य १५ रवौ अद्येह आसटिकायां देवनामुरैठवट्टे यमुनायां यथाविधिना स्नात्वा देवमनुष्यपितृतर्पणाद्यनंतरं भगवन्तं सूर्यमुपस्थाय तदनु चाभीष्टदैवतामहेश्वरं पचभिरुपचारैः समभ्यर्च्य भगवते जातवेदसे पूर्णाहुतिं दत्वा राहुग्रस्ते सवितरि मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये महाब्राह्मणाय गुणारौत्राय रिवदेपुत्राय भट्टकरडमप्रविनिर्गताय सांवशायनशाखिने गौतमपैतिध्यआंगिरसत्रिप्रवराय श्रुताध्ययनपरायणब्राह्मणगुणचन्द्राय विशुद्धेन मनसा कुशपूतहस्तोदकेन क्षित्यर्कविधपर्वताम्बरं यावत्।

राणकश्रीलवणप्रवाहेन चासनत्वेव प्रदत्तो इति मत्वा यथादीयमान भाग भोगकूटकविंशतिच्छत्रया तुरुष्कदण्ड अक्षपटलादाय वल्दीकुमरगदियानक आकरहिरण्याद्याभ्यन्तरसिद्धि एतत् सर्वं अन्यदपि भूम्यावारणोत्पत्त्य मानं मदाज्ञापालनप्रवणीभूत्वा एतत् सर्वं अस्मै उपनेतव्यम्। एतत् सन्तत्यै अपि॥ न केनाप्यत्र वाधा कार्या श्रुत्वा मुनीना वच . .. . . लिखितोय महत्तकश्रीगागेयानुज्ञया त्रिभुवनपालेन ठक्कुरश्रीदेवागसुतेन सुनरकुडनेन सातेहरसुतेन।

(३) गाहडवालोंके एक और दानलेखका अवतरण,

अकुठोत्कट० ॥ १ ॥ चतुष्पञ्चाशदधिकशतैकादशसवत्सरे माघे मासि शुक्लपक्षे तृतीयायां सोमदिने वाराणस्यामुत्तरायणसमन्तौ अत्र सवत् ११५४ माघसुदि ३ सोमे वाराणस्यां देवश्रीत्रिलोचनघट्टे गगायां स्नात्वा श्रीमद्राजाधिराज श्रीचन्द्रदेवेन प्रचुरपायसेन हविषा हविर्भुजं हुत्वा " कौशिकगोत्राय विश्वामित्रौदलदेवरातत्रिप्रवराय छन्दोगशाखिने गोकर्णकुशलतापूतकरतलोदकपूर्वमापन्नसदूमनो हहूकान्त यावत् शासनीकृत्य प्रदत्त इति ज्ञात्वाऽस्माभि पितृदानशासनप्रकाशनार्थं निजनामाङ्कितमुद्रया ताम्रपट्टक निधाय प्रदत्तो श्रीमन्मदनदेवेन पितृदानप्रकाशाय । शासनस्य निबन्धोयं कारित स्वीयमुद्रया ॥१०॥ लिखित करणिक ठक्कुर श्रीसहदेवेन शिवमन महलं महाश्री श्रीमदनपालदेवेन ॥

(४) गाहडवाल दानलेखोंके अवतरण, एपि० इण्डि० ४

(पृ० १०१) हल्दीयप्रत्तलाया महाशौणमौग्रामनिवासिनो निखिलजनपदानुपगतानपिच राजराज्ञीयुवराजमन्त्रीपुरोहितप्रतिहारसेनापतिभाण्डागारिकाक्षपटलिकभिषड्नैमित्तिकान्तःपुरिकदूत करितुरगपत्तनाकरस्थानगोकुलाधिकारिपुरुषानाज्ञापयति बोधयत्यादिशति च ग्राम सजलस्थल सलोहलवणाकर समत्स्याकर सगर्ताकर सगतोषर समधूकाम्रवनवाटिकाविटपतृणयूतिगोचरपर्यन्त सोर्ध्वाध श्चतुराघाटविशुद्ध श्रीवास्तव्यकुलोद्भूत कायस्थोद्दणसूनुना। लिखितस्ताम्रपत्रोय पौठनेन नृपाज्ञया ॥

(पृ० १०६) यथा दीयमानभागभागकप्रचणिकरतुरुष्कदण्डकुमर गदियानकप्रभृति समस्तदायान् दास्यतेति ।

(पृ० १२०) वैष्णवपूजाविधिगुरव

(पृ० १२१) प्रचुरपायसेन हविर्भुजं हुत्वा

(पृ० १२३) प्रवणीकरहिरण्यनियतानियतान् दायान्

(५) गोविन्दचन्द्रके बसही दानलेखका अवतरण

इ० ए० १४, पृ० १०३ ।

नमो वासुदेवाय । संवत् ११६१ यमुनायां स्नात्वा यथाविधानं मन्त्रदेवऋषिमनुष्यभूतपितृंश्च तर्पयित्वा सूर्यं भट्टारकं सर्वकर्तारं भगवन्तं शिवं विश्वाधारं वासुदेवं समभ्यर्च्य हुतवहं हुत्वा जीवन्तीपत्तलायां बसही ग्रामे समस्तजनपदान् सम्बोधयति यथा । ग्रामोयं मया क्षेत्रवनमधूकाम्रा काशपातालसहितं सदशापराधदण्ड भागकूटकदशबन्धविंश युक्तप्रस्था क्षपटलप्रस्थप्रतिहारप्रस्थआकरतुरुष्कदण्डवरवधेहिरण्यसर्वदायसयुक्त चतुराघाटविशुद्धं गौतमगोत्राय मेमे, पौत्राय.. ज्योतिर्विन्माह्मण अल्हेकाय प्रदत्त लिखितं च पुरोहितजागुकमहत्तकश्रीगाल्हणप्रतिहारश्रीगौतम एषां सम्मत्या ।

(६) वल्लालसेनका नहट्टी दानलेख, एपि० इंडि० १४, पृ० १५६

ॐ नमः शिवाय म श्रीकंठशिरामणिर्विजयते देवस्समीवल्लभ ॥ वंशे तस्याभ्युदयिनि सदाचारचर्यानिरूढी प्रौढां राढामकलितचरै भूषयन्तो- नुमावै । शश्वद्विश्वाभयवितरणस्थल-यावल-यै की युल्लोले स्नपितवियतो जज्ञिरे राजपुत्रा । तस्य वंशे महात्मा प्रतिभटपृतनाम्भोधिकल्पान्तसूर सत्यशीलो निरुपधिकरुणाधामसामन्तसेन । तस्मादजनि वृषध्वजचरणाम्बुजषट्पदो गुणाभरण । हेमन्तसेनदेवो वैरिसर प्रलय हेमन्त । तस्मा दभूदखिलपार्थिवचक्रवर्ति निर्व्याजविक्रमतिरस्कृतसाहसाङ्क । दिक्पालचक्र पुटभेदनगीतकीर्ति पृथ्वीपतिर्विजयसेनपदप्रकाश । अस्य प्रधानमहिषी जगदीश्वरस्य शुद्धान्तमौलिमणिरास विलासदेवी । देवी सुतं सुतपसः सुकृ-

तैरसूत बल्लालसेनमतुलं गुणगौरवेन...स खलु श्रीविक्रमपुरसमावासित-श्रीमज्जयस्कंधावारात् । महाराजाधिराज श्रीविजयसेन देवपादानुध्यात परमेश्वर-परममाहेश्वर-परमभट्टारकमहाराजाधिराज श्रीमद्बल्लालसेनदेवः कुशली समुपजातअशेषराजराजन्यराज्ञीराणकराजपुत्रराजामात्यपुरोहित-महाधर्माध्यक्ष-महासान्धिविग्रहिक-महासेनापतिमहामुद्राधिकृतअन्तरङ्ग-बृहदुपरिक-महाक्षपटलिक-महाप्रतीहार-महाभोगिक महापीलुपति-महागणस्थ-दौस्साधनिक-चौरोद्धरणिकनौबलहस्त्यश्वगोमहिषाजाविकादिव्यापृतक गौल्मिकदण्डपाशिकदण्डनायकविषयपत्यादीन् अन्यांश्च सकलराजपादोपजीविनो अध्यक्षप्रचारोक्तांश्च इह अकीर्तितान् चट्टभट्टजातीयान् जनपदान् क्षेत्रकरांश्च ब्राह्मणान् ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हं मानयति बोधयति समादिशति च । मतमस्तु भवतां यथाश्रीवर्धमान भुक्त्यन्तःपाति उत्तरराढामण्डले स्वल्पदक्षिणवीथ्यां खाण्डयिल्लशासनशामनोत्तरस्थितः संघटियानपुत्तरः नारीचाशासनोत्तरस्थशिंघटियानदीपश्चिमोत्तरः...एवं चतुःसीमावच्छिन्नवाल्लहिट्ठमानः श्रीवृषभशंकरनलेन सवास्तुनालखिलादिभिः सालत्रयाधिकचत्वारिंशत्उन्मानसमेत आढकनवद्रोणोत्तरससभूपाटकात्मकः प्रत्यब्द कपर्दक पुराणपञ्चशतोत्पत्तिकः सझाटविटपः सगर्तोषरः सजलस्थल सगुवाकनारिकेरः सदशापराधः परिहृतसर्वपीडः तृणपूतिगोचरपर्यन्तः अचाटभटप्रवेशः अकिंचित्प्रग्राह्यः समस्तराजभोगकरहिरण्यप्रत्यायसहितः । वराहदेवशर्मणः प्रपौत्राय भट्टेश्वरदेवशर्मणः पौत्राय लक्ष्मीधरदेवशर्मणः पुत्राय भारद्वाजसगोत्राय भारद्वाजाङ्गिरसबार्हस्पत्यप्रवराय सामवेदकौथुमशाखाचरणाध्यायिने आचार्यश्रीओवासुदेवशर्मणे असन्मातृश्रीविलासदेवीभिः सुरसरिति सूर्योपरागे दत्तहेमाश्वमहादानदक्षिणात्वेन उत्सृष्टः मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये आचन्द्रार्कं क्षितिसमकालं यावद्भूमिछिद्रन्यायेन ताम्रशासनीकृत्य प्रदत्तोस्माभिः अत.भवद्भिः सर्वैरनुमन्तव्यं भाविभिरपि भूपतिभिरपहरणे नरकपातभयात् पालने धर्मगौरवात् पालनीयम् । भवन्ति चात्र धर्मानुशंसिनः श्लोकाः......जितनिखिलक्षितिपालः श्रीमद् बल्लालसेनभूपालः । ओवासुशासने कृतदूतं हरिघोषसान्धिविग्रहिकं । संवत् ११ वैशाखदिने १६ श्रीः

(७) मदनपालके लेखका अवतरण, जे० चो० ६६, पृ० ११

~ . रमावतीनगरपरिसरसमावासितश्रीमज्जयस्कन्दावारात् । परमसौगतो महाराजाधिराजश्रीरामपतिदेवपादानुध्यात परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीमन्मदनपालदेव कुशली ? श्रीपौण्ड्रवर्धनभुक्तौ कोटीवर्षविषये हलावर्तमण्डले काष्टगिरिसंबिशायाबाधिकोपेतसर्वैदार्वचट्टरट्टके त्रिंशति कायां भूमौ समुपागताशेषराजपुरषान् राजराजन्यकराजपुत्रराजामात्यमहासान्धिविग्रहिकमहाक्षपटलिकमहासामन्त महासेनापति महाप्रतिहारदौ साध्यसाधनिकमहाकुमारामात्यराजस्थानीयोपरिक चौरोद्धरणिकदाण्डिकदण्डपाशिकशौनिकभ्म त्रमान्तपाल कोटपालाङ्गरक्षकतदायुक्तविनियुक्तक - हस्त्यश्वोष्ट्रनौबल ० प्रापृतक किशोरवडवागोमहिषाजाविकाध्यक्ष दूतप्रेषणिकगमागमिकअभित्वरमाण विषयपतिग्रामपतितरिक शौल्किकगौल्मिकगौडमालवघोडखसहूणकुलिककर्णाटलाटचाटभटसेवकादीन् । अन्यांश्चाकीर्त्तितान् राजपादोपजीविन प्रतिवासिनो ब्राह्मणोत्तरान् महत्तमोत्तमकुटुम्बिपुरोगचण्डालपर्यन्तान् यथार्हं मानयति बोधयति समादिशति च । विदितमस्तु भवताम् । यथोपरिलिखितोयं ग्राम स्वसीमातृणपूलुतिगोचरपर्यन्त सतल सोद्देश साम्रमधूक सजलस्थल सगर्तोपर सझाटविटप सदर चापसार सचौरोद्धरणिक परिहृतसर्वपीड अचाटभटप्रवेश अकिंचित्कर-ग्राह्य समस्तभागभोगहिरण्यादिप्रत्यायसमेत रद्मत्रपराजसभोगवर्जित । भूमिछिद्रन्यायेन आचन्द्रार्कक्षितिसमकाल पित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोवृद्धये कौत्ससगोत्राय शाण्डिल्यासितदेवलप्रवराय पण्डितश्रीभूपणब्रह्मचारिणे सामवेदान्तर्गतकौथुमशाखाध्यायिने चम्पाहिट्टीयाय चम्पाहिट्टिवास्तव्यायव त्सस्वामिप्रजापतिस्वामिपौत्राय शौनकस्वामिपुत्राय पण्डितथपुत्रश्रीवटेश्वरस्वामिशर्मण पट्टमहादेवीश्रीचित्रमटिकाया वेदव्यासप्रोक्तप्रवाचित महाभारत-समुत्सर्जितदक्षिणात्वेन भगवन्त बुद्धभट्टारकमुद्दिश्य शासनीकृत्य प्रदत्तोऽस्माभि श्रुतो भवद्भि सर्वैरेवानुमन्तव्य भाविरपिभूमिपतिभिर्भूमेर्दान फलगौरवात् अपहरणमहानरकपातभयाच्च दानमिदमनुमोद्यानुमोदपालनीयम् । प्रतिवासिभिश्च क्षेत्रकरैराज्ञाश्रवणविधेयीभूय यथाकालं समुचितभाग-भोगकरहिरण्यादिप्रत्यादेयोपनय कार्यं इति संवत् ८ चैद्रगत्याचैत्रकर्मदिने

(६) उदयवर्मन् परमारके भोपाल ताम्रपट्टका अवतरण इं० एं० १६, पृ० २५४-५५

ॐ स्वस्ति जयोऽभ्युदयश्च । जयति व्योमकेशोऽसौ यः सर्गाय बिभर्ति तम् । ऐन्दवं शिरसा लेखं जगद्बीजाङ्कुराकृतिम् ॥ तन्वन्तु वः स्मरारातेः कल्याणमनिशं जटाः । कल्पान्तसमयोद्दामतडिद्वलयपिङ्गलाः परमभ० महारा० परमे० श्रीमद्यशोवर्मदेवपादानुध्यात प. भ. म० प० श्रीमज्जयवर्मदेवराज्ये व्यतीते निजकरकृतकरवालप्रसादावाप्तनिजाधिपत्यसमस्तप्रशस्तोपेतसमधिगतपञ्चमहाशब्दालंकार विराजमान महाकुमार श्रीमल्लक्ष्मीवर्मदेवपादानुध्यात समस्तप्रशस्तोपेत समधिगतपञ्चमहाशब्दालङ्कार विराजमान महाकुमार श्री हरिश्चन्द्रदेवसुत श्रीमत् उदयवर्मदेवो विजयोदयी ॥ विन्ध्यमण्डले नर्मदापुर प्रतिजागरणक वोडसिरासक अष्टाचत्वारिंशन्मध्ये गुणौराग्रामनिवासिनः प्रतिग्रामनिवासिनश्च समस्तराजपुरुष वैषयिक पट्टकिल जनपदादीन् ब्राह्मणोत्तरान्बोधयत्यस्तु वः संविदितम् यथा ॥ अस्माभिः श्रीविक्रमकालातीत षट्पञ्चाशदधिकद्वादशशत सम्वत्सरान्तः पाति अङ्के १२५६ वैशाख शुदि १५ पौर्णमास्यां तिथौ विशाखा नक्षत्रे परिघयोगे रविदिने महावैशाख्यां पर्वणि गुवाडा घट्टे रेवायां स्नात्वा सितपवित्रवाससी परिधाय देवऋषिमनुष्यान् संतर्प्य चराचरगुरुं भगवन्तं भवानीपतिं समभ्यर्च्य समित्कुशतिलाज्याहुतिभि हिरण्यरेतस हुत्वा भानवे अर्घं विधाय कपिलां त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य उपदृश्य च संसारस्यासारतां दृष्ट्वा नलिनीदलगत जललवतरलतर यौवनं धनं जीवितं चावेक्ष्य...गर्गगोत्राय गर्गशैन्याङ्गिरस इति त्रिप्रवराय वाजसनेयशाखिने अग्निहोत्रि यज्ञधरसुत द्विवेद पुरोधास मालुहुशर्मणे ब्राह्मणाय स्वरिलिखित गुणौराग्रामो निधिनिक्षेप कल्याण धनसहित: सवृक्षमालाकुलः । चतुष्कटकविशुद्धो वापीकूपतडागारामनदीस्रोत वाडवाटिकाद्युपयुक्त: सर्वाभ्यंतरसिद्ध्या सह याचंद्रदिवाकरसमुद्रसरित्क्षासलीकृत्य प्रदत्तः तदत्र ग्रामनिवासि-पट्टकिलादिलोकैः तथा कर्षकैश्च यथोत्पद्यमानभागभोगकरहिरण्यादिकमाज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा अत्र ग्रामीयं सर्वं अस्मै प्रदातव्यम् । सामान्यैतद् पुण्यफलं बुद्ध्वा अस्मद्वंशैरन्यैरपि भाविभोक्तृभिरस्मत् प्रदत्तधर्मादायोयमनुमन्तव्यः पालनीयश्च

...स्वहस्तोयं महाकुमार श्री उदयवर्मदेवस्य दूतक श्रीमण्डलिक क्षेम-वराजः श्रीः

(१०) कर्णदेवके गोहर्वताम्रपट्टका अवतरण, एपि० इंडि० ११ पृ० १४१

(शिवस्तुति .. चन्द्रवंश ...भरत ...हैहय....) स एव परम भाम-देवपादानुध्यात प०—परममाहेश्वरत्रिकलिंगाधिपतिश्रीमत्कर्णदेवः निज-भुजोपार्जिताश्वपतिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपति. कुशली ।...महादेवी महाराजपुत्रो महामंत्री महासान्धिविग्रहिको महामात्यो महाधर्माधिकर-णिको महाप्रतीहारो महाक्षपटलिको महाभाण्डागारिको महासामन्तो महा-प्रमत्तवारो महाश्वसाधनिको एतानन्यांश्चाकीर्तितान् यथास्थाननियुक्तराज-पुरुषान् कोशाम्बपत्तलाया चन्द्रपहाग्रामनिवासिनो निखिलजनपदान्यथार्ह-मानयति बोधयति समाज्ञापयति विदितमस्तु भवतां यथा ग्रामोयं सजल-स्थल. साम्रमधूक सगर्तोषर. सलोहलवणाकर. स्वसीमापर्यन्त सवन-तृणयूतिगोचरपर्यन्त । विदर्भीकोण्डिनगोत्रायाङ्गिरसाम्बरीषयौवनाश्वत्रि-प्रवराय वाजसनेयशाखिने उपाध्याय सौलुपौत्राय भरसधिक मालुपुत्राय पण्डितश्रीशान्तिशर्मणे "गंगायां स्नात्वा भगवन्तं शिवभट्टारकं समभ्यर्च्य-प्रदत्तः इति मत्वा यथादीयमानभोगभागहिरण्यादिसमस्तराजप्रत्यादायाः युष्माभिरस्याज्ञाश्रवणविधेयैर्दातव्या.. लिखितं करणिकश्योसर्वानन्देन । उत्कीर्णं च विद्यानन्देन । मगल

(११) कल्याणके पश्चिमी चालुक्य जयसिंहके मिरज ताम्रपट्टका अवतरण (१०२४ ई०) इं० ए० ८, पृ० १८

.. स तु श्रीपृथ्वीवल्लभमहाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकसत्याश्रय-कुलतिलकसमस्तभुवनाश्रयचालुक्याभरणश्रीमज्जगदेकमल्लदेव. श्रीमद्वल्लभ-नरेन्द्रदेव. कुशली । सर्वानेव यथासम्बध्यमानकान् राष्ट्रपतिविषयपतिग्राम-कूटकमायुक्तकनियुक्ताधिकारिकमहत्तरादीन् समादिशत्यस्तु व. संविदि-तम् यथा अस्माभि शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेषु नवसु षट्चत्वारिंश-

दधिकेषु श्रकत संवत् ९४६ राक्षसी संवत्सरान्तर्गतवैशाखपौर्णमासामादित्यवारे यं च द्रमिलाधिपतिं बलवन्तं चोलं निर्दाल्य ससकोंकणाधीश्वराया सर्वस्वं गृहीत्वा उत्तरदिग्विजयार्थं कोल्हापुरसमीपसमावासितनिजविजयस्कान्धावारात् विषयान्त पातिमुहुलीरग्रामजाताय कौशिकगोत्राय बहृचशाखिने ब्रह्मचारिणे श्रीधरभट्टपौत्राय रेवणार्यभट्टपुत्राय वासुदेवार्यशर्मणे यजनयाजनादिषट्कर्मनिरताय वेदवेदांगपारगाय षडदोरद्विसहस्रान्त पातिकरटिकसचिशतमध्ये मडभूरग्रामं सधान्यहिरण्यादय निधिनिधानसमेत राजकीयानामनङ्गुलिप्रक्षेपणीय सशुल्क सर्वस्वनाथापहन सर्वनमस्योऽग्रहारो दत्त शासनाधिकारिमहाप्रचण्डदण्डनायकश्रीमत्प्रोणार्यप्रतिबद्धलेखक माइय्येण लिखितम्। मगल महाश्री श्री श्री ॥

(१२) अपराजित शिलाहारके भादानदानलेखका अवतरण, एपि० इंडि० ३, पृ० २६७

ओं (समग्रराष्ट्रकूटवंशो वर्णित) श्रीमत्कक्कलदेवसंजातव्यपाय नष्टप्रष्टराष्ट्रराज्ये स्वतेनोनुभावातसमधिगतपंचमहाशब्दो तगरपुरे मलगलगण्ड नम्रिसमुद्भप्रतापमार्तंड शनिवारविजयादिसमस्तराजावलिसमलंकृत.. अपराजितदेवराज सर्वानेव यथासंवध्यमानकान् आगामिग्रामप्रभोक्तृसामन्तराजपुत्रपुरपतिनिवर्गस्थानप्रभृतिप्रधानाप्रधानान्जनान् प्रणतिपूजासमादेशै समनुबोधयति संवत् ९१९ आषाढवदि ४ श्रीस्थानके समवस्थितस्य राज्ञो दक्षिणायनककसक्रान्ति ' चतुर्दशग्रामशतोपलक्षितकोंकणान्त पातिम हिरिहारविषया-तगतभादानग्रामो आधारपडिगह (दोषसमन्वित ?) सोद्रंगसपरिकर अचाटभटप्रवेश श्रीगणादित्यदेवाय . आम्रश्रेष्ठिनाथैयाश्रेष्ठिमणिकचेलापैयभोजकविमग्गो वणीयादिगुणपौरनगराधिष्ठितहस्तोदक विधाय हरिहरहिरण्यगर्भदहनादिदेवान् श्रद्धया संपूज्य पुनर्पौत्राद्ययुपभोगवृत्तित्वेन ग्राम प्रदत्त । भुजतो भोजयतो वा कृषतः कर्षयतो वा न केनचित् परिपन्था कर्तव्या । महामण्डलेश्वरश्रीमदपराजितदेवो लेखकहस्तेनारोपयति स्वमतम् मत मम श्रीमदपराजितदेवस्य विरुद कराजनियमान् महामात्य श्रीसगलैये महासान्धिविग्रहिकसीहपैये च सति

जसंगवैय्यसूनुना सजाताभ्यनुज्ञेन प्रतिहस्तकभल्लपैयेन शासनमिदं लिखित तच्च स्थानके ध्रुवम् । ..तथा भूयोपि व्यवस्था चात्र नन्वव्यावशप्रतिवीर्प-नगरेण राजकुलस्य अर्हणाभाव्यार्थं दरमणी २६० अंकत. दातव्य । मङ्गले महाश्री

(१३) छित्तराजके भंडुपताम्रपट्टका अवतरण, एपि० इंडि० १२। शिलाहारमुद्रामें उठा हुआ गरुड़ और सुनहला गरुड़ध्वज बना हुआ है।

. तथेतद्राज्यचिन्ताभारसमुद्वहत्सु सर्वाधिकारिश्रीनारायणैय्य साधि-विग्रहिकश्रीसीहपैय्यकर्णाटसाधिविग्रहिकश्रीकपर्दि श्रीकरणादिपञ्चप्रधानेषु सत्सु समागामिराजपुत्रमंत्रिपुरोहित-अमात्यप्रधानाप्रधाननैयोगिककान्स्त थाराष्ट्रपतिविषयपतिनगरपतिग्रामपतिनियुक्ताजियुक्तराजपुरुषजनपदांस्तथा हैयमननगर पौरत्रिवर्गप्रभृतींश्च प्रणतिपूजासत्कारसमादेशैः समादिशति शकनृप... . ९४८ कार्तिकशुद्ध १५ आदित्यग्रहणपर्वणि स्नात्वा सवित्रे अर्घ्यं दत्वा .उमापतिमभ्यर्च्य...पाराशरगोत्राय छन्दोगशाखिने आमदेवाय ...बलिचरुवैश्वदेवअग्निहोत्रक्रतुक्रियाद्यपरिग्रहपोषणार्थं १ स्थानकान्तर्गत-षट्पष्टिविषयान्त पातिगौराग्रामान्तर्वर्तिक्षेत्रं ।...... ..

(१४) भावनगर लेखका अवतरण, पृ० १५७

ॐ...राज्येऽमुष्यमहीभुजोभवदिहश्रीगूहिलाख्यान्वये श्रीसीहार इति मभूतगरिमाधारो धरामंडनम् । चौलुक्यागनिगूहक सहजिग. ख्यातस्तनुज-स्ततस्तत्पुत्रा बलिनो बभुवुरवनौ सौराष्ट्ररक्षाक्षमा ॥.. ॐ श्रीसहजिगपु-त्र० श्रीमुलुकेनश्रीसहजिगेश्वरदेवस्यानवरतपञ्चोपचारपूजार्थेतो श्रीमन्मं-गलपुरमंडपिकाया का० १ दिनप्रति तथा बलीवर्दछाटमाणकाभ्ये छाट प्रतिका० १ कणभृतगडकं प्र० का० ४ तथारासमछाटप्र० ॥ ० तथा समस्तलोकेन नि शेषवस्तिरकारै. पद्यहराबेरीवाटयाप्र० ॥ तथा पत्र भरकउंटभरं-प्रतिका० २ तथापंक्रस्यसंश्री प्रतिद्र. १ क्षेत्र प्रतिरघ्वारापाध्येका. १ आगर-मध्ये खुंटितस्वरालिहासाका. ।...तथालाटिवग्रापथकेवहन्तशुल्कमंडपिका-

बलात्कारादिदुष्टस्त्रीसंग्रहो विधिचोदितः ॥ यतेश्च सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्या विधानतः । नवोदके दशाहं च दक्षिणा गुरुचोदिता ॥ ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादिक्रियापि च । भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणं तथा ॥ गोतृप्तिशिष्टे पयसि शिष्टैराचमनक्रिया । पितापुत्रविरोधे तु साक्षिणां दण्डकल्पनम् ॥ यतेः सायं गृहत्वं च सूरिभिस्तत्वदर्शिभिः । एतानि लोकगुप्तयर्थं कलेरादौ महात्मभिः ॥ निवर्तितानि विद्वद्भिर्व्यवस्थापूर्वकं बुधैः ।

निगमः—अग्निहोत्रं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् । देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥ एतत्सर्वाधानपरम् । स्मृतिचन्द्रिकायाम् । चत्वार्यब्दसहस्राणि चत्वार्यब्दशतानिच । कलेर्यदा गमिष्यन्ति तदा त्रेता-परिग्रह. । संन्यासश्च न कर्तव्यो ब्राह्मणेन विजानतेति व्यासवचनं व्याख्यातम् ॥ सर्वाधानेपि विशेष माह देवलः । यावद्वर्णविभागोस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते । संन्यासं चाग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौ युगे ॥

(६) कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओंका समय ।

७६६ पारसी संजानमें आये

८५५ कोल्लम शकका आरंभ

८८५ नेपाल ,, ,,

९०३ इसाइल प्रथम, बुखाराका सामानी बादशाह

९०३–१०१५ सामानी साम्राज्य

९१२ याकूब ईस्टेमकासारका हिन्दुस्थान (गजनी) पर प्रथम आक्रमण

९४२ नूह सामानी, तुर्कगुलामोंका सामानी राज्यमें प्रवेश

९५१ मनसूर सामानी

९६१–९९६ मूलराज (अनहिलवाड़)

९६७ सितम्बर ३० } महमूदका
९७१ अक्टूबर २ } जन्म

९७३–९९७ तैलप द्वि० वत्तर चालुक्य

९७५–सबुक्तगीन गद्दीपर बैठा

,, शक्तिकुमार (गुहिलोत)

,, वज्रदामन् (कच्छवघात)

९८० सबुक्तगीनका विद्रोह, तथा काबुलके राजा जयपालपर च०

९८०–१०३८ महिपालने पालसत्ता पुनः स्थापित की

९८४ राजहस्त प्रथम (राष्ट्रकूट)

९८५–१०१२ राजराज प्रथम (चोल)

९८६–१००१ नूह द्वितीय

९८० गोविन्द (चाहमान)
९८९ सबुक्तगीनका संयुक्त हिन्दू-राजाओंसे युद्ध
९९०के अम्बाप्रसाद (गुहिलोत)
९९८–१०१० अपराजित (शिलाहार, ठाना)
९९७–१००८ सत्याशय उ० चालुक्य
९९७–१०१० मुञ्ज (परमार)
,, चामुण्ड (अनहिलवाड)
१०००–१०२२ गंड (चंदेल)
१००१ महमूदकी चढाई जयपालपर
१००२ वाक्पति (चाहमान)
,, शुचिवर्मा (गुहिलोत)
,, दिद्दारानी (काश्मीर) की मृ०
१००३–१०२९ संग्रामराज (काश्मीर)
१००४–महमूदकी चढाई भाटियापर
१००८ महमूदका संयुक्त हिन्दू राजाओंसे युद्ध
१००९ मह० की चढाई नगरकोटपर
१००९ विक्रमादित्य पंचम (कल्याण)
१०१०–१०५५ भोज (परमार)
१०१० वज्जड, शिलाहार ठाना
१०१० दुर्लभ-अनहिलवाड
१०१०–१०३८ गांगेय हैहय
१०११ राजराज चोलकृत भूमिकी नापजोख
१०१३ मह० का त्रिलोचनपालसे युद्ध
१०१४ महमू० की थानेश्वरपर चढाई
१०१४–१०४४ राजेन्द्र चोल
१०१५ अरिकेसरी शिलाहार ठाना
१०१६ नरवर्मा गुहिलोत
१०१७ रामानुजाचार्यका जन्म
१०१८ मह० की मथुरा बर्नीपर च०
१०१८–४० जयसिंह कल्याण
१०१९ मह० की कन्नौजपर दू० चढा०
१०१९ भोजका कोंकण जीतना
१०१९ मह० का राज्यपालको जीतना और उसपर कर बैठाना
१०१९ मधुकामार्णव प्राच्यगंग
१०२१ राज्यपालकी हत्या राजपूतों द्वा
१०२१ मह० का राहिबनदीपर युद्ध
१०२१ राजेन्द्रका उडीसा जीतना
,, मह० का त्रिलोचनपालसे यु
१०२१–६३ भीम, अनहिल्वाड
१०२२ मह० की ग्वालियरपर चढाई
१०२३ ,, कालंजरपर ,,
१०२५ ,, सोमनाथपर ,,
१०२५–१०४५ छित्त ठा० शिलाहार
१०२७ भीमशाहकी मृत्यु
१०२८ विद्याधर चन्देल
१०२८–१०६३ अनन्त लोहर काश्मीर
१०२९ मह० की मृ०, कीर्तिवर्मा गुहि०
१०३० 'इण्डिया' ग्रन्थ अलबेरूनी का
१०३० विजयपाल, चन्देल
१०३२ नयपाल, पाल
१०३३ श्रीचन्द्र चाहमान

१०३३ नियाल्तगीने काशी बाजार लूटा
१०३६–१०६८ वज्रहस्त प्राच्यगंग
१०३८–१०८० कर्ण, चेदी
१०४० भोजद्वारा जयसिंहकी पराज.
१०४० देववर्मन् चन्देल
१०४०–६८ सोमेश्वर प्र० प. चालुक्य
१०४२ योगराज गुहिलोत
१०४४ विजयपाल—कच्छपघात
१०४४ राजाधिराज, चोल
१०४५ नागार्जुन, शिलाहार ठा०
१०५२ अनंगपाल द्वि० (तोमर) का दिल्लीमें लोहस्तंभ लाना
१०५२ कोप्पमकी दूसरी लड़ाई
१०५२ राजेन्द्र चोल
१०५५ वैरट गुहिलोत
,, भोज परमारकी मृत्यु
,, जयसिंह परमार
,, मामराणी, ठा. शिलाहार
१०५९–१०८० उदैपुर शिवालय बना
१०५९ ल. उदयादित्य, परमार
,, विग्रहपाल तृतीय, पाल
१०६० कीर्त्तिवर्मन्, चन्देल
१०६२ वीरराजेन्द्र चोल
१०६३ वीसल तृ०, चाहमान
१०६४–१०९४ कर्ण, अनहि. चालु.
१०६५ प्रबोधचन्द्र नाट० खेला गया
१०६८–१०७६ राजराज, प्राच्यगंग
१०६९ सोमेश्वर, उत्त. चालु. की मृत्यु
१०६९ हंसपाल गुहिलोत
१०६९–७६ सोमेश्वर द्वि., प. चालु.
१०७०–१११८ राजेन्द्र कुलोत्तुंगचोल
१०७२ अधिराजेन्द्रकी मृत्यु
१०७३ उत्कर्ष, काश्मीर
१०७६–११२६ विक्रमांक, प. चालु.
१०७६–११४२ अनंतवर्मन्, प्रा. गंग
१०७८ पृथ्वीराज प्रथम, चाहमान
१०८०–११०० चन्द्र गाहडवाल
१०८० महीपाल द्वि० (पाल)
,, सामन्तसेन (बंगाल)
१०८८–११२४ यशः कर्ण, चेदी
१०८९ वैरिसिंह (गुहिलोत)
१०८९–११०४ लक्ष्मणदेव परमार
१०८२ शूरपाल, पाल
१०८४–११३० रामपाल, पाल
१०८४–११६८ हेमचन्द्र, जैन पंडित
१०८४–१११५ अनंतपाल, ठा. शिला.
१०८८ विक्रमसिंह, कच्छपघात
१०८९ हर्ष (काश्मीर)
१०९३ अजयदेव, चाहमान
१०९३–११४३ जयसिंह, अनहिल०
१०९४ विजयसिंह, गुहिलोत
११०० हेमन्तसेन (बंगाल)
,, ल. मद्री राज्यकी स्थापना
११०० सल्लक्षण, चन्देल
११०१ उच्चल (काश्मीर)
११०४ त्रिभुवन वर्फ मधुसू० कच्छ

११०४–११३३ नरवर्मा, परमार
१११० जयवमन्, चंदेल
१११८–११५५ गोविंदचंद्र गाहड़व
११११–११२८ सुस्सल (काश्मीर)
१११७–११६० मोल, आंध्र
१११८ अरिसिंह, गुहिलोत
१११८ विक्रम, चोल
१११९–११९९ लक्ष्मणसेन बंगाल
११२० पृथ्वीवर्मन् चन्देल
११२५ अर्णोराज चाहमान
„ अपरादित्य, ठाना शिलाहार
„ गयकर्ण, चेदी
११२७–११६५ मदनवर्मन्, चंदेल
११२६–सोमेश्वर तृ०, उत्तर चालु०
११२८ चंड गुहिलोत
११२९ परिहारोंने कछवाहोंसे ग्वालियर दुर्ग लिया
११३० कुमारपाल, पाल
११३३ नरवर्मा, परमार
„ विजयपाल, कच्छपघात
„ यशोवर्मा, परमार
११३५ कुलोत्तुंग द्वि०, चोल
११३६ गोपाल तृ०, पाल
११३८ जगदेकमल्ल, उत्तर चालुक्य
११४० विजयसिंह, गुहिलोत
„ मदनपाल, पाल
११४२ जयवर्मा, परमार
„ कामार्णव, प्राच्यगंग
११४३–११७३ कुमारपाल (अन०)
११४४–११६० अजयवर्मा परमार
११४४–११५५ हरपाल, ठानाशिला
११४६–११६५ राजराज तृ०, चोल
११४८ राजतरंगिणी ग्रन्थकी रचना
११४९ पृथ्वीराजका जन्म
११५० चोलगंगने जगन्नाथमंदिर बनवाया
„ कुमारपालकी अजमेरपर च
११५०–११८२ तैल द्वि० उत्तर चालु
११५२ वीसल चाह का दिल्ली लेना
११५२ राघव, प्राच्यगंग
११५२ नरसिंह, चेदी [नाटक
११५३ वीसल चाह०कृत हरकेली
११५५ रणसिंह गुहिलोत
„ शूरपाल, कच्छपघात
११५५–११७० विजयचन्द्र गाहड़०
११५५ मल्लिकार्जुन, ठा० शिलाहार
११५७ अजमेरकी स्थापना
११६० विन्ध्यवर्मा, परमार
११६० जयसिंह, चन्दी
११६१ गोविन्दपाल पाल
११६१–११९१ रुद्र, आंध्र
११६२ भीमसिंह, गुहिलोत
११६२ विज्जल कलचूरीका विद्रोह
११६५ विज्जल, कल०
११६७ सोयीदेव, कलचूरी
११६७ राजराज द्वि०, प्राच्य गंग

११६८–१२०३ परमर्दि चंदेल
११७० जयचंद, गाहड़वाल
११७२ राजाधिराज चोल
,, मुइजुद्दीन गज़नी
११७३ सामन्तसिंह, गुहिलोत
११७३ अजयपाल, (अनहिलवाड)
११७३–१२२० वीर बल्लाल, होयस,
११७४ पृथ्वीराजका कैमाशसे युद्ध
११७५ गोरीका मुलतान लेना
११७५–१२०० अपरादित्य द्वा. शिला.
११७६ मूलराज द्वि० (अनहिलवाड)
,, संग्रट कलचुरी
११७८ हरिश्चन्द्र परमार
,, गुजरातमें गोरीका पराभव
,, कुलोत्तुंग तृतीय, चोल
११७८–१२३१ भीम (भोला), अन,
११७९ सामन्तसिंह गुहिलोत
११७९ पृथ्वी० ने गोरीको हराया
,, गोरीका पेशावर लेना
११८० महेन्द्रपाल (पाल)
११८०–११९८ विजयसिंह, चेदी
११८०–१२१० सुभटवर्मा परमार
११८१ लाहौरपर गोरीकी चढ़ाई
११८२ पृथ्वी. ने परमालको हराया
,, कलचूरी विद्रोहकी समाप्ति
११८२–११८९ सोमेश्वर चतु.प.चा.
११८४ कुमारसिंह, गुहिलोत
,, लाहौरपर गोरीकी द्वि.चढ़ाई
११८५ पृथ्वी.का संयोगितासे विवाह
११८७ भिल्लम चतुर्थका देवगिरि स्वतंत्र राज्य स्थापना
११९० राजराज तृ०, चोल
११९१ पृथ्वी० ने गोरीको हराया
,, महादेव, आंध्र
११९२ पृथ्वी० का पराभव तथा मृत्यु
,, अनियंक भीम, प्राच्यगंग
११९३ कुतुबुद्दीनका मेरठ दिल्ली लेना
,, जयचंदको गोरीने हराया
११९५ मथनसिंह, गुहिलोत
,, कुतुब० ने अजमेरके हरिराजाका विद्रोह दबाया
११९६ शिहाबु० का ग्वालि० किला लेना
११९७ कुतुब० की गुजरातपर चढ़ाई
११९८–१२६० गणपति (आंध्र)
११९९ कुतुब०का अनहिलवाड़ लेना
,, महमूद बख्त्यारका विक्रमशील लूटना
१२०२ मह० बख्त्यारका बंगाल ले०
,, कालंजरपर कुतुब०की चढ़ाई
,, राजराज तृ०, (प्राच्यगंग)
१२०३ चेदीपर कुतुबु० की चढ़ाई
१२०३–१२४५ त्रैलोक्यवर्मन् चंदेल
१२०५ गोरीकी हत्या
१२०६ पद्मसिंह गुहिलोत
१२०८ कुतुबका बदायूं लेना

१२१० अर्जुनवर्मा परमार
१२१६ मेवाडपर तुर्कोंकी चढाई
१२१६ राजेन्द्र तृ० चोल
१२१६ देवपाल (परमार)
१२२७ अल्तमशका रणथंभोर लेना
१२३२ „ ग्वालियर किला लेना
१२३४ „ की चढाई, मालवापर
१२३१ महाकाल मंदिरका विध्वंस

छछके मैदानका नक्शा (पृ० ७४)

"कोट फगाँड़ा"का नक्शा (पृ० ८०)

अनुक्रमणिका।

ट

क्ष

ज्ञ

शुद्धिपत्र

[सू० जिनके साथ यह चिह्न † आया है वे अशुद्धियाँ मूल (मराठी) में भी हैं। रेफ, मात्रा इ० टूटनेकी गलतियाँ प्राय छोडदी गयी हैं।]

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१–१६,१७	होनेके का.	होते हुए भी
७–४	चम्पा	चम्पाका
९–४	भैलस्वामि	भैलस्वामि
११–२३†	जिमूर	जिमूर
१५–१५†	मल्लवर्तक	मत्तवर्तक
२०	सूर्पारक,	शूर्पारक,
२७	कच्छीय	कच्छ
१६–४	उत्तरायण	उत्तरापथ
१८–१७	सन् ९२१	सन् ९१२
२२–२०	राजस्का	राजाका
२९–४,५	अनुस्वार	नुक्ता
३२–१९	राज्य	राजा
३५–५	इतिहाका	इतिहासका
५७–१७	शत्रु प्रान्तमें	शत्रु-प्रान्तमें
५९–२२	तुर्कोंके	शत्रु तुर्कोंके
७४–६	यहाँ दिये	अन्तमें दिये
८०–२७	यहाँ दे	अन्तमें दे
८२,८४,८६	तारीखे-यामिनी	तारीखे-यमीनी
९६–१	सथियन	सिथियन
१०१–१०	आकार	जाकर
१८०–१०	इस	इस वक्त
१६३–१५	अधिक थी	अधिक न थी
१६७–१८	महावतको	महावतोंको
१९९–१५	कोई नवीन कल्पनाकी कल्पना	कोई नवीनता
१८४–६	प्रभाव पड़ा	प्रभाव नहीं पड़ा
२०४–७	भारतवर्षके	भारतवर्षमें
२१०–१०†	वार्णों	सिक्कों
२१९–११	सिंधपर	सिंधसे
२२४–१३	शारदाने	सारडाने
२२६–६	पंजाबसे भी	पंजाबतक
२३२–१६	मैत्र कुमार	जैत्रसिंह
२३८–७	अकहूल कुई	अकल कुई
२४०–८	तुर्क नहीं हैं	तुर्क एक नहीं है
२४४–२७†	तिमिरयिरे	तिमिरभरे
२५१–८	सार्वभौम	भोजके सार्वभौम
२६१–१९	यह भोज	यह भोज,
२६१–२४	बढाये	विठाये
४	घराजये	स्वराज्ये
२६२–१०	हिमालय-से वीर	हिमालयके 'कीर'

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६२ १३	किपी '' किसी	'कीर''' 'कीर'
२७०—५	१ ० से	११६० से
२८३—२५	प्रपर्तितम्	प्रवर्तितम् ।
२७†	समद्भू	समुद्भू
२८९—१८	कर्णमेठ	कर्णमेरु
३०६-५	नरवर्मन्के	नरवर्मन्
३११—२	निर्मित	निर्जित
१४	बालभेद	बालमेर
३२६—१९	हम्मीद्को	हम्मीरको
३२८—२०	आसढ़िका	आसटिका
३४३—३१	भूजुराल	भूयुगल
३४७—४	पा(ण्यमें	चंपारण्यमें
१६	कैनर्त	कैवर्तों
३५०—६	कह	यह
३५१—२	लड़की	लड़कीकी लड़की
२५	तेन	तेने
१६	कुमारपाल के समयमे	आगे ......
३५२—१२	मानते	जानते
३६५—७†	विरुद॰ कराम	बिरदकराम
९†	सेडय	सेवण
१७	सालवका	सासलका
३७:—११	कोशीदेव	केशिदेव
३९८—१३	कदम्ब राजा	कदम्ब राजाने
४१९—२६	इसके	चोल्वंशके
४२३—१९	केवल	कोल
२१	परमता	परमत
४२६—१५†	सेडणचन्द्र	सेवणचन्द्र
४२८—१४	कोई	कई
४२९—१७	तुरुप	तुरुर
४३३—११	शक्ति	सत्ता (राज्य)
४३८—२०†	हन्जुराल	हन्जुगल
४५१—२७	यवत्सराज	वत्सराज
४६४—९	किया जा सकता	कहा जा सकता
४६१—३	सेंधिया	सोंदिया
४६६—५	लाहोरके	लोहरके
४७०—१२	यशस्नरका	यशस्करका
४७३—११	क्षत्रिय थे	क्षत्रिय है
१७	रानी	राठी
४८६—२३†	ज्येष्ठ शु०	ज्येष्ठ कृ०
४९३—२७	गोकू	गोज़
४९८—१५	बुद्धिमत्ताए	चतुराईसे
५००—१९	पहुनेके	पहुचनेके
५१२—१०	इदपत	इदरपत
२५	लेगा	लगा
५१३—८	जैनस्तम्भ	जैन मन्दिरों के स्तम्भ
५१६—१३	आपने स्थानपर	फिर अपने स्थानपर
५२८—२५	ग्रन्थ था	ग्रन्थ है

पृष्ठ—पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५३०—२४	इसमें कालंजर	इनमें कालंजरका राजा
५३८—८	उसने	उसके वंशजोंने
५७६—६	१७२४	१२७४
२१	भीमाली भीमाल	श्रीमाली श्रीमाल
५८४—२६	राजपुत्रः	राजपुत्रम्
५८६—११	गोत्रोंके	कुलोंके
५९५—२५†	खालेनर	थालनेर
५९७—१६	शैव और वैश्य	शैव वैश्य
६१३—८१	नौ वर्ष	नौ सौ वर्ष
६१६—१०	निग्रन्थ	निर्ग्रन्थ
६२३—२२	अपपरने	अप्परने
६२४—९	गोडन	गोल्डन
६३५—२२	विजय देवने	कवि जयदेवने
६४०—२७	†कडफिशि-सके	कडफिशिसके
६४३—१२	वार्ते	वार्तो
६५८—१३	राष्ट्रीय शक्ति···	धार्मिक ऐक्य जो रा. श. की जड़ है नष्ट हो गया
६५०—१८	†नवीन धर्मको	नवीन शैव धर्मको
६६९—२३	ठानेमें	ठानेश्वरमें
६७०—२†	भारतके	भारती युद्धके
६७९—२३	भिन्न था	भिन्न है
२५	ई. स	ई० स० पू०
६८३—२२	मुसलमान	मुलतानके लोग
६९२—६	जातिको हो	जातिको ही
७१०—७	वजनपर	बोझ पर
७३३—९	कुलगकुलके	अग्निकुलके
७४०—७†	गेयगर्भे	गेयगर्भो
१०†	सुराष्ट्र···	ये सुराष्ट्र···
७४२—३†	काशिकुक्षिको	काशि-कुशिको
१३†	पादानुदध्यात्	पादानुध्यात
७४३—२१†	प्रत्तलायां	पत्तलायां,
२६†	श्वतु	चतु
७४४—२१	स्थूलश्या	स्थूलरथ्या
७४५—९†	गौल्मिक	गौल्मिक
७४६—११	श्रोष्टनौ	श्रोष्ठनौ
७४७—९	पृथ्वीदेव पानु	पृथ्वीदेव-पादानु
२३†	कपीस	कार्पास
२५†	भुञ्जा	भुक्ता